॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कल्याण

भगवल्लीला-अङ्क

[जनवरी एवं फरवरी १९९८ ई०]

वर्ष—७२

संख्या १ एवं २

'कल्याण'—कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस

गोरखपुर—२७३००५

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,३०,०००)

लीलावतरणका परम प्रयोजन

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं
न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः।
लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं
प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये॥

(श्रीमद्भा० १०।७०।३९)

शरीर और इससे सम्बन्ध रखनेवाली वासनाओंमें फँसकर जीव जन्म-मृत्युके चक्करमें भटकता रहता है तथा [वह] यह नहीं जानता कि मैं इस शरीरसे कैसे मुक्त हो सकता हूँ। [हे लीलापुरुषोत्तम!] वास्तवमें उसी [जीव]-के हितके लिये आप नाना प्रकारके लीलावतार ग्रहण करके अपने पवित्र यशका दीपक जला देते हैं, जिसके सहारे वह इस अनर्थकारी शरीरसे मुक्त हो सके। इसलिये मैं आपकी शरणमें हूँ।

आवश्यक सूचना

फरवरी मासका अङ्क (परिशिष्टाङ्क) विशेषाङ्कके साथ संलग्न है।

इस अङ्कका मूल्य ८० रु० (सजिल्द ९० रु०)

वार्षिक शुल्क
(भारतमें)
डाक-व्ययसहित ८० रु०
(सजिल्द ९० रु०)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

वार्षिक शुल्क
(विदेशमें)
समुद्री डाकसे US$11
हवाई डाकसे US$22

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ७२ वें वर्ष सन् १९९८ का यह विशेषाङ्क 'भगवल्लीला-अङ्क' आप लोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४०८ पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे चित्र भी दिये गये हैं। इस विशेषाङ्कमें फरवरी माहका अङ्क भी संलग्न किया गया है।

२-जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें विशेषाङ्क तथा फरवरी एवं मार्चका अङ्क रजिस्ट्रीद्वारा भेजा जा रहा है और जिनसे शुल्क-राशि यथासमय प्राप्त नहीं होगी, उन्हें उपर्युक्त अङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी० पी० पी० द्वारा भेजा जायगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी० पी० पी० के द्वारा विशेषाङ्क भेजनेमें डाकखर्च आदि अधिक लगते हैं, अतः वार्षिक शुल्क-राशि मनीआर्डरद्वारा भेजनी चाहिये। 'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक शुल्क डाकखर्चसहित ८०.०० (अस्सी रुपये) मात्र है, जो केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य है। सजिल्द विशेषाङ्कके लिये १०.०० (दस रुपये) अतिरिक्त देय होगा।

३-ग्राहक सज्जन मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या पुराना ग्राहक न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें 'भगवल्लीला-अङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे रजिस्ट्रीद्वारा पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी० पी० पी० भी जा सकती है। वी० पी० पी० भेजनेकी प्रक्रिया प्रारम्भ होनेके बाद जिन ग्राहकोंका मनीआर्डर प्राप्त होगा, उनका समयसे समायोजन न हो सकनेके कारण हमारे न चाहते हुए भी विशेषाङ्क उन्हें वी० पी० पी० द्वारा जा सकता है। ऐसी परिस्थितिमें आप वी० पी० पी० छुड़ाकर किसी अन्य सज्जनको 'कल्याण' का नया ग्राहक बनानेकी कृपा करें। ऐसा करनेसे आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ 'कल्याण' के पावन प्रचार-कार्यमें सहयोगी होंगे। ऐसे ग्राहकोंसे मनीआर्डरद्वारा प्राप्त राशि अन्य निर्देश न मिलनेतक अगले वर्षके वार्षिक शुल्कके निमित्त जमा कर ली जाती है। जिन्होंने वी० पी० पी० छुड़ाकर दूसरे सज्जनको ग्राहक बना दिया है, वे हमें तत्काल नये ग्राहकका नाम और पता, वी० पी० पी० छुड़ानेकी सूचना तथा अपने मनीआर्डर भेजनेका विवरण लिखनेकी कृपा करें, जिससे उनके आये मनीआर्डरकी जाँच करवाकर रजिस्ट्रीद्वारा उनका अङ्क तथा नये ग्राहकका अङ्क नियमितरूपसे भेजा जा सके।

४-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी ग्राहक-संख्या एवं पता छपा हुआ है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी ग्राहक-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी० पी० पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें ग्राहक-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पिन-कोड-नम्बर आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा पता जाँच लेवें।

५-'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीआर्डर आदि सम्बन्धित विभागको पृथक्-पृथक् भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर) (उ० प्र०)

श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

गीताप्रेस, गोरखपुर (प्रधान कार्यालय—श्रीगोविन्दभवन, कलकत्ता)-द्वारा संचालित राजस्थानके चूरू नगर-स्थित इस आश्रममें बालकोंके लिये प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं वैदिक परम्परानुरूप शिक्षा-दीक्षा और आवासकी उचित व्यवस्था है। इस आश्रमकी स्थापना ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा आजसे लगभग ७४ वर्ष पूर्व इस विशेष उद्देश्यसे की गयी थी कि इसमें पढ़नेवाले बालक अपनी संस्कृतिके अनुरूप विशुद्ध संस्कार तथा तदनुरूप शिक्षा प्राप्तकर सच्चरित्र, आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न आदर्श भावी नागरिक बन सकें—एतदर्थ भारतीय संस्कृतिके अमूल्य स्रोत—वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों एवं प्राचीन आचार-विचारोंकी दीक्षाका यहाँ विशेष प्रबन्ध है। संस्कृतके मुख्य अध्ययनके साथ अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयोंकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। विस्तृत जानकारीके लिये मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)-के पतेपर सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण-आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके इस कुसमयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अत: धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग ३० हजार है। इसमें श्रीगीताके छ: प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन 'परिचय-पुस्तिका' नि:शुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—**मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ,** पत्रालय—**स्वर्गाश्रम,** पिन—**२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश),** जनपद—**पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)**

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ५० वर्ष पूर्व 'साधक-संघ'-की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको 'साधक-दैनन्दिनी' का वर्तमान मूल्य रु० २.०० तथा डाकखर्च रु० १.००—कुल रु० ३.०० मात्र, डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। संघके सदस्य इस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली नि:शुल्क मँगवाइये।

पता—**संयोजक, 'साधक-संघ',** पत्रालय—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)**

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्राय: सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग दस हजार परीक्षार्थियोंके लिये २०० परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—**श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति,** पत्रालय—**स्वर्गाश्रम,** पिन—**२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश),** जनपद—**पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)**

॥ श्रीहरिः ॥
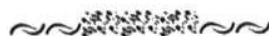
'भगवल्लीला-अङ्क'की विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(इकरंगा-चित्र)

(फरवरीके अङ्ककी विषय-सूची)

(चित्र-सूची)

भगवान् गणपति-रूपमें सिद्धि (पत्नी)-सहित

परब्रह्म महाशिव और उनकी नित्यलीला-संगिनी भगवती भुवनेश्वरी
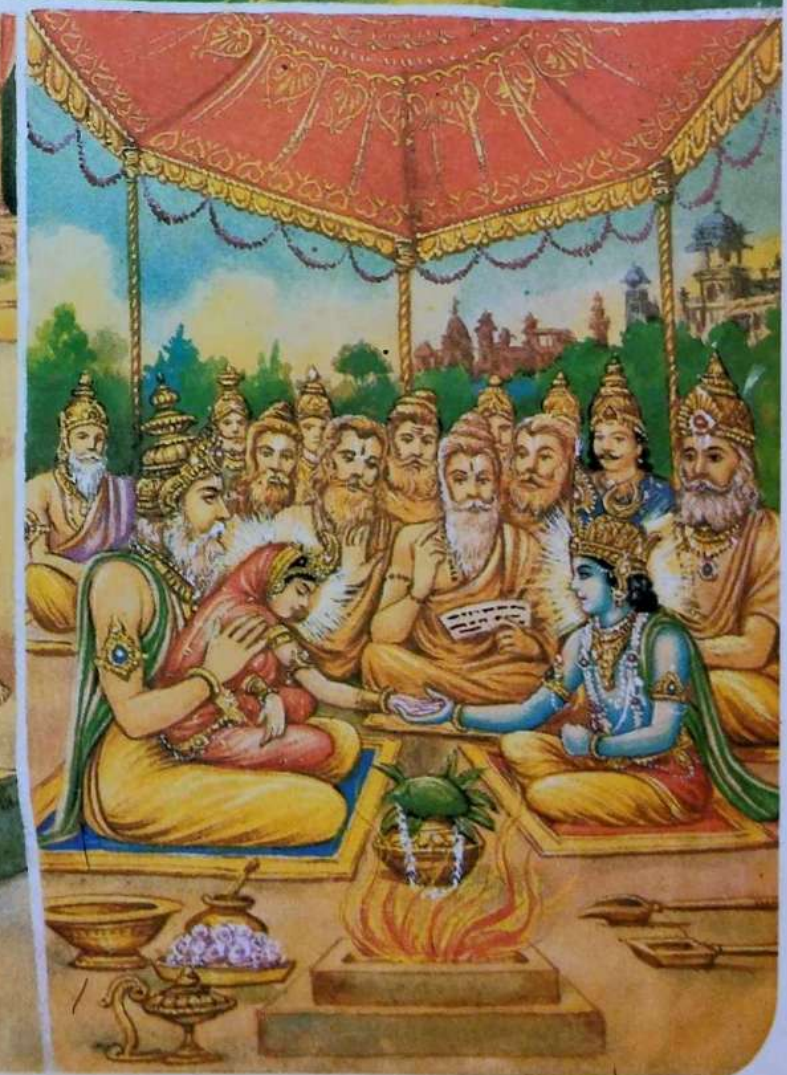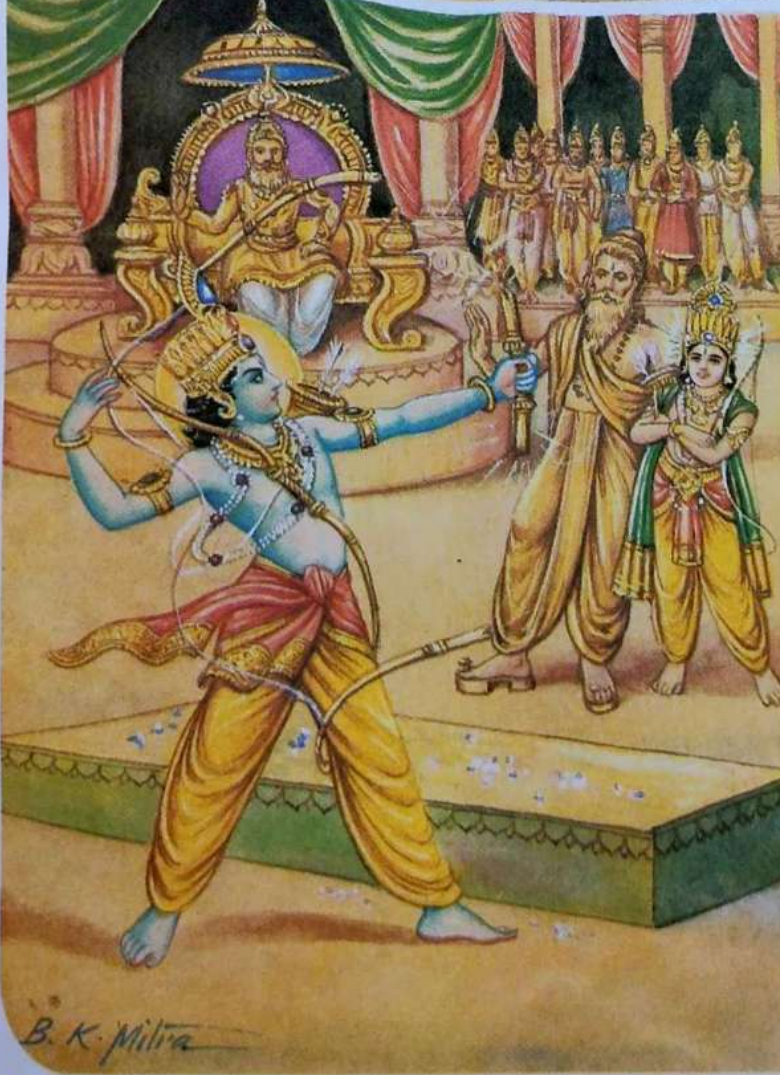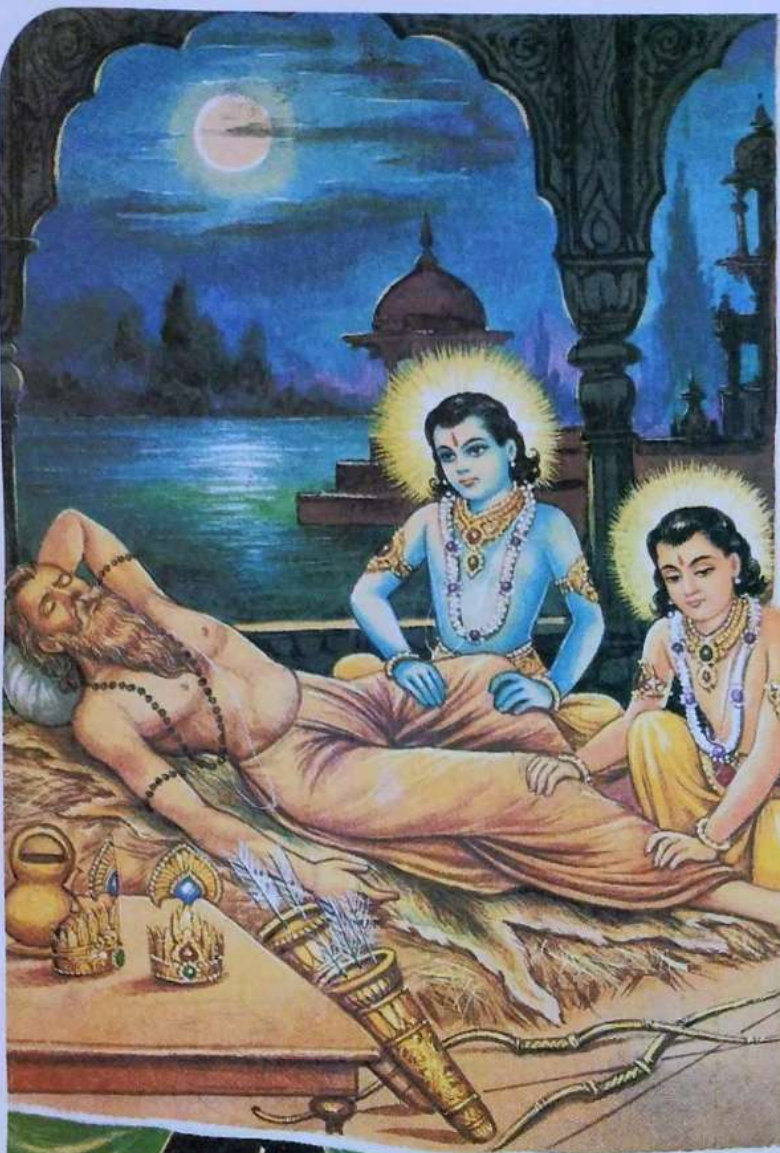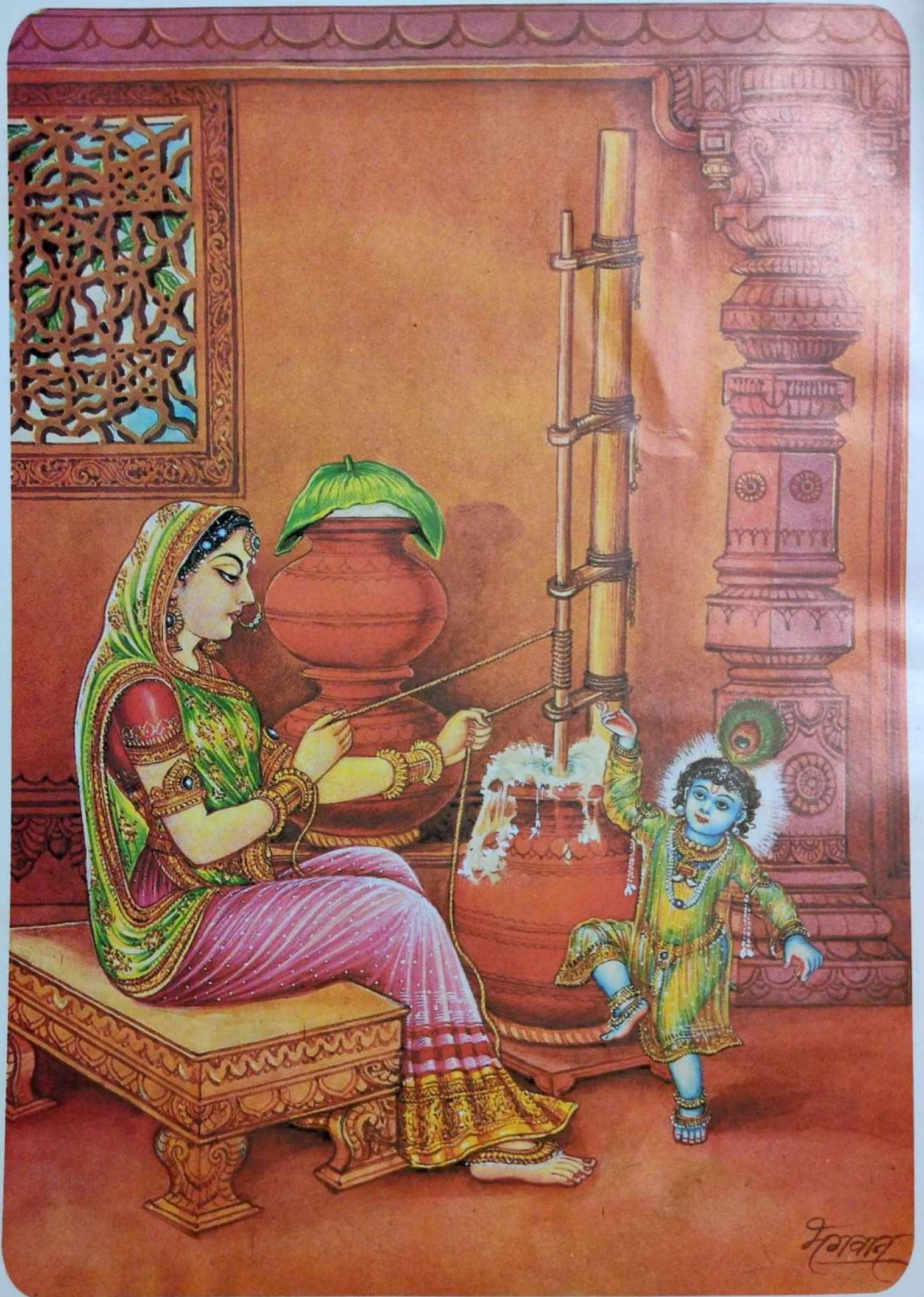
नवनीतप्रियका नृत्य-उपक्रम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ | गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०५४, श्रीकृष्ण-सं० ५२२३, जनवरी १९९८ ई० | संख्या १ | पूर्ण संख्या ८५४

नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै

जसुमति दधि मथन करति, बैठी बर धाम अजिर,
ठाढ़े हरि हँसत नान्ह दँतियनि छबि छाजै।
चितवत चित लै चुराइ, सोभा बरनी न जाइ,
मनु मुनि-मन-हरन-काज मोहिनी दल साजै॥
जननि कहत नाचौ तुम, दैहौं नवनीत मोहन,
रुनुक-झुनुक चलत पाइ, नूपुर-धुनि बाजै।
गावत गुन सूरदास, बढ्यो जस भुव-अकास,
नाचत त्रैलोकनाथ माखन के काजै॥

मङ्गलाचरण

वैदिक स्तवन

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

हे परमात्मन्! आप हम गुरु-शिष्य दोनोंकी साथ-साथ सब प्रकारसे रक्षा करें, हम दोनोंका आप साथ-साथ समुचितरूपसे पालन-पोषण करें, हम दोनों साथ-ही-साथ सब प्रकारसे बल प्राप्त करें, हम दोनोंकी अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो—कहीं किसीसे हम विद्यामें परास्त न हों और हम दोनों जीवनभर परस्पर स्नेह-सूत्रसे बँधे रहें, हमारे अंदर परस्पर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन्! तीनों तापोंकी निवृत्ति हो।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

जो परमात्मा सदा सबके अन्तरात्मारूपसे स्थित हैं, जो अद्वितीय और सर्वथा स्वतन्त्र हैं, सम्पूर्ण जगत्में देव-मनुष्यादि सभीको सदा अपने वशमें रखते हैं, वे ही सर्वशक्तिमान् सर्वभवनसमर्थ परमेश्वर अपने एक ही रूपको अपनी लीलासे बहुत प्रकारका बना लेते हैं। उन परमात्माको जो ज्ञानी महापुरुष निरन्तर अपने अंदर स्थित देखते हैं, उन्हींको सदा स्थिर रहनेवाला—सनातन परमानन्द मिलता है, दूसरोंको नहीं।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥

जो रूप-रंग आदिसे रहित होकर भी, छिपे हुए प्रयोजनवाला होनेके कारण, विविध शक्तियोंके सम्बन्धसे, सृष्टिके आदिमें, अनेक रूप-रंग धारण कर लेता है तथा अन्तमें यह सम्पूर्ण विश्व [जिसमें] विलीन भी हो जाता है, वह परमात्मा अद्वितीय है, वह हम लोगोंको शुभ बुद्धिसे संयुक्त करे।

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥

हे देवगण! हम अपने कानोंसे शुभ—कल्याणकारी वचन ही सुनें। निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी-दूसरी पापकी बातें हमारे कानोंमें न पड़ें और हमारा अपना जीवन यजन-परायण हो—हम सदा भगवान्की आराधनामें ही लगे रहें। न केवल कानोंसे सुनें, नेत्रोंसे भी हम सदा कल्याणका ही दर्शन करें। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतनकी ओर ले जानेवाले दृश्योंकी ओर हमारी दृष्टिका आकर्षण कभी न हो। हमारा शरीर, हमारा एक-एक अवयव सुदृढ़ एवं सुपुष्ट हो—वह भी इसलिये कि हम उनके द्वारा भगवान्का स्तवन करते रहें। हमारी आयु भोग-विलास या प्रमादमें न बीते। हमें ऐसी आयु मिले जो भगवान्के कार्यमें आ सके। [देवता हमारी प्रत्येक इन्द्रियमें व्याप्त रहकर उसका संरक्षण और संचालन करते हैं। उनके अनुकूल रहनेसे हमारी इन्द्रियाँ सुगमतापूर्वक सन्मार्गमें लगी रह सकती हैं, अतः उनसे प्रार्थना करना उचित ही है।] जिनका सुयश सब ओर फैला है, वे देवराज इन्द्र, सर्वज्ञ पूषा, अरिष्ट-निवारक तार्क्ष्य (गरुड) और बुद्धिके स्वामी बृहस्पति—ये सभी देवता भगवान्की दिव्य विभूतियाँ हैं। ये सदा हमारे कल्याणका पोषण करें। इनकी कृपासे हमारे साथ प्राणिमात्रका कल्याण होता रहे। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—सभी प्रकारके तापोंकी शान्ति हो।

कुर्वन्तु वो मङ्गलम्

[समस्त देवतागण आपका मङ्गल करें]

श्रीमत्पङ्कजविष्टरो हरिहरौ वायुर्महेन्द्रोऽनलश्चन्द्रो भास्करवित्तपालवरुणाः प्रेताधिपाद्या ग्रहाः।
प्रद्युम्नो नलकूबरौ सुरगजश्चिन्तामणिः कौस्तुभः स्वामी शक्तिधरश्च लाङ्गलधरः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गौरी श्रीः कुलदेवता च सुभगा भूमिः प्रपूर्णा शुभा सावित्री च सरस्वती च सुरभिः सत्यव्रतारुन्धती।
स्वाहा जाम्बवती च रुक्मभगिनी दुःस्वप्नविध्वंसिनी वेलाश्चाम्बुनिधेः समीनमकराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
गङ्गा सिन्धुसरस्वती च यमुना गोदावरी नर्मदा कावेरी सरयूर्महेन्द्रतनयाश्चर्मण्वती देविका।
क्षिप्रा वेत्रवती महासुरनदी ख्याता गया गण्डकी पुण्याः पुण्यजलैः समुद्रसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
लक्ष्मीः कौस्तुभपारिजातकसुरा धन्वन्तरिश्चन्द्रमा धेनुः कामदुघा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शङ्खोऽमृतं चाम्बुधेः रत्नानीति चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥
ब्रह्मा वेदपतिः शिवः पशुपतिः सूर्यो ग्रहाणां पतिः शक्रो देवपतिर्हविर्हुतपतिः स्कन्दश्च सेनापतिः।
विष्णुर्यज्ञपतिर्यमः पितृपतिः शक्तिः पतीनां पतिः सर्वे ते पतयः सुमेरुसहिताः कुर्वन्तु वो मङ्गलम्॥

सर्वैश्वर्यसम्पन्न ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव, वायुदेव, देवराज इन्द्र तथा अग्निदेवता, चन्द्रदेवता, भगवान् सूर्य, धनाध्यक्ष कुबेर, वरुण और संयमनीपुरीके स्वामी यमराज, सभी ग्रह, श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न, नल और कूबर, ऐरावत गज, चिन्तामणि रत्न, कौस्तुभमणि, शक्तिको धारण करनेवाले स्वामी कार्तिकेय तथा हलायुध बलराम—ये सब आप लोगोंका मङ्गल करें। भगवती गौरी (पार्वती), भगवती लक्ष्मी, अपने कुलदेवता, सौभाग्ययुक्त स्त्री, सभी धन-धान्योंसे सम्पन्न पृथ्वीदेवी, ब्रह्माकी पत्नी सावित्री और सरस्वती, कामधेनु, सत्य एवं पातिव्रत्यको धारण करनेवाली वसिष्ठपत्नी अरुन्धती, अग्निपत्नी स्वाहादेवी, कृष्णपत्नी जाम्बवती, रुक्मभगिनी रुक्मिणीदेवी तथा दुःस्वप्ननाशिनी देवी, मीन और मकरोंसे संयुक्त समुद्र एवं उनकी वेलाएँ—ये सब आप लोगोंका मङ्गल करें। भागीरथी गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी, सरयू तथा महेन्द्र पर्वतसे निःसृत समस्त नदियाँ, चर्मण्वती, देविका नामसे प्रसिद्ध देवनदी, क्षिप्रा, वेत्रवती (बेतवा), महानदी, गयाकी फल्गुनदी, गण्डकी या नारायणी—ये सब पुण्य जलवाली पवित्र नदियाँ अपने स्वामी समुद्रके साथ आप लोगोंका मङ्गल करें। भगवती लक्ष्मी, कौस्तुभमणि, पारिजात नामका कल्पवृक्ष, वारुणीदेवी, वैद्यराज धन्वन्तरि, चन्द्रमा, कामधेनु गौ, देवराज इन्द्रका ऐरावत हस्ती, रम्भा आदि सभी अप्सराएँ, सात मुखवाला उच्चैःश्रवा नामक अश्व, कालकूट विष, भगवान् विष्णुका शार्ङ्गधनुष, पाञ्चजन्य शंख तथा अमृत—ये समुद्रसे उत्पन्न चौदह रत्न आप लोगोंका प्रतिदिन मङ्गल करें। वेदोंके स्वामी ब्रह्मा, पशुपति भगवान् शंकर, ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्य, देवताओंके स्वामी इन्द्र, हव्य पदार्थोंमें श्रेष्ठ हविर्द्रव्य—पुरोडाश, देव-सेनापति भगवान् कार्तिकेय, यज्ञोंके स्वामी भगवान् विष्णु, पितरोंके पति धर्मराज और सभी स्वामियोंकी स्वामिनी शक्तिस्वरूपा भगवती महालक्ष्मी—ये सभी स्वामिगण पर्वतराज सुमेरुगिरिसहित आप लोगोंका मङ्गल करें।

कृपाललितवीक्षणं स्मितमनोज्ञवक्त्राम्बुजं शशाङ्ककलयोज्ज्वलं शमितघोरतापत्रयम्।
करोतु किमपि स्फुरत्परमसौख्यसच्चिद्वपुर्धराधरसुताभुजोद्वलयितं महो मङ्गलम्॥

जिसकी कृपापूर्ण चितवन बड़ी ही सुन्दर है, जिसका मुखारविन्द मन्द मुसकानकी छटासे अत्यन्त मनोहर दिखायी देता है, जो चन्द्रमाकी कलासे परम उज्ज्वल है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंको शान्त कर देनेमें समर्थ है, जिसका स्वरूप सच्चिन्मय एवं परमानन्दरूपसे प्रकाशित होता है तथा जो गिरिराजनन्दिनी पार्वतीके भुजपाशसे आवेष्टित है, वह शिव नामक कोई अनिर्वचनीय तेजःपुञ्ज सबका मङ्गल करे।

पञ्चदेव-स्तुति

विष्णु

उद्यत्कोटिदिवाकराभमनिशं शङ्खं गदां पङ्कजं चक्रं बिभ्रतमिन्दिरावसुमतीसंशोभिपार्श्वद्वयम्।
कोटीराङ्गदहारकुण्डलधरं पीताम्बरं कौस्तुभैर्दीप्तं विश्वधरं स्ववक्षसि लसच्छ्रीवत्सचिह्नं भजे॥

उदीयमान करोड़ों सूर्यके समान प्रभातुल्य, अपने चारों हाथोंमें शंख, गदा, पद्म तथा चक्र धारण किये हुए एवं दोनों भागोंमें भगवती लक्ष्मी और पृथ्वीदेवीसे सुशोभित, किरीट-मुकुट, केयूर, हार और कुण्डलोंसे समलंकृत, कौस्तुभमणि तथा पीताम्बरसे देदीप्यमान विग्रहयुक्त एवं वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न धारण किये हुए भगवान् विष्णुका मैं निरन्तर स्मरण-ध्यान करता हूँ।

शिव

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्वबीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

चाँदीके पर्वतके समान जिनकी श्वेत कान्ति है, जो सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं, रत्नमय अलंकारोंसे जिनका शरीर उज्ज्वल है, जिनके हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभयमुद्रा है, जो प्रसन्न हैं, पद्मके आसनपर विराजमान हैं, देवतागण जिनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, जो बाघकी खाल पहनते हैं, जो विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं, जिनके पाँच मुख और तीन नेत्र हैं, उन महेश्वरका प्रतिदिन ध्यान करना चाहिये।

गणेश

खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कामदम्॥

जो नाटे और मोटे शरीरवाले हैं, जिनका गजराजके समान मुख और लंबा उदर है, जो सुन्दर हैं तथा बहते हुए मदकी सुगन्धके लोभी भौंरोंके चाटनेसे जिनका गण्डस्थल चपल हो रहा है, दाँतोंकी चोटसे विदीर्ण हुए शत्रुओंके खूनसे जो सिन्दूरकी-सी शोभा धारण करते हैं, कामनाओंके दाता और सिद्धि देनेवाले उन पार्वतीके पुत्र गणेशजीकी मैं वन्दना करता हूँ।

सूर्य

रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जैर्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम्॥

लाल कमलके आसनपर समासीन, सम्पूर्ण गुणोंके रत्नाकर, अपने दोनों हाथोंमें कमल और अभयमुद्रा धारण किये हुए, पद्मराग तथा मुक्ताफलके समान सुशोभित शरीरवाले, अखिल जगत्के स्वामी तीन नेत्रोंसे युक्त भगवान् सूर्यका मैं ध्यान करता हूँ।

दुर्गा

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शंख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कङ्कण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

दशावताररूप जगदीश्वरकी जय हो!

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम् । विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥ १ ॥
क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे । धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे॥ २ ॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना । शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥ ३ ॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम् । दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥ ४ ॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन। पदनखनीरजनितजनपावन ॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे॥ ५ ॥
क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम् । स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे॥ ६ ॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम् । दशमुखमौलिबलिं रमणीयम्॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे॥ ७ ॥
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम् । हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम् ॥
केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे॥ ८ ॥
निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम् । सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥ ९ ॥
म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्। धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे॥१०॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् । शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे॥११॥

हे मत्स्यरूपधारी केशव! हे जगदीश्वर! हे हरे! प्रलयकालके बढ़े हुए समुद्रजलमें बिना क्लेश नौका चलानेकी लीला करते हुए आपने वेदोंकी रक्षा की थी, आपकी जय हो॥ १॥ हे केशव! पृथ्वीको धारण करनेके कारण पड़े हुए घट्ठोंसे कठोर और अत्यन्त विशाल आपकी पीठपर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूपधारी जगत्पति आप हरिकी जय हो॥ २॥ चन्द्रमामें स्थित कलङ्करेखाके समान यह पृथ्वी आपके दाँतकी नोकपर अटकी हुई सुशोभित हो रही है, ऐसे शूकररूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ३॥ हिरण्यकशिपुरूपी तुच्छ भृङ्गको चीर डालनेवाले विचित्र नुकीले नख आपके करकमलमें हैं, ऐसे नृसिंहरूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ४॥ हे आश्चर्यमय वामनरूपधारी केशव! आपने पैर बढ़ाकर राजा बलिको छला तथा अपने चरण-नखोंके जलसे लोगोंको पवित्र किया, ऐसे आप जगत्पति हरिकी जय हो॥ ५॥ हे केशव! आप जगत्के लोगोंको क्षत्रियोंके रुधिररूप जलसे स्नान कराकर उनके ताप और पापोंका नाश करते हैं, ऐसे आप परशुरामरूपधारी जगत्पति हरिकी जय हो॥ ६॥ जो युद्धमें सब दिशाओंमें लोकपालोंके लिये लोभनीय रावणके सिरोंकी सुन्दर बलि देते हैं, ऐसे श्रीरामावतारधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ७॥ जो अपने गौर-शरीरमें हलकी चोटके भयसे आकर मिली हुई यमुना और मेघके सदृश नीलाम्बर धारण किये रहते हैं, ऐसे आप बलरामरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ८॥ सदय हृदयके कारण पशुहत्याकी कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधानसम्बन्धी श्रुतियोंकी निन्दा करनेवाले आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ९॥ जो म्लेच्छ-समूहका नाश करनेके लिये धूमकेतुके समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ १०॥ जयदेव कविकी कही हुई इस मनोहर, आनन्ददायक, कल्याणजनक, संसारमें साररूपा स्तुतिको सुनो; हे दशावतारधारी जगत्पति हरि! आपकी जय हो॥ ११॥
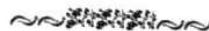
नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय

नीलप्रवालरुचिरं विलसत्त्रिनेत्रं पाशारुणोत्पलकपालत्रिशूलहस्तम्।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्तभूषं बालेन्दुबद्धमुकुटं प्रणमामि रूपम्॥

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लाल वर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं, उनके वामभागके हाथोंमें पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथोंमें त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शङ्करके सम्मिलित स्वरूपको जिनके अङ्गोंमें अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बाल-चन्द्रमा तथा मुकुट विराजित हैं, मैं उस रूपको प्रणाम करता हूँ।

नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे। नमः क्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः॥
नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च। वेदकर्मावदातानां द्रव्याणां प्रभवे नमः॥
विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः। नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः॥
अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः। कीर्तितं तव माहात्म्यमपारं परमात्मनः॥
शिवो नो भव सर्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते॥

[ब्रह्मा और विष्णु स्तुति करते हुए बोले—] भगवन्! आप सुव्रत और अनन्त तेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप क्षेत्राधिपति तथा विश्वके बीज-स्वरूप और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम सभी भूतोंके उत्पत्ति-स्थान और वेदोक्त सभी श्रेष्ठ यज्ञ आदि कर्मोंको सम्पन्न करानेवाले, समस्त द्रव्योंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप विद्याके आदि कारण और स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतों एवं मन्त्रोंके स्वामी हैं, आपको नमस्कार है। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्तिसे जैसा हमने आपको समझा, वैसा ही आपके अपार माहात्म्यका यशोगान किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याणकारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् अज्ञेय और अगम्य हैं, आपको नमस्कार है।

शीतांशुशुभ्रकलया कलितोत्तमाङ्गं ध्यानस्थितं धरणिभृत्तनयार्चितं तम्।
कालानलोपमहलाहलकृष्णकण्ठं श्रीशङ्करं कलिमलापहरं नमामि॥

चारु चन्द्रमाकी शुभ्रकलासे आपका शिरोभाग शोभित है। पर्वतराज हिमालयकी कन्या पार्वतीजी स्वयं ही आपकी पूजा-अर्चा करती हैं। संसारको दग्ध हो जानेसे बचानेके लिये, कालानलके समान महाभीषण हलाहल पी जानेसे आपका कण्ठ काला हो गया। इस कलिकालका मल अपहरण करनेमें आप अपना सानी नहीं रखते। ऐसे ध्यानावस्थित आप शङ्करको मेरा प्रणाम है।

त्रैलोक्यमेतदखिलं ससुरासुरं च भस्मीभवेद् यदि न यो दययार्द्रदेहः।
पीत्वाऽहरद्गरलमाशु भयं तदुत्थं विश्वावनैकनिरताय नमोऽस्तु तस्मै॥

आप बड़े ही दयालु हैं। आपकी दया सीमारहित है। उसका प्रमाण लीजिये। समुद्र-मन्थनसे हलाहल निकलनेपर उसकी आग असह्य हो गयी। उस समय और किसीसे कुछ भी करते-धरते न बना। जब आपने देखा कि सुरासुरोंसे पूर्ण त्रैलोक्यका नाश होना ही चाहता है, तब उस कालकूटका पान स्वयं ही करके तीनों लोकोंको जल जानेसे बचा लिया। संसारकी रक्षाका इतना खयाल रखनेवाले आपके पादपद्मोंपर मैं अपना सिर रखता हूँ।

नो शक्यमुग्रतपसापि युगान्तरेण प्राप्तुं यदन्यसुरपुङ्गवतस्तदेव।
भक्त्या सकृत्प्रणमनेन सदा ददाति यो नौमि नम्रशिरसा च तमाशुतोषम्॥

युग-युगान्तपर्यन्त तपस्या करनेपर भी जो फलप्राप्ति भक्तोंको अन्य सुरपुङ्गवोंसे भी नहीं हो सकती, वही आपको भक्ति-भावपूर्वक प्रणाममात्र करनेसे आपके सच्चे भक्तोंको सुलभ हो जाती है। बात यह है कि आप आशुतोष हैं—थोड़ी ही सेवासे प्रसन्न हो जाते हैं। मैं आपके सामने अपना सिर झुकाता हूँ।

गायन्ति यस्य चरितानि महाद्भुतानि पद्मोद्भवोद्भवमुखाः सततं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति यं यमिनमिन्दुकलावतंसं सन्तः समाधिनिरतास्तमहं नमामि॥

आपके अत्यन्त अद्भुत चरितोंका गान कोई ऐसे-वैसे नहीं, नारदादि बड़े-बड़े महामुनि तक किया करते हैं। साधु-शिरोमणि योगीश्वर भी समाधि लगाकर आपहीका ध्यान करते रहते हैं। ऐसे आप चन्द्रशेखरको मेरा पुनरपि प्रणाम।

भूतिप्रियोऽपि वितरत्यनिशं विभूतिं भक्ताय यः फणिगणानपि धारयन् सन्।
हस्ते प्रचण्डभवभीमभुजङ्गभीतिं तस्मै नमोऽस्तु सततं मम शङ्कराय॥

आपकी महिमा अपरम्पार है। वह साधारण जनोंकी समझमें आ ही नहीं सकती। देखिये न, इधर तो आप स्वयं ही विभूति-प्रिय (विभूति-भस्म) हैं, उधर वही अपनी प्यारी वस्तु विभूति अपने भक्तोंको रोज ही लुटाया करते हैं और देखिये, स्वयं तो आप महाभयंकर नागोंके कंठे और मालाएँ आदि धारण करते हैं, उधर आप ही जन्म-मरणरूपी भीम भुजङ्गके भयसे अपने सेवकोंकी रक्षा करते हैं। परम कारुणिक और कल्याणकर्ता आपको मेरा नमस्कार है।

प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते

नमामि देवं नरनाथमच्युतं नारायणं लोकगुरुं सनातनम्।
अनादिमव्यक्तमचिन्त्यमव्ययं वेदान्तवेद्यं पुरुषोत्तमं हरिम्॥
आनन्दरूपं परमं परात्परं चिदात्मकं ज्ञानवतां परां गतिम्।
सर्वात्मकं सर्वगतैकरूपं ध्येयस्वरूपं प्रणमामि माधवम्॥

मैं सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् अच्युतको, सनातन लोकगुरु भगवान् नारायणको नमस्कार करता हूँ। जो अनादि, अव्यक्त, अचिन्त्य और अविनाशी हैं, उन वेदान्तवेद्य पुरुषोत्तम श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो परमानन्दस्वरूप, परात्पर, ज्ञानमय एवं ज्ञानियोंके परम आश्रय हैं तथा जो सर्वमय, सर्वव्यापक, अद्वितीय और सबके ध्येयरूप हैं, उन भगवान् लक्ष्मीपतिको मैं प्रणाम करता हूँ।

भक्तप्रियं कान्तमतीव निर्मलं सुराधिपं सूरिजनैरभिष्टुतम्।
चतुर्भुजं नीरजवर्णमीश्वरं रथाङ्गपाणिं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥
गदासिशङ्खाब्जकरं श्रियः पतिं सदाशिवं शार्ङ्गधरं रविप्रभम्।
पीताम्बरं हारविराजितोदरं नमामि विष्णुं सततं किरीटिनम्॥

जो भक्तोंके प्रेमी, अत्यन्त कमनीय और दोषोंसे रहित हैं, जो समस्त देवताओंके स्वामी हैं, विद्वान् पुरुष जिनकी स्तुति करते हैं, जिनकी चार भुजाएँ हैं, नील-कमलके समान जिनकी श्यामल कान्ति है, जो हाथमें चक्र धारण किये रहते हैं, उन परमेश्वर केशवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके हाथोंमें गदा, तलवार, शंख और कमल सुशोभित हैं, जो लक्ष्मीजीके पति हैं, सदा ही कल्याण करनेवाले हैं, जो शार्ङ्गधनुष धारण किये रहते हैं, जिनकी सूर्यके समान कान्ति है, जो पीत वस्त्र धारण किये रहते हैं, जिनका उदरभाग हारसे विभूषित है तथा जिनके मस्तकपर मुकुट शोभा पा रहा है, उन भगवान् विष्णुको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

गण्डस्थलासक्तसुरक्तकुण्डलं सुदीपिताशेषदिशं निजत्विषा।
गन्धर्वसिद्धैरुपगीतमृग्ध्वनिं जनार्दनं भूतपतिं नमामि तम्॥
हत्वासुरान् पाति युगे युगे सुरान् स्वधर्मसंस्थान् भुवि संस्थितो हरिः।
करोति सृष्टिं जगतः क्षयं यस्तं वासुदेवं प्रणतोऽस्मि केशवम्॥

जिनके कपोलोंपर सुन्दर रक्तवर्ण कुण्डल शोभा पा रहे हैं, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित

कर रहे हैं, गन्धर्व और सिद्धगण जिनका सुयश गाते रहते हैं तथा जिनका वैदिक ऋचाओंद्वारा यशोगान किया जाता है, उन भूतनाथ भगवान् जनार्दनको मैं प्रणाम करता हूँ। जो भगवान् प्रत्येक युगमें पृथ्वीपर अवतार ले देवद्रोही दानवोंका वध करके अपने धर्ममें स्थित देवताओंकी रक्षा करते हैं तथा जो इस जगत्की सृष्टि एवं संहार करते हैं, उन सर्वान्तर्यामी भगवान् केशवको मैं प्रणाम करता हूँ।

यो मत्स्यरूपेण रसातलस्थितान् वेदान् समाहृत्य मम प्रदत्तवान्।
निहत्य युद्धे मधुकैटभावुभौ तं वेदवेद्यं प्रणतोऽस्म्यहं सदा॥
देवासुरैः क्षीरसमुद्रमध्यतो न्यस्तो गिरिर्येन धृतः पुरा महान्।
हिताय कौर्मं वपुरास्थितो यस्तं विष्णुमाद्यं प्रणतोऽस्मि भास्करम्॥

जिन्होंने युद्धमें मधु और कैटभ—इन दोनों दैत्योंको मारा तथा मत्स्य-रूप धारण करके रसातलमें पहुँचे हुए वेदोंको लाकर मुझे दिया था, उन वेदवेद्य परमेश्वरको मैं सदा ही प्रणाम करता हूँ। पूर्वकालमें जिन्होंने देवता और असुरोंद्वारा क्षीरसमुद्रमें डाले हुए महान् मन्दराचलको सबका हित करनेके लिये कूर्मरूपसे पीठपर धारण किया था, उन प्रकाश देनेवाले आदिदेव भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ।

हत्वा हिरण्याक्षमतीव दर्पितं वराहरूपी भगवान् सनातनः।
यो भूमिमेतां सकलां समुद्धरंस्तं वेदमूर्तिं प्रणमामि सूकरम्॥
कृत्वा नृसिंहवपुरात्मनः परं हिताय लोकस्य सनातनो हरिः।
जघान यस्तीक्ष्णनखैर्दितेः सुतं तं नारसिंहं पुरुषं नमामि॥

जिन सनातन भगवान्ने वराहरूप धारण करके इस सम्पूर्ण वसुन्धराका जलसे उद्धार किया और उसी समय अत्यन्त अभिमानी दैत्य हिरण्याक्षको मार गिराया था, उन वेदमूर्ति सूकररूपधारी भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन सनातन भगवान् श्रीहरिने त्रिलोकीका हित करनेके लिये श्रेष्ठ नृसिंहरूप धारण करके अपने तीखे नखोंद्वारा दितिनन्दन हिरण्यकशिपुका वध किया था, उन परम पुरुष भगवान् नरसिंहको मैं प्रणाम करता हूँ।

यो वामनोऽसौ भगवाञ्जनार्दनो बलिं बबन्ध त्रिभिरूर्जितैः पदैः।
जगत्त्रयं क्रम्य ददौ पुरंदरे तं देवमाद्यं प्रणतोऽस्मि वामनम्॥
यः कार्तवीर्यं निजघान रोषात् त्रिःसप्तकृत्वः क्षितिपात्मजानपि।
तं जामदग्न्यं क्षितिभारनाशकं नतोऽस्मि विष्णुं पुरुषोत्तमं सदा॥

जिन वामनरूपधारी भगवान् जनार्दनने बलिको बाँधा था और अपने बढ़े हुए तीन पगोंसे त्रिभुवनको नापकर उसे इन्द्रको दे दिया था, उन आदिदेव वामनको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने कोपवश राजा कार्तवीर्यको मार डाला तथा इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया, पृथ्वीका भार दूर करनेवाले परशुरामरूपधारी उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुको मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

सेतुं महान्तं जलधौ बबन्ध यः सम्प्राप्य लङ्कां सगणं दशाननम्।
जघान भूत्यै जगतां सनातनं तं रामदेवं सततं नतोऽस्मि॥
यथा तु वाराहनृसिंहरूपैः कृतं त्वया देवहितं सुराणाम्।
तथाद्य भूमेः कुरु भारहानिं प्रसीद विष्णो भगवन् नमस्ते॥

जिन्होंने समुद्रपर बहुत बड़ा पुल बाँधा और लंकामें पहुँचकर त्रिलोकीके कल्याणके लिये रावणको उसके गणोंसहित मार डाला था, उन सनातनदेव भगवान् श्रीरामको मैं सदा प्रणाम करता हूँ। भगवन्! विष्णो! जिस प्रकार [पूर्वकालमें] वराह-नृसिंह आदि रूपोंसे आपने देवताओंका हित किया है, उसी प्रकार आज भी प्रसन्न होकर पृथ्वीका भार दूर करें। देव! आपको सादर नमस्कार है।

जन्म कर्म च मे दिव्यम्

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान् पिता नः।
विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये॥
गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम्।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्॥
संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम्।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे॥
देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभिः।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः॥
निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः॥
भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते॥
एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः।
भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज॥

(श्रीमद्भा० ११। ४। १७—२३)

भगवान् विष्णुने अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहते हुए भी सम्पूर्ण जगत्के कल्याणके लिये बहुत-से कलावतार ग्रहण किये हैं। विदेहराज! हंस, दत्तात्रेय, सनक-सनन्दन-सनातन-सनत्कुमार और हमारे पिता ऋषभके रूपमें अवतीर्ण होकर उन्होंने आत्मसाक्षात्कारके साधनोंका उपदेश किया है। उन्होंने ही हयग्रीव-अवतार लेकर मधु-कैटभ नामक असुरोंका संहार करके उन लोगोंके द्वारा चुराये हुए वेदोंका उद्धार किया है। प्रलयके समय मत्स्यावतार लेकर उन्होंने भावी मनु सत्यव्रत, पृथ्वी और ओषधियोंकी—धान्यादिकी रक्षा की और वराहावतार ग्रहण करके पृथ्वीका रसातलसे उद्धार करते समय हिरण्याक्षका संहार किया। कूर्मावतार ग्रहण करके उन्हीं भगवान्ने अमृत-मन्थनका कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया और उन्हीं भगवान् विष्णुने अपने शरणागत एवं आर्त भक्त गजेन्द्रको ग्राहसे छुड़ाया। एक बार बालखिल्य ऋषि तपस्या करते-करते अत्यन्त दुबले हो गये थे। वे जब कश्यप ऋषिके लिये समिधा ला रहे थे, तो थककर गायके खुरसे बने हुए गड्ढेमें गिर पड़े, मानो समुद्रमें गिर गये हों। उन्होंने जब स्तुति की, तब भगवान्ने अवतार लेकर उनका उद्धार किया। वृत्रासुरको मारनेके कारण जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी और वे उसके भयसे भागकर छिप गये, तब भगवान्ने उस हत्यासे इन्द्रकी रक्षा की; और जब असुरोंने अनाथ देवाङ्गनाओंको बंदी बना लिया, तब भी भगवान्ने ही उन्हें असुरोंके चंगुलसे छुड़ाया। जब हिरण्यकशिपुके कारण प्रह्लाद आदि संत पुरुषोंको भय पहुँचने लगा, तब उनको निर्भय करनेके लिये भगवान्ने नृसिंहावतार ग्रहण किया और हिरण्यकशिपुको मार डाला। उन्होंने देवताओंकी रक्षाके लिये देवासुरसंग्राममें दैत्यपतियोंका वध किया और विभिन्न मन्वन्तरोंमें अपनी शक्तिसे अनेकों कलावतार धारण करके त्रिभुवनकी रक्षा की। फिर वामन-अवतार ग्रहण करके उन्होंने याचनाके बहाने इस पृथ्वीको दैत्यराज बलिसे छीन लिया और अदितिनन्दन देवताओंको दे दिया। परशुराम-अवतार ग्रहण करके उन्होंने ही पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन किया। परशुरामजी तो हैहयवंशका प्रलय करनेके लिये मानो भृगुवंशमें अग्निरूपसे ही अवतीर्ण हुए थे। उन्हीं भगवान्ने रामावतारमें समुद्रपर पुल बाँधा एवं रावण और उसकी राजधानी लंकाको मटियामेट कर दिया। उनकी कीर्ति समस्त लोकोंके मलको नष्ट करनेवाली है। सीतापति भगवान् राम सदा-सर्वदा-सर्वत्र विजयी-ही-विजयी हैं। राजन्! अजन्मा होनेपर भी पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वे ही भगवान् यदुवंशमें जन्म लेंगे और ऐसे-ऐसे कर्म करेंगे, जिन्हें बड़े-बड़े देवता भी नहीं कर सकते। फिर आगे चलकर भगवान् ही बुद्धके रूपमें प्रकट होंगे और यज्ञके अनधिकारियोंको यज्ञ करते देखकर अनेक प्रकारके तर्क-वितर्कोंसे मोहित कर लेंगे तथा कलियुगके अन्तमें कल्कि-अवतार लेकर वे ही शूद्र राजाओंका वध करेंगे। महाबाहु विदेहराज! भगवान्की कीर्ति अनन्त है। महात्माओंने जगत्पति भगवान्के ऐसे-ऐसे अनेकों जन्म और कर्मोंका प्रचुरतासे गान भी किया है।

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः । देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्॥
येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः । तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्॥

कितने ही बुद्धिमान् लोग तो कहते हैं कि इस जगत्का कारण स्वभाव है। अर्थात् पदार्थोंमें जो स्वाभाविक शक्ति है—जैसे अग्निमें प्रकाशन-शक्ति और दाह-शक्ति, वही इस जगत्का कारण है। कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि काल ही जगत्का कारण है; क्योंकि समयपर ही वस्तुगत शक्तिका प्राकट्य होता है, जैसे वृक्षमें फल आदि उत्पन्न करनेकी शक्ति समयपर ही प्रकट होती है। इसी प्रकार स्त्रियोंमें गर्भाधान ऋतुकालमें ही होता है, असमयमें नहीं होता—यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। परंतु अपनेको पण्डित समझनेवाले ये वैज्ञानिक मोहमें पड़े हुए हैं, अतः ये इस जगत्के वास्तविक कारणको नहीं जानते। वास्तवमें तो यह परमदेव सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी ही महिमा है, जगत्की विचित्र रचनाको देखने और उसपर विचार करनेपर उन्हींका महत्त्व प्रकट होता है। वे स्वभाव और काल आदि समस्त कारणोंके अधिपति हैं और उन्हींके द्वारा यह संसार-चक्र घुमाया जाता है। इस रहस्यको समझकर इस चक्रसे छुटकारा पानेके लिये उन्हींकी शरण लेनी चाहिये।

जिन जगन्नियन्ता जगदाधार परमेश्वरसे यह सम्पूर्ण जगत् सदा—सभी अवस्थाओंमें सर्वथा व्याप्त है, जो कालके भी महाकाल हैं—अर्थात् जो कालकी सीमासे परे हैं, जो ज्ञानस्वरूप चिन्मय परमात्मा सुहृदता आदि समस्त दिव्य गुणोंसे नित्य सम्पन्न हैं, समस्त गुण जिनके स्वरूपभूत और चिन्मय हैं, जो समस्त ब्रह्माण्डोंको भली प्रकारसे जानते हैं, उन्हींका चलाया हुआ यह जगत्-चक्र नियमपूर्वक चल रहा है। वे ही पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँचों महाभूतोंपर शासन करते हुए इनको अपना-अपना कार्य करनेकी शक्ति देकर इनसे कार्य करवाते हैं। उनकी शक्तिके बिना ये कुछ भी नहीं कर सकते, यह बात केनोपनिषद्में यक्षके आख्यानद्वारा भलीभाँति समझायी गयी है। इस रहस्यको समझकर मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् परमेश्वरका उपर्युक्तभावसे चिन्तन करना चाहिये।

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम् । एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः॥
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः । तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः॥

परमेश्वरने ही अपनी शक्तिभूता मूलप्रकृतिसे पाँचों स्थूल महाभूत आदिकी रचना-रूप कर्म करके उसका निरीक्षण किया, फिर जड तत्त्वके साथ चेतन तत्त्वका संयोग कराके नाना रूपोंमें अनुभव होनेवाले विचित्र जगत्की रचना की। अथवा इस प्रकार समझना चाहिये कि एक अविद्या, दो पुण्य और पापरूप संचित कर्म-संस्कार, सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण और एक काल तथा मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये आठ प्रकृतिभेद, इन सबसे तथा अहंता, ममता, आसक्ति आदि आत्मसम्बन्धी सूक्ष्म गुणोंसे जीवात्माका सम्बन्ध कराके इस जगत्की रचना की। इन दोनों प्रकारके वर्णनोंका तात्पर्य एक ही है।

जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे व्याप्त अपने वर्ण, आश्रम और परिस्थितिके अनुकूल कर्तव्यकर्मोंका आरम्भ करके उनको और अपने सब प्रकारके अहंता, ममता, आसक्ति आदि भावोंको उस परब्रह्म परमेश्वरमें लगा देता है, उनके समर्पण कर देता है, उस समर्पणसे उन कर्मोंके साथ साधकका सम्बन्ध न रहनेके कारण वे उसे फल नहीं देते। इस प्रकार उनका अभाव हो जानेसे पहले किये हुए संचित कर्म-संस्कारोंका भी सर्वथा नाश हो जाता है। इस प्रकार कर्मोंका नाश हो जानेसे वह तुरंत परमात्माको प्राप्त हो जाता है; क्योंकि यह जीवात्मा वास्तवमें जड-तत्त्वसमुदायसे सर्वथा भिन्न एवं अत्यन्त विलक्षण है। उनके साथ इसका सम्बन्ध अज्ञानजनित अहंता-ममता आदिके कारण ही है, स्वाभाविक नहीं है।

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः । तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्॥
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम॥

वे समस्त जगत्के आदि कारण सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों कालोंसे सर्वथा अतीत हैं। उनमें कालका कोई भेद नहीं है, भूत और भविष्य भी उनकी दृष्टिमें वर्तमान ही हैं। वे [प्रश्नोपनिषद्में बतायी हुई] सोलह कलाओंसे रहित होनेपर भी अर्थात् संसारसे सर्वथा सम्बन्धरहित होते हुए भी प्रकृतिके साथ जीवका संयोग करानेवाले कारणके भी कारण हैं। यह बात इस रहस्यको

जाननेवाले ज्ञानी महापुरुषोंद्वारा देखी गयी है। वे ही एकमात्र स्तुति करने योग्य हैं। उन्हें ढूँढ़नेके लिये कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। वे हमारे हृदयमें ही स्थित हैं। इस बातपर दृढ़ विश्वास करके सब प्रकारके रूप धारण करनेवाले तथा जगत्‌रूपमें प्रकट हुए, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान् परम देव पुराणपुरुष परमेश्वरकी उपासना करके उन्हें प्राप्त करना चाहिये।

जिनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे यह प्रपञ्चरूप संसार निरन्तर घूम रहा है—प्रवाहरूपसे सदा चलता रहता है, वे परमात्मा इस संसार-वृक्ष, काल और आकृति आदिसे सर्वथा अतीत और भिन्न हैं। अर्थात् वे संसारसे सर्वथा सम्बन्धरहित, कालका भी ग्रास कर जानेवाले एवं आकाररहित हैं। तथापि वे धर्मकी वृद्धि एवं पापका नाश करनेवाले, समस्त ऐश्वर्योंके अधिपति और समस्त जगत्‌के आधार हैं। यह सम्पूर्ण विश्व उन्हींके आश्रित है, उन्हींकी सत्तासे टिका हुआ है। अन्तर्यामीरूपसे वे हमारे हृदयमें भी हैं। इस प्रकार उन्हें जानकर ज्ञानयोगी उन अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

वे परब्रह्म पुरुषोत्तम समस्त ईश्वरोंके—लोकपालोंके भी महान् शासक हैं, अर्थात् वे सब भी उन महेश्वरके अधीन रहकर जगत्‌का शासन करते हैं। समस्त देवताओंके भी वे परम आराध्य हैं, समस्त पतियों—रक्षकोंके भी परम पति (रक्षक) हैं तथा समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। उन स्तुति करने योग्य प्रकाशस्वरूप परम देव परमात्माको हम लोग सबसे पर जानते हैं। उनसे पर अर्थात् श्रेष्ठ और कोई नहीं है। वे ही इस जगत्‌के सर्वश्रेष्ठ कारण हैं और वे सर्वरूप होकर भी सबसे सर्वथा पृथक् हैं।

उन परब्रह्म परमात्माके कार्य और करण—शरीर और इन्द्रियाँ नहीं हैं। अर्थात् उनमें देह, इन्द्रिय आदिका भेद नहीं है। [तीसरे अध्यायमें यह बात विस्तारपूर्वक बतायी गयी है कि] वे इन्द्रियोंके बिना ही समस्त इन्द्रियोंका व्यापार करते हैं। उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी दूसरा कोई नहीं दीखता; वास्तवमें उनसे भिन्न कोई है ही नहीं। उन परमेश्वरकी ज्ञान, बल और क्रियारूप स्वरूपभूत दिव्य शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्। स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥
यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद्ब्रह्माप्ययम्॥

जगत्‌में कोई भी उन परमात्माका स्वामी नहीं है। सभी उनके दास और सेवक हैं। उनका शासक—उनपर आज्ञा चलानेवाला भी कोई नहीं है। सब उन्हींकी आज्ञा और प्रेरणाका अनुसरण करते और उनके नियन्त्रणमें रहते हैं। उनका कोई चिह्नविशेष भी नहीं है; क्योंकि वे सर्वत्र परिपूर्ण, निराकार हैं। तथा वे सबके परम कारण—कारणोंके भी कारण और समस्त अन्तःकरण और इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताओंके भी अधिपति—शासक हैं। इन परब्रह्म परमात्माका न तो कोई जनक—अर्थात् इन्हें उत्पन्न करनेवाला पिता है और न कोई इनका अधिपति ही है। ये अजन्मा, सनातन, सर्वथा स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान् हैं।

जिस प्रकार मकड़ी अपनेसे प्रकट किये हुए तन्तुजालसे स्वयं आच्छादित हो जाती है—उसमें अपनेको छिपा लेती है, उसी प्रकार जिन एक देव परमपुरुष परमेश्वरने अपनी स्वरूपभूत मुख्य एवं दिव्य अचिन्त्यशक्तिसे उत्पन्न अनन्त कार्योंद्वारा स्वभावसे ही अपनेको आच्छादित कर रखा है, जिसके कारण संसारी जीव उन्हें देख नहीं पाते, वे सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा हम लोगोंको सबके परम आश्रयभूत अपने परब्रह्मस्वरूपमें स्थापित करें।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥

वे एक ही परमदेव परमेश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयरूप गुहामें छिपे हुए हैं, वे सर्वव्यापी और समस्त प्राणियोंके अन्तर्यामी परमात्मा हैं। वे ही सबके कर्मोंके अधिष्ठाता—उनको कर्मानुसार फल देनेवाले और समस्त प्राणियोंके निवासस्थान—आश्रय हैं, तथा वे ही सबके साक्षी—शुभाशुभ कर्मको देखनेवाले, परम चेतनस्वरूप तथा सबको चेतना प्रदान करनेवाले, सर्वथा विशुद्ध अर्थात् निर्लेप और प्रकृतिके गुणोंसे अतीत हैं।

जो विशुद्ध चेतनस्वरूप परमेश्वरके ही अंश होनेके कारण वास्तवमें कुछ नहीं करते, ऐसे अनन्त जीवात्माओंके जो अकेले ही नियन्ता—कर्मफल देनेवाले हैं, जो एक प्रकृतिरूप बीजको बहुत प्रकारसे रचना करके इस विचित्र जगत्‌के रूपमें बनाते हैं,

उन हृदयस्थित सर्वशक्तिमान् परम सुहृद् परमेश्वरको जो धीर पुरुष निरन्तर देखते रहते हैं, निरन्तर उन्हींमें तन्मय हुए रहते हैं, उन्हींको सदा रहनेवाला परम आनन्द प्राप्त होता है; दूसरोंको, जो इस प्रकार उनका निरन्तर चिन्तन नहीं करते, वह परमानन्द नहीं मिलता—वे उससे वञ्चित रह जाते हैं।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्। तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥

जो नित्य चेतन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्मा अकेले ही बहुत-से नित्य चेतन जीवात्माओंके कर्मफलभोगोंका विधान करते हैं, जिन्होंने इस विचित्र जगत्‌की रचना करके समस्त जीवसमुदायके लिये उनके कर्मानुसार फलभोगकी व्यवस्था कर रखी है, उनको प्राप्त करनेके दो साधन हैं—एक ज्ञानयोग, दूसरा कर्मयोग; भक्ति दोनोंमें ही अनुस्यूत है, इस कारण उसका अलग वर्णन नहीं किया गया। उन ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा प्राप्त किये जाने योग्य सबके कारणरूप परमदेव परमेश्वरको जानकर मनुष्य समस्त बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। जो उन्हें जान लेता है और प्राप्त कर लेता है, वह कभी किसी भी कारणसे जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता। अतः मनुष्यको उन सर्वशक्तिमान् सर्वाधार परमात्माको प्राप्त करनेके लिये अपनी योग्यता और रुचिके अनुसार ज्ञानयोग या कर्मयोग—किसी एक साधनमें तत्परतापूर्वक लग जाना चाहिये। [श्वेताश्वतरोपनिषद्]

भगवल्लीला-कथाका वैशिष्ट्य

को नाम तृप्येद् रसवित् कथायां
महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मु-
र्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः॥

(श्रीमद्भा० १। १८। १४)

ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ होगा, जो महापुरुषोंके एकमात्र जीवन-सर्वस्व श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंसे तृप्त हो जाय? समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्‌के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुणगणोंका पार तो ब्रह्मा, शंकर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्
वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं
प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति॥
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धस-
त्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम्।
मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते
नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥
तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धन-
स्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा
भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम्॥

(श्रीमद्भा० ७। ७। ३४—३६)

जब भगवान्‌के लीलाशरीरोंसे किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको श्रवण करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम-रोम खिल उठता है; आँसुओंके मारे कण्ठ गद्‌गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है; जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है, कभी करुण-क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावसे लोगोंकी वन्दना करने लगता है; जब वह भगवान्‌में ही तन्मय हो जाता है, बार-बार लंबी साँस खींचता है और संकोच छोड़कर 'हरे! जगत्पते!! नारायण!!!' कहकर पुकारने लगता है—तब भक्तियोगके महान् प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मृत्युके बीजोंका खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

स वा इदं विश्वममोघलीलः
सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः
षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः॥
न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
संतन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः॥

स वेद धातुः पदवीं परस्य
दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या
भजेत तत्पादसरोजगन्धम्॥

(श्रीमद्भा० १। ३। ३६—३८)

भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारका सृजन, पालन और संहार करते हैं, किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परंतु उनसे अलग रहते हैं, वे परम स्वतन्त्र हैं—ये विषय कभी उन्हें लिप्त नहीं कर सकते। जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके संकल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाता, वैसे ही अपने संकल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाओंको कुबुद्धि जीव बहुत-सी तर्क-युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता। चक्रपाणि भगवान्‌की शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं—उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे सारे जगत्‌के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं। उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य-निरन्तर निष्कपट-भावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है—सेवा-भावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है।

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं
महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित्।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो
देहम्भृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८३। ३)

भगवन्! बड़े-बड़े महापुरुष मन-ही-मन आपके चरणारविन्दका मकरन्द-रस-पान करते रहते हैं। कभी-कभी उनके मुखकमलसे लीला-कथाके रूपमें वह रस छलक पड़ता है। प्रभो! वह इतना अद्भुत दिव्य रस है कि कोई भी प्राणी उसको पी ले तो वह जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाली विस्मृति अथवा अविद्याको नष्ट कर देता है। उसी रसको जो लोग अपने कानोंके दोनोंमें भर-भरकर जीभर पीते हैं, उनके अमङ्गलकी आशंका ही क्या है?

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३९)

संसारमें भगवान्‌के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्‌के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते रहना चाहिये। इस प्रकार किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये।

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ।
शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। २४)

प्रभो! कलियुगमें जो साधुस्वभाव मनुष्य आपकी इन लीलाओंका श्रवण-कीर्तन करेंगे, वे सुगमतासे ही इस अज्ञानरूप अन्धकारसे पार हो जायँगे।

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः॥

(श्रीमद्भा० ११। ६। ४४)

प्यारे कृष्ण! आपकी एक-एक लीला मनुष्योंके लिये परम मङ्गलमयी और कानोंके लिये अमृतस्वरूप है। जिसे एक बार उस रसका चसका लग जाता है, उसके मनमें फिर किसी दूसरी वस्तुके लिये लालसा ही नहीं रह जाती।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

जिन भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण, उनके चरणोंमें प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है, उन्हीं परमतत्त्व-स्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।
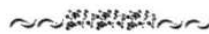
परब्रह्मकी विश्वरूप-लीलाका दर्शन

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

जो परमेश्वर एक हैं, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द एवं परमधाम हैं तथा जो सबमें व्यापक और विश्वरूप हैं, उन्हीं भगवान्ने दिव्य शरीर धारण करके नाना प्रकारकी लीलाएँ की हैं।

'हरि अनंत हरि कथा अनंता' जिस प्रकार भगवान् अनन्त हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी अनन्त है। बड़े-बड़े महात्मा, योगी, ज्ञानी अनादिकालसे उसी अनन्तकी खोज कर रहे हैं। बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानी पारखियोंने उस लीलारूपी अमूल्य रत्नको परखनेका प्रयास किया, यह जानते हुए भी कि भगवान्की अनन्तता और उनकी लीलाओंकी विचित्रता अकथनीय है, उनकी खोज करना मानवबुद्धिसे परे है। परंतु यह जानकर भी आत्मनिष्ठ महापुरुष उसकी खोज करनेसे नहीं रुकते। अब भी अनेक महात्मा भगवान्की लीलाके रहस्यको जाननेके लिये एकान्तमें योग-साधन कर रहे हैं। उस अनन्तकी खोज सृष्टिके आदिकालसे हो रही है और अनन्त कालतक होती ही रहेगी। यह भी तो उनकी लीलाका रहस्य ही है।

लीला क्या है? लीलामय स्वयम्भू भगवान् ही लीलारूप हैं। उनके द्रव्य, कर्म और गुणोंद्वारा ही लीलाका प्रदर्शन होता है। विराट् विश्व उनकी लीलाका ही क्षेत्र है। उनकी प्रत्येक लीलाका गोपनीय रहस्य छिपा रहता है, जिसे संसार नहीं समझ सकता। लीलाओंको प्राकृतिक समझकर श्रद्धा नहीं रहती है, इसीसे उनके गूढ तत्त्वोंका बोध नहीं होता। बहुधा लोग लीलाका बाह्य रूप ही देखते हैं, उसकी अन्तरङ्ग-भावोंकी जाँच विमलबुद्धिसे नहीं करते। भगवान्की लीलाएँ विश्वमें नित्य ही हुआ करती हैं, परंतु अनित्यमें लिप्त होनेके कारण हम उन्हें समझ नहीं पाते।

आधुनिक पाश्चात्त्य सभ्यताके इस युगमें सभ्य कहलानेवाले बड़े-बड़े महाशय ईश्वरके अस्तित्व एवं उनकी लीलाओंको एक कोरी कल्पना ही समझते हैं और एक अदृश्यकी खोज करनेमें वे अपने अमूल्य समयको नष्ट करना नहीं चाहते। क्यों न हो? कृत्रिमताकी सीमासे बाहर जानेका उनको अवकाश भी तो नहीं मिलता, जड-व्यापारमें जुड़ी हुई उनकी बुद्धि जडमें ही आकर्षित रहती है। उनका दोष ही क्या? यह भगवान्की ही लीला है कि उन्हें जडसे बाहर नहीं होने देती।

लीलातत्त्वको समझना बड़ा ही कठिन है। लीलाके प्रेमी जितना कुछ भी समझ सकते हैं, उतना कह ही डालते हैं—

'तदपि कहें बिनु रहा न कोई'

अपनी-अपनी भावनाके अनुसार कोई सगुणमें, कोई निर्गुणमें प्रभुकी दिव्य लीलाओंकी खोज कर रहा है। अध्यात्मवादी आत्मामें, प्रगतिवादी जगत्में, मायावादी मायामें, द्वैतवादी द्वैतमें, शून्यवादी शून्यमें, अनीश्वर जडवादी जड-जगत्में, अद्वैतवादी ब्रह्ममें, प्रेमवादी केवल एक प्रेममें ही उस प्रेममूर्ति भगवान् और उनकी प्रेममयी लीलाओंका पता लगा रहे हैं।

'लीला' शब्द कितना प्रिय, कितना सरस और कितना मधुर है, इस शब्दका वाणीमें स्फुरण होते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। 'लीला!' कौन-सी लीला? सांख्यवादियोंकी प्रकृति-लीला, योगियोंकी योगलीला, वेदान्तियोंकी मायालीला, नैयायिकोंकी परमाणु-लीला, वैशेषिकोंकी द्रव्य-लीला, मीमांसकोंकी यज्ञ-लीला, जडवादियोंकी जडलीला या सांसारिक जनोंकी संसार-लीला! क्या ये ही लीलाएँ हैं? नहीं,ये वास्तविक लीलाएँ नहीं हैं। केवल एक भगवान्की ही लीला वास्तविक है। उन्हींकी दिव्य लीलाका तो प्रदर्शन विश्वकी समस्त लीलाओंमें हो रहा है।

यह विराट् विश्व उन्हीं पुरुषोत्तमका रूप है। इसमें जो क्रिया-प्रतिक्रिया हो रही है, वही उनकी लीला है। विश्वात्मा परमात्मा अपनेहीमें अपनी लीलासे अपने विश्वको

प्रकट करके पुनः अपनेहीमें उसे विलीन कर लेते हैं। अन्तर और बाह्य जगत्में भगवान् और उनकी लीलाकी ही सत्ता नजर आती है। श्रुतियोंने भी कहा है—

'ब्रह्मैव वेदं सर्वम्', **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'**, 'यह सब ब्रह्म है।' **'यस्मात् परं नापरमस्ति किंचित्'**—इसके आगे-पीछे और कुछ भी नहीं है। किसी-किसीको यह शंका होती है कि आप्तकाम नित्यतृप्त निर्लिप्त ब्रह्मको किस अभावकी पूर्तिके लिये सृष्टि करनी पड़ी। इसका उत्तर ब्रह्मसूत्रमें इस प्रकार दिया गया है—**'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** अर्थात् सृष्टि उसकी लीलाका विलासमात्र है। अखण्ड पूर्ण ब्रह्म अपने एक ही अंशसे जगत्को धारण करके अचलरूपसे स्थित रहता है और उसकी पूर्णतामें कभी किसी प्रकारकी भी न्यूनता नहीं होती। इसीलिये श्रुतिमें कहा गया है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे ही पूर्णकी वृद्धि होती है। पूर्णमेंसे पूर्ण लेनेपर भी पूर्ण ही बच रहता है। भगवान् अंशयुक्त होनेपर भी पूर्ण हैं। कर्ता होनेपर भी अकर्ता हैं। गुणयुक्त होनेपर भी गुणातीत हैं। सबमें व्याप्त होनेपर भी विलग हैं—यही उनकी विचित्र लीला है। जिस समय हमारा ध्यान सृष्टिकी नियमित अलौकिक और विचित्र रचनाकी ओर जाता है, उस समय सहसा ही भगवान् और उनकी लीलाका स्मरण हो आता है। समस्त ब्रह्माण्डमें, अनेकानेक सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादिमें, असीम आकाशमण्डलमें, विस्तृत वसुंधरामें उन्हींकी अनोखी छटा नजर आने लगती है।

पल-पलपर पलटनेवाले चमत्कार, नाना प्रकारके दृश्य उन्हींकी लीलाके कारण हमें देखनेको मिलते हैं। पर इसकी विलक्षणता यह है कि उनकी लीलाका दर्शन तो होता है, किंतु उस लीलाके सूत्रधारका दर्शन नही होता। जैसे कठपुतलीके नाचमें कठपुतली और उसका नृत्य दर्शकोंको दिखायी पड़ता है, परंतु कठपुतलियोंको नचानेवाला सूत्रधार पर्देके पीछे रहता है, जिसे दर्शक देख नहीं पाते। इसी प्रकार यह संसार जो प्रभुकी लीला है, वह तो दीखता है, पर इसका संचालक—सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता प्रभु दिखायी नहीं पड़ता। परंतु जो कुछ दीखता है अर्थात् दीखनेवाला यह जगत् सत्य नहीं है, यह तो लीलामात्र है। सत्य है परमात्मप्रभु, यानी ब्रह्म ही सत्य है। इसीलिये स्वामी श्रीशंकराचार्यने लिखा—

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'

इसका तात्पर्य यह है कि जगत्का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, यह मिथ्या है। ब्रह्म ही अपनी लीलावपुके रूपमें जगदवतार धारण करता है। अर्थात् यही सत्य है।

सगुण-साकार-स्वरूपमें जब कभी प्रभु इस माया-संसारमें अवतरित होते हैं, तो वे अपनी माधुर्य-लीलाके साथ-साथ ऐश्वर्य-लीला भी दिखाते हैं, ताकि उनकी भगवत्ताका पता चल जाय। परंतु इसका दर्शन और इसकी अनुभूति उन्हीं भक्तोंको होती है, जिन्हें भगवत्कृपासे विशेष दृष्टि प्राप्त होती है। सर्वसाधारण तो प्रभुकी मायासे अभिभूत होनेके कारण इसे समझ नहीं पाता। भगवान्ने कहा—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

हे अर्जुन! मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् निर्मल और अलौकिक हैं। इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है। भगवान्के दिव्य जन्म और कर्मके तत्त्वको वही जानता है, जिसपर भगवत्कृपा होती है और जिसे महापुरुषोंका सत्संग मिलता है।

विभिन्न अवसरोंपर प्रभुने विराट् विश्वरूपका दर्शन और उसकी अनुभूति अपने भक्तोंको करायी। वटपत्रपर स्थित बालकृष्ण प्रभु अपने श्वाससे मार्कण्डेयको अपने पेटमें ले गये, वहाँ प्रभुके उदरमें मार्कण्डेयजीने सम्पूर्ण सृष्टिका दर्शन किया।

वामन-अवतारमें भगवान्ने राजा बलिसे तीन पग भूमिकी माँग की। तीन पग भूमि मापनेके लिये वामनरूप

प्रभुने विराट् रूप धारणकर राजा बलिको अपने विश्वरूपका दर्शन कराया।

माता यशोदाको बालकृष्ण भगवान्के मुखारविन्दमें सम्पूर्ण विश्वके दर्शन हुए।

कुरुक्षेत्रके मैदानमें भगवान् श्रीकृष्णने मोहसे ग्रसित अर्जुनको दिव्य दृष्टि प्रदानकर स्वयंमें विराट् विश्वरूपका दर्शन कराया।

इसी प्रकार भगवान् कृष्ण जब पाण्डवोंकी ओरसे शान्ति-संदेश लेकर कौरवोंके पास आये तो अपनी ऐश्वर्य-लीलाके अन्तर्गत दुर्योधनको भी अपने विराट् विश्वरूपका दर्शन तो कराया, परंतु अहंकारवश दुर्योधन भगवान्के उस विश्वरूपका वास्तविक दर्शन प्राप्त न कर सका।

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्के विश्वरूपका वास्तविक दर्शन जिसे प्राप्त नहीं होता, वह स्वयंको ही कर्ता मानता है, अहंकारसे आविष्ट रहता है और संसारकी सभी परिस्थितियोंमें सुखी-दुखी होता रहता है, जो उसके जन्म-मरणके बन्धनका मुख्य कारण है।

जो सत्पुरुष हैं, वे संसारकी प्रत्येक घटनाको भगवान्का अवश्यम्भावी मङ्गलमय विधान मानकर संतुष्ट रहते हैं। ऐसे महात्मा इस सत्यका प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि उनके अन्तःकरण और इन्द्रियोंसे होनेवाली प्रत्येक चेष्टा श्रीभगवान्की शक्तिद्वारा ही निर्दिष्ट और संचालित होती है। जो कुछ होता है। वह सब भगवान्की प्रकृति (शक्ति) ही करती है। अतः यह स्मरण रखना चाहिये कि भगवान्की इस लीलामें कुछ भी अनहोनी बात नहीं होती। जो कुछ होता है, वही होता है जो होना है, और जो होना है वही ठीक है, वही मङ्गलमय है। भगवान्का कोई भी विधान मङ्गलसे रहित नहीं हो सकता।

वास्तवमें यह जगत् प्रभुकी नाट्य-लीलाका रंगमंच है, जिसमें हम सभी अभिनय करनेवाले कलाकार हैं। अभिनयकर्ताका सीधा सम्बन्ध नाट्य-मण्डलीके स्वामीसे होता है। उसे जो स्वाँग (पार्ट) मालिककी ओरसे दिया जाता है, उसे वह कुशलतापूर्वक करता है। जो जितनी कुशलतासे करता है, मालिक उससे उतना ही प्रसन्न होता है। उसका उद्देश्य अपने अभिनयके द्वारा नाट्य-मण्डलीके स्वामीको प्रसन्न करना होता है। अभिनय-मंचपर जो स्वाँग (पार्ट) अभिनयकर्ताओंको दिये जाते हैं, उनके परस्पर सम्बन्धोंमें भी उनकी कोई आसक्ति नहीं होती; क्योंकि वे सम्बन्ध उतनी देर प्रदर्शनमात्रके लिये होते हैं, जितनी देर वह अभिनय चलता है। इसी प्रकार परमात्मप्रभुके इस संसाररूपी रंगशालामें जिसे जो स्वाँग प्रभुकी ओरसे प्राप्त हुआ है, उसे पूर्ण कुशलतापूर्वक ईमानदारीसे करना ही हम सबका कर्तव्य है।

असलमें अभिनयकर्ताके मनमें कोई स्वतन्त्र इच्छा नहीं हुआ करती। नाटकके स्वामीकी आज्ञाके अनुसार अपना अभिनय करना ही उसकी एकमात्र इच्छा और चेष्टा होती है। इसके अनुसार अपनी सारी कामनाओंको त्यागकर भगवान्के इस संसाररूपी लीला-मंचपर उनकी प्रसन्नताके लिये उन्हीं प्रभुके संकेतानुसार कर्म करना ही अपना परम धर्म है, यही उनकी उपासना है और यही उनकी भक्ति। भगवान्ने गीता (३। ९)-में कहा—'**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर**:'—'अर्जुन! तुम आसक्ति छोड़कर भगवान्के लिये भलीभाँति कर्मोंका सम्पादन करो।'

जिस साधककी प्रत्येक कर्ममें यह दृष्टि रहती है तथा बिना किसी आसक्ति और कामनाके इस प्रकारके कर्तव्य-कर्म करता है, वह आगे चलकर भगवान्के हाथका सच्चा यन्त्र बन जाता है, फिर उसमें कोई अहंकार नहीं रहता। वह कठपुतलीकी भाँति, भगवान् जैसे नचाते हैं वैसे ही नाचता है। भगवान् जो कुछ कराते हैं, वही वह करता है। इस प्रकारका साधक प्रभुसे प्रार्थना करता है—

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ, निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ, नित ही परतन्त्र, न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक् मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥

(पद-रत्नाकर)

—राधेश्याम खेमका

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका मधुरतम आदि-लीला-चित्रण

विद्वत्परम्परामें आदिकाव्यके प्रणेता महर्षि वाल्मीकिकी प्रतिष्ठा कवि-शिरोमणिके रूपमें निरापद है, क्योंकि कवियोंने एक स्वरसे श्रद्धापूर्वक सिंहनाद किया है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधा भवेत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

(साहित्यभाण्डागारम्)

अर्थात् कवि शब्दका प्रयोग जब एक वचनमें होगा तब वह केवल वाल्मीकिजीका बोधक होगा, द्विवचनमें प्रयोग होनेपर महर्षि वाल्मीकि और व्यासदेवजीका बोधक होगा तथा बहुवचनमें प्रयोग होनेपर फिर वह दण्डी, कालिदास एवं आनन्दवर्धन आदि कवियोंका बोधक होगा।

'**क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः**' के वचनानुसार आदि दिव्य वाणीका प्रस्फुटन महर्षिके श्रीमुखसे तो अनायास—सहसा ही हो गया था—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

तभी तो ब्रह्माजीने कहा था—

'मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती।'

अर्थात् 'मेरी प्रेरणासे सरस्वती तुम्हारे मुखमें प्रविष्ट हुई हैं और तुम्हारे मुखसे संसारका सर्वप्रथम श्लोक प्रकट हुआ है—उच्चरित हुआ है। इसी छन्दःश्लोकमें सौ करोड़की संख्यामें तुम रामचरितका उपनिबन्धन करोगे। वह भूतल-पाताल और स्वर्गमें—सर्वत्र व्याप्त रहेगा। जबतक पृथ्वी रहेगी, तबतक यह कथा भी रहेगी। इसीको आधार बनाकर कोटि-कोटि रामायण रचे जायँगे।'

फिर वैसा ही हुआ भी! नित्य त्रैलोक्य-भ्रमणकारी 'नारायण'-नामधारी देवर्षि नारदजी घूमते-घूमते आये और वाल्मीकिजीने उनसे कुछ प्रश्न पूछे—'संसारमें सबसे बड़ा पुण्यात्मा, सुन्दर, बलिष्ठ, धनी, यशस्वी आदि कौन व्यक्ति है?' नारदजीने कहा—'ये तो अत्यन्त दुर्लभ गुण हैं, किंतु तुम्हें एक ही व्यक्तिको बताता हूँ, जिसमें केवल ये ही गुण नहीं, अपितु अनन्त गुण विद्यमान हैं।' नारदजीने उस गुणनिधिके गुणानुवादमें संक्षिप्त रामचरित सुना दिया। उसीके आधारपर आदि रामायणकी रचना हुई। भगवती सीता स्वयं उनके आश्रमपर अनेक वर्षोंतक रहीं और उन चरित्रोंको पुनः विस्तारसे वाल्मीकिजीसे बताया। उसी रामकथाको लव-कुशको कण्ठस्थ कराया गया, जिसे उन्होंने नैमिषारण्यके यज्ञमें सभी ऋषियों एवं राजाओंको सुनाया।

कालावसानमें उस रामकथाके दो संस्करण हो गये—पहला लवद्वारा गाया गया लवपुरीय (लाहौरका) पश्चिमोत्तरशाखीय वाल्मीकीय रामायण तथा दूसरा कुशका गाया हुआ दाक्षिणात्य, प्राच्य और औदीच्य संस्करण जिसका प्रचार-प्रसार अधिक हुआ। लवपुरीय संस्करणपर कोई टीका नहीं है। दाक्षिणात्य संस्करणपर सैकड़ों टीकाएँ हैं।

भगवन्नाम-यश-लीला-कीर्तन करनेमें महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। प्रायः सभी रामचरितकार महर्षिके ही ऋणी हैं, क्योंकि आदिकाव्य वाल्मीकिरामायण ही उन कवियोंका उपजीव्य है। वेद जिस 'परमतत्त्व' का वर्णन करते हैं, वही 'श्रीमन्नारायण-तत्त्व' श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपसे निरूपित है।

पाठक उनका श्रवण-मनन-चिन्तनकर अपने जीवनको रामके समान बनाकर कृतार्थ कर सकते हैं। यहाँ तो केवल संक्षिप्त दिशा-निर्देशमात्र किया गया है। अस्तु, आदिकवि महर्षि वाल्मीकिका आदि-लीला-चित्रण सम्पूर्ण विश्वका चूडान्त लोकादर्श है। वह सर्वथा अनुकरणीय और परमपद प्रदान करनेवाला है। अतः वाल्मीकिके पादपद्मोंमें नमन करते हुए निरन्तर श्रीरामलीलाका चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये।

भगवान् व्यासदेवका भगवल्लीला-आकर्षण

भगवान् व्यासदेवका कथन है कि सभी जप, तप, स्वाध्याय, श्रवण, मनन, यज्ञ, दान एवं तीर्थ आदि धर्माचरणोंका एकमात्र फल है—भगवल्लीलाका अनुसंधान, चिन्तन, वर्णन और श्रवण—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

(श्रीमद्भा० १। ५। २२)

विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यके तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यश्लोक श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय।

तदनुसार ही उन्होंने वैदिक ग्रन्थों एवं अष्टादश महापुराणों, उपपुराणों तथा स्थलपुराणों आदिका निर्माण किया, जिनमें समस्त भगवत्-चरित्रका निरूपण किया गया। विशेषकर भागवतके बारह स्कन्धोंमें सर्वाधिक सुन्दर चित्रण हुआ, उनमें भी भगवान्‌के चौबीस अवतारोंका वर्णन दिव्य एवं अद्भुत लोकोत्तर-चमत्कारपूर्ण है; उनमें भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी लीलाएँ मधुरतम हैं। भगवान् श्रीरामकी बाललीला, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा, धनुष-भंग, विवाह, वन-यात्रा और दुष्ट दानवोंका वध अति दिव्य-रूपमें वर्णित हुआ है। अध्यात्मरामायणमें जो ब्रह्माण्डपुराणका परिशिष्ट है, उसमें अत्यन्त चमत्कृतरूपसे इन लीलाओंका मधुरतम वर्णन हुआ है जो लोगोंके कण्ठका हार बना हुआ है। इन्हीं सब भावोंको लेकर श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना की जो जन-जनका कण्ठहार बना हुआ है। बाल-वृद्ध, स्त्री तथा शूद्रों तकको इसका कुछ-न-कुछ अंश कण्ठस्थ हो गया है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण और भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी बाललीला, माखन-चोरी, ऊखल-बन्धन, यमलार्जुन-उद्धार, गो-चारण, वृन्दावन-विहार, वेणुगीत, युगलगीत, गोपीगीत तथा रासलीलाकी झाँकी देखते ही बनती है, साथ ही रुक्मिणी, सत्यभामा आदि अष्टमहिषियोंके साथ विवाह, पाण्डवोंकी पग-पगपर रक्षा तथा दुर्योधन, दुःशासन, जरासन्ध, शिशुपाल आदि असुरबुद्धिके राजाओंके दर्प-दलन करनेकी लीला भी बड़ी विचित्र है। अर्जुनको गीताका ज्ञान सुनाने एवं विराट्स्वरूपके दर्शन कराने-जैसे एक-से-एक दिव्य चरित्रोंके चित्रण हुए हैं। अर्जुनके समान ही भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें उद्धवजीको ज्ञान प्रदान करनेकी लीलाका वर्णन किया गया है, जिसका 'भिक्षुक-गीत' सर्वाधिक सर्वोत्तम अंश है।

इसी प्रकार भगवान् व्यासदेवने 'शिवपुराण' और 'लिङ्ग-पुराण'में भगवान् शिवजीकी लीलाओंका तथा देवीपुराण, कालिकापुराण, देवीभागवत और महाभागवतमें देवीकी लीलाओंका एवं गणेशपुराणमें भगवान् गणेशकी लीलाओंका तथा विष्णु-पुराणमें भगवान् विष्णुकी लीलाओंका गान किया है और सभीमें ऋषि-मुनियों एवं उनके चरित्रोंका गान किया है।

भगवान् व्यासदेव अभी कहीं गये नहीं हैं। आद्य-शंकराचार्यजीके साथ सत्ताईस दिनोंतक बिना हिले-डुले खड़े रहकर उलटा शास्त्रार्थ कर उन्हें चकित कर दिया और उनकी आयुको दोगुनी कर दी। आज भी वे अपने भक्तोंको दर्शन देते रहते हैं तथा उनको कृतार्थ करते रहते हैं। सारा विश्व-साहित्य उन्हींका उच्छिष्ट है—'**व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्**'।

प्राणपणसे उनका मनन-चिन्तन करता हुआ मनुष्य उन्हींके समान बन सकता है। उन्होंने सब कुछ कह दिया, कुछ भी शेष नहीं है। इसीलिये तो भगवान् वेदव्यासके अगाध बुद्धिसागरको उपलक्षित करते हुए कहा गया—'**यन्न भारते तन्न भारते**' अर्थात् जो महाभारतमें नहीं है, वह सम्पूर्ण भारतमें नहीं है। यह उनकी कृपाका फल है। उन्होंने विश्व-कल्याणके लिये सब कुछ कर दिया है। वेद, पुराण, महाभारत—सभी तो भगवान्‌के साक्षात् लीला-विग्रह ही हैं। इतनेपर भी कोई लाभ न उठाये तो इससे बढ़कर दुःख और आश्चर्यकी बात क्या है और उनका दोष क्या है?

अज्ञानके अन्धकाररूपी समुद्रमें निमग्न प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये, भगवान्‌के ललित-ललाम लीलाओंका रस-पान करानेके लिये ही उनका लीला-चित्रण और लीलावतरण हुआ है। ऐसे महनीय बुद्धिसागर व्यासको कोटिशः नमन है—'**नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे**'।

अमलात्मा परमहंस श्रीशुकदेवजीकी भगवल्लीला-निष्ठा

लीला-कथा-रस-वैचित्र्यसे ओतप्रोत, भगवल्लीला-कथाके साक्षात् सगुण-साकार-स्वरूप श्रीमद्भागवत-महापुराणके विषयमें जब शौनकादि महर्षियोंने यह सुना कि इस कथाका गुणगान श्रीशुकदेवजीने किया है, तो वे आश्चर्यचकित होकर बोल उठे—

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते॥

(श्रीमद्भा० १। ४। ४)

'वे व्यासनन्दन तो महायोगी समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति और अविद्यारूप निद्रासे जगे हुए थे। वे तो प्रच्छन्न-भावसे मूढवत् विचरते रहते थे, फिर वे किस प्रकार इस बृहत् आख्यानका श्रवण करानेमें प्रवृत्त हो गये?'

इस सम्बन्धमें एक कथा प्रसिद्ध है। एक बार भगवान् सदाशिव पराम्बा भगवती पार्वतीको अमर-कथा सुना रहे थे। पार्वतीजी बीचमें हुँकारी भर रही थीं, परंतु कथाके मध्यमें कुछ ही समय-पश्चात् शंकरप्रिया निद्राभिभूत हो गयीं।

संयोगवश एक शुक भी वहाँ बैठकर कथा-श्रवण कर रहा था। जब पार्वतीजी सो गयीं, तब वही शुक-शावक हुँकारी भरना शुरू कर दिया था। इसलिये शंकरजीको पार्वतीजीके सो जानेका पता न चला और उनके द्वारा अमर-कथाका अनवरत प्रवाह चलता रहा। इस प्रकार उस शुकने पूरी कथा सुन ली। इधर जब पार्वतीजी जगीं तो उन्होंने अपने प्राणवल्लभसे कहा—'प्रभो, इस वाक्यके बाद मैंने कथा नहीं सुनी है, क्योंकि मुझे नींद आ गयी थी।' अब तो देवाधिदेवके आश्चर्यकी सीमा न रही। उन्होंने वहाँ उपस्थित अपने गणोंसे कहा—'आखिर कथाके मध्यमें हुँकारी कौन भर रहा था? शीघ्र पता लगाओ।' गणोंने वृक्षपर बैठे शुक-शावककी ओर जब इशारा किया, तब शंकरजी उसे मारनेके लिये त्रिशूल लेकर दौड़ पड़े।

वह शुक दौड़ता हुआ व्यास-आश्रममें पहुँचा और जम्हाई लेती हुई व्यास-पत्नी वट्टिकाके मुखमें प्रवेश कर गया। शिवजीने वहाँ पहुँचकर कहा—'मैं वट्टिकाका इस त्रिशूलसे संहार करना चाहता हूँ।' व्यासजीने कहा—'इसका अपराध क्या है?' तब शंकरजीने कहा—'इसके मुखमें प्रविष्ट शुकने 'अमर-कथा' सुन ली है।' यह सुनकर व्यासजी मुसकराते हुए बोले—'प्रभो, तब तो यह अमर हो ही गया।' निरुपाय शंकरजी वहाँसे लौट आये।

इधर कथाके प्रभावसे वह अमलात्मा शुक ब्रह्मनिष्ठ हो व्यास-पत्नीके गर्भमें बारह वर्षोंतक निवास करता रहा। जब व्यासदेवने दिव्य दृष्टिसे इस गर्भस्थ शिशुको देखा तो उन्होंने पूछा कि 'तुम बाहर क्यों नहीं आते?' तब उसने कहा—'मुझे सांसारिक माया घेर लेगी। हाँ, यदि भगवान् श्रीकृष्ण आकर यह आश्वासन दें कि मुझपर मायाका प्रभाव नहीं होगा, तब मैं बाहर प्रकट हो जाऊँगा।' फिर वैसा ही हुआ।

शुकदेव गर्भसे बाहर निकलते ही संसारसे उपरत होकर एकान्त अरण्यमें चले गये और ध्यानावस्थित हो समाधिस्थ हो गये। इसी समय भगवान् व्यासदेवके कुछ शिष्यगण उधर आये और इस श्लोकका निरन्तर गान करने लगे—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

(श्रीमद्भा० १०। २१। ५)

इस श्लोकार्थकी स्फूर्ति होनेपर कथा-रस-रूप अनुपम भगवद्विग्रहकी रूप-माधुरीने शुकदेवजीके अन्तःकरणको क्षुभित कर दिया, उनकी समाधि-भंग हो गयी। उन्होंने उन मुनिकुमारोंसे पूछा—'इस श्लोकको आप लोगोंने कहाँसे सीखा?' मुनिकुमारोंने कहा—'गुरु व्यासदेवजीसे।' यह सुनकर श्रीशुकदेवजी भगवान् व्यासके पास आये और उनसे भगवल्लीला-कथा-विग्रह-रूप महाग्रन्थ श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया। इससे शौनकादि मुनियोंके प्रश्नका समाधान हो जाता है कि वे व्यासनन्दन हरिगुणाक्षिप्तमति थे, इसलिये ये आत्माराम होनेपर भी इस भागवत-कथामें प्रवृत्त हुए।

अहा! उन व्यासनन्दनकी हरिभक्तिप्रवणताका—लीला-निष्ठाका कहाँतक वर्णन किया जाय। यद्यपि निरन्तर आत्मसुखमें विश्रान्त रहनेके कारण उनके हृदयसे द्वैतप्रपञ्चका सर्वथा तिरोभाव हो गया था, तथापि परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ललित लीलाओंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर ही लिया।

यह है आप्तकाम परम निष्कामकी अतृप्त लीला-कथा-निष्ठा, जिसे उन्होंने परीक्षित्‌को सुनाया और वे परमपदको प्राप्त हो गये। अतः हम सभीको श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें कोटिशः नमन करते हुए लीला-कथामें सदैव निमग्न रहना चाहिये।

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यका भगवल्लीला-चिन्तन

आद्यशंकराचार्य भगवान् शंकर साक्षात् शिवके ही अवतार या विग्रह थे। वे योग, ज्ञान तथा वैराग्यके साथ ही भक्तिके भी मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनकी कर्मठता इतनी प्रचण्ड थी कि उन्होंने थोड़े ही समयमें बौद्धों तथा जैनियों आदिको परास्त कर भारतके चारों सीमाओंपर चार मठों, उपमठों आदिका निर्माण करते हुए समस्त देशमें सत्य सनातन धर्मकी स्थापना कर दी। साथ ही उपनिषदों, गीता, वेदान्त-दर्शन आदिपर अद्भुत भाष्योंकी रचनाकर अपनी तीव्र प्रतिभा और दिव्य विज्ञानसे समस्त संसारको चकित कर दिया। उनके भाष्योंकी उत्कृष्टता दिखानेके लिये परवर्ती विद्वानोंने अनेक भाष्योत्कर्षदीपिका व्याख्याएँ तथा उपव्याख्याएँ लिखीं। शक्तिकी उपासनापर 'सौन्दर्यलहरी', नृसिंह-उपासनापर 'लक्ष्मी-नृसिंह-स्तोत्र' तथा इसी प्रकार शिव, विष्णु, कृष्ण, गणपति और हनुमान् आदि देवताओंकी उपासनापर भी उनके स्तोत्र अत्यन्त दिव्य एवं उत्कृष्ट हैं।

यद्यपि महर्षि वाल्मीकिने आदिकाव्य श्रीमद्रामायणकी रचनाकर अनुपम कार्य किया, जिसकी कोई तुलना सम्भव नहीं है, पर आचार्यके 'श्रीरामभुजंगप्रयातस्तोत्र'को देखकर भी यही प्रतीत होता है कि केवल २९ श्लोकोंमें ही इन्होंने भगवान् श्रीरामके प्रति जो अनन्यनिष्ठा, विशुद्ध भक्ति और आत्मपरायणता दिखलायी है, उससे ऐसा लगता है कि उन्होंने वाल्मीकिरामायणसहित तत्कालीन प्राप्त विविध रामचरितोंका अनेक बार बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे स्वाध्याय किया जो श्रीरामभक्तिमें सबसे आगे थे। उनके 'श्रीराम-भुजंगप्रयातस्तोत्र'के प्रत्येक श्लोकसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे अहर्निश राम-नामका जप करते, श्रीरामके स्वरूपका ध्यान करते, अत्यन्त नम्रतापूर्वक भगवान् रामकी स्तुति करते और सदा ही अपने आराध्यदेवकी नवधाभक्तिमें लवलीन रहते थे।

इस स्तुतिमें उनके २९ श्लोक हैं, पर यह पता नहीं चलता कि इनमें कौन-सा पद सर्वोत्तम है। इस स्तोत्रमें आचार्यने अपनी रामनिष्ठा, राम-प्रेमको इतने मार्मिक ढंगसे वर्णित किया है कि इसे बार-बार पढ़नेसे मन नहीं हटता। साथ ही पाठककी भी श्रीरामके प्रति भक्ति बढ़ने लगती है। इस स्तोत्रके किसी एक मात्र श्लोकके चिन्तन-मननसे पाठकोंको अपार लाभ तो होता ही है, साथ ही भगवत्पादकी परमोत्कृष्ट भगवद्भक्ति एवं उनके अद्वितीय वैदुष्यका सम्पूर्ण चरित्राङ्कन हो जाता है। स्तुति करते हुए आचार्य शंकर भगवत्पाद कहते हैं—

असीतासमेतैरकोदण्डभूषै-
रसौमित्रिवन्द्यैरचण्डप्रतापैः।
अलङ्केशकालैरसुग्रीवमित्रै-
ररामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः॥

अर्थात् सीतासे समन्वित, कोदण्ड-धनुषसे विभूषित, लक्ष्मणजीके द्वारा अभिवन्दित, प्रचण्ड प्रतापसे समन्वित, लङ्केश रावणके लिये काल-स्वरूप, सुग्रीवके परम मित्र और श्रीराम-नामसे सुशोभित परमदैवत भगवान् श्रीरामको छोड़कर मेरा किसी अन्य दूसरे देवतासे कोई प्रयोजन नहीं है।

इसमें परम भक्त श्रीशंकराचार्यजीकी काव्यकला, वेद-शास्त्रोंका ज्ञान, नित्य अद्वैतनिष्ठाके साथ आत्यन्तिक विनय, नम्रता, निरभिमानता, हृदयकी स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता, भावोंकी कोमलता, ध्यानकी परिपक्वता, श्रद्धा-भक्तिका उद्रेक और भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्तिनिष्ठा भी सूर्यलोककी भाँति सुस्पष्टरूपसे परिलक्षित—प्रकाशित होती है। इसमें पूरे रामचरितका भी आद्योपान्त निबन्धन हो गया है। वैसे तो इसका प्रत्येक श्लोक अप्रतिम महिमामय है और बार-बार पठन-मननके बाद भी इसकी नवीनता और रमणीयता तथा आकर्षण और अधिक बढ़ते जाते हैं। पर जिन श्लोकोंके अन्तिम चरणोंमें आवर्तन दीखता है, वे तो और भी रमणीय लगते हैं, किंतु जिनके अन्तमें '**अरामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः**' यह पद आवृत होता है, उसमें उनके हृदयकी राम-भक्ति इस प्रकार उद्वेलित होती है कि जो किसी भी नीरस पाठकके मनको भी झकझोर देगी और दृढ़ भक्तिके प्रभावसे उसे रामके सम्मुख लाकर खड़ा कर देगी। छन्द एवं पदबन्ध यद्यपि अत्यन्त सरल हैं, पर उनके भाव इतने गम्भीर, योग-वैराग्य, भक्तियुक्त चमत्कारसे परिपूर्ण हैं कि

जो अत्यन्त सामान्य व्यक्तिको भी उत्कृष्ट भगवद्भक्त बनानेके लिये सक्षम है।

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यका यह दिव्य, अलौकिक भगवल्लीला-चिन्तन समस्त साधकों-भक्तोंके लिये परब्रह्मसे परमैक्य स्थापित करानेवाला है और निरन्तर मननीय भी। अत: साक्षात् शिवावतार धर्मध्वज आद्य भगवत्पाद सदैव विश्ववन्द्य हैं, ध्येय हैं तथा उनका भगवल्लीला-चिन्तन अनुपमेय है।

जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-लीलाओंका स्मरणकर अभिभूत हो उठे

(ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान्‌की लीला अपरम्पार है। भगवान् अपनी दिव्य लीलासे मानवको ही नहीं, देवताओं तथा नारदजी-जैसे ब्रह्मर्षिको भी चकित कर देते थे।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके परम आश्रित थे। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे समय-समयपर उनकी कृपाकी अनुभूति की थी।

एक समयकी बात है—जब अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनोंके लिये व्याकुल हो उठे तो वे द्वारका पहुँचे। द्वारकासे लौटनेपर धर्मराज युधिष्ठिरने उनसे भगवान् श्रीकृष्णकी कुशलताका समाचार पूछा। अर्जुनके मौन हो जानेपर युधिष्ठिरको महान् अशुभकी आशंका हो गयी। उन्हें त्रिकालदर्शी देवर्षि नारदजीकी भविष्यवाणी स्मरण हो आयी। वे कहने लगे कि क्या हमारे भगवान् श्रीकृष्ण लीलालीन हो गये? क्या वे गोलोक पधार गये?

अब युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके चिन्तनमें निमग्न हो उठे। वे कहने लगे—'साक्षात् सच्चिदानन्द भगवान् श्रीकृष्णने हमें तथा हमारे परिवारको ही अपनी दिव्य लीलाओंसे आह्लादित नहीं किया, अपितु उन्होंने न्याय और धर्मकी रक्षाके लिये महाभारतके युद्धमें हमारा नेतृत्व भी किया। वे तो हमारे प्राण थे। श्रीकृष्णरूपी प्राण जब इस संसाररूपी देहसे निकल गये तो यह संसार ही हमारे लिये निस्सार हो उठा है। उनकी लीलाओंका दर्शन किये बिना अब हम इस संसारमें रहकर क्या करेंगे?'

अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्णके लीलाओंके माध्यमसे किये गये उपकारोंका स्मरणकर कहने लगे—'जब हम द्रौपदीके स्वयंवरमें गये, तब वहाँ द्रुपदकी बहुत ही कठिन प्रतिज्ञा सुनी। हमें भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा तथा उनके पावन स्मरणसे ही ऊपर घूमते हुए चक्रके बीचसे बाणद्वारा मछलीकी आँखको नीचे जलमें परछाईंकी ओर लक्ष्य करके बेध देने-जैसे दुष्कर कार्यमें सफलता मिली। उनकी इस कृपा-लीलाके कारण ही हम द्रौपदीका वरण कर सके।

अर्जुनने प्रभुकी कृपा-लीलासे अभिभूत होकर पुन: कहा कि एक बार हम तथा भगवान् श्रीकृष्ण खाण्डव वनमें बैठे थे कि अग्निदेवताके दर्शन हुए। अग्निदेवने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हुए कहा कि 'प्रभो! हमें अजीर्ण हो गया है, अत: यदि आप आज्ञा दें तो हम इस वनकी वनस्पतिका औषधि-रूपमें भक्षण कर लें।' भगवान्‌ने आज्ञा दे दी। अब अग्निदेव कहने लगे कि 'महाराज, इस खाण्डव वनमें इन्द्रका मित्र तक्षक रहता है। इन्द्र उसकी रक्षाके लिये सदा तत्पर रहते हैं। जैसे ही हम वनमें दाह करेंगे वैसे ही इन्द्रदेव अपने मित्र तक्षककी रक्षाके लिये जल-वृष्टि कर हमारा सारा परिश्रम निष्फल कर देंगे।' भगवान् श्रीकृष्णके संकेतपर मैंने तीरोंकी वर्षा कर खाण्डव वनके ऊपर तंबू वितान-सा तान दिया। जैसे ही अग्निदेवने दाह किया, इन्द्रदेवने वर्षा शुरू कर दी, किंतु भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके कारण वर्षा वनतक पहुँच ही नहीं सकी और अग्निदेवको औषधि प्राप्त हो गयी।

अर्जुनने पुन: भगवान्‌की कृपा-लीलाओंसे पूर्ण एक घटनाका वर्णन करते हुए कहा—जिस समय हम वनवासमें थे, दुर्वासा ऋषि हमारे पास शिष्योंके साथ आये और भोजनकी इच्छा प्रकट कर शिष्योंसहित स्नान करने चले गये। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गये

और द्रौपदीसे बोले—'हमें बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेको दो।' द्रौपदी पहलेसे ही चिन्तातुर थी, अब कृष्णको भोजन देनेकी चिन्ताने उसकी व्याकुलता और बढ़ा दी। वह कहने लगी—'महाराज, सारा भोजन समाप्त हो गया है, अब कुछ भी शेष नहीं है।' भगवान्‌ने कहा—'हमें अपने भोजनका पात्र देखने दो कहीं कुछ बचा होगा, उसीसे हमारी तृप्ति हो जायगी।' यह कहकर जब भगवान्‌ने सूर्य-प्रदत्त उस दिव्य अक्षय पात्रमें देखा तो उसमें उन्हें एक शाकका पत्ता दिखायी पड़ा। वे बड़े प्रेमसे उस पत्तेका रसास्वादन करने लगे। उसका इतना तीव्र प्रभाव हुआ कि दुर्वासा अपने सभी शिष्योंसमेत बिना भोजन किये ही तृप्त हो गये। सबके पेट फूल गये और भोजनकी किसीको इच्छा ही नहीं हुई।

इसी प्रकार भगवान्‌ने हमारी सदा रक्षा की। अब हम सब निराधार हो गये, वे कृष्ण हमें त्यागकर चले गये। युद्धके समय कौरवोंकी अनन्त सेनामें अपने सगे-सम्बन्धियोंको देखकर जब हम चकित हो गये थे, तब भी भगवान्‌ने ज्ञानोपदेशद्वारा अर्जुनका मोह दूर किया।

उर्वशीके प्रसंगमें भी जो हमें विजय मिली, वह भगवान् श्रीकृष्णका ही प्रताप था। कीचकने द्रौपदीके प्रति जो दुर्व्यवहार किया और मेरे भाई भीमद्वारा मारा गया, इसमें भी भगवत्कृपा ही मुख्य कारण है। उत्तरकुमारको कौरवोंके प्रति विजय प्राप्त करानेमें मेरा उद्योग कुछ अधिक नहीं था। यह सब भगवत्कृपाका ही परिणाम था।

इस प्रकार अर्जुन कोटिशः भगवत्कृपा-लीलासे अभिभूत होते हुए उन्हीं विश्वरूप लीलाधारीके चिन्तन-मननमें तन्मय हो गये, मानो उन्होंने परमात्मप्रभुके साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया हो।

[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]

रामावतारका महत्त्व

(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी)

अघटन-घटना-पटीयसी अतर्क्य-नाटक-नटी ब्रह्मशक्ति महामायाके विलासस्वरूप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंमेंसे एक ब्रह्माण्डके मर्त्यलोकमें कर्म करनेकी स्वाधीनता प्राप्त करके मनुष्य जब उस प्रकृति-माताके ऊर्ध्वगतिशील प्रवाहके प्रतिकूल अर्थात् धर्मके प्रतिकूल कर्म करने लगते हैं, तब धर्मकी ग्लानि होने लगती है और अधर्मका अभ्युत्थान होने लगता है। ऐसी अवस्थामें सत्पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये भगवदवतारकी अथवा अन्य शब्दोंमें जगज्जननी भगवतीके अवतारकी आवश्यकता होती है। भगवान् और भगवतीमें अभेद है। मायोपहित चैतन्य भगवान् और ब्रह्ममयी जगदम्बा भगवती हैं। अपने बनाये हुए जगत्‌में कर्म करनेके लिये स्वाधीनता-प्राप्त जीवोंके कार्योंसे जब असामञ्जस्य उत्पन्न होता है, तब उसे दूर करनेके लिये किसी केन्द्रविशेषमें जगदम्बाका प्रादुर्भाव ही भगवदवतार-नामसे अभिहित होता है। चेतन निराकार है, जगदम्बाके आश्रयके बिना साकार-मूर्तिमें भगवदाविर्भाव असम्भव है। सृष्टि-स्थिति-प्रलय करनेका स्वभाव जगदम्बाका ही है। चेतनके आश्रयके बिना माया कुछ कार्य नहीं कर सकती। इसी कारण मायाके कार्यका आरोप चेतनमें करके शास्त्रोंमें भगवान्‌का जो माहात्म्य-वर्णन किया गया है, वह युक्तियुक्त ही है। जगदम्बाके ब्रह्ममयी नाममें इन दोनों भावोंका समावेश हो जाता है। शक्ति-उपासक जो भगवदवतारोंके साथ काली-तारा आदि शक्तियोंका सम्बन्ध बतलाते हैं, उसका सामरस्य भी इसी सिद्धान्तसे हो जाता है। हमारे शास्त्रोंमें कहीं मतभेद नहीं है, जो मतभेद प्रतीत होता है, वह दार्शनिक ज्ञानके अभावका ही कुफल है।

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है। इस लेखमें श्रीरामके गुणानुवाद-रूपसे हम उन महत्त्वोंका किंचित् प्रतिपादन करनेकी चेष्टा करेंगे।

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिक्षामें अत्यन्त सुभीता होता है। श्रीरामको सत्-आदर्शोंका खजाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सत्-शिक्षाके

लिये जितना गुरु-पदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम नाम इसी कारणसे पड़ा है।

श्रीरामकी बाललीला तथा विद्याभ्यास अतुलनीय और बालकोंके लिये अनुकरणीय है। उनकी गुरु-भक्ति आदर्श गुरु-भक्ति थी, जिसके प्रतापसे वे सब विद्याओंमें निपुण हो सके थे। विश्वामित्रजीके साथ जाकर उनकी सेवारूप गुरु-शुश्रूषासे ही वे 'बला' और 'अतिबला' विद्याको प्राप्त करके धनुर्विद्या और अस्त्र-शस्त्रकी विद्यामें पारंगत हो सके थे। विश्वामित्रजीसे उन्होंने गुरु-भक्तिके कारण ही धर्मशास्त्रकी शिक्षा पौराणिक कथाके रूपमें प्राप्त की थी और धर्म-संकटके समय कर्तव्य-कार्योंकी शिक्षा स्त्रीवधरूप ताड़का-वधके रूपसे प्राप्तकर धार्मिकमात्रके लिये एक आदर्श स्थापन कर दिया है। क्षत्रिय बालकोंके लिये बालकपनसे ही निर्भीकता, वीरता और पापियोंको समुचित दण्ड देनेकी प्रकृतिका होना आवश्यक है। इसको श्रीरामने विश्वामित्रजीके साथ जाकर, वीरतापूर्वक सुबाहुको मारकर और मारीचको दण्ड देने आदिका कार्य करके बतला दिया है।

योगवासिष्ठकी कथाके आधारपर कहा जा सकता है कि आदर्श गुरुभक्त और आदर्श वैराग्यसम्पन्न श्रीरामने उस प्रारम्भिक अवस्थामें ही ज्ञानकी प्राप्ति करके जीवन्मुक्त-पदको प्राप्त करते हुए अपने अवतारके सकल कार्योंको किया था। प्रत्येक मनुष्यको इसी प्रकार गृहस्थाश्रमसे पूर्व ही यथाधिकार और यथासम्भव सब प्रकारका ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-कर्मरूपसे गृहस्थादि आश्रमोंके कर्म करते रहना चाहिये। मनुष्यके लिये यही एक राजमार्ग है, जिससे वह अन्तमें आवागमन-चक्रसे छूटकर मुक्त हो सकता है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे गृहस्थाश्रम छूट जाता है अथवा गृहस्थाश्रम धारण करनेकी प्रवृत्ति नहीं होती, यह विभीषिकामात्र है। यथार्थ ज्ञानकी प्राप्तिसे मनुष्यका मार्ग सरल हो जाता है और कर्तव्य-कर्मरूपसे सब कर्मोंको करते हुए कर्म-त्यागकी प्रवृत्तिकी आवश्यकता ही नहीं होती। इस अवस्थाके प्रधान उदाहरण विदेहराज जनक हैं।

जनकपुरकी फुलवारीमें जिस समय सीताजीको श्रीरामके दर्शन हुए थे, उस समय श्रीरामने कहा था कि 'मैंने सपनेमें भी पर-स्त्रीको प्रेमदृष्टिसे नहीं देखा, फिर सीतापर दृष्टि पड़ते ही मेरा मन क्यों आकर्षित हुआ? इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामने '**मातृवत् परदारेषु**'का अभ्यास बालकपनसे ही कर रखा था। इस आदर्शको ग्रहण करनेमें किस मनुष्यका मतभेद हो सकता है? यह तो सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त है।

पिता दशरथकी प्रतिज्ञाको सत्य करनेके लिये श्रीरामने केवल राज्य-श्रीका ही त्याग नहीं किया, अपितु वनवासका कठिन व्रत-पालन करके जगत्को पितृभक्तिकी पराकाष्ठा बतला दी थी। यदि ऐसा नहीं करते तो पिताके सत्यकी पूर्ण रक्षा नहीं हो सकती। श्रीरामने माता कौसल्यासे कहा था कि 'पिता-माताकी परस्पर विरुद्ध आज्ञाओंके पालन करते समय पिताकी आज्ञा ही पुत्रके लिये शिरोधार्य हुआ करती है।' ऐसे धर्म-संकटके समय अपने कर्तव्यका निश्चयकर उसको कार्यमें परिणत करते हुए श्रीरामने क्षेत्रकी अपेक्षा बीजका ही प्राधान्य सिद्ध कर दिया है, क्योंकि पुत्र-संतानमें वीर्य-प्राधान्य होनेके कारण पुरुष-शक्तिकी ही अर्थात् पिताकी ही प्रधानता हुआ करती है।

श्रीरामने आदर्श भ्रातृ-प्रेम अपने तीनों भाइयोंके साथ सारी रामायणमें जहाँ-जहाँ दिखलाया है, वह एक अद्भुत आदर्श है। सब अवसरोंमें यह आदर्श भ्रातृ-प्रेम अक्षुण्ण रहा है।

सहधर्मिणीके साथ पतिका क्या कर्तव्य है वह सीताके साथ किये हुए श्रीरामके व्यवहारोंसे सबपर प्रकट ही है। वनवास जाते समय सब प्रकारकी वनवासकी यातनाओंको समझाते हुए श्रीरामने सत्पतिका ही आदर्श दिखलाया था और वनवासमें अपनी सहधर्मिणीकी सब प्रकारसे रक्षा करते हुए आदर्श गृहस्थके धर्मोंकी पराकाष्ठा बतला दी थी। चित्रकूटमें इन्द्रपुत्र जयन्तको दण्ड दिया, शूर्पणखाके कान-नाक लक्ष्मणसे कटवाये, ससैन्य खरदूषण-त्रिशिराको अकेले ही मारा और अन्तमें अपनी सहधर्मिणीके उद्धारके लिये ही रावण-कुलका विध्वंस किया। आदर्श गृहस्थधर्मका कार्यतः निरूपण करनेके लिये लंकामें सीताकी अग्नि-परीक्षा ली और आदर्श प्रजावत्सलता, जो राजाके लिये मुख्य धर्मस्वरूप है, उसका संसारमें प्रचार करनेके लिये ही श्रीरामने सीताका अयोध्यामें परित्याग कर दिया। अधिक क्या कहा जाय,

श्रीराम एक आदर्श मानव-रूपसे अवतीर्ण हुए थे।

चित्रकूटमें भरतके आनेपर दशरथके मन्त्रियोंकी सभाके एक मन्त्रीको धमकाते हुए श्रीरामने जैसा राजधर्मका आदर्श प्रतिपादन किया और उसके अनुसार कार्य किया, वह एक अपूर्व दृश्य था। ऐसे धर्मसंकटके समय इस प्रकार निर्णय करना एक आदर्श नरपतिका ही कार्य था, जिसको श्रीरामने अद्भुत रीतिसे निभाया।

पञ्चवटीमें सीताको रावणसे छुड़ानेकी चेष्टा करते हुए मृत दशरथके मित्र जटायुका दाह-संस्कार श्रीरामने स्वयं किया। यह कार्य ईश्वरावतार श्रीरामके महत्त्वको अधिक उज्ज्वल बनानेवाला है। प्रत्येक मनुष्यको महान्-से-महान् होनेपर भी ऐसी ही दयालुताकी वृत्ति रखनी चाहिये, इससे उसका महत्त्व ही बढ़ता है।

ऋष्यमूक-पर्वतपर सुग्रीवसे सख्य करके श्रीरामने अपने सख्य-भावको अन्तिम समयतक कैसा निभाया वह तो एक दिव्य दृश्य है। श्रीराम सुग्रीवके प्रेममें उन्मत्त नहीं थे। वे स्वयं भी मैत्री-धर्मका पालन करते थे और सुग्रीवसे भी मैत्री-धर्म-पालन करानेमें त्रुटि नहीं करते थे। सीताकी खबर लानेके आयोजन करनेमें जब सुग्रीवने कुछ विलम्ब किया, तब लक्ष्मणको उसके पास भेजकर स्वयं उन्होंने कहलवाया था—

न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः॥

'हे सुग्रीव! वाली मारे जानेपर जिस रास्तेसे गया है, वह आज भी बंद नहीं हुआ है। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहो। वालीके मार्गका अनुसरण न करो।'

समुद्र-तटपर विभीषणके आनेपर राजधर्म और युद्धधर्मके वशवर्ती होकर किसीने भी उसको आश्रय देनेकी सम्मति नहीं दी; परंतु श्रीरामने शत्रुका भ्राता होनेपर भी अपना यह परम प्रसिद्ध व्रत बतलाते हुए उसको आश्रय देकर शरणागत-वत्सलताकी पराकाष्ठा बतला दी थी कि 'अचानक आकर जो मेरे शरण होता है और 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा कहता है, उसे मैं प्राणिमात्रसे निर्भय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है।'

अनेक धर्मोंका संकट उपस्थित होनेपर ठीक-ठीक निर्णय करना ही आदर्श मानवका स्वरूप है। श्रीरामके चरित्रमें कहीं भी उस स्वरूपसे उनकी च्युति नहीं हुई है। रामायणमें पद-पदपर यह दृश्य प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति देख सकता है।

मानव-चरित्रको बतलानेके उपलक्ष्यसे श्रीरामके चरित्रमें कई जगह अधीरता पायी जाती है, जैसे सीताके विरहमें रोना आदि, परंतु वास्तवमें वह अधीरता नहीं है, क्योंकि उस अधीरतासे उन्होंने कोई अधैर्यका कार्य नहीं किया था। इससे मनुष्योंको शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे भी कष्टका समय आये, अन्तर्धृतिको कभी न छोड़े। वह अन्तर्धृति ही धर्मका निर्णय कर लेगी।

वाल्मीकीय रामायणके उत्तरकाण्डमें कथा है कि एक दिन श्रीराम किसीसे एकान्तमें बातचीत कर रहे थे। कोई आये नहीं, इसके लिये लक्ष्मणको पहरेदारके रूपमें खड़ा कर दिया था और कहा था कि जबतक मेरी आज्ञा न हो कोई अंदर न आये, यदि आया तो दण्ड दिया जायगा। इसी बीचमें दुर्वासाने आकर लक्ष्मणसे कहा कि 'अंदर जाकर श्रीरामको मेरे आनेकी सूचना दे दो।' लक्ष्मणने अपने दण्डकी परवा न करके दुर्वासाके शापसे राज्यको बचानेके लिये श्रीरामको उनके आनेकी सूचना दी। उसने सोचा कि दुर्वासाकी अप्रसन्नताकी अपेक्षा श्रीरामकी अप्रसन्नता विशेष भयानक नहीं होगी। श्रीरामने आज्ञा उल्लंघन करनेके अपराधमें लक्ष्मणको अयोध्यासे चले जानेको कहा। राजधर्मके अनुसार चाहे राजपुत्र ही क्यों न हो, अपराध करनेपर वह दण्डनीय होता है। राजधर्मके सामने प्राणप्रतिम भाई लक्ष्मणकी श्रीरामने कुछ भी परवा नहीं की। इस कथानकसे श्रीरामका आदर्श राजधर्म-प्रतिपालन सिद्ध होता है।

इस लेखमें श्रीरामके साधारण व्यवहारोंकी ही समालोचना की गयी है। उनकी अवतारविषयक महत्ताओंको नहीं लिखा गया। इस प्रकार जितना भी विचार किया जायगा, विचारवान् व्यक्ति समझ सकेंगे कि श्रीरामावतारकी महत्ता अतुलनीय है और उनसे मनुष्यत्वकी शिक्षा बहुल प्रमाणोंमें मिल सकती है।

श्रीरासलीलारहस्य

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

प्राचीन आर्षग्रन्थोंमें श्रीमद्भागवत एक अत्यन्त देदीप्यमान उज्ज्वल ग्रन्थरत्न है। इसके दशम और एकादश स्कन्धोंमें परमानन्दघन लीला-पुरुषोत्तम भगवान् कृष्णचन्द्रकी दिव्यातिदिव्य लीलाओंका वर्णन है। लीलाविहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वथा रसमय हैं। उनकी कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय मनोहर मूर्ति भावुक भक्तोंके लिये जैसी-जैसी मनोमोहिनी है वैसी ही उनकी लीलाएँ भी हैं। यों तो भगवान्की सभी लीलाएँ लोकोत्तर आनन्दातिरेकका सञ्चार करनेवाली हैं, परंतु उनकी व्रजलीलाएँ तो महाभाग भक्तों एवं कविपुङ्गवोंका सर्वस्व ही हैं। उनमें भी, जिसका आविर्भाव एकमात्र रसाभिव्यक्तिके लिये ही हुआ था, वह महारास तो मानो सर्वथा माधुर्यका ही विलास था। प्रभुकी रासक्रीडा जैसी मधुर है वैसी ही रहस्यमयी भी है। उसके भीतर जो गुह्यातिगुह्य रहस्य निहित है, वह आपाततः दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। वह इतना गूढ है कि उसमें जितना प्रवेश किया जाता है, उतना ही अधिकाधिक दुरवगाह्य प्रतीत होता है। हम यथामति उसका विचार करनेका प्रयत्न करते हैं।

इस रासलीलाका वर्णन श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके अध्याय उनतीससे तैंतीसतक है। ये पाँच अध्याय 'श्रीरासपञ्चाध्यायी' के नामसे सुप्रसिद्ध हैं। ये श्रीमद्भागवत-रूप कलेवरके मानो पाँच प्राण हैं; अथवा यदि इन्हें श्रीमद्भागवतका हृदय कहा जाय तो भी अयुक्त न होगा।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत कोई साधारण ग्रन्थ नहीं है। श्रीशुकदेवजीका तो मिलना ही बहुत दुर्लभ था; फिर जिस ग्रन्थका वे वर्णन करें, उसका महत्त्व क्या कुछ साधारण हो सकता है? जिस समय शौनकादि महर्षियोंने यह सुना कि इस ग्रन्थका वर्णन श्रीशुकदेवजीने किया है तो वे आश्चर्यचकित हो गये और बोले—

'तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः।
एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते॥'

'वे व्यासनन्दन तो महायोगी, समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति और अविद्यारूप निद्रासे जगे हुए थे। वे तो प्रसन्न-भावसे मूढवत् विचरते रहते थे। वे किस प्रकार इस बृहत् आख्यानका श्रवण करानेमें प्रवृत्त हो गये?'

भला जो गोदोहन-वेलासे अधिक कहीं खड़े नहीं होते थे, उन श्रीशुकदेवजीने किस प्रकार श्रीमद्भागवत सुनायी? ऐसी शंका होनेपर श्रीसूतजीने कहा यह महाराज परीक्षित्का सौभाग्य ही था।

'स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम्।
अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम्॥'

यहाँ एक दूसरी शंका भी हो सकती है। महाभारतके कथनानुसार श्रीशुकदेवजी अपने तपके प्रभावसे ब्रह्मभावापन्न हो गये थे। उन्हें बाह्य प्रपञ्चका अनुसंधान भी नहीं रहा था। फिर इस महासंहिताके स्वाध्यायमें उनकी किस प्रकार प्रवृत्ति हुई?

इसका उत्तर श्रीसूतजी महाराजने इस प्रकार दिया है—

'हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः॥'

सूतजी कहते हैं—ठीक है, यद्यपि श्रीशुकदेवजी ऐसे ही निर्विशेष परब्रह्ममें परिनिष्ठित थे, शास्तृ, शिष्य आदि सम्बन्धोंमें उनकी प्रवृत्ति होनी सर्वथा असम्भव थी; तथापि उन्हें एक व्यसन था। उससे आकृष्ट होकर ही उन्होंने इस महान् आख्यानका अध्ययन किया था। व्यास-सूत भगवान् श्रीशुकदेवजीकी बुद्धि श्रीहरिके गुणोंसे आक्षिप्त थी, वह हरिगुणगानकी मनोमोहिनी माधुरीमें फँसी हुई थी। **'हरते इति हरिः'** जो बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके मनको भी हर लेते हैं, उन दिव्य मङ्गलमूर्ति भगवान्का नाम ही 'श्रीहरि' है। भगवान्के परम दिव्य नाम, गुण, चरित्र एवं स्वरूप ऐसे ही मधुर हैं। उन्हींके गुणोंने श्रीशुकदेवजीके शुद्ध ब्रह्माकार-वृत्तिसम्पन्न मनको भी हठात् अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। इसीसे उन्होंने इस बृहत् संहिताका स्वाध्याय किया था।

अहा! उन श्रीव्यासनन्दनकी हरिभक्तिप्रवणताका कहाँ-तक वर्णन किया जाय? यद्यपि निरन्तर आत्मसुखमें विश्रान्त रहनेके कारण उनकी मनोवृत्ति किसी दूसरी ओर नहीं जाती थी; उनके हृदयसे द्वैतप्रपञ्चका सर्वथा तिरोभाव हो गया था, तथापि परमानन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रकी ललित लीलाओंने उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर ही लिया। इसीसे उन्होंने भगवल्लीलाके निगूढतम रहस्यभूत इस महाग्रन्थका आविर्भाव किया।

यद्यपि ऐसे महानुभावोंकी प्रवृत्ति ग्रन्थाध्ययनमें नहीं हुआ करती, तथापि भगवल्लीलाओंसे आकृष्टचित्त होनेके कारण ही उन्होंने इस महासंहिताका अध्ययन किया था—

'परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥'

इस सम्बन्धमें एक इतिहास भी प्रसिद्ध है। एक बार श्रीशुकदेवजी संसारसे उपरत होकर वनमें चले गये और वहाँ ध्यानाभ्यासमें तत्पर होकर समाधिस्थ हो गये। उनकी बुद्धिवृत्ति निखिल दृश्य-प्रपञ्चका निरासकर अशेष-विशेष-शून्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त परब्रह्ममें लीन हो गयी और उन्हें बाह्य जगत्का कुछ भी भान न रहा। इसी समय भगवान् व्यासदेवके कुछ शिष्यगण उधर आ निकले। उन्होंने उन बालयोगीन्द्रको देखकर कुतूहलवश श्रीव्यासजीसे जाकर कहा कि 'भगवन्! हमने वनमें एक परम सुन्दर बालकको देखा है। वह बहुत दिनोंसे पाषाण-प्रतिमाके समान निश्चल-भावसे एक ही आसनसे बैठा हुआ है। उसे बाह्य जगत्का कुछ भी भान होना नहीं जान पड़ता।'

तब भगवान् व्यासदेवने सारी परिस्थिति समझकर उन्हें एक श्लोक कण्ठ कराया और कहा कि तुम लोग उस बालयोगीके पास जाकर इसे सुमधुर ध्वनिसे गाया करो। तदनन्तर शिष्यगण वनमें जाकर इस श्लोकका गान करने लगे—

'बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥'

शिष्योंके निरन्तर गान करनेसे भगवान् शुकदेवजीके अन्तःकरणमें इस श्लोकके अर्थकी स्फूर्ति हुई। यह नियम है कि जितना ही चित्त शुद्ध होगा, उतना ही शीघ्रतर उसमें भगवत्तत्त्वका अनुभव होगा। इसीसे किन्हीं-किन्हीं उत्तम अधिकारियोंको, जिनकी उपासना पूर्ण हो चुकी होती है, महावाक्यका श्रवण करते ही स्वरूप-साक्षात्कार हो जाता है।

उस श्लोकार्थकी स्फूर्ति होनेपर भगवद्विग्रहकी अनुपम रूपमाधुरीने उनके चित्तको क्षुभित कर दिया। उनकी समाधि खुल गयी और उन्होंने श्रीश्यामसुन्दरकी स्वरूपमाधुरीका वर्णन करनेवाले इस श्लोकको कई बार उन बालकोंसे कहलाया और कितनी ही बार आनन्दविभोर होकर स्वयं भी कहा। शिष्योंने भगवान् व्यासदेवके पास जाकर उन्हें यह सारा वृत्तान्त सुनाया। श्रीव्यासजी सोचने लगे कि इसे सुनकर भी वह आया क्यों नहीं! जब उन्होंने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका अन्वेषण किया तब उन्हें मालूम हुआ कि उसे यह संदेह है कि जिसका सौन्दर्यमाधुर्य ऐसा विलक्षण है वह मेरे-जैसे अकिञ्चन पुरुषसे स्नेह क्यों करेगा? तब व्यासजीने इस शंकाकी निवृत्ति करनेके लिये भगवान्की दयालुताको प्रकट करनेवाला यह श्लोक उन बालकोंको पढ़ाया और पूर्ववत् उन्हें श्रीशुकदेवजीके पास जाकर इसे गानेका आदेश किया।

'अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥'

(श्रीमद्भा० ३।२।२३)

—इस श्लोकको सुनकर श्रीशुकदेवजीको आश्वासन हुआ और उन्होंने बालकोंसे पूछा कि तुमने यह श्लोक कहाँसे याद किया है? बालकोंने कहा—'हमारे गुरुदेव श्रीव्यास भगवान्ने एक अष्टादश सहस्र श्लोकोंकी महासंहिता रची है। यह श्लोक उसीका है।'

यह सुनकर वे भगवान् व्यासदेवके पास आये और उनसे उस महाग्रन्थका अध्ययन किया। अध्ययन करनेमें एक दूसरा हेतु और भी था। '**नित्यं विष्णुजनप्रियः**'—भगवान् शुकदेवजीको सर्वदा विष्णुभक्तोंका संग प्रिय था। श्रीमद्भागवत वैष्णवोंका परमधन है। अतः इसके कारण उन्हें सदा ही वैष्णवोंका सहवास प्राप्त होता रहेगा, इस लोभसे भी उन्होंने उसका अध्ययन किया।

इससे शौनकजीके प्रश्नका उत्तर हो जाता है। वे हरिगुणाक्षिप्तमति थे, इसीलिये आत्माराम होनेपर भी उन्होंने इस महासंहिताका अध्ययन किया। इस भागवत-शास्त्रमें भगवान्का दिव्यातिदिव्य रहस्य निहित है; अतः जिस प्रकार वशीकरणमन्त्रसे लोगोंको अपने अधीन कर लिया जाता है, उसी प्रकार इस परम मन्त्रके कारण भक्तजन स्वयं ही आकृष्ट हो जाते हैं। इसके सिवा भगवान्के गुण, चरित्र और स्वरूपकी माधुरी स्वयं भी ऐसी मोहिनी है कि बड़े-बड़े सिद्ध मुनीन्द्र भी उनके कीर्तनमें प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्यने नृसिंहतापिनीयोपनिषद्के भाष्यमें कहा है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते।'

अर्थात् मुक्तजन भी लीलासे देह धारणकर भगवान्का गुणगान किया करते हैं। यही बात सनकादिके विषयमें भी कही जा सकती है।

जिस समय महाराज परीक्षित् गङ्गातटपर आकर बैठे,

उस समय बहुतसे ऋषि, मुनि, सिद्ध एवं योगीन्द्रगण उनके पास आये। उन सबसे उन्होंने यही प्रश्न किया कि 'भगवन्! मैं मरणासन्न हूँ; अतः मुमूर्षु पुरुषके लिये जो एकमात्र कर्तव्य हो वह मुझे बतलाइये।' इस विषयमें उस मुनीन्द्र-मण्डलीमें विचार हो रहा था; भिन्न-भिन्न महानुभाव अपने भिन्न-भिन्न मत प्रकट कर रहे थे; अभी कुछ निश्चय नहीं हो पाया था कि इतनेहीमें शुकदेवजी आ गये। उनसे भी यही प्रश्न हुआ। राजाने पूछा—'भगवन्! अब मेरी मृत्युमें केवल सात दिन शेष हैं; अतः कोई ऐसा कृत्य बतलाइये जिसके करनेसे मैं धीरोंकी प्राप्तव्य गतिको प्राप्त कर सकूँ।'

तब श्रीशुकदेवजी बोले—'राजन्! अन्यान्य आत्मज्ञ लोगोंके लिये तो सहस्त्रों साधन हैं, परंतु भक्तोंके लिये तो एकमात्र श्रीहरिश्रवण ही परमावलम्ब है।' इसके तीन भेद हैं—श्रीहरिका स्वरूपश्रवण, गुणकीर्तन और नामकीर्तन। उपनिषदादिसे भगवान्का स्वरूपकीर्तन होता है, इतिहास-पुराणादिसे रूप-गुण-कीर्तन होता है और विष्णुसहस्त्र-नामादिसे नाम-कीर्तन होता है।

आचार्योंका ऐसा मत है कि सम्पूर्ण भागवतमें दशम स्कन्ध सार है, उसका भी सारातिसार रासपञ्चाध्यायी है। इस रासपञ्चाध्यायीके अनेक प्रकारके अर्थ किये जाते हैं। आचार्यगण जो एक ही वाक्यकी अनेक प्रकारकी व्याख्या किया करते हैं, उसमें उनका यही तात्पर्य होता है कि किसी-न-किसी प्रकार जीवोंका भगवान्में प्रेम हो। देवर्षि नारदको संक्षेपमें श्रीमद्भागवतका उपदेश करके उनसे भी ब्रह्माजीने यही कहा था—

'यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय॥'

श्रीमद्भागवतमें यद्यपि शुद्ध निर्विशेष सच्चिदानन्दघन तत्त्व ही वर्णित है, तथापि यह आग्रह भी उचित नहीं है कि उसमें द्वैतका वर्णन है ही नहीं, और न निर्गुणवादियोंका यह कथन ही उचित है कि उसमें सगुणवाद नहीं है। वास्तवमें भागवतमें प्रेम-विघातक वेदान्त नहीं है। इसमें तो भक्ति, विरक्ति और भगवत्प्रबोध—इन तीनोंका ही वर्णन है।

यद्यपि यह समग्र दशम स्कन्ध आश्रयरूप ही है, तथापि लीलाविशेषके लिये इसमें भी अन्तरङ्ग-बहिरङ्गकी कल्पना की गयी है। जिनका भगवान्से जितना ही अधिक संसर्ग है वे उतने ही अधिक अन्तरङ्ग हैं। इसका वर्णन 'उज्ज्वल-नीलमणि' नामक ग्रन्थमें बहुत स्पष्टतया किया गया है। मथुरावासियोंकी अपेक्षा गोकुल-निवासी अधिक अन्तरङ्ग हैं, उनसे भी श्रीदामादि नित्यसखा अन्तरङ्ग हैं, उनकी अपेक्षा गोपाङ्गनाएँ अन्तरङ्ग हैं, गोपाङ्गनाओंमें ललिता-विशाखा आदि प्रधान यूथेश्वरियाँ अधिक अन्तरङ्ग हैं और उन सभीकी अपेक्षा श्रीवृषभानुनन्दिनी अन्तरतम हैं। क्योंकि इस क्रमसे, रासलीलामें सर्वान्तरतम व्रजाङ्गनाओंका ही प्रसंग है, यह सर्वान्तरतम लीला है।

इससे पूर्व भगवान्ने गोपोंको अपना स्वरूप-साक्षात्कार कराया था। यद्यपि कालियदमन, गोवर्धनधारण, अघासुरादिके वध तथा अन्य अनेक अतिमानुष-लीलाओंके कारण गोपगण यह समझ चुके थे कि कृष्ण कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। फिर वरुणलोकमें उनका ऐश्वर्य देखकर तो गोपोंको यह निश्चय हो ही गया था कि ये साक्षात् भगवान् हैं, तथापि अन्तमें भगवान्ने अपने योगबलसे उन्हें अपने निर्विशेष स्वरूपका साक्षात्कार कराया और फिर वैकुण्ठलोकमें ले जाकर अपने सगुण स्वरूपका भी दर्शन कराया। इस प्रकार उन्होंने गोपोंको रासदर्शनका अधिकारी बनाया। यह अधिकार बिना स्वरूप-साक्षात्कारके प्राप्त नहीं होता। आजकल व्रजमें इसे छठी भावना कहते हैं—*'छठी भावना रास की।'* पहली पाँच भावनाओंको क्रमशः पार कर लेनेपर ही रासदर्शनका अधिकार प्राप्त होता है। पाँचवीं भावनामें देह-सुधि भूल जाती है—*'पाँचे भूले देह-सुधि'।* अर्थात् इस भावनामें ब्रह्मस्थिति हो ही जाती है। ऐसी स्थिति हुए बिना पुरुष रासदर्शनका अधिकारी नहीं होता।

श्रीमद्भागवतमें जहाँ गोपोंको वैकुण्ठधाममें ले जाकर अपने सगुण-स्वरूपका साक्षात्कार करानेकी बात आती है, वहाँ उनके प्रत्यावर्तनके विषयमें कोई उल्लेख नहीं है। इससे कुछ लोगोंका ऐसा मत है कि यह भगवान्के नित्यधामकी नित्यलीलाका ही वर्णन है। इस लोकमें यह लीला हुई ही नहीं थी। यदि ऐसी बात हो तब तो भगवान्की इस लोकोत्तर लीलाके विषयमें कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती, क्योंकि इस लोकमें न होनेके कारण इसमें इस लोकके नियमोंकी रक्षा करना आवश्यक नहीं हो सकता। किंतु यदि भगवान्ने इस लोकमें ही यह लीला की हो तब भी उनके—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'

इस कथनसे जो विरोध प्रतीत होता है वह ठीक नहीं, क्योंकि भगवान्के विषयमें ऐसा नियम नहीं है कि वे लोकमर्यादाका अतिक्रमण करते ही न हों। जब उनके अनन्य

भक्त और तत्त्वनिष्ठ मुनिजन भी मर्यादातिलंघन करते देखे गये हैं तो साक्षात् भगवान्‌के विषयमें तो कहना ही क्या है। उनके पादपद्ममकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिजनोंकी गतिविधि भी सर्वसाधारणके लिये सुबोध नहीं हुआ करती—

'त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां
वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम्।'

वस्तुस्थिति तो ऐसी है कि आत्मतत्त्व सभी प्रकारके शुभाशुभ कर्मोंसे शून्य है। जब कि उस आत्मतत्त्वको जाननेवाले महापुरुषोंकी अविलुप्त महिमा भी कर्मोंसे न्यूनाधिक नहीं होती तो श्रीकृष्णरूपमें अवतीर्ण साक्षात् परमात्मतत्त्वका किसी भी शुभाशुभ कर्मसे किस प्रकार संश्लेष हो सकता है? अतः प्रकृति और प्राकृत सब प्रकारके प्रपञ्चसे अतीत परमात्मा सब प्रकारकी शृंखलाओंसे शून्य है। अब हमें यह विचार करना है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन क्या है? भगवान् स्वयं कहते हैं—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'

परंतु यह बात ऐसी है जैसे मच्छरको मारनेके लिये तोप लगायी जाय। भला जो भगवान् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं, जिनके संकल्पमात्रसे सम्पूर्ण प्रपञ्च बन गया है तथा जिनके विषयमें यह कहा जाता है—'निःश्वसितमस्य वेदा वीक्षितमेतस्य पञ्च भूतानि स्मितमेतस्य चराचरम् अस्य च सुप्तं महाप्रलयः।'

उन्हें क्या इस तुच्छ कार्यके लिये अवतार लेनेकी आवश्यकता है? अतः इसका तो कोई ऐसा कारण होना चाहिये, जहाँ भगवान्‌की सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता कुण्ठित हो जाती हो और जिसके लिये उन्हें दिव्य-मङ्गल-विग्रह धारण करना अनिवार्य हो जाता हो।

हमें इसका उत्तर महारानी कुन्तीके इन शब्दोंसे मिलता है—

'तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥'

कुन्ती कहती हैं—'भगवन्! जो अमलात्मा परमहंस मुनि हैं उनको भक्तियोगका विधान करनेके लिये आपका अवतार होता है; हम स्त्रियाँ इस रहस्यको कैसे समझ सकती हैं।'

यहाँ भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन अमलात्मा मुनियोंके लिये भक्तियोगका विधान करना बतलाया गया है। जैसे कर्मका स्वरूप द्रव्य और देवता हैं, उसी प्रकार भक्तिका स्वरूप भजनीय है। भजनीयके बिना भक्ति नहीं हो सकती। प्रेमलक्षणा भक्तिका आलम्बन कोई अत्यन्त चित्ताकर्षक और परम अभिलषित तत्त्व ही हो सकता है, जो महामुनीश्वर प्रकृति-प्राकृत प्रपञ्चातीत परमतत्त्वमें परिनिष्ठित हैं, उनके मनका आकर्षक भगवान्‌के सिवा प्राकृत पदार्थोंमें तो कोई नहीं हो सकता। अतः इस बातकी आवश्यकता होती है कि उनके परमाराध्य भगवान् ही अचिन्त्य एवं अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यमयी मङ्गलमूर्तिमें अवतीर्ण होकर उन्हें भजनीय-रूपसे अपना स्वरूप समर्पण कर भक्तियोगका सम्पादन करें, क्योंकि जो कार्य पूर्ण परब्रह्म परमात्माके अवतीर्ण हुए बिना सम्पन्न न हो सकता हो, जिसके सम्पादनमें उनकी सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता कुण्ठित हो जाय उसीके लिये उनका अवतीर्ण होना सार्थक है।

जिस समय शुद्ध परब्रह्म अपनी अचिन्त्य लीला-शक्तिसे कोटि-कामकमनीय महामनोहर श्रीकृष्ण-मूर्तिमें प्रादुर्भूत होंगे, उस समय उस तत्त्वज्ञको भी उनका वह दिव्य-दर्शन निर्विशेष ब्रह्मदर्शनकी अपेक्षा अधिक आनन्दप्रद प्रतीत होगा। जिस प्रकार सूर्यको दूरवीक्षण यन्त्रद्वारा देखनेपर उसमें जो विचित्रता प्रतीत होती है वह केवल नेत्रोंसे देखनेपर प्रतीत नहीं होती, उसी प्रकार लीला-शक्त्युपहित सगुण ब्रह्मदर्शनमें जो आनन्दानुभव होता है वह अशेष-विशेषशून्य शुद्ध परब्रह्मके साक्षात्कारमें भी नहीं होता। इसीसे श्रीरामचन्द्रका दर्शन होनेपर तत्त्वज्ञशिरोमणि महाराज जनकने कहा था—

'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥'

महाराज जनकके इस बरबस ब्रह्मसुखत्याग और रामदर्शनानुरागमें क्या कारण था? केवल यही कि अबतक वे शुद्ध परब्रह्म-रूप सूर्यको अपने नेत्रोंसे ही देखते थे, किंतु इस समय वे उसके लीलाशक्तिरूप दूरवीक्षणोपहित स्वरूपका दर्शन कर रहे थे। केवल नेत्रसे दीखनेवाले आदित्यकी अपेक्षा दूरवीक्षणोपहित आदित्यदर्शनमें विशेषता है ही।

ब्रह्मदर्शी तत्त्वज्ञगण जिस निर्विशेष शुद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान्‌का सगुण दिव्य-मङ्गल-विग्रह अधिक आकर्षक क्यों है। इस विषयमें भावुकोंका ऐसा कथन है कि जिस प्रकार पार्थिवत्वमें समानता होनेपर भी पाषाणादिकी अपेक्षा हीरा अधिक मूल्यवान् होता है तथा कपासकी अपेक्षा उससे बना हुआ वस्त्र बहुमूल्य होता है, उसी प्रकार शुद्ध परब्रह्मकी अपेक्षा उसीसे विकसित भगवान्‌की दिव्य-मङ्गलमयी मूर्ति कहीं अधिक माधुर्य-

सम्पन्न होती है। इक्षुदण्ड स्वभावसे ही मधुर है, किंतु यदि उसमें कोई फल लग जाय तो उसकी मधुरिमाका क्या कहना है? मलयाचलोत्पन्न चन्दनके वृक्षमें यदि कोई पुष्प आ जाय तो वह कैसा सौरभसम्पन्न होगा? इसी प्रकार भगवान्‌की सगुण मूर्तिके सम्बन्धमें समझना चाहिये।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि भगवान्‌के निर्गुण निर्विशेष स्वरूपमें वह परमानन्द है ही नहीं जो उनकी सगुण मूर्तिमें है। कारण, इक्षुदण्डकी मधुरिमा, पाषाणादिका मूल्य और चन्दनादिकी सुगन्धि—ये सब सातिशय हैं। इनमें न्यूनाधिकता हो सकती है, परंतु भगवान्‌में जो सौन्दर्य-माधुर्य एवं आनन्दादि हैं वे निरतिशय हैं।

जो लोग निर्विशेष परब्रह्मका अपरोक्ष साक्षात्कार कर चुके हैं उन्हें कैवल्य तो ज्ञानसे ही प्राप्त होता है; किंतु वे जीवन्मुक्तिकालमें भी भगवान्‌की अचिन्त्य लीलामयी शक्तिके योगसे दिव्य मङ्गलमय विग्रहमें आविर्भूत हुए परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्रकी सौन्दर्य-माधुर्य-सुधाका समास्वादन किया करते हैं। अचिन्त्यानन्द सुधासिन्धु श्रीभगवान्‌के जिस माधुर्यका समास्वादन केवल वृत्ति-शून्य अन्तःकरणसे नहीं किया जा सकता, उसे भी तत्त्वज्ञ भावुकगण भगवान्‌की दिव्य लीलाशक्तिकी सहायतासे अनुभव कर लेते हैं।

तत्त्वज्ञगण केवल निर्वृत्तिक अन्तःकरणसे वैसी मधुरताका अनुभव नहीं कर सकते जैसी कि लीलाशक्तिके योगसे आविर्भूत हुए भगवान्‌के सगुण स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर होती है। इसीसे अमलात्मा तत्त्वज्ञ मुनियोंको उनका भजनीय स्वरूप समर्पणकर भक्तियोगके द्वारा उन्हें अपने सौन्दर्य-माधुर्यका समास्वादन करानेके लिये ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण होते हैं। उन्हें यदि सगुण साकार ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाय तो भी देहपातके अनन्तर वे कैवल्यपद ही प्राप्त करेंगे, किंतु सगुणोपासक अपने इष्टदेवका नित्यधाम प्राप्त करेंगे। इसीसे भक्ति-रसायनादि ग्रन्थोंमें तत्त्वज्ञको सगुण-दर्शनसे केवल दृष्ट-फल माना है और उपासकको दृष्ट और अदृष्ट दोनों।

अतः ऊपर जो बतलाया है, इससे यही निश्चय होता है कि भगवान्‌के अवतारका प्रधान प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगका विधान करना है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये वे अपनी लीलाशक्तिसे दिव्य मङ्गलमय देह धारण करते हैं। यह लीलाशक्ति भगवान्‌की परम अन्तरङ्गा है।

गोपाङ्गनाओंको भी भगवद्दर्शनके बिना '**त्रुटिर्युगायते**'—एक-एक पल युगके समान हो रहा था। उन्हें संतुष्ट करनेमें भगवान्‌का निर्विशेष रूप असमर्थ था। इसलिये ऐसी अवस्थामें भगवान्‌को मूर्तिमान् होकर अवतीर्ण होना ही पड़ा, क्योंकि उनकी तृप्ति तथा जीवन बिना इसके नहीं हो सकते। भगवान्‌के अवतीर्ण हुए बिना वे कार्य नहीं हो सकते थे; इसी कारण प्रभुका प्रादुर्भाव हुआ।

अब, साथ ही यह भी सोचना चाहिये कि—

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥'

—यह श्लोक भी ठीक ही है। यहाँ '**साधु**' शब्दसे गोपाङ्गना-जैसे साधु ही समझने चाहिये, जिनका परित्राण भगवान्‌के दर्शनोंके बिना हो ही नहीं सकता था तथा दुष्कृती भी साधारण नहीं बल्कि भगवान्‌के अन्तरङ्ग जय-विजय-जैसे दुष्कृती समझने चाहिये, जिनका दुष्कृत भगवान्‌की लीला-विशेषके विकासके ही लिये था; अन्य दुष्कृतियोंको तो उनका दुष्कर्म ही नष्ट कर देगा। इसके सिवा धर्मसंस्थापनसे भी भक्तियोगरूप धर्मकी ही स्थापना समझनी चाहिये, जो कि ऐसे भजनीयके बिना नहीं हो सकती।

इस श्लोककी व्याख्या करते हुए भगवान् भाष्यकारादिने भगवान्‌के अवतारका प्रयोजन सर्वसाधारणके कल्याणोपयुक्त धर्मकी स्थापना ही बतलाया है। इस प्रकार यद्यपि उनके प्रादुर्भावका प्रधान प्रयोजन अमलात्माओंके भक्तियोगका विधान करना ही है, तथापि अवान्तर प्रयोजन सन्मार्गस्थ साधुओंकी रक्षा और वैदिक-स्मार्तादि कर्मोंकी स्थापना भी है ही। आगेके कथनानुसार भगवान्‌में लोक-शिक्षादि भी देखे ही जाते हैं। भगवान् तो सर्वनियन्ता हैं, इसलिये उनका प्रादुर्भाव योगारुरुक्षुओंके लिये भी था और योगारूढोंके लिये भी। योगारुरुक्षुओंको वैदिक-स्मार्त कर्मोंमें प्रवृत्त करना था और योगारूढोंको केवल भगवन्निष्ठामें नियुक्त करना था। अतः भगवान्‌की यह उक्ति उचित ही है—

'न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥'

वस्तुतः भगवान् तो विधि-निषेधातीत हैं। वे केवल लोकशिक्षाके लिये ही शास्त्रीय शृंखलाका अवलम्बन करते हैं, क्योंकि शास्त्रादि लोगोंको मर्यादापालनमें वैसा परिनिष्ठित नहीं कर सकते, जैसा कि उस मर्यादाका पालन करनेवाले महापुरुष कर सकते हैं। अतः शास्त्रके अर्थज्ञानके साथ शास्त्रार्थके

अनुष्ठानमें परिनिष्ठित व्यक्तियोंके सहवासकी भी बहुत आवश्यकता है। अतः लोगोंको वैदिक-स्मार्त कर्मोंमें प्रवृत्त करनेके लिये ही भगवान् स्वयं भी उनका यथाविधि अनुष्ठान करते हैं—

इसका तात्पर्य यही है कि जो लोग आरुरुक्षु हैं, जो संसारसागरसे पार नहीं हुए हैं उनके उपदेशार्थ तो भगवान् लौकिक-वैदिक मर्यादाओंका पालन करते हैं। इसलिये जिन्हें संसाररूप स्वाभाविक मृत्युको पार करना है, उन्हें तो मर्यादापालनरूप महौषधका सेवन करना चाहिये। उनके लिये तो भगवान् भी मर्यादापालन करते हैं; किंतु जो योगारूढ अमलात्मा परमहंस हैं उनके लिये ऐसी कोई विधि नहीं है; उन्हें एकमात्र भगवन्निष्ठामें ही स्थिर करनेके लिये भगवान् मर्यादाका उल्लंघन कर देते हैं, क्योंकि वे स्वयं तो समस्त विरुद्ध धर्मोंके आश्रय ही हैं। उनके लिये मर्यादापालन और मर्यादातिलंघन दोनों ही समान हैं।

यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण '**तत्**' पदार्थ हैं और गोपाङ्गनाएँ '**त्वम्**' पदार्थ हैं। यदि इन दोनोंका परस्पर संश्लेष हो तो क्या वह कामक्रीडा कही जायगी? स्थूल दृष्टिसे तो अवश्य यह कामक्रीडा-सी मालूम होती है, परंतु अन्तरङ्ग दृष्टिसे तो यह जीव और ब्रह्मका अद्भुत संयोग ही है।

श्रीमद्भागवतमें यह कई स्थानोंमें देखा जाता है कि गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगमें संतप्त रहती थीं और हर समय उनके दर्शनोंके लिये लालायित रहती थीं तथा इसी प्रकार भगवान् भी व्रजसुन्दरियोंकी विरह-व्यथासे व्याकुल रहते थे। उन दोनोंहीको पारस्परिक संयोग बहुत अभीष्ट था। प्रेमका यह स्वभाव है कि प्रेमी परस्पर गाढालिङ्गनके लिये उत्सुक रहा करते हैं। माता अपने सुकुमार शिशुको हृदयसे लगानेमें कितना सुख अनुभव करती है। जो जितना अधिक प्रेमास्पद होता है उसका व्यवधान उतना ही अधिक असह्य होता है।

यहाँ गोपाङ्गनाएँ और भगवान् दोनों ही सच्चिदानन्दस्वरूप थे। अतः उनकी लीला प्राकृत है ही नहीं। इसलिये इसमें मर्यादातिलंघनका प्रश्न ही नहीं हो सकता। यह तो वह स्थिति है जिसकी प्राप्तिके लिये सारी मर्यादाओंका पालन किया जाता है।

अतः जिस समय भगवान्का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय उन्होंने यही विचार किया कि पहले अवतारके प्रधान प्रयोजनकी ही पूर्ति करनी चाहिये। इसीसे पहले उन्होंने अमर्यादित दिव्य लीलाएँ कीं और पीछे मर्यादित लोक-संग्रहमयी। लोकमें भी यह प्रायः देखा जाता है कि उपनयन-संस्कारसे पूर्व उच्छृंखल प्रवृत्ति रहती है और उसके पीछे मर्यादानुसार आचरण किया जाता है। यही बात भगवान्के विषयमें भी देखी जाती है। इस प्रकार प्रधान प्रयोजनकी पूर्तिके लिये स्वीकार की हुई भगवान्की उच्छृंखलतामें भी एक प्रकारकी सुशृंखलता ही है; इस मर्यादातिलंघनमें भी विशेष प्रकारका मर्यादापालन ही है।

यद्यपि साधकोंके लिये स्त्रियोंका चिन्तनमात्र भी महान् अनर्थका हेतु होता है, तथापि भगवान्ने तो कामजयके लिये ही यह अद्भुत लीला की थी।

टीकाकार श्रीश्रीधरस्वामी लिखते हैं—

'ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा ।
जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः ॥'

अर्थात् ब्रह्मादि लोकपालोंको जीत लेनेके कारण जो अत्यन्त अभिमानी हो गया था, उस कामदेवके दर्पको दलित करनेवाले गोपियोंके रासमण्डलके भूषणस्वरूप श्रीलक्ष्मीपतिकी जय हो। वस्तुतः रासक्रीडामें प्रवृत्त होकर भगवान्ने मर्यादाका उल्लंघन नहीं किया, बल्कि उन्होंने तत्त्वज्ञोंकी निष्ठाकी दृढ़ता ही प्रदर्शित की है। अहो! जो साक्षात् शृंगाररसकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं, उन आकृष्टकारक अनेकविध दिव्य हाव-भाव-कटाक्षोंका सम्प्रयोग होनेपर भी उनका चित्त तनिक भी विचलित नहीं हुआ। भगवान्की इस स्थितिका श्रीशुकदेवजीने भिन्न-भिन्न शब्दोंमें कई जगह वर्णन किया है, जैसे—'**साक्षान्मन्मथमन्मथः**', '**आत्मन्यवरुद्धसौरतः**', '**आत्मारामोऽप्यरीरमत्**' इत्यादि।

भगवान् सर्वेश्वर हैं; उनकी यह लीला कामजयके लिये ही हुई थी। कामने ब्रह्मादिको जीत लिया था। इससे उसका अभिमान बहुत बढ़ गया था और अब उसने उन सबके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे भी युद्ध करनेका निश्चय किया। भगवान्ने उसका यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। कन्दर्पने भी श्रीकृष्णके अद्भुत प्रभावको जानकर विजयकी लालसासे श्रीव्रजाङ्गनाओंके अङ्गरूप काञ्चनमय कामग दुर्गका आश्रयण किया एवं वहाँ प्रधान-प्रधान अवयवोंको अपना खास निवासस्थान चुना और अपने मित्र वसन्तकी सहायतासे नाना प्रकारके कुसुमोंका ही धनुष-बाण तथा अस्त्र-शस्त्र लेकर स्वाधीन व्रजाङ्गनाओंके काञ्चनमय अङ्गरूप कामग दुर्गमें स्थित होकर युद्धकी पूर्ण तैयारी कर ली। इतनेपर भी श्रीकृष्णने उसे दुर्बल ही देखा। यह नियम है कि बड़े-बड़े योद्धा दुर्बल शत्रुसे युद्ध करना उचित नहीं समझा करते। इसलिये युद्ध करनेसे पूर्व वे उसे सबल कर देते हैं। अपूर्ण

चन्द्रपर राहु भी आक्रमण नहीं करता। जब एक राक्षसकी भी ऐसी नीति है तो सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ही ऐसा क्यों न करते? अत: भगवान्ने पहले तो श्रीमहादेवजीके कोपानलसे दग्ध हुए कन्दर्पको पुष्ट किया। वह गोपाङ्गनाओंके हृदयमें स्थित था। उसे वेणुनाद-द्वारा अपनी दिव्य अधर-सुधाका पान कराकर भगवान्ने सबल कर दिया, परंतु गोपाङ्गनाओंके हृदयमें तो मन भी रहता है और वह भगवान् श्रीकृष्णका परम भक्त है तथा कामदेव मनोज होनेके कारण उसका पुत्र है। अत: अपने पिताके विरुद्ध वह कोई चेष्टा कैसे कर सकता था और वृद्ध पिताके सामने उससे कोई धृष्टता भी कैसे बन सकती थी? इसलिये उसे नि:संकोच करनेके लिये भगवान्ने वेणुनाद-द्वारा उस मनको अपने पास बुला लिया। अब कामदेव स्वतन्त्र हो गया। गोपाङ्गनाओंके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंने उसके अस्त्र-शस्त्र होकर भी सहायता की तथा चन्द्रमा, वसन्त, यमुनापुलिन, निकुञ्ज और मलय-मारुत भी उसके सहकारी हो गये। इस प्रकार पहले सर्वसाधन-सम्पन्न करके फिर उसे परास्त करनेके लिये ही भगवान्ने यह ललित लीला की; इसीसे यहाँ उन्हें '**साक्षान्मन्मथमन्मथ:**' कहा गया है।

भगवान्का स्वमाधुर्य ऐसा मोहक था कि जो काम संसारके प्रत्येक प्राणीको मोहित करनेमें समर्थ है, वही जिस समय अपने दल-बल-सहित भगवान्की परम सुन्दर दिव्य मङ्गलमयी मूर्तिके सामने आया तो उनका लावण्य देखकर मानो धूलिमें मिल गया। इसीसे उन्हें '**साक्षान्मन्मथमन्मथ:**' कहा गया है। वस्तुत: श्रीकृष्णचन्द्रके पादारविन्दकी नखमणि-चन्द्रिकाकी एक रश्मिके माधुर्यका अनुभव करके कन्दर्पका दर्प प्रशान्त हो गया और उसे ऐसी दृढ़ भावना हुई कि मैं लक्षों जन्म कठिन तपस्या करके श्रीव्रजाङ्गनाभावको प्राप्तकर श्रीकृष्णके पादारविन्दकी नखमणिचन्द्रिकाका यथेष्ट सेवन करूँगा, फिर साक्षात् श्रीकृष्ण-रसमें निमग्न व्रजाङ्गनाओंके संनिधानमें कामका क्या प्रभाव रह सकता था? यह भी एक आदर्श है। जिस प्रकार साधकोंके लिये चित्रलिखित स्त्रीको भी न देखना आदर्श है, उसी प्रकार जो बहुत उच्च कोटिके सिद्ध महात्मा हैं उनके लिये मानो यह चेतावनी है कि भाई, तुम अभिमान मत करना; जबतक तुम ऐसी परिस्थितिमें भी अविचलित न रह सको तबतक अपनेको सिद्ध मत मान बैठना। अहो! जिनके नखमणिकी ज्योत्स्नासे भी अनन्तकोटि कन्दर्पोंका दर्प दलित हो जाता है, ऐसे परम सुन्दरी व्रजसुन्दरियोंको भी जिन्होंने रमाया, उन श्रीहरिके दिव्यातिदिव्य योगका माहात्म्य कहाँतक कहा जा सकता है?

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कामुकोंके लिये तो नर-नारायणका आदर्श भी अनुपयुक्त है। उन्हें तो मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके ही चरणचिह्नोंका अनुसरण करना चाहिये। श्रीनर-नारायणका आदर्श साधकोंके लिये है; उन्हें ऋषभदेवजीके आदर्शका अनुकरण नहीं करना चाहिये, क्योंकि सर्वकर्म-संन्यासका अधिकार सबको नहीं है। उनका आचरण तो परमोत्कृष्ट तत्त्वज्ञोंके लिये ही है। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके दिव्यातिदिव्य आचरणोंका तो यदि कोई मनसे भी अनुकरण करेगा तो पतित हो जायगा, '**नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वर:**' क्योंकि वे तो निरतिशय ऐश्वर्यवान् साक्षात् भगवान्की ही अलौकिक लीलाएँ हैं। कोई भी जीव इस स्थितिपर नहीं पहुँच सकता। भला भगवान्के सिवा ऐसा कौन है जिसने सम्पूर्ण जगत्को मोहित करनेवाले कामदेवका मान-मर्दन किया हो! मदनमोहन तो एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। करना तो दूर; हर किसीको तो इसे सुनना भी नहीं चाहिये, क्योंकि ***'छठी भावना रास की'***, इसे सुनने-देखनेका अधिकार तो देहाध्याससे ऊपर उठे बिना प्राप्त ही नहीं होता।

भगवान्ने जो कहा है कि—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन:।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥'

उसका तात्पर्य यह नहीं है कि श्रेष्ठ पुरुषोंके सभी आचरणोंका अनुकरण करना चाहिये; बल्कि जो अपनी योग्यताके अनुसार हो उसीका आचरण करना उचित है। भगवान् शंकर हलाहल विषका पान कर गये थे, इसलिये क्या सभीको विष-पान करना चाहिये? तैत्तिरीयोपनिषद्में आचार्य अपने शिष्योंसे कहते हैं—

'यान्यस्माकꣳसुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।'

यह बहुत सम्भव है कि कोई चरित्र महापुरुषोंके लिये उचित हो, किंतु साधारण पुरुषोंके लिये उचित न हो। संन्यासी लोग संध्योपासन नहीं करते, इसलिये क्या गृहस्थोंको भी उसे छोड़ देना चाहिये? फिर यहाँ तो अलौकिक लीलाकारी भगवान्की बात है, जिसका अनुकरण करना तो दूर रहा, समझना भी महा कठिन है।

इस प्रकार भगवान्की यह रासलीला उच्च कोटिके योगारूढोंके लिये ही एक उच्च आदर्श है। इसके श्रवणमात्रसे पुण्य होता है।

श्रीकृष्णावतारका रहस्य

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवान्‌के सब अवतार लीला-परिपूर्ण होते हैं। भगवान्‌में कोई न्यूनाधिक्य, कोई तारतम्य, कोई छोटा-बड़ा नहीं होता। परंतु वे जहाँ जिस गुणकी, जिस धर्मकी आवश्यकता होती है, वहाँ उस अवतारके द्वारा मुख्य रूपसे उसीको प्रकट करते हैं। सच्चिदानन्दमें-से कुछ कम कर दिया जाय या उसमें कुछ बढ़ा दिया जाय—ऐसा सामर्थ्य तो किसीमें भी नहीं है। भगवान् श्रीरामचन्द्रका अवतार सत्-तत्त्वकी प्रधानतासे है। सद्धर्म, सद्भाव, सद्विचारसम्पन्न श्रीरामचन्द्र मूर्तिमान् धर्म हैं—'**रामो विग्रहवान् धर्मः।**' कपिल-दत्तात्रेय आदि अवतार चित्-प्रधान अवतार हैं, उनमें अधिक-से-अधिक ज्ञान ही प्रकट होता है; किंतु भगवान् श्रीकृष्णका अवतार आनन्द-प्रधान अवतार है। सभी अवतारोंकी अपनी पृथक् विशेषता होते हुए भी किसी-किसी अवतारमें विशेष धर्मकी अभिव्यक्ति होती है। श्रीकृष्णमें आनन्द अधिक प्रकट हुआ है। इसलिये आसक्तिके विषय हो जाते हैं श्रीकृष्ण। आनन्दसे सबका प्रेम होता है, अतः सब आनन्द चाहते हैं। मुझे सुख मिले, दुःख कभी न मिले—यह प्रार्थना प्रसिद्ध है—

सुखं मे भूयाद् दुःखं मे मा भूत्।

इस प्रकार सुखके प्रति, आनन्दके प्रति सबका आकर्षण होता है और श्रीकृष्णके जीवनमें उसकी अभिव्यक्ति बहुत अधिक है। इसीलिये वे लोगोंकी प्रीतिको, आसक्तिको अपनी ओर अधिक खींचते हैं; क्योंकि जहाँ सुख होता है, वहाँ मन जाता है। भगवान्‌में लोगोंकी प्रीति हो, आसक्ति हो और दुनियाका जो बखेड़ा है, इन्द्रजाल है, वह भूल जाय—इसके लिये भगवान् श्रीकृष्णका अवतार होता है। हमारे मनके लिये कोई ऐसा स्थान चाहिये, जहाँ पहुँचकर हम दुनियाके सब दुःखोंको, सब पीडाओंको, सब उत्पीडनोंको, सब शोषणोंको एवं सब अभावोंको भूल जायँ। मनुष्यके हृदयमें एक ऐसा स्थान होना आवश्यक है और उस हृदयके रूपमें स्वयं भगवान् ही रहते हैं। '**हृदि अयते इति हृदयं ब्रह्म**' जो हृदयमें विराजमान हो, उसका नाम हृदय है। हृत् माने संस्कारोंको आकृष्ट करनेवाला। हम जो-जो देखते हैं, सुनते हैं, अनुभव करते हैं, उनका संस्कार जहाँ इकट्ठा होता है, उसका नाम होता है हृत्। '**हरति इति हृत्**'—'हृ' धातुसे 'त' जुड़ जाता है। 'हृत्' शब्दका अर्थ होता है अनुभूत विषयोंके संस्कारको अपने अंदर आहरण करके रखनेवाला। उन्हीं संस्कारोंके भीतर भगवान् एक-एक संस्कारको जगाते हैं, शान्त करते हैं और हमारी बुद्धिको भी वही प्रेरणा देते हैं—

धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (ऋग्० ३। ६२। १०)

ध्यान देनेकी बात यह है कि एक मैं हूँ और एक मेरी बुद्धि है। बुद्धि दुनियाके बारेमें सोचती-विचारती रहती है। पर इस बुद्धि-यन्त्रको, इसकी मशीनको जो चलानेवाला है, वही मेरे और मेरी बुद्धिके बीचमें अर्थात् मुझमें सबसे निकट रहता है। पहले हमारा दृश्य अन्तर्यामी होता है, फिर उसके द्वारा नियम्य बुद्धि और बुद्धिका प्रपञ्च होता है। वह नियामक कौन है? हमारा परम प्रेमास्पद, हमारी आत्मासे अभिन्न स्वयं भगवान् ही नियामक है।

भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

बुद्धि-यन्त्रपर आरूढ होकर माया दिखायी पड़ रही है। इस यन्त्रको सतत चलानेवाला वही परमेश्वर हमारे हृदयमें विराजमान है। भगवान्‌की लीला ही ऐसी है। लीला तो करता ही है वह। लीलामें कर्तापनका अभिमान नहीं होता, कर्मका कोई फल उदय नहीं होता और कर्ममें वासना नहीं रहती अर्थात् जिसमें कर्तापन न हो, वासना न हो, फलोदय न हो, उसको लीला कहते हैं। यह कर्मसे विलक्षण है, चरित्रसे विलक्षण है।

यह जो आनन्द-प्रधान लीला है भगवान्‌की, वह सभी जीवोंको सुख देनेवाली है। तत्त्वज्ञानी पुरुष उसका गान करनेमें आनन्द लेते हैं। हृदयमें जो प्रेम है, रस है, उसकी बोलीका नाम संगीत है। वास्तवमें प्रेम ही सौरभ्य है, सुगन्ध है, सौरस्य है, मिठास है, सौन्दर्य है, सौकुमार्य है और प्रेम ही सौस्वर्य तथा संगीत है। प्रेम हमारी सब इन्द्रियोंको अपनी ओर खींच लेता है। हमारे जीवनमें एक बार भगवत्-रस आ जाये तो क्या होता है, यह आप गोस्वामी तुलसीदासजीके शब्दोंमें सुनिये—

जो मोहि राम लागते मीठे।
तौ नवरस-षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥

इससे जीवन्मुक्त पुरुष, जिन्हें कोई तृष्णा नहीं है, इसका

गान करते हैं स्वयं भगवान्‌के पास बैठकर। जो मुमुक्षु पुरुष हैं, उनके लिये यह संसाररूप रोगकी औषधि है। औषधि क्या होती है? **'ओषति दोषान्, धत्ते गुणान्'** जो हमारे दोषोंको मिटा दे और हमारे जीवनमें सद्‌गुणका आधान करे, उसका नाम औषधि है। जो लोग इन्द्रियोंका जीवन ही जी रहे हैं, उनके लिये भी **'श्रोत्रमनोभिरामात्'**—कानसे सुननेमें भी आनन्दमयी और मनसे विचार करनेमें भी आनन्ददायी है। जब हम श्रीमद्भागवतमें यह श्लोक पढ़ते हैं, तब पढ़नेमें भी कितना आनन्द आता है—

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ८)

कृष्ण-कृष्ण-कृष्ण। रसवर्षी बादलोंका समूह और उसमें कौंधती हुई बिजली। केनोपनिषद्‌में ध्यानकी यह उपासना बतायी हुई है कि **'विद्युतो व्यद्युतत्'** (केन० ४। ४)। इस प्रकारका ध्यान करो कि रसवर्षी घन-घटा छायी हुई है अपने हृदयमें और उसमें जैसे बारम्बार बिजली कौंध जाती है, वैसे ही प्रकाश आ जाता है। ठीक यही उपमा देकर श्रीमद्भागवतमें रासके प्रसंगका वर्णन है।

श्रीकृष्णका जीवन लौकिक दृष्टिसे भी सम्पूर्ण कलाओंसे परिपूर्ण है। महाभारतमें वर्णन आता है कि जब महाभारत-युद्धके समय अर्जुनके घोड़े घायल हो जाते या थक जाते तब अर्जुन तो अपने शिविरमें जाकर विश्राम करने लगते, किंतु श्रीकृष्ण घोड़ोंकी मालिश करते और जहाँ चोट लगी होती, वहाँ मरहम-पट्टी करते। इससे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण आयुर्वेदके महान् ज्ञाता थे। वे केवल मनुष्यकी चिकित्सामें ही नहीं, पशुओंकी चिकित्सामें भी निपुण थे। जरासन्धने तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रह बार मथुरापर चढ़ाई की, लेकिन मथुराका एक आदमी भी नहीं मरा और बलराम तथा श्रीकृष्णने उसकी सेनाका संहार कर दिया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उनको युद्ध-विद्यामें कितनी निपुणता प्राप्त थी। आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य-वेद अथवा शिल्पवेद सबमें वे पारंगत थे। उन्होंने इतनी जल्दी द्वारकाकी रचना करवायी थी कि सब लोग चकित हो गये थे। श्रीकृष्णको स्थापत्य-वेदका कितना ज्ञान था—इसका परिचायक उनके द्वारा निर्मित धर्मराजका वह सभागार था, जिसमें जल-थलका भ्रम हो जाता था।

गन्धर्व-वेदके चारों अङ्गों—संगीत, वाद्य, नृत्य और अभिनयमें श्रीकृष्ण निपुण थे। यह केवल वंशी-ध्वनि नहीं—आध्यात्मिक लीला-ध्वनि है। आध्यात्मिक उन्नति तो जीवन जीनेकी एक कला है, जिसमें पूरा-का-पूरा सौन्दर्य और पूरा-का-पूरा माधुर्य अभिव्यक्त होता है। जब हम श्रीकृष्णकी लीलापर ध्यान देते हैं, तब उसमें मनुष्यका मन खींचनेके लिये जो भी सामग्री चाहिये, वह सब मिलती है। श्रीकृष्णकी बाल्यावस्था जीवनमें आनन्द प्राप्त करने तथा ध्यानके लिये है, वह अनुकरण करनेके लिये नहीं है। उनकी बाल्यावस्थाका जीवन तो ध्येय जीवन है।

आपको यह बात मालूम होगी कि जब हम आँख बन्द करके देखते हैं कि यमुनाजी बह रही हैं, गोवर्धनका शिखर दीख रहा है और यह वृन्दावन है, तब हमें कैसा सुखद अनुभव होता है। इसका वर्णन भी केनोपनिषद्‌में है—**'तद्ध तद्वनं नाम'** (४। ६)। वेदोंमें भी मन्त्र आता है—

'किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस। (ऋग्वेद १०। ८१। ४)

यहाँ प्रश्न है कि वह वन कौन-सा है, वह वृक्ष कौन-सा है, जिससे विश्वकर्माने विश्वसृष्टि बनायी? कृष्णयजुर्वेदके तैत्तिरीय ब्राह्मणमें इसका उत्तर है—**'ब्रह्म वनं, ब्रह्म स वृक्ष आस।'** अर्थात् ब्रह्म ही वह वन है और ब्रह्म ही वह वृक्ष है, जिससे विश्वकर्माने यह सृष्टि रची है। जैसे कलाकार लकड़ीमें मूर्ति बनाते हैं, वैसे ही ब्रह्म-रूप वृक्षमें यह सम्पूर्ण विश्व-सृष्टि बनी हुई है। जब हम आँख बन्द करके ब्रह्मका ध्यान करते हैं, तब वह वन, जड वन नहीं होता। वह वन आकृतिमें देखनेपर जड-सा लगता है, परंतु वास्तवमें चित्-प्रधान वन होता है, चिन्मय वन होता है। उसमें जो पर्वत हैं, वृक्ष हैं, लता हैं, गाय हैं, हरिणी हैं, अन्य पशु हैं, पक्षी हैं, स्त्री हैं, पुरुष हैं और इनमें जो क्रियाएँ हैं, भोजन हैं, लेना-देना है, वह सब चिन्मय हो जाता है। ध्येय वस्तु जड नहीं होती, वह चेतनकी प्रधानतासे हमारे हृदयमें स्थित होती है। सामान्य लोगोंको इन सब बातोंका जरा कम पता होता है, इसलिये वे तर्क-वितर्क करते रहते हैं। किंतु गम्भीर दृष्टिसे गवेषणापूर्ण विचार करनेपर आपको मालूम पड़ेगा कि जैसे बाहर घड़ा दीखता है, वैसे भीतर दीखनेवाला घड़ा होता है। मृत्तिकामय घट बाहर होता है और मनोमय घट अंदर होता है। वह यदि गोपीके सिरपर हो और भगवान् उसके साथ छेड़छाड़

कर रहे हों, तब तो उस घटके चिन्मय होनेमें किसी प्रकारके कुतर्क या शंकाके लिये अवकाश ही नहीं रहता।

अब मैं इसका दर्शन तो क्या सुनाऊँ आपको? आइये भगवान्‌के अवतारके बारेमें दो बात कर लें। जबतक मनुष्य अपनेको साकार, शरीरधारी व्यक्तिके रूपमें मानता है और ईश्वरको भी मानता है, तबतक साकार जीवके लिये, वह अंशी भी, जिसका वह अंश है, साकार ही हो सकता है। साकार अंशीका ही साकार जीव होगा। जब जीवमें-से आकारकी भ्रान्ति मिटेगी, तब ईश्वरमें उसे आकार नहीं दिखायी पड़ेगा और वे दोनों निराकार-निराकार एक हो जायँगे।

आप इस तर्कपर भी ध्यान दीजिये कि आत्मा निराकार होता हुआ भी शरीरधारी हो जाता है। तब ईश्वर निराकार होकर भी शरीरधारी क्यों नहीं हो सकता?

आप श्रीकृष्णका प्राकट्य चाहे जेलखानेमें मानिये, चाहे यह मानिये कि वह जेलखाना कंसके महलका एक अंश था। चाहे यह मानिये कि देवकी-वसुदेव अपने ही घरमें नजरबन्द किये गये थे। कोई भी स्थान हो, यह निश्चित है कि देवकी-वसुदेव भोजेन्द्रके बन्धनमें थे—'**भोजेन्द्र बन्धने**।' उसी भोजेन्द्र कंसके बन्धनमें भगवान्‌का अवतार हुआ। मुक्तिमें भगवान्‌का अवतार नहीं हुआ, बन्धनमें अवतार हुआ। यही अवतारका प्रयोजन है। भगवान् मुक्त नहीं रहे, अपने भक्तके हाथों बँध गये—यशोदा मैयाने रस्सीसे बाँध लिया उनको—यही उनकी प्रशंसा है।

'विष्णुसहस्रनाम'में भगवान्‌का एक नाम है '**सत्कृतिः**'। श्रीशंकराचार्यजीने उसका अर्थ किया है कि सृष्टि-स्थिति-प्रलयरूप कृति जिनकी है, जिन्होंने संसार बनाया है और जो इसकी रक्षा करते हैं, इसका प्रलय करते हैं, उन भगवान्‌का नाम '**सत्कृतिः**' है।

किंतु श्रीवत्साङ्काचार्य कहते हैं कि सत्कृति क्या है? अजन्मा प्रभुका भक्ति-पराधीन होकर जन्म लेना। जो सबके स्वामी हैं, वे चोरी कर-करके लोगोंके मनको अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। जीवोंके शरीरपर जो पर्दा पड़ा है, उसके निवारणके लिये चीर-हरण करते हैं और नाचकर, गाकर, रिझाकर लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। यही भगवान्‌की सत्कृति है।

इस तरहसे वे भगवान्‌की लीलाका अर्थ करते हुए लिखते हैं—

एका लीला भगवता बह्वर्थानां तु साधिका।

भगवान्‌की लीला तो एक होती है, किंतु उसके अभिप्राय अनेक निकलते हैं—जैसे ब्रह्माकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, शिवकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, व्यासकी दृष्टिसे एक अभिप्राय, शुकदेवकी दृष्टिसे एक अभिप्राय और परीक्षित्‌की दृष्टिसे एक अभिप्राय—ऐसी है भगवान्‌की लीला। जब हम उसको केवल अपनी बुद्धि और अपनी दृष्टिमें समेट लेना चाहते हैं, विपर्ययमें हमारा आग्रह हो जाता है—विपर्यय माने उलटी बुद्धि, उलटा ज्ञान, उलटी समझ और यह जिद कि ऐसा नहीं बिलकुल ऐसा ही है—तब लीलाके पीछे भगवान्‌की जो दृष्टि है, वह ओझल हो जाती है।

उदाहरणके तौरपर पूतनाको देखिये। '**पूतानपि नयति**'—जो पवित्रात्मा बच्चोंको भी उठाकर ले जाती है और विद्वानोंको भी भ्रममें डाल देती है, उसका नाम पूतना है। '**अविद्या पूतना प्रोक्ता**'—पूतना अविद्या है, अज्ञान है। भगवान् श्रीकृष्ण इस अविद्याका नाश करते हैं। पर यह तो हुई विद्वानोंकी दृष्टि। अब भक्तोंकी दृष्टि देखिये। पूतना जातिकी राक्षसी है, स्वभावकी घोर है, खून पीनेवाली है, बच्चोंको मारनेवाली है, कंसकी भेजी हुई है और श्रीकृष्णको मारनेकी नीयतसे उसने अपना स्तन पिलाया है। लेकिन उसके प्रति भगवान्‌की दृष्टि कैसी है? वे न तो उसकी जाति देखते हैं, न स्वभाव देखते हैं, न उसका भोजन देखते हैं, न उसके प्रेरकको देखते हैं, न उसकी क्रिया देखते हैं और न उसके विषको देखते हैं। श्रीकृष्णको तो वह दीखती है माँ—केवल माँ!

गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातुकी गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥

गोस्वामी तुलसीदासजी पूतनाके प्रसंगमें देखते हैं भगवान्‌का स्वभाव, भगवान्‌की करुणा। भगवान्‌की आँखोंमें उसका दोष नहीं दीखता है, उसके हृदयमें जो प्रीति है, वह दीखती है। भगवान्‌को दीखती है कि पूतनाके रूपमें माँ दूध पिलाने आयी है।

इस प्रकार एक ही लीलाका—एक हुआ आध्यात्मिक दृष्टिसे अविद्याका वर्णन, दूसरा हुआ भगवान्‌के स्वभावका वर्णन और तीसरा हुआ यह वर्णन कि जब पूतनाके दूधपर भगवान्‌ने इतनी कृपा की कि उसको माताकी गति दे दी तो वे जिन गायोंके थनमें अपना मुँह लगाकर दूध पीते हैं, उनको क्या देंगे? जो ग्वालिनें गोदमें लेकर अपनी छातीसे सटाकर उनको दूध पिलाती हैं, उन ग्वालिनोंको वे क्या देंगे? भई, यशोदा मैयाको तो रखो अलग। उसका अर्थ क्या

हुआ? देवकी माँ कभी श्रीकृष्णको ब्रह्मरूपमें देखती थीं और कभी पुत्र रूपमें देखती थीं। दक्षिणमें जो तमिल भाषाका भागवत है, उसमें तो ऐसा आता है कि श्रीकृष्ण एक रूपसे तो देवकीके पास ही रहे। वे ग्यारह वर्षोंतक छिपकर रोज देवकी मैयाका दूध पीते थे और देवकी उनको सँवारती थीं, सजाती थीं। यदि श्रीकृष्ण उनके पास नहीं रहते तो देवकी मर जातीं। लेकिन आप यह देखिये कि भगवान् यशोदा मैयाके पेटसे पैदा हुए कि नहीं हुए—इसमें मतभेद है। वल्लभ-सम्प्रदाय और चैतन्य-सम्प्रदाय दोनोंमें यह माना जाता है कि यशोदा मैयाके पेटसे भी श्रीकृष्णका जन्म हुआ था। परंतु श्रीधरस्वामी और दूसरे आचार्य मानते हैं कि ऐसा नहीं है, यह तो यशोदा मैयाका भाव था। उनको यह शंका ही नहीं थी कि उनका बेटा उनके पेटसे पैदा हुआ है कि नहीं हुआ। उनको तो यही मालूम था कि यह उन्हींके पेटका बालक है और इसीके अनुसार उनका भगवान्‌के प्रति वात्सल्य-भाव था।' इस वात्सल्य-भावकी कितनी महिमा है—इसको जाननेके लिये पूतनाकी गति देखो, गायोंकी गति देखो, ग्वालिनोंकी गति देखो और यशोदा मैयाकी ओर देखो। भगवान् तो सदा-सदाके लिये यशोदा मैयाके ऋणी हैं, जिन्होंने इतने प्रेमसे उनको अपना दूध पिलाया। उनका इतना वर्णन क्यों है? इसीलिये है कि दूसरा कोई भी यदि भगवान्‌के साथ मातृभावसे सम्बन्ध जोड़े, मित्रभावसे सम्बन्ध जोड़े, पतिभावसे सम्बन्ध जोड़े, तो उसके अपने कर्तृत्वके बलपर नहीं, क्रियाके बलपर नहीं, उपासनाके बलपर नहीं, केवल भगवान्‌की कृपाके बलपर—भगवान्‌की करुणाके बलपर उसका मङ्गल हो जाता है। यह भगवान्‌का बल है कि वह भगवान्‌का पूज्य हो जाता है। इतना ही नहीं, ऋणी हो जाते हैं भगवान् उसके और ऋणी नहीं, वह भगवान्‌को बाँध भी सकता है रस्सीमें। भक्तिकी ऐसी महिमाका प्राकट्य और कहाँ है? देखनेमें पूतनाकी कहानीमें अध्यात्म-भाव भी है, अधिदैव-भाव भी है, अधिभूत-भाव भी है, परंतु भगवान्‌ने उसके साथ जो लीला की, वह भक्तोंको एक महती प्रेरणा दे जाती है।

जिनका सब कुछ भगवान्‌के लिये है और जिन्होंने अपना सब कुछ भगवान्‌को माना, उनके सम्बन्धमें, भावमें कितनी प्रगाढ़ता है, कितनी भगवन्मयता है—यह एक दृष्टिकोण है, जिसपर आपको ध्यान देना है।

भगवान्‌की सब लीलाओंका वर्णन करना कहाँतक सम्भव है। फिर भी स्थाली-पुलाक-न्यायसे केवल एक चावलको पका देखकर जैसे पूरा चावल पका समझ लिया जाता है, वैसे ही यदि आप भगवान्‌की किसी एक लीलापर दृष्टि डालें तो सभी लीलाओंके बारेमें विचार करनेकी प्रेरक विधि प्राप्त हो जाती है। ध्यान कीजिये आपके सामने श्रीकृष्ण एक छोटे-से बालकके रूपमें हैं, मुष्टिमेय कटि है—माने मुट्ठीमें आ जाय इतनी कमर है उनकी, करधनी बँधी हुई है, पाँवोंमें नूपुर हैं, हाथोंमें कँगन हैं, गलेमें बघनखा है, सिरपर तिलक है, सुन्दर बाल हैं और अपनी मुस्कानसे, चितवनसे, हमारे मनको अपनी ओर खींच रहे हैं। क्या इस ध्यानसे आपको आनन्द नहीं आ रहा है?

अरे बाबा, जो छोटा-सा दीखता है वही सबसे बड़ा होता है—'**वामनोह विष्णुरास**' (शतपथब्राह्मण १। २। ५। ५)। यशोदा मैयाने दो बार श्रीकृष्णके मुँहमें सम्पूर्ण विश्वको देखा। उनके सामने तो उनकी छातीका दूध पीनेवाला नन्हा-सा बालक था, जिसके लिये वात्सल्य रक्तको दूध बनाता है। पिताके प्रेममें वह शक्ति नहीं, भाईके प्रेममें वह शक्ति नहीं, बहनके प्रेममें वह शक्ति नहीं, जो शरीरके रक्तको दूधमें परिणत कर दे। यह तो वात्सल्यकी ही, स्नेहकी ही असीम शक्ति है, अमूर्त भाव है, निराकार भाव है कि वह दूधके रूपमें साकार होकर आता है।

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत् स्थास्नु च खं दिशः।

(श्रीमद्भा० १०। ८। ३७)

माँ बच्चेको दूध पिलाती है और बच्चेको बच्चा समझती है, किंतु यह नहीं मानती कि वह सम्पूर्ण विश्वको दूध पिला रही है। माँ कितनी पूर्णतासे, कितनी एकाग्रतासे, कितनी भावनासे अपने बच्चेका पालन-पोषण करती है और उसका वह पालन-पोषण भगवान्‌के दर्शनका कितना छोटा-सा आलम्बन है। कितना बड़ा भगवान् और उसके दर्शनका कितना छोटा आलम्बन। छान्दोग्योपनिषद्‌में तो दृष्टान्त है कि एक बड़का बीज ले आओ। उस बीजका जो छोटा-सा दाना है, उसको देखो। तोड़कर देख लो उसमें क्या है? कुछ नहीं है। परंतु इसी छोटे-से बीजमें वह वट-वृक्ष छिपा हुआ है, जिसमें हर साल अरबों दाने पैदा होंगे और उन दानोंमें अरबों वृक्षोंके उत्पादनकी क्षमता होगी।

अब आप एक भक्तिका प्रसंग लीजिये। धरा और वसुप्रवर द्रोणको देखिये। वहाँ भी पृथ्वी और अन्न दोनों हैं। वसुप्रवर द्रोण और धरा पृथ्वी। उसमें क्या छिपा है? प्रजापति ब्रह्माके आशीर्वादसे भगवान् अपुत्र होनेपर भी पुत्र हो गये। इसकी एक कथा है—प्रजापति ब्रह्माके आशीर्वादसे वसुप्रवर द्रोण और धरा ही नन्द-यशोदारूपमें अवतरित हुए थे। वसुप्रवर द्रोण और धराने ब्रह्माजीसे यह वरदान माँगा था कि हम जब भी जन्म लें, तब भगवान्‌में हमारी पराभक्ति हो। प्रजापति ब्रह्माने तथास्तु कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसीके फलस्वरूप नन्द एवं यशोदाको भगवान् श्रीकृष्ण पुत्ररूपमें प्राप्त हुए—

'ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने।'

(श्रीमद्भा० १०। ८। ५१)

भगवान् जब अपुत्र होनेपर भी पुत्र हो गये, तब यशोदा माताका कितना प्रेम बढ़ा उनके प्रति। वे श्रीकृष्णका लालन-पालन स्वयं करती हैं दासियोंपर नहीं छोड़तीं। आजकलकी माताएँ अपने पुत्रको दासियोंके सहारे छोड़ देती हैं, उनको देखकर कहना पड़ता है कि *'तेरो कठिन हियो री माई!'*

अब पुनः स्नेहका एक दृश्य देखिये। एक बार यशोदा मैयाने दासियोंको हटा दिया। अपने हाथसे दही मथने लगीं और अपने प्यारे पुत्रके बाल-चरित्रका स्मरण करने लगीं। यह उनका नित्य-कर्म है। कर्म भी उसके लिये, स्मरण भी उसके लिये और संगीत भी—वचन भी उसके लिये। सब कुछ उसके लिये। जब यशोदाजी दहीका मन्थन कर रही थीं तब श्रीकृष्ण वहाँ स्वयं आ गये। यदि कोई मनसे, वचनसे, कर्मसे अपने कर्तव्यमें तन्मय है तो उसको भगवान्‌के पास जाना नहीं पड़ता, भगवान् स्वयं उसके पास आ जाते हैं। केवल आते ही नहीं, दूध पीनेके लिये रोने भी लगते हैं। निष्काम भगवान्‌के मनमें अपने भक्तका दूध पीनेकी कामना हो जाती है। यही भक्तिकी महिमा है। वह अपुत्रको भी पुत्र बना देती है, निष्कामको भी सकाम बना देती है, नित्य तृप्तको अतृप्त बना देती है, निर्ममम‌ें भी ममता जगा देती है, शान्तमें भी क्रोध उत्पन्न कर देती है, सबके मालिकको भी चोर बना देती है और निर्बन्धको भी बन्धनोंमें बाँध देती है। भगवान् ऐसे हैं, जो अपने भक्त और भक्तिके पासमें आबद्ध हो जाते हैं, रस्सीसे बँध जाते हैं—

दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १८)

मैयाका नाम यशोदा क्यों पड़ा? इसलिये पड़ा कि उसने भगवान्‌को यश दिया—**'यशांसि ददाति'**। अच्छा, माताने क्या यश दिया? यह दिया कि उनको सगुण बना दिया, बाँध दिया। होंगे ब्रह्म निर्गुण, जिनको रस्सी नहीं लगती होगी। गुण माने रस्सी, निर्गुण माने जिसको रस्सी न लगे। इसलिये वे निर्गुण होनेके कारण कभी बन्धनमें नहीं आते होंगे; लेकिन प्रेम ऐसा है कि वह निर्गुण भगवान्‌को भी बाँधकर रख देता है।

बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे॥

देखो, दुनियामें बन्धन बहुत हैं, रस्सियाँ बहुत हैं, परंतु प्रेमकी रस्सी दूसरी चीज होती है। जो भौंरा सूखे काठमें छेद करके घर बना लेता है, वही भौंरा जब कोमल पंखुड़ियोंमें कैद होता है तब उसकी वह क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। भगवान् ऐसे कृपालु हैं कि कभी डरते भी हैं, कभी रोते भी हैं, कभी भागते भी हैं, कभी पकड़े भी जाते हैं और कभी बँध भी जाते हैं। इसलिये भजन करने योग्य तो यही भगवान् हैं। यह देखो भक्तिकी महिमा कि माता यशोदा उनको यश देती हैं। उन्होंने नित्यमुक्तको बाँधकर भक्तिकी महिमा दिखा दी और भगवान्‌ने ऐसी करुणा की कि नित्यमुक्त होनेपर भी बँध गये।

अब देखो वेदान्तकी बात। भगवान्‌में न बन्धन है और न मुक्ति है। मैयाने बन्धनका आरोप किया और पिताने बन्धनका अपवाद कर दिया। उसका अर्थ हुआ कि मेरे शरीरमें तो बन्धन नहीं है, मैयाने लगाये हैं। यह माताका दृष्टिकोण है, प्रमाताका दृष्टिकोण है, जो बन्धन लगाता है। परंतु आनन्दस्वरूप परमैश्वर्यशाली ज्ञानका, आनन्दका, परम समृद्धिका यह दृष्टिकोण है कि भगवान्‌में बन्धन नहीं है।

अब आपको एक तत्त्व-दृष्टिकी लीला सुनाता हूँ। आपने सुना होगा कि ब्रह्माजीने जब अघासुरकी मुक्ति देखी, तब उनको यह आश्चर्य हो गया कि पापकी मुक्ति नहीं, पापकी मुक्ति कैसे हो गयी? वह असुर सीधे-सादे बछड़ोंको भी निगल लेता था तथा उसने भगवान्‌को भी निगलना चाहा, परंतु वह भगवान्‌के स्वरूपसे परिचित नहीं

था। इसलिये उसका जो बाहरी चोला था, वह रह गया ज्यों-का-त्यों और उसकी आत्म-ज्योति श्रीकृष्णकी आत्म-ज्योतिसे एक हो गयी। ब्रह्माको इसलिये आश्चर्य हुआ कि वे विधि-विधानके चक्करमें रहते हैं। विधि-विधानके बारेमें बाहर कुछ देख ही नहीं पाते, क्योंकि उनमें तत्त्व-दृष्टि नहीं है। विधि शब्दका अर्थ ब्रह्मा भी है। जब उन्होंने अपने विधि-विधानके चक्करमें हरी-हरी घासके लोभमें फँसे हुए बछड़ों और बछड़ोंकी चिन्तामें लगे हुए ग्वाल-बालोंका हरण कर लिया; तब क्या हुआ?

सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १७)

श्रीकृष्ण उन सभी अपहृत बछड़ों, ग्वाल-बालों, उनके छड़ी-छीकों, भोज्य पदार्थों और वस्त्रादि परिधानोंके रूपमें प्रकट हो गये। उन सबको अपने नाम मालूम थे, अपने बछड़ोंकी पहचान मालूम थी, अपने माँ-बाप मालूम थे। यह देखकर ब्रह्माके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। उनको सबसे अधिक आश्चर्य यह हुआ कि जब मैं सृष्टि बनाता हूँ, तब पञ्चभूत मेरे सामने होते हैं। अलग-अलग जीव होते हैं, उनके अन्त:करण होते हैं और उनकी कर्म-वासना होती है। उनकी विद्या, उनके कर्म, उनकी पूर्व प्रज्ञा अलग-अलग होती है। उसके बाद मैं पुर्जोंको जोड़कर सृष्टि बनाता हूँ। यहाँ न तो अलग-अलग जीव हैं, न उनके अलग-अलग अन्त:करण हैं, न उनकी कोई कर्म-वासना है, न उपासना है, न विद्या है, न पञ्चभूत है। तब यह सब क्या है? क्या, भान-मूर्तियाँ हैं? यहाँ देखनेकी बात यह है कि श्लोकमें '**बभूव**' नहीं है, '**बभौ**' है—

यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत् कराङ्घ्र्यादिकं
यावद् यष्टिविषाणवेणुदलशिग् यावद् विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ॥

(श्रीमद्भा० १०। १३। १९)

अन्तमें जब ब्रह्माजीकी आँखें खुलीं और उनका मोह-भंग हुआ, तब उन्होंने देखा कि ये सब अलग-अलग दिखायी देनेवाले अनेक नहीं हैं, एक ही हैं।

यह श्रीमद्भागवतके तत्त्वनिरूपणकी शैली है। जैसे सूर्यमें दिन-रातका भेद नहीं होता, वैसे ही ब्रह्ममें जीव-जगत्‌का भेद नहीं होता। यह तत्त्व-दृष्टि है।

अब आपको मैं एक व्यवहारकी बात सुनाता हूँ। ऐसे तो यह भी भगवान्‌की लीलाका एक नमूना है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट लिखा है—'**यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया**' (श्रीमद्भा० १०। २६। ३) अर्थात् सात वर्षके बालकने गोवर्धनको उठा लिया अपनी अँगुलीपर। यह अद्भुत लीला थी उस बालककी। श्रीमद्भागवतमें यह भी लिखा है कि जन्म-दिनसे ले करके कुल ग्यारह वर्षोंतक श्रीकृष्ण व्रजमें रहे। बारहवें वर्ष मथुरा चले गये। जो लोग यह बात नहीं जानते उन्हींके मनमें रासलीला आदि प्रसंगोंको लेकर शंकाएँ होती हैं।

अब बालक श्रीकृष्णका व्यवहार-ज्ञान देखो। पहले इन्द्र देवताकी पूजा होती थी। श्रीजीवगोस्वामीने इसका बहुत विश्लेषण किया है, अनुसन्धान किया है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको इन्द्रकी पूजा होनी थी। उसको श्रीकृष्णने बंद करवा दिया। उस समय श्रीकृष्ण सात वर्षके थे।

जब इन्द्रकी पूजाका समय आया तब श्रीकृष्णने नन्दबाबासे पूछा कि बाबा, आपने इन्द्रको देखा है? बाबाने कहा नहीं देखा है। श्रीकृष्णने कहा कि जब पूजा करते इतने दिन हो गये और अभीतक आपने इन्द्रको देखा ही नहीं, तब उसकी पूजा क्यों करते हैं? दृश्यकी पूजा कीजिये। स्वर्गके देवता इन्द्रकी पूजा मत करें। अपने व्रजमें पत्थरका जो गोवर्धन पर्वत है, उसकी पूजा करें। अपनी नजरको स्वर्गपरसे धरतीपर ले आयें। स्वर्गको देखते-देखते धरतीको मत भुला दें। हमारे पास न कोई नगर है, न कटरा है, न गाँव है, न घर है—

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम्।
नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः॥

(श्रीमद्भा० १०। २४। २४)

हम तो वनवासी हैं। वन और पहाड़में रहनेवाले हैं। हमें इस धरतीको भूल नहीं जाना चाहिये। जो आसमानकी ओर आँख करके खसूचि बनकर धरतीपर चलता है, उसको ठोकर लगती है, वह गिर पड़ता है। इसलिये स्वर्गके देवतासे बड़ी पूजा है इस मर्त्यलोक की।

अन्तमें गोवर्धनकी पूजा हुई। इन्द्र देवता कुपित हुए। उन्होंने व्रजको भारी संकटमें डाल दिया। परंतु श्रीकृष्णने सबको बचा लिया। उस दृश्यको देखकर भी ग्वाल-बालोंके मनमें श्रीकृष्णके प्रति कोई ऐश्वर्यका भाव नहीं आया। इस सम्बन्धमें श्रीरूपगोस्वामीजीका एक श्लोक है।

जिसमें ग्वाल-बाल कहते हैं कि अरे कन्हैया! सात रातें बीत गयीं। तुमने नींद नहीं ली। तुम्हारा हाथ सिरसे ऊपर उठा हुआ है। तुम थक गये हो। तुम्हारी थकावट देखकर हमारे हृदयमें बड़ी पीडा हो रही है। आओ, आओ श्रीदामाके हाथमें दे दो यह पर्वत अथवा इसको अपने दाहिने हाथमें ले लो। हम तुम्हारे बाँयें हाथका थोड़ा संवाहन कर देंगे।

इस प्रकार ग्वाल-बालोंके मनमें श्रीकृष्णके प्रति कहीं ऐश्वर्य-दृष्टि है ही नहीं। ऐसा है हमारा लौकिक कृष्ण और उसका क्रान्तिकारी दृष्टिकोण। वह स्वर्गके देवताकी अपेक्षा मर्त्यलोकके वनकी, पर्वतकी अथवा इनके उपलक्षण वनवासी, पर्वतवासीको अधिक महत्त्व देता है। वह इन्द्रसे अधिक आदर गायोंका करता है, गाय चरानेवालोंका करता है, गायोंको घास-चारा-पानी देनेवालोंका करता है। यह है उसकी गोवर्धन-धारण-लीलाका रहस्य। मैंने यह बात आपको बिलकुल लौकिक दृष्टिसे सुनायी है।

अब आप श्रीकृष्णकी रासलीलापर एक नजर डालें। उनके सातवें वर्षमें जो गोवर्धन-पूजन हुआ और इन्द्रके प्रकोपके कारण सात दिनतक गोवर्धन-धारण करना पड़ा, उसमें शरद् ऋतु बीत गयी। उसके बाद ग्यारह वर्षकी उम्रतक श्रीकृष्णने जो बाल-लीला की, उसे आप किस अर्थमें ग्रहण करना चाहते हैं? आपसमें खेलते समय बालकोंमें कोई स्त्री बनता है, कोई पुरुष बनता है, कोई मूँछ बना लेता है, कोई डण्डा हाथमें ले लेता है और कोई बूढ़ा बनकर चलता है, कोई युवा बनकर लीला कर रहा है और कोई बालिका युवती बनकर लीला कर रही है —ऐसे ही अनेक प्रकारकी लीलाएँ होती हैं, उनका वर्णन असम्भव है। बात-बातमें तो यह बालक है, यह नाटक है, ऐसा वर्णन नहीं किया जा सकेगा। यदि ऐसा कहा जायगा तो उसमें सर्वथा रस-भंग हो जायगा। उसमें तो रसपरिपाकके लिये इतनी तन्मयता चाहिये कि पाँच हजार वर्ष पहले हुई वह लीला परोक्ष न रह जाय अथवा प्रत्यक्ष नाटक भी न बन जाय। जो लोग काव्यमें परोक्ष रस मानते हैं, उनको मीमांसक बोलते हैं और जो अपरोक्ष रस मानते हैं, उनका ऐसा मानना होता है कि हमारे हृदयमें रंगमञ्च है और वहाँ लीला हो रही है। यह अपरोक्ष रस अभिनवगुप्तके मतानुसार है। शंकुक आदि बड़े-बड़े आचार्योंने रसको परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष माना है, किंतु अभिनवगुप्त रसको अपरोक्ष मानते हैं। श्रीमधुसूदन सरस्वतीका कहना है कि जबतक स्थायी-भावावच्छिन्न चैतन्यका आलम्ब-भावावच्छिन्न चैतन्यसे एकता नहीं होगी, तबतक रसानुभूति नहीं हो सकती। आप गोपीसे एक हो जाइये, कृष्णसे एक हो जाइये और फिर गोपी-कृष्ण बनकर नाचिये, तब देखिये रसका कैसा आविर्भाव होता है। इस प्रकार रसानुभूतिकी चार प्रणालियाँ हुईं—परोक्ष रस, प्रत्यक्ष रस, अपरोक्ष रस और तादात्म्य रस—एकत्व रस। यही रासलीला है—

अङ्गनामङ्गनामन्तरेमाधवोमाधवंमाधवं चान्तरेणाङ्गना।
इत्थमाकल्पितेमण्डलेमध्यगः संजगौवेणुना देवकीनन्दनः॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत २। ३५)

रासलीला क्या है? '**रस एव रासः, रसानां समूहो रासः, रसो वै सः। रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति**'—यही भगवान्‌की आनन्द-प्रधान लीला है, जो जीवको विषय-रससे विमुख करके पूर्ण रसमें, नित्य रसमें निमग्न करती है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित रासलीलाके पहले श्रीकृष्ण और गोपियोंमें शास्त्रार्थ हुआ। श्रीकृष्णने पूर्व-मीमांसाका पक्ष लेकर कहा कि तुम लोग घर लौट जाओ। वहाँ अपने धर्मका पालन करो। लेकिन गोपियोंने उत्तर मीमांसाका पक्ष लिया और कहा—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्।

(जाबालोपनिषद् ४)

इस प्रकार पूर्व पक्ष और उत्तर पक्षमें शास्त्रार्थ हुआ। संत कवि सूरदास और नन्ददासने भी उद्धव और गोपियोंका शास्त्रार्थ करवाया। नन्ददास कहते हैं—

कहाँ ब्रह्म की ज्योति ज्ञान कासों कहो ऊधौ।
हमरे तो सुन्दर श्याम प्रेम को मारो मूधौ॥

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और गोपियोंका शास्त्रार्थ है। उसमें श्रीकृष्ण हार गये हैं। हारनेवालेके प्रति हरानेवालेके हृदयमें प्रेमका उदय होता है और प्रेममें जो जीत जाता है, उसके प्रति एक स्पर्द्धा बनती है कि उसको कभी-न-कभी हराकर छोड़ेंगे। भक्ति-सिद्धान्त अपनेको छोटा बनाकर भगवान्‌से एक हो जाता है। किसीका प्रेम प्राप्त करना हो तो वाद-विवादमें उसको पराजित मत करो। जब वह और हम एक हो जायँगे तो हमारा सिद्धान्त उसमें और उसका सिद्धान्त हममें अपने-आप ही संचरित हो जायगा। उसमें वाद-विवादकी कोई आवश्यकता नहीं है।

रासलीलामें जीवोंका कितना बड़ा पक्ष लिया गया है, आप इसपर ध्यान दें। संसारमें अधिकांश जीव भगवान्‌के वियोगमें जी रहे हैं। ऐसे कुछ ही भगवत्कृपा-पात्र भावुक भक्त हैं, जो भगवान्‌के संयोगका भी अनुभव करते हैं। संयोग और वियोग दोनों ही प्रेमके विभाग हैं और एक दूसरेके सहयोगी हैं।

न बिना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।

जबतक वियोगकी पीडा न होगी, तबतक संयोगके सुखका अनुभव नहीं होगा। जिसको प्यास नहीं है, वह पानीका स्वाद नहीं जान सकता। हमारे महापुरुषोंने वियोगके बारेमें बताया है कि वह तापक भी है और प्रकाशक भी है। जब किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्तिका वियोग होता है तब उसमें क्या-क्या गुण हैं, क्या-क्या विशेष हैं और उसका कैसा स्वभाव है—इसका चिन्तन होने लगता है। वियोगसे बिछुड़े हुए व्यक्तिके स्वरूपका प्रकाश होता है। उसके द्वारा जो ताप होता है, वह हमारे हृदयको पिघला देता है और संसारमें जो पकड़ है, कठोरता है उसको वह मिटा देता है। श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायीमें संयोग और वियोग, विप्रलम्भ और सम्भोग दोनों शृंगारोंका वर्णन करके रसका ऐसा परिपाक कर दिया गया है कि वहाँ तो काम है नहीं, विकार है नहीं। रासलीलाके समय रतिपति कामदेवजी आये थे। श्रीकृष्णने कहा कि '**उत्तम्भय**' ठहर जा बेटा आसमानमें। कामदेव स्तब्ध हो गया श्रीकृष्णकी लीला सुनकर, देखकर। जो काम हम कर सकते हैं, उससे अधिक महत्त्वपूर्ण और आश्चर्ययुक्त कर्म जब दीखता है तब अपने-आप ही स्तम्भका उदय हो जाता है। आपने रासलीलामें पढ़ा होगा—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

जिस प्रकार कोई बालक शीशेमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बको सच्चा समझकर उसके साथ खेलता है, इसी प्रकार श्रीकृष्णका यह एक खेल है, एक क्रीडा है। उनको अपने स्वरूपका ज्ञान हो गया हो, दूसरेके स्वरूपमें सत्यता हो गयी हो और वे भ्रान्त हो गये हों—ऐसा नहीं है। वहाँ तो कामका लेश भी नहीं है। बल्कि जो उस लीलाका श्रवण-वर्णन करते हैं, उनकी काम-वासना निवृत्त हो जाती है—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

नाट्यशास्त्रमें इस रसका वर्णन ऐसे आता है कि एक नट हो और अनेक नटिनियाँ हों। वहाँ नट इतनी त्वरासे अपनेको नचाता है कि सभी नटिनियोंको यह प्रतीत होता है कि यह हमारी ओर ही देख रहा है, हमारे साथ ही नाच रहा है। इसीको नाट्यशास्त्रमें हल्लीशक नृत्य कहते हैं। गान्धर्व वेदका जो लौकिक आनन्द है, नृत्य है, संगीत है, वाद्य है, अभिनय है, वह श्रीकृष्णके जीवनमें लौकिक, पारलौकिक दोनों ही दृष्टियोंसे पूर्ण प्रकट है। क्या यह बात आपके ध्यानमें नहीं आती, इस बातपर आपकी दृष्टि नहीं जाती कि बारह वर्षके श्रीकृष्ण जब व्रजसे मथुरा जाते हैं तब फिर लौटकर नहीं आते। इस भक्ति-भावनाकी बात दूसरी है कि श्रीकृष्ण वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाते। यह तो भावुकोंकी भावना है और उस भावनासे उनको आनन्द आता है, रस आता है, वह तो होना ही चाहिये। परंतु यह भी तो देखिये कि मथुरा जाकर फिर कभी वृन्दावनकी ओर मुख नहीं करना कम महत्त्वपूर्ण बात है। क्या इसमें असंगता और वैराग्यका प्रकाश नहीं है श्रीकृष्णके जीवनमें? क्या भगवान्‌का स्वरूप केवल राग ही है कि नाचें और गायें? क्या वैराग्य उनका स्वरूप नहीं है?

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपु० ६। ५। ७४)

यदि गोवर्धन उठानेमें ऐश्वर्य है, यदि प्रातःकाल उठकर धर्मानुष्ठान करनेमें धर्म है, यदि आजतक उनका यश विश्वसृष्टिमें व्याप्त हो रहा है, यदि रुक्मिणी, लक्ष्मी उनकी पत्नी हैं और यदि उनके पास उद्धव एवं अर्जुनको उपदेश करनेवाला ज्ञान है तो जरा यह भी देखिये कि उनको वैराग्य कितना है? इतने बड़े-बड़े प्रेमियोंको असंग-भावसे छोड़कर एकाएक चले जाना—यह क्या उनकी भगवत्ता नहीं? क्या आप ऐसा समझते हैं कि जैसे स्त्री-पुरुष आपसमें आसक्त होकर और बातोंको भूल जाते हैं, वैसे ही

भगवान् भी अपनेसे सम्बन्धित जनोंमें आसक्त होकर अपनी भगवत्ताको हमेशाके लिये लुप्त कर दें? नहीं यदि भगवान्में राग है तो वैराग्य भी है।

असलमें जब भगवान्की असंगतापरसे दृष्टि हट जाती है तभी भ्रम होता है। फिर हटती क्यों है? फिरकापरस्त हो जानेसे, एक पन्थकी सीमामें बँध जानेसे। जब हम पन्थके गन्तव्यको देख नहीं पाते और मार्गमें पड़नेवाली सरायको, धर्मशालाको सब कुछ मानकर वहाँ बँध जाते हैं, तब परमार्थ-यथार्थका दर्शन अथवा साक्षात्कार नहीं हो पाता। अरे भई! अमेरिकाके लोग भारतीय संविधानका पालन क्यों करें और भारतके लोग अमेरिकन संविधानका पालन क्यों करें? आपकी दृष्टिमें जो गुण-दोष हैं,उनके तराजूपर जब श्रीकृष्णको तौलनेके लिये चलते हैं, तब आपकी बुद्धि बिलकुल फेल हो जाती है और आपके तराजूपर भगवान् तौले नहीं जाते। यह तो जो निर्विकार परमात्माका साक्षात्कार करके स्वयं निर्विकारसे एक हो गये हैं, उनकी वस्तु है। जब हम किसी एक पन्थमें दुराग्रह करके, राहु-केतु-शनिश्चर-रूप दुराग्रहसे गृहीत होकर भगवान्की लीलाका चिन्तन करते हैं; तब उसमें हमको कहीं दोष मालूम पड़ता है और कहीं हम अपनी वासनाके अनुसार उसीको रंग देते हैं। इसलिये परमात्माकी निर्विकारताको ध्यानमें रखकर इसपर विचार करो और फिर देखो कि उसका लीला-रहस्य कितना गूढ है।

निर्विकार परमात्माकी निर्विकार लीला निर्विकार अन्तः-करणसे ही समझमें आती है। श्रीमद्भागवत सविकार अन्तः-करणको निर्विकार बना देता है।

श्रीमद्भागवतमें वर्णन आता है कि जब श्रीकृष्ण द्वारकामें कहींसे लौटकर आते तो किसीकी ओर सिर झुकाकर, किसीको हाथ जोड़कर और किसीका पाँव छूकर प्रणाम करते, किसीको मुसकराकर देख लेते। लेकिन जो गरीब लोग थे, उनसे एक-एक करके मिलते और पूछते कि आपको क्या कष्ट है? फिर उनको जो चाहिये था, उसकी व्यवस्था करके नगरमें प्रवेश करते। आप अमेरिकाके पूँजीवादको मत देखिये, रूसके साम्यवादको मत देखिये, देखिये अपने ही देशमें आजसे पाँच हजार वर्ष पहलेकी बात और वह भी लौकिक दृष्टिसे। श्रीकृष्णके जीवनमें लौकिक ज्ञान भी है, लौकिक सुख भी है। वे नृत्य, गीत, वाद्य, अभिनय आदि सब कलाओंमें निपुण हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, स्थापत्य-वेदमें पारंगत हैं। इसलिये एकाङ्गी सृष्टि नहीं होनी चाहिये। आप अगर सबको पालकके पत्तेका रस ही पिलाओगे तो फौजमें कौन जायगा और वहाँ जाकर क्या करेगा? यदि आप सबको अल्पाहारी बना दोगे तो वाणीमें वेदोच्चारण करनेका जो सामर्थ्य है, कहाँसे आयेगा? जब हम बिलकुल एकाङ्गी दृष्टिकोणसे सोचने लगते हैं तब हमारे महापुरुषोंके, श्रीकृष्णके जो चरित्र हैं, वे अच्छी तरह समझमें नहीं आते।

अब आप प्रतीकार्थोंके द्वारा श्रीकृष्णके चरित्रपर विचार कीजिये। भीष्मक समुद्र कितना बड़ा भयंकर होता है। उसमें-से निकला विष, विष माने रुक्मी। समुद्रमेंसे निकलनेवाली मुद्राएँ हैं लक्ष्मी-रुक्मिणी। शक्ति—सूर्यकी शक्ति सत्यभामा हैं। उन्हें सूर्यने ही दिया था सत्राजितको। इसलिये श्रीकृष्णमें सूर्य-शक्तिका उपयोग है कि नहीं? समुद्रकी मुद्राका उपयोग है कि नहीं? ब्राह्मी शक्ति है जाम्बवती। ब्राह्मी शक्ति माने प्रजनन-शक्ति। ब्रह्माके अवतार थे जाम्बवान्। रामावतारकी कथामें आप यह देखते हैं कि कौन देवता क्या हुआ?

मनुष्यमें प्रजनन-शक्ति भी चाहिये, ताप और प्रकाशकी शक्ति भी चाहिये, सम्पदाकी शक्ति भी चाहिये और बुद्धिमें जो उलझनें होती हैं, राग-द्वेष-अभिनिवेश आदि होते हैं, इनको दूर करनेकी शक्ति भी होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सौम्य चन्द्रमाकी जो सौम्य रश्मियाँ हैं, सोलह कलाएँ हैं—पुरुषमें भी सोलह कला,मनमें भी सोलह कला और एक-एक कलाकी जो सहस्र रश्मियाँ हैं—आह्लादिनी, प्रकाशिनी, जीवनी आदि वे सब मनुष्यमें होनी चाहिये। चन्द्रमामें पेड़-पौधों और औषधियोंको जीवन देनेवाली शक्ति है, प्रकाशिनी शक्ति है और आह्लादिनी शक्ति भी है। उन सबको सहस्र-सहस्ररूपमें प्रकट करके जीवनके लिये जो परमावश्यक तत्त्व है, उसको चन्द्रमा प्रकट करते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्ण बताते हैं कि हमारे जीवनमें इन सब जीवन-रश्मियोंका, आनन्द-रश्मियोंका, ज्ञान-रश्मियोंका विकास होना चाहिये।

श्रीअयोध्या-माहात्म्य

श्रीलक्ष्मणजीद्वारा श्रीअवधलीलानुभूति

(जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी श्रीश्यामनारायणाचार्यजी महाराज)

विराट् पुरुष भगवान्‌का श्रीअवन्तिकापुरी चरण, श्रीद्वारकापुरी नाभि, वाराणसी नासिका तथा मथुरा ग्रीवा माना गया है। उसी प्रकार विराट् पुरुषका मस्तक श्रीअयोध्यापुरी माना गया है।

शरीरका वैसे तो प्रत्येक अङ्ग अपनी-अपनी जगहपर श्रेष्ठ है; फिर भी शरीरका सबसे मुख्य अङ्ग मस्तक माना गया है। सम्पूर्ण शरीरकी बाह्य या आभ्यन्तर क्रियाका निर्देशन मस्तकके अंदर समाहित मन-बुद्धिके द्वारा होता है। जो मन संकल्प करता है; बुद्धि उसका निश्चय कर देती है। ठीक इसी तरह अयोध्यापुरी भगवान्‌का मस्तक है। सृष्टिके प्रधान कर्णधार श्रीमनु-शतरूपा, इक्ष्वाकु रुक्मांगद, दिलीप, रघु, हरिश्चन्द्र आदि प्रतापशाली राजाओंने इसी अयोध्यामें रहकर सृष्टिकी बागडोर सँभाला था।

उदयाचलसे अस्ताचल तक राज्य करनेका सौभाग्य श्रीअयोध्याके नरेशोंको प्राप्त था। यहाँतक कि साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीरामने भी इसी अयोध्यामें अवतार लेकर अपनेको गौरवान्वित समझा। श्रीअयोध्याकी महिमा सभी शास्त्र-पुराणोंमें वर्णित है। इसका मुख्य कारण है कि साक्षात् परमात्मा श्रीरामने ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके मानव-समाजको मर्यादाका उपदेश दिया है। इतना ही नहीं, जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त मनुष्यको कैसे जीना चाहिये, कैसे रहना चाहिये, यहाँतक कि बालक, पिता, पुत्र, मित्र, शत्रु, परिजन, पुरजन, मन्त्री और गुरुका कैसा बर्ताव एवं आदर्श होना चाहिये—इन सभीका उपदेश श्रीरामके चरित्रसे प्राप्त होता है। ऐसे मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने भी अयोध्याके प्रभावको समझकर यहाँ अवतार लेना श्रेयस्कर समझा।

वन-यात्रासे लौटते समय श्रीराम स्वयं हनुमान्-लक्ष्मण आदिको सम्बोधन करके श्रीअवधकी महिमाको बखानते हुए कहते हैं—

अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥

(रा० च० मा० ७। ४। ४)

श्रीरामजी कहते हैं—'भैया! मुझे अवधपुरीके समान कुछ भी प्रिय नहीं लगता, क्योंकि इस पुरीकी अनन्त महिमा है।' इसका अनुभव साक्षात् शेषावतार श्रीलक्ष्मणजीको भी प्राप्त था।

पुराणोंमें एक कथा आती है। एक बार श्रीलक्ष्मणजी तीर्थयात्रा जानेके लिये श्रीरामजीसे प्रार्थना करने लगे। श्रीरामने कहा—'भैया! आपकी तीर्थयात्रा जानेकी इच्छा है तो बहुत ही अच्छी बात है। आप श्रीअयोध्यापुरीकी व्यवस्था करके अवश्य पधारिये।' इतना कहनेके बाद श्रीरामजी मुसकराने लगे। श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'भगवन्! दाससे कौन-सी त्रुटि हो गयी, जिसके कारण आप मुसकरा रहे हैं।' श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! समय आनेपर खुद ही आप समझ जायँगे।'

श्रीरामकी आज्ञा प्राप्त करके लक्ष्मणजी तीर्थयात्रा जानेके लिये अपनी तैयारी करने लगे। सैकड़ों सेवक, मन्त्री, मित्र, पुरजन, परिजन भी साथमें जानेके लिये तैयारीमें लगे हुए थे।

सभीको तीर्थयात्रा जानेकी बड़ी प्रसन्नता थी। गुरुदेव श्रीवसिष्ठजी यात्राका मुहूर्त श्रावण शुक्लपक्ष पञ्चमीको निकाले। मुहूर्तके अनुसार सूर्योदयके पहले प्रस्थान करना था। इसीको ध्यानमें रखकर तैयारी हो रही थी। श्रीअयोध्यापुरीकी देख-भाल करनेके लिये श्रीभरतजी, श्रीशत्रुघ्नजी, श्रीहनुमान्‌जी एवं सुमन्त आदि मन्त्रियोंको समझा दिया गया।

इस प्रकार करते-कराते रात्रिके दो बज गये। श्रीलक्ष्मणजी सोचने लगे। आज प्रातः पाँच बजे यात्रा करनी है। यदि अब विश्राम करूँगा तो विलम्ब होगा।

अब ब्रह्ममुहूर्त होनेवाला भी है। अतः पहले जाकर श्रीसरयूजीका स्नान कर लें। ऐसा निश्चय करके स्नान करनेके लिये

श्रीलक्ष्मणजी सरयूजीके किनारे पधारे। वहाँ बहुत प्रकाश हो रहा था। राजघाटपर हजारों राजा-महाराजा स्नान कर रहे थे और संध्या करके आकाशमार्गसे चले जा रहे थे।

श्रीलक्ष्मणजी सोचने लगे। कोई रामनवमीका पर्व नहीं, कोई उत्सव-विशेष नहीं, फिर इस ब्राह्मवेलामें इतनी भीड़ कैसे इकट्ठा हो गयी। इस प्रकार सोचते हुए महिलाओंके घाटपर पहुँचे, जहाँ क्रमशः कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा आदि हजारों माताएँ स्नान कर रही थीं। लक्ष्मणजी यह सारा दृश्य देखकर लौट आये। श्रीरामने पूछा—'लक्ष्मण! आज आपके तीर्थयात्रा जानेका मुहूर्त था, परंतु आप अभीतक स्नान ही नहीं किये।' श्रीलक्ष्मणजी प्रणाम करके कहने लगे—'भगवन्! आज मैंने एक आश्चर्यमय घटना श्रीसरयूजीके किनारे देखा।' श्रीरामके पूछनेपर श्रीलक्ष्मणजीने सारी घटना सुना दी। श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण! आपने उन लोगोंसे पूछा नहीं कि आप कौन हैं, कहाँसे पधारे हैं।'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'भगवन्! यह तो दाससे बड़ी भूल हो गयी। मैं संकोचवश कुछ भी नहीं पूछ सका, क्योंकि वहाँ हजारों लोग स्नान कर रहे थे; परंतु कोई किसीसे बोलता तक नहीं था।'

श्रीलक्ष्मणजीने कहा—'आज मैं पुनः जाऊँगा और सबसे परिचय पूछूँगा।' श्रीलक्ष्मणजी दूसरे दिन पुनः दो बजे रात्रिमें गये। कलकी तरह आज भी हजारों लोग स्नान कर रहे थे। कोई किसीसे बोलता नहीं है। सबके मुँहपर प्रसन्नता एवं तेज झलक रहा है। श्रीलक्ष्मणजी हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए बोले—'भगवन्! आप लोगोंका परिचय जानना चाहता हूँ।' हजारों राजाओंने कहा—'हम लोग काशी, गया, जगन्नाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ, श्रीरंगम्, रामेश्वरम् और द्वारकापुरी आदि अड़सठ करोड़ तीर्थ देवताओंका रूप धारण करके यहाँ नित्यप्रति श्रीअयोध्याका दर्शन एवं सरयूजीका स्नान करने आते हैं।' इसके बाद लक्ष्मणजी महिलाओंके घाटपर गये और उन्होंने उन माताओंको प्रणाम करके उनका परिचय पूछा। उन माताओंने कहा—'हम गङ्गा, यमुना, सरस्वती, ताप्ती, तुंगभद्रा, कमला, कोशी, गंडक, नर्मदा, कृष्णा एवं क्षिप्रा आदि भारतकी हजारों पवित्र नदियाँ नित्यप्रति श्रीरामपुरीका दर्शन एवं श्रीसरयूजीका स्नान करने आती हैं।' उसी समय एक विकराल काला पुरुष आकाशमार्गसे आया और श्रीसरयूजीकी धारामें गिरा। थोड़ी देर बाद जलसे निकला तो गौरवर्ण, हाथमें शंख, चक्र, गदा आदि धारण किये प्रकट हुआ। श्रीलक्ष्मणजीने ऋषियोंसे पूछा—'भगवन्! ये देवता कौन हैं, जो अभी कितने काले थे और सरयूजीमें गोता लगाते ही गौरवर्णके हो गये।' ऋषियोंने कहा—'लक्ष्मण! ये तीर्थराज प्रयाग हैं। हजारों यात्री नित्यप्रति तीर्थराज प्रयागके संगममें स्नान करके अपना पाप छोड़ जाते हैं। पापका स्वरूप काला होता है, इसलिये श्रीसरयूमें स्नान करनेमात्रसे इनका सारा पाप नष्ट हो गया।' श्रीलक्ष्मणजी राजमहलमें आकर यह आश्चर्यमयी घटना श्रीरामजीको सुनाने लगे। श्रीरामने कहा—'भैया लक्ष्मण! इस पुरीके दर्शन एवं स्नान-हेतु अड़सठ करोड़ तीर्थ अयोध्यामें आते हैं और आप अयोध्या छोड़कर अन्य तीर्थोंका दर्शन करने जा रहे थे। इसीलिये जब आपने मुझसे मुसकरानेका कारण पूछा था, तब मैंने कहा था कि उचित समयपर आप स्वयं जान जायँगे। अब आप निर्णय कर लीजिये कि तीर्थयात्रामें जाना है या नहीं।' लक्ष्मणजी श्रीरामके चरणोंमें गिर गये और बोले—'प्रभु! धन्य है यह अवधपुरी, जहाँ सारे तीर्थ दर्शन-स्नान-हेतु आते हैं। अब दास कहीं किसी यात्रामें न जायगा।' अवधकी इस दिव्यलीलाका स्मरण करते हुए बन्धु-बान्धवोंसहित श्रीराम-लक्ष्मण इस घटनाको सभी अयोध्यावासिओंको सुनाने लगे।

अवधकी लीलाका अनुभव करनेके लिये हजारों संत-महात्मा एवं बड़े-बड़े सद्गृहस्थ अपना घर छोड़कर सीताराम-नामका जप करते हुए श्रीअवधकी गलियोंमें विचरण करते रहते हैं।

विविध रूपोंमें हनुमान्

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

स्वामीका कार्य पूरा होनेपर स्वामीकी अपेक्षा सेवकको सबसे अधिक संतोष तथा सुख होता है। सेवकका कोई एक रूप नहीं होता, स्वामीको जिससे सुख हो, जिस रूपसे स्वामीका कार्य सम्पन्न हो, सेवक वही रूप बना लेता है। गरुडजी भगवान् विष्णुकी सेवाके आवश्यकतानुसार दास, सखा, वाहन, आसन, ध्वजा, चाँदनी एवं व्यजन आदि सब कुछ बन जाते हैं। यही बात हनुमान्जीकी है। वे दूतका भी कार्य करते हैं, युद्ध भी कर लेते हैं, पूछनेपर सम्मति दे देते हैं, आवश्यकता पड़नेपर वाहन भी बन जाते हैं। ऐसे ही सेवक स्वामीसे भी अधिक सम्मानके भाजन बन जाते हैं।

हनुमान्जीने संजीवनी लाकर लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा भंग करायी। युद्धके समय जब रावणने अपने सेनापति तथा मन्त्री धूम्राक्षको युद्ध करनेके लिये भेजा, तब बहुत-से वानर एक ही साथ उससे युद्ध करने लगे, उस समय धूम्राक्षने बड़े गर्वके साथ कहा—'मैं लंकामें महावीरके नामसे विख्यात हूँ, अत: साधारण वानरोंसे नहीं लड़ता। मैं तो राम, लक्ष्मण और सुग्रीव तथा विभीषणको मारने आया हूँ, तुम साधारण वानरोंको मारकर क्या करूँगा। तुम अपने-अपने प्राणोंको लेकर भाग जाओ।'

इसपर हनुमान्जीने कहा—'मन्त्रीजी लंकामें आप महावीरके नामसे प्रसिद्ध हैं और यहाँ वानर मुझे भी महावीर ही कहकर सम्बोधित करते हैं। अत: पहले आप हमारे साथ युद्ध करें, तब आगे बढ़ें।'

हनुमान्जीका इतना कहना ही था कि धूम्राक्षने बाणोंकी बौछार शुरू कर दी। हनुमान्जी भला कब चूकनेवाले थे, उन्होंने एक पहाड़का शिखर उठाकर धूम्राक्षको लक्ष्य करके मारा। उससे धूम्राक्ष तो बच गया, परंतु उसके रथ, घोड़े तथा सारथी सभी चकनाचूर हो गये। तब धूम्राक्षने एक गदा हनुमान्जीके सिरपर मारी, किंतु वह ऐसे ही लगी जैसे कोई शिलापर लात मारे। तब हनुमान्जीने दूसरा पर्वत-शिखर उठाकर धूम्राक्षपर मारा। जिसके भीषण आघातसे वह दबकर तत्काल मर गया। सभीने हनुमान्जीके इस कार्यकी अत्यन्त ही प्रशंसा की।

रावणने जब देखा कि मेरे सभी प्रधान-प्रधान सेनानायक मरते जा रहे हैं; तो वह स्वयं रथपर चढ़कर श्रीरामचन्द्रजीसे लड़ने चला। सम्मुख उसे लक्ष्मणजी मिल गये। लक्ष्मणजीने उसे रोक लिया। दोनोंमें घनघोर युद्ध होने लगा। लक्ष्मणजीकी वीरता देखकर रावण विस्मित हुआ, उसने एक ऐसा अमोघ बाण छोड़ा कि लक्ष्मणजी उससे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। समरमें स्वामीके लिये सदा सचेत रहनेवाले शंकरसुवनने जब देखा कि लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये तो वे उन्हें तुरंत अपनी पीठपर लादकर श्रीरामचन्द्रजीके समीप ले गये। अपने भाईको मूर्च्छित तथा अचेत देखकर उन्हें अपनी गोदमें लिटाकर श्रीराम अत्यन्त करुण विलाप करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीको विलाप करते देख वानर दु:खी हुए। उसी समय शनै:-शनै: लक्ष्मणजी स्वयं ही सँभले। उन्हें चेत हो गया। मूर्च्छासे जागकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम किया। अब श्रीरामचन्द्रजीको रावणपर क्रोध आया। वे केसरीनन्दन मारुतिसे बोले—'हनुमान् तुम उस दुष्ट रावणके समीप मुझे ले चलो। आज मैं उसके बल-पुरुषार्थको देखूँगा। मैं बहुत दिनोंसे उसे देखना चाहता हूँ।'

हनुमान्जीने प्रार्थना की—'प्रभो! रावण रथपर है। आप पैदल उससे युद्ध करें यह उचित नहीं। आप मेरे कन्धोंपर बैठकर उससे युद्ध करें।

हनुमान्जीकी यह प्रार्थना श्रीरामने स्वीकार कर ली। हनुमान्जीको अपना वाहन बनाकर उनके कन्धोंपर बैठकर वे रावणसे युद्ध करनेके लिये चले। रावणने जब श्रीरामको हनुमान्जीके कन्धेपर चढ़ा देखा तो कहा—'मैं बहुत दिनोंसे रामको खोज रहा था। आज मैं रामको मारकर राक्षसोंके भयको दूर कर दूँगा।'

श्रीरामजीने यह सुनकर कहा—'अरे राक्षसाधम, शूरवीर बकवाद नहीं किया करते, वे तो रणमें अपना कौशल दिखाते हैं। अच्छा आ जा! आज मैं तेरा गर्व खर्व कर दूँगा।'

ऐसा कहकर श्रीरामजी रावणसे युद्ध करने लगे। दोनोंका युद्ध अपूर्व था। बड़ी देरतक भयंकर युद्ध होता रहा। हनुमान्जी अपने कौशलसे उसके प्रहारोंको बचाते रहते। इसपर रावणको बड़ा क्रोध आया। पहले हनुमान्जीने उसे मूर्च्छित भी किया था। रावणने अपने मनमें सोचा, यह

वानर ही हत्याकी जड़ है। जिस काममें देखो उसीमें यह आगे आ जाता है। इसे किसी भी छोटे-से-छोटे कार्यमें लज्जा-संकोच नहीं। यह दूत बनकर समुद्र लाँघ गया, इसीने मेरी लंकापुरीमें आग लगायी, मेरे पुत्र अक्षयकुमारको मारा और मेरे मन्त्री धूम्राक्षको रणमें संहारा। इसीने संजीवनी बूटी लाकर लक्ष्मणको बचा लिया तथा युद्धमें मुझे घायल किया। अब यह रामका वाहन बनकर आ गया, पहले इसीको मार डालूँ। इसके मरनेसे राम निर्बल हो जायगा। हनुमान्‌जी तो लड़ नहीं रहे थे, वे तो वाहन बने हुए थे। अतः उसके प्रहारसे घायल हो गये। हनुमान्‌जीको घायल देखकर श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा क्रोध आया। अब वे रावणपर और तीव्र प्रहार करने लगे।

बहुत देरसे युद्ध करते रहनेके कारण रावण बहुत थक गया था, इसलिये अब वह बेमनसे लड़ रहा था। श्रीराम उसकी दुर्बलताको समझ गये और बोले—'राक्षसराज! प्रतीत होता है, चिरकालसे युद्ध करते-करते तुम अत्यन्त ही श्रमित हो गये हो, मैं अधर्म युद्ध करना नहीं चाहता, अब तुम कल आना, हमारा तुम्हारा युद्ध कल होगा।'

यह सुनकर रावण अत्यन्त लज्जित हुआ। यथार्थमें वह बहुत अधिक थक गया था। अतः लौटकर लंकापुरीमें चला गया।

दूसरे दिन युद्ध हुआ, श्रीरामने रावणको मार दिया। रावणके मरते ही राक्षसोंकी सेना भाग गयी। वानर-सेना प्रमुदित हुई, श्रीरामकी विजय हुई। श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणजीने लंकापुरीमें जाकर विभीषणको लंकाके राज्यपर अभिषिक्त किया। इस शुभ समाचारको लेकर हनुमान् माता जानकीके समीप गये। यह सुनकर जनकनन्दिनीके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वे हनुमान्‌जीके उपकारोंके कारण मानो कृतज्ञताके भारसे दब-सी गयीं। उन्होंने कहा—'हनुमान्! तुमने जो साहसके कार्य किये हैं, तुमने जो उपकार किया है, उसे व्यक्त करनेके लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। तुम्हारे ऋणसे मैं कभी उऋण न हो सकूँगी, सदा तुम्हारी ऋणी ही बनी रहूँगी।'

हनुमान्‌जीने कहा—'माँ! आप कैसी बात कह रही हैं। पुत्र तो माँके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता। माँ, मेरी एक इच्छा है, आप कहें तो उसे पूरा कर लूँ।'

माता जानकीने कहा—'कौन-सी इच्छा है भैया!'

इसके पहले जिस समय मैं अशोकवाटिकामें आया था, उसी समय रावण आपके समीप आया था, जब आपने उसकी बात नहीं मानी, तब वह इन राक्षसियोंको आज्ञा दे गया कि 'सीताको भाँति-भाँतिकी यातनाएँ दो।' इन राक्षसियोंने आपको बहुत पीडाएँ पहुँचायीं, भाँति-भाँतिकी यातनाएँ दीं। अब उन्हें देखकर मेरे हाथ खुजला रहे हैं, आपकी आज्ञा हो तो इन्हें दो-दो झापड़ जमा दूँ, आपको कष्ट देनेका इन्हें मजा चखा दूँ, इनकी थोड़ी-सी मरम्मत कर दूँ।

यह सुनकर सीताजीने कहा—'ना, भैया! ऐसा कभी मत करना। अरे, हनुमान्! तुम समझते नहीं। उस समय ये बेचारी परवश थीं। दूसरेके अधीन थीं। मनुष्य अपनी स्थितिसे विवश होकर न करने योग्य कार्य भी करता है। परिस्थितियाँ उसे ऐसा करनेपर विवश कर देती हैं। ये सब-की-सब निरपराधिनी हैं। पवनतनय उन्हें मारकर तुम्हें क्या मिलेगा। इन्हें दण्ड देनेसे मुझे अत्यन्त दुःख होगा। बेटा! कोई किसीको दुःख-सुख नहीं देता। सब काल करवा लेता है। ये कालकी क्रूर चेष्टाएँ हैं। सबल पुरुषोंको निर्बलोंपर दया करनी चाहिये। तुम तो दो-दो झापड़की बात करते हो, ये तो तुम्हारे एक ही झापड़में धराशायी हो जायँगी। उस समय ये रावणके अधीन थीं। जो भी करती थीं, रावणकी आज्ञासे करती थीं। इनके कार्योंका उत्तरदायित्व रावणके ही ऊपर था। जब रावण मर गया तो वे बातें भी समाप्त हो गयीं। अब तो यह तुम्हारी कृपाकी इच्छुक हैं, इनपर कृपा करो, इन्हें पारितोषिक दो।'

यह सुनकर हनुमान्‌जी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'माँ! ये वचन श्रीरामजीकी प्राणप्रियताके ही अनुरूप हैं।'

तदनन्तर श्रीसीता-रामका मिलन हुआ। विभीषणसे पुष्पक विमान लेकर श्रीरामचन्द्रजी सीताजी, लक्ष्मणजी तथा मुख्य-मुख्य वानरोंको साथ लेकर अवधपुरीको चल दिये। मार्गमें कुछ देरके लिये पुष्पक विमान किष्किन्धामें उतरकर पुनः आगे बढ़ा। आगे चलकर हनुमान्‌जीने भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! यहाँ समीपके ही पहाड़पर मेरी माताजी रहती हैं, आज्ञा हो तो मैं उनके दर्शन कर आऊँ।'

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'अंजनानन्दवर्धन! हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो तुम हमें माताजीके दर्शनसे वंचित रखना चाहते हो। अंजना केवल तुम्हारी ही माँ हैं क्या? वे हमारी माँ नहीं हैं क्या भैया? वे तो जगन्माता हैं। हमें भी कृपा करके ले चलो, ऐसी वीरप्रसवा माँके

दर्शनोंसे तो महान् पुण्य होता है।'

यह सुनकर हनुमान्‌जी लज्जित हुए, उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तबतक पुष्पक विमान माता अंजनादेवीके समीप उतर पड़ा।

आगे जाकर हनुमान्‌जीने माताके चरणकमलोंमें साष्टांग प्रणाम किया, माताने उठाकर अपने लालको गोदमें बिठा लिया, उनका सिर सूँघा और प्यार किया। इतनेमें ही श्रीरामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी, सीताजी तथा अन्यान्य वानर आ गये। हनुमान्‌जीने कहा—'माँ! ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजी हैं, ये इनके छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं और ये जानकी माता हैं। वनमें राक्षसराज रावण माता सीताको हर ले गया था। असंख्य वानरोंकी सेना एकत्र करके समुद्रपर पुल बाँधकर, रावणको मारकर, सीताको छुड़ाकर अब हम सब लोग अयोध्यापुरी जा रहे हैं।'

इतना सुनते ही माताकी त्यौरियाँ बदल गयीं, उनका मुख रक्तवर्णका हो गया, उनकी दोनों आँखें लाल-लाल हो गयीं, वे क्रोधसे भरकर बोलीं—'हनुमान्! तूने मेरे दूधको लज्जित कर दिया। अरे मूर्ख, इस छोटेसे कार्यके लिये श्रीरामको इतना कष्ट सहन करना पड़ा। तूने तो मेरा दूध पिया था। अरे, तू अकेला जाकर उस राक्षसराजको पकड़ लाता, नहीं तो उस लंकापुरीको ही उखाड़ लाता। रावणको मच्छरकी भाँति मसल डालता। तूने मेरे दूधको लाञ्छित कर दिया। धिक्कार है तुझे! ऐसा कहकर माताने हनुमान्‌जीको गोदीसे नीचे फेंक दिया। तब श्रीरामचन्द्रजीने माताको प्रणाम करके कहा—'माता तुम्हारा पुत्र सब कुछ करनेमें समर्थ है। वह अकेला ही रावणको मार सकता था, वह अकेला ही लंकाको उखाड़कर समुद्रमें डुबो सकता था, किंतु माताजी फिर तुम्हारे पुत्रका ही नाम होता—केवल उसीकी प्रसिद्धि होती, फिर लोकपावन रामचरित कैसे लिखा जाता? मैंने जगत्‌में लीलाका विस्तार करनेके लिये ही ऐसा किया है। आप हनुमान्‌जीपर प्रसन्न हों। इन्होंने जो कुछ भी किया, मेरी इच्छासे, मेरी आज्ञासे किया है। आप इन्हें पूर्ववत् प्यार करें।'

श्रीरामचन्द्रजीकी बातें सुनकर माँ प्रसन्न हुईं। उन्होंने जानकी एवं लक्ष्मणसहित श्रीरामकी पूजा की और हनुमान्‌जीको बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया।

लक्ष्मणजीके मनमें शंका हुई कि 'यह बुढ़िया बार-बार अपने दूधकी प्रशंसा कर रही है। इनके दूधमें ऐसी क्या विशेषता है।' माता रामानुजके भावको ताड़ गयीं और बोलीं—'प्रतीत होता है कि छोटे राजकुमारको मेरे दूधपर संदेह हो रहा है। मैं इन्हें अभी अपने दूधका प्रभाव दिखाती हूँ।' यह कहकर माताने अपने स्तनको दबाकर दूधकी एक धार सामनेके पर्वतपर छोड़ी। दूधकी धारसे वह समूचा पर्वत फट गया, यह देखकर सभी आश्चर्यचकित हुए।

तदनन्तर माताकी आज्ञा लेकर सब लोग विमानपर चढ़कर प्रयागराजमें भगवान् भरद्वाजके आश्रमपर आ गये।

(संकलनकर्ता—डॉ० श्रीविद्याधरजी द्विवेदी)

परमात्म-साक्षात्कार

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोप० २। ५)

मानव-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। इसे पाकर जो मनुष्य परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें तत्परताके साथ नहीं लग जाता, वह बहुत बड़ी भूल करता है। अतएव श्रुति कहती है कि 'जबतक यह दुर्लभ मानव-शरीर विद्यमान है, भगवत्कृपासे प्राप्त साधन-सामग्री उपलब्ध है, तभीतक शीघ्र-से-शीघ्र परमात्माको जान लिया जाय तो सब प्रकारसे कुशल है—मानव-जन्मकी परम सार्थकता है। यदि यह अवसर हाथसे निकल गया तो फिर महान् विनाश हो जायगा—बार-बार मृत्युरूप संसारके प्रवाहमें बहना पड़ेगा। फिर, रो-रोकर पश्चात्ताप करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रह जायगा। संसारके त्रिविध तापों और विविध शूलोंसे बचनेका यही एक परम साधन है कि जीव मानव-जन्ममें दक्षताके साथ साधन-परायण होकर अपने जीवनको सदाके लिये सार्थक कर ले। मनुष्य-जन्मके सिवा जितनी और योनियाँ हैं, सभी केवल कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही मिलती हैं। उनमें जीव परमात्माको प्राप्त करनेका कोई साधन नहीं कर सकता। बुद्धिमान् पुरुष इस बातको समझ लेते हैं और इसीसे वे प्रत्येक जातिके प्रत्येक प्राणीमें परमात्माका साक्षात्कार करते हुए सदाके लिये जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटकर अमर हो जाते हैं।

जन्म कर्म च मे दिव्यम्

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान् श्रीकृष्णके जन्म-कर्मकी दिव्यता एक अलौकिक और रहस्यमय विषय है, इसके तत्त्वको वास्तवमें तो भगवान् ही जानते हैं, अथवा यत्किंचत् उनके वे भक्त जानते हैं, जिनको उनकी दिव्य-मूर्तिका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ हो; परंतु वे भी जैसा जानते हैं कदाचित् वैसा कह नहीं सकते। जब एक साधारण विषयको भी मनुष्य जिस प्रकार अनुभव करता है उस प्रकार नहीं कह सकता, तब ऐसे अलौकिक विषयको कोई कैसे कह सकता है? भगवान्‌के जन्म-कर्म तथा स्वरूपकी दिव्यताके विषयमें विस्तारपूर्वक सूक्ष्म विवेचनरूपसे शास्त्रोंमें प्रायः स्पष्ट उल्लेख भी नहीं मिलता, जिसके आधारसे मनुष्य उस विषयमें कुछ विशेष समझा सके, इस स्थितिमें यद्यपि इस विषयपर कुछ लिखनेमें मैं अपनेको असमर्थ मानता हूँ, तथापि अपने मनके कुछ भावोंको यत्किंचित् प्रकट करता हूँ। इस अवस्थामें कुछ अनुचित लिखा जाय तो भक्तजन बालक समझकर मुझे क्षमा करेंगे।

भगवान्‌का जन्म दिव्य है, अलौकिक है, अद्भुत है। इसकी दिव्यताको जाननेवाला करोड़ों मनुष्योंमें शायद ही कोई एक होगा। जो इसकी दिव्यताको जान जाता है, वह मुक्त हो जाता है, भगवान्‌ने गीता (४। ९)-में कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

'हे अर्जुन! मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है, इस प्रकार जो पुरुष तत्त्वसे जानता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको नहीं प्राप्त होता, किंतु मुझे ही प्राप्त होता है।'

इस रहस्यको नहीं जाननेवाले लोग कहा करते हैं कि निराकार सच्चिदानन्दघन परमात्माका साकाररूपमें प्रकट होना न तो सम्भव है और न युक्तिसंगत ही है। वे यह भी शंका करते हैं कि सर्वव्यापक, सर्वत्र समभावसे स्थित, सर्वशक्तिमान् भगवान् पूर्णरूपसे एक देशमें कैसे प्रकट हो सकते हैं? और भी अनेक प्रकारकी शंकाएँ की जाती हैं। वास्तवमें ऐसी शंकाओंका होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जब मनुष्य-जीवनमें इस लोकको किसी अद्भुत बातके सम्बन्धमें भी बिना प्रत्यक्ष ज्ञान हुए उसपर पूरा विश्वास नहीं होता—तब भगवान्‌के विषयमें विश्वास न होना आश्चर्य अथवा असम्भव नहीं कहा जा सकता। भौतिक विषयको तो उसके क्रियासाध्य होनेके कारण विज्ञानको जाननेवाले किसी भी समय प्रकट करके उसपर विश्वास करा भी सकते हैं। किंतु परमात्मा-सम्बन्धी विषय बड़ा ही विलक्षण है। प्रेम और श्रद्धासे स्वयमेव निरन्तर उपासना करके ही मनुष्य इस तत्त्वका प्रत्यक्ष कर सकता है। कोई भी दूसरा मनुष्य अपनी मानवी शक्तिसे इसे प्रकट करके नहीं दिखला सकता। भगवान्‌ने कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

'हे श्रेष्ठ तपवाले अर्जुन! अनन्यभक्ति करके तो इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये और तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

विचार करनेपर यह प्रतीत होगा कि ऐसा होना युक्तिसंगत ही है। प्रह्लादको भगवान्‌ने खम्भमेंसे प्रकट होकर दर्शन दिये थे। इस प्रकार भगवान्‌के प्रकट होनेके अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें विभिन्न स्थलोंपर मिलते हैं। सर्वशक्तिमान् परमात्मा तो असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं, फिर यह तो सर्वथा युक्तिसंगत है। भगवान् जब सर्वत्र विद्यमान हैं तब उनका स्तम्भमेंसे प्रकट हो जाना कौन आश्चर्यकी बात है? यदि यह कहें कि निराकार सर्वव्यापक परमात्मा एक देशमें पूर्णरूपसे कैसे प्रकट हो सकते हैं; तो इसको समझानेके लिये हम अग्निका उदाहरण सामने रखते हैं, यद्यपि यह सम्पूर्णरूपसे पर्याप्त नहीं है; क्योंकि परमात्माके सदृश व्यापक वस्तु अन्य कोई है ही नहीं जिसकी परमात्माके साथ तुलना की जा सके।

अग्नि-तत्त्व कारणरूपसे अर्थात् परमाणुरूपसे निराकार है और लोकमें समभावसे सभी जगह अप्रकटरूपेण व्याप्त

है। लकड़ियोंके मथनेसे, चकमक पत्थरसे और दियासलाईकी रगड़से अथवा अन्य साधनोंद्वारा चेष्टा करनेपर वह एक जगह अथवा एक ही समय कई जगह प्रकट होती है; और जिस स्थानमें अग्नि प्रकट होती है, उस स्थानमें अपनी पूर्ण शक्तिसे ही प्रकट होती है। अग्निकी छोटी-सी शिखाको देखकर कोई यह कहे कि यहाँ अग्नि पूर्णरूपसे प्रकट नहीं है, तो यह उसकी भूल है। जहाँपर भी अग्नि प्रकट होती है, वह अपनी दाहक तथा प्रकाशक शक्तिको पूर्णतया साथ रखती हुई ही प्रकट होती है और आवश्यक होनेपर वह जोरसे प्रज्वलित होकर सारे ब्रह्माण्डको भस्म करनेमें समर्थ हो सकती है। इस तरह पूर्ण शक्तिसम्पन्न होकर एक जगह या एक ही समय अनेक जगह एकदेशीय साकाररूपमें प्रकट होनेके साथ ही वह अव्यक्त—निराकाररूपमें सर्वत्र व्याप्त भी रहती है। इसी प्रकार निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन अक्रियरूप परमात्मा अप्रकटरूपसे सब जगह व्याप्त होते हुए भी सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न अपने पूर्ण प्रभावके सहित एक जगह अथवा एक ही कालमें अनेक जगह प्रकट हो सकते हैं; इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? इस प्रकार भगवान्का प्रकट होना तो सर्व प्रकारसे युक्तिसंगत है।

कोई-कोई पुरुष यह शंका करते हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं, वे अपने संकल्पमात्रसे ही रावण और कंस आदिको दण्ड दे सकते थे, फिर उन्हें श्रीराम और श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता थी? यह शंका भी सर्वथा अयुक्त है। ईश्वरके कर्तव्यके विषयमें इस प्रकारकी शंका करनेका मनुष्यको कोई अधिकार नहीं है; तथापि जिनका चित्त अज्ञानसे मोहित है, उनके मनमें ऐसी शंका हो जाया करती है। भगवान्के अवतरणमें बहुत-से कारण हो सकते हैं, जिनको वस्तुतः वे ही जानते हैं। फिर भी अपनी साधारण बुद्धिके अनुसार कई कारणोंमेंसे एक यह भी कारण समझमें आता है कि वे संसारके जीवोंपर दया करके सगुणरूपमें प्रकट होकर एक ऐसा ऊँचा आदर्श रख जाते हैं—संसारको ऐसा सुलभ और सुखकर मुक्ति-मार्ग बतला जाते हैं, जिससे वर्तमान एवं भावी संसारके असंख्य जीव परमेश्वरके उपदेश और आचरणको लक्ष्यमें रखकर, उनका अनुकरण कर कृतार्थ होते रहते हैं।

भगवान्के जन्म और विग्रह दिव्य होते हैं, यह बड़े ही रहस्यका विषय है। भगवान्का जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं होता। भगवान् श्रीकृष्ण जब कारागारमें वसुदेव-देवकीके सामने प्रकट हुए, उस समयका श्रीमद्भागवतका प्रसंग देखने और विचारनेसे मनुष्य समझ सकता है कि उनका जन्म साधारण मनुष्योंकी भाँति नहीं हुआ। अव्यक्त सच्चिदानन्दघन परमात्मा अपनी लीलासे ही शंख, चक्र, गदा, पद्मसहित विष्णुके रूपमें वहाँ प्रकट हुए। उनका प्रकट होना और पुनः अन्तर्धान होना उनकी स्वतन्त्र लीला है, वह हम लोगोंके उत्पत्ति-विनाशकी तरह नहीं है। भगवान्की तो बात ही निराली है। एक योगी भी अपने योगबलसे अन्तर्धान हो जाता है और पुनः उसी स्वरूपमें प्रकट होकर दर्शन देता है, परंतु उसकी अन्तर्धानकी अवस्थामें उसे कोई मरा हुआ नहीं समझता। जब महर्षि पतञ्जलि आदि योगके ज्ञाता एक योगीकी ऐसी शक्ति बतलाते हैं, तब परमात्मा ईश्वरके लिये अपने पहले रूपको छिपाकर दूसरे रूपमें प्रकट होने आदिमें तो बड़ी बात ही क्या है? अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण साधारण लोकदृष्टिमें उनके जन्म लेनेके सदृश ही हुआ, परंतु वास्तवमें वह जन्म नहीं था, वह तो उनका प्रकट होना था। श्रीमद्भागवत (१०। १४। ५५)-में श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

'आप इन श्रीकृष्णको सम्पूर्ण भूतप्राणियोंके आत्मा जानें। इस लोकमें भक्तजनोंके उद्धारके लिये ये भगवान् अपनी मायासे देहधारी-से प्रतीत होते हैं।'

जब भगवान् दिव्यरूपसे प्रकट हुए, तब माता देवकी उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति करती हुई कहती हैं—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥

(श्रीमद्भा० । १० । ३ । ३०)

'हे विश्वात्मन्! आप शंख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजावाले अपने अद्भुत रूपको छिपा लीजिये।' देवकीके प्रार्थना करनेपर भगवान्ने अपने चतुर्भुजरूपको

छिपाकर द्विभुज बालकका रूप धारण कर लिया—

पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३। ४६)

इससे उनका प्रकट होना ही स्पष्ट होता है। गीतामें भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने अर्जुनके प्रार्थना करनेपर पहले उसे अपना विश्वरूप दिखलाया, फिर उसीकी प्रार्थनापर चतुर्भुजरूप धारण किया और अन्तमें पुनः द्विभुजरूप होकर दर्शन दिये। इससे प्रकट होता है कि भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार उन्हें दर्शन देकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान्के प्रकट और अन्तर्धान होनेको जो लोग मनुष्योंके जन्म और मरणके सदृश समझते हैं, वे भगवान्के तत्त्वको नहीं जानते। अपने जन्मकी दिव्यताको दिखलाते हुए भगवान् गीता (४। ६)-में अर्जुनके प्रति कहते हैं—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

'मैं अविनाशीस्वरूप, अजन्मा होनेपर भी तथा सब भूतप्राणियोंका ईश्वर होनेपर भी अपनी प्रकृतिको अधीन करके योगमायासे प्रकट होता हूँ।'

इस श्लोकमें '**अपि**' और '**सन्**' शब्दोंसे भगवान्का यह कथन स्पष्ट है कि मेरे प्रकट होनेके तत्त्वको नहीं जाननेवाले मूर्खोंको मैं अजन्मा होता हुआ भी जन्मता और मरता हुआ-सा प्रतीत होता हूँ। जब मैं सगुणरूपसे अन्तर्धान होता हूँ, तब मेरे इस छिपनेके रहस्यको न जाननेवाले मूर्खोंकी दृष्टिमें मैं अविनाशी विनाशभावको प्राप्त होता हुआ-सा प्रतीत होता हूँ और जब मैं लीलासे साधारणरूपमें प्रकट होता हूँ, तब उसका यथार्थ मर्म न जाननेवाले मूढोंकी दृष्टिमें मैं सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा सारे भूतप्राणियोंका ईश्वर होता हुआ भी साधारण मनुष्य-सा प्रतीत होता हूँ।

उपर्युक्त वर्णनसे यह सिद्ध हो जाता है कि भगवान्का प्रकट होना और अन्तर्धान होना मनुष्योंकी उत्पत्ति और विनाशके सदृश नहीं है। उनका जन्म मनुष्योंके जन्मकी भाँति होता तो एक क्षणके अंदर एक शरीरसे दूसरे शरीरका परिवर्तन करना—जैसे उन्होंने देवकी और अर्जुनके सामने किया था, कभी नहीं बन सकता।

मनुष्योंके शरीरके विनाशकी तरह भगवान्के दिव्य वपुका विनाश भी नहीं समझना चाहिये, जिस शरीरका विनाश होता है वह तो यहीं पड़ा रहता है, किंतु देवकीके सामने चतुर्भुजरूपके और अर्जुनके सामने विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके अदृश्य हो जानेपर उन वपुओंकी वहाँ उपलब्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीने जिस देहसे एक सौ पचीस वर्षतक लोकहितके लिये विविध लीलाएँ कीं वह देह भी अन्तमें नहीं मिली। वे उसी लीलामय वपुसे परमधामको पधार गये। इसके बाद भी जब-जब भक्तोंने इच्छा की, तब-तब उसी श्यामसुन्दर-शरीरसे पुनः प्रकट होकर उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। यदि उनकी देहका विनाश हो गया होता तो परमधाम पधारनेके अनन्तर इस प्रकार पुनः प्रकट होना कैसे बनता?

इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान्का अन्तर्धान होना अपने परमधाममें सिधारना है, न कि मनुष्यदेहोंकी भाँति विनाश होना। श्रीमद्भागवत (११। ३१। ६)-में भी लिखा है—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम्।
योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम्॥

'भगवान् योगधारणाजनित अग्निके द्वारा अपनी लोकाभिराम मोहिनी मूर्तिको भस्म किये बिना ही इस अपने शरीरसे ही परमधामको पधार गये।'

भगवान्का प्राकट्य भूतप्राणियोंकी उत्पत्तिकी अपेक्षा ही नहीं, अपितु योगियोंके प्रकट होनेकी अपेक्षा भी अत्यन्त विलक्षण है। वह जन्म दिव्य है, अलौकिक है, अद्भुत है। भगवान् मूल प्रकृतिको अपने अधीन किये हुए ही अपनी योगमायासे प्रकट होते हैं। जगत्के छोटे-बड़े सभी चराचर जीव प्रकृतिके और अपने गुण, कर्म स्वभावके वशमें हुए प्रारब्धके अनुसार सुख-दुःखादि भोगोंको भोगते हैं। यद्यपि योगीजन साधारण मनुष्योंकी भाँति ईश्वरकी मायाके और अपने स्वभावके पराधीन तो नहीं हैं, तथापि उनका जन्म भी मूल प्रकृतिको वशमें करके ईश्वरकी भाँति लीलामात्र नहीं होता। परंतु परमात्मा किसीके वशमें होकर प्रकट नहीं होते। वे अपनी इच्छासे ही अवतरित होते हैं, इसीलिये भगवान्ने गीता (४। ६)-में कहा है—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

ईश्वरका प्रकट होना उनकी लीला है और जीवोंका जन्म लेना दुःखमय है; ईश्वर प्रकट होनेमें सर्वथा स्वतन्त्र हैं और जीव जन्म लेनेमें सर्वथा परतन्त्र हैं। ईश्वरके जन्ममें हेतु है जीवोंपर उनकी अहैतुकी दया और जीवोंके जन्ममें हेतु है उनके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म। जीवोंके शरीर अनित्य, पापमय, रोगग्रस्त, लौकिक और पाञ्चभौतिक होते हैं एवं ईश्वरका शरीर परम दिव्य अप्राकृत होता है। वह पाञ्चभौतिक नहीं होता। श्रीमद्भागवत (१०। १४। २)-में ब्रह्माजी कहते हैं—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि।
नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽऽन्तरेण
साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥

'हे देव! आपके इस दिव्य प्रकट देहकी महिमाको भी कोई नहीं जान सकता, जिसकी रचना पञ्चभूतोंसे न होकर मुझपर अनुग्रह करनेके लिये अपने भक्तोंकी इच्छाके अनुसार ही हुई है। फिर आपके उस साक्षात् आत्मसुखानुभव अर्थात् विज्ञानानन्दघन स्वरूपको तो हम लोग समाधिके द्वारा भी नहीं जान सकते।'

इससे भी यह बात समझमें आती है कि भगवान्‌का शरीर लौकिक पञ्चभूतोंसे बना हुआ नहीं था। वह तो उनका खास संकल्प है; दिव्य प्रकृतियोंसे बना है, पाप-पुण्यसे रहित होनेके कारण अनामय अर्थात् रोगसे रहित एवं विशुद्ध है। विज्ञानानन्दघन परमात्माके सगुणरूपमें प्रकट होनेके कारण ही उस रूपको आनन्दमय कहा है। सम्पूर्ण अनन्त आनन्द ही मूर्तिमान् होकर प्रकट हो गया है, या यों समझिये कि साक्षात् प्रेम ही दिव्य मूर्ति धारण कर प्रकट हो गया है। इसीसे जो उस आनन्द और प्रेमार्णव श्यामसुन्दर दिव्य शरीरका तत्त्व जान लेता है, वह प्रेममें मुग्ध हो जाता है; आनन्दमय बन जाता है। प्रेम और आनन्द वास्तवमें एक ही चीज है, क्योंकि प्रेमसे ही आनन्द होता है। प्रकृतिके सम्बन्ध बिना मनुष्यकी चर्मदृष्टिसे वे दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। इसीलिये परमेश्वर अपनी प्रकृतिके शुद्ध सत्त्वको साथ लिये हुए प्रकट होते हैं अर्थात् जिन दिव्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिका योगी लोगोंको अनुभव होता है, उन्हीं दिव्य धातुओंसे सम्बन्ध किये हुए भगवान् प्रकट होते हैं और भक्तोंपर अनुग्रह कर वे विज्ञानानन्दघन परमात्मा जब अपने भक्तोंको दर्शन देकर उनसे वार्तालाप करते हैं, तब अपनी लीलासे उपर्युक्त दिव्य तन्मात्राओंको स्वाधीन करके ही वे प्रकट हुआ करते हैं, क्योंकि नेत्र रूपको देख सकता है, अतएव भगवान्‌को रूपवाला बनना पड़ता है, त्वचा स्पर्शको विषय करती है, अतएव भगवान्‌को स्पर्शवाला बनना पड़ता है, नासिका गन्धको विषय करती है, अतएव भगवान्‌को दिव्य गन्धमय-वपु धारण करना पड़ता है। इसी प्रकार मन और बुद्धि मायाका कार्य होनेसे मायासे सम्मिलित वस्तुको ही चिन्तन करने और समझनेमें समर्थ हैं। इसलिये निराकार सर्वव्यापी विज्ञानानन्दघन परमात्मा प्रकृतिके गुणों-सहित अपने भक्तोंको विशेष ज्ञान करानेके लिये साकार होकर प्रकट होते हैं, प्रकृतिके सहित उस शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्माके प्रकट होनेका तत्त्व सबकी समझमें नहीं आता। इसीलिये भगवान्‌ने गीता (७। २५)-में कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्॥

'अपनी योगमायासे छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ, इसीलिये यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्मरहित, अविनाशी परमात्माको तत्त्वसे नहीं जानता है, अर्थात् मुझे जन्मने-मरनेवाला मानता है।'

तत्त्वको न जाननेके कारण ही लोग भगवान्‌का अपमान भी किया करते हैं और भगवान्‌के शक्ति-सामर्थ्यकी सीमा बाँधते हुए कह देते हैं कि विज्ञानानन्दघन निराकार परमात्मा साकाररूपसे प्रकट हो ही नहीं सकते। वे साक्षात् परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको परमात्मा न मानकर एक मनुष्यविशेष मानते हैं; भगवान्‌के सम्बन्धमें इस प्रकारकी धारणा किसी चक्रवर्ती विश्व-सम्राट्‌को एक साधारण ताल्लुकेदार मानकर उसका अपमान करनेकी भाँति ईश्वरकी अवज्ञा या उनका अपमान करना है। भगवान्‌ने गीता (९। ११)-में कहा भी है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

'सम्पूर्ण भूतोंके महान् ईश्वररूप मेरे परमभावको न जाननेवाले मूढ लोग, मनुष्यका शरीर धारण करनेवाले मुझ परमात्माको तुच्छ समझते हैं अर्थात् अपनी योगमायासे संसारके उद्धारके लिये मनुष्यरूपमें विचरते हुए मुझको साधारण मनुष्य मानते हैं।'

इससे यह बात सिद्ध हो गयी कि निराकार सर्वव्यापी भगवान् जीवोंके ऊपर दया करके धर्मकी संस्थापनाके लिये दिव्य साकाररूपसे समय-समयपर अवतरित होते हैं, इस प्रकार शुद्ध सच्चिदानन्द निराकार परमात्माके दिव्य गुणोंके सहित प्रकट होनेके तत्त्वको जो जानता है, वही पुरुष उस परमात्माकी दयासे परमगतिको प्राप्त होता है। जिस प्रकार भगवान्के जन्मकी अलौकिकता है, उसी प्रकार भगवान्के कर्मोंकी भी अलौकिकता है। इसलिये भगवान्के कर्मोंकी दिव्यता जाननेसे पुरुष परमपदको प्राप्त हो जाता है। भगवान्के कर्मोंमें क्या दिव्यता है, उसका जानना क्या है और जाननेसे मुक्ति कैसे होती है, इस विषयमें कुछ लिखा जाता है। भगवान्के कर्मोंमें अहैतुकी दया, समता, स्वतन्त्रता, उदारता, दक्षता और प्रेम आदि गुण भरे रहनेके कारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या, सिद्ध योगियोंकी अपेक्षा भी उनके कर्मोंमें अत्यन्त विलक्षणता होती है। वे सर्वशक्तिमान्, सर्वसामर्थ्यवान् तथा असम्भवको भी सम्भव कर देनेवाले होनेपर भी न्यायविरुद्ध कोई कार्य नहीं करते, उन विज्ञानानन्दघन भगवान् श्रीकृष्णने सर्व भूतप्राणियोंपर परम दया करके धर्मकी स्थापना और जीवोंका कल्याण किया। उनकी प्रत्येक क्रियामें प्रेम एवं दक्षता, निष्कामता और दया परिपूर्ण है। जब भगवान् वृन्दावनमें थे, तब उनकी बाललीलाकी प्रत्येक प्रेममयी क्रियाको देखकर गोप और गोपियाँ मुग्ध हो जाया करती थीं, भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वको जाननेवाले जितने भी स्त्री-पुरुष थे, उनमें कोई एक भी ऐसा नहीं था जो उनकी प्रेममयी लीलाको देखकर मुग्ध न हो गया हो। उनकी मुरलीकी तान सुनकर मनुष्य तो क्या पशु-पक्षीतक मुग्ध हो जाते थे। उनके शरीर और वाणीकी चेष्टाएँ ऐसी अद्भुत थीं, जिनका किसी मनुष्यमें होना असम्भव है। प्रौढ़ अवस्थामें भी उनके कर्मोंकी विलक्षणता देखकर उनके तत्त्वको जाननेवाले प्रेमी भक्त पद-पदपर मुग्ध हुआ करते थे। अर्जुन तो उनके कर्म और आचरणोंपर तथा हाव-भाव-चेष्टाको देख-देखकर इतना मुग्ध हो गया था कि वह सदा उनके इशारेपर कठपुतलीकी भाँति कर्म करनेके लिये तैयार रहता था।

भगवान्के लिये कोई कर्तव्य न होनेपर भी वे केवल जीवोंको सन्मार्गमें लगानेके लिये ही कर्म किया करते हैं। गीता (३। २२)-में भगवान्ने स्वयं कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥

'हे अर्जुन! यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा किंचित् भी प्राप्त होने योग्य वस्तु अप्राप्त नहीं है तो भी मैं कर्ममें ही बर्तता हूँ।' भगवान्को समता बड़ी प्रिय थी। इसलिये गीता (६। ९)-में भी उन्होंने समताका वर्णन किया है—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

'सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी और बन्धुगणोंमें तथा धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी जो समान-भाववाला है वह अति श्रेष्ठ है।'

गीतामें केवल कहा ही नहीं, अपितु काम पड़नेपर भगवान्ने अपने मित्र और वैरियोंके साथ बर्ताव भी समताका ही किया। महाभारत युद्धके प्रारम्भमें दुर्योधन और अर्जुन युद्धके लिये मदद माँगने द्वारका गये और दोनोंहीने भगवान्से युद्धमें सहायताकी प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि एक ओर मेरी एक अक्षौहिणी नारायणी सेना है और दूसरी ओर मैं अकेला हूँ, पर मैं युद्धमें हथियार नहीं लूँगा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुन और दुर्योधन दोनोंके साथ समान व्यवहार किया। यहाँ यह विचारणीय विषय है कि भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुन कितना अधिक प्रिय था, वास्तवमें वे कहनेमात्रको ही दो शरीर थे। महाभारत,मौसलपर्व (६। २१-२२)-में श्रीकृष्णचन्द्रने श्रीवसुदेवजीसे कहा था—

योऽहं तमर्जुनं विद्धि योऽर्जुनः सोऽहमेव तु॥
यद् ब्रूयात् तत् तथा कार्यमिति बुद्ध्यस्व माधव।

'जो मैं हूँ वह अर्जुन है और जो अर्जुन है वह मैं हूँ, वह जैसा कहे, आप वैसा ही कीजियेगा।' तथा श्रीमद्भगवद्गीता (४।३)-में भी भगवान्ने कहा है—

भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्॥

इतना होते हुए भी वे अपने प्रिय सखा अर्जुनके विपक्षमें लड़नेवाले उसके शत्रु दुर्योधनको भी समानभावसे सहायता करनेको तैयार हो गये। जो अपने मित्रका शत्रु होता है, वह अपना शत्रु ही समझा जाता है। महाभारत, उद्योगपर्व (९१। २८)-में भगवान् श्रीकृष्ण जब संधि कराने गये तब उन्होंने स्वयं यह कहा भी था—

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि यस्ताननु स मामनु।
ऐकात्म्यं मां गतं विद्धि पाण्डवैर्धर्मचारिभिः॥

'जो पाण्डवोंका वैरी है, वह मेरा वैरी है और जो उनके अनुकूल है, वह मेरे अनुकूल है। मैं धर्मात्मा पाण्डवोंसे अलग नहीं हूँ। ऐसा होनेपर भी भगवान्ने दुर्योधनकी सैन्यबलसे सहायता की। संसारमें ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने प्रेमी मित्रके शत्रुको उसीसे युद्ध करनेके कार्यमें सहायता दे। परंतु भगवान्की समताका कार्य विलक्षण था। इस मददको पाकर दुर्योधन भी अपनेको कृतकृत्य मानने लगा और उसने ऐसा समझा कि मानो मैंने कृष्णको ठग लिया—

कृष्णं चापहृतं ज्ञात्वा सम्प्राप परमां मुदम्।
दुर्योधनस्तु तत् सैन्यं सर्वमादाय पार्थिवः॥

(महाभारत, उद्योगपर्व ७। २४)

भगवान् श्रीकृष्णके प्रभावको दुर्योधन नहीं जानता था, इसीलिये उसने इसमें उनकी उदारता और समता तथा महत्ताका तत्त्व न जानकर इसे मूर्खता समझा। जो लोग महान् पुरुषोंके प्रभावको नहीं जानते, उनको उन महापुरुषोंकी क्रियाओंके अंदर दया, समता एवं उदारता आदि गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। दुर्योधनके उदाहरणसे यह बात प्रत्यक्ष प्रमाणित होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण जो कुछ भी करते थे, उन सबमें समता, निःस्वार्थता तथा अनासक्तता आदि भाव पूर्ण रहते थे, इसीसे वे कर्मोंके द्वारा कभी लिपायमान नहीं होते थे। गीता (४। १३-१४)-में उन्होंने कहा भी है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

'हे अर्जुन! गुण और कर्मोंके विभागसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं, उनके कर्ताको भी—मुझ अविनाशी परमेश्वरको तू अकर्ता ही जान। क्योंकि कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझको कर्म लिपायमान नहीं करते। इस प्रकार जो मुझको तत्त्वसे जानता है वह भी कर्मोंसे नहीं बँधता है।' तथा—

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु॥

(गीता ९। ९)

'हे अर्जुन! उन कर्मोंमें आसक्तिरहित और उदासीनके सदृश स्थित हुए मुझ परमात्माको वे कर्म नहीं बाँधते।'

भगवान्की तो बात ही क्या है, तत्त्वको जाननेवाला पुरुष भी कर्मोंमें लिपायमान नहीं होता है। अब यह बात समझनेकी है कि उपर्युक्त श्लोकोंके तत्त्वको जानना क्या है? वह यही है कि भगवान् श्रीकृष्णको कर्मोंमें आसक्ति, विषमता और फलकी इच्छा नहीं रहती थी। जो मनुष्य यह समझकर कि कर्मोंमें आसक्ति, फलकी इच्छा एवं विषमता ही बन्धनके हेतु हैं, इन दोषोंको त्यागकर अहंकाररहित होकर कर्म करता है, वही कर्मोंके तत्त्वको जानकर कर्म करता है। इस प्रकार कर्मके तत्त्वको जानकर कर्म करनेवाला कर्मके द्वारा नहीं बँधता। ऐसा समझकर जो स्वयं इन दोषोंको त्यागकर कर्म करता है, वही इस तत्त्वको समझता है। जैसे संखिया, पारा आदिके दोषोंको मारकर उनका सेवन करनेवालेको हानिकी जगह परम लाभ पहुँचता है, इसी प्रकार विषमता, अभिमान, फलकी इच्छा और आसक्तिको त्यागकर कर्मोंका सेवन करनेवाला मनुष्य उनसे न बँधकर मुक्तिको प्राप्त होता है।

दूधमें विष मिला हुआ है, यह जानकर कोई भी मनुष्य उस दूधका पान नहीं करता है, यदि करता है तो उसे अत्यन्त मूढ समझना चाहिये। इसी प्रकार कर्मोंमें आसक्ति, कर्तृत्व-अभिमान, फलकी इच्छा और विषमता आदि दोष

विषसे भी अधिक विष होकर मनुष्यको बार-बार मृत्युके चक्करमें डालनेवाले हैं, जो पुरुष इस प्रकार समझता है वह उपर्युक्त दोषोंसे मुक्त होकर कभी कर्म नहीं करता।

भगवान् श्रीकृष्णके कर्मोंमें और भी अनेक विचित्रताएँ हैं, जिनको हम नहीं जान सकते और जो यत्किंचित् जानते हैं, उसको भी समझना बहुत कठिन है। हम तो चीज ही क्या हैं, भगवान्की लीलाओंको देखकर ऋषि, मुनि और देवतागण भी मोहित हो जाया करते थे। श्रीमद्भागवतमें लिखा है कि एक समय श्रीकृष्णचन्द्रजीकी लीलाओंको देखकर ब्रह्माजीको भी मोह हो गया था, उन्होंने ग्वाल-बालोंके सहित बछड़ोंको ले जाकर एक कन्दरामें रख दिया, महाराज श्रीकृष्णचन्द्रजीने यह जानकर तुरंत वैसे ही दूसरे ग्वाल-बाल और बछड़े रच लिये और गौएँ तथा गोपियों आदि—किसीको यह मालूम नहीं हुआ कि ये बालक तथा बछड़े दूसरे ही हैं।

वास्तवमें ब्रह्माजी-जैसे महान् देव ईश्वरके विषयमें मोहित हो जायँ, यह बात युक्तिसे सम्भव नहीं मालूम होती, किंतु ईश्वरके लिये कोई बात भी असम्भव नहीं है। वे असम्भवको भी सम्भव करके दिखा सकते हैं। विचारनेकी बात है कि इस प्रकारके अलौकिक तथा अद्भुत कर्म साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है; योगी लोग भी नहीं कर सकते।

परमात्माके जन्म और कर्मकी दिव्यताका विषय बड़ा अलौकिक और रहस्यमय है। अर्जुन भगवान्का अत्यन्त प्रिय सखा था, इसीलिये भगवान्ने यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य अर्जुनके प्रति कहा था।

इस प्रकार भगवान्के जन्म और कर्मकी दिव्यताको जो तत्त्वसे जानता है, वही भगवान्को तत्त्वसे जानता है। अतएव हम सबको इसके तत्त्वको समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। जो पुरुष इस तत्त्वको जितना ही अधिक समझेगा, वह उतना ही आनन्दमें मुग्ध होता हुआ परमात्माके नजदीक पहुँचेगा। उसके कर्मोंमें भी अलौकिकता भासने लगेगी और वह भगवान्के प्रभावको जानकर प्रेममें मुग्ध हो शीघ्र ही परमगतिको प्राप्त हो जायगा।

श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन एवं भगवल्लीला-चिन्तनसे ही कल्याण सम्भव है

(पूज्यपाद नित्यलीलालीन श्रीहरिबाबाजी महाराजके सदुपदेश)

पूज्यपाद श्रीहरिबाबाजी महाराज एक महान् सिद्ध संत थे। वे श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन तथा भगवल्लीला-चिन्तनको कलियुगमें एकमात्र कल्याणका साधन मानते थे। वे स्वयं रासलीलाके रसिक संत थे। श्रीरासलीलामें घंटों-घंटों खड़े रहकर वे अपने हाथोंसे भगवान् श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाजीको पंखा झला करते थे। बाँध (गवां—बँदायू)-में आयोजित रासलीला-समारोहमें हमने एक बार श्रीभगवल्लीलाके महत्त्वपर उनके उपदेश लिख लिये थे, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीराधा-कृष्णकी लीलाका रसास्वादन करनेकी क्षमता बड़े भाग्यवान् व्यक्तिको प्राप्त होती है। उन लोगोंके मन बड़े मलिन हैं, जो श्रीकृष्ण-राधामें स्त्री-पुरुषका भाव करते हैं। इसीलिये श्रीरासलीलाका रसास्वादन करनेसे पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण और जगज्जननी श्रीराधाजीके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर लेना बहुत जरूरी है। इन लीलाओंको जाननेके लिये परमोच्च भावोंसे युक्त निर्मल मनका होना जरूरी है।

वर्तमान समयमें चारों ओर दूषित वातावरण बढ़ता जा रहा है। सिनेमा तथा अश्लील पुस्तकोंके कारण हृदय और मस्तिष्क निरन्तर दूषित होता जा रहा है। ऐसी स्थितिमें भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् श्रीराम, महादेव शंकर एवं पार्वतीजी आदिकी दिव्य लीलाओंका चिन्तन करना चाहिये। यदि हमारा मन भगवान्की दिव्य लीलाओंमें रमने लगेगा तो सांसारिक दृश्य हमारी आँखोंमें स्वतः चुभने लगेंगे।

भगवल्लीलाके प्रति हमारे हृदयमें तभी रुचि उत्पन्न हो सकती है, जब हम अपने हृदयको पवित्र बनायें। हृदयको पावन बनानेका एकमात्र साधन श्रीभगवन्नाम-संकीर्तन तथा

नाम-जप है। पावन हुआ हृदय ही भगवान्‌की लीलाओंको धारण कर सकता है।

चैतन्य महाप्रभुजी महाराजने अपने भक्तोंको पूरी तरह प्रभु-प्रेममें तन्मय होकर उनकी लीला-माधुरीको हृदयमें विराजित कर संकीर्तन करनेकी शिक्षा दी थी। मुखसे प्रभुके नामका उच्चारण तथा हृदय, मन और आँखोंमें प्रभुकी छबिको धारण करनेवाला व्यक्ति सहजहीमें प्रभुके अनुग्रहका अधिकारी बन जाता है। भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट कहा है—

नारायणाच्युतानन्त वासुदेवेति यो नरः।
सततं कीर्तयेद् भूमिं याति मल्लयतां हि सः॥

जो प्राणी नारायण, अच्युत, अनन्त और वासुदेव आदि नामोंका सदा कीर्तन करता है, वह मुझमें लीन होनेवाले भक्तोंकी भूमिको प्राप्त हो जाता है।

अतः कलियुगमें सदैव मुँहसे भगवान्‌के पवित्र नामका उच्चारण करना चाहिये तथा एकाग्र होकर हृदयमें भगवान्‌की कोई भी अपनी रुचिकी दिव्य लीलाका ध्यान करना चाहिये।

जितने भी अवतार हुए हैं उन सबके आधार श्रीकृष्ण हैं। जिसे वेदान्तमें सच्चिदानन्द कहा जाता है, वही श्रीकृष्ण हैं, अखिल ब्रह्माण्डनायक सर्वात्मा श्रीकृष्ण हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों, समस्त शक्तियोंके आधार एवं चिन्मय हैं। गोपियों और ग्वालोंके साथ लीला करनेवाले श्रीकृष्ण ही पूर्ण अवतार हैं। भगवान् विभिन्न रूपोंमें लीला करनेके लिये ही अवतार लेते हैं। इसीलिये वे 'लीलावतार' कहलाते हैं।

जब समष्टि लगन होती है, तब भगवान् अवतार लेते हैं और जबतक लगन होती है तबतक उसके भावके अनुसार लीलाके माध्यमसे दर्शन देते हैं। हमें शुद्ध भावसे भगवान्‌की लीलाका चिन्तन करना चाहिये। उनकी लीलामें सुध-बुध खो देनेका अभ्यास करना चाहिये। श्रीचैतन्य महाप्रभुजी महाराजकी तरह यदि हम भगवन्नाम-संकीर्तनमें तन्मय हो जायँ तथा केवल भगवान्‌की लीलाका ही निरन्तर चिन्तन करते रहें तो हम बिना किसी संदेहके भगवान्‌की शरणके अधिकारी बन जायँगे।

श्रीकृष्ण साक्षात् जो हैं वही श्रीराधिका हैं और श्रीराधिका जो हैं वही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण राधिकासे भिन्न नहीं हैं। शक्ति और शक्तिवाला जिस प्रकार अभिन्न है, गुलाबका फूल और उसकी सुगन्ध जिस प्रकार अभिन्न है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और राधिकाजी अभिन्न हैं। श्रीजीके कारण ही श्रीकृष्ण पूर्ण हैं, आनन्दकन्द हैं। श्रीजीको शास्त्रोंमें 'ह्लादिनीशक्ति' कहा गया है। ह्लादिनीशक्तिका सार दिव्य प्रेम है। जो व्यक्ति सुबहसे शामतक गंदी-गंदी फिल्में देखता है, गंदी कहानियाँ पढ़ता है, दूषित वातावरणमें रहता है, वह श्रीरासलीला, श्रीकृष्णलीलाके महत्त्वको कदापि नहीं समझ सकता। भक्ष्याभक्ष्यका सेवन करनेवाला कलुषित भावनाओंसे ग्रस्त होनेके कारण भगवान्‌की लीलाओंके प्रति शंकाग्रस्त रहता है। इसलिये यदि भगवल्लीलाका आनन्द उठाना हो तो सबसे पहले अपने खान-पानको शुद्ध करना चाहिये। मांस, मदिरा, अंडा, प्याज, लहसुन, तंबाकू-जैसे तामसिक राक्षसी पदार्थोंका तुरंत त्याग करनेका दृढ़ संकल्प लेना चाहिये। भगवान्‌को भोग लगाकर शुद्ध सात्त्विक आहार 'प्रसाद'के रूपमें ग्रहण करना चाहिये। परस्त्रीकी ओर आँख उठाकर कदापि नहीं देखना चाहिये। परस्त्रियोंमें, माता-बहनके रूपके दर्शन करने चाहिये। इस प्रकार इन्द्रियोंपर नियन्त्रण करनेके उपरान्त ही हम भगवान्‌की दिव्य लीलाओंका रसपान करनेके अधिकारी बन सकते हैं।

जिस प्रकार बच्चा रोता है तो माता तुरंत उसे गोदमें लेने दौड़ पड़ती है, उसी प्रकार यदि हम भगवान्‌का ध्यानकर उनके प्रेममें अश्रुपात करने लगें तो परम कृपालु लीलामय भगवान् तुरंत हमें अपनी शरणरूपी गोदमें लेनेको तत्पर हो उठेंगे। जो जीव भगवान्‌से प्रेम रखता है, भगवान्‌की शरणमें जानेको लालायित होता है, भगवान् तुरंत उसे शरण देनेको उसतक पहुँच जाते हैं।

इसलिये सबसे पहले अपने हृदय तथा मनको निष्कपट बनाओ, अहंकारको पास न फटकने दो। अभक्ष्य पदार्थों और तंबाकू-जैसे दुर्व्यसनोंको पूरी तरह त्याग दो। दूसरोंके दुःखमें दुःखी तथा सुखमें सुखी होनेकी प्रवृत्ति अपनाओ। फिर देखना कि प्रभु मात्र नाम-संकीर्तन तथा लीला-चिन्तनके माध्यमसे तुम्हारे पास स्वयं चले आयेंगे। यही भगवल्लीलाका सार-तत्त्व है।

[प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी पिलखुवा]

भगवत्-लीला-चिन्तन कैसे हो!

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जगत्के बन्धनसे मुक्त होनेके लिये नि:संकल्प होना बहुत आवश्यक है। जबतक जगत्के संकल्प होते रहते हैं, तबतक मनकी जागतिक क्रिया बंद नहीं होती; परंतु मनका नि:संकल्प होना सहज बात नहीं है, फिर भी नि:संकल्प होनेका एक दूसरा बहुत सीधा रास्ता है—संकल्पोंसे लड़ना छोड़ दे, संकल्पोंका विषय बदल दे। जगत्के स्थानपर भगवत्-संकल्प करे। भगवान्का लीला-गुणानुवाद, श्रवण, पठन, मनन किसलिये? क्या व्यासजी—जिन्होंने वेदोंका विभाग किया, ब्रह्मसूत्रोंकी रचना की, जो ब्रह्मसूत्र समस्त वेदान्तवादियोंके आदर्श हैं, वे इतने निकम्मे बैठे थे कि वेदान्तका परिशीलन छोड़कर वे लीला-कथाका गान करें! क्या नारदजी इतने अल्पबुद्धि व्यक्ति थे, जो व्यासजीको शान्ति प्राप्त करनेके लिये लीला-कथाका गान करनेका अनुरोध करें! परंतु व्यासजी अपनेको अशान्त पाते हैं। यद्यपि संकल्पोंका अभाव व्यासजीमें स्वाभाविक माना जाता है, क्योंकि व्यासजी भगवदवतार हैं, वेदान्त सूत्रोंके निर्माता हैं, उनमें संकल्प क्यों हो? तथापि वे अशान्त हैं। नारदजी कहते हैं कि आपको शान्ति इसलिये नहीं मिली कि आपने ज्ञान-विज्ञानका निरूपण किया, परंतु भगवत्-लीला-रसका पान न किया, न कराया, इसीलिये आपका चित्त अशान्त है।

इससे तो बस यही समझना चाहिये कि ये व्यास, शुकदेव, वसिष्ठ और नारद आदि ऐसे साधारण लोग नहीं थे जो बहुत ऊँची चीजको छोड़कर नीची चीजकी ओर चलें, परंतु हमारा मन तो प्राकृतिक मन है और अमलात्मा मुनियोंका मन तो मनोनाशके द्वारा मिट चुका है। उस मिटे हुए मनके स्थानपर भगवान्के गुण, सौन्दर्य आदिका चिन्तन करनेके लिये जो मन बनता है, वह भगवान्का दिया हुआ मन बनता है।

उत्तम साधन यह है कि आप केवल भगवत्-सम्बन्धी संकल्प करें। जैसे संध्याका समय है, बछड़ोंको लेकर भगवान् लौटेंगे। भगवान्के आगमनकी प्रतीक्षा करें कि भगवान् आ रहे हैं, अभी-अभी भगवान् आनेवाले हैं—इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये। अब मनमें वही भाव, वही संकल्प-विकल्प आते रहें—अब वे बछड़ोंके पीछे आते होंगे। अब मुरली बजाते होंगे। उनकी लीलाओंका अन्त नहीं है। अपने मनमें जैसी लीला जब आवे, किसी क्रमका बन्धन नहीं है कि अमुक प्रकारके क्रमसे ही भगवान्की लीलाका चिन्तन हो। जब जैसी मनमें आवे भगवान्की लीलाओंका संकल्प-विकल्प मनमें होता रहे; फिर तो मनमें यही चिन्तन होता रहेगा कि हम भी खेलें, हमको भी भगवान् अपना परिकर बना लें। यह साधनाकी बात है।

निकुंज-साधनाकी बात मोटे-रूपमें कह देना है। निकुंज-साधनामें क्या करना पड़ता है। इसमें संकल्पज देहका, सेवाका निर्माण होता है। पहले तो संकल्प करना पड़ता है—'भगवान्के मण्डलमें निकुंजका जो मण्डल है बड़ा विस्तृत है और उसके बहुत-से स्तर हैं, उनमें एक मंजरी-मण्डल है। यह जो मंजरी-भाव है, बड़ा ऊँचा भाव है। उसमें निज-सुखका अभाव है। वे केवल राधा-माधवका सुख-सम्पादन करनेमें ही लगी रहती हैं, उन्हें अपने लिये कुछ नहीं चाहिये। उन मंजरियोंमेंसे किसी एकको भावराज्यमें भावसे आचार्यत्वके पदपर वरण करें—गुरु मानें। अपनेको संकल्पसे किसी मंजरी-देहमें ले जायँ, मंजरी-कल्पना करें। मंजरीमें, उसके रूप-रंग इत्यादिकी बहुत-सी बातें हैं जिन्हें यहाँ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मंजरी-कल्पना करें और उक्त गुरु-मंजरीके साथ सेवामें हिस्सा मिले ऐसी प्रार्थना करें तथा यह प्रार्थना उस भावराज्यमें संकल्पसे ही जब स्वीकार हो जाय, तब सेवा प्रारम्भ करें। पहले बाहरकी सेवा प्राप्त होगी। कहीं निकुंजके बाहर झाड़ू इत्यादि लगा दी जाय, कहीं कुछ कंटक साफ कर दिये जायँ। पीकदानीको लेकर फेंक दिया जाय। ये बड़े लोगोंकी बातें नहीं जो बड़े ज्ञान-निष्ठित हैं—उनके लिये तो ये चर्चा पागल लोगोंकी चीज है। ऐसा करते-करते क्या होगा उसे मंजरीत्व प्राप्त होगा, पहले

कल्पना-राज्यमें तत्पश्चात् भावराज्यमें। इसके लिये बड़े शास्त्र हैं। एक रासोल्लास-तन्त्र है, उसमें बड़ी विधि है और केवल विधिसे काम नहीं चलता, विधिवत् साधनामें प्रवृत्त होना पड़ता है, फिर क्या होता है कि मंजरी-देहकी प्राप्ति हो जाती है। पहले कल्पना-मंजरी, फिर भाव-मंजरी, फिर मंजरी देहकी प्राप्ति हो जाती है। इस देहके रहते जब कभी-कभी ऐसी तीव्र इच्छा हो या जब वहाँकी आज्ञा हो, तब उस गुरु-मंजरीका अनुकरण करते हुए; जो सेवा बतायी जाय उस सेवामें वह साधक नियुक्त हो जाता है। फिर ऐसा होते-होते उस मंजरीके साथ उसको निकुंजमें प्रवेशका अधिकार मिल जाता है।

यह निकुंजमें प्रवेशका अधिकार मामूली चीज नहीं है। जो पुरियोंका अन्त:पुर है उसमें भी सबका प्रवेशाधिकार नहीं है। जैसे मथुरा, द्वारका, अयोध्या इत्यादि—ये भगवान्की लीला-पुरियाँ हैं। व्रज तो वन है, गोष्ठ है, वृन्दावन है। यहाँके निकुंज दो प्रकारके हैं,धातुनिर्मित निकुंज और रत्ननिर्मित निकुंज। इसके अतिरिक्त बहुत-से निकुंज यहाँ लता-पुष्पनिर्मित हैं। यहाँका अधिकार मिलना तो बहुत कठिन बात है। पुरियोंके अन्त:पुरमें भी सबको प्रवेशका अधिकार नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णके अन्त:पुरमें जब संजय जाते हैं तो वहाँका वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान्के उस अन्त:पुरमें प्रवेशका अधिकार प्रद्युम्न तथा अभिमन्युको भी नहीं है, जो कि पुत्र हैं। संजय इत्यादि जो भगवान्के विशिष्ट अंतरंग सहचर हैं; इन्हें मंजरी-स्थानापन्न ही समझिये। इनको अन्त:पुरमें प्रवेशका अधिकार है। उसने वहाँका दृश्य देखा। अर्जुन, श्रीकृष्ण, सत्यभामा और द्रौपदीकी अंतरंग-लीलाका दृश्य। निकुंजमें प्रवेशका अधिकार हर एकको नहीं होता। इसमें प्रवेशका अधिकार जिस मंजरी-देहसे प्राप्त हो जाता है, उसे वैष्णव साधनामें बहुत ऊँचा स्थान माना जाता है।

इसलिये संकल्पका परित्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवत्-लीला-सम्बन्धी संकल्प और उनमें भी सर्वोत्तम निर्दोष बाल-लीला है—भगवान्का बाल-चरित। भगवान्के प्राकट्यसे लेकर गोवर्धन उठानेतकका जो बाल-चरित है वह सर्वथा निर्दोष, सबके कामकी चीज, घरमें देखी हुई, अपने बच्चोंकी क्रीडा, उसीमें भगवान्को देखे। विशेष कुछ करना-कराना नहीं है। इस तरहके संकल्प होने लगें तो क्या होगा? कुछ दिनों बाद ऐसे ही दृश्य आने लगेंगे। यह करके देखनेकी चीज है। यह वही कर सकता है जो करना चाहे। यदि मनमें तीव्र आकांक्षा पैदा हो जाय तो इस सीधी चीज—घरमें देखी हुई चीजका हम भगवान्से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। फिर क्या होगा कि हमें अकल्पित लीला-दर्शन होने लगेंगे। इस प्रकारकी लीला चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते—हर समय हमारे मनमें आने लगेगी। ध्यान करना नहीं पड़ेगा, लीलाके वे दृश्य जबरदस्ती सामने आने लगेंगे; पर आने लगेंगे उनके सामने जो उनको पकड़ना चाहे। उपेक्षा करेगा तो वहाँ मनमें नहीं आयेंगे और यदि कहीं मनमें यह हो जाय कि आज तो बड़ा हर्ज हो गया, बड़ा जरूरी काम था तो भगवान् तो किसीका भी जरूरी काम छीनना नहीं चाहते। जब भगवान्की जरूरत पैदा हो तब भगवान्को पुकार लेना। भगवान् तो हर समय तैयार हैं।

गोपाङ्गनाओंकी क्या कम परीक्षा हुई, ये परीक्षा मामूली परीक्षा नहीं थी, लेकिन वे इसमें उत्तीर्ण हो गयीं। इस प्रकारके प्रलोभन, भय सामने आते हैं। रासमण्डलकी परीक्षा मामूली परीक्षा नहीं थी। भगवान् कहते हैं—'नरकमें जाओगी, पतियोंको छोड़कर आयी हो, ये किसी पतिव्रता स्त्रीका काम नहीं है।' स्वयं भगवान् कहते हैं, कोई दूसरा नहीं कहता है, कोई भी व्यक्ति उसी वक्त डर जाय, काँप जाय। सबसे बड़ी परीक्षा होती है स्वसुखकी। यह बड़ी महीन चीज है। मान लेते हैं कि स्वसुखकी वाञ्छा नहीं है, लेकिन स्वसुखकी वाञ्छा ही वहाँ काम करानेमें लगी रहती है। ये तो पीछेकी चीजें हैं। हम तो बहुत पहलेकी बात कहते हैं कि मनमें भगवान्का संकल्प करें। आत्माका स्वरूप क्या है, कैसा है,—ये जाननेकी आवश्यकता नहीं है। ये जिसको जितना जनानेकी आवश्यकता होगी; वे जना देंगे और नहीं जनाना चाहें तो कहेंगे कि भई! तुम ज्ञानवान् हो, जहाँ जाते हो, वहाँ तुम्हें ले चलेंगे, तुम इनको जानकर क्या करोगे? भगवान् तो कहते हैं—'**सर्वधर्मान् परित्यज्य०**' मेरी शरणमें आ जा मैं

तुम्हें मुक्त कर दूँगा। लेकिन संकल्पोंका सब तरहसे विनाश होना मामूली बात नहीं है। यदि जगत्‌का संकल्प आ गया तो जगत्‌का चिन्तन त्यागके लिये भी न करें। यह मनोवैज्ञानिकोंका सिद्धान्त है कि त्यागके लिये भी त्यागके योग्य वस्तुका चिन्तन अधिक न करें, क्योंकि इससे त्याग तो होगा नहीं, उलटे उस वस्तुका चिन्तन करते रहनेसे वह वस्तु मनके संकल्पमें आ जायगी। इसलिये संकल्पोंके विषयको बदलना होगा। प्राकृत संकल्पोंके स्थानपर भगवत्-संकल्प लाने होंगे। भगवान्‌का चिन्तन किसी प्रकारसे चित्तमें आवे। गीताके विभूतियोगमें भगवान्‌ने एक जगह कहा—

द्यूतं छलयतामस्मि।

—जुआ बताया अपनेको। किसी भी मनु, याज्ञवल्क्य या पराशरस्मृतिमें कहीं भी जुएका समर्थन हो तो बताइये! पर भगवान् कहते हैं कि 'मैं जुआ हूँ।' क्यों कहते हैं? किनमें जुआ मैं हूँ—छल करनेवालोंमें '**छलयताम्**'। जुआरियोंसे कोई कहे कि गीताभवनमें बैठो, अमुक-अमुक स्थानसे महात्मा आये हैं, जाकर उनके उपदेश सुनो, तो उन्हें फुरसत नहीं है। पर वे यदि कहते हैं—भइया एक काम करो—जुआ खेलते हो? हाँ खेलते हैं। पासा फेकते हो? हाँ फेंकते हैं। तो प्रत्येक पासेमें कहो—ये जुआ भगवान्, तो भगवदाकार-वृत्ति हो गयी। भगवदाकार-वृत्ति हुई कि जुआ छूटा। करना भी यही है। भगवदाकार-वृत्ति होनी चाहिये। इस प्रकार जुआरीकी वृत्ति भगवदाकार हो गयी। भगवान् थे ही कोई झूठी बात तो है नहीं। अतः संकल्पोंमें भगवत्-सम्बन्धी विषयोंको लानेकी चेष्टा करनी चाहिये। सीधी बात यह कि इन्द्रियोंमें आनेवाले भगवान्‌के सौन्दर्य-माधुर्यका संकल्प करें। बड़ा सुन्दर भगवान्‌का सौन्दर्य। जैसा-जैसा अपने मनमें आवे, उसी प्रकारके भगवान्‌के सौन्दर्यकी कल्पना करें। उस कल्पित रूपको बार-बार अपने मनमें देखें। उस रूपमें मन न लगे तो उनकी लीलाको देखें—

अरे खेल ही रहे हैं—गुल्ली-डंडा खेल रहे हैं, आँख-मिचौनी खेल रहे हैं, सखाओंके साथ खेल रहे हैं। ये जो भगवान् हैं; बड़ी ठोस चीज हैं और सब चीज तो तरल है, उड़नेवाली है, केवल हवा भरी है। भगवान्‌को मनमें भरने लगो, बेकारकी हवा अपने-आप निकलने लगेगी। भगवान् भर गये हवा निकल गयी। भगवान् मनमें जितना भर जायँगे उतना निकलेंगे नहीं। भगवान्‌को पकड़ना आसान है, छोड़ना आसान नहीं है। भगवान् पकड़ना जानते हैं, छोड़ना नहीं जानते। मनमें भगवान् जितना भर गये उतना स्थान उन्होंने ले लिया, जो उनके अधिकारमें आ गया वे उसके सदाके लिये मालिक बन गये। इसलिये भगवत्-सम्बन्धी संकल्प जैसे-जैसे मनमें आवे उसी प्रकार करता रहे। इससे भगवत्-संकल्पका मन हो जायगा—उसकी प्रवृत्ति दृढ़ हो जायगी। मनकी एक बड़ी सुन्दर स्थिति यह है कि यह तदाकार होना जानता है और जिसमें लगाया जाता है उसीके आकारका बन जाता है—तदाकार ही हो जाता है। ब्रह्माकार भी, विषयाकार भी।

मनको भोगसे हटाकर भगवान्‌में लगाना है। अभी तो ऐसा हमारा बुरा अभ्यास है कि भोगोंमें पद-पदपर दुःखका अनुभव हो रहा है, तब भी हम उन्हींकी ओर खिचते जाते हैं। लेकिन भगवत्-सम्बन्धी संकल्प करनेका रस मनको चखा दिया जाय तो मन वह रस अपने-आप लेने लगेगा। चित्त चाहता है शान्ति, चित्त चाहता है आनन्द, चित्त चाहता है द्वन्द्वरहित सुख। ऐसा सुख—आत्यन्तिक नित्य-पूर्ण-सुख सिवाय भगवान्‌के और कहीं नहीं है। जो सुखस्वरूप-आनन्दरूप भगवान् हैं, उन भगवान्‌के सम्पर्कका सुख जब चित्तमें ठहरने लगे तो अपने-आप उसमें एक नवीन सुखकी अनुभूति होने लगेगी जो अत्यन्त विलक्षण होगा। जिसने बहुत कमजोर एवं पतली-सी बत्तीकी रोशनीमें रहनेका अभ्यास डाला हो तो एक बार तो बिजली देखकर वह चौंधिया ही जायगा। उसे इस रोशनीका अनुभव ही नहीं है, लेकिन जब बिजली देख लेगा, उसका प्रकाश मालूम हो जायगा, तो सोचेगा इसमें न बत्ती चाहिये, न तेल चाहिये, न दीपक चाहिये और न हवाका भय। अब इतनी अच्छी रोशनीके रहते फिर बत्तीको क्यों याद करेगा?

इसी प्रकार हमारा मन भगवान्‌का संकल्प करनेवाला बनने लगे तो क्या होगा, संसार उसमेंसे निकलने लगेगा। जो ये भगवद्-भावका राज्य है, वह प्रेमका राज्य है। इस राज्यमें

भगवान्‌को प्रियतम मानकर उनकी लीलाओंका संकल्प करना पड़ता है। मन तो मानता नहीं, मन अभी भरा नहीं है। मनमें भगवान्‌को बार-बार लायें तो इससे मन भगवान्‌में जल्दी लगने लगेगा।

भगवान्‌की ऐसी चरित्र-कथा है कि इसमें सबका मन लगेगा। इस चरित्रमें सबका मन स्वाभाविक लगता है। चीज यह मधुर है और इसमें त्यागवाली कठिनता नहीं है। त्याग चाहे कैसा भी हो, मनुष्यको त्याग करना पड़ता है। यह भगवद्-भाव जब मिलेगा तो जगत्‌के वर्तमान भावको खा जायगा। चाहे जगत् इसी रूपमें रहे; पर उसकी दृष्टिमें यह भगवत्-स्वरूप ही बन जायगा। जगत्‌में प्रत्येक क्षण, प्रत्येक दशामें भगवत्-लीलाके दर्शन होंगे। सब जगह भगवान् खेल रहे हैं, सब जगह भगवान्‌का लीला-विलास हो रहा है और सभी परिस्थितियोंमें उनका लीला-विहार हो रहा है। अत: मृत्युमें भी, जीवनमें भी, सुखमें भी, दु:खमें भी प्रेमी अपने प्रेमास्पदका सुखद स्पर्श प्राप्त करता रहेगा। जो स्पर्श केवल हाथसे होता है, वह तो स्थूल स्पर्श है। सूक्ष्म स्पर्श या वास्तविक स्पर्शसे अर्थ है—आत्मस्पर्श, ब्रह्मस्पर्श एवं भगवत्-स्पर्श। यह स्पर्श इतना सुखद है कि हम लोगोंको इसकी कल्पना नहीं है। उसे व्यक्त करनेके लिये शब्द नहीं है। शब्द तो मनकी भाषाके भी नहीं होते हैं और अध्यात्मका कोई शब्द है नहीं। इनको तो संकेतोंसे, शाखाचन्द्रन्यायसे बताया जाता है—यह गूँगेके गुड़के स्वाद-जैसे अवर्ण्य है। भगवान्‌के सम्पर्कका जो सुख है; उसे बतलाया नहीं जा सकता—

गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(रा० च० मा० १। २२९। २)

इसको अपने संकल्पोंमें जैसा आये वैसा ही करना शुरू कर दें। अपनी कल्पनाके अनुसार करनेसे क्या होगा? यह भाव उत्पन्न होने लगेगा—भगवान् सत्य है, सर्वमय है, सर्वत्र है, सबके लिये है और सब समय है। भगवान्-सम्बन्धी संकल्प भी यदि भगवान् चाहें तो सत्य कर सकते हैं, क्योंकि वे वहाँपर हैं—संकल्पित जगत्‌में भी तथा उस संकल्पित ध्यानमें भी वे तो हैं ही। भगवान्‌का वहाँ अभाव नहीं है; इसलिये जब भगवान्‌का संकल्प करने लगेंगे तो संकल्पके अनुसार उनका दर्शन होने लगेगा। यह करनेकी चीजें हैं। जब ठीक ऐसा ही होने लगेगा, तब उसमें एक ऐसे आनन्द विशेषकी अनुभूति होगी कि, फिर उसके बाद तो वहाँसे मन हटेगा ही नहीं। फिर वहाँ उसके लिये जागतिक त्याग करना सहज हो जायगा। त्याग करनेमें हमको कठिनता इसीलिये पड़ती है कि हम जिस वस्तुके लिये त्याग करते हैं, उसका महत्त्व हमारी दृष्टिमें इस त्याग करनेवाली वस्तुकी अपेक्षा बहुत अधिक नहीं है। वह वस्तु आवश्यक भी हो तो भी उसके लिये त्याग हो जाता है, जैसे—घरमें दाल नहीं है, दाल लानी है, रुपया ले जाय तो दाल थैलीमें डालेंगे और रुपया फेंक देंगे। ऐसी आवश्यक परिस्थितिमें रुपयेका त्याग करनेमें कठिनाई नहीं होगी।

वैसे ही भगवान्‌की आवश्यकता और भगवान्‌में प्रियता—ये दो हो जायँ तो फिर और कुछ नहीं चाहिये। प्रियता तो सर्वोपरि है। प्रियता होनेपर तो उस प्रेमीके लिये भगवान् मनका निर्माण करके उसके साथ मिलना चाहते हैं—

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। १)

भगवान् स्वयं रसास्वादन करना चाहते हैं। यदि रस पवित्र हो, यदि रस अव्यभिचारी हो, यदि उसमें कुरसता, विरसता, अरसता न हो तो उस रसका रसास्वादन करनेके लिये भगवान् चले आते हैं। मनमें विषय तो हो नहीं और जो समर्पण है जीवनका, वह उनके सुखके लिये हो तथा उसमें भरा हो त्याग तो यह रस और सरस बन जाता है। इसमें प्रेम-रस भरा रहता है। सरस रस जहाँ बन गया तो उसको लेने भगवान् आते हैं! सरस रस होता है प्रियतामें—प्रियत्वमें। जहाँ भगवान् प्रिय लगे उनका नाम प्रिय हो गया, उनका धाम प्रिय हो गया, उनका सब कुछ प्रिय हो गया, उनकी बात प्रिय हो गयी, सारा-का-सारा मधुर हो गया। वल्लभाचार्यजीका एक मधुराष्टक है—सारा मधुर-ही-मधुर; ये मधुर क्यों? भगवान्‌के माधुर्यका जब प्राकट्य होता है तो सारे जगत्‌में मधुरता भर जाती है। भगवान्‌के रसका प्रादुर्भाव होता है तो जगत् सरस बन जाता है। भगवान्‌के प्रकाशका प्राकट्य होता है तो जगत् प्रकाशमय बन जाता है। परंतु जहाँ भगवान्‌का सम्पर्क नहीं, वहाँ न रस है, न प्रकाश है और न

औज्ज्वल्य ही। वहाँ तो तम है, अन्धकार है, कुरस है, विरस है, अरस है। भगवान्‌की चाह पैदा हो जाय, प्रियता न भी हो तब भी काम हो जाता है। जीवमात्र सुख चाहता है; पर अखण्ड-पूर्ण-नित्य-सुख इस संसारमें नहीं है—इसीलिये कहीं भी तृप्ति नहीं मिलती। सिद्धान्त यही है—इन्द्र हो जायँ, ब्रह्मा हो जायँ तब भी हम आगे कुछ और प्राप्त करना चाहते हैं। इसका अर्थ यही है कि नित्य-अखण्ड-पूर्णको चाहते हैं, वह चाहे आत्मा हो, ब्रह्म हो, भगवान् हो—जो नित्य है, पूर्ण है, अखण्ड है उसीको हम चाहते हैं। आवश्यकता तो हो गयी और कहींपर मलका कीड़ा टट्टीपर जाकर बैठ गया तो वह कहेगा अमृत है; फिर यदि उसीसे अपनी आवश्यकताकी पूर्ति करता रहेगा तो अमृत कहाँ मिलेगा? सीधी बात तो यह है कि हम सब मलभक्षी हैं, आवश्यकता तो हमें अमृतकी है, परंतु हम मलमें अमृत मानते हैं। दो प्रकारकी मक्खियोंका वर्णन आता है। रामकृष्ण परमहंसजीने कहा कि दो प्रकारकी मक्खियाँ होती हैं। एक तो मधुमक्खी होती है जो केवल शहद खाती है और एक विष्ठादि मक्खी होती है जो शहद भी खाती है और यदि मल दिख जाय तो वह शहदको छोड़कर मल भी खाने लगती है। इसलिये विषयासक्त लोगोंका स्वभाव है मलासक्ति। विषयासक्तिका अर्थ है—मलासक्ति। भोगासक्तिका अर्थ है मलासक्ति।

विषयरूपी विषको माँग-माँग कर पीना चाहते हैं और यदि भगवान्‌ने नहीं दिया तो कहते हैं महाराज, हमको तो अभावमें रख दिया आपने। भाग्य फूट गया हमारा जो आपने कृपा हमपर नहीं की। बोले भगवान्, हम याद आते हैं? वे बोले आप याद आते हैं तो क्या! आप न याद आयें, पर हम तकलीफ जो पाते हैं; पहले इसे मिटाओ। फिर आपकी बात करेंगे।

रसकी आवश्यकता सबको है, क्योंकि रस भगवान्‌का स्वरूप है। सभी भगवान्‌को चाहते हैं ये भी ठीक है, लेकिन हम भगवान्‌की चाह पूरी कर लेते हैं भोगोंसे—विषयोंसे पूरी करना चाहते हैं भगवान्‌की चाहको। चाह पूरी होती भी नहीं और मिलता है दुःख-ही-दुःख। भगवान्‌की कृपासे वह क्षण हमें तभी प्राप्त होगा, जब हमारा मन यथार्थ देखेगा—हम उस रसको ही केवल प्राप्त करना चाहेंगे। हमने तो गंदी चीजको मिठाई मान लिया—विषको सुधा समझ लिया। तुलसीदासजी भी यही कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

(रा० च० मा० ७। ४४। २)

जो नर-तन लेकर विषयोंमें मन लगाते हैं, वे अमृत देकर बदलेमें जहर लेते हैं। ऐसे लोगोंको कौन बुद्धिमान् कहेगा, जो पारसमणिको खोकर घुँघची लेते हैं—

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

(रा० च० मा० ७। ४४। ३)

उसको मिलता क्या है? इस जीवनमें भोगीको—नरक-यन्त्रणा और दुर्भाग्य।

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद-बिमुख अभागी।

(विनय-पत्रिका १४०)

इसीलिये सावधानीकी आवश्यकता है। सावधान हो करके भगवान्‌में रस मानकर चले। किसी दूसरी चीजमें मन ललचाया नहीं कि तत्काल गंदगी याद कर ली और सच्ची बात तो यह है कि उधर मन लगनेपर स्थिति अपने-आप बनेगी। जिसका मन एक बार भगवान्‌में खिंचा; वह लौटेगा नहीं। यह उसका विलक्षण जादू है। भगवान्‌की ओर मन खिंच जाय तो उसे लौटाना अपने वशकी बात नहीं है, ऐसी मजबूत पकड़ है कि फिर लौटता नहीं। बस दो काम करें—एक तो मनमें भगवत्-सम्बन्धी बहुत सुन्दर संकल्प करनेका प्रयास करें, दूसरे अपनी भाषामें—प्रेम-भावकी भाषामें अपना दुःख भगवान्‌के सामने रोवें। कातर प्रार्थना करें कि महाराज, आप कृपा करके ऐसा करें कि मेरे मनमें आपके सिवाय सारे संकल्पोंका संन्यास हो जाय। मैं नहीं चाहता किसी और प्रकारका सुख, केवल आपका स्मरण मनमें बना रहे—यही सत्य-संकल्प भगवत्-चिन्तनका मूल है। ऐसा करते रहनेसे सहज ही भगवान्‌का, उनकी लीलाका चिन्तन होता रहेगा। फिर तो हम साधनको ही नहीं साध्यको भी प्राप्त कर लेंगे।

(कैसेट-नं० १०६ के आधारपर)

परमशिवकी परम लीला

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा, सर्वव्यापी, परमानन्दस्वरूप, निर्विकल्प और सत्यस्वरूप परमतत्त्व परमेश्वरको ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीलोग अविनाशी, कलिल, गूढदेह, ब्रह्मानन्द, अमृत तथा विश्वरूप कहते हैं और कहते हैं कि उसे प्राप्त करनेपर पुनरावृत्तिका भय नहीं होता। परमेश्वरकी विचित्र लीला है। सृष्टि, स्थिति और लय उसका ही लीला-विलास है। जो उसके लीला-विलासको जानता है, वह उसे प्राप्त कर लेता है। श्रीभगवत्पाद आद्यशंकराचार्यजीने 'शिवानन्दलहरी' (६६)-में कहा है—'हे शम्भु! हे पशुपति! समस्त विश्वका सृजन तुम क्रीडार्थ ही करते हो, लोग तुम्हारे क्रीडामृग हैं। मुझसे आचरित जो भी कर्म है, वह तुम्हारी संतुष्टिके लिये ही है। मेरे सभी कार्य कौतूहलपूर्ण तुम्हारी क्रीडाका ही कारण या प्रतीक होनेसे मेरी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य ही है'—

क्रीडार्थं सृजसि प्रपञ्चमखिलं क्रीडामृगास्ते जना
यत्कर्माचरितं मया च भवतः प्रीत्यै भवत्येव तत्।
शम्भो स्वस्य कुतूहलस्य करणं मच्चेष्टितं निश्चितं
नित्यं मामकरक्षणं पशुपते कर्तव्यमेव त्वया॥

अव्याज-करुणासमुद्र भगवान्की विचित्र लीलाओंकी पहचान केवल भक्त-हृदय ही कर सकता है। भक्तोंके उपकार तथा भक्तोंके उद्धारके लिये भगवान्की नाना प्रकारकी लीलाएँ होती हैं। उन लीलाओंके स्मरण, दर्शन और श्रवणसे भक्तका हृदय बाग-बाग हो जाता है एवं पुलकित होकर वह गान करने लगता है—

वक्षस्ताडनमन्तकस्य करिणोऽपस्मारसम्मर्दनं
भूभृत्पर्यटनं नमत्सुरशिरःकोटीरसंघर्षणम्।
कर्मेदं मृदुलस्य तावकपदद्वन्द्वस्य गौरीपते
मच्चेतो मणिपादुकाविहरणं शम्भो सदाङ्गीकुरु॥

(शिवानन्दलहरी-८१)

तपस्याके फलके रूपमें महर्षि मृकण्डुने अल्प आयुवाले, परंतु बुद्धिमान् पुत्र मार्कण्डेयको प्राप्त किया था। बुद्धिमान् इसलिये हैं कि वे परमेश्वरकी अविचल भक्तिके रहस्यको जानते थे। जब वे सोलह वर्षकी आयुके हुए और उनके समीप जब मृत्यु पहुँचनेवाली थी, तब वे माता-पिताकी आज्ञा प्राप्तकर देवालयमें भगवान् शंकरके सांनिध्यमें एकाग्रचित्तसे तपस्या करने बैठ गये। यम-किंकर उनको ले जानेमें सफल न हुए तो स्वयं यम वहाँ पहुँच गये। यम अपने कर्तव्यसे अस्थिर न हुए, परंतु भगवान्के सांनिध्यमें स्थिर बैठे हुए मार्कण्डेयको वे हिला न सके। अपने भक्तकी रक्षामें तत्पर भक्तवत्सल भगवान् परमशिवने लात मारकर अन्तकका ही अन्त कर दिया और मार्कण्डेयको चिरंजीवी बना दिया। भगवान्की विचित्र लीला है। उन्होंने बादमें अन्तकको जीवित भी कर दिया। सर्वज्ञ, सर्वव्यापी परमेश्वरके लिये क्या यह असम्भव है?

दारुका-वनमें यज्ञ-यागादिके समय समुद्भूत अपस्मारका निज पदाघातसे सम्मर्दन किया परमशिव परमेश्वरने। यह भी उनका लीला-विलास है। ताण्डव-नृत्य करनेवाले नटराजके पादतलमें यह अपस्मार दर्शित है। यह अपस्मार क्या है? यह तो अज्ञानका प्रतीक है। मृत्युञ्जय परमेश्वरकी प्राप्तिके लिये अज्ञानका नाश आवश्यक है न!

सुरम्य कैलासमें विहार करनेवाले शिवशंकरके कोमल चरणोंको छूनेके लिये किरीटधारी सुरगणोंका ताँता लगा रहता है। देवताओंके प्रणिपातके समय भगवान्के मृदुल चरणोंको कठिन संघर्षण सहना पड़ता है। दयानिधि परमेश्वर उसे सह लेते हैं, क्योंकि वे भक्तप्रिय और भक्तिप्रिय हैं। वस्तुतः वे भक्तजनचेतोविहारी हैं। भक्तमानस-मणिपादुका-विहरण वे सदा स्वीकार करनेवाले हैं।

तपस्वियोंमें अग्रगण्य, भृगुकुलतिलक मार्कण्डेय नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। उन्होंने अविद्यादि पञ्च क्लेशोंको जीत लिया था। कई सहस्र वर्ष अनवरत वे श्रीहरिके ध्यानमें मग्न रहे। छः मन्वन्तरोंके अतिदीर्घकालको उन महर्षिने व्यतीत किया और इस सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें वे तपस्यामें लीन रहे। महेन्द्रने उनके तपोवृत्तान्तसे भीत होकर उनके तपोभंगके लिये अप्सराओं, गन्धर्वों, मदन और वसन्त आदिको प्रेषित किया। मार्कण्डेयके पुण्याश्रममें वे सब पहुँचे। अपनी समस्त शक्तिका प्रयोग करनेके बावजूद भी वे लोग ब्रह्मनिष्ठ

महर्षि मार्कण्डेयको तपस्यासे विचलित न कर सके। हताश वे लोग अपना-सा मुँह लेकर महेन्द्रके पास लौटे। महेन्द्रने मार्कण्डेयकी तपोनिष्ठा और प्रभावके बारेमें जानकर दाँतों-तले उँगली दबायी। सभी देवता परमाश्चर्य-चकित हुए। ऐसे मार्कण्डेयको श्रीहरिके अवतार नर-नारायणने दर्शन दिया। भगवल्लीलाको कौन जान सकता है? श्रीमद्भागवत (१२। ८। ३५)-में वर्णन है—

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी।
दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत्॥

मार्कण्डेयने उनको दण्डवत् प्रणाम किया। वे रोमांचित हुए। आनन्द-बाष्पोंके कारण वे नर-नारायणको ठीक-ठीक देख न सके; फिर वे गद्‌गदकण्ठसे उनकी स्तुति करने लगे—'हे आत्मबन्धो! यद्यपि सत्त्व, रज और तम-गुणात्मक इस जगत्की उत्पत्ति-स्थिति और लयके कारण ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र-रूप लीला-मूर्तियोंके कारण तुम्हीं हो; तथापि उनमें सत्त्वमय रूप ही मोक्षका साधन है, अन्य कोई नहीं—

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो
मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य।
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै
नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम्॥

(श्रीमद्भा० १२। ८। ४५)

परब्रह्म परमात्माको स्तुतिसे संतुष्ट कर, उनसे वर-प्राप्तिका अवसर प्राप्त होनेपर महर्षि मार्कण्डेयने कहा—

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत।
वरेणैतावतालं नो यद् भवान् समदृश्यत॥
गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम्।
मनसा योगपक्वेन स भवान् मेऽक्षगोचरः॥
अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे।
द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम्॥

(श्रीमद्भा० १२। ९। ४—६)

भगवान्‌की माया देखनेकी इच्छा प्रकट की मार्कण्डेयने। उनको ऐसी इच्छा हुई, यह भी तो भगवल्लीला है। अन्यथा लीलामयकी अगोचर लीलाके विस्तारके बारेमें कैसे ज्ञात होता?

एक दिन सायंकाल पुष्पभद्रा नदीके तटपर मार्कण्डेय ध्यानमग्न थे। देखते-ही-देखते उनको प्रबल प्रभंजनका आघात सहना पड़ा। वे प्रलयंकर झंझावातके चपेटमें आ गये। अनेक वर्ष प्रलय-जलधिकी महामायाकी भयंकरतामें घूमते-घूमते वे आक्लान्त हो गये। तब एक उन्नत स्थानमें उन्होंने एक वटवृक्षको देखा और देखा उसके एक पत्तेपर सोये हुए एक कोमल शिशुको, जिसकी देहकान्तिसे प्रलयान्धकार दूर हो जाता था। वटपत्रशायी शिशु मृदुल-कोमल उँगलियोंवाले अपने दोनों हाथोंसे अपने चरणाम्बुजको अपने मुँहके भीतर रख रहा था। उसे देखकर मार्कण्डेयको अतीव विस्मय हुआ। वे उसके पास पहुँचकर उससे प्रश्न करना चाहते थे। इतनेमें उसके उच्छ्वाससे मशकके समान वे उसके शरीरके भीतर प्रवेश कर गये। प्रलयके पूर्व जगत्की जैसी स्थिति थी, वैसा दृश्य देखकर वे विस्मय-विमुग्ध हुए। भूमि, स्वर्ग, नक्षत्रमण्डल, पर्वत, समुद्र, आकाशादि पञ्चभूत, नगर-ग्राम, युग-काल आदि जो असत्य हैं, तो भी वे सत्यके रूपमें दिखायी पड़े। हिमालय, वह स्थान जहाँ नर-नारायणके दर्शन हुए थे, पुष्पभद्रा नदी और अपना आश्रम भी उन्होंने उस शिशुके जठरमें देखा। तदनन्तर शिशुके निःश्वाससे वे बाहर प्रलयसागरमें गिरे। फिर उसी उन्नत स्थानमें वटपत्रशायी शिशुको देखकर, अमृतके समान उसकी मंद मुस्कान और करुणापूर्ण दृष्टिसे आकर्षित होकर उसे गले लगानेके निमित्त उसके पास वे जाना चाहते थे कि वह शिशु अदृश्य हो गया। भगवान्‌की योगमायाका यह वैचित्र्य है! तत्पश्चात् पार्वती-परमेश्वरने मुनि मार्कण्डेयके मायाके अवलोकनसे आक्लान्त मनको अपने दर्शनसे सुख और आराम ही नहीं पहुँचाया, अपितु उनको वर भी प्रदान किया कि भगवान् श्रीहरिकी भक्ति उनमें निरतिशय रूपमें हो, कल्पान्ततक यशस्वी तथा जरा-मरणरहित चिरायु होकर वे पुराणनिर्माणकी शक्तिसे सम्पन्न हों। उन्होंने त्रिकाल-ज्ञान और विशेष ब्रह्मवर्चस्‌का वर भी प्राप्त किया।

भगवल्लीलाके एक और मनोरम प्रसंगका उल्लेख शिवानन्दलहरी (३१-३२)-में है। देव-दानवोंने अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरका मन्थन किया। तब रज्जुरूपमें स्थित वासुकीके सहस्र मुखोंसे थकावटके कारण महोल्बण हालाहल नामक विष उत्पन्न हुआ। प्रसरित होनेवाली विषज्वालासे सुर-असुर क्षुब्ध और विकल होने लगे। समुद्रके जलचर मीन-मकरादि जीव-जन्तु भी विक्षुब्ध हुए। सभी ओर व्याप्त होनेवाले विषको देखकर दिक्पालोंसहित सभी लोग जगद्रक्षक सदाशिवके सांनिध्यमें दौड़े आये। लोकहित तथा मोक्षमार्गोपदेशसे ऋषियोंके

उद्धारके लिये भवानीश कैलासगिरिमें तपस्या कर रहे थे। प्रणाम कर सभीने परमेश्वरकी स्तुति की। जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत (८।७।२१—२४)-में इस प्रकार किया गया है—

> **देवदेव महादेव भूतात्मन् भूतभावन।**
> **त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद् विषात्॥**
> **त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः।**
> **तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम्॥**
> **गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।**
> **धत्से यदा स्वदृग् भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधान्॥**
> **त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः।**
> **नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः॥**

स्वप्रकाश, सर्वव्यापक, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र-रूपमें सृष्ट्यादि कार्य करनेवाले, शरणागतरक्षक, नानाशक्तिरूपमें प्रादुर्भूत होनेवाले तथा उपनिषत्प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा वही जगदीश्वर हैं। विषकी ज्वालाओंसे त्रिलोककी रक्षा करनेवाले उस दिव्य शक्तिकी—उन परमेश्वर नीलकण्ठ महादेवके परमोपकारको कैसे विस्मृत किया जा सकता है! भक्तका उद्गार है—

> **नालं वा परमोपकारकमिदं ह्येकं पशूनाम्पते**
> **पश्यत्कुक्षिगतान् चराचरगणान् बाह्यस्थितान् रक्षितुम्।**
> **सर्वामर्त्यपलायनौषधमतिर्ज्वालाकरं भीकरं**
> **निःक्षिप्तं गरलं गलेन मिलितं नोद्गीर्णमेव त्वया॥**
>
> (शिवानन्दलहरी ३३)

अज्ञानियोंके उद्धारक! जगद्रक्षक! निज जठरमें तथा बाहर विद्यमान चराचरगणोंकी रक्षाको दृष्टिमें रखकर तुमने अतिज्वालाकर और भयंकर विषको, जिसे देखकर सभी देवता भी पलायन कर रहे थे, अपने कण्ठमें ही स्थित कर दिया, उसे पूरा निगला नहीं और बाहर भी आने न दिया। यह क्या कम उपकार है? तुम्हारी अपरम्पार महिमाके सम्बन्धमें क्या कहें? हे परमेश्वर! हे महात्मा! सभी देवगण अत्यन्त भयंकर विषको देखकर काँप रहे थे, उनमें भगदड़ मची हुई थी। देवताओंकी ही जब यह स्थिति है तो अन्य लोगोंके बारेमें कहना ही क्या है? ऐसे महान् विषको तुमने कैसे देखा भी? अथवा उसे तुमने हाथमें कैसे लिया? हथेलीमें रखा भी कैसे? क्या वह पका जामुनका फल था? अथवा जिह्वापर रखनेके लिये सिद्धगुटिका थी? जिसे तुमने गले या कण्ठमें स्थिर कर दिया। तुम्हीं बताओ कि क्या यह तुम्हारे गलेमें विभूषित नीलमणि है?—

> **ज्वालोग्रः सकलामरातिभयदः क्ष्वेडः कथं वा त्वया**
> **दृष्टः किं मुकुरो धृतः करतले किं पक्वजम्बूफलम्।**
> **जिह्वायां निहिता च सिद्धगुटिका वा कण्ठदेशे धृतः**
> **किं ते नीलमणिर्विभूषणमयं शम्भो महात्मन् वद॥**
>
> (शिवानन्दलहरी ३४)

महादेवकी इस अद्भुत लीलाका वर्णन श्रीमद्भागवतकारने इस प्रकार किया है—

> **ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम्।**
> **अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः॥**
> **तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः।**
> **यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम्॥**
> **तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।**
> **परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः॥**
>
> (८।७।४२—४४)

सच है कि लोकके तापसे साधु लोग तप्त होते हैं और लोकको तापमुक्त करते हैं। उनकी तपस्याका फल लोकके लिये होता है। अखिलात्मा परमेश्वरके विषयमें यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वे नाना प्रकारकी लीलाएँ करते रहते हैं, नाना रूपमें अपनी असीम शक्तिका वे बोधन करते रहते हैं। उनकी लीलाएँ भक्तोंके उद्धारके लिये ही हैं।

विचार करनेपर ज्ञात होगा कि भगवल्लीलाके नानारूपोंके रहस्योद्घाटनके निमित्त क्षीरसागरमन्थन-जैसे प्रसंगोंकी अवतारणा की गयी है। क्षीरसागरमन्थनके आधार कौन हैं? मन्थन करते समय मंदराचलके डूब जानेपर महाकूर्म-रूपमें उसके लिये कौन आधार बने? रज्जुरूप वासुकि कौन हैं? मन्थन करनेसे प्रारम्भमें उत्पन्न महाविषका पान करनेवाले नीलकण्ठ महादेव कौन हैं? धन्वन्तरि कौन हैं? सभी तो एक ही तत्त्वके नाना लीलारूप हैं, जो इस रहस्यको जानता है, वह परमगतिको प्राप्त कर लेता है। जैसा कि कहा गया है—

> **तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम्।**
> **स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय विमुच्यते॥**
>
> (कूर्मपु०, उ० वि० १०। १२)

ईश्वर, महादेव, परमशिव आदि सब नाम उस अद्वितीय परम तत्त्वके ही हैं, जो इस विज्ञानसे सम्पन्न होता है, वह विमुक्त हो जाता है। अतएव हमें सदा भगवल्लीलाके श्रवण-स्मरणसे तथा पठन-मननसे जीवनको सफल बनाना चाहिये।

लीलामयका लीला-तत्त्व

(श्रीमत् स्वामी श्रीनिगमानन्दजी सरस्वती परमहंसदेव)

नित्य-भावलोक गोलोकमें सच्चिदानन्दघन-विग्रह रसमय भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ नित्य लीला कर रहे हैं। वहाँपर दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर आदि भाव मूर्तिमान् होकर विराजित हैं। द्वापरयुगके अन्तिम भागमें जीव कर्म और ज्ञानकी कठोर साधनासे तापित-कण्ठ हो भगवान्की कृपा-याचना कर रहा था। वह अपने वासना-विदग्ध प्राणोंसे आनन्दकी खोज करते हुए मृगतृष्णासे भ्रान्त मृगकी तरह दिशा-विदिशाओंमें भटक रहा था। ऐसे समयमें जीवको परमानन्द प्रदान करने और उसके प्यासे कण्ठमें मधुर प्रेम-रसकी पूर्ण धारा उड़ेल देनेके लिये भगवान् अपनी ह्लादिनी शक्ति राधाके साथ श्रीराधाकृष्णके रूपमें व्रजधाममें अवतरित हुए थे। प्रेम ही जगत्का श्रेष्ठ भाव है। उस प्रेमको देने, उस प्रेमकी शिक्षा प्रदान करने, उस प्रेम-रससे जगत्को जाग्रत् और सराबोर करनेके लिये भगवान्ने अपनी ह्लादिनी शक्तिके साथ मर्त्य-वृन्दावनमें मधुर रास-लीला की थी। कृष्णावतारका उद्देश्य अपूर्ण मानवको प्रेमका आस्वादन कराकर अर्थात् भगवत्प्रेमकी सुधासे तृप्तकर निवृत्तिके पथपर अग्रसर करना था। क्या अपूर्ण जीव कभी पूर्णानन्दकी प्रतिष्ठा कर सकता है? गुणोंसे आवृत गुणमय जीव कभी निर्गुण प्रेमका आदर्श बन सकता है? तब इस अपूर्ण जगत्में पूर्ण-स्वरूप कौन है? इसलिये भगवान्ने भक्तोंके प्रति अनुग्रह दिखानेके लिये मनुष्यदेहका आश्रय लेकर वैसी ही क्रीडा की थी, जिसे सुनकर भक्तगण भगवत्-प्रेमपरायण बन सकेंगे। वह क्रीडा ही वृन्दावन-लीलाके नामसे ख्यात है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। ३७)

सर्वप्रथम लीला क्या है? उसे समझनेकी चेष्टा करेंगे। विषय और विषयीके बीच पारस्परिक सम्बन्धयुक्त वृत्तियोंके स्फुरणको 'लीला' कहते हैं। आश्रय-तत्त्वको 'विषयी' और आश्रित-तत्त्वको 'विषय' कहते हैं। आश्रय-तत्त्वमें श्रीभगवान् विषयी और आश्रित-तत्त्व उनके शक्तिवर्गको विषय कहते हैं। शक्ति और शक्तिमान्में आपसमें कोई भेद नहीं है। इसलिये शक्तिमान् विषयी भगवान् और उनकी शक्ति विषयके बीच कोई भेद नहीं है। विषयी भगवान् एक एवं अद्वितीय हैं। विषय या शक्ति-समूह श्रीभगवान्की लीला-सामर्थ्य है। इसलिये उनसे अभिन्न है।

श्रीभगवान्की लीलाएँ मुख्यतः त्रिविध हैं—नित्य-लीला, सृष्टि-लीला और संसार-लीला। नित्यधामकी नित्य-क्रियाका नाम 'नित्य-लीला' है। जगत्-सृजनकी क्रिया 'सृष्टि-लीला' है और जन्म-मृत्यु एवं मोक्ष आदिसे सम्बन्धित क्रियाएँ 'संसार-लीला' है। उनमेंसे संसार-लीला-सामर्थ्यका नाम 'जीव-शक्ति', सृष्टि-लीला-सामर्थ्यका नाम 'माया-शक्ति' और नित्य-लीला-सामर्थ्यका नाम 'स्वरूपशक्ति' है। इन तीन शक्तियोंके भी 'शक्ति-रूप' और 'अधिष्ठात्री' या 'अधिष्ठाता'के नामसे दो रूप हैं। उनमेंसे शक्ति-रूप भगवान्के स्वरूपके अन्तर्गत आता है तथा अधिष्ठात्री-रूप भिन्न आकारमें प्रकाशित है। स्वरूपशक्तिका शक्तिरूप भगवान्की श्रीमूर्तिके अन्तर्गत है और उनकी नित्य-लीलाके परिकरवृन्द उनका अधिष्ठात्री-रूप है। माया-शक्तिका शक्तिरूप भगवान्के प्राकट्य-विशेष या अन्तर्यामी परमात्माके अन्तर्गत है और अधिष्ठात्री-रूप 'महामाया' है। जीव-शक्तिका शक्ति-रूप भगवान्के अपर आविर्भाव या सत्-स्वरूप ब्रह्मके अन्तर्गत है तथा अधिष्ठात्री-रूप जीव-सृष्टि है। नित्य-लीलामें आश्रय-तत्त्व श्रीभगवान् और उनके शक्ति-रूप तथा शक्तिके अधिष्ठात्री-रूप द्विविध विषय-तत्त्वके पारस्परिक सम्बन्धोंसे उत्पन्न वृत्तियोंका स्फुरण स्वभावतः सिद्ध होता है। जिसके द्वारा वह नित्य-लीला-रस और आस्वादनके योग्य बनती है, वह 'रासलीला' है। यह रासलीलाका सामान्य लक्षण है, परंतु जिसके द्वारा नित्य-लीला आस्वादनके योग्य बननेकी पराकाष्ठातक पहुँचती है, वह रासलीलाका विशेष लक्षण है।

विषय-तत्त्व और आश्रय-तत्त्वके स्वाभाविक स्फुरण-रूपी नित्यलीलासे दो उद्देश्य सिद्ध होते हैं। पहला उद्देश्य साधक-जीवको आकर्षित करना और दूसरा उद्देश्य नित्यसिद्ध-परिकरोंकी वासनाएँ पूर्ण करना है। भगवान् साधक भक्तोंको आकर्षित करने और प्रेमी सिद्ध भक्तोंके मनोरथको पूरा करनेके लिये लीला करते हैं। यह लीला उनकी सच्चिदानन्दमयी वृत्तियोंके स्फुरणके अतिरिक्त और कुछ

नहीं है। अत: यह व्रजलीला भक्तोंका आकर्षण और स्वरूपानन्द है। भगवान् विश्वमय हैं। इस व्रजलीलामें भक्तोंके आकर्षणसे भक्तोंके हृदयमें जिस स्वरूपानन्दका उद्रेक हुआ था, वह पुन: भगवान्‌को अर्पित हुआ था। इस स्वरूपानन्द-शक्तिकी लीला जगत्‌में 'अवतार-लीला'के रूपमें प्रत्यर्पित हुई थी। मर्त्यजीवोंके शुष्क कण्ठमें स्वरूपानन्दका अमृत प्रदान करनेके लिये भगवान् अवतरित हुए थे। वे ह्लादिनी शक्तिके आकर्षणके लिये नित्य-मुक्त स्वगणोंको साथ लेकर आये थे। स्वगण ह्लादिनी शक्तिको आकर्षित करके तद्‌गत प्राणोंसे उसे पुन: उन्हें अर्पित करते थे। स्वगणोंको अपने सुख या अपने आनन्दका ज्ञान नहीं था। वे उस आनन्द या उस सुखको श्रीभगवान्‌को अर्पित करते थे। भगवान् विश्वरूप हैं, इसलिये उनका वह भाव जगत्‌में बिखर पड़ा है। उस शरद्-पूर्णिमाकी रातमें फूलोंकी महकसे आमोदित होकर दिशाओंमें जो अमृतकी धारा बह रही थी, वह अब भी मर्त्य-जगत्‌में प्रत्येक प्राणमें प्रवाहित है। उस आनन्दको पानेके लिये लीलातत्त्वकी साधना करनी होती है। लीलातत्त्वकी साधनासे अन्तर्हृदय प्रेमरस-से पूर्ण हो जाता है। इससे मनुष्यका जीवन और जन्म धन्य हो जाता है। जीवके हृदयमें कामका उन्मेष होनेपर उसमें आत्मप्रसाद या आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा जागती है, परंतु भगवान्‌के संयोगसे प्रभामयी ह्लादिनी शक्तिपर आश्रित होनेके कारण जीवके अन्तरमें भगवत्-मिलनकी इच्छा जागती है। मायाश्रित होनेपर जीवके अन्तरमें जैविक मिलनकी वासना जागती है तथा आत्मेन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा जागती है, परंतु योगाश्रित होनेपर भक्तके प्राण भगवान्‌को पाना चाहते हैं। इसलिये लीलातत्त्वकी साधनासे कामपर विजय प्राप्त की जाती है तथा भगवत्-प्रेमका उद्रेक होता है।

भगवान् जीवको इस नित्य-लीला-तत्त्वका आस्वादन करानेके लिये और साधनाकी शिक्षा प्रदान करनेके लिये राधाकृष्णके रूपमें व्रजधाममें अवतरित हुए थे। इस व्रजलीलाके रहस्यको जाननेके लिये व्रजलीलाके आध्यात्मिक भावको हृदयंगम करना चाहिये। तभी सही अर्थमें लीलाको हृदयंगम किया जा सकता है।

जीवात्मा जिस समय संसारकी कुटिलता और मायासे परिव्राजित होता है, उस समय उसके अन्तरमें व्रजका भाव खिल उठता है। जबतक तृणावर्त, अघासुर, वकासुररूपी कुटिलताका विनाश नहीं होता, तबतक व्रजलीला कभी भी सम्भव नहीं है। उस व्रज-भावमें प्रकृति-व्रजेश्वरीका मिलन आनन्दधाम ही वृन्दावन है। जबतक जीवके अन्तरमें सांसारिक बीज नष्ट नहीं होते, तबतक जीवकी मुक्ति सम्भव नहीं है। सांख्यदर्शनके मतानुसार प्रकृति और पुरुषकी घनिष्ठता ही संसारके रूपमें प्रकाशित है। जगत्‌में प्रकृति और पुरुष एक दूसरेके प्रति पूर्णत: आसक्त हैं। उनका बिछुड़न ही मुक्तिकी सीढ़ी है।

श्रीराधारानीका श्रीकृष्णसे शत वर्षका विच्छेद जीवात्माके शत वर्षकी अनासक्तिजन्य मुक्ति प्राप्त करनेके समान है। शत वर्षके बाद श्रीराधिकाजीके साथ श्रीकृष्णका मिलन होता है। यह मिलन जीवात्माकी मोक्षपद-प्राप्ति है। व्रजलीलामें इस निगूढ योगतत्त्वका एक-एक करके स्फुरण हुआ है। योगके द्वारा जीवात्मा परमात्माके साथ जितने रूपोंमें रमण करता है, उसके अनुभव और मिलनके जितने स्तर हैं, वह सब श्रीराधा-कृष्णकी लीलामें प्रकाशित है।

संसारधाम-रूपी गो-गोष्ठमें श्रीकृष्ण प्रजापालन-रूपी गोचारण कर रहे हैं। पहले आनन्दधाम-नन्दालयमें श्रीकृष्णका नन्द महाराजके साथ पिता-पुत्रका सम्बन्ध स्थापित होता है। माता-पिताका पुत्रके प्रति वात्सल्य-भाव भक्तोंकी भक्तिसे भी प्रगाढ है। भक्तोंका ईश्वरके प्रति जो अनुराग है, वह वात्सल्य-भावसे भी श्रेष्ठ है। यशोदा और नन्दका जो वात्सल्य-भाव है, उसे भक्तोंके लिये वात्सल्य-भावकी साधनाके आदर्शके रूपमें स्वीकार किया जा सकता है। भक्तगण भगवान्‌को दूध, मलाई और मक्खनका भोग लगाते हैं। वे अन्त:करणके सर्वश्रेष्ठ उपहारको भक्ति-रूपी फूल और चन्दनसे भिगोकर अर्चना करते हैं। वे नन्द-यशोदाकी तरह स्नेहके दृढ़ बन्धनसे उन्हें बाँधकर रखना चाहते हैं। सख्यभावमें व्रजके ग्वाल-बालोंकी तुलना की जा सकती है; परंतु नन्द-यशोदाका स्नेह और व्रजबालाओंकी उस प्रीतिकी तुलनामें एक और श्रेष्ठ वस्तु है—और वह है राधारानीका कृष्णानुराग। भक्तोंका भगवत्-अनुराग स्फुरित होकर क्रमश: सख्य और वात्सल्यभावसे प्रगाढतर होकर राधाप्रेममें पहुँचता है। पति और पत्नीके प्रेममें थोड़ा दूर रहनेका भाव है; परंतु राधा-कृष्णके प्रेममें वैसा भाव नहीं है। राधा श्रीकृष्णके साथ मिलनके लिये लालायित रहती थीं। राधा उस मिलनके आनन्द-सागरमें निमग्न हो जाया करती थीं। क्षणिक मिलनमें योगियोंका जो आनन्द है, राधाका आनन्द उससे कहीं अधिक है। श्रीराधारानी अपने अन्तरमें इसी तरहका अनुराग लेकर कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त हुई थीं। राधा-कृष्णका मिलन पति-पत्नीके संयोगसे भी अधिक

प्रगाढ है। श्रीभगवान्‌में यह अनुराग परम भक्तके परानुरक्तिके सदृश है। इस परानुरक्ति या प्रेमके क्रम-विकासको योगतत्त्वसे अनुभव किया जाता है। उस प्रेमके स्फुरणका बाह्य विकास ही व्रजलीला है। विप्रलम्भ-अवस्थामें अधिरूढ-भाव-हेतु जिस सम्भोगकी स्फूर्ति होती है, उसका नाम 'प्रेम-विलास' है। व्रजलीलामें इस प्रेम-विलासकी समस्त अवस्थाओंका परिपूर्ण विकास हुआ था।

स्वरूपशक्ति और मायाशक्तिके बीच जीव-शक्ति या तटस्था-शक्ति है। मायाशक्तिद्वारा प्रताड़ित होकर जीव क्रमशः स्वरूपशक्तिकी ओर अग्रसर होता है। इसे जीवकी क्रमोन्नति कहते हैं। जब भगवद्-भक्तमें स्वरूपशक्ति प्रकाशित होती है, तब वह उस शक्तिको भगवान्‌को अर्पित करता है। स्वरूपशक्ति त्रिविध है—संधिनी, संवित् और ह्लादिनी। भक्तोंकी ये तीनों स्वरूप-शक्तियाँ भगवान्‌को आलिंगन करके अधिष्ठित रहती हैं। संधिनी-शक्तिके सार अंशके शुद्ध सत्त्वमें भगवत्-सत्ता विश्राम करती है। संवित्-शक्ति भगवान्‌के भगवत्ता-ज्ञानको प्रतिष्ठित करती है। ह्लादिनी-शक्तिकी सार वस्तु प्रेम और भाव है। भावकी पराकाष्ठाको 'महाभाव' कहते हैं। श्रीराधारानी महाभाव-स्वरूपिणी हैं।

ह्लादिनी-शक्ति ही भगवान्‌को आनन्दका आस्वादन कराती है। इस ह्लादिनी-शक्तिकी सहायतासे भक्तोंका पोषण होता है। इसलिये उन्हें 'गोपी' कहते हैं। जिनके कारण जीवोंके हृदयमें नित्यानन्दकी अनुभूति होती है, उन्हें आनन्द अर्पित करना जीवोंका मुख्य कार्य है। जब ह्लादिनी-शक्ति भगवान्‌को अर्पित होती है, तब यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आनन्दरससे सराबोर हो जाता है। इससे जगत्‌में आनन्दकी धारा निरन्तर प्रवाहित होती है। उस आनन्दसे भक्तोंको अखण्ड आनन्दकी अनुभूति होती है। आनन्दमय-आनन्दमयीके मिलनके परिणामस्वरूप यह जगत् आनन्द-रससे भर जाता है। इसलिये ह्लादिनी-शक्तिने रासलीलामें भगवान्‌को आनन्द-रस दिया था। इसी कारण भगवान्‌ने धरतीपर व्रजलीलाके अन्तर्गत रास-विहार करके जगत्‌को आनन्द-रससे परितृप्त किया था। जिस दिनसे व्रजलीला आरम्भ हुई थी, उसी दिनसे जीव रस और आनन्दका दिग्दर्शन प्राप्तकर कृतार्थ हो रहा है।

भगवान्‌की नित्यलीलाके प्रेम और रसमाधुर्यका प्रकाश करने तथा सांसारिक जीवोंको उसे प्राप्त करनेके उपाय सिखानेके लिये श्रीकृष्णने व्रजलीलाका अभिनय किया था। प्रकृति और पुरुषकी प्रेमलीलाके रहस्यको पूर्णतया अवगतकर उनकी लीलाके आनन्दसे आत्माको अभिभूत करके रखना ही संसारसे निवृत्तिका एकमात्र उपाय है। ऐसा करनेसे अन्तरमें अपूर्व आनन्दकी अनुभूति होती है। उस समय फलमें, फूलमें, पेड़-पौधोंमें, वायु-अग्निमें, जल-स्थलमें, मनुष्य और मनुष्येतर समस्त जीवोंमें, सर्वत्र उन पुरुष और प्रकृतिकी नित्य-रासलीलाके रसकी अनुभूति होती है। उस समय सबके साथ अपनी आत्माका मिलन-भाव उत्पन्न होता है—जीवके साथ जीवका सम्बन्ध दूर होकर जीव और चैतन्यके मध्य मिलन होता है। इससे जीवके हृदयमें मिलनजन्य प्रेमरसकी धारा प्रवाहित होती है।

चारों ओर कामकी आग जल रही है। इसलिये चाहे कितना भी कहो कि चित्तवृत्तिका निरोध करूँगा, कर्मानुष्ठान करूँगा, शास्त्रोंका पाठ करूँगा और निष्काम कर्म करूँगा, फिर भी उससे कुछ लाभ होनेवाला नहीं है। क्या कोई उस अविजित कामकी आगके प्रभावसे बच पाया है? प्रकृतिको लेकर काम है। प्रकृतिके परिणामसे ही जीवकी काम्य-वस्तु उत्पन्न होती है। प्रकृतिके इस माया-आवरणको भेदकर योगमायाकी निर्मल शुद्ध ज्योति मर्त्यधाममें बिखेरने, भक्त-भगवान् तथा आनन्दमय और आनन्दमयीके मिलनजन्य उस धर्मकी आनन्दधाराको मायासे आवृत इस जगत्‌में प्रवाहित करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण अवतरित हुए थे। उन्होंने जीवको कामकी शिक्षा देनेके लिये व्रजलीला की थी। जीव भगवान्‌की सृष्टि-लीलाके भीतर संसारलीला करते-करते नित्यलीलामें पहुँचकर स्वरूपानन्दका भोग कर सके, यही लीलावतार श्रीकृष्णकी व्रजलीलाका उद्देश्य है।

'ब्रह्मसंहिता' कहती है—जो गोविन्द आनन्दचिन्मय रससे प्रतिभावित और आत्मस्वरूप आत्मकलारूपिणी गोपियोंके साथ गोलोकधाममें नित्यलीला कर रहे हैं, मैं उन 'गोविन्द' नामधारी भगवान्‌का भजन करता हूँ। वे ही समस्त जीवोंकी आत्मा हैं—

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव विलसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

[बँगला-भाषासे अनूदित—अनुवादक—प्रभाकर महान्ति]

कृष्णस्तु लीलामयः

(अनन्तश्रीविभूषित द्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज)

सामान्यतया लोकमें अपने वास्तविक स्वरूपको छिपाकर समाजको अपने किसी अन्य नाम-रूप तथा कर्मोंका बोध करानेकी प्रक्रियाको 'लीला' कहते हैं। वैसे तो 'लीला' शब्द श्लेषण-अर्थमें पठित '**लीङ्**' (**लीङ् श्लेषणे**)-धातुके साथ '**क्विप्**' प्रत्यय करनेपर और आदान-अर्थमें पठित '**ला**' (**ला आदाने**)-इस धातुसे '**क**' प्रत्यय करनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—खेल, क्रीडा, आनन्द, विनोद, स्वेच्छाचारिता, रतिक्रीडा, सुविधा, बालक्रीडा, आभास एवं हाव-भाव आदि। जिस समय जिस पात्रका रूप धारण करके व्यक्ति लीला करता है, उस समय समाजद्वारा वह व्यक्ति उसी पात्रके रूपमें देखा-समझा जाता है। नट-नटी अथवा अन्य किसी पात्रका वास्तविक रूप वही जान पाता है, जो यवनिकाके अन्तर्गर्भमें प्रवेश करता है अथवा अपनी वास्तविकताको वे नट-नटी ही स्वयं जानते हैं, अन्य कोई नहीं। यदि ऐसा न हो तो नाटकके रसका बोध सामान्य जनको हो ही नहीं सकता। वस्तुतः यह सारा संसार भ्रम है। सच्चिदानन्दघन परमेश्वरका अंशभूत यह जीव अलग-अलग शरीर धारण करके विविध पात्रोंके रूपमें अपने वास्तविक रूपसे अलग हटकर नाम-रूपात्मक अभिनय कर रहा है।

इसी प्रकार अशरणशरण अकारण करुणावरुणालय आनन्दकन्द सच्चिदानन्द परब्रह्म भी अनित्य-भ्रमात्मक विश्वरूपी रंगमंचपर लोकहित-हेतु अपने विविध नाम-रूपोंसे नित्य लीलाएँ करते रहते हैं। किंतु इनके वास्तविक स्वरूपको मायारूपी यवनिकाके कारण हमारी सामान्य इन्द्रियाँ न देख पाती हैं और न समझ पाती हैं। ज्ञान, भक्ति, कर्म, ऐश्वर्य, सौन्दर्य, माधुर्य, स्नेह, सौहार्द एवं सौष्ठवकी मूर्ति, रसस्वरूप, निखिल-ब्रह्माण्ड-नियन्ता भगवान्‌की लीलाएँ अनेकानेक अवतारोंके रूपमें इस धराधामके निवासियोंको देखनेको मिलती रहती हैं। सज्जनोंकी रक्षा, दुष्टोंके विनाश, धर्मकी स्थापना, अधर्मके उन्मूलन एवं प्रेम और सौमनस्यकी स्निग्ध-स्नेहिल धाराको प्रवाहित करनेके लिये भगवान् कभी मत्स्य, वराह, नृसिंह तथा कच्छप बनते हैं, तो कभी राम, कृष्ण अथवा परशुराम। भारतीय चिन्तन-परम्पराके विद्वद्-धुरीण मनीषियोंका मत है कि भगवान्‌के जो अनेक अवतार हैं, वे अलग-अलग कलाओंके हैं; किंतु श्रीकृष्णावतार पूर्ण कलाका अवतार है, क्योंकि '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'।

कंसके कारागारमें जन्मके समय प्रहरियोंका सो जाना, वसुदेवद्वारा नवजात शिशुको नन्दबाबाके घर पहुँचाना, मार्गमें शिशु श्रीकृष्णके अङ्गुष्ठसंस्पर्शसे यमुनाजलका शान्त होना, बादमें खेलते-खेलते अपना अँगूठा पीना, शकटासुर-तृणावर्त और पूतना राक्षसीको दण्ड देना, माखनचोरी, गोचारण, कालियनागका विनाश, कंसमर्दन, रासलीला, गोपीप्रेम, राधाप्रेम, ग्वालबालोंकी मैत्री, मथुरागमन, कालयवन-जरासन्ध प्रभृतिका संहार, ब्राह्मण-सम्मान, राजदूतकी भूमिका, कुरुक्षेत्रकी रणभूमिमें महाभारत-युद्धका संचालन, सारथिका कर्म, कौरवसंहार, उत्तंक ऋषिसे वार्ता, द्वारकागमन, फिर प्रभासगमन, यदुकुलका संहार तथा अन्तमें भगवान्‌के स्वधाम-गमन आदि लीलाएँ इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि सामान्य दृष्टिमें श्रीकृष्णचन्द्र संसारके साथ बिलकुल बँधे-बँधे-से दिखायी पड़ते हैं। उनकी बालक्रीडाकी एक झाँकी देखें—

विहाय पीयूषरसं मुनीश्वरा
ममांघ्रिराजीवरसं पिबन्ति किम्।
इति स्वपादाम्बुजपानकौतुकी
स गोपबालः श्रियमातनोतु वः॥

अर्थात् बालकृष्ण अपने अँगूठेको पीनेके पहले यह सोचते हैं कि क्या कारण है कि बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि अमृतरसको छोड़कर मेरे पादारविन्दरसका पान करते हैं। क्या वह अमृतसे भी ज्यादा स्वादिष्ट है? इसी बातकी परीक्षाके लिये शिशु कृष्ण निज-पद-पान-रूपी लीला किया करते थे। इसी प्रकार रासलीलाका वर्णन करते हुए भागवतकार कहते हैं—

रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः।

योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः॥

तात्पर्य यह कि दो-दो गोपियोंके मध्यमें एक-एक श्रीकृष्ण दीखते थे तथा हर गोपी व्रजनन्दनको अपने समीपस्थ समझती थी। मण्डलाकार खड़ी गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने नृत्य किया था। इस संदर्भमें पद्मपुराणकारका मत है कि त्रेताके जिन ऋषियोंकी इच्छा रामके साथ रहनेकी थी, वे सभी द्वापरमें गोपी बन गये। अन्यत्र गोपियोंको श्रुतियाँ तथा देवकन्याएँ आदि कहा गया है। यथा—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम्।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः समुद्भूताश्च गोकुले॥

तथा—

गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋषिजा गोपकन्यकाः।
देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथंचन॥

परमार्थतः भगवान् श्रीकृष्ण पद्मपत्रमिवाम्भसा संसारसे पूर्णतः निर्लिप्त हैं। वे दुनियाके सभी अनुबन्धोंसे ऊपर शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-चैतन्य हैं। वे अपने विराट् स्वरूपके कारण महान्-से-महत्तम और परमाणुसे भी लघुतम हैं। वे असंख्यासंख्य ग्राहोंसे आक्रान्त भक्त-गजराजोंके रक्षक हैं और असहाय-दीन-आर्त भारतीय नारीकी अस्मिता-लज्जा और गौरवको बचानेवाले भी हैं। वे एक ओर अपनी वंशीकी सुरीली तानपर समग्र गोपाङ्गनाओंके चित्तापहारक हैं तो दूसरी ओर निखिल विश्वके सबसे बड़े समरके दिशा-निर्देशक भी हैं। जिनके रोम-रोममें कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड समाहित है, ऐसे भवभयहारी विपिनविहारी मुरारी वनवारी नित्यलीलारसधारी गोपीवल्लभ यशोदानन्दवर्धन व्रजनन्दनका चरित्र एक सम्पूर्णताका द्योतक है। उसमें कोई खण्ड-भाव हो ही नहीं सकता। क्योंकि भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम हैं—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र विश्व-चिन्तनका आदर्श-बिन्दु है। निरुक्तकार कहते हैं कि—**'भग इति ऐश्वर्यं नाम तद्वान् भगवान् इति'**—अर्थात् समस्त विश्वका सर्वविध ऐश्वर्य जिसके भीतर समाहित है तथा जो ज्ञान-विज्ञान, भूत-भविष्यत्-वर्तमान, सत्त्व-रजस्-तमस्, जड-चेतनात्मक समूची सृष्टिका जनक है और निखिल ब्रह्माण्डकी समस्त लीलाएँ जिसके भ्रूभंगमात्रसे संचालित होती हैं एवं जो केवल भक्तोंकी पूर्ण निष्ठा, भक्ति तथा उनके प्रेम और समर्पणसे ही बँधता है, ऐसे भगवान्की भक्तिमें पगे रसखान कविकी प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

नारद-से शुक व्यास रटे………………।
ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं।

अर्थात् नारद, शुकदेव, व्यास, शेषनाग, शिव, गणेश, सविता एवं इन्द्र आदि देवता सतत उपासनाके बावजूद जिनका अन्त न पा सके, जिन्हें अपना न बना सके ऐसे सृष्टि-नियामक व्रजवल्लभको गोपोंकी सामान्य कन्याएँ थोड़ेसे छाछपर यथेच्छ नाच नचाती रहती हैं। भक्तकी पुकार सुन लीलानायक कभी गोवर्धन धारण करते हैं, कभी कुब्जाको सुन्दर बनाते हैं, कभी दावानलका पान करते हैं तो कभी लौह-खम्भको चीरकर प्रकट हो भक्तकी रक्षा करते हैं। गोपियोंके लिये प्राणप्रिय तथा उद्धव और श्रीदामाके लिये मित्र, नन्द-यशोदाके लिये पुत्र, रुक्मिणीके लिये पति, राधाके लिये प्रेमी, सामान्यजनके लिये गोप-किशोर, इन्द्रके लिये विश्वव्यापी आत्मा, देवोंके लिये आनन्ददाता, स्त्रियोंके लिये रति-पति तथा मुष्टिक-चाणूर एवं कंसके लिये वे साक्षात् कालस्वरूप दीखते हैं। कंसकी सभामें इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

मल्लैः शैलेन्द्रकल्पः शिशुरखिलजनैः
पुष्पचापोऽङ्गनाभिः………………।

आदर्श कर्मयोगी, विश्वमङ्गलरूप, सेवाधर्मव्रती, समदर्शी तथा आदर्श गृहस्थ मुरलीधरके वंशीकी ध्वनि सुनकर सम्पूर्ण व्रज ही नहीं, सारा त्रैलोक्य भी मुग्ध हो जाता है। इसीलिये रसखानने कहा—

कौन ठगौरी भरी हरि आजु
बजाई है बाँसुरिया रँग-भीनी।
तान सुनी जिनहीं तिनहीं
तबहीं तित लाज बिदा करि दीनी॥
घूमै घरी घरी नंद के द्वार,
नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।

या ब्रजमंडल मैं रसखानि
सु कौन भटू जु लटू नहिं कीनी॥

सर्वतोभावेन न केवल मधुर बल्कि जो मधुराधिप हैं—ऐसे नन्दनन्दनकी लीला विश्वकल्याणकी पथप्रदर्शिका है, मानव-जीवनकी समग्र समस्याओंका समाधान है। अपने-अपने जीवनको सार्थक बनानेकी सफल कुंजी, मोक्ष-प्राप्तिका निर्विघ्न सुगम राजमार्ग, अखण्ड तपश्चर्यासे पवित्रीकृत सहृदय-हृदयकी परमपूत सद्भावना एवं '**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**' की संवाहिका है। वस्तुतस्तु उनके असंख्य नाम हैं और नामानुरूप उनकी अगणित लीलाएँ हैं। जिनकी उपस्थापनामें शब्दोंकी सामर्थ्य भी कुण्ठित हो जाती है। इसीलिये तो उपनिषत्कार कहते हैं कि—

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

अत: संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि भगवत्-लीला विशिष्टातिविशिष्ट है; क्योंकि जो उनके शत्रु-जैसे दीखते हैं, उन्हें भी भगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं। वे अजातशत्रु हैं। जो मुक्ति ऋषि-मुनियोंको अपने जन्म-जन्मान्तरीय विकट साधनाके बावजूद दुर्लभ है, वह उनका शत्रुभावसे भजन करनेवालोंके लिये सहज सुलभ है। मात्र नामानुकीर्तन करनेवाले आजन्मपातकी अजामिल तकको उन्होंने परमधाम प्रदान किया। भागवत (१२। ४)-में महर्षि वेदव्यासका कहना है कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी लीला संसार-सागरमें विद्यमान है, विविध दु:खोंके भयावह अग्निसे जलते हुए जीवके पार जाने और शान्तिके लिये एकमेव सफल नौका है।

सुर-मुनिदुर्लभ मुक्तिकी विधायिका तथा मङ्गलरूपात्मिका भगवत्-लीलाका रसास्वाद जिसे मिल गया, वह सम्पूर्ण सुख-दु:ख, इच्छा-अनिच्छा, कर्माकर्म एवं स्व-परकी भावनासे ऊपर उठकर आत्माराममय हो जाता है। वह जन्म-मरणके बन्धनसे सदा-सदाके लिये छूट जाता है। भागवतकारके शब्दोंमें कहें तो कह सकते हैं कि—

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम्।
कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जन:॥

इस प्रकार गीता हो या महाभारत, भागवत हो या अन्य पुराण, वेद हो या उपनिषद् सम्पूर्ण वाङ्मय भगवत्-लीलाका ही शाब्दिक स्वरूप है। जिसके प्रति हृदयसे समर्पित होकर कोई भी प्राणी आवागमनसे मुक्त हो जाता है—

भगवल्लीलामृतं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

लीला-कथाके श्रवणसे परमधामकी प्राप्ति

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयाऽऽत्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन्॥
मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्था:॥

(श्रीमद्भागवत १०। ९०। ४९-५०)

परीक्षित! प्रकृतिसे अतीत परमात्माने अपनेद्वारा स्थापित धर्म-मर्यादाकी रक्षाके लिये दिव्य लीला-शरीर ग्रहण किया और उसके अनुरूप अनेक अद्भुत चरित्रोंका अभिनय किया। उनका एक-एक कर्म स्मरण करनेवालोंके कर्मबन्धनोंको काट डालनेवाला है। जो यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाका अधिकार प्राप्त करना चाहे, उसे उनकी लीलाओंका ही श्रवण करना चाहिये। परीक्षित्! जब मनुष्य प्रतिक्षण भगवान् श्रीकृष्णकी मनोहारिणी लीला-कथाओंका अधिकाधिक श्रवण, कीर्तन और चिन्तन करने लगता है, तब उसकी यही भक्ति उसे भगवान्के परमधाममें पहुँचा देती है। यद्यपि कालकी गतिके परे पहुँच जाना बहुत ही कठिन है, तथापि भगवान्के धाममें कालकी दाल नहीं गलती। वह वहाँतक पहुँच ही नहीं पाता। उसी धामकी प्राप्तिके लिये अनेक सम्राटोंने अपना राजपाट छोड़कर तपस्या करनेके उद्देश्यसे जंगलकी यात्रा की है। इसलिये मनुष्यको उनकी लीला-कथाका ही श्रवण करना चाहिये।

भगवल्लीलाके कुछ रहस्य

(दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

तत्त्ववेत्ता जिसे तत्त्व कहते हैं, उसे योगशास्त्रमें 'परमात्मा' कहा जाता है, भगवद्भक्त और भागवतशास्त्र उसे षडैश्वर्यसम्पन्न 'भगवान्' कहते हैं, वेदान्तशास्त्रोंमें उसे 'ब्रह्म' कहा गया है। अभिप्राय यह है कि परमात्मा, भगवान् और ब्रह्मरूपसे प्रसिद्ध अद्वितीय अनन्त सच्चिदानन्द ही तत्त्व है।

भगवान् यद्यपि आप्तकाम अर्थात् पूर्णकाम हैं, अतएव उनके अंदर कोई कामना नहीं हो सकती, तथापि वे अपने आनन्दके उल्लासके लिये लीला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवल्लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोंको परम प्रफुल्लित करता है।

'सोऽकामयत। (एकोऽहम्) बहु स्यां प्रजायेय' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ६) आदि श्रुतियोंका यही तात्पर्य है कि भगवान् अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं। श्रीकृष्णावतारमें, बाल-लीला-संदर्भमें श्रीहरि मणिमयस्तम्भमें अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखकर अत्यन्त आनन्दित होते हैं। उसे माखन देनेके लिये उद्यत होते हैं; माखन हाथसे गिर पड़ता है। तब वे रोने लगते हैं। यशोदा मैया इस लीलाको देखकर अपार आनन्दित होती हैं।

श्रीमद्भागवत (१। ८। २०)-के अनुसार कुन्तीदेवीने श्रीभगवान्‌के द्वारका पधारते समय उनकी स्तुति की है। उस स्तुतिमें उन्होंने भगवान्‌से यही कहा है कि आपका अवतार परमहंस-मुनि-अमलात्माओंको भक्तियोग प्रदान कर आनन्दित करनेके लिये होता है।

उक्त वचन तथा **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** (ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)—इस सूत्रसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि लोकवत् लीला करनेवाले श्रीहरि भक्तोंके आनन्दको उछालनेके लिये ही अवतार ग्रहण करते हैं।

यद्यपि श्रीमद्भगवद्गीता (४। ८)-में भगवान्‌ने—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—कहकर अपने अवतारका प्रयोजन धर्मसंस्थापन, साधुपरित्राण और दुष्टोंके विनाशके लिये बताया है, तथापि दुष्टोंका विनाश तो श्रीभगवान्‌के संकल्पमात्रसे सम्भव है। केनोपनिषद्‌की कथा है कि यक्षावतार यजनीय श्रीहरिने दृष्टिमात्रसे अग्नि और वायुकी शक्तिको स्तम्भित कर दी। ऐसी स्थितिमें रावण और कंसादिके लिये श्रीभगवान्‌को साक्षात् अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है? साधुओंका रक्षण तो भगवान्‌की दैवी शक्तियों और **'धर्मो रक्षति रक्षितः'** के अनुसार उनके धर्मसे ही सम्भव है, फिर इस प्रयोजनकी सिद्धिके लिये श्रीप्रभुको अवतार लेनेकी क्या आवश्यकता है?

यद्यपि यह सत्य है कि साधुओंका रक्षण और दुष्टोंका विनाश भी अवतारलीलामें हो जाता है, तथापि ये गौण प्रयोजन हैं, मुख्य प्रयोजन तो भक्तोंको आनन्द देना ही है।

जलतरंगकी उत्पत्ति जलमें ही होती है, जलतरंग जलमें ही उछलती है और लीन भी जलमें ही होती है, अतएव जलतरंग जलरूप ही मान्य है, तथापि समुद्र तरंगरूपसे दर्शकोंको अत्यन्त प्रमुदित करता है। कभी-कभी तटको स्पर्श करके वहाँ बैठे यात्रियोंको तरंगमाला विभोर कर देती है, तटवर्ती छोटी-छोटी नौकाओंको तथा जलपात्रोंको बहाकर ले जाती हुई तरंगमाला कितनी सुहावनी परिलक्षित होती है! वायुयोगसे जलतरंगके रूपमें स्फुरित समुद्रसदृश भगवान् सगुण-साकार श्रीराम-कृष्णादिरूपसे अवतरित होकर अत्यन्त आह्लादक परिलक्षित होते हैं।

अवतारलीलामें श्रीभगवान्‌का आनन्दांश विशेषरूपसे स्फुरित होता है, अचिन्त्य-शक्ति मायाके योगसे विशेष आनन्दका आविर्भाव भक्तोंको अत्यन्त आनन्दित करता है। यद्यपि यदा-कदा किसी शाप एवं वरदानका आदर करनेके लिये की गयी भगवल्लीलामें भी साधुओंका परित्राण और दुष्टोंका विनाश हो जाता है, परंतु ये भगवल्लीलाके गौण प्रयोजन हैं, मुख्य प्रयोजन तो प्रेमी भक्तोंको आनन्दमें

सराबोर करना ही है। श्रीमद्भागवत (११। २। ३९-४०)-में कवि नामक योगेश्वरने कहा है कि भगवल्लीला-चिन्तन और भगवन्नाम-संकीर्तन तथा स्मरणसे भक्तिका अंकुर उदित होता है।

गीतोक्त धर्मसंस्थापनार्थ अवतार-प्रयोजनका रहस्य इस प्रकार है—अट्ठाईसवें द्वापरमें श्रीकृष्णचन्द्रद्वारा प्रतिष्ठित कृष्णभक्ति एवं भागवतधर्मकी धारा अबतक प्रवाहित है और आगे भी प्रवाहित होती रहेगी। यह भी ध्रुव सत्य है कि अनादि और अनन्त सनातन वैदिक धर्मको अवतार-कालमें पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। साधुपरित्राण और दुष्टदलनकी लीला भगवान् श्रीकृष्णके अवतार-कालमें भी सम्पन्न हुई, किंतु उनके लीलासंवरणके तीस वर्ष बाद ही कलियुगके आ जानेपर साधुओंका कष्ट और दुष्टोंका उत्कर्ष पुनः प्रारम्भ हो गया, जो आज भी देखनेमें आता है। साधुओंके कष्ट-निवारण और दुष्ट-दलनके लिये आज भी हम भगवान्से कातरस्वरसे प्रार्थना करते हैं। अतएव यह सिद्ध हुआ कि यह सब कार्य भगवान्के अवतारका गौण प्रयोजन है तथा अपनी मुदमयी लीलाओंसे भक्तोंको आनन्दित करना मुख्य प्रयोजन है।

अब हम कतिपय शास्त्रीय लीलाओंके रहस्यपर कुछ विचार करते हैं। भक्तोंकी दृष्टि जबतक भगवान्पर स्थिर रहती है, तबतक वे आनन्दविभोर रहते हैं। ज्यों ही उनकी दृष्टि श्रीहरिसे हटती है, वे संकटमें फँस जाते हैं। ब्रह्माजीके वत्सहरण-प्रसंगमें श्रीहरि ग्वाल-बालोंके साथ बाल-लीलाके व्याजसे सख्य-रसकी वर्षा कर रहे थे। समस्त ग्वाल-बाल बैठे थे। आमोदपूर्वक सब भोजन कर रहे थे। सबकी दृष्टि बीचमें विराजमान भगवान्पर थी। इतनेमें बछड़े दूर निकल गये। ग्वाल-बालोंकी दृष्टि श्रीकृष्णसे हटकर बछड़ोंपर चली गयी। फलस्वरूप ग्वाल-बालोंको एक वर्षका वियोग हो गया। इसी प्रकार महारासलीलामें आनन्दकी वर्षा हो रही थी। गोपियोंकी दृष्टि अपने सौन्दर्य, माधुर्य, सौगन्ध और सौभाग्यपर गयी। उसी क्षण श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। फलतः गोपियोंको भयंकर विरह-वेदना सहनी पड़ी। एक लीला ऊखल-बन्धनकी है, जिसे हम वात्सल्यरसका रास कहते हैं। यशोदा मैया बालकृष्णको गोदमें लिये आनन्दमग्न होकर बैठी हैं। श्रीकृष्ण दुग्धपान कर रहे हैं। माँ-बेटेकी आँखें मिली हुई हैं। परस्पर रसका आदान-प्रदान हो रहा है। यशोदा माताकी दृष्टि उफनते हुए दूधपर गयी। यद्यपि दूध बालमुकुन्दके लिये ही था, फिर भी स्वयं यशोदाके दुग्ध-पान कर रहे लालासे अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकता था। कदाचित् कुछ उफनकर गिर भी पड़ता तो क्या अनर्थ हो जाता? शेष तो बर्तनमें बचा ही रहता; परंतु मैया यशोदा अतृप्त बालकृष्णको गोदीसे उतारकर दूध सँभालने चली गयीं। बस, अनर्थ हो गया। दधिभाण्ड फूटे। माखन फैल गया। मैयाने आकर देखा तो कुपित हो गयीं। लालाको दूध पिलानेकी जगह दण्ड देनेका विचार किया। स्नेहमयी माता तो अपने बच्चोंको डाँट-फटकार सकती है, दण्ड दिखाकर भयभीत कर सकती है, कुछ देर भोजन बंद कर सकती है और हाथ बाँधकर कमरेमें बंद कर सकती है। यशोदा मैयाने लालाको डाँटा, डराया, धमकाया तथा अन्तमें ऊखलसे बाँधनेका प्रयास किया। ठाकुरजी न बँधनेकी लीला करते रहे और अन्तमें बँध गये। नल-कूबरका उद्धार किया। अन्ततोगत्वा व्रजवासियोंने यशोदा मैयाको ही दोषी बताया। इस प्रकार वात्सल्यरसकी लीला पूर्ण हुई। मृद्भक्षणकी लीला तो पहले ही सम्पन्न हो चुकी थी। इसके बाद और कोई यशोदाजीद्वारा ताड़ना देनेकी लीला नहीं हुई।

इस प्रकार इन सब लीलाओंके वर्णनसे यह तथ्य स्वतः सिद्ध हो जाता है कि श्रीभगवान् अवतारकालमें लीला करते हैं, जिसका मुख्य उद्देश्य भक्तोंको आनन्द देना है और इसीके व्याजसे दुष्ट-विनाश, साधुपरित्राण तथा धर्मसंस्थापनकी लीलाएँ भी अनायास ही सम्पन्न होती रहती हैं, जिससे महारास-रसिक, लीलाप्रेमी भक्तों-साधकोंमें भगवत्प्रेम तथा भक्ति जाग्रत् होकर निरन्तर संवृद्धिको प्राप्त होती रहती है।

भगवत्तत्त्व-भगवल्लीला-रस-रहस्य

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भगवत्तत्त्व

श्रीमद्भागवतके अनुसार अद्वय (अद्वितीय)- ज्ञान तत्त्व है। उसीको ब्रह्म, परमात्मा, भगवान्, क्षेत्रज्ञ, आत्मा, पुरुष, पुराण, साक्षात्स्वयंज्योति, अज, परेश, नारायण और वासुदेव आदि नामोंसे निरूपित किया गया है। वह अपनी मायासे सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे स्फुरित हो रहा है तथा स्वशक्तिगत सत्त्वसे श्रीराम-कृष्णादि विविध रूपोंमें अवतरित होता है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १। २। ११)

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः
साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः।
नारायणो भगवान् वासुदेवः
स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥

(श्रीमद्भा० ५। ११। १३)

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १। २। ३४)

भगवत्तत्त्व यद्यपि सच्चिदानन्दस्वरूप है, तथापि अद्वय-ज्ञानको तत्त्व कहनेका सात्त्विक रहस्य इस प्रकार है—ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयमें ज्ञातारूप आश्रय और ज्ञेयरूप विषयसे निरपेक्ष त्रिपुटीका अधिष्ठानात्मक आश्रयरूप बोध अद्वय-ज्ञान है, वही तत्त्व है। जिस प्रकार अधिभूत रूप, अध्यात्म नेत्र और अधिदैव सूर्य तेजःसापेक्ष हैं, उसी प्रकार ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता ब्रह्मसापेक्ष हैं, परंतु अद्वय-बोधात्मा ब्रह्म ज्ञेयादिसापेक्ष नहीं है। शब्दादि विषयभेदसे अनुगत ज्ञानमें तात्त्विक भेद असिद्ध है। जागरादि अवस्था-भेदसे भी अनुगत ज्ञानमें वास्तव-भेद असिद्ध है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, वर्ष, कल्पादि-भेदसे भी अनुगत ज्ञानमें वास्तव-भेद असिद्ध है। इस प्रकार ज्ञानकी नित्यता और एकरूपता ज्ञानको सत् सिद्ध करती है। ज्ञानकी अवेद्य अपरोक्षता उसे चित् सिद्ध करती है। ज्ञानकी सच्चिद्रूपता उसे आत्मा सिद्ध करती है। जो सदा रहे और भानका विषय न हो, अपितु भानस्वरूप हो, वही आत्मा हो सकता है। प्राप्त-बोध आत्मा होनेसे परम प्रेमास्पद है। परम प्रेमास्पद होनेसे परमानन्दरूप है। इस प्रकार अद्वय-बोधकी सच्चिदानन्दरूपता सिद्ध होती है। लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यके कारण वही विवक्षावशात् ब्रह्म, परमात्मा, भगवानादि नामोंसे निरूपित होता है। वेदान्ती उसे ब्रह्म, योगी परमात्मा और भक्त भगवान् शब्दसे अभिहित करते हैं। भक्तोंकी भावनाके अनुसार निर्गुण-निराकार भूमिमें जिस सच्चिदानन्द-तत्त्वको ब्रह्म कहा जाता है, उसीको सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्तादि- गुणगण-समलंकृत सगुण-निराकार भूमिमें परमात्मा कहा जाता है तथा श्रीराम-कृष्णादि सगुण-साकार भूमिमें विलसित उसीको भगवान् कहा जाता है। इस प्रकार भगवत्तत्त्वका सात्त्विक विवेचन सूत्रशैलीमें सम्पन्न हुआ।

भगवल्लीला

'लीला' पदका प्रयोग क्रीडा, विनोद, आनन्द, मनोरञ्जन, चरित, रतिक्रीडा, केलिक्रीडा, अनायास, सुगमतापूर्वक, दर्शन, आयास, हाव-भाव, छबि, सौन्दर्य, लावण्य, लालित्य, माया आदि अर्थोंमें किया जाता है। परमानन्दस्वरूप प्रभुकी अचिन्त्य ह्लादिनी सार-सर्वस्वभूता मायायोगसे विविध रूपोंमें अभिव्यक्ति और प्रीति तथा प्रवृत्ति लीला है।

कार्यकारणातीत सच्चिदानन्दस्वरूप निर्गुण-निराकार परब्रह्म ही अचिन्त्य संधिनी, संवित् और ह्लादिनी-स्वरूपभूता शक्तियोंके योगसे सगुण-निराकार अन्तर्यामी होता है। वही श्रीविष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेशसंज्ञक सगुण-साकार भगवान् होता है। सगुण-निराकार और निर्गुण-निराकार भूमिमें पञ्चदेवोंमें सर्वथा साम्य है। सगुण-साकार अवतारभूमिमें नाम, रूप, लीला और धामको लेकर उनमें जो भेद प्रतीत होता है वह लीलामात्र है। निर्गुण-निराकार कार्यकारणातीत परब्रह्म मृत्तिका-तुल्य है। सगुण-निराकार अन्तर्यामी बीजतुल्य है। सगुण-साकार हिरण्यगर्भ और विराट् अंकुर, वृक्ष, शाखा, प्रशाखा, पत्र पुष्पतुल्य है। सगुण-साकार श्रीराम-

कृष्णादि फलतुल्य हैं।

भगवल्लीलाके प्रमुख दो भेद हैं—(१) सृष्टि-स्थिति-संहार-लीला और (२) अवतार-लीला।

सृष्टि-स्थिति-संहार-लीला—

इस लीलाके प्रयोजन इस प्रकार हृदयंगम करने योग्य हैं—स्वप्नतुल्य सृष्टि-लीला है। जाग्रत्तुल्य स्थिति-लीला है। सुषुप्तितुल्य संहार-लीला है। जिस प्रकार जलतरंगका उदय-निलय और विलय-स्थान जल है, उसी प्रकार सम्पूर्ण संसारके उदय, निलय और विलय (उत्पत्ति-स्थिति और संहृति)-स्थान श्रीहरि हैं। अतएव वे जगत्के उपादानकारण हैं। महाकल्पके प्रारम्भमें ईक्षणयोगसे समग्र सृष्टिके स्रष्टा होनेसे वे निमित्तकारण भी हैं। इस प्रकार जालेके मकड़ी-तुल्य, स्वप्नप्रपञ्चके स्वप्नसाक्षीतुल्य श्रीहरि सम्पूर्ण जगत्के अभिन्न-निमित्तोपादानकारण हैं। अतएव जलतरंगकी जलरूपता, मृद्घटकी मृद्रूपता, रज्जुसर्पकी रज्जुरूपताके तुल्य श्रीहरिकी सर्वरूपता सिद्ध है। वे जहाँ घटाकाशके महाकाशतुल्य, जलचन्द्रके जलतुल्य, जीवोंके अंशी-सरीखे हैं, वहाँ आत्मरूप भी। अंशी-सरीखे होनेसे परम आत्मीय हैं और आत्मरूप होनेसे आत्मरूप ही हैं। अतएव परम प्रेमास्पद और एकमात्र प्रेमास्पद श्रीहरि ही हैं।

सृष्टिपरक श्रुतियोंमें विगान (विगीति, विकूलता, अनेकरूपता)-सृष्टिपरक श्रुतियोंका परम तात्पर्य सृष्टिमें संनिहित सिद्ध नहीं होने देती। स्रष्टा परमेश्वरके स्वरूप-प्रतिपादनमें अविगीति सृष्टिपरक श्रुतियोंका परम तात्पर्य स्रष्टामें ही संनिहित सिद्ध करती है। सृष्टि-स्थिति और संहृतिलीलाके व्याजसे परमेश्वर निज निष्प्रपञ्च-स्वरूपमें प्रपञ्चावलम्बनके योगसे जीवोंके मन सुगमतापूर्वक अपनेमें उसी प्रकार रमानेका सुयोग समुपस्थित करते हैं, जिस प्रकार निराकार अग्नि स्वयंको साकार कर स्वयंमें मनोयोगको सुगम करता है। **'उपायः सोऽवताराय'** (माण्डूक्यकारिका ३। १५)-की उक्तिसे श्रीगौडपाद महाभागने उक्त तथ्यको प्रकाशित किया है। योगदर्शनके अनुसार भोग और अपवर्ग सृष्टिका प्रयोजन है। श्रीमद्भागवतने पुरुषार्थ-चतुष्टय अर्थात् भोगरूप धर्म, अर्थ और काम तथा अपवर्गरूप मोक्षको सृष्टि-रचनाका प्रयोजन माना है। अर्थात् अकृतार्थ जीवोंको कृतार्थ होनेका अवसर प्रदान करना जीव-रचना एवम् सृष्ट्यादि-लीलाका प्रयोजन है—

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत् प्रभुः।
मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च॥

(श्रीमद्भा० १०। ८७। २)

तथापि बहिर्मुखताके वशीभूत अन्य प्राणी यहाँतक कि मनुष्य भी विषयेन्द्रियसंस्पर्शज भोगमें ही मनोवृत्तियोंको रमाते हैं, न कि नाम-रूपात्मक जगत्का आकर्षण विदीर्ण कर अस्ति, भाति, प्रियरूप जगदाश्रय श्रीहरिमें। ऐसी स्थितिमें जगद्रचनाका प्रयोजन गिने-चुने प्रबुद्ध मनीषियोंके जीवनमें ही चरितार्थ होता देख भगवान् श्रीराम-कृष्णादि-रूपोंमें अवतरित होते हैं।

अवतार-लीला—

भगवान् विचार करते हैं—'यद्यपि स्थावर-जङ्गमात्मक कार्य-प्रपञ्चका अभिन्न निमित्तोपादानकारण मैं ही हूँ, तथापि जीवनिष्ठ अविद्या, काम और कर्मोंके योगसे जगत् बनाता हूँ। गङ्गा, काशी, उर्वशी, स्वर्ग, कल्पतरु, हीरा आदि पदार्थोंकी रचना जहाँ जीवोंके कर्मोंके फलस्वरूप करता हूँ, वहाँ कर्मनाशा, मगध, उल्लू, नरक, कीकर, कोयला आदिकी रचना भी जीवोंके कर्मोंके फलस्वरूप ही करता हूँ। स्वर्गादि शुभ वस्तुओंकी रचना कर भी मैं संतुष्ट नहीं होता, क्योंकि कर्मका फल स्वल्प और सीमित ही सम्भव है। पृथ्वी यद्यपि चरम कार्य होनेसे पद्मादि दिव्य पुष्पोंके रूपोंमें विकसित होती है, पद्मादिमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप पाँचों विशेषताएँ संनिहित होती हैं, तथापि वे विशेषताके साथ ही विकारकी पराकाष्ठा ही सिद्ध हैं, स्वल्प और सीमित (नश्वर) तो हैं ही। पृथिव्यादिकी अपेक्षा जलादिमें संनिहित निर्विशेषता, सूक्ष्मता, शुद्धता, विभुता और प्रत्यग्रूपताकी अवधिरूप मुझ ब्रह्मात्मतत्त्व तक जीवोंकी दृष्टि नहीं पहुँच पाती है, मनोहर रूपादिमें ही उलझ जाती है। ऐसी स्थितिमें अविद्या, काम और कर्मोंके बिना तथा पञ्चभूतोंके बिना ही

स्वयंको श्रीराम-कृष्णादि-रूपोंमें अभिव्यक्त कर हठपूर्वक अधिकाधिक जीवोंका हृदय अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें भवबन्धनसे विमुक्त करना आवश्यक है।' ऐसा सोचकर भगवान् सकल सुन्दरताओंके संनिवेशसे समलंकृत विशेषता और पूर्णताकी पराकाष्ठा तथा निर्विकार (कार्यकोटिविनिर्मुक्त) श्रीराम-कृष्णादि-विग्रह धारण करते हैं। वह विग्रह जलनिष्ठ अनागन्तुक अतएव स्वाभाविक शैत्यकी अधिकताके योगसे अभिव्यक्त हिमके तुल्य '**आकाशशरीरं ब्रह्म**' (तैत्ति० १।६।४) आदि श्रुतियोंके अनुसार उस भगवद्विग्रहका निमित्तोपादान वेदान्तवेद्य सच्चिदानन्द-तत्त्व ही सिद्ध है। महेश्वरकर्तृक ईक्षणसिद्ध किंतु ईक्षणतुल्य तत्त्वान्तरपरिणामरहित होनेसे वह विग्रह कार्य-सरीखा परिलक्षित होनेपर भी वस्तुतः कार्यतुल्य बाधित नहीं होता। उस विग्रहमें संनिहित समता, असंगतादि गुणगण सम, असंग, निर्गुण परमात्माकी ही अभिव्यक्ति होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही मान्य हैं। भगवद्विग्रहसे विनिःसृत शब्दादि भी अशब्द, अस्पर्शादिरूप निर्गुण ही मान्य हैं। उक्त गुणगणोंसे समलंकृत परमात्मा पामरों और विषयी पुरुषोंका मन भी हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें सारूप्यादि सद्गति प्रदान करते हैं।

ऐसे भक्तवत्सल मननीय नारायण महाप्रभु श्रीकृष्णावतारमें नररूप अर्जुनके प्रति कितने अनुरक्त परिलक्षित होते हैं, इसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

(१) खाण्डववनदाहके अनन्तर श्रीकृष्णपर संतुष्ट इन्द्रने उन्हें वर माँगनेको कहा। भगवान् वासुदेवने इन्द्रसे यह वर माँगा कि अर्जुनके साथ मेरा प्रेम निरन्तर बढ़ता रहे—

वासुदेवोऽपि जग्राह प्रीतिं पार्थेन शाश्वतीम्।
ददौ सुरपतिश्चैवं वरं कृष्णाय धीमते॥

(महाभारत, आदिपर्व २३३। १३)

आश्चर्य है, 'भगवान् प्रीतिके विषय हैं', यह तो प्रसिद्ध ही है, परंतु प्रीतिके आश्रय अर्थात् प्रेम करनेवाले भी हैं, उक्त दृष्टान्तसे यह तथ्य अत्यन्त स्फुट है। तभी तो महानुभावोंने कहा है—

'प्रीति कि रीति रंगीलो हि जानत',
'जानत प्रीति-रीति रघुराई।'

(२) अर्जुनके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भगदत्तने कुपित हो अपने अंकुशको ही वैष्णवास्त्रसे अभिमन्त्रित करके पाण्डुनन्दन अर्जुनकी छातीपर छोड़ दिया। भगदत्तका छोड़ा हुआ वह अस्त्र सबका नाश करनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको ओटमें करके स्वयं ही अपनी छातीपर उसकी चोट सह ली। भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर आकर वह अस्त्र वैजयन्तीमालाके रूपमें परिणत हो गया। वह माला कमलकोशकी विचित्र शोभासे युक्त तथा सभी ऋतुओंके पुष्पोंसे सम्पन्न थी। उससे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाके समान प्रभा फैल रही थी। उसका एक-एक दल अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। कमलदलोंसे सुशोभित तथा हवासे हिलती हुई दलोंवाली उस वैजयन्ती-मालासे तीसीके फूलोंके समान श्याम वर्णवाले केशिहन्ता, शूरसेननन्दन, शार्ङ्गधन्वा, शत्रुसूदन, भगवान् केशव अधिकाधिक शोभा पाने लगे, मानो वर्षाकालमें संध्याके मेघोंसे आच्छादित श्रेष्ठ पर्वत सुशोभित हो रहा हो।

उस समय अर्जुनके मनमें बड़ा क्लेश हुआ। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार कहा—'अनघ! आपने तो प्रतिज्ञा की है कि मैं युद्ध न करके अश्वोंको काबूमें रखूँगा—केवल सारथिका काम करूँगा; किंतु कमलनयन! आप वैसी बात कहकर भी अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं कर रहे हैं। यदि मैं संकटमें पड़ जाता अथवा अस्त्रका निवारण करनेमें असमर्थ हो जाता तो उस समय आपका ऐसा करना उचित होता। जब मैं युद्धके लिये तत्पर हूँ, तब आपको ऐसा नहीं करना चाहिये। आपको तो यह भी विदित है कि यदि मेरे हाथमें धनुष और बाण हों तो मैं देवता, असुर और मनुष्योंसहित इन सम्पूर्ण लोकोंपर विजय प्राप्त कर सकता हूँ।'

तब वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे ये रहस्यपूर्ण वचन कहे—'अनघ! इस विषयमें यह गोपनीय रहस्यकी बात है, सुनो। मैं चार स्वरूप धारण करके सदा सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये उद्यत रहता हूँ। अपनेको ही यहाँ

अनेक रूपोंमें विभक्त करके समस्त संसारका हितसाधन करता हूँ। मेरी एक मूर्ति इस भूमण्डलपर बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपमें स्थित हो तपश्चर्या करती है। दूसरी परमात्मस्वरूप मूर्ति कर्म करनेवाले जगत्को साक्षी-रूपसे देखती रहती है। तीसरी मूर्ति मनुष्यलोकमें अवतरित हो नाना प्रकारके कर्म करती है। चौथी मूर्ति वह है जो सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करती है। सहस्र युगके पश्चात् मेरा वह चौथा स्वरूप जब योगनिद्रासे उठता है, उस समय वर पानेके योग्य श्रेष्ठ भक्तोंको उत्तम वर प्रदान करता है। एक बार भूदेवीने अपने पुत्र नरकासुरके लिये वर माँगा—'मेरा पुत्र वैष्णवास्त्रसे सम्पन्न होकर देवताओं और दानवोंके लिये अवध्य हो जाय, अतः आप कृपापूर्वक अपना वह अस्त्र प्रदान करें।'

मैंने अपना परम उत्तम अमोघ वैष्णवास्त्र उसे दे दिया। मनस्विनी पृथ्वीदेवी कृतार्थ होकर चली गयीं। नरकासुर उसे प्राप्त कर शत्रुओंको संताप देनेवाला तथा अत्यन्त दुर्जय हो गया। नरकासुरसे मेरा वह अस्त्र इस प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्तको प्राप्त हुआ। आर्य! इन्द्र तथा रुद्रसहित तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा वीर नहीं है, जो इस अस्त्रके लिये अवध्य हो। अतः मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये उस अस्त्रको दूसरे प्रकारसे उसके पाससे हटा दिया है। पार्थ! यह महान् असुर उस उत्कृष्ट अस्त्रसे वंचित हो गया है। अब तुम इसे मार डालो।'

(३) खाण्डववनमें जब अर्जुन अपने हाथमें धनुष लेकर अग्निदेवको तृप्त कर रहे थे, उस समय ऐरावत-कुलमें उत्पन्न अश्वसेन नामक नाग अपनी माताके मुखमें घुसकर अपने शरीरको सुरक्षित करके आकाशमें उड़ा जा रहा था। अर्जुनने उसे एक ही सर्प समझकर केवल उसकी माताका वध किया। उसी वैरको याद करके वह कर्ण तथा अर्जुनका भीषण संग्राम देखकर बड़े वेगसे ऊपरकी ओर उछला और उस युद्धस्थलमें आ पहुँचा। वह यह सोचकर कि 'दुरात्मा अर्जुनके वैरका बदला लेनेके लिये यही सबसे अच्छा अवसर है', बाणका रूप धारण करके कर्णके तरकसमें घुस गया। जब किसी तरह कर्ण युद्धमें अर्जुनसे बढ़कर पराक्रम न दिखा सका और अर्जुनने अपने बाणोंके आघातसे कर्णका सारा शरीर क्षत-विक्षत कर दिया, तब कर्णने सर्पमुख-बाणके प्रहारका विचार किया। उत्तम बलशाली कर्णने अर्जुनको मारनेकी इच्छासे ही जिसे सुदीर्घ कालसे सुरक्षित रख छोड़ा था, सोनेके तरकसमें चन्दनके चूर्णके अंदर जिसे रखता था और सदा जिसकी पूजा करता था, उस शत्रुनाशक झुकी हुई गाँठवाले, स्वच्छ महातेजस्वी, सुसंचित, प्रज्वलित एवं भयानक सर्पमुख-बाणको उसने धनुषपर रखा और कानतक खींचकर अर्जुनकी ओर संधान किया। कर्ण युद्धमें सव्यसाची अर्जुनका मस्तक काट लेना चाहता था, पर उसे यह विदित नहीं था कि अश्वसेन नाग ही योगबलसे बाणमें प्रविष्ट हो गया है। इन्द्र उस बाणमें सर्पको प्रविष्ट देख यह सोचकर शिथिल हो गये कि 'अब तो मेरा पुत्र मारा गया।' तब जितात्मा ब्रह्माजीने बताया कि—'देवेश्वर! दुःखी न होओ। विजयश्री अर्जुनको ही प्राप्त होगी।' धनुष और प्रत्यंचासे छूटकर आकाशमें जाते ही बाण प्रज्वलित हो उठा। भगवान् श्रीकृष्णने लीलापूर्वक अर्जुनके उत्तम रथको तुरंत ही पैरसे दबाकर उसके पहियोंका कुछ भाग पृथ्वीमें दबा दिया। साथ ही चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतवर्णवाले उनके घोड़े भी धरतीपर घुटने टेककर झुक गये। देव, ऋषि, गन्धर्वादिने पुष्पवृष्टि और स्तुतियोंसे भगवान् मधुसूदनका स्वागत किया। श्रीब्रह्माजीद्वारा निर्मित इन्द्रप्रदत्त विजयप्रद त्रिभुवनविख्यात अर्जुनके किरीटको हड़पकर उसे दग्ध करता हुआ बाणरूप सर्प पुनः कर्णके तरकसमें घुसना ही चाहता था कि कर्णने उसे देख लिया। कर्णको उसने अपना परिचय देते हुए पुनः प्रयोग करनेका अनुरोध किया। परंतु कर्णने कहा—'मैं सौ अर्जुनको मार सकूँ तो भी एक बाणका दो बार संधान नहीं कर सकता।' निराश सर्प अपना स्वरूप प्रकट कर अर्जुनके वधके लिये उद्यत हो आकाशमार्गसे अर्जुनपर आक्रमण ही करना चाहता था कि श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्

(स्वामी श्रीविज्ञानानन्दजी सरस्वती)

इस परिदृश्यमान विशाल विश्व-ब्रह्माण्डके पीछे एक महान् अद्वितीय तत्त्व विद्यमान है। उसीकी सत्तासे जगत्के समस्त तत्त्वसमूह सत्तावान् और गतिशील हैं। सृष्टि, स्थिति और लयका कारण भी वही है—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।

'हे सोम्य! सृष्टिके पूर्व एकमात्र अद्वितीय सत् ब्रह्म ही था अन्य कुछ नहीं था। उसी परम सत्तासे निखिल विश्व-ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति होती है।' जैसे श्रुतिमें कहा है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति॥

'ये सब प्रत्यक्ष दीख पड़नेवाले सम्पूर्ण भूत-प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जिसमें रहते हैं और अन्तमें जिसमें लयभावको प्राप्त हो जाते हैं, उसीको जाननेकी इच्छा कर, वही ब्रह्म है।' वही निरुपाधिक ब्रह्म मायाविशिष्ट होकर सृष्टिकर्ता परमेश्वर-संज्ञक बन जाता है। उसी परमेश्वरने—'**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्**'-के अनुसार सृष्टिकी रचना की है।

अब यहाँपर शंका यह होती है कि वह परमेश्वर इस दुःखमय संसारको क्यों रचता है, क्या वह अकेला रहनेमें घबराता था? डरता था? इसके समाधानके लिये कहना यह है कि परमेश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। उसे भला किससे भय हो सकता है, अर्थात् किसीसे भी नहीं। भय द्वैतमें होता है—'**द्वितीयाद् वै भयं भवति।**' अद्वैतमें भय नहीं होता है। पुनः शंका होती है—तो क्या परमेश्वर अपने किसी प्रयोजनसे सृष्टिकी रचना करता है? यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं है। इसके लिये कहना यह है कि ईश्वर किसी प्रयोजनको लेकर सृष्टिकी रचना नहीं करता है; क्योंकि वह पूर्णकाम तथा आप्तकाम है। '**आप्तकामस्य का स्पृहा**'—आप्तकामको क्योंकर इच्छा हो सकती है, अभिप्राय यह कि उसका कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है। अतः परमेश्वर अपने किसी प्रयोजनसे सृष्टिकी रचना नहीं करता, इसलिये उसके परमेश्वर होनेमें किंचिन्मात्र संदेह नहीं है।

यहाँपर पुनः शंका उठाते हुए कहते हैं कि, तो क्या ईश्वरकी यह सृष्टि-रचना किसी प्रयोजनके बिना उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्तिमात्र है? इस शंकाके समाधानके लिये कहना है कि नहीं, उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्ति भी नहीं है; क्योंकि यदि परमेश्वर सृष्टिकी रचना नहीं करता, तब भी उसपर अल्पज्ञताका दोष लग ही जाता। ऐसी स्थितिमें परमेश्वरमें उभयपाशरज्जु गले पड़ती। अतएव परमेश्वरकी सृष्टि-रचना उन्मत्तवत् अन्यथा प्रवृत्ति नहीं, अपितु उनका वह स्वभाव है। जैसे हमारा श्वास और प्रश्वास स्वतः ही एक बार बाहर जाता है, एक बार भीतर जाता है, वह उसका स्वभाव है। अतः परमेश्वरकी सृष्टि-रचनामें कोई हेतु या प्रयोजन न होनेपर भी उसका स्वभाव या लीला-विलास मात्र कहा जा सकता है। इसलिये ब्रह्मसूत्रमें कहा भी है—'**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्॥**' जैसे लोकमें प्रयोजनके बिना ही क्रीडा आदिमें किसी विशिष्ट पुरुषकी प्रवृत्ति देखी जाती है, वैसे ही परमात्माकी भी यह जगत्-रचना प्रयोजनरहित केवल लीला-विलासमात्र है। भाष्यकार भगवान् शंकराचार्यने भी अपने भाष्यमें लिखा है—

यथा लोके कस्यचिदाप्तैषणस्य राज्ञो राजामात्यस्य वा व्यतिरिक्तं किंचित्प्रयोजनमभिसंधाय केवलं लीलारूपाः प्रवृत्तयः क्रीडाविहारेषु भवन्ति, यथा चोच्छ्वास-प्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किंचित्प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति, एवमीश्वरस्याप्यनपेक्ष्य किंचित् प्रयोजनान्तरं स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति।' (ब्रह्मसूत्र, शांकरभाष्य० २।१।३३) 'जैसे लोकमें आप्तैषणावाले ऐसे किसी राजा अथवा मन्त्री आदिकी क्रीडा-क्षेत्रोंमें प्रवृत्तियाँ किसी अन्य प्रयोजनकी अभिलाषा न करके केवल लीलारूप होती हैं, तथैव ईश्वरकी सृष्टि-रचना भी अपने किसी प्रयोजनसे रहित केवल लीलामात्र होती है। जैसे श्वास और प्रश्वास आदि किसी बाह्य प्रयोजनकी इच्छाके बिना स्वभावसे ही होते हैं, वैसे ही अन्य किसी प्रयोजनके बिना स्वभावसे ईश्वरकी भी केवल लीलारूप प्रवृत्तिमात्र होती है।'

परंतु निर्गुण-निराकारमें लीला नहीं हो सकती है। सगुण-साकारमें ही लीला होती है। इसलिये परमेश्वरने जगत्‌की रचना की और—'**तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**' सृष्टिकी रचना करके उसमें वह अनुप्रविष्ट हो गया। अर्थात् वह अनेक रूपोंमें हो गया है। जैसे वेदमें कहा गया है—'**इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते।** (ऋ० ६। ४७। १८)' इन्द्र '**इन्द्रो ब्रह्मेति**' (कौषीतकि ब्राह्मण) परमेश्वर अपनी माया-शक्तिके द्वारा अनेक रूपोंमें हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उपाधिको धारणकर वह ब्रह्म अनेक रूपोंमें हो जाता है, किंतु स्वरूपतः एक ही रहता है। जैसे श्रुतिमें कहा है—

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्।

जैसे प्रतिबिम्बके रूपमें चन्द्रमा अनेक भासनेपर भी बिम्बस्थानीय चन्द्रमा एक ही रहता है, वैसे ही ब्रह्मात्माके विषयमें भी समझ लेना चाहिये। वही परमेश्वर जगत्‌का अधीश्वर है और वही अनेक अवतार धारणकर विचित्र लीलाएँ करता है।

अवतार और उनका प्रयोजन

अवतरण करनेको 'अवतार' कहते हैं। अर्थात् जो '**देवानामंशावेशवशेन प्रादुर्भावः**' है, वही अवतार है। जिसका ज्ञान अविलुप्त रहता हुआ मायिक जगत्‌में मानुषी लीलाएँ करता है, वही अवतार है। अब यहाँपर प्रश्न होता है कि परमेश्वर किस प्रयोजनसे अवतार धारण करता है? इस विषयमें भगवान् स्वयं ही गीतामें कहते हैं—'जब-जब धर्मकी ग्लानि—हानि और अधर्मकी अभिवृद्धि होती है, तब-तब मैं विशेष रूप धारण करता हूँ अर्थात् विभूति-सम्पन्न रूप धारण करता हूँ। साधु अर्थात् धार्मिक सत्पुरुषोंका उद्धार और पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये एवं धर्मकी पुनः भलीप्रकारसे स्थापना करनेके लिये युग-युगमें मैं प्रकट होता हूँ अर्थात् अवतार धारण करता हूँ।'

यदि यहाँपर पुनः शंका की जाय कि परमेश्वर जब किसी समय कहींपर भी अवतार धारण करता है, तब अन्यत्र उसका अभाव हो जाता होगा, उस कालमें जगत्‌की व्यवस्था कैसे होती होगी? इसका समाधान यह है कि, कहींपर भी, किसी भी कालमें अवतार धारण करनेपर परमेश्वरकी सत्ताका लोप नहीं होता। इसलिये जगत्‌की व्यवस्थामें कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस विषयमें कठोपनिषद् (२। २। ९)-में कहा है। यथा—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

जैसे एक ही अग्नि सम्पूर्ण जगत्‌में अनुप्रविष्ट होकर अनेक रूपोंमें भासित होता है, वैसे ही चैतन्य-स्वरूप परमात्मा भी अनेक रूपोंमें भासित होता है। आकाशके समान अविकारी रूपसे वह उनसे बाहर भी है। यदि पुनः शंका हो कि भगवान्‌के सब अवतार केवल भारतवर्षमें ही हुए हैं, अन्य किसी देशमें नहीं। ऐसा क्यों? क्या परमेश्वरका इसमें कोई पक्षपात नहीं है? इसका समाधान यह है कि परमेश्वरका इसमें कोई पक्षपात नहीं है। यह बात तो पहले ही कही जा चुकी है कि भगवान्‌का अवतार धर्मकी रक्षाके लिये होता है और वह धर्म वैदिक सनातनधर्म। वेद प्रतिपादित होनेके कारण वह वैदिक है और '**सदातन सनातनः**'—इस न्यायसे अनादि सनातन कालसे चला आया होनेके कारण वह सनातन है। इसलिये इसे 'वैदिक सनातनधर्म'के नामसे कहते हैं। शेष अन्य सब धर्म इसीकी शाखा, उपशाखाएँ मात्र हैं। '**ध्रियते इति धर्मः**' जिसे धारण किया जाता है वही धर्म है।

इस वैदिक सनातनधर्मका उद्भव आर्यावर्तदेश भारतवर्षमें ही हुआ है, इसलिये इसकी रक्षाके लिये सभी अवतार इसी भारतवर्षमें ही हुए, यही इसका तात्पर्य है। अवतार भी एक दो नहीं है, किंतु पूरे चौबीस हैं। अभी एक कल्कि अवतार लेना शेष है। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोंके नाम हैं। परमेश्वरके इन अवतारोंने एक-से-एक बढ़कर विचित्र लीलाएँ की हैं, जो पुराण-प्रसिद्ध हैं। अतएव अन्तमें यही कहा जा सकता है कि परमेश्वरकी यह सृष्टि-रचना केवल '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' मात्र ही है।

भगवान्‌का लीला-वैभव

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

श्रीपरमेश्वर नाम-रूपोंसे रहित हैं, तथापि अति विचित्र इस जगत्‌की सृष्टि-स्थिति-संहार आदिके कर्ता हैं। इन कार्योंमें उन्हें किंचिदपि परिश्रम नहीं करना पड़ता, ये सब लीलासे ही बना देते हैं। बिना शरीरके तथा बिना किसी परिश्रमके सृष्टि-स्थिति-संहार आदि करना ही उनकी लीला कही जाती है।

इसी तथ्यको श्रीवेदव्यासजीने अपने वेदान्त-सूत्र '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**'-में स्पष्ट किया है। लीला वह है जो बिना परिश्रमके स्वाभाविक रूपसे तथा बिना किसी विशेष उद्देश्यसे सम्पन्न होता है। ये दोनों ही लीलाकी विशेषताएँ हैं।

मानव जन्मतः स्वाभाविक रूपसे उच्छ्वास-निःश्वास लेता रहता है। इसके लिये उसे कोई विशेष प्रयत्न करना पड़ता है क्या? बालकगण क्रीडामग्न हो सिकतासे विचित्र-विचित्र घर आदि बना देते हैं, नाश भी कर देते हैं। इनमें उनका उद्देश्य क्या होता है? कुछ भी नहीं। इसी तरह भगवान् भी अपना सृष्ट्यादि कर्म कर डालते हैं। उनकी यह कार्य-प्रणाली सुचारु-रूपसे शास्त्रोंमें विशदीकृत है।

श्रीपरमात्मा सर्वव्यापी हैं। सब लोगोंके हृदयमें अन्तर्यामी होकर बैठे हैं। वे कूटस्थ हैं तथा नित्य भी।

वे सृष्टि-स्थिति आदिके कारण होते हुए भी अशरीरी हैं। शरीरके बिना भी मायासे सब कार्य बना देते हैं। यह माया भी उनसे ही है। यही उनकी लीला है।

इसी तत्त्वका विशदीकारक वाक्य है—'**मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्**।' इस कार्य-प्रणालीसे श्रीपरमेश्वरको कोई भी लाभ नहीं है, परंतु हमें होता है महान् लाभ—'मोक्ष-प्राप्ति।' पुनर्जन्मरहित नित्य-विशुद्ध भाव ही मोक्ष है।

एक बार देवर्षि नारदजीने भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप अपनी लीला-विभूतिके दर्शनका सौभाग्य प्रदान करें।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'जाकर मेरे वासस्थलोंका दर्शन करें, वहीं आपको मेरी लीला-विभूतिका अनुभव हो जायगा।'

नारदजी एक घरमें घुसे तो क्या देखते हैं? वहाँ श्रीभगवान् नित्यकर्मानुष्ठानमें रत हैं और दूसरे घरमें घुसे तो भगवान्‌को पूजा-पाठमें निरत देखते हैं तथा तीसरे घरमें गये तो भगवान्‌को नायिकासे लीला-विनोदमें मग्न पाते हैं। इस प्रकारके विभिन्न दृश्य देखकर एवं भगवान्‌की सर्वव्यापकताका अनुभवकर अन्तमें नारदजी श्रीकृष्णभगवान्‌से बोले—'आप सर्वत्र विराजते हैं। यही आपकी लीला-विभूति है'—इसका परिपूर्ण अनुभव हुआ मुझे।

ऐसे ही रासलीलामें भी एक ही भगवान् अनेक रूपोंमें अपनेको विभक्तकर प्रत्येक गोपियोंके साथ लीला करने लगे। सभी गोपियाँ अपने ही साथ भगवान्‌को देखकर अत्यन्त हर्षित हुईं।

एक बार सृष्टिकर्ता श्रीब्रह्माजीको भी ऐसा ही अनुभव हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण गाय-बछड़ोंको चराते थे। उनके साथ थे कई गोप-बालक। ब्रह्माजीने सब-के-सब गाय-बछड़ोंका अपहरण कर लिया, गोप-बालकोंको भी न छोड़ा। पर क्या हुआ? भगवान् श्रीकृष्ण उन सबका रूप धारण करके शामको घर लौटे। उतनी ही संख्या, वय-रूपादिके गाय-बछड़े एवं गोप-बालक विद्यमान रहे। यथावत् सब कार्य होते रहे। कहीं कोई गड़बड़ी नहीं। किसीको इस लीला-रहस्यका आभास नहीं।

निशि-दिन बीतते रहे। ब्रह्माजी अपने कार्यकी फलश्रुतिके अनुसंधानमें गोकुल पधारे। यहाँ वैसे ही गायों एवं गोप-बालकोंको देखकर यह समझ नहीं पाये कि कौन असली हैं कौन नकली? क्या करें बेचारे। यह तो है भगवान्‌की लीला। भ्रमित-चकित हो गये सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी।

महाभारतके युद्धक्षेत्र—कुरुक्षेत्रमें सेनाओंके देखते-देखते मोहित होकर अपना कर्तव्य भूलकर अर्जुन वेदान्ती बन बैठे। उन्हें विश्वरूप दिखाकर, अपनी लीला-विभूतिका अनुभव कराकर भगवान् श्रीकृष्णने बताया—'**मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः**।' इसी प्रकार अनन्त लीलाएँ करते-करते परमात्मा जगत्‌का संहार भी कर डालते हैं। यह है उनकी लीला।

अतः स्पष्ट है कि श्रीपरमात्मा निरूप होकर ही मायासे सृष्टि-स्थिति-संहार आदि बिना किसी प्रयोजन तथा प्रयत्नके करवाते हैं हमें अमूल्य फल दिलानेके लिये ही। यह है श्रीभगवान्‌का लीला-वैभव।

श्रीकृष्णलीलाका विश्वव्यापी प्रभाव

(श्रीमद् ए० सी० 'भक्तिवेदान्त' स्वामी प्रभुपादजी महाराज)

[अन्ताराष्ट्रिय कृष्णभावनामृत-संघके संस्थापक श्रीकृष्णकृपा-श्रीमूर्ति श्रीमद् ए० सी० 'भक्तिवेदान्त' स्वामी प्रभुपादजी महाराजने भारत ही नहीं, पूरे संसारके देशोंका भ्रमणकर वहाँके लोगोंको भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओं तथा उनके नाम-संकीर्तनके प्रभावसे परिचित कराकर करोड़ों व्यक्तियोंको सनातनधर्ममें दीक्षित किया। अब ये अंग्रेज (ईसाई) कृष्ण-भक्त बन सिरपर लम्बी चोटी एवं माथेपर तिलक धारण किये श्रीकृष्ण-लीलाके चिन्तनमें लीन रहते हैं। उनके माध्यमसे ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस, जापान, जर्मनी, कनाडा आदि देशोंमें भव्यतम श्रीराधा-कृष्ण-मन्दिरोंका निर्माण हुआ; टैक्सास, डल्लास आदिमें गुरुकुलों तथा गोशालाओंकी स्थापना हुई, वहाँ रथयात्राएँ प्रदर्शित कर भगवान्‌की दिव्य लीलाओंके दर्शनोंकी परम्परा शुरू हुई।

सन् १९७१ में भक्त श्रीरामशरणदासजी 'पिलखुवा' तथा उनके सुपुत्र श्रीशिवकुमारजी गोयलको स्वामी प्रभुपादसे साक्षात्कारका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय कुछ प्रश्नोत्तर उनसे किये गये थे। उसके प्रमुख अंशोंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।—सं०]

मैंने भौतिकवादसे अति त्रस्त संसारके लोगोंको सच्ची सुख-शान्तिका मार्ग दिखानेका संकल्प लेकर 'श्रीकृष्ण-भावनामृत-अभियान' शुरू किया था। मैंने विभिन्न धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करनेके बाद यह निष्कर्ष निकाला कि भगवान्‌की दिव्य लीलाओं तथा उनके उपदेशोंके माध्यमसे ही संसार ऐसी सत्प्रेरणा तथा शिक्षा ग्रहण कर सकता है, जिससे मानवमात्रका लौकिक और पारलौकिक जीवन सफल हो सके। जब सबसे पहले मैं सन् १९६५ में अमेरिका पहुँचा तथा उसी वर्ष पश्चिमी वर्जीनियाकी पहाड़ियोंमें 'नव-वृन्दावन' की स्थापना की तो उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंकी दिव्य कथाएँ सुनकर भौतिक जगत्‌के अनेक शीर्ष बुद्धिजीवी कह उठे थे—'आज हम समझे हैं कि श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका क्या प्रयोजन था। उनकी प्रत्येक लीलाके पीछे मानवके कल्याणकी भावना निहित थी।'

कुल ८४ लाख योनियाँ हैं और उन सबमें श्रीकृष्णकी चेतना व्याप्त है। कृष्ण हर शरीरमें घटित होनेवाली हर बातको जानते हैं। जब हम अपने हृदय या मस्तिष्कमें श्रीकृष्णका, उनकी दिव्य लीलाओंका, उनके पावन नामोंका चिन्तन करते हैं तो कृष्ण तुरंत हमारे इस चिन्तनको समझकर हमपर कृपा बरसानेके लिये तत्पर हो उठते हैं। भगवान् होनेके कारण कृष्णका हरेकके प्रति समभाव है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।

मानव अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये सांसारिक लोगोंको प्रसन्न करनेका प्रयास करता है। यदि वह भगवान् श्रीकृष्णको अपना मित्र बना ले तो उसकी तमाम सदिच्छाएँ स्वतः पूर्ण हो जायँगी।

कृष्णभावना कोई विश्वास या आस्थाका ही प्रश्न नहीं, अपितु यह एक विज्ञान भी है। इस शरीरके भीतर जो 'जीवन-शक्ति' है, हम उसकी बात कृष्णभावनामें करते हैं। यह कृष्णभावना एक 'आध्यात्मिक विज्ञान' है। 'हरे कृष्ण आन्दोलन' जीवमात्रको भगवान्‌के विज्ञान तथा श्रीकृष्ण-श्रीरामकी लीलाओंका रहस्य समझाकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त करनेकी दिशामें प्रयत्नशील है। वे हम लोगोंको यह समझाना चाहते हैं कि जब शरीरका अन्त होगा—विनाश होगा, तब भी आपका अन्त नहीं होगा। यदि शरीर रहते श्रीकृष्णकी शरणमें चले गये तो शरीरके अन्तमें भगवान्‌की लीलामें लीन हो जाओगे।

चैतन्य महाप्रभुका आदेश

चैतन्य महाप्रभुका आदेश है—

'यारे देख, तारे कह 'कृष्ण उपदेश'
आमार आज्ञाय गुरू हमा तार एइ देश'

—'भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवतमें कृष्णने जिस तरह आदेश दिये हैं, उनका पालन करनेके लिये हर-एकको उपदेश दो तथा हर प्राणीको तारनेका प्रयास करो।'

'श्रीकृष्णभावनामृत-आन्दोलन'का यही लक्ष्य है। उसका अभियान भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंके प्रचार, उनके उपदेशोंके विस्तार तथा श्रीमद्भगवद्गीताके माध्यमसे पूरे संसारके प्राणियोंको तारनेके लिये है।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

'उनपर दया करनेके लिये, उनके हृदयमें स्थित मैं स्वयं अज्ञानसे उत्पन्न अन्धकारको ज्ञानके प्रकाशमय दीपकद्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

यदि आप वास्तवमें कृष्णभावनाभावित हों तो आपको कृष्णकी विशेष कृपा प्राप्त होने लगेगी। कृष्ण अत्यन्त कृपालु हैं; वे अपनी दिव्य लीलासे भक्तोंको अनुप्राणित करनेमें एक क्षणकी देरी भी नहीं लगाते।

चैतन्य महाप्रभु, भक्त सूरदास, मीराबाई-जैसे असंख्य भक्तोंको भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दिव्य लीलासे आह्लादित करनेकी कृपा की है।

भगवान् श्रीकृष्णने अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे जीवके अहंकार, कृत्रिमता, उसकी क्षुद्र भावनाको निरर्थक एवं पतनशील सिद्ध किया है। श्रीकृष्ण, श्रीराम तथा अन्य अवतारोंकी लीलाओंका प्रयोजन ही 'परम सत्य'को उद्घाटित कर अज्ञानरूपी अन्धकारको दूर करना है। भगवान् समय-समयपर अपनी लीलाद्वारा असहायों तथा धार्मिक जनोंकी सहायता करनेके लिये तत्पर रहे हैं। अहंकार एवं क्रूरताके नशेमें चूर हुए पापियोंसे जीवकी रक्षाके लिये वे दौड़े-दौड़े आते हैं। अन्तमें अधर्मका नाश तथा धर्मकी स्थापनाकी लीला कर जगत्को अपने धर्मकी रक्षाका शाश्वत संदेश देते हैं।

श्रीकृष्ण-लीलाओंका व्यापक प्रभाव

भगवान्की पावन लीलाओंको श्रवणकर आज संसारके सभी देशोंमें तेजीसे 'श्रीकृष्णभावनामृत-अभियान'का विस्तार हो रहा है। गोपालकृष्णकी पावन लीलाओंके प्रभावने घोर मांसाहारी समाजको शाकाहार एवं दुग्धाहारके प्रति आकर्षित करना शुरू कर दिया है। अमेरिका, ब्रिटेन, जापान तथा फ्रांस एवं जर्मनी ही नहीं, चीन और रूस-जैसे कम्युनिस्ट देशोंके भी लाखों ईसाई अंडा, मांस, मछली त्यागकर भगवान् श्रीकृष्णको भोग लगाये तथा पवित्र प्रसाद ग्रहण कर जब *'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे'* का उद्घोष कर सड़कोंपर नृत्य करते हैं तो मैं सोचता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाके प्रत्यक्ष प्रभावका इससे ज्वलन्त उदाहरण और क्या हो सकता है!

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका महान् वाङ्मय-स्वरूप श्रीमद्भागवत तथा भगवान् श्रीकृष्णकी पावन वाणीका साक्षात् स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता आज संसारकी प्रायः प्रत्येक भाषामें अनूदित हो चुकी है। संसारके अनेक शीर्ष बुद्धिजीवी तथा विभिन्न वर्गोंके अग्रणी लोग भौतिकवादके भ्रम-जालको त्यागकर श्रीकृष्णकी शरणमें आते जा रहे हैं। वे पुनर्जन्म तथा सनातनधर्मके संस्कारोंपर दृढ़ विश्वास रखने लगे हैं। कर्मोंके फलपर उनकी दृढ़ आस्था होती जा रही है। इसे मैं भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंका प्रभाव ही मानता हूँ।

'श्रीकृष्णभावनामृत-प्रचार-अभियान'के दौरान मैंने यह भी अनुभव किया कि संसारके युवाजनोंका विज्ञान—अब भौतिक विज्ञानसे मोह-भंग होता जा रहा है। वे यह जान गये हैं कि वैज्ञानिक जन्म तथा मृत्युकी समस्या एवं रहस्यका निदान कदापि नहीं कर सकते।

पाश्चात्त्य देशोंके लोग अपनेको सुसभ्य और सुशिक्षित होनेका दावा करते थे, किंतु उन्होंने जिस प्रकार गर्भस्थ शिशुका पता लगाकर उसे मारनेके तरीके खोजे, भ्रूण-हत्याओंके पापका विज्ञान निकाला, उसे देखकर क्या उन्हें सभ्य कहा जा सकता है? यह तो कुत्तों एवं पशु-पक्षियोंसे भी बदतर सभ्यता है। कुत्ते-बिल्ली भी अपनी संतानको नहीं मारते। हमारे धर्मशास्त्रोंमें गर्भस्थ शिशुके प्रति ममता एवं स्नेह व्यक्त करनेका तरीका बताया गया है, किंतु वर्तमान समयकी तथाकथित सभ्य माताएँ गर्भस्थ शिशु 'कन्या' है, यह पता चलते ही उसे क्रूरतापूर्वक मरवा देती हैं। यह

विज्ञान नहीं क्रूरतम कार्यका निकृष्टतम उदाहरण है। इसी प्रकार छोटी-छोटी बातोंपर तलाक देनेकी प्रवृत्तिसे भी पश्चिमी देशोंके परिवार उजड़ते जा रहे हैं। वे जब श्रीकृष्ण-जीवन-लीलाका अध्ययन करते हैं—भारतीय संयुक्त परिवार-प्रणालीको देखते हैं तो दंग रह जाते हैं।

इसी कारण अतिभौतिकवादसे त्रस्त विदेशी अब अपने जीवनसे, आधुनिकतम सुविधाओंसे ऊबकर श्रीकृष्ण तथा सनातन धर्मकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं और साथ ही वे श्रीकृष्ण-लीलाओंसे वात्सल्य, पारिवारिक स्नेह, मर्यादा तथा एक दूसरेके प्रति कर्तव्य-भावना आदिकी प्रेरणा ले रहे हैं।

यह भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका ही प्रभाव है कि विदेशोंके अनेक नगरोंमें श्रीकृष्ण-बलरामके भव्य मन्दिरोंकी स्थापना हो चुकी है। गोशालाओंकी स्थापना कर अंग्रेज, फ्रांसीसी आदि गोपालनके महत्त्वको समझने लगे हैं। गोमांस ही नहीं, अपितु हर प्रकारके मांस तथा शराब-जैसी अखाद्य वस्तुओंका प्रयोग न करनेका संकल्प लेकर वे पूरी तरह शुद्ध शाकाहारी बनते जा रहे हैं। जगह-जगह गुरुकुलोंकी स्थापना करके बच्चोंको श्रीकृष्ण-लीलाओंका दिग्दर्शन कराया जाता है। उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता तथा लीला-वाङ्मयके साक्षात् स्वरूप श्रीमद्भागवतकी शिक्षा दी जाती है।

हम भारतीय तथा हिंदू कहलानेवाले चोटी, यज्ञोपवीत तथा तिलक-जैसे धर्म-चिह्नोंकी उपेक्षा—अवहेलना करने लगे हैं, जबकि ये विदेशी कृष्ण-भक्त इन धार्मिक चिह्नोंको गर्वपूर्वक धारण कर हाथमें सुमिरनी लिये भगवान्का जाप करते हुए सड़कोंपर निकलनेमें तनिक भी नहीं हिचकिचाते। वे ढोलक-मँजीरोंके साथ—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

—की ध्वनिपर नृत्य करनेमें अपना जीवन सफल मानते हैं। हमें इस बातका संतोष है कि चैतन्य महाप्रभु-जैसी विभूतियोंका श्रीकृष्णलीला एवं भगवन्नाम-संकीर्तन-अभियान अब विश्वव्यापी रूप धारण कर चुका है। समझदार लोग इस संसारकी असारता तथा भौतिक सुखोंकी निःसारताको समझकर भगवान्की दिव्य लीलाओंमें लीन हो जानेमें ही अपना जीवन सफल मानने लगे हैं।

भगवल्लीलाकी तात्त्विक मीमांसा

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरुपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

श्रुतियोंने भगवान्को रसरूप माना है—'**रसो वै सः**' (तैत्तिरीयोपनिषद् २। ७)। रसाभिव्यक्तिके लिये ही भगवान्का अवतार भी होता है। रसाभिव्यक्तिमें प्रतिबन्धक दुष्टोंका दलन तथा अन्तःशत्रु—कामादिका शमन भी भगवान्के अवतारसे सिद्ध होता है। '**इदं विष्णुर्वि च क्रमे त्रेधा नि दधे पदम्**' (ऋग्वेद १। २२। १७) आदि श्रुतियोंको चरितार्थ करनेके लिये जहाँ श्रीवामन भगवान्का अवतार होता है, वहाँ '**रसो वै सः**', '**तद् दूरे तद्वन्तिके**' (ईशावास्योपनिषद् ५), '**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते**' (तैत्तिरीयोपनिषद् ३। १) आदि स्वरूपप्रतिपादक निमित्तोपादान-कारणपरक श्रुतियोंको चरितार्थ करनेके लिये श्रीकृष्णावतार होता है। अतएव कारणब्रह्म और कारणातीत परब्रह्म ही श्रीकृष्णरूपसे स्फुरित हैं। श्रीकृष्णावतारमें सबसे महत्त्वपूर्ण आनन्दाभिव्यञ्जक लीला रासलीला मानी जाती है। उत्पत्ति-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है—रसरूप श्रीकृष्णचन्द्रकी विविध रूपोंमें तथा विविध व्यक्तियोंमें अभिव्यक्ति। लय-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है विविध वस्तुओंमें संनिहित रस-तत्त्वकी श्रीकृष्णके प्रति स्फूर्ति। '**कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः।**' (श्रीमद्भा० १०। ३३। २०)—'जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप श्रीकृष्णने धारण किये।'

व्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि वे हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। '**तदङ्गसङ्ग-**

प्रमुदा कुलेन्द्रियाः' भगवान्‌के अङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त करके गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्दसे विह्वल हो गयीं।

उक्त वचनोंसे उत्पत्ति प्रक्रियाके अनुसार रासलीला चरितार्थ है, क्योंकि भागवतकार लिखते हैं—

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्श-
स्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ॥

(श्रीमद्भा० १०। ३३। १७)

'जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकार-भावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदयसे लगाते, कभी हाथसे उनका अङ्ग स्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते, तो कभी लीलासे उन्मुक्त हँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीडा की—विहार किया।'

उक्त वचनसे प्रलय-प्रक्रियाके अनुसार रासलीला चरितार्थ है।

स्थिति-प्रक्रियाके अनुसार रासलीलाका अर्थ है—तत्त्वशोधन। पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहम्, महत् और अव्यक्तका पृथक्-पृथक् तथा युगपत् शोधन श्रीकृष्णावतारमें चरितार्थ है। मृद्भक्षण और नवनीत-भक्षण आदि पृथिवीशोधन-लीला है। कालियदमन तथा ह्रदशोधन जलशोधन-लीला है। दावानलपान तेजःशोधन-लीला है। तृणावर्तोद्धार वायुशोधन-लीला है। व्योमासुर-उद्धार आकाशशोधन-लीला है। अघासुर-उद्धार अहंशोधन-लीला है। ब्रह्मपराभव महत्-शोधन-लीला है। पूतनावध अविद्यारूपा अव्यक्तशोधन-लीला है। अष्टधाप्रकृतिरूपा गोपाङ्गनाओंके दुकूलापहरणके अनन्तर रसाविष्ट, स्वसंस्पृष्ट वस्त्रप्रदानसे स्वसम्मिलनके निमित्त गोपाङ्गनाओंमें शक्तिपात युगपत् सर्वतत्त्वशोधन-लीला है।

श्रीहरिकी दुष्टदलन-लीला भी मनोरम ही है। रसाभिव्यक्तिमें प्रतिबन्धक तामस शरीरका अपहरण कर वैरभावसे स्मरणके प्रभावसे ब्रह्माभिव्यंजक ब्राह्मीतनुको प्रदान करना रसाभिव्यक्ति नहीं तो और क्या है?

श्रीहरि दुर्जनप्रदत्त यातनाको दूरकर, रोगादिसे त्राण दिलाकर—जीवनदान देकर, धन-मान देकर, बन्धु-बान्धवोंका वियोग दूरकर, तत्त्वोपदेश देकर, जीवन्मुक्तिके विलक्षण आनन्दको अभिव्यक्तकर आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु, ज्ञानी और प्रेमी सभी प्रकारके साधुओंका परित्राण करते हैं। इस प्रकार साधु-परित्राण भी रसाभिव्यक्ति ही है।

भगवान् अपने शापित जय-विजयपर कितने अनुग्रहयुक्त थे, यह तथ्य श्रीमद्भागवतके अनुशीलनसे अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। श्रीसनकादि योगीश्वरोंद्वारा शापित जय-विजयको शीघ्र ही ब्रह्मदण्डरूप शापसे मुक्ति मिल सके और वे निर्वासनकाल समाप्त कर शीघ्र ही श्रीहरिके समीप आ जायँ, इसके प्रति विह्वल भगवान् सनकादि मुनियोंसे विनय करते हुए बोले—

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ
युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे
यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥

(श्रीमद्भा० ३। १६। १२)

'मेरे इन सेवकोंने मेरा अभिप्राय न समझकर ही आप महानुभावोंका अपमान किया है। इसलिये मेरे अनुरोधसे आप केवल इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासनकाल शीघ्र ही समाप्त हो जाय, ये अपने अपराधके अनुरूप अधमगतिको भोगकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आयें।'

निज पार्षदोंको मेरे प्रति क्रोधान्वित होकर प्रवृद्ध क्रोधावेश-सम्भव एकाग्रतारूप समाधिके द्वारा सुदृढ योग-सम्पन्न होकर पुनः शीघ्र ही मेरे पास लौट आओगे। ऐसा आश्वासन तथा शाप देनेवाले मुनियोंको हानि और ग्लानिसे मुक्त करते हुए 'ब्राह्मणो! आपने इन्हें जो शाप दिया है—सच जानिये, वह मेरी ही प्रेरणासे हुआ है।'—यह कथन श्रीहरिको जय-विजय और सनकादि सभीके प्रति वात्सल्ययुक्त सिद्ध करता है। भगवान्‌के इस स्वभावको परखनेवाले श्रीहरिके प्रति अनुरक्त हुए बिना कैसे रह सकते हैं?

श्रीप्रह्लादजीके सिरपर वात्सल्यपूर्ण वरदहस्त और हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलका तीक्ष्ण नाखूनोंसे विदारण—ये दोनों ही अनुग्रह नहीं तो और क्या है? एक वात्सल्यमयी

शल्यचिकित्सामें निपुण माँ अपने स्वस्थ बच्चेको दूध पिलाती और व्रणपीडित बच्चेके व्रणको चीरकर रक्त बहाती हुई परिलक्षित होनेपर भी मर्मज्ञ महानुभावोंकी दृष्टिमें दोनोंपर यथाकाल यथायोग्य अनुग्रह ही बरसाती सिद्ध होती है।

उक्त दो उदाहरणोंके अतिरिक्त तीसरा उदाहरण अर्जुन और भीष्मपर यथावसर यथोचित अनुग्रहकी वर्षाका है—

तीसरे दिनके युद्धमें अर्जुन, भीम, धृष्टद्युम्न, घटोत्कच, सात्यकि, अभिमन्यु आदिके पराक्रमसे कौरवसेना अत्यन्त भयविह्वल होकर युद्धभूमिसे पलायन करने लगी। भीष्म और द्रोण भी पलायन करते हुए सैनिकोंको रोक नहीं सके। सेनाकी दुर्दशा देखकर दुर्योधनने भीष्मपितामहके समीप जाकर कहा—'आपके, अस्त्रविद्यानिपुण द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और अश्वत्थामाके जीवित रहते मेरी सेनाका इस प्रकार भागना आप लोगोंके पराक्रमके अनुरूप मैं नहीं मानता। नि:संदेह आप पाण्डवोंपर कृपा करके उन्हें क्षमा कर रहे हैं। मैंने आपके, द्रोणाचार्य और कृपाचार्यके वचनपर विश्वास करके ही कर्णके साथ कर्तव्यकी सम्मति करके यह युद्ध प्रारम्भ किया था। आप अपने पराक्रमके अनुरूप युद्ध करके शत्रुओंको नष्ट कर दीजिये।'

दुर्योधनके ये वचन सुनकर महापराक्रमी भीष्म बार-बार हँसकर और फिर क्रोधसे नेत्र लाल करके दुर्योधनसे बोले—'हे राजेन्द्र! मैंने बहुत बार सत्य और हितकर वचन कहा कि इन्द्रसहित सब देवता भी युद्धमें पाण्डवोंको जीत नहीं सकते। मैं इस समय वृद्ध और गतायु होकर भी जो कुछ कर सकता हूँ, वह यथाशक्ति करूँगा। तुम अपने भाइयोंसहित मेरा पराक्रम देखो। इस समय सब लोगोंके सामने मैं अकेला ही सेनासहित पाण्डवोंको रोकूँगा।'

भीष्मके ये वचन सुनकर दुर्योधनादि प्रसन्न होकर शंख और नगाड़े आदि बजाने लगे। इस महानादको सुनकर पाण्डवगण भी शंख, भेरी आदि बाजे बजाने लगे। उस दिनका पूर्वभाग समाप्तप्राय हो चुका था। सूर्यदेव कुछ पश्चिम आकाशकी ओर झुक चले थे। पाण्डवलोग विजय-लाभ करके प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। इसी समय भीष्मने यथाशक्ति पराक्रम प्रकट करके पाण्डवोंको रोकनेकी प्रतिज्ञा की। भीष्म हाथमें मण्डलाकार धनुष लेकर नागसदृश प्रज्वलित अग्रभागवाले बाण छोड़ने लगे। वे अलातचक्रकी तरह इधर-उधर सब जगह दिखायी पड़ने लगे। भीष्मके हाथकी स्फूर्तिके कारण पाण्डव और सृञ्जयगण युद्धभूमिमें एकमात्र वीर भीष्मको सैकड़ों और हजारोंके तुल्य देख रहे थे। वे सभी वीर भीष्मको मायावी जानने लगे। सहस्रों क्षत्रियगण पतंगोंकी तरह मोहित होकर स्वयं ही अपने नाशके लिये अमानुषिक रूपसे विचरनेवाले क्रुद्ध भीष्मरूप अग्निमें गिर-गिरकर भस्म होने लगे। पाण्डवपक्षके बहुत-से योद्धा कवच और केश खोलकर इधर-उधर प्राणोंकी रक्षाकी भावनासे आर्तनाद करते हुए भागने लगे। तब यदुनन्दन श्रीकृष्णने सैनिकोंको भागते देखकर रथ लौटाकर अर्जुनसे कहा—'हे पार्थ! यह वही समय है जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रहे थे। इस समय तुम भीष्मपर प्रहार करो।'

भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा पाकर अर्जुनने कहा—'हे वासुदेव! जहाँपर भीष्मका रथ है, वहाँ इस सैन्यसागरके मध्यसे मेरा रथ ले चलिये।' फिर क्या था, श्रीकृष्णने रथको हाँका और जहाँपर भीष्मका सूर्यके समान दुर्निरीक्ष्य रथ खड़ा था, वहाँपर श्वेत अश्वोंसे शोभित अर्जुनका रथ पहुँचा दिया। युधिष्ठिरकी सेना अर्जुनको भीष्मसे युद्ध करनेके लिये उद्यत देखकर लौट पड़ी। तत्पश्चात् कुरुकुलप्रधान भीष्मने बार-बार सिंहनाद करके शीघ्र ही बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनका रथ ढक दिया। तब अर्जुनने मेघके समान गरजनेवाला दिव्य गाण्डीव धनुष चढ़ाकर तीक्ष्ण बाणसे भीष्मका धनुष काट डाला। फिर क्या था, अर्जुनकी प्रशंसा करके भीष्म घोर पराक्रम दिखाने लगे, परंतु अर्जुन मृदुयुद्ध ही करते रहे। श्रीकृष्णने यह जानकर कि आज ही भीष्म पाण्डवपक्षका संहार कर डालेंगे। मन-ही-मन सोचा—पाण्डवोंके हितकी रक्षाके लिये आज मैं ही भीष्मको मारूँगा। यद्यपि भीष्म तीक्ष्ण बाण मार रहे थे, किंतु अर्जुन पितामहके गौरवकी रक्षाके लिये अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते। सात्यकिसे भगवान् श्रीकृष्णने कहा— आज

कौरव-सेनाका एक भी वीर मेरे क्रोधसे नहीं बच सकता। मैं अभी भयंकर चक्र हाथमें लेकर भीष्मको मार डालूँगा। धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको और उनके पक्षके मुख्य राजाओंको मारकर आज मैं प्रसन्नतापूर्वक राजा युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बिठाऊँगा।' ऐसा कहकर श्रीकृष्णने घोड़ोंकी रास हाथसे छोड़ दी। सहस्र वज्रसहित बहुत ही तीक्ष्ण सूर्यसदृश प्रभासम्पन्न सुदर्शनचक्रको हाथमें घुमाते हुए वे रथसे कूद पड़े। सिंह जैसे गजराजको मारनेके लिये दौड़े, वैसे ही श्रीकृष्ण भीष्मको मारनेके लिये कौरव-सेनाकी ओर दौड़े। उस समय उनके शरीरका पीताम्बर आकाशमें स्थित बिजलीयुक्त मेघके समान शोभाको प्राप्त होने लगा। क्रुद्ध श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये देखकर सब प्राणी ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे। सबने समझा कि अब कुरुकुलका नाश हुआ। धूमकेतु जैसे चराचर जगत्को जलानेके लिये उदित होता है, वैसे ही लोकगुरु वासुदेव चक्र हाथमें लेकर जीवलोकको जलानेवाले प्रलयकालके अग्निके समान भीष्मकी ओर वेगसे दौड़े। श्रीकृष्णको चक्र लिये हुए अपनी ओर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे अविचल-भावसे गाण्डीवके समान श्रेष्ठ धनुषकी डोरी बजाते हुए कहने लगे—'हे श्रीकृष्ण! हे जगन्निवास! हे चक्रपाणि! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले शरण्य हैं। आप बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथपरसे मुझे मार गिराइये। आप मुझको मारेंगे तो मुझे इस लोक और परलोकमें कल्याण प्राप्त होगा। हे यदुनाथ! आप मुझे मारने दौड़े, इससे मेरी प्रतिष्ठा एवं कीर्ति और भी बढ़ गयी।'

भीष्मके ये वचन सुनकर वेगके साथ उनके सामने जानेके लिये उद्यत श्रीकृष्णने कहा—'हे भीष्म! आपके कारण ही दुर्योधन भाई-बन्धुओं-सहित विनष्ट होगा। द्यूतमें आसक्त राजाको उससे रोकना ही धार्मिक मन्त्रियोंका कर्तव्य है। यदि कोई राजा काल-विपर्ययके कारण उस उपदेशको न मानकर धर्मविरुद्ध कार्यको न छोड़ना चाहे तो उसको छोड़ देना ही श्रेयस्कर है।'

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके वचनको सुनकर भीष्मने कहा—'हे जनार्दन! दैव ही प्रबल है। मैंने हित-कामनासे बार-बार धृतराष्ट्रसे कहा कि यदुवंशी आदिने अपने हितके लिये कंसको छोड़ दिया था, तुम भी दुर्योधनको त्याग दो। परंतु उसने दैववश बुद्धि विपरीत होनेके कारण मेरा एक हितोपदेश नहीं सुना।'

इसी समय विशालबाहु वीर अर्जुन रथसे कूदकर यदुवीर श्रीकृष्णके पीछे दौड़े। अर्जुनने जाकर श्रीकृष्णके दोनों हाथ पकड़ लिये। योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र उस समय क्रोधमें थे, इस कारण यद्यपि अर्जुनने उन्हें रोकना चाहा, तो भी वे उसी प्रकार अर्जुनको खींचते हुए भीष्मकी ओर चले, जैसे प्रबल आँधी किसी वृक्षको खींच ले जाती है। दसवें पगपर जाकर अर्जुन बलपूर्वक पाँवोंको जमाकर श्रीकृष्णको रोक सके। उस समय श्रीकृष्णके नेत्र क्रोधसे व्याप्त हो रहे थे। वे फुफकारते हुए सर्पके समान लम्बी साँस खींच रहे थे। उनके सखा अर्जुन आर्तभावसे प्रेमपूर्वक बोले—'महाबाहो! लौटिये, अपनी प्रतिज्ञाको झूठी मत कीजिये। केशव! आपने पहले जो कहा था कि 'मैं युद्ध नहीं करूँगा', इस वचनकी रक्षा कीजिये। अन्यथा माधव! लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। यह सारा भार मुझपर है। मैं अपने अस्त्र-शस्त्र, सत्य और सुकृतकी शपथ खाकर कहता हूँ कि पितामह भीष्मका वध करूँगा।'

भगवान् श्रीकृष्ण महामना अर्जुनका यह वचन सुनकर तथा उनके पराक्रमको जानते हुए और ऊपरसे कुछ भी न बोलकर पुनः क्रोधपूर्वक ही रथपर जा बैठे।

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि। वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा॥

(श्रीमद्भागवत १०। १। १६)

भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही वक्ता, प्रश्नकर्ता और श्रोता तीनों ही पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है।

सूरसागरमें कृष्णलीलाका सरसतम वर्णन

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, आदिबदरी)

श्रीकृष्णने भारतीय चिन्तनधाराको एक नया मोड़ प्रदान किया है। 'स्वर्ग और मोक्ष मरणके बादका विषय है'—यह विचारधारा श्रीकृष्णकी लीलाओंमें पूर्णतः ध्वस्त हो गयी है। जीते-जी जीवन्मुक्तिका आनन्द अध्यात्म-जीवनदर्शनकी विशेषता है। यही सूरकी साधना है, जो उनके पदोंमें प्रतिबिम्बित हो उठी है। देहकी आसक्ति और वासनाके बन्धनको छोड़ना ही मुक्ति है। समस्त धर्मशास्त्र इस विषयमें एक मत हैं कि 'आसक्ति अध्यात्म-विकासमें बाधक है'—यह कह देना जितना सरल प्रतीत होता है, वास्तवमें व्यवहारकी दृष्टिसे उतना है नहीं। वल्लभाचार्यजी इस शास्त्रीय विचारसे अनभिज्ञ भला कैसे हो सकते हैं, अतः उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि आसक्ति सर्वथा त्याज्य है, किंतु यदि उसे त्याग देना सम्भव न हो तब संतोंमें आसक्ति करनी चाहिये, क्योंकि संत स्वयमेव आसक्तिकी औषधि हैं—

संगः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः संगस्य भेषजम्॥

आइये, भक्तशिरोमणि सूरदासकी रचनाओंके संगद्वारा इस आसक्ति-रोगका उपचार करें। श्वेताश्वतरोपनिषद् (६। १६)-में परमेश्वरके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहा गया है—

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनि-
र्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः
सःसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥

'वह विश्वका कर्ता, विश्ववेत्ता, आत्मयोनि (स्वयम्भू), ज्ञाता, कालका प्रेरक, अपहतपाप्मत्वादि गुणोंसे युक्त और सम्पूर्ण विद्याओंका आश्रय है तथा वही प्रधान और पुरुषका अध्यक्ष, गुणोंका नियामक एवं संसारके मोक्ष, स्थिति और बन्धनका हेतु भी है।' इसी क्लिष्टतम परमेश्वर-तत्त्वका निरूपण सूरदासने कितने सहज ढंगसे प्रस्तुत किया है—

जाको ब्रह्मा अंत न पावै।
तापै नंद की नारि जसोदा, घर की टहल करावै॥
सेष, सनक, नारद, गनेस, मुनि, जाके गुन नित गावैं।
निसि-बासर खोजत पचिहारैं, मनसा ध्यान न आवै॥
धनि गोकुल, धनि-धनि ब्रज-बनिता, निरखत स्याम बधावै।
सूरदास प्रभु प्रेमहिं के बस, संतनि दुरस दिखावैं॥

वेदव्यासने श्रीमद्भागवत-पुराणान्तर्गत भगवान् कृष्णके प्राकट्यका जो स्वरूप वर्णन किया है—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं
चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं
पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ३। ९)

—ठीक यही वर्णन सूरदासजीकी भावनामें प्रखर-रूपमें प्रतिबिम्बित हो उठा है—

बुध-रोहिनी-अष्टमी-संगम, वसुदेव निकट बुलायौ।
सकल लोकनायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ॥
माथैं मुकुट, सुभग पीतांबर, उर सोभित भृगु-रेखा।
संख-चक्र-गदा-पद्म बिराजत, अति प्रताप सिसु-भेषा॥
जननी निरखि भई तन ब्याकुल, यह न चरित कहुँ देखा।
बैठी सकुचि, निकट पति बोल्यौ, दुहुँनि पुत्र-मुख पेखा॥

जिस प्रज्ञाचक्षुके समक्ष लाखों आँखोंवाले भी चक्षुविहीन-जैसे ही हैं, उसकी अन्तर्दृष्टिने कृष्ण-जन्मसे संलग्न 'नालोच्छेदन'-जैसी अनिवार्य क्रियाका कैसा विचित्र और अनूठा वर्णन किया है। दाईका हठ उसके अन्तःकरणकी सरस अभिव्यक्ति है और यशोदाका उपहार तो जैसे शब्दोंमें सजीव हो उठा है—

जसुदा, नार न छेदन दैहौं।
मनिमय जटित हार ग्रीवा कौ, वहै आजु हौं लैहौं॥
औरनि कै हैं गोप-खरिक बहु, मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ॥
बहुत दिनन की आशा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।
मनमैं बिहँसि तबै नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ॥
जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक, सकल-बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मेटन कौं भू-भार॥

कृष्ण-चरित्रसे सम्बन्धित साहित्यमें ज्योतिष शास्त्रानुसार श्रीकृष्णकी जन्मकुण्डलीका जितना प्रामाणिक चित्रण सूरने

किया है, उतना अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। प्रत्येक ग्रहकी स्थिति और उसका फल-विवरण सूरदासके ज्योतिष-सम्बन्धी ज्ञानका परिचायक है—

(नंद जू) आदि जोतिषी तुम्हरे घर कौ, पुत्र-जन्म सुनि आयौ।
लगन सोधि सब जोतिष गनिकै, चाहत तुमहिं सुनायौ॥
संबत सरस बिभावन, भादौं, आठैं तिथि, बुधवार।
कृष्न पच्छ, रोहिनी, अर्द्ध निसि, हर्षन जोग उदार॥
बृष है लग्न, उच्च के निसिपति, तनहिं बहुत सुख पैहैं।
चौथैं सिंह रासि के दिनकर, जीति सकल महि लैहैं॥
पचएँ बुध कन्या कौ जौ है, पुत्रनि बहुत बढ़ैहैं।
छठएँ सुक्र तुला के सनि जुत, सत्रु रहन नहिं पैहैं॥
ऊँच नीच जुवती बहु करिहैं, सतएँ राहु परे हैं।
भाग्य-भवन मैं मकर मही-सुत, बहु ऐस्वर्य बढ़ैहैं॥
लाभ-भवन मैं मीन बृहस्पति, नवनिधि घर मैं ऐहैं॥
कर्म-भवन के ईस सनीचर, स्याम बरन तन ह्वैहैं॥
आदि सनातन परब्रह्म प्रभु, घट-घट अंतरजामी।
सो तुम्हरैं अवतरे आनि कै, सूरदास के स्वामी॥

नन्हे बच्चोंका रूठना, मचलना, रोना और हठ करना साधारण बात है, पर अपनी माँसे इस बातके लिये झगड़ना कि 'माँ! मेरी चोटी क्यों नहीं बढ़ रही है?' असाधारण बात है। नन्हे कृष्ण न केवल माँसे हठपूर्वक पूछते हैं, वरन् इस चोटीके न बढ़नेका कारण भी अपनी ओरसे सजीव एवं सशक्त ढंगसे प्रस्तुत करते हैं कि—'तू कच्चा दूध तो भरपेट देती है, पर माखन-रोटीके बिना शिखावर्धन नहीं हो पायेगा'—

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी!

× × ×

काँचौ दूध पिवति पचि-पचि, देति न माखन-रोटी।

'कृष्ण' शब्दका परिष्कृत अर्थ अपनी ओर आकर्षित करना भी होता है। रसखान तो कृष्णके हाथसे माखन-रोटी छुड़ाकर भाग जानेवाले कौएके भाग्यकी सराहना करते हैं, पर उस तपःपूत सूरदासका अन्तःकरण तो कृष्णको भोजन करा देनेके पश्चात् बाबा नन्दसे उनकी मधुमय जूठन माँगता है—

भोजन करि नंद अचमन लीन्हौ, माँगत सूर जुठनियाँ।

महर्षि व्यासदेवके कथनानुसार श्रीकृष्णको पौगण्ड-अवस्था (छठे वर्ष)-में गौ चरानेकी स्वीकृति प्राप्त हो जाती है—

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
(श्रीमद्भा० १०। १५। १)

सचमुच जिनका कोमलाङ्ग गोधूलिधूसरित ग्वाल-सखाओंके साथ गोधूलिवेलामें गौओंको यथास्थान बाँधनेके लिये जा रहा हो, उन सलोने बाल-गोपालके चरणोंमें प्रणाम करनेको किसका मन नहीं चाहेगा?

उक्त नयनाभिराम दृश्यपर सूरका शब्द-कौशल अनुपमेय है। कितने सरलभावसे कृष्ण माँसे मनुहार कर रहे हैं—'मैया! अब मैं बड़ा हो गया हूँ। अब मुझे वनमें डर नहीं लगेगा। सभी सखा—रैता, पैता, मना, मनसुखा और हलधर भैया भी तो साथ हैं। भूख लगेगी तो दही-भातकी काँवरि तू देगी ही'—

मैया हौं गाइ चरावन जैहौं।
तू कहि महर नंद बाबा सौं, बड़ो भयौ न डरैहौं॥
रैता, पैता, मना, मनसुखा, हलधर संगहि रैहौं।
बंसीबट तर ग्वालनि कैं सँग, खेलत अति सुख पैहौं॥
ओदन भोजन दै दधि काँवरि, भूख लगे तैं खैहौं।
सूरदास है साखि जमुन-जल, सौंह देहु जु नहैहौं॥

ऐसी अनुपम रूप-माधुरीपर भला कौन मुग्ध न होगा?

सुन्दरता को पार न पावति रूप देखि महतारी।
सूरसिन्धु की बूँद भई मिलि मति गति दीठि हमारी॥

महापुरुषोंके जीवन-आख्यानोंद्वारा बचपनमें ही बालकोंको कथा-श्रवण करवाना भारतीय संस्कृतिकी विशिष्ट परम्परा रही है। नन्हे कन्हैयाको बाल्यावस्थामें ही माताद्वारा मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामकी जीवनी सुनाना सूरदासके मनोभावोंकी इसी आदर्श परम्पराका परिचायक है—

सुनि सुत एक कथा कहौं प्यारी।
कमल-नैन मन आनँद उपज्यौ, चतुर सिरोमनि देत हुँकारी।
दसरथ नृपति हुतौ रघुबंसी, ताकैं प्रगट भए सुत चारी।
तिनमैं मुख्य राम जो कहियत, जनक-सुता ताकी बर नारी॥
तात-बचन लगि राज तज्यौ तिन, अनुज, घरनि सँग गए बनचारी।
धावत कनक-मृगा के पाछैं, राजिव लोचन परम उदारी॥
रावन हरन सिया कौ कीन्हौ, सुनि नँद-नंदन नींद निँवारी।
चाप-चाप करि उठे सूर प्रभु, लछिमन देहु, जननि भ्रम भारी॥

राजसूय-यज्ञमें देवर्षि नारदद्वारा भगवान्‌का स्वरूप-

वर्णन सूरको भी ग्राह्य है—'**साक्षात् स विबुधारिघ्नः क्षेत्रे नारायणो विभुः**' तथा '**संदिदेश पुरा योऽसौ विबुधान् भूतकृत् स्वयम्**' जो सर्वव्यापक हो, स्वयं नारायण हो, सम्पूर्ण भूतोंका उत्पादक हो, स्वयं कर्ता-धर्ता हो, पर उस आँधरे भिखारीको तबतक संतोष नहीं होता है, जबतक कि वह उस ब्रह्माण्डनायकसे रुदन कराकर भोजन न मँगवा ले। यह भक्तिका पराकाष्ठातीत स्वरूप है। भला जो जगत्के रचयिता हों उनका कौन माता-पिता हो सकता है—

मातु पिता इनके नहिं कोइ।
आपुहिं करता, आपुहिं हरता, त्रिगुन रहित हैं सोइ॥
कितिक बार अवतार लियौ ब्रज, ये हैं ऐसे ओइ।
जल-थल, कीट-ब्रह्म के व्यापक, और न इन सरि होइ॥
बसुधा-भार-उतारन काजैं, आपु रहत तनु गोइ।
सूर स्याम माता-हित-कारन, भोजन माँगत रोइ॥

कृष्णलीलामें जहाँ अनेक चेतन पात्र हैं, वहीं कुछ ऐसे जड पात्र भी हैं जिनके बिना कृष्ण अपूर्ण-से प्रतीत होते हैं, उन्हींमेंसे एक है बाँसुरी। जड होकर भी चेतनका चित्त हरण करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली बाँसुरी सूरकी दृष्टिमें—

मुरली तौ यह बाँस की।
बाजति स्वास परति नहिं जानतिं, भई रहति पिय पास की॥
चेतन कौ चित हरति, अचेतन, भूखी डोलति माँस की।
सूरदास सब ब्रज-बासिनि सौं, लिये रहति है गाँस की॥

श्रीकृष्ण-लीलाओंके सम्बन्धमें इस कालजयी कविके कृतित्वका विवेचन उस समयतक अपूर्ण ही रहेगा, जबतक गम्भीर अध्ययनद्वारा उनकी सार्थक वाणीसे निःसृत भक्ति और ज्ञानकी निर्मल धारामें अवगाहन न किया जाय। भगवद्भजनसे रहित मानव-देहको ऊँट, बैल और भैंसा कह देनेसे भी जब सूरको संतुष्टि नहीं हुई— ***'सूरदास भगवंत भजन बिनु, मनो ऊँट वृष भैंसो'*** तब उन्होंने और भी निम्नस्तरीय पशुओंसे मानवकी तुलना करते हुए कहा—***'सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन बिनु जैसे सूकर स्वान सियार'***-यह उपदेशकी भाषा नहीं, अपितु सूरदास स्वयं अपनेको इंगित कर कहते हैं—'सूरदासरूपी कुत्तेको पालनेवाले स्वामी इसे घरहीमें बाँधकर रखो। मेरे कारण दूसरोंसे गाली क्यों सुनते हो'—

'अब अनखाइ कहौं घर अपने राखौं बांधि विचार'॥

'सूर स्वान के पालनहारे आवति हैं नित गारी।'

यह भी तो कृष्णलीलाका ही एक रूप है—प्रतिदिनकी भाँति आज भी श्यामने सूरके हाथमें इकतारा देकर कहा—'सुनाओ कोई नया पद! तुम बजाओ मैं नाचूँगा।'

अभी सूर इकतारेका स्वर मिला ही रहे थे कि न जाने उस नटखटको क्या सूझा—सूरदासके हाथसे इकतारा ले लिया और बोला—'तुम रोज गाते-बजाते हो और मैं सुन-सुनकर नाचता हूँ, पर आज मैं गाऊँगा-बजाऊँगा और तुम नाचोगे।'

'मैं नाचूँ! यह क्या कौतुक है कन्हाई! मुझ बूढ़ेको नचाओगे। पर मुझे नाचना आता कहाँ है?'

'नहीं आज तो नाचना ही पड़ेगा।'

'अच्छा गिरधारी! नहीं मानते हो तो नाच लूँगा, पर एक बात बताओ! कितनी बार नचाओगे। चौरासी लाख बार मुझे नचाकर भी तुम्हारा मन नहीं भरा! अब अधिक न नचाओ मुरली-मनोहर!'

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल।
भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नँदलाल॥

जंगलके लोगोंद्वारा आतंकित किये जानेसे आप भयाक्रान्त क्यों हैं? चाहे संसार दाँत पीसकर मर जाय, पर प्रभुके शरणागतका बाल भी बाँका नहीं कर सकता—

'सूर केस नहिं टार सकै कोउ दाँत पीसि जो जग मरै'

जलनिधिसे रत्न निकालना तो अभ्यस्त गोताखोरोंका ही कौशल है और फिर सूर-सागरके सहस्राधिक पदोंमेंसे चयन तो अधिकारी मनीषी ही कर सकते हैं, मुझ-जैसे अल्पज्ञकी क्या बिसात! बस हमें तो इतना ही चाहिये कि हम तेरे गुलाम कहलाते रहें, सुन-सुनकर प्रफुल्लित होते रहें और तेरी जूँठन प्राप्त करते रहें—

सब कोउ कहत गुलाम स्यामको सुनत सिहात हियौ।
सूरदास प्रभु जू को चेरो जूठनि खाय जियो॥

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलाका प्रयोजन

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायि श्रीगोपालवैष्णवपीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

अखिल ब्रह्माण्डनायक, वेदान्तवेद्य, परमब्रह्म, नराकार सच्चिदानन्दविग्रह श्रीगोपालजी ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् आदि शब्दोंसे अभिधेय यथार्थतः एक ही तत्त्व हैं। **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'**—इस श्रुति-वचनसे अद्वितीय एक ही तत्त्व ब्रह्म-पदसे वेदान्तोंमें प्रतिपादित है।

जब उनकी रमण करनेकी अभिलाषा हुई, तब **'एकाकी न रमते, द्वितीयमैच्छत्'**—इस श्रुति-वाक्यसे अकेले रमण न कर सकनेपर दूसरेकी इच्छा हुई। दूसरा कोई न होनेपर जब **'एकोऽहं बहु स्याम'** इस श्रुतिसे स्वयं बहुविध होनेकी इच्छा की, तब **'स आत्मानं स्वयमकुरुत'**—इस श्रुतिसे उन्होंने स्वयंको आधार बनाकर अपनेको ही प्रपञ्चरूपमें परिणत कर लिया।

'स एकधा भवति, द्विधा भवति, बहुधा भवति'—इस श्रुतिसे एकविध कृष्ण, द्विविध राधाकृष्ण एवं राम-कृष्ण तथा बहुविध गो, गोप, गोपी आदि लीलाके उपकरण-रूपसे प्रकट हो गये। अतः सभी नित्य ही सिद्ध हुए और प्रपञ्च ब्रह्मात्मक होनेसे उनकी लीला-प्रयोजनकी सार्थकता स्वतःसिद्ध ही है।

मथुरापुरीमें लीलानट गोपाल-वेषधारी श्रीकृष्णने अवतार लिया है। आत्माराम-पूर्णकाम होनेपर भी उनका भूमिपर अवतरण मानव-कल्याणके लिये ही है—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।

(श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

भगवल्लीलाएँ माधुर्य-ऐश्वर्य—इन दो भागोंमें विभक्त हैं। माधुर्य-लीला व्रजमें तथा ऐश्वर्य-लीला द्वारकामें की है। बाललीला, पौगण्ड-लीला एवं किशोर-लीला व्रजमें की है। उनमें प्रथम बाललीला गोकुलमें की है। पौगण्डलीला वृन्दावन, गोवर्धन, नन्दगाँव, बरसाना और कामवनादिमें की है। किशोर-लीला वृन्दावन एवं मथुरापुरीमें की है।

वे लीलाएँ आन्तर्य तथा बाह्य-भेदसे दो प्रकारकी हैं। भगवान्ने जितनी लीलाएँ की हैं, उनमें गोपाल-लीला ही प्रमुख है। क्योंकि गोचारणके लिये वृन्दावन, गोवर्धन एवं यमुना-पुलिनपर जाकर गौओंको चराते हुए ग्वाल-बाल-सखाओंसहित क्रीडा करते हैं। उनकी क्रीडाको भंग करनेके लिये कंसादि दैत्योंद्वारा जितने दैत्य-दानवोंको भेजा जाता है, वे सभी लीला-लीलामें ही मार दिये जाते हैं। उसके बाद वे प्रभु निर्भय अपने गोप-सखाओंके साथ विहार-विलास करते हैं।

अन्तरङ्ग-लीला निकुंजोंमें करते हैं। उस लीलाकी अधिनायिका श्रीराधारानी हैं। अष्ट सखियोंके सौ-सौ यूथ होते हैं। वे सहेली कहलाती हैं। उनमें भी प्रत्येकके सौ यूथ सहचरी कहलाती हैं। बहिरङ्ग-लीलाके नायक कृष्ण कन्हैया-दाऊभैया हैं, संगी-सखा-ग्वाल-बाल समवयस्क होते हैं। ग्वाल-बालोंको गायोंकी देख-रेखमें लगाकर तथा दाऊदयालकी सेवामें सौंपकर किसी बहानेसे निकुंजमें प्रवेश कर राधाके साथ रमण-लीला करते हैं। पुनः कुछ काल-बाद उनको भी छलकर ग्वालोंके साथ कंदुकादि क्रीडा करते हैं। इस प्रकार गोचारणके प्रसंगवश भीतरी-बाहरी द्विविध लीलाएँ करनेसे गोपाल-लीला ही लीलाका प्रमुख केन्द्र है।

वंशीधरकी वंशी प्यारी सखी है जो दूतीका कार्य करती है। मुरलीमनोहरकी लीला अति अद्भुत शृंगाररससे परिपूरित है, जो वर्णनातीत है तथा भगवान् कृष्णके जन्म-कर्म भी दिव्य हैं—**'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'**—इस भगवद्-वाक्यसे स्पष्ट ही है। उनके स्वरूप-गुण-कर्मोंकी स्फूर्ति भगवत्कृपाके बिना असाध्य ही है, क्योंकि—

जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

(श्रीमद्भा० १०। १४। ५५)

यशोदाजीने ऊखलसे बाँधनेके लिये जब रज्जु-खण्ड उठाया तब कृष्णकी आँखोंसे अश्रुपूरित काजलके कजरारे कण गालोंपर छलक रहे थे। मुखको नीचाकर भयभीत-भावनासे खड़े देखकर मुझे मोहित कर दिया, क्योंकि भय भी जिससे भयभीत होता है, फिर वही भयभीत कैसे?

इस दामोदर-लीला प्रकरणसे भी स्पष्ट होता है कि

जब माता यशोदा बेंत उठाकर हाथ पकड़कर डराती हुई बोलीं तो कृष्ण कजरारे नैन मीजते हुए रोने लगे। भांड फोड़नेका कारण यह था कि, मैया दूध पिलाते समय उफनते दूधकी कड़ाही उतारनेके लिये अतृप्त कृष्णको गोदीसे उतारकर वेगसे चली गयी थीं। यद्यपि भगवान् कृष्णको भूख-प्यास आदि जैव-धर्म लिप्त नहीं कर सकते, तथापि उनका ऐसा करना यशोदाजीका निरोध करनेके लिये शिशुत्व-नाट्य ही है।

कोटिकाम, लावण्यधाम, घनश्याम, गोपीजनोंके अभिराम श्यामसुन्दरको देखकर खेचरोंकी नारियाँ भी मोहित हो गयी थीं। पुनः भूचरोंकी नारियाँ मोहित हो जायँ तो कहना ही क्या? उनकी मानवीय लीलाके अनुरूप स्वरूप धारण करना योगमायाके बलको दिखानेके लिये ही था, जिसको दर्पणमें देखकर वे स्वयं विस्मित हो गये थे; क्योंकि उनके श्रीअङ्गोंसे भूषणोंकी शोभा होती थी। ऐसा असाधारण स्वरूप धारण कर विश्व-विमोहन, मनमोहन कृष्णने अनुपम लीलाएँ की हैं। सज्जनोंके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही स्वकीय भक्तोंकी भावनाके अनुरूप रूप ग्रहण किया है। उनके रूप-गुण-कर्मादिके श्रवण-कीर्तन-स्मरणादिसे कलियुगीय जीवोंका उद्धार हो—इस प्रयोजनसे ही लीलाएँ की हैं। मुमुक्षु-बुभुक्षु सभीका अभीष्ट कार्य सिद्ध करना ही लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी ईश्वरता है।

वे श्रीकृष्ण अवतारी पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं। उन्हींके अंशावतार, कलावतार तथा आवेशावतार आदि होते हैं। कृष्ण किसीके अंश-कला नहीं हैं—'**एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**'—इस प्रथमस्कन्धीय भागवतवचनसे सिद्ध है।

उनका अवतार विश्वविश्रुता मथुरापुरीमें कंसासुरके कारागारमें देवकी-वसुदेवजीके समक्ष हुआ है। देवकी-वसुदेवने तप करके भगवत्प्रसादसे उनके समान ही पुत्रकी इच्छा की थी। अतः चतुर्भुजरूपसे प्रकट हुए तथा द्रोण-वसुन्धराने तपकर पुत्रीभूत हरिका प्रेमसे लाड़-प्यार करनेका वरदान माँगा था। दोनोंको प्रसन्न करनेके लिये '**द्विभुजोऽपि चतुर्भुजः**' योगेश्वर कृष्णने देवकी-वसुदेवकी इच्छानुसार विश्वासके लिये दोनों रूप दिखाये। 'एकान्तमें गर्गाचार्यको भेजकर नामकरण-संस्कार कराना' इसका परिचायक है। ग्यारह वर्षतक अपने प्रकाशको छिपाकर बलदाऊजीके साथ नन्दके घर रहे थे—'**गूढार्चिः सबलोऽवसत्**' (भागवत)। जब अक्रूरजीको भेजकर कंसने उनको धनुर्याग-दर्शनके व्याजसे बुलाया, तब उन्होंने मथुरामें पदार्पण करते ही चमत्कारिक लीलाएँ दिखाकर सभी मथुरावासियोंको वशीभूत कर लिया। मथुरा जाते समय गोपियोंका विलाप तथा उद्धवजीको नन्दगाँव भेजकर सान्त्वना देना इसका द्योतक है कि कृष्ण एक ही थे। यदि गोकुलनाथ पृथक् कृष्ण होते तो ऐसा रुदन-भ्रमरगीत व्यर्थ ही है।

इस प्रकार व्रजमें माधुर्य-लीला करके व्रजवासियोंका निरोध किया; क्योंकि बिना भगवन्निष्ठाके भगवत्प्राप्ति दुर्लभ ही है। उनकी प्राप्तिमें मद-मान बाधक होते हैं। रसिकशिरोमणि रासविहारी गोपालने गोपियोंके मद एवं प्रियाजीके मानको दूर करनेके लिये ही स्वरूपको तिरोहित किया था। अर्थात् उन्हींके हृदय-कमलमें अन्तर्हित हो गये थे। गोपियोंने उन्हें सम्पूर्ण वनोंमें ढूँढ़ा, गुल्म-लताओंसे पूछा, कहीं उत्तर न मिलनेपर हताश होकर यमुना-पुलिनपर बैठकर श्यामसुन्दरको पुकारती हुई गीत गाने लगीं—

न खलु गोपिकानन्दनो भवा-
नखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये
सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

(श्रीमद्भा० १०। ३१। ४)

—गोपियोंकी इस उक्तिसे भी प्रमाणित होता है कि कृष्णने यादवकुलमें '**वसुदेवगृहे साक्षादवतीर्णः स्वमायया**' स्वेच्छया या स्वजनेच्छया अवतार लिया है। यशोदाजीको तो पुत्री हुई थी, जिसको लेकर वसुदेवजी मथुरा चले गये। वहाँ कंसके हाथसे उछलकर आकाशमें जाकर कंससे कह दिया—'मुझे मारनेसे क्या? तेरा मारनेवाला कहीं और स्थित है।' केशी दैत्यके वधके पश्चात् नारदजीने भी कंसको सूचित कर दिया था—'**द्वाभ्यां ते पुरुषा हताः**' व्रजमें जहाँ-जहाँ तुमने अपने दैत्य-दानव भेजे थे, वे सभी कृष्ण-कन्हैया और दाऊ भैयाद्वारा लीलामें ही मार डाले गये। यह सुन क्रोधाविष्ट कंसने देवकी-वसुदेवको मारनेके लिये शस्त्र उठाया तो नारदने उसे रोक दिया था, तब उसने वसुदेव-देवकीको कैद कर दिया। इसके बाद कुरुक्षेत्रमें आगन्तुक ऋषि-मुनियोंसे वसुदेवजीने कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेका उपाय पूछा तो नारदजीने उनको मायामोहित जानकर कृष्णके सत्य-स्वरूपका परिचय दिया था। उनके उपदेशसे वसुदेव-

देवकीका मोह दूर हुआ। इस प्रकारकी बहुविध कृष्णलीलाएँ निरन्तर चिन्तनीय तो हैं, लेकिन अनुकरणीय नहीं।

धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अग्र-पूजाके पात्र-चयनके अवसरपर सहदेवने '**एष वै देवताः सर्वाः**' इत्यादि वचनोंसे कृष्णको सर्वोच्च बताया तथा सभी सभासदोंने सहर्ष अनुमोदन किया। इस चरित्रसे भी कृष्णकी महत्ता प्रतीत होती है। असहिष्णु शिशुपालका वध भी वहीं हुआ था। '**मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम्**'—इस उक्तिसे यह भी स्पष्ट है कि सभी राजाओंका मान-मर्दन करनेके लिये ही उन्होंने रुक्मिणी-हरणादि लीलाएँ की हैं। द्वारकामें ऐश्वर्य-लीलाओंके द्वारा सभीको यह दिखा दिया कि पूर्णपुरुषोत्तम कृष्णके सिवाय कोई परम देवता नहीं है। उनकी लीलाका मुख्य प्रयोजन है—शिष्टोंपर अनुग्रह और दुष्टोंका निग्रहकर आत्मनिष्ठ बनाकर संसारसे मुक्त कर देना।

यद्यपि भगवान् समदर्शी हैं, तथापि निग्रह-अनुग्रहरूप परस्पर विरुद्ध कार्य करनेसे उनमें विषमता-निर्दयता आदि दोष नहीं हैं। दुष्टोंका निग्रह किये बिना वैदिक सद्धर्म-मर्यादाकी तथा देव, द्विज, गौ और साधु-संतोंकी रक्षा असम्भव है। दुष्टोंको दण्ड देना भी अनुग्रह है।

सर्वजनोद्धारक श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं। प्रधानतया श्रीभागवतमें महामुनीन्द्र श्रीशुकदेवजीने उनकी लीलाका वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसी रसीली लीलाएँ अन्यत्र उपलब्ध नहीं हैं, तभी तो श्रीधर स्वामीने अपनी अद्वितीय टीकामें कह दिया कि—'**वर्वर्ति सर्वोपरि।**'

पार्वती-पटलमें श्रीसदाशिवजीने पार्वतीके प्रति दिव्य श्रीकृष्ण-लीलासे परिपूर्ण होनेके कारण ही भागवत-माहात्म्यके सम्बन्धमें कहा कि—

यदि न स्याद् भागवतं कलौ सर्वमलाकुले।
तदा गतिः कथं नृणां सत्यं सत्यं मयोदितम्॥

अर्थात् सभी दोषोंसे परिपूर्ण कलिकालमें यदि श्रीमद्भागवत न हो तो मानवोंका कल्याण कैसे होगा, मैं सत्य-सत्य कहता हूँ कि भागवतके श्रवण-कीर्तन-मनन करनेसे मनुष्यका मोक्ष हो जाता है। इन माहात्म्यपूर्ण वचनोंसे यह सर्वविध सिद्ध है कि स्वजनोंके उद्धारार्थ ही लीला है। उनकी महिमा अपार है। गागरमें सागर नहीं समाता, अतः यहीं उपराम करते हैं।

भगवान् ब्रह्मा

'मैं कहाँ हूँ?' प्रलयाब्धिके मध्य एक सुमहत् प्रकाशमय अरुण कमल खिला था। उसकी कर्णिकापर एक पद्मके ही रंगका बालक बैठा था। बालकने चारों ओर देखनेकी इच्छा की और वह चतुर्मुख हो गया। वहाँ उस कमल और समुद्रको छोड़कर कुछ नहीं था। तेजःपुञ्ज पद्मके अतिरिक्त दिशाएँ अन्धकारमय थीं। बालकने कमलनालमें प्रवेश किया। कमलमूल जाननेकी उत्कण्ठा थी।

सहस्त्रों वर्ष कमलनालमें नीचे जानेपर भी जब उसका अन्त न मिला, तब ब्रह्माजी लौट आये। सहसा अलक्ष्यवाणीने उन्हें 'तप! तप! तप!'—तपस्याका आदेश दिया। युगोंके तपके पश्चात् हृदयमें ही उन्होंने उस कमलनाभके दर्शन किये, जो सहस्त्रफणमौलि हिमश्वेत शेषकी शय्यापर सोये हुए कृपापूर्वक उनकी ओर देख रहे थे।

'सृष्टि तो बढ़ती ही नहीं।' ब्रह्माजीकी स्वाभाविक रुचि सृष्टिकर्ममें थी। वे बराबर अपने मनसे मानसिक सृष्टि कर रहे थे। मानसिक सृष्टिके प्राणी कल्पान्त अमर तो हो गये, पर उनकी प्रवृत्ति सृष्टिमें तबतक न हुई। अन्तमें स्वयं स्त्रष्टाने अपने दाहिने भागसे मनु और वाम भागसे शतरूपाको प्रकट किया। यह जोड़ी सृष्टि बढ़ानेमें प्रवृत्त हुई। मनुकी कन्या देवहूति महर्षि कर्दमको विवाही गयीं। इस प्रकार मानसिक सृष्टिका भी सहयोग क्रमशः मिला।

भगवान् ब्रह्मा असुरोंके उपास्य रहे हैं। सृष्टिकर्ममें लगे रहनेसे वे बहुत कठोर तप करनेपर ही तुष्ट होते हैं। इन्द्र और विरोचनने उन्हींसे तत्त्वज्ञान प्राप्त किया। सृष्टिमें सामञ्जस्य बनाये रखनेके लिये, असुरोंसे पराजित देवताओंकी रक्षाके लिये बार-बार उन्हें क्षीरसागरशायी प्रभुसे प्रार्थना करनी पड़ी है। पृथु या विश्वामित्रकी भाँति कोई समर्थ जब सृष्टिमें व्यतिक्रम करने लगता है, तब भी उसे समझानेके लिये उन्हें आना पड़ता है। वे हंसवाहन प्रभु नित्य ही जगत्के प्रति सचिन्त रहते हैं। उनके चरित पुराणोंमें बहुत अधिक हैं। समस्त कार्योत्पादनके वे ही अधिष्ठाता हैं।

भगवल्लीलाका तत्त्व

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

कर्म, क्रिया और लीला—तीनों एक दीखते हुए भी वास्तवमें सर्वथा भिन्न हैं। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक किया जाय तथा अनुकूल-प्रतिकूल फल देनेवाला हो, वह 'कर्म' होता है। जो कर्तृत्वाभिमानपूर्वक न की जाय तथा जो फल देनेवाली भी न हो, वह 'क्रिया' होती है; जैसे—श्वासोंका चलना, आँखोंका खुलना और बंद होना आदि। जो क्रिया कर्तृत्वाभिमान तथा फलेच्छासे रहित तो होती ही है, साथ-साथ दिव्य तथा दुनियामात्रका हित करनेवाली भी होती है, वह 'लीला' होती है। सांसारिक लोगोंके द्वारा 'कर्म' होता है, मुक्त पुरुषोंके द्वारा 'क्रिया' होती है और भगवान्‌के द्वारा 'लीला' होती है—

'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

'ईश्वरका सृष्टिरचना आदि कार्य लोकमें तत्त्वज्ञ महापुरुषोंकी तरह केवल लीलामात्र है।'

भगवान्‌की छोटी-से-छोटी तथा बड़ी-से-बड़ी प्रत्येक क्रिया 'लीला' होती है। लीलामें भगवान् सामान्य मनुष्यों-जैसी क्रिया करते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं*। भगवान्‌की लीला दिव्य होती है—**'जन्म कर्म च मे दिव्यम्'** (गीता ४। ९)। यह दिव्यता देवताओंकी दिव्यतासे भी विलक्षण होती है। देवताओंकी दिव्यता मनुष्योंकी अपेक्षासे होनेके कारण सापेक्ष और सीमित होती है, पर भगवान्‌की दिव्यता निरपेक्ष और असीम होती है। यद्यपि जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, भगवत्प्रेमी महापुरुषोंकी क्रियाएँ भी दिव्य होती हैं, तथापि वे भी भगवल्लीलाके समान नहीं होतीं। भगवान्‌की साधारण लौकिक लीला भी अत्यन्त अलौकिक होती है। जैसे, भगवान्‌की रासलीला लौकिक दीखती है, पर उसको पढ़ने-सुननेसे साधककी कामवृत्तिका नाश हो जाता है†!

यह जगत् भगवान्‌का आदि अवतार है—**'आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य'** (श्रीमद्भा० २। ६। ४१)। तात्पर्य है कि भगवान् ही जगत्-रूपसे प्रकट हुए हैं। परंतु जीवने भोगासक्तिके कारण जगत्‌को भगवद्रूपसे स्वीकार न करके नाशवान् जगत्-रूपसे ही धारण कर रखा है—**'जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७। ५)। इस धारणाको मिटानेके लिये साधकको दृढ़तासे ऐसा मानना चाहिये कि जो दीख रहा है, वह भगवान्‌का स्वरूप है और जो हो रहा है, वह भगवान्‌की लीला है। ऐसा मानने (स्वीकार करने)-पर जगत् जगत्-रूपसे नहीं रहेगा और 'भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है'—इसका अनुभव हो जायगा। दूसरे शब्दोंमें, संसार लुप्त हो जायगा और केवल भगवान् रह जायँगे। कारण कि प्रत्येक वस्तु एवं व्यक्तिको भगवान्‌का स्वरूप और प्रत्येक क्रियाको भगवल्लीला माननेसे भोगासक्ति, राग-द्वेष नहीं रहेंगे। भोगासक्तिका नाश होनेपर जो क्रियाएँ पहले लौकिक दीखती थीं, वही क्रियाएँ अलौकिक भगवल्लीला-रूपसे दीखने लगेंगी और जहाँ पहले भोगासक्ति थी, वहाँ भगवत्प्रेम हो जायगा।

साधकको ऐसा मानना चाहिये कि भगवान् जैसा रूप

---

*तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्॥ (गीता ४। १३)

'उस (सृष्टि-रचना आदि)-का कर्ता होनेपर भी मुझ अव्यय परमेश्वरको तू अकर्ता जान।'

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। (गीता ४। १४)

'कर्मोंके फलमें मेरी स्पृहा नहीं है, इसलिये मुझे कर्म लिप्त नहीं करते।'

†विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥ (श्रीमद्भा० १०। ३३। ४०)

'परीक्षित्! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास-विलासका श्रद्धाके साथ बार-बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान्‌के चरणोंमें पराभक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका काम-भाव सदाके लिये नष्ट हो जाता है।'

धारण करते हैं, उसीके अनुरूप लीला करते हैं*। जब वे अर्चावतार अर्थात् मूर्तिका रूप धारण करते हैं, तब वे मूर्तिकी तरह ही अचल रहनेकी लीला करते हैं। अगर वे अचल नहीं रहेंगे तो वह अर्चावतार कैसे रहेगा? भगवान्‌ने राम, कृष्ण आदि रूप भी धारण किये और मत्स्य, कच्छप, वराह आदि रूप भी धारण किये। उन्होंने जैसा रूप धारण किया, वैसी ही लीला की। जैसे, वराहावतारमें भगवान्‌ने सूअर बनकर लीला की और वामनावतारमें ब्रह्मचारी ब्राह्मण बनकर लीला की।

भगवल्लीलाको पढ़ने-सुननेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, संसारकी आसक्ति मिटती है और भगवान्‌में प्रेम होता है। ज्ञानस्वरूप भगवान् शंकर, ब्रह्माजी, सनकादिक ऋषि, देवर्षि नारद आदि भी भगवान्‌की लीलाओंको गाकर और सुनकर प्रेममग्न हो जाते हैं। भगवान् अवतार लेकर जिन स्थानोंमें लीलाएँ करते हैं, वे स्थान भी इतने पवित्र हो जाते हैं कि उनमें श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निवास करनेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। इसका कारण यह है कि भगवान् मात्र जीवोंका कल्याण करनेके उद्देश्यसे ही अवतार लेकर लीलाएँ करते हैं—'**नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।**' (श्रीमद्भा० १०। २९। १४)

श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव

(श्रीगोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

अलख-निरञ्जन स्वसंवेद्य श्रीनाथ दैवत शिवगोरक्षका लीला-वैभव अनिर्वचनीय और उन्हींकी सिसृक्षा-शक्ति आदिमहामाया-कल्पित किंवा सृजित होकर भी नितान्त अमायिक है—निरञ्जन है। श्रीनाथ एक मात्र सच्चिदानन्दस्वरूप शिवकी तरह स्वसंवेद्य, अखण्ड, नित्यसनातन हैं और इसी प्रकार इनकी स्वरूपाभिव्यक्ति, लीला-स्वरूपता भी नित्य-नवीन स्वसंवेद्य, अखण्ड-निरञ्जन, अञ्जनातीत-मायातीत-निर्मल, शुद्धस्वरूपिणी है। नाथ-सम्प्रदायके ही नहीं समस्त चराचरके परम उपास्य अलख-निरञ्जन आदिनाथ, विश्वातीत सदाशिव हैं। वे उत्पत्ति-स्थिति और संहार-लयके मूल अधिष्ठान हैं। वे जगदानन्द-हेतु परिपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर हैं।

'श्रीनाथ दैवत ही स्वसंवेद्य अलख-निरञ्जन शिवगोरक्ष हैं।' ऐसी स्थितिमें श्रीनाथ दैवत शिवगोरक्षकी लीलासम्पत्तिमें तिलमात्र भी भेद नहीं है—सम्पूर्ण सामंजस्य किंवा सच्चिदानन्दायित, मायातीत स्वरूपायित लीला-चैतन्याभिव्यक्ति है।

श्रीनाथ दैवत (शिवगोरक्ष)-का अचिन्त्य लीला-वैभव उनके अनिर्वचनीय तात्त्विक स्वरूप-श्रीनाथस्वरूपके विमर्श-निर्वचनमें ही परिव्याप्त है और उनकी सिसृक्षा-शक्ति—उनके विश्वव्यापक विष्णु-रूपमें ही यह अमायिक निरञ्जन नित्य-निरन्तर लीलातत्त्व अनुस्यूत है। श्रीनाथस्वरूपके निर्वचनमें यही युक्तियुक्त है—

अवाच्यमुच्येत कथं पदं तत्
अचिन्त्यमप्यस्ति कथं विचिन्तयेत्।

---

*भगवान् श्रीकृष्ण उत्तङ्क ऋषिसे कहते हैं—

धर्मसंरक्षणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
तैस्तैर्वेषैश्च रूपैश्च त्रिषु लोकेषु भार्गव। (महाभारत, आश्व० ५४। १३-१४)

'मैं धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये तीनों लोकोंमें बहुत-सी योनियोंमें अवतार धारण करके उन-उन रूपों और वेषोंद्वारा तदनुरूप बर्ताव करता हूँ।'

यदा त्वहं देवयोनौ वर्तामि भृगुनन्दन। तदाहं देववत् सर्वमाचरामि न संशयः॥
यदा गन्धर्वयोनौ वा वर्तामि भृगुनन्दन। तदा गन्धर्ववत् सर्वमाचरामि न संशयः॥
नागयोनौ यदा चैव तदा वर्तामि नागवत्। यक्षराक्षसयोन्योस्तु यथावद् विचराम्यहम्॥

(महा०, आश्व० ५४। १७—१९)

'भृगुनन्दन! जब मैं देवयोनिमें अवतार लेता हूँ, तब देवताओंकी ही भाँति सारे आचार-विचारका पालन करता हूँ, इसमें संशय नहीं है।'

'जब मैं गन्धर्वयोनिमें प्रकट होता हूँ, तब मेरे सारे आचार-विचार गन्धर्वोंके ही समान होते हैं, इसमें संदेह नहीं है।'

'जब मैं नागयोनिमें जन्म ग्रहण करता हूँ, तब नागोंकी तरह बर्ताव करता हूँ। यक्षों और राक्षसोंकी योनियोंमें प्रकट होनेपर मैं उन्हींके आचार-विचारका यथावत् रूपसे पालन करता हूँ।'

अतो यदस्त्येव तदस्ति तस्मै
नमोऽस्तु कस्मै बत नाथतेजसे॥

(गोरक्षसिद्धान्तसंग्रह)

जो पद अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन किस प्रकार किया जा सकता है, अचिन्त्यका चिन्तन किस तरह किया जाय, इसलिये जो है वह ऐसा ही है, मेरा तो उस नाथतेज (दैवत)-को नमस्कार है।

श्रीनाथस्वरूप परब्रह्मतत्त्व है, यह निर्मल, निश्चल, नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण महत्तत्त्व है, यह निर्मल व्योमविज्ञानरूप आनन्दब्रह्म है, इस तरह ब्रह्मज्ञ इसका निर्वचन करते हैं। स्वतः शिवगोरक्षका स्वरूप इसका निर्णय है—

निर्मलं निश्चलं नित्यं निष्क्रियं निर्गुणं महत्।
व्योमविज्ञानमानन्दं ब्रह्म ब्रह्मविदो विदुः॥

(गोरक्षपद्धति २। ९३)

शिव (शक्तिमान्) और शक्तिके लीलायित तत्त्वके साथ त्रिदेवक्रममें लीला-व्याप्ति-हेतु सदाशिवसे ईश्वर, ईश्वरसे रुद्र, रुद्रसे विष्णु, विष्णुसे ब्रह्माका रूप निर्वचित है। इनके द्वारा सृजन, नियमन (रक्षण) और संहरणकी लीला चलती रहती है—**सदाशिवात् ईश्वरः, ईश्वराद् रुद्रः, 'रुद्राद् विष्णुः विष्णोर्ब्रह्मेति।** (सिद्धसिद्धान्तपद्धति १। ३७)

त्रिदेव-शक्तिके लीलानुक्रमका बड़ा ही सूक्ष्म निरूपण गोरक्षसिद्धान्त-संग्रहके प्रारम्भिक दो श्लोकों (मङ्गलाचरण)-में मिलता है, जिनसे नाथ दैवतके लीला-वैभवपर सहज प्रकाश पड़ता है। इसमें श्रीनाथस्वरूपके निर्वचनमें श्रीनाथ दैवत और उनका सम्पूर्ण लीला-वैभव अभिव्यक्त है—

निर्गुणं वामभागे च सव्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै नाथाय ते नमः॥
मध्ये नाथः परंज्योतिस्तज्ज्योतिर्मे तमोहरम्।
वामभागे स्थितः शम्भुः सव्ये विष्णुस्तथैव च॥

जिनकी बायीं ओर निर्गुणस्वरूप ब्रह्म और दायीं ओर अद्भुत निजा शक्ति—इच्छा-शक्ति पराम्बा महामाया विद्यमान हैं और बीचमें जो स्वयं पूर्ण अखण्ड (परमशिव) सर्वाधार, अलख-निरञ्जन विद्यमान हैं, उन श्रीनाथ-आदिनाथ परमेश्वरको नमस्कार है। जिनकी बायीं ओर कल्याणस्वरूप शिव और दायीं ओर विश्वरूप-विश्वव्यापक परमेश्वर विष्णु विराजमान हैं और मध्यभागमें परम ज्योतिः-स्वरूप श्रीनाथ ही विद्यमान हैं, यही श्रीनाथ-स्वरूप अखण्ड ज्योति हमारे हृदयस्थित (अज्ञान) अन्धकारका नाश करती है। श्रीनाथस्वरूपलीला-वैभवका कर्तृत्व शक्तिमान् शिव और शिवस्वरूपिणी सिसृक्षा-शक्ति, स्वाश्रित चैतन्य निरञ्जनके निर्गुण-निर्विकार-निराकार परमात्मतत्त्वके लीलाविलासका पर्याय है।

परमात्मा अमायिक निराकार और निष्कल परब्रह्म अलख-निरञ्जन है, वह अञ्जन (माया)-में अथवा दृश्य-प्रपञ्चमें उसी तरह अप्रकट है, जिस तरह तिलमें तेल अप्रकट रहता है। जिस तरह तिल पेरनेसे तेलकी प्राप्ति हो जाती है, उसी तरह अञ्जनमें योग-ज्ञानके प्रकाशमें मैंने निरञ्जन ब्रह्मका साक्षात्कार-लीलादर्शन कर लिया है। मैंने साकारमें निराकारका, मूर्तमें अमूर्त परमात्माका स्पर्श (अनुभव) कर लिया है। यह निगूढ लीला (खेल) सनातन है। सच्चिदानन्द-स्वरूप अलख ब्रह्म ही सर्वत्र अभिव्यक्त है। मेरे द्वारा शून्यमें जो नहीं कहा गया है तथा जिस अखिलब्रह्माण्डनायक परब्रह्म अलख-निरञ्जनका दर्शन किया गया है, वह स्वसंवेद्य तत्त्व है। इसलिये शब्दके माध्यमसे उसके स्वरूप-निरूपणमें तथा अनुभूतिमें किसीको विश्वास नहीं होगा। पर वह सत्य है—निरालम्ब-निराधार निरञ्जन और शून्य है। शून्य-स्वरूप परब्रह्मका साक्षात्कार ही कैवल्य-पदकी प्राप्ति है। उसमें तादात्म्य-लाभ कर मेरा द्वैतभाव मिट गया है।

द्वैताद्वैतविलक्षण अप्रत्यक्ष स्वसंवेद्य निरञ्जनीय लीलाके समान ही प्रत्यक्ष बहिरङ्ग-लीला भी श्रीनाथ दैवतके परिप्रेक्ष्यमें अप्रत्यक्ष स्वसंवेद्य निरञ्जनीय है। **'एकमेवाद्वितीयम्'** उसकी यथार्थता किंवा सार्थकता है।

भक्तानुरक्त होकर श्रीनाथ दैवत लीलावैभव-प्रसृत है। शिवसंहितामें कहा गया है—

भक्तानुरक्तोऽहं वक्ष्ये योगानुशासनम्।

(शिवसंहिता १। २)

भक्त—जीवमात्रके प्रति अनुराग (अनुरक्ति) ही भगवल्लीला-वैभवके प्राकट्यका मुख्य हेतु है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

पोषणं तदनुग्रहः।

(श्रीमद्भा० २। १०। ४)

यह भगवदनुग्रह ही श्रीनाथ दैवत लीला-वैभवमें अप्रत्यक्ष-

प्रत्यक्ष-विलक्षण स्वसंवेद्य मायातीत निरञ्जन-स्वरूप प्रकट-अभिव्यक्त है। नाथ दैवत-लीला-वैभव-कर्तृत्वमें परमेश्वर शिव, उनकी आद्या तत्स्वरूपिणी सिसृक्षाशक्ति महामाया और विश्वव्यापक विष्णुका वृत्तान्त अनुभवगम्य होता है। आदिनाथ शिवने सप्तशृंगपर क्षीरसागरमें जब भगवती महाशक्तिको महायोगज्ञानका उपदेश दिया, तब उस लीलामें मत्स्योदरमें स्थित विष्णुने उसे सुना और शिवने उन्हें अपना सुत 'मत्स्येन्द्रनाथ सिद्धनाथ' स्वीकार किया। श्रीनाथ-तीर्थावलीमें महाराजा जोधपुराधीश्वर मानसिंहने श्रीरुक्मिणीके साथ प्रभास क्षेत्रमें शिवगोरक्षद्वारा रुक्मिणी-कृष्ण-कंकण-बन्धन-सिद्धिकी लीला निरूपित की है और ऐसे ही लीला-परिवेशमें गोरखनाथं शिवावतारने मत्स्येन्द्रनाथकी सद्-गुरुता स्वीकार कर अपने-आपको कृतार्थ किया है।

विश्ववन्द्य शिव ही गोरखनाथ हैं, साक्षात् शिव हैं। वे अगम्य हैं, अगोचर हैं। अनन्तलोकनाथ हैं। इसलिये अनन्त लोक उनकी अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष लीलासे समलंकृत है। परब्रह्म (शिव)-के मानसोल्लास-सृष्टिकी इच्छाके उत्साहमात्रसे (शिवमें ही शयन करनेवाली—लयको प्राप्त होनेवाली) पराशक्ति (जगदीश्वरी गौरी पार्वती) जाग्रत् होती है—अभिव्यक्त होती है। आदिनाथ परम शिवमें पराशक्ति अधिष्ठित है। इस पराशक्तिके स्वाभिव्यक्त परमेश्वर शिवके स्पन्दनमात्रसे अपराशक्ति—(क्रिया-प्रधान) लीलाशक्ति जाग जाती है। यह लीलाशक्ति सृष्टिक्रममें परमेश्वरकी सहायता करती है। इस लीला-शक्तिको इसीकी प्रेरणासे तत्त्वोपदेश देने-हेतु क्षीरसागरमें सप्तशृंगपर व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था ही श्रीनाथ दैवतके लीला-वैभवका एक महनीय उपक्रम है।

नारदपुराणके उत्तरभाग (६९।१७।२३)-में श्रीनाथ दैवतका लीलाङ्कन इस प्रकार है—उपदेशामृत (अमरकथामृत)-का श्रवण करते-करते जब भगवती महामाया पार्वती निद्राभिभूत हो गयीं, तब मत्स्यके उदरसे निकलकर मत्स्येन्द्र-स्वरूप विष्णुने उसका श्रवण किया। उन्होंने शिव-पार्वतीको नमस्कार कर समस्त लीला-वृत्तान्त—महायोगज्ञान निरूपित कर दिया। शिवने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर उनका मुख चूमा और अपना पुत्र 'सिद्धनाथ मत्स्येन्द्रनाथ' कहा।

इसी निरञ्जनीय श्रीनाथ दैवत-लीलावैभवका महत्त्वाङ्कन हठयोग-प्रदीपिका (१।५)-की ज्योत्स्ना टीकामें ब्रह्मानन्दने इस प्रकार प्रकट किया है—

आदिनाथ शिव ही समस्त नाथोंमें आदिनाथ हैं। नाथसम्प्रदायी कहते हैं कि इन्हीं नाथसे नाथसम्प्रदाय प्रवर्तित है। मत्स्येन्द्र आदिनाथके शिष्य हैं। किंवदन्ती है कि एक बार आदिनाथ किसी द्वीपमें स्थित थे। इस स्थानको निर्जन और एकान्त जानकर उन्होंने भगवती गिरिजाको योगज्ञानका उपदेश दिया। तीरके समीप नीरमें स्थित एक मत्स्यने उस उपदेशका श्रवण किया। जो वहाँ एकाग्रचित्त निश्चलकाय होकर स्थित था। उसको उस हालतमें देखकर कृपालु आदिनाथने सोचा कि इसने योगज्ञानका श्रवण कर लिया है, उन्होंने उसपर जल छिड़का, जल छिड़कने मात्रसे वह दिव्यकाय मत्स्येन्द्र सिद्ध हो गया। उन्हीं मत्स्येन्द्र सिद्धको मत्स्येन्द्रनाथ कहा जाता है।

संत योगी ज्ञानेश्वर अपने ज्ञानेश्वरी गीता (भाष्य)-में इसी तथ्यपर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

क्षीरसमुद्रके तटपर श्रीशंकरने न जाने कब एक बार शक्ति पार्वतीके कानमें जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्रकी लहरोंमें किसी मत्स्यके पेटमें गुप्त मत्स्येन्द्रनाथके हाथ लगा। मत्स्येन्द्रनाथ सप्तशृंग-पर्वतपर चौरंगीनाथसे मिले, जिनके हाथ-पैर लूले थे। मिलते ही चौरंगीनाथ पूर्णाङ्ग हो गये। अचल समाधिका उपभोग लेनेकी इच्छासे मत्स्येन्द्रनाथने उपदेश गोरखनाथको दिया। इस तरह उन्होंने योगरूपी कमलिनीके सरोवर-विषयोंको ध्वंस करनेवाले एक ही वीर शंकरके रूपमें उस पदपर अभिषिक्त किया। शंकरसे प्राप्त यह अद्वैतानन्दवैभव गोरखनाथसे गहिनीनाथने ग्रहण किया। वे सब प्राणियोंको कलिकालसे ग्रस्त देखकर दौड़ आये और श्रीनिवृत्तिनाथको यह आज्ञा दी कि आदिगुरु शंकरके शिष्य-परम्परानुसार हमें जो ज्ञाननिधि प्राप्त हुई, उसे लेकर कलिके जीवोंकी रक्षा करो। कदरी (कदली) योगेश्वरमठ (मंगलदीप) मंगलोरकी परम्परा भी अनुश्रुत है कि सह्याद्रिपर्वत-परिसरमें समुद्र-तटपर शंकरने सूक्ष्म शरीर धारणकर पार्वतीको योगज्ञानोपदेश दिया। तो माया-मीन-रूप धारणकर विष्णुने वह अमरकथा सुनी थी और शिवकी वत्सलतासे पुत्ररूपमें स्वीकृत हुए।

इन उपर्युक्त समस्त वृत्तान्तोंसे यही प्रकट होता है कि श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवके निरूपणमें श्रीनाथस्वरूप शिव, उनकी निजा शक्ति पार्वती और विष्णुकीही प्रधानता है—स्पष्ट है कि योगरहस्य-प्राकट्यमें शिवश्रीनाथ ही अभिनयलीलाके

विशिष्ट पात्र हैं। पार्वती अपराशक्तिकी स्वरूप-शक्ति हैं और उपदेश-श्रवण करनेवाले विष्णुने शिव-पार्वतीके पुत्ररूपमें वत्सलता प्राप्त की तथा पुत्ररूप विष्णु शिव-गुरुके रूपमें प्रणम्यतासे विभूषित हो उठे। इस वृत्तान्तका यथार्थ तत्त्व गोरक्ष-शतकके प्रारम्भिक दो श्लोकों—मङ्गलाचरणमें मिलता है। शिवगोरक्षकी गुरुके चरणमें प्रणति है—

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सांनिध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः॥

मैं अपने गुरुदेव (मत्स्येन्द्रनाथ)-की वन्दना करता हूँ जो साक्षात् परमानन्द हैं, जो सच्चिदानन्दस्वरूप-आनन्दविग्रह अथवा मूर्तिमान् आनन्द हैं, जिनके सांनिध्यसे ही यह शरीर चिदानन्द, चिन्मय और परमानन्द हो जाता है।

महाराजा जोधपुराधीश्वर मानसिंह-रचित श्रीनाथतीर्थावलीमें श्रीरुक्मिणी-कृष्ण-कंकण-बन्धन सिद्ध होना श्रीनाथ दैवतका विशिष्ट लीला-दर्शन है। इसमें शिवगोरक्षका महत्त्व निरूपित है। श्रीरुक्मिणी और श्रीकृष्णके विवाहके अवसरपर द्वापर युगमें गोरक्षनाथ (शिव)-ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनको आशीर्वाद प्रदान किया था। मानसिंह महाराजने प्रभास क्षेत्रका वर्णन करते हुए कहा है—

इतः पश्चात्तत्र देशे प्रभासः क्षेत्रमुत्तमम्।
तत्र गोरक्षमठिका नाम धामास्ति पावनम्॥
रुक्मिणीकृष्णयोस्तत्राभूत् पुरा पाणिपीडनम्।
रुक्मिणीरूपलावण्यान्मोहिताः सकलाः सुराः॥
बभूवुः शक्तिरहितास्तस्याः कंकणबन्धने।
तदा देवाः सऋषयः प्रजग्मुर्मिलिताः परे॥
गोरक्षनाथं राजन्तं गुप्तभावेन तत्र तम्।
स्तुवन्तः प्रार्थयामासुर्दर्शनं तस्य शूलिनः॥
स्तुत्या तुष्टो योगीन्द्रस्तेभ्यः संदर्शनं ददौ।
साधितं पाश्रयं तैस्तेन तस्याः कंकणबन्धनम्॥
ततस्तुष्टुवुर्नाथं रुक्मिणीदेवकी सुतौ।
भक्त्या परमया सा तु प्रसिद्धा जगतीतले॥
ततोऽसि तुष्टो योगीन्द्रो वरदानोन्मुखोऽभवत्।
उवाच स वरं वृत्तं युवां यन्मनसीप्सितम्॥
ततस्तौ ववृतुर्नाथं भवानत्रैव तिष्ठतु।
तथास्त्विति वरं दत्त्वा नाथस्तत्रैव तस्थिवान्॥

(श्रीनाथतीर्थावली ३१। ३८)

(रैवतक पर्वतसे) पश्चिम देशमें क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ प्रभास क्षेत्र है। वहाँ गोरखमठिका नामका परम धाम है। वहीं रुक्मिणी और श्रीकृष्णजीका परिणय (विवाह) हुआ था। श्रीरुक्मिणीजीके रूपलावण्यसे देवता मोहित हो गये और उनके कंकण-बन्धनमें असमर्थ हो गये। तब ऋषियों तथा अन्य लोगोंने वहाँ विराजमान गोरक्षनाथकी स्तुति की कि आप दर्शन दीजिये। स्तुतिसे संतुष्ट होकर योगीन्द्र गोरक्षनाथने उन लोगोंको दर्शन दिया। उनकी प्रार्थनासे कंकण-बन्धन सिद्ध हुआ। उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण और रुक्मिणीजीने परमभक्तिसे उनकी स्तुति की; जो संसारमें प्रसिद्ध है। गोरक्षनाथ योगीन्द्रने स्तुतिसे प्रसन्न होकर वर माँगनेको कहा। दोनोंने निवेदन किया कि हे नाथ! आप यहीं निवास कीजिये। नाथजीने 'तथास्तु' कहा और प्रतिष्ठित हो गये।

इसी लीलानुक्रममें यह भी स्मरणीय है कि श्रीकल्पद्रुम तन्त्र श्रीकृष्ण और महर्षि गर्गके संवादके रूपमें प्रसिद्ध है। गर्गाचार्यने श्रीकृष्णको गोरक्षोपासनाका उपदेश दिया था। इसमें वर्णन आता है—

विना गोरक्षमन्त्रेण योगसिद्धिर्न जायते।

उसमें श्रीनाथ दैवत गोरक्षनाथके ध्यान आदिपर प्रकाश डाला गया है।

समस्त श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभव साक्षात् श्रीनाथस्वरूप आदिनाथ अलख-निरञ्जन शिवका ही स्वसंवेद्य साक्षात्कार है—

देदीप्यमानस्तत्त्वस्य कर्ता साक्षात् स्वयं शिवः।

(सिद्धसिद्धान्तपद्धति)

यह निर्विवाद है—

एकः सत्तापूरितानन्दरूपः
पूर्णो व्यापी वर्तते नास्ति किंचित्।
एतज्ज्ञानं यः करोत्येव नित्यं
मुक्तः स स्यान्मृत्युसंसारदुःखात्॥

(शिवसंहिता १। ९५)

श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवकी यही सार्थकता है कि एक सत्तासे पूर्ण यह आत्मा ही सर्वत्र आनन्दस्वरूप विद्यमान है, उससे भिन्न कोई नहीं है, जिसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर उसीमें चित्त रमा लिया, वही पुरुष जन्म-मरणरूपी संसार-बन्धनसे मुक्त हो गया। यही श्रीनाथ दैवत-लीला-वैभवसे श्रीनाथस्वरूपकी प्राप्ति है।

भगवल्लीला-रहस्य

(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी)

उस अनन्तका अन्त कौन जान सकता है, अवाङ्मन-सगोचरका वर्णन कैसे किया जा सकता है और निर्गुण-निराकार, निर्विकार ब्रह्मको सर्वसुलभ सगुण-साकार कैसे बनाया जा सकता है?

यह अद्भुत पहेली अज्ञात-अनबूझी ही बनी रहती, ये सभी प्रश्न अनुत्तरित ही बने रहते, यदि शास्त्रों और आचार्योंके द्वारा भगवल्लीला-रहस्यका विधिवत् समाधान न किया गया होता।

भगवल्लीलाकी गरिमा, महिमा, सत्ता, महत्ता, उपयोगिता और आवश्यकताको उजागर करनेके लिये ही आचार्योंने उस कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं सक्षम, समर्थ, सर्वाधिष्ठान, सर्वशक्तिमान्, स्वयंप्रकाशमान, अखण्ड, अनन्त, सदा एकरस रहनेवाले ब्रह्मको **'अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपञ्चं प्रपंच्यते-'** के सिद्धान्तद्वारा लोक-लीलाओंका स्वाँग करते हुए दिखाकर सबके लिये गति, मति, भक्ति और मुक्तिका मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसीको वेदान्तसूत्रोंमें **'लोकवत्तु लीला-कैवल्यम्'** (वेदान्तदर्शन २। १। ३३) कहकर प्रदर्शित किया गया है।

शास्त्रोंमें भक्ति, मुक्ति, शान्ति, रति और विरति (निर्वेद)—इन सबके स्फुरण और जागरणका मूल कारण भगवल्लीलाओंको ही माना गया है। इसीलिये अद्वैतवादी भगवान् शंकराचार्यने भी भगवल्लीलाओंकी सतत सार्थकताको स्वीकार करते हुए कहा है—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते।'

जैसे अपार जलराशिवाला सिंधु बिंदु बन करके ही लोगोंकी पिपासा शान्त करता है, जैसे सर्वव्यापी महाकाश घटाकाश या मठाकाश बन करके ही लोगोंको सुख-सुविधाएँ प्रदान करता है, वैसे ही सर्वव्यापी, सर्वाधार, अनादि, अनन्त, शुद्ध-बुद्ध ब्रह्म अपनी अघटितघटनापटीयसी मायाशक्तिके द्वारा लोकलीलाएँ करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी पुरुषार्थ-चतुष्टयकी उपलब्धि बड़ी ही सरलता, सरसता और सुगमतासे सबको सुलभ करा देता है। यथा—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥
(रा० च० मा० १। ३१४। १)

अजका जन्म लेना, अव्यक्तका व्यक्तीकरण और निर्गुण-निराकारका सगुण-साकार विग्रह धारण करना—ये ही सब भगवल्लीलाके ऐसे चमत्कार हैं, जिन्हें गीतादि अध्यात्म-ग्रन्थों और पुराणोंमें अनेक प्रकारसे दिखाया गया है। साधारण जनोंकी कौन कहे, बड़े-बड़े विद्वानोंको भी ये भगवल्लीलाएँ चकित, विस्मित कर देती हैं। गीतामें कहा गया है कि—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
(२। २९)

ये भगवल्लीलाएँ नास्तिकको आस्तिक, भोगीको योगी, स्वार्थीको परमार्थी, कृपणको उदार और नीरसको सरस बनाकर मानव-जीवनके चरम लक्ष्यका भी बोध कराती हैं। इसीलिये भगवान्‌की इन लीलाओंका मुख्य हेतु उनकी कृपा ही माना जाता है—**'मुख्यं तस्य हि कारुण्यम्।'**

भक्तोंको इन भगवल्लीलाओंका रसास्वादन, समास्वादन करानेके उद्देश्यसे लीलाओंमें माधुर्यभावकी प्रधानता रहती है। ऐश्वर्यादिभाव गौण होकर समयानुसार यदा-कदा विशेष अवसरोंपर ही प्रकट होते हैं।

खेल खेलते समय खेलमें हार जानेपर एक राजकुमारको चोर बनकर दण्ड भुगतना पड़ा। वहींपर खड़े किसी भावुक महानुभावने दयार्द्र होकर राजकुमारसे अपने राजकीय अधिकारोंका प्रयोग करनेके लिये कहा। राजकुमारने बड़े ही विनम्र स्वरमें उत्तर दिया—'भैया, राजपुत्र होनेके कारण यदि मैं इस खेलमें अपने राजकीय अधिकारोंका प्रयोग करूँ तब तो इस क्रीडा—लीलाका माधुर्य ही समाप्त हो जायगा। मुझे इस चोर-क्रीडा-लीलामें दण्ड मिलनेसे जो आनन्द आ रहा है, वह राजकुमार और उसके राजकीय अधिकारोंकी गरिमासे कई गुना अधिक है।' किंतु इस लौकिक क्रीडा-लीलासे भी कई गुना अधिक मीठा और आनन्दप्रद होता

है वह भगवल्लीला-रहस्यका रसास्वादन।

भगवल्लीलाओंका श्रवण, मनन, निदिध्यासन और दर्शन, इसके साथ ही भगवल्लीलाओंकी साधना, आराधना और उपासना करनेसे लोगोंमें एक नयी शिक्षा, नयी दीक्षा, नया उपदेश, नया संदेश, नयी स्फुरणा, नयी प्रेरणा और नयी चेतनाकी जागृति होती है।

भगवल्लीलाओंका सौन्दर्य-माधुर्य इतना अधिक है कि उस आनन्दका अनुभव बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र, आप्तकाम, पूर्णकाम, परमनिष्काम सनकादि, शुकादिक एवं नारदादिकोंके लिये भी दुर्लभ बताया गया है। जो सुख-सौभाग्य इन्द्रादिक, ब्रह्मादिक और सर्वप्रकारके अर्थ-अधिकारोंसे समन्वित देवताओंको भी सरलतासे सुलभ नहीं हो पाता, वह सुख, वह आनन्द भगवान्‌की लीलामाधुरीका भक्तिभावसे रसास्वादन, समास्वादन करनेवाले भावुक भक्तोंको अति सुगमतासे अनुभूत होता है। तभी तो रसखान-जैसे भक्त आठों सिद्धियों और नवों निधियोंका परित्याग करके भी भगवल्लीलाएँ देखनेकी प्रबलतम इच्छा प्रकट करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका व्रजाङ्गनाओं, गोपाङ्गनाओंपर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि अब वह अपने कानोंसे कृष्णलीला-चर्चाके अतिरिक्त कुछ सुनना ही नहीं चाहतीं, वे अब अपनी आँखोंसे कृष्णलीलाके अतिरिक्त और कुछ देखना ही नहीं चाहतीं। लोगोंके द्वारा कुलटा, कुलमर्यादा-विघातिका आदि कही जानेपर भी वे कृष्णलीलाओंसे तदाकार होकर निर्भीकतापूर्वक ललकार कर कहती हैं—

कोऊ कहै कुलटा कुलीन-अकुलीन कोऊ,
रीति-नीति जगसे बनाये सब न्यारी हों।
गौर वर्ण अपनो ही तनिको न नीको लगै,
अंग-अंग रोम-रोम श्याम रंग धारी हों॥
नेति-नेति वेद नित जिसका गायन करें,
उसके ही चरणोंमें तन-मन वारी हों।
हौं तो हम निपट लबारी और गँवारी किंतु,
केसवकी लीलाओंपर सर्बस हारी हों॥

वेदकी ऋचाओं, उपनिषदोंके मन्त्रों, वेदान्तके सूत्रों, इतिहास-पुराणोंके आख्यानों तथा काव्यग्रन्थोंके सुमधुर गीतोंद्वारा भगवल्लीलाके गुह्यतम रहस्योंका अनेक प्रकारसे उद्घाटन किया गया है।

तैत्तिरीयोपनिषद्‌के ब्रह्मानन्दवल्लीके षष्ठ अनुवाकमें भगवल्लीला-रहस्यका स्पष्ट संकेत मिलता है। यथा—**'सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेय'** अर्थात् उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं अनेक नाम-रूप धारण करके लोक-लीला करूँ।

इसी प्रकार ऐतरेयोपनिषद्‌के प्रथम अध्यायके प्रारम्भमें ही भगवल्लीलाका सूत्ररूपमें संकेत उपलब्ध होता है—**'स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति।'**

वेदान्तसूत्रोंमें तो **'जन्माद्यस्य यतः'** (१। १। २)-के सूत्रसे लोकलीला-रहस्यका प्रारम्भ करके आगे अनेक प्रकारकी शंकाएँ उठाकर इस भगवल्लीला-वैचित्र्यका बड़ी ही कुशलतापूर्वक तर्कसंगत ढंगसे समाधान किया गया है। स्थानाभावसे उसका वर्णन यहाँ सम्भव नहीं है।

भगवल्लीलाओंसे सम्बन्धित ये वैदिक और दार्शनिक सूत्र, पुराणों और काव्यग्रन्थोंमें अतिरोचक एवं बृहदाकार होते चले गये हैं। धीरे-धीरे भगवल्लीलाओंके ये रहस्य जनमानसमें इतने गहरे समा गये कि भगवान् श्रीरामका सम्पूर्ण जीवनचरित्र ही रामलीला कहा जाने लगा और भगवान् श्रीकृष्णका जीवनवृत्त भी कृष्णलीला अथवा रासलीलासे सम्बोधित होने लगा। आगे चलकर इन भगवल्लीलाओंका मञ्जन करके **'मीठा और कठौताभर'**—महामधुर ब्रह्मरस, राम-रस, कृष्ण-रसके रूपमें लोगोंको पिलाया जाने लगा।

इन भगवल्लीलाओंकी महिमाका कहाँतक वर्णन करें? आस्तिक-नास्तिक, ईश्वरवादी-अनीश्वरवादी, मूर्ख-पंडित, धनी-निर्धन, द्वैती-अद्वैती सभी अपने-अपने आख्यानों, व्याख्यानों एवं दैनिक व्यवहारोंमें इनका आश्रय लेने लगे।

जाति-पाँति, बल-पौरुष, आयु-अवस्था आदिका भी कोई विशेष प्रतिबन्ध इन लीलाओंके श्रवण-दर्शनमें नहीं है। भगवल्लीलाओंका यह अनुपम प्रभाव है कि जानसे, अनजानसे, इच्छासे, अनिच्छासे, वैरसे अथवा प्रेमसे, किसी भी प्रकारसे इनमें मन लगनेपर कल्याण ही होता है।

अतः उन अकारणकरुण करुणावरुणालय परात्पर परब्रह्म परमात्माकी पावन लीलाओंके श्रवण, कीर्तन, स्मरण और दर्शनादिसे साधकों, भक्तोंके जीवनमें सद्यः सुख-शान्ति और भगवत्प्राप्तिके साथ कृतकृत्यता तथा पूर्णता भी आ जाती है।

श्रीकृष्णके लीला-विलासका परिचय—लीलाका अर्थ

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

'लीला' शब्दके अर्थका विचार विस्तारसे शब्दकल्पद्रुम (चतुर्थ भाग, पृष्ठ २२४)-में किया गया है। सामान्यत: लीलाका अर्थ है—केलि, विलास तथा शृंगारभाव-चेष्टा। श्रीमद्भागवतपुराणके प्रथम स्कन्ध (१। १८)-में ही इस शब्दका समुचित संनिवेश उपलब्ध होता है—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥

लीलाके दो प्रकार होते हैं—प्रकटा और अप्रकटा।

गोकुले मथुरायां च द्वारकायां च शार्ङ्गिणः।
यास्तत्र तथा प्रकटास्तत्र तत्रैव सन्ति ताः॥

(भागवतामृतम्)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ अनन्त हैं, किंतु प्रमुख रूपसे उनकी तीन लीलाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इन तीनों लीलाओंमें सर्वथा ऐक्य है। इसका आरम्भ होता है—व्रज-लीलासे, तदनन्तर आती है माथुर-लीला और अन्तिम है द्वारका-लीला।

एक ही व्यक्तिने इन तीन लीलाओंका प्रदर्शन अपने जीवनके विभिन्न भागोंमें किया था। अत: श्रीकृष्णकी एकतामें किसी प्रकारका संदेह नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति श्रीकृष्णके व्यक्तित्वमें भेद मानता है, उसका चिन्तन सर्वथा निराधार है।

श्रीकृष्णका गोपियोंके साथ लीला-विलासका सम्बन्ध जीवनके आरम्भसे लेकर अन्ततक रहता है। माताके उदराश्रित होनेसे लेकर आगे बढ़ता चला गया था। उन्होंने उस समय अपने ज्येष्ठ भ्राताको गोकुलमें नन्दके घरमें रोहिणी माताके गर्भमें योगमायाके आश्रयसे संनिविष्ट करा दिया था, जो 'संकर्षण' नामसे विख्यात हुए। शिशुके प्रभावसे देवकी तथा वसुदेवको कारागारमें रखनेपर भी उनके जीवनमें अद्भुत लीला दृष्टिगोचर हुई थी। रक्षक लोगोंको निद्रा आ गयी थी तथा उनके बन्धन मुक्त हो गये थे। कृष्ण जब अपने जीवनके आरम्भमें गोकुल आये, तब यशोदाको कन्याकी प्राप्ति हुई थी। यह भी कृष्णके जीवनके आरम्भिक कालका लीला-विलास था।

श्रीकृष्णके आरम्भिक जीवनमें गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाओंका विन्यास दृष्टिगोचर होता है। कंसद्वारा कृष्णको मारनेके अनेक उपायोंमें उनकी लीलाका विलास दृष्टिगोचर होता है। कृष्णकी जीवन-लीलाको समाप्त करनेके लिये कंसने विविध चेष्टाएँ की थीं और इनमें कृष्णके जीवनका विलास प्रचुर मात्रामें देखा जा सकता है। उन्हें मारनेके लिये पूतना भेजी गयी थी और बालक कृष्णने उसे दूध पीते ही मार डाला। यह भी उनके आरम्भिक जीवनका विलास ही था।

यमुनाजीमें कालियनागकी नाना प्रकारकी चेष्टाएँ दीखती हैं, जिनके कारण यमुनाका जल विषमिश्रित हो गया था। कृष्णने कालियनागके सिरपर नृत्यकर उसके दोषको दूर करनेका प्रयास किया था। यह उनकी नृत्य-लीलाका सद्यः विलास था।

गोपियोंके चीरहरणके प्रसंगमें लीलाका विलास सद्यः स्फुरित होता है। इस लीलाके द्वारा उन्होंने नग्न-स्नानके दोषको सदाके लिये व्रजसे दूर कर दिया था, नदीकी पवित्रताकी रक्षा की थी और साथ ही उन्होंने यह प्रदर्शित किया था कि भगवान्का सांनिध्य प्राप्त करनेके लिये मनुष्यको ऊपरी दोषोंको हटाना पड़ेगा, तभी उनके साथ उसका सर्वथा मिलन सम्भव होगा।

गोवर्धन-धारण-लीलाका महत्त्व सबके सामने कृष्णने दिखाया था। व्रजके लोग इन्द्रकी पूजा करते थे। कृष्णने इसका अनौचित्य सिद्ध किया और इन्द्रके महत्त्वको कम करनेकी दृष्टिसे यह लीला प्रदर्शित की थी। श्रीकृष्णने ब्रह्माका गर्व चूर्ण करनेके लिये अपने संकल्पसे गोप, ग्वाल-बाल तथा अन्य जीवोंको छिपा रखा था तथा एक वर्षके अनन्तर उन सबको उसी रूपमें प्रकट किया। किसीको भी इस अन्तरंग लीलाकी गम्भीरताका—रहस्यका पता नहीं चला और ब्रह्माके गर्वको भी कृष्णने चूर्ण-विचूर्ण कर दिया।

श्रीकृष्णकी लीलाका अनुकरण उनके जीवनकालमें ही

होने लगा था। यह विशेष रूप है लीलाका। रासके समय गोपियोंके गर्वको दूर करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अन्तर्हित हो गये, तब गोपियोंने उनके जीवनकी समस्त घटनाओंका स्वयं अनुकरण किया था। कृष्णकी जितनी लीलाएँ पहले हो चुकी थीं, उन सबका अनुकरणकर गोपियोंने उन्हें पुनर्जीवित कर दिया था। कोई पूतना बनी थी, तो कोई यमलार्जुन। इसी प्रकार कृष्णद्वारा सम्पादित लीलाओंको गोपियोंने पूर्णतया अनुकरणके द्वारा दिखलाया था। यह विचित्र घटना है।

इसी प्रसंगमें सुदामाजीकी छोटी कुटिया हटाकर भगवान्ने वहाँ महल खड़ा कर दिया था। गुरुके यहाँ पढ़ने गये तो उन्होंने सान्दीपनि गुरुके मृत पुत्रको पुन: जीवित करके गुरुदक्षिणाके रूपमें उन्हें समर्पित कर दिया था। श्रीकृष्णके जीवनकी ये लीलाएँ सर्वदा स्मरणीय रहेंगी। इनका विस्मरण कोई नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्ण राधिकाके विषयमें स्वयं कहते हैं—

कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैव रहितं यदा।
श्रीकृष्णं च तथा तेऽपि त्वयैव सहितं परम्॥

(ब्रह्मवैवर्त ६। ६३)

श्रीकृष्णका जीवन वृन्दावनमें आनेपर वहाँ रहनेवाली गोपियोंके साथ इतना हिल-मिल गया कि उसका पार्थक्य करना नितान्त असम्भव है। गोपियोंके साथ होनेवाली प्रेमलीलाका वर्णन यथार्थत: कठिन होता है। राधाके साथ की गयी उनकी प्रेमलीला इतनी मधुरिमामयी है कि उसका यथार्थ वर्णन करना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। दोनों आपसमें मिलकर प्रेमके उत्कर्षको स्वयं चखते हैं तथा दूसरोंको भी चखाते हैं। कृष्णका राधाके लिये जिस लीला-विलासका उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है, वह रागानुगा-भक्तिका चरम उत्कर्ष है। भक्त कवियोंने इस आनन्दमयी दशाकी अभिव्यञ्जना अपने काव्योंमें बड़ी सरसताके साथ किया है। इस प्रेमदशाका सुन्दर चित्रण निम्न पंक्तियोंमें देखिये—

घर तजों वन तजों नागर-नगर तजों।
बंसीवट-तट तजों काहू पै न लगिहौं
× × ×
बावरो भयो है लोक, बावरी कहत मोंको
बावरी कहैते मैं काहू ना बरजिहौं॥
कहै या सुनै या तजों, बाप और मैया तजों
दैया तजों मैया पै कन्हैया नाहिं तजिहौं।

माधुर्य-रसोपासनाकी कैसी दिव्य भावविभूति है यह!

प्रेम तथा कामका तारतम्य

प्रेम तथा काममें अन्तर होता है—

प्रेममें त्यागकी भावना प्रबल होती है और काममें स्वार्थकी भावना निहित होती है। नारदजीकी दृष्टिमें प्रेमकी प्रधान पहचान है—'**तत्सुखसुखित्वम्**'—प्रियतमके सुखमें अपनेको सुखी मानना। राधाका जीवन ही कृष्णमय था। काम दूसरेके द्वारा अपनी तृप्ति चाहता है, परंतु प्रेम अपने द्वारा प्रेमपात्रकी तृप्ति चाहता है। दोनोंका तारतम्य चैतन्य-चरितामृतमें बड़े सुन्दर शब्दोंमें अभिव्यक्त किया गया है—

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम काम
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम प्रेम।
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर
अतएव गोपी गणे नाहि काम गन्ध
कृष्ण सुख हेतु मात्र कृष्णेर सम्बन्ध॥

श्रीकृष्णका राधाके साथ जो लीला-विलास है, प्रेम-प्राचुर्य है, उसकी गम्भीरताका वर्णन कथमपि सम्भव नहीं। दक्षिण भारतके आलवारोंकी भक्तिभावनामें राधा-कृष्णके गम्भीर प्रेमभावनाकी जो स्थिति है, उसे यथार्थत: समझनेमें भक्त लोग सर्वथा असमर्थ रहते हैं। आलवारोंके जीवनका आदर्श इस पद्यमें बड़ी सुन्दरताके साथ अंकित किया गया है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
ज्ञातिर्वा विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जाया: किमु वामरूपमधिकं किं तत् सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधव:॥

तात्पर्य यह कि भक्तोंमें दोषोंकी सत्ता होनेपर भी माधव उनसे केवल गुणोंके कारण ही प्रसन्न नहीं होते, प्रत्युत भक्तिके द्वारा प्रसन्न होते हैं।

श्रीमुरलीमनोहर

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥
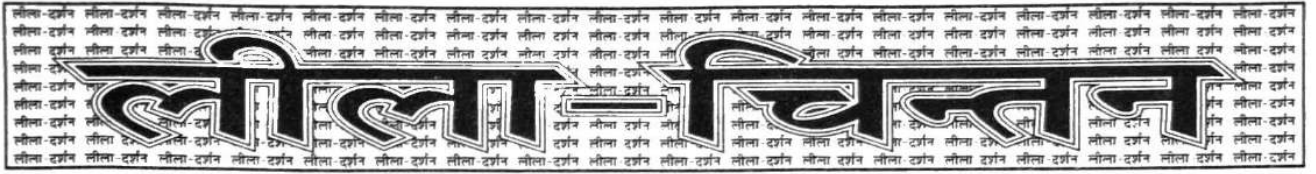
[प्रभुके भजनमें मन लग जाय, इसके लिये भौतिकरूपसे भगवान्‌की लीलाओंका दर्शन करना अपेक्षाकृत सरल है, परंतु प्रभु लीलाका चिन्तन-मनन सर्व-साधारणके वशकी बात नहीं है। सगुण-साकार सच्चिदानन्दप्रभुकी लीलाओंके चिन्तन-मननसे साधकको एक प्रकारकी समाधि-जैसी अवस्था प्राप्त होती है। उतने क्षणोंके लिये बाह्य चेतना सुषुप्त-सी हो जानेके कारण साधकको एक विशेष प्रकारके आनन्दकी अनुभूति प्राप्त होती है, जो सांसारिक अनुभूतियोंसे विलक्षण है। भगवल्लीला-चिन्तन करते-करते वह साधक स्वयं भी भावविभोर हो जाता है, भगवन्मय बन जाता है एवं लीला-चिन्तनके साथ-ही-साथ अपनी जीवन-लीलाको भी भगवल्लीला-चिन्तनमें समाहित कर देता है।

विशिष्ट संतोंद्वारा अनुभूत लीलाओंको चिन्तन-मननकी दृष्टिसे यहाँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया जा रहा है, जिससे 'कल्याण' के पाठक-साधकोंको भी यह सौभाग्य प्राप्त हो सके।

सर्वप्रथम यहाँ प्रस्तुत है पूज्य भाईजीके एक निकटस्थ साधुद्वारा पूर्वकालमें लिखित आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दन मदनमोहन श्यामसुन्दरकी मधुर-मनोहर बाल-लीलाका चिन्तन।—सम्पादक]

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन

जन्म-महोत्सव

व्रजेन्द्रगेहिनी यशोदा नेत्र निमीलित किये मणिमय दीवालके सहारे चुपचाप निस्पन्द बैठी हैं। श्रीरोहिणीजीकी आँखें भी बंद हैं। अन्य समस्त परिचारिकाएँ भी निद्राभिभूत होकर बाह्यज्ञानशून्य हो रही हैं। इसलिये दिव्य नराकृति परब्रह्मको सूतिकागारमें पदार्पण करते तो किसीने नहीं देखा, परंतु उनके आते ही समस्त सूतिकागार एक अभिनव चिन्मय रससे प्लावित हो गया, वहाँका अणु-अणु उस रसमें निमग्न हो गया। व्रजमहिषीकी लीलाप्रेरित प्रसव-वेदनाजन्य मूर्च्छा, रोहिणी तथा परिचारिकाओंकी योगमायाप्रेरित तन्द्रा एवं निद्रा भी उस रसके स्पर्शसे चिन्मय भावसमाधि बन गयी।

यशोदाके क्रोडसे संलग्न सच्चिदानन्दकन्द श्रीहरि शिशुरूपमें अवस्थित हैं। कदाचित् अनन्त सौभाग्यवश कोई कवि दिव्यातिदिव्य नेत्र पाकर उस क्षणकी शोभाका अनुभव करता, अनुभवको वाणीसे व्यक्त करनेकी शक्ति पाता, तो वह इतना ही कह सकता—'मानो चिदानन्द-सुधा-रस-सरोवरमें अभी-अभी एक अद्भुत अपूर्व नवीनतम नीलपद्म प्रस्फुटित हुआ हो—वह अभूतपूर्व अरविन्द, जिसका आघ्राण मधुगन्धलुब्ध भ्रमरोंने आजतक नहीं पाया था, जिसके सौरभका अपहरण करके कृतार्थ होनेका अवसर अनिलको आजतक नहीं प्राप्त हुआ था, जल जिस अरविन्दको उत्पन्न ही न कर सका था, जलके वक्षःस्थलपर खेलनेवाली चञ्चल तरङ्गें जिस पद्मको प्रकम्पित करनेका गर्व न कर सकी थीं, जिस कमलको आजतक कहीं किसीने भी नहीं देखा था!'

अनाघ्रातं भृङ्गैरनपहृतसौगन्ध्यमनिलै-
रनुत्पन्नं नीरेष्वनुपहतमूर्मीकणभरैः।
अदृष्टं केनापि क्वचन च चिदानन्दसरसो
यशोदायाः क्रोडे कुवलयमिवौजस्तदभवत्॥*

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। ११)

अचिन्त्यलीलामहाशक्तिकी प्रेरणासे सर्वप्रथम रोहिणी माताकी आँखें खुलती हैं। वे जान पाती हैं—'यशोदाने पुत्र प्रसव किया है।' परिचारिकाएँ भी जाग उठती हैं; पर उस इन्द्रनीलद्युति शिशुका सौन्दर्य कुछ इतना निराला है कि

---

* भाव यह है—अप्रतिम अनिन्द्यसुन्दर श्रीकृष्णरूपका जो माधुर्य है, वैसा इससे पूर्वके अवतारोंमें भक्तों (भृङ्गैः)-ने भी अनुभव नहीं किया। कवीश्वरों (अनिलैः)-ने भी भगवल्लीलाका वर्णन करते हुए ऐसी अतुलनीय रूपमाधुरीका विस्तार आजतक नहीं किया; भगवान् ऐसे अतुलनीय सुन्दर मधुर मनोहररूपसे प्रापञ्चिक जगत् (नीरेषु)-में कभी प्रकट ही नहीं हुए। यह रूप त्रिगुणों (ऊर्मीकणभरैः)-से सर्वथा परेका है।

सभी निर्निमेष नयनोंसे देखती ही रह जाती हैं, किसीको भी समयोचित कर्तव्यका ज्ञान नहीं होता। वे सद्योजात शिशुका मधुर अस्फुट क्रन्दन सुन पा रही हैं; लेकिन काष्ठपुत्तलिकाकी भाँति सभी ज्यों-की-त्यों, जहाँ-की-तहाँ खड़ी हैं— आनन्दातिरेकसे सबके शरीर सर्वथा अवश हो गये हैं। अवश्य ही सर्वान्तर्यामी विभु अवश शरीरमें भी सजग हैं। अतः वे ही मानो विलम्ब होते देखकर श्रीरोहिणीजीके मुखसे बोल पड़े—'अरी! तुम सब क्या देखती ही रहोगी? कोई दौड़कर व्रजेश्वरको सूचना तो दे दो।' सचमुच अन्तर्यामी यदि न बोलते तो पता नहीं, शिशुरूप श्रीहरिको वात्सल्य-रस-पानके लिये कितनी देर और रोना पड़ता; क्योंकि रोहिणीजी तो आनन्दमें बेसुध हैं, उनमें समयोचित आदेश देनेकी शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी है! अस्तु।

इस आदेशने परिचारिकाओंके अन्तर्हृदयमें बहते हुए आनन्दस्रोतको तरङ्गित कर दिया। फिर क्या था, दूसरे ही क्षण सूतिकागार आनन्द-कोलाहलसे मुखरित हो उठा। साथ ही जो करना था, उसमें सभी जुट पड़ीं। एक व्रजेश्वरको सूचना देने गोष्ठकी ओर दौड़ी, एक दाईको बुलाने गयी, एक उपनन्द-पत्नीको परम शुभ समाचार देकर क्षणोंमें ही लौट आयी, एक सहनाईवालेके घर जा पहुँची और एक बावली-सी विविध अनर्गल आनन्दध्वनि करती हुई समस्त व्रजपुरमें सूचना देती हुई दौड़ने लगी। यह सब हो रहा है, परंतु सूतिकागारमें व्रजेश्वरी तो अभी भी किसी अनिर्वचनीय भावसमाधिमें निमग्न हैं।

उपनन्द-पत्नी आयीं, पश्चात् निकटवर्ती पुर-महिलाओंका दल नन्द-प्राङ्गणमें एकत्र होने लगा। तुमुल आनन्दध्वनिसे प्रसूतिगृह ही नहीं; समस्त प्रासाद निनादित हो उठा। व्रजरानीकी भावसमाधि शिथिल हुई, धीरे-धीरे आँखें खोलकर वे देखने लगीं। कुछ क्षण निहारते रहकर समझ पायीं—गर्भस्थ शिशु भूमिष्ठ हो गया है, पर यह क्या? जननीके मुखमण्डलपर आश्चर्य एवं भय छा जाता है। वे देखती हैं 'शिशुके श्याम अङ्गोंमें मेरा मुख प्रतिबिम्बित हो रहा है—यह भी भला सम्भव है?' वात्सल्य-प्रेमवती माताका हृदय अनिष्ट-आशङ्कासे काँप उठता है। वे सोचने लगती हैं—'निश्चय ही, मैं जब मूर्च्छित थी, तब कोई बालापहारिणी योगिनी मायासे मेरा वेष धारणकर यहाँ आ गयी है और वह अन्तरिक्षमें अवस्थित है; यह उसीकी प्रतिच्छाया है। हाय! हाय! नृसिंह! जय नृसिंह! रक्षा करो। भयहारी नृसिंह-नामके प्रभावसे योगिनी नष्ट हो जाय। नृसिंह! नृसिंह! डाकिनी, चली जा। अन्यथा तू नष्ट हो जायगी।' व्रजमहिषी एक साथ ही आकुल कण्ठसे बहुत-कुछ बोल गयीं। इस व्याकुलताने दृष्टिकी एकाग्रता नष्ट कर दी। बस, प्रतिबिम्ब तिरोहित हो गया। उसी क्षण वात्सल्यरसघनविग्रह यशोदाका हृदय-संचित स्नेह-रस उमड़ा, आँखोंमें आया तथा सामने कोई भी व्यवधान न पाकर अश्रुबिन्दुओंके रूपमें झरने लगा। भावाभिभूत नन्दरानी कभी अपने सिरको अत्यन्त नीचे झुकाकर, कभी बायीं ओर टेढ़ा करके, कभी दाहिनी ओर घुमाकर और कभी ऊँचा उठाकर पुत्रके सौन्दर्यका सुख ले रही हैं। इससे अश्रुबिन्दु भी ढलककर मालाकर बन गये। मानो माताने एक निर्मल मुक्ताहारकी प्रथम भेंट दी हो। यह भेंट सर्वथा उपयुक्त ही है; क्योंकि देवाराधनका नियम ही है—पहले माला समर्पित होती है, तब नैवेद्य-अर्पण होता है। यहाँ भी तो प्रेमदेवकी आराधना ही हो रही है। सर्वोत्कृष्ट रागमयी आराधनाके उपकरण कुछ भी हों, पर नियमका व्यतिक्रम क्यों हो। इसीलिये मानो जननी यशोदा भी वात्सल्य-रस-सार स्तनदुग्धका नैवेद्य चढ़ानेके पूर्व अश्रुबिन्दुओंकी मनोहर माला अर्पण कर रही हैं—

ज्ञात्वा जातमपत्यमीक्षितुमथ न्यञ्चत्तनुस्तत्तना-
वालोक्य प्रतिबिम्बितां निजतनूमन्येति शङ्काकुला।
गच्छारादिति तन्निरासनपरा पश्यन्त्यमुष्याननं
मुक्ताहारमिवोपढौकितवती स्नेहाश्रुणो बिन्दुभिः॥

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। १४)

इधर गोदोहनमें संलग्न व्रजराज नन्दजीके पास सूचना देने परिचारिका आयी। प्रतिदिनका नियम है—व्रजेन्द्र आधी रात ढलते ही स्वयं गोष्ठमें चले आते हैं, गायोंकी सँभाल करते हैं। आज भी आये थे। अपने इष्टदेव नारायणका स्मरण करते हुए एक गायके समीप खड़े थे। परिचारिकाने कहा—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' व्रजराजको प्रतीत हुआ मानो हठात् किसीने कानोंमें अमृत उड़ेल

दिया—नहीं, नहीं, उनके चारों ओर अमृतका महासागर लहराने लगा। वे उसमें निमग्न हो गये; इतना ही नहीं, आनन्दमन्दाकिनीकी प्रबल धारासे उस महासागरमें एक आवर्त (भँवर) बन गया है। व्रजराज उस आवर्तमें फँसकर चक्कर लगा रहे हैं। आनन्दमन्दाकिनी व्रजराजको अपने भुजपाशमें लपेटकर घुमा रही है—

प्रविष्ट इवामृतमहार्णवेषु, आलिङ्गित इवानन्दमन्दाकिन्या।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। १८)

व्रजेन्द्र नन्दबाबा बाह्यज्ञान खोकर अन्तश्चेतनाके जगत्में जा पहुँचे। एक अतीत दृश्य सामने आ गया—व्रजराज व्रजरानीसे कह रहे हैं—'प्रिये! स्पष्ट जानता हूँ, मेरे द्वारा सम्पादित इन पुत्रेष्टि आदि अनेक यज्ञानुष्ठानोंकी सफलता असम्भव-सी है; फिर भी परिजनों, गोपबन्धुजनोंका आग्रह देखकर आयोजन स्वीकार कर लेता हूँ। संकल्पके अनुरूप ही तो परिणाम होगा। असम्भव वस्तुके लिये किये गये संकल्पकी सफलता कैसे सम्भव है? अनुष्ठान आरम्भ करते हुए जब मैं संकल्प करने बैठता हूँ तो चित्त एक अनोखी पुत्रकी कल्पना कर बैठता है। तू ही बता, भला, मेरे इष्टदेव नारायणसे अधिक सुन्दर त्रिलोकमें, त्रिकालमें भी कोई सम्भव है क्या? असम्भव! सर्वथा असम्भव! पर चित्तभूमिकामें ठीक संकल्पके क्षण ऐसे ही एक, इष्टदेव नारायणकी अपेक्षा भी अधिक अनिर्वचनीय अनन्त असीम सुन्दर बालककी मूर्ति अङ्कित हो जाती है। ओह! उस क्षण मैं स्पष्ट देखता हूँ—यह बालक तुम्हारी गोदमें तुम्हारे दुग्धस्त्रावी स्तनोंपर बैठकर खेल रहा है। उसके श्याम अङ्गोंको, चञ्चल सुन्दर दीर्घ नेत्रोंको देखकर मैं सर्वथा मुग्ध हो जाता हूँ। मुझे भ्रम हो जाता है कि यह स्वप्न है या जाग्रत्। यह सचमुच क्या है, मैं निर्णय ही नहीं कर पाया। मनमें आया, एक बार तुमसे पूछूँ कि तुम्हारे हृदयमें भी ऐसी ही अनुभूति उस समय होती है क्या'—

श्यामश्चञ्चलचारुदीर्घनयनो वालस्तवाङ्कस्थले
दुग्धोगारिपयोधरे स्फुटमसौ क्रीडन्मयाऽऽलोक्यते।
स्वप्नस्तत्? किमु जागरः? किमथवेत्येतन्न निश्चीयते
सत्यं ब्रूहि सधर्मिणि! स्फुरति किं सोऽयं तवाप्यन्तरे?

(श्रीगोपालचम्पूः)

व्रजरानी बोलीं—'स्वामिन्! ठीक ऐसी ही कल्पना मुझे भी उस समय होती है। लज्जावश अबतक आपसे न कह सकी।'

बाह्यज्ञानशून्य व्रजराज एक ही क्षणमें इस दृश्यको देख गये। परिचारिका खड़ी रहकर इनकी दशा देख रही थी। उसे क्या पता, व्रजराज क्या देख रहे हैं। वह अन्य गोपोंको लक्ष्यकर बोली—'तुम लोग सभी चलो, गोवत्सोंको छोड़ दो, दूध पी लेने दो, एक बार चलकर उस अद्भुत बालकको तो देखो। नेत्र शीतल हो जायँगे। आजतक…………' कहते-कहते परिचारिका वहीं बैठ गयी। नन्दरायको बुलाने आयी है, यह बात वह भूल-सी गयी। उसकी आँखोंके सामने प्रसूतिगृह आ गया, वहीं बैठी-बैठी वह सौन्दर्यनिधि शिशुको देखने लग गयी।

व्रजराजका मन अभीतक उसी भावस्रोतका रस ले रहा है। वे देख रहे हैं—हम लोगोंने एक वर्षतक श्रीनारायणकी उपासना की है। श्रीनारायण स्वप्नमें दर्शन देकर कह रहे हैं—'गोपवर! वह सचमुच तुम्हारा अनादिसिद्ध पुत्र है, तुम्हारा संकल्प शीघ्र ही सत्य होगा।' इस घटनाके बाद कुछ दिन बीत गये हैं। आज माघकृष्णा प्रतिपदा है, आजकी रजनी एक विचित्र शोभासे सम्पन्न-सी प्रतीत हो रही है। हठात् व्रजरानी तन्द्रासे जागकर कहती है—'नाथ! अभी-अभी मैंने स्पष्ट देखा है—ठीक वही बालक तुम्हारे हृदयसे निकलकर मेरे हृदयमें आ बैठा है। एक आश्चर्यकी बात और है। उसके सुन्दर श्याम शरीरके ऊपर एक ज्योतिर्मयी दिव्यकुमारीका मानो आवरण पड़ा हुआ है। पहली दृष्टिमें वह ज्योतिमयी बालिका-सा दीखता है, पर किंचित् गम्भीरतासे देखनेपर उसका अप्रतिम सुन्दर श्याम कलेवर स्पष्ट दीखने लग जाता है।' सुनकर व्रजराज आनन्दमुग्ध हो गये हैं। वे स्वयं भी ऐसी अनुभूति कर चुके हैं।

उपर्युक्त घटनावलीका दृश्य व्रजराजके मनोराज्यकी कल्पना नहीं है। वह सर्वथा इसी रूपमें घटित हो चुकी है।

परिचारिकाके शब्दोंने तो अतीतकी स्मृतिको उद्बुद्धमात्र कर दिया, जिससे वह घटना मानो वर्तमानमें अभी-अभी हो रही है, इस रूपमें व्रजराजको वह दीखने लगी। जो हो, किसी अज्ञात प्रेरणासे नन्दरायके कानोंमें अब वह शब्दावली पुनः गूँज उठी—'महाभाग! आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।' नन्दरायने आँखें खोल दीं तथा वे अविलम्ब प्रासादकी ओर दौड़ पड़े। पीछे-पीछे परिचारिका भी दौड़ी। पथमें जाते हुए नन्दराय सोचते जा रहे हैं—क्या सचमुच वही, वही श्याम बालक उत्पन्न हुआ है? पर हृदयके उमड़ते हुए आनन्द-प्रवाहमें विवेक लुप्त हो गया है; विचारशक्ति आनन्द-तरङ्गोंसे तरङ्गित हो रही है—चञ्चल बन गयी है। फिर निर्णय कौन करे? व्रजेन्द्र निर्णय नहीं कर सके—

आह्लादेन समं जज्ञे बालः किं किं स एव सः।
एवं विवेक्तुं नन्दस्य नासीन्मतिमती मतिः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

व्रजराज आकर प्रसूतिगृहके सामने आँगनमें खड़े हो जाते हैं। प्राणोंकी उत्कण्ठा लेकर आये हैं कि पुत्रका मुख देखूँगा, पर देख नहीं पाते। प्रसूतिगृहके कपाट खुले हैं; पर उपनन्द-सनन्दका परिवार, पड़ोसकी गोपियोंकी भीड़ कपाटकी अपेक्षा अधिक सुदृढ़ व्यवधान बन गये हैं। इससे पूर्व व्रजेन्द्र जब कभी अन्तःपुरमें आते तो गोपियाँ घूँघटकी ओट कर लेतीं, किनारे हो जातीं; परंतु आज तो आह्लादवश वे जानतक नहीं पायीं कि व्रजेश्वर खड़े हैं, पथ पानेकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नन्दरायके प्राण व्याकुल हो उठे। तत्क्षण ही उन दर्शक गोपियोंके अन्तरालसे कुछ क्षणके लिये एक क्षुद्र छिद्र बन गया, व्रजेशको अपने पुत्रकी एक स्पष्ट झाँकी प्राप्त हो गयी। अहा! वही है, वही है! सचमुच वही शिशु आया है! इतनेमें छिद्रके सामने एक गोपी आ गयी, छिद्र बंद हो गया, व्रजराजकी आँखें भी बंद हो गयीं। पर आश्चर्य है, अब मानो कोई व्यवधान नहीं। गोपेश स्पष्ट देख पा रहे हैं, प्रसूति-पर्यङ्कपर उत्तानशायी होकर शिशु अवस्थित है। शिशु क्या है, मानो अनन्तजन्मार्जित पुण्यराशिरूप कल्पतरु-उद्यानका प्रफुल्ल कुसुम हो, नहीं, नहीं, समस्त उपनिषद्रूप कल्पलता-श्रेणीका मधुर फल हो—

कुसुममिव चिरतरसमयसमुत्पन्नसुकृतकल्पमहीरुहारामस्य, फलमिव सकलोपनिषत्कल्पलताविततेः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २।१८)

उपनन्दजी नन्दके आनेसे पूर्व ही आ गये थे। वे समयोचित व्यवस्थामें लगे हैं। ब्राह्मणोंको बुलानेके लिये दूत भेज चुके हैं। अब तोरणद्वारके पास नगारेवालोंको समस्त व्रजमें घोषणा करनेकी बात समझा रहे हैं। गद्गद कण्ठसे कह रहे हैं—

नैन भरि देखौ नंदकुमार।
जसुमति-कूख चंद्रमा प्रगट्यौ या ब्रज कौ उजियार॥
वन जिन जाउ आजु कोऊ गोसुत अरु गाय गुवार।
अपनें अपनें भेष सबै मिलि लावौ बिबिध सिंगार॥
हरद-दूब-अच्छत-दधि-कुंकुम मंडित करौ दुवार।
पूरौ चौक बिबिध मुक्ताफल, गावौ मंगलचार॥

सहनाईवाले सदल-बल आ पहुँचे हैं। नगारेवालोंने पहला डंका लगाया। दूसरे ही क्षण सहनाईवालोंने भी मधुरातिमधुर रागिनीकी तान छेड़ दी। नन्दप्रासादकी मणिमय भित्ति, आच्छादन (छत) और स्तम्भोंको निनादित करती हुई वह सुरीली ध्वनि समस्त व्रजपुरमें फैलने लगी। यद्यपि इससे पहले भी व्रजमें अनेक बार सहनाई बजी थी, तथापि आजकी तान तो आज ही बजी है।

अब ब्राह्मण आ गये हैं। व्रजेश स्नान करके, अलंकृत होकर ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हैं। मातृकापूजन, नान्दीमुख-श्राद्ध सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको साथ लिये हुए वे सूतिकागारमें आते हैं। विधिवत् जातकर्म-संस्कार आरम्भ होता है। यह नित्य अजन्माका जातकर्म है। जिनके एक-एक रोमकूपमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अवस्थित हैं, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक-एक ब्रह्मा जिनके नियन्त्रणमें सृजनका कार्य वहन करते हैं, आज उन्हींका ब्रह्ममुखनिःसृत वेदमन्त्रोंसे संस्कार हो रहा है! यह कैसी विडम्बना है! लीलाविहारिन्! तुम्हारी मुनि-मन-मोहनकारिणी लीलाको धन्य है! अस्तु, **'भूस्त्वयि'** इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करके शिशुके बिम्बविडम्बित अधरोष्ठको किंचित् खोलकर सुवर्णसंयुक्त अनामिका अँगुलीसे घृतका एक कण चटाया गया। आयुष्यक्रिया करते समय ब्राह्मण

देवता शिशुके दक्षिण कर्णमें '**अग्निरायुष्मान्**' इत्यादि जपनेके लिये मुख निकट ले गये। उन्हें प्रतीत हुआ मानो यह कर्ण नहीं, किसी अनिर्वचनीय श्यामल तेजोलतिकाका नवोन्मिषित पल्लव है। जपते समय ब्राह्मणके सारे शरीरमें कम्प होने लगा। ब्राह्मण आश्चर्यमें थे कि सारे अङ्ग काँपने क्यों लगे, आजतक तो ऐसी घटना नहीं हुई! इसके बाद '**दिवस्परि**' इत्यादि मन्त्रसे बालकका स्पर्श किया गया, फिर भूमि अभिमन्त्रित की गयी। एक बार बालकका अङ्ग पुनः पोंछ दिया गया। आगेकी अन्य क्रियाएँ सम्पन्न की गयीं। अन्तमें शिशुके कुञ्चितकेशकलापमण्डित मस्तकसे सटाकर '**आपो देवेषु**' इत्यादि मन्त्रसे एक जल-पात्र सूतिका-पर्यङ्कके नीचे रखा गया। इस तरह जातकर्म-संस्कार सम्पन्न हुआ—

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै।
कारयामास विधिवत् पितृदेवार्चनं तथा॥

(श्रीमद्भा० १०। ५। २)

अब दाई नाल-छेदन करती है। किसकी नाल?

जाकैं नार आदि ब्रह्मादिक, सकल-बिस्व-आधार।
सूरदास प्रभु गोकुल प्रगटे, मेटन कौं भू-भार॥

× × ×

जाकैं नार भए ब्रह्मादिक सकल, जोग-ब्रत साध्यौ।
ताकौ नार छीनि ब्रजजुबती बाँटि तगा सौं बाँध्यौ॥

नेग पानेका इतना सुन्दरतम अवसर धात्रीके जीवनमें कभी नहीं आया था। इस विचित्र सुन्दर शिशुको देखकर ही वह सब कुछ पा चुकी थी, निहाल हो चुकी थी; पर व्रजरानीसे प्रणय-झगड़ा करके नेग लेनेका सुदुर्लभ आनन्द वह क्यों छोड़ने लगी। लेना ही चाहिये, व्रजेश-कुलकी धात्री जो ठहरी—

औरनि कै हैं गोप-खरिक बहु, मोहिं गृह एक तुम्हारौ।
मिटि जु गयौ संताप जनम कौ, देख्यौ नंद-दुलारौ॥
बहुत दिनन की आशा लागी, झगरिनि झगरौ कीनौ।

तथा व्रजेश्वरी भी कब चूकनेवाली थीं—

मन मैं बिहँसि तबै नँदरानी, हार हिये कौ दीनौ॥

नन्दरानीके गलेको सुशोभित करनेवाला मणिमुक्ताका मनोहर मूल्यवान् हार सौभाग्यमयी दाईके गलेमें झूलने लगा। धात्रीने उत्फुल्ल नेत्रोंसे एक बार व्रजेश्वरीकी ओर देखा, फिर शिशुकी ओर; क्षणोंमें ही नाल-छेदन सम्पन्न हो गया। अबतक शीलवती व्रजरानीके चित्तमें शास्त्रमर्यादाका विचार था; स्तनदानके पूर्व ही जातकर्म-संस्कार हो जाना चाहिये—यह मर्यादा मानो व्रजेन्द्रगेहिनीके हृदयमें बाँध-सी बनी थी, इस बाँधसे वात्सल्यरसकी धाराएँ रुकी हुई थीं। अब मर्यादा पूरी हो चुकी। व्रजरानी बड़ी ललकसे हाथ बढ़ाती हैं, अपने हृदय-धनको उठाकर छातीसे लगा लेती हैं। द्विदल जवा-पुष्पकी कलिका-सदृश अधरोष्ठको खोलकर उसमें अपना स्तनाग्र दे देती हैं। वात्सल्य-रस-सुधा-साररूप दूध झर रहा है और अलौकिक नराकृति परब्रह्म बड़े प्रेमसे और उत्कण्ठासे उसका पान कर रहे हैं।

इधर व्रजेश्वर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे रहे हैं। व्रजराजने उस दिन बीस लाख गायें ब्राह्मणोंको दीं। गायोंके सींग सुवर्णपत्रोंसे, खुर रजतपत्रोंसे मढ़े हैं; प्रत्येकके कण्ठ-देशमें बहुमूल्य मणियोंकी माला है। सभी नवप्रसूता हैं। व्रजेशकी आज्ञासे अविलम्ब तिलके सात पर्वत निर्मित हुए, उन पर्वतोंपर सघन पत्रावलीकी तरह रत्न बिछा दिये गये, फिर पर्वतोंको सुनहले वस्त्रोंसे सर्वत्र ढक दिया गया। ये पर्वत भी ब्राह्मणोंके लिये ही बने थे, उन्हें दान कर दिया गया। व्रजराज जिस समय इस पर्वतदानका संकल्प पढ़ने लगे, उस समय आश्चर्यमें भरे हुए ब्राह्मण कुछ क्षण अवाक् रह गये।

अब समस्त व्रज सजाया जा रहा है। व्रजका प्रत्येक प्रासाद, प्रासादका प्रत्येक गृह, द्वार, प्राङ्गण, गृहद्वार-प्राङ्गणका कोना-कोनातक पहले झाड़ दिया गया, पश्चात् चन्दन-वारिसे धो दिया गया; फिर सर्वत्र पुष्प-रस-सार (इत्र) छिड़क दिया गया। रंग-बिरंगे वस्त्र एवं सुकोमलतम पल्लवोंके बंदनवार बाँधे गये। चित्र-विचित्र ध्वजा-पताकाएँ यथास्थान फहरा रही हैं। पुष्पमालाकी लड़ियाँ, मणिमय स्तम्भों एवं गवाक्ष-रन्ध्रोंसे बाँध दी गयी हैं। प्रत्येक द्वारपर आम्रपल्लवसमन्वित जलपूर्ण मङ्गलघट है। हरिद्रा, दूब, अक्षत, दधि और कुंकुमसे प्रत्येक द्वार-देश चित्रित है। स्थान-स्थानपर मोतियोंके चौक पूरे गये हैं।

व्रजेशके ऐसे सजे हुए तोरण-द्वारपर एक ओर ऊँचे आसनपर विराजमान ब्राह्मण आशीर्वादात्मक मङ्गलवचनोंका पाठ कर रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर सूत पुराणका पारायण

कर रहे हैं। उनसे कुछ हटकर मागध व्रजेश-वंशावलीका कीर्तन कर रहे हैं। उनसे सटी हुई बंदीजनोंकी पंक्तियाँ हैं, वे मधुर स्वरमें व्रजेशकी स्तुति गा रहे हैं। ब्राह्मणोंके ठीक सामने दूसरी ओर संगीतज्ञोंका दल है, वे वीणाके स्वरमें स्वर मिलाकर सुमधुर रागिनी अलाप रहे हैं। उनसे कुछ दूरपर भेरी बजानेवालोंका दल है। इनसे कुछ हटकर दुन्दुभियाँ बज रही हैं। इनसे कुछ दूरपर बंदीजनोंके ठीक सामने सहनाईवाले मधुर तान छेड़ते हुए रसकी वर्षा कर रहे हैं। बीचमें राजपथ है, जिसपर गौओं, गोपों और गोपाङ्गनाओंकी भीड़ उमड़ी चली आ रही है।

गौ, गोवत्स आदिको हल्दी-तेलसे रँगकर, गैरिक आदि धातुओंसे चित्रितकर, मयूरपिच्छ एवं पुष्परचित माला पहनाकर, सुवर्णशृंखलासे मण्डित करके तथा स्वयं बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण, अँगरखे, पगड़ीसे विभूषित होकर हाथोंमें, काँवरोंमें, सिरपर घी, दही, नवनीत, आमिक्षा (फटे हुए दूधसे बने द्रव्य—छेना आदि)-से पूर्ण घड़े लिये व्रजके समस्त गोप नन्दभवनकी ओर आ रहे हैं। उनके पीछे दौड़ती हुई गोपाङ्गनाएँ आ रही हैं—

सुनि धाईं सब ब्रज नारि, सहज सिंगार किये।
तन पहिरे नूतन चीर, काजर नैन दिये॥
कसि कंचुकि, तिलक लिलार, सोभित हार हिये।
कर-कंकन, कंचन-थार, मंगल-साज लिये॥
सुभ स्त्रवननि तरल तरौन, बेनी सिथिल गुही।
सिर बरषत सुमन सुदेस, मानौ मेघ फुही॥
मुख मंडित रोरी रंग, सैंदुर माँग छुही॥
उर अंचल उड़त न जानि, सारी सुरँग सुही।
ते अपनैं-अपनैं मेल, निकासीं भाँति भली।
मनु लाल-मुनैयनि पाँति, पिँजरा, तोरि चली॥
गुन गावत मंगल-गीत, मिलि दस पाँच अली।
मनु भोर भएँ रवि देखि, फलीं कमल-कली॥

गोपाङ्गनाएँ गोपोंसे थीं पीछे, पर पहुँचीं पहले—

पिय-पहलैं पहुँचीं जाइ अति आनंद भरीं।

गोपाङ्गनाओंका स्वागत रोहिणी एवं उपनन्द-पत्नीने किया। पश्चात् वे सब क्रमशः सूतिकागारमें गयीं। शिशुका श्रीमुख देखकर अनुभव करने लगीं कि स्रष्टाने नेत्रोंकी सृष्टि इस नन्दपुत्रको निहारनेके लिये ही की है, आज वह नेत्र-निर्माणका फल प्राप्त हो गया—

अनन्तरं प्रविश्य सूतिकाभवनमालोक्य च तमभिनवं नवं नयननिर्माणस्य फलमिव।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। २२)

गोपाङ्गनाएँ नन्दनन्दनको आशीर्वाद देने लगीं—

चिरजीवौ जसुदा-नंद, पूरन-काम करी।
धनि दिन है , धनि यह राति, धनि-धनि पहर घरी॥
धनि-धन्य महरि कौ कोख, भाग-सुहाग भरी।
जिनि जायौ ऐसौ पूत, सब सुख-फरनि फरी॥
थिर थाप्यौ सब परिवार, मन की सूल हरी॥

पाहि चिरं व्रजराजकुमार!
अस्मानत्र शिशो! सुकुमार!

(श्रीगोपालचम्पूः)

'रे सुकुमार बालक! रे व्रजराजकुमार! तू बड़ा होकर चिरकालतक हम लोगोंकी रक्षा कर।'

बाहर समस्त व्रजगोपोंकी मण्डली गायोंसहित आ पहुँची है—

सुन ग्वालनि गाइ बहोरि, बालक बोलि लए।
गुहि गुंजा घसि वनधातु, अंगिनि चित्र ठए॥
सिर दधि-माखन के माट, गावत गीत नए।
डफ-झाँझ-मृदंग बजाइ, सब नँद-भवन गए॥

नन्दजी सबसे यथायोग्य मिलते हैं। आनन्दमें उन्मत्त-से हुए गोप हल्दी-दही छींटते हुए विविध भाव-भङ्गिमाओंका प्रदर्शन कर रहे हैं—

मिलि नाचत करत कलोल, छिरकत हरद-दही।
मानु बरषत भादौं मास, नदी घृत-दूध बही॥
जब जहाँ-जहाँ चित जाइ, कौतुक तहीं-तहीं।
सब आनँद मगन गुवाल, काहूँ बदत नहीं॥
इक धाइ नंद पै जाइ, पुनि-पुनि पाइ परैं।
इक आपु आपुहीं माहिं, हँसि-हँसि मोद भरैं।
इक अभरन लेहिं उतारि, देत न संक करैं।
एक दधि-रोचन अरु दूब सबनि के सीस धरैं॥

गोपोंका आनन्दोन्माद उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है। बूढ़े व्रजेन्द्रको भी उन सबने अपने बीचमें ले लिया है और इतना दूध, दही, घृत और नवनीत ढरकाया है कि नदी-सी बह चली है। दूध-दहीके अनेक गम्भीर गर्त बन गये हैं। उनमें लोटते हुए गोपोंका शरीर सर्वथा उज्ज्वल दीखने लगा है, मानो ये गोप दुग्धसागरकी चञ्चल तरङ्गें हों।

व्रजेन्द्र कभी तो इस दूध-दहीकी नदीमें स्नान करने आते हैं, कभी रत्नराशि लुटानेके लिये द्वारदेशपर खड़े हो जाते हैं। याचनाकी आवश्यकता नहीं, कोई भी विद्योपजीवी आकर खड़ा हुआ कि नन्दराज रत्नोंकी झोली, वस्त्रोंकी गठरी और गोधनकी टोली लेकर उसके पास जा पहुँचे; सदाके लिये उसका मँगतापन मिटा दिया। व्रजेश-कुलके सूत, मागध, बंदीजन आज अयाची बन गये—इसमें तो कहना ही क्या है।

व्रजेन्द्र जो इतनी सम्पत्ति लुटा रहे हैं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। उनका भंडार ही अब अनन्त, असीम बन गया है; क्योंकि सारे विश्वकी समस्त सम्पत्ति जिनकी चरणसेविका लक्ष्मीजीकी आंशिक विभूति है, वे स्वयं आज पुत्रके रूपमें व्रजेशके घर पधारे हैं। प्राकृत भंडारकी सीमा होती है, उसमेंसे कुछ निकालनेपर उतना अंश कम हो जाता है, उतने अंशकी पूर्णता अपेक्षित होती है। पर व्रजेशका भंडार प्राकृत नहीं; वह ऐसा है कि उसमेंसे जितना वे निकालेंगे, उतना ही बचा रह जायगा। अपनी जानमें सम्पूर्ण निकाल लेंगे तो भी उसमें सम्पूर्ण बचा रहेगा। इसीलिये उनके देनेमें आज विराम नहीं, हिसाब नहीं; देते ही चले जा रहे हैं। हाँ, देते समय व्रजेशके वात्सल्य-प्रेमपरिभावित मनमें निरन्तर केवल एक भावना है—

अनेन प्रीयतां विष्णुस्तेन स्तान्मे सुते शिवम्।

(श्रीगोपालचम्पूः)

'इस दानसे मेरे इष्टदेव नारायण प्रसन्न हों, उनकी प्रसन्नतासे मेरे पुत्रका कल्याण हो।'

भीतर, अन्तःपुरमें हरिद्रा-तैलकी कीच मची है। गोपाङ्गनाएँ परस्पर एक-दूसरेपर हल्दी-तेल छिड़क रही हैं। छिड़कती हुई बाहर आती हैं और व्रजेन्द्रकी एवं गोपोंकी दशा देखकर आनन्दमें निमग्न होकर गाने लगती हैं—

पश्य सखीकुल! गोकुलराजं
पुत्रोत्सवमनु खेलाभाजम्।
उदधिप्रभदधिसम्प्लवदेशं
परितो घूर्णितमन्दरवेशम्॥
मध्यधटीफणिराजे कृष्टं
हृद्यसुहृद्भिरतीव च हृष्टम्।
मध्ये मध्ये दुर्लभदानं
ददतं दधतं विस्मयभानम्॥
एकं पुनरलमभवदपूर्वं
अजनि विधुर्वत यदितः पूर्वम्॥*

(श्रीगोपालचम्पूः)

आज व्रजेश्वरने सबसे अधिक सम्मान श्रीरोहिणीजीका किया है। आजका सम्मान रोहिणीने स्वीकार भी कर लिया है। इससे पूर्व रोहिणीने कभी नन्द-घरके सुन्दर वस्त्र, सुन्दर आभूषणोंकी ओर ताकातक नहीं था। वे सदा पतिवियोग, पति-बन्धनसे मन-ही-मन खिन्न रहती थीं। पर आज यशोदानन्दनका मुख देखते ही रोहिणीका रोम-रोम आनन्दमें निमग्न हो गया। इसीसे वे नन्दप्रदत्त दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर पुर-महिलाओंके सत्कारमें लगी हुई हैं।

दिन बीत चुका है। पर गोप-गोपाङ्गनाओंका उत्साह शिथिल नहीं हुआ। अभी भी उसी नृत्य, उसी आनन्द-कोलाहलसे नन्द-प्रासाद मुखरित हो रहा है। एक वृद्ध

---

* सखियो! गोकुलेश्वर नन्दजीको तो देखो। पुत्रोत्सवके आनन्दमें निमग्न होकर आज वे कितने चञ्चल, कितने कौतुक-परायण हो रहे हैं। बहनो! यह सामनेका दृश्य देखकर मुझे तो सागर-मन्थनकी स्मृति हो रही है। देखो तो सही, दहीसे भरा हुआ यह व्रज सागर-जैसा हो गया है और उसमें मन्दर-पर्वत-से होकर नन्दजी सर्वत्र घूम रहे हैं। उनकी कमरमें लपेटा हुआ वस्त्र, घृत-दधिसे चिकना होकर, फूलकर ठीक वासुकि नाग-जैसा बन गया है। उसे पकड़कर उनके प्रिय सुहृद्जन उन्हें इधर-उधर खींच ले जा रहे हैं और वे अतिशय प्रसन्न हो रहे हैं। इतना ही नहीं, जैसे समुद्र-मन्थनके समय अनेक रत्न निकल रहे थे, मन्दर-पर्वत सागरके रत्नोंको निकाल-निकालकर फेंक रहा था,वैसे ही ये नन्दजी बीच-बीचमें रत्नराशि लुटाने लग जाते हैं। अहा! आज इनकी कैसी आश्चर्यमयी शोभा है। पर बहनो! क्या बताऊँ, आश्चर्यकी कोई सीमा नहीं, इस सागर-मन्थनमें तो एक अपूर्व बात हुई है। सर्वत्र प्रसिद्ध है—चन्द्रमा मन्थन प्रारम्भ होनेपर—सागर मथे जानेपर निकले थे; पर नन्दका यह शिशु-चन्द्र तो मन्थन प्रारम्भ होनके पूर्व ही प्रकट हो गया।

बन्दी भी दिनभरसे अतिशय सुमधुर कण्ठसे गाता रहा है। दिनभर उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती रही है। अब सूर्य अस्ताचलको जा रहे हैं, पर वह अब भी पीली पगड़ी बाँधे सहनाईवालेके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रहा है—

आज कहूँ ते या गोकुल में अद्भुत बरषा आई।
मनिगन-हेम-हीर-धारा की ब्रजपति अति झरि लाई॥
बानी बेद पढ़त द्विज-दादुर हिऐं हरषि हरियारे।
दधि-घृत-नीर-छीर-नाना रँग बहि चले खार-पनारे॥
पटह-निसान-भेरि-सहनाई महा गरज की घोरें।
मागध-सूत बदत चातक-पिक, बोलत बंदी-मोरें॥
भूषन-बसन अमोल नंदजू नर-नारिन पहराए।
साखा-फल-दल-फूलन मानों उपबन झालर लाए॥
आनँद भरि नाचत ब्रजनारी पहिरें रँग-रँग सारी।
बरन-बरन बादरन लपेटी विद्युत न्यार-न्यारी॥
दरिद्र-दवानल बुझे सबन के जाचक-सरबर पूरे।
बाढ़ी सुभग सुजस की सरिता, दुरित-तीरतरु चूरे॥
ऊल्ह्यौ ललित तमाल बाल एक, भई सबन मन फूल।
छाया हित अकुलाय गदाधर तक्यौ चरन कौ मूल॥

शिशु श्रीकृष्णका अन्नप्राशन-महोत्सव, कुबेरके द्वारा गोकुलमें स्वर्णवृष्टि

शिशिरका ब्राह्ममुहूर्त है। दो घड़ी पश्चात् माघशुक्ला चतुर्दशीका प्रभात होगा। इसीके साथ व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनका उत्सव-समारोह भी आरम्भ होगा, मानो इसकी सूचना प्रातः-समीरको भी मिल चुकी है। इसीलिये वह गवाक्षरन्ध्रोंके पथसे आया; आकर प्रथम पर्यङ्कशायिनी व्रजेन्द्रमहिषीके, फिर उनके वक्षःस्थलपर विराजित निद्रित व्रजेन्द्रनन्दन कृष्णचन्द्रके पादारविन्द उसने स्पर्श किये। स्पर्शसे कृतार्थ होकर राशि-राशि कुन्दपुष्पोंसे संचित परिमल अपने दुकूलसे निकालकर शयनागारमें सर्वत्र बिखेर दिया। उत्सवके उपलक्षमें अपनी क्षुद्र भेंट चढ़ा दी तथा फिर अतिशय शीघ्रतासे आनन्दातिरेकवश चञ्चल होकर 'झुर-झुर' शब्द करता हुआ अन्य व्रजवासियोंको जगाने चला गया।

व्रजरानी तो जागी हुई ही हैं। वे सारी रात क्षणभरके लिये भी सो नहीं सकी हैं, फिर भी रात्रि कब कैसे समाप्त हो गयी, यह उन्होंने नहीं जाना। जानतीं कैसे? वे तो अनेक सुखमय मनोरथोंकी कल्पनामें विभोर थीं, नीलमणिका भावी अन्नप्राशन प्रत्यक्ष वर्तमान-सा बनकर नेत्रोंमें भरा था। वे उस दृश्यमें, अपने नीलमणिमें तन्मय हो रही थीं; किंतु प्रातः-समीरके स्पर्शसे जननीके प्रशान्त वात्सल्यसिन्धुमें एक कम्पन हुआ। उसमें एक लहर उठ आयी। जननीके कृष्णमय मन-प्राण इस लहरीसे सिक्त हो गये एवं तत्क्षण उनमें स्फुरणा हुई—कहीं मेरे नीलमणिके अङ्ग अनावृत हों, शिशिरकी शीतल वायुसे उनमें ठंढ लग गयी तो? बस, व्रजरानी तुरंत उठ बैठीं एवं वस्त्र सँभालने लगीं। वास्तवमें ही यशोदानन्दनके श्रीअङ्गोंसे कहीं-कहीं वस्त्र हट गये थे। जननी उन्हें गोदमें लेकर वस्त्रोंसे ढँकने लगीं। इसी समय उनका ध्यान नीलमणिके वक्षःस्थलकी ओर गया, वक्षः-स्थलपरका श्रीवत्सचिह्न मणिदीपके प्रकाशमें स्पष्ट चम-चम कर रहा था; किंतु जननीको पुनः भ्रम हो ही गया। इससे पूर्व भी जननी कई बार भ्रमित हो चुकी हैं। इस भ्रमका प्रारम्भ तो प्रथम स्तनदानके समय हुआ था। उस समय जातकर्मके पश्चात् जननी स्तन्यपान करा रही थीं। पुत्रके प्रत्येक अङ्गका सौन्दर्य निरखती हुई जननीने हृदयकी ओर देखा था। हृदयके दक्षिण भागमें रोमावलीका अनादिसिद्ध श्रीवत्स नामक चिह्न अङ्कित था ही। उसकी शोभा भी अद्भुत ही थी, मानो मृणालतन्तुओंका चूर्ण एकत्र हो गया हो! वैसा ही सुन्दर, वैसा ही सुस्निग्ध! किंतु श्रीवत्सको देखकर जननीने तो यह समझा था—मैं शिशुको स्तन्य पिला रही हूँ, मेरे स्तनक्षरित दुग्धकण ही पुत्रके कपोलपर होते हुए वक्षःस्थलपर आ ढलके हैं; उन दुग्धकणोंसे ही यह चिह्न निर्मित हो गया है। इतना ही नहीं, जननी सुकोमलतम सूक्ष्म वस्त्राञ्चलसे धीरे-धीरे उसे पोंछ देनेका प्रयत्न करने लगी थीं; किंतु चिह्न मिटता न था। जब वस्त्रसे उस चिह्नका मार्जन न कर सकीं, तब वे सोचने लगी थीं कि सम्भवतः यह किसी महापुरुषका लक्षण हो—

वक्षसि दक्षिणभागे मृणालतन्तुक्षोदसोदरसुभग-सुस्निग्धश्रीवत्साख्यरोमराजिलक्ष्म लक्षयित्वा स्तनरस-कणनिपातविन्यासविशेषोऽयमिति पुनरपि मृदुतर-

चीनसिचयाञ्चलेनापसारयन्ती यदा तन्नापसरति, तदा किमपीदं महापुरुषलक्षणमिति चिन्तयन्ती।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः २। १७)

इसी तरह आज पुनः पूर्वकी भाँति जननीको एक क्षणके लिये भ्रम हो जाता है कि निद्रित नीलमणिके अधरोंसे क्षरित दुग्धकण ही यहाँ आकर इस रूपमें परिणत हो गये हैं। अवश्य ही इस बार वे मार्जन करने नहीं जातीं; क्योंकि तुरंत ही अन्तर्वृत्ति सचेत कर देती है। जननी अपनी भूलपर मन्द-मन्द मुसकराती हुई वस्त्रोंसे शीत-निवारणकी उचित व्यवस्था करके पुत्रको हृदयसे लगा लेती हैं।

सूर्योदयमें अभी विलम्ब है, किंतु गोपसुन्दरियोंके दल-के-दल नन्द-प्राङ्गणमें एकत्र होने लगे। घड़ीभर दिन चढ़ते-चढ़ते तो नन्दभवन गोप-वनिताओंसे सर्वत्र परिपूर्ण हो गया। नन्दभवनमें पुर-महिलाओंके लिये समय-असमयकी रोकथाम तो है नहीं तथा व्रजपुरमें नन्दनन्दनके अन्नप्राशनमुहूर्तकी सूचना फैल चुकी है। इसलिये आज यमुना-स्नान करके कितनी ही गोपसुन्दरियाँ तो घर भी नहीं गयीं, सीधे नन्दभवनमें ही चली आयीं। जिनके अतिशय अल्पवयस्क पुत्र हैं, उन्हें ही आनेमें कुछ विलम्ब हुआ; पर आयीं सब। छोटे शिशुओंको गोदमें लिये, किंचित् वयस्क पुत्रोंकी अँगुली पकड़े, मङ्गलगीत गाते आती हुई गोपसुन्दरियोंकी मधुर कण्ठध्वनिसे सुमधुर झन्-झन्, झिन्-झिन्, रुन-झुन, रुन-झुन, कङ्कण-किङ्किणी-नूपुरध्वनिसे राजपथ तथा राजपथके दोनों ओर स्थित उत्तुङ्ग प्रासाद प्रतिशब्दित—प्रतिध्वनित होने लगे। उन गोपाङ्गनाओंकी प्रत्येक भावभङ्गीसे एक अद्भुत वात्सल्य, अप्रतिम मातृभावका निर्झर झरता जा रहा है।

उपनन्दजीने आदेश दे रखा है कि आज मध्याह्नतक गोचारण स्थगित रहे। व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशनके पश्चात् समय रहनेपर गायें निकटवर्ती वनमें कुछ समय घुमा ली जायँ। अतः गोपमण्डली भी शीघ्रतासे गायोंको दुहकर, उनके सामने प्रचुर हरित-तृण डालकर तथा स्वयं स्नान आदि समाप्तकर, विविध वेशभूषासे अलंकृत होकर नन्दभवनकी ओर उमड़ पड़ती है। उनकी पत्नियाँ, माताएँ तो पहले ही चली गयी हैं। गायोंकी व्यवस्था करनेके लिये ये रुके थे। उनकी व्यवस्था तो इन्होंने कर भी दी। किंतु शीघ्र-से-शीघ्र नन्दभवन पहुँचनेकी, नेत्रोंसे नन्दनन्दनको जी भरकर निहारनेकी प्रबल उत्कण्ठावश दूधकी उचित व्यवस्था ये नहीं ही कर सके। दुहे हुए दूधसे पूर्ण भाण्डोंको घर पहुँचानेतकका भी धैर्य इनमें न रहा। कुछ ही भाण्ड घर आये, अधिकांश गोष्ठमें ही रह गये; और तो क्या, बहुत-सी गायें बिना दुहे ही रह गयीं। गोवत्सोंको यों ही उन्मुक्त कर दिया गया। चौकड़ी भरते हुए बछड़े अपनी माताओंसे जा मिले। इसी अवस्थामें उन्हें छोड़कर गोप द्रुतगतिसे नन्दालयकी ओर चल पड़े।

यथासमय व्रजरानी नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पुत्रको गोदमें लिये आँगनमें चली आती हैं। गोपाङ्गनाओंकी अपार भीड़ उन्हें चारों ओरसे घेर लेती है। निकटतम कुटुम्बियोंको नन्दरानीने दासी भेजकर निमन्त्रित किया है। वे सब आ गयी हैं। व्रजरानी एक बार भंडारकी ओर जाती हैं। वहाँ पुत्रको गोदमें लिये श्रीरोहिणीजी सारी व्यवस्था कर रही हैं—

आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।
मनि-कंचन के थार भराए, भाँति-भाँति के बासन॥

श्रीरोहिणीजीका यह परिश्रम देखकर व्रजरानीकी आँखोंमें स्नेह-जल भर आता है। सजल नेत्रोंसे वे कुछ क्षण रोहिणीजीकी ओर देखकर फिर उन निमन्त्रित कुटुम्बी व्रजवधुओंकी ओर देखने लगती हैं। इतना संकेत पर्याप्त है। वे शतशः व्रजवधुएँ तुरंत ही पकवान बनानेमें जुट पड़ती हैं—

नंद-घरनि ब्रज-बधू बुलाईं, जे सब अपनी पाँति।
कोउ ज्यौनार करति, कोउ घृत-पक, षटरस के बहु भाँति॥
बहुत प्रकार किए सब ब्यंजन, अमित बरन मिष्टान।
अति उज्ज्वल-कोमल-सुठि-सुंदर, देखि महरि मन मान॥

व्रजेन्द्रका उत्साह तो देखने योग्य ही है। उनकी योजना ऐसी है कि उनके पुत्रका अन्नप्राशन-उत्सव अतीत एवं भविष्यके इतिहासमें अद्वितीय बन जाय। नन्द-प्रासादसे संलग्न, कालिन्दीतीरपर्यन्त विस्तीर्ण सुमनोहर नन्दोद्यानमें व्रजेन्द्रने एक नयी सृष्टि-सी रच दी है। उस सुरम्य उद्यानमें नौ छोटी-छोटी नदियोंका निर्माण हुआ है। जलकी नदियाँ

नहीं, विभिन्न भोज्यरसोंकी। पहली नदी दधिकी है, उसमें दधिकी धवल धारा बह रही है, दोनों तट दधिसे भरपूर हैं। दूसरी गोदुग्धकी नदी है, निर्मल उज्ज्वल शीतल दुग्ध प्रवाहित हो रहा है। तीसरी नदी घृतकी है, पीतवर्णा यह घृत-नदी मन्दगतिसे प्रवाहित हो रही है, दोनों किनारे घृतसिक्त हो गये हैं। चौथी गुड़की नदी है, पीताभ गुड़की यह पयस्विनी अत्यन्त स्थिर-सी है—मानो सचमुच ही किसी नदीकी पीताभ जलधारा हिमके संयोगसे जम गयी हो, ऐसी इस गुडकुल्या (गुड़की नदी)-की शोभा है। पाँचवीं तैल-नदी प्रवाहित हो रही है, मन्द मन्थरगतिसे धीरे-धीरे यमुनाकी ओर इसकी गति है। छठी नदी अत्यन्त विस्तीर्ण है, यह मधुकुल्या है, इसमें मधुधारा बह रही है। सातवीं नवनीत-नदी है, उज्ज्वल हिमपिण्डकी भाँति नवनीतखण्ड जम-से गये हैं। अत्यन्त शान्त-सी प्रतीत हो रही है। इसका प्रवाह परिलक्षित नहीं होता। इन सातके अतिरिक्त तक्र-नदियाँ भी हैं। ये कई हैं तथा द्रुतगतिसे झर-झर करती हुई यमुनाकी ओर भागी जा रही हैं। कुछ शर्करोदक नदियाँ हैं, इनकी शर्करामिश्रित मिष्ट जलधाराएँ अत्यन्त प्रखर गतिसे उद्यानकी परिक्रमा कर रही हैं।

इन नदियोंके मध्यवर्ती देशमें उज्ज्वल प्रस्तरखण्डोंसे पटी हुई भूमिपर व्रजेन्द्रने शालितण्डुलोंके एक शत एवं पृथुकतण्डुलों (चिउरों)-के एक शत पर्वत बनवाये हैं। वहीं सात लवण-पर्वतोंका भी निर्माण करवाया है। इसी तरह शर्कराके सात एवं लड्डूके सात पर्वत निर्मित हुए हैं। परिपक्व सुमधुर फलोंके सोलह पर्वत रचे गये हैं। यवचूर्ण (जौके आटे) तथा गोधूमचूर्ण (गेहूँके आटे)-के भी अनेक पर्वत बने हैं। मोदकोंका पर्वत निर्मित हुआ है। विशेष कौशलसे निर्मित, अत्यन्त सुस्वादु, एक प्रकारकी पूरियोंके अनेक पर्वत खड़े किये गये हैं। इन पूरियोंके पर्वतोंपर राशि-राशि सुसंस्कृत लड्डू रख दिये गये हैं। इनसे कुछ हटकर व्रजेन्द्रने सात कौड़ियोंके पर्वत बनवाये हैं। वहींपर सुवासित जलयुक्त, कर्पूरादिमिश्रित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-कुंकुम-समन्वित ताम्बूलोंका अत्यन्त विस्तृत, परंतु द्वारहीन एक मन्दिर निर्माण करवाया है। विभिन्न जातिकी रत्नराशि एवं सुवर्ण, सुरम्य मुक्ताफल तथा प्रवालपुञ्ज ढेर-के-ढेर यथास्थान रख दिये गये हैं। रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर आभूषणोंके स्तूप लग गये हैं—

दधिकुल्यां दुग्धकुल्यां घृतकुल्यां प्रपूरिताम्॥
गुड़कुल्यां तैलकुल्यां मधुकुल्यां च विस्तृताम्।
नवनीतकुल्यां पूर्णां च तक्रकुल्यां यदृच्छया॥
शर्करोदककुल्यां च परिपूर्णां च लीलया।
तण्डुलानां च शालीनामुच्चैश्च शतपर्वतान्॥
पृथुकानां शैलशतं लवणानां च सप्त च।
सप्त शैलाञ्छर्कराणां लड्डुकानां च सप्त च॥
परिपक्वफलानां च तत्र षोडश पर्वतान्।
यवगोधूमचूर्णानां पक्वलड्डुकपिण्डकान्॥
मोदकानां च शैलं च स्वस्तिकानां च पर्वतान्।
कपर्दकानामत्युच्चैः शैलान् सप्त च नारद॥
कर्पूरादिकयुक्तानां ताम्बूलानां च मन्दिरम्।
विस्तृतं द्वारहीनं च वासितोदकसंयुतम्॥
चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमेन समन्वितम्।
नानाविधानि रत्नानि स्वर्णानि विविधानि च॥
मुक्ताफलानि रम्याणि प्रबालानि मुदान्वितः।
नानाविधानि चारूणि वासांसि भूषणानि च॥
पुत्रान्नप्राशने नन्दः कारयामास कौतुकात्।

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णजन्मखण्ड, अ० १३, १५२—१६२)

जिस आँगनमें श्रीकृष्णचन्द्र अन्नप्राशन करेंगे, उसे भी व्रजेन्द्रने स्वयं उपस्थित रहकर सजाया है। सुमार्जित, चन्दनवारिसे सर्वत्र सिक्त विशाल सुन्दर प्राङ्गणमें चारों ओरसे ऊँचे-ऊँचे सघन कदलीस्तम्भ खड़े कर दिये गये हैं। कदलीस्तम्भोंपर यथास्थान सूक्ष्म वस्त्रोंमें ग्रथित आम्र-नवपल्लव टँगे हैं। स्थान-स्थानपर फल-पल्लवसमन्वित, चन्दन-अगुरु-कस्तूरी-पुष्पपरिशोभित अनेक मङ्गलकलश रखे हैं। कलशके समीप पुष्प-समूहोंके, चित्र-विचित्र वस्त्रोंके ढेर लगे हैं। ब्राह्मणोंके विराजनेके लिये यथास्थान आसन एवं उनकी पूजाके लिये मधुपर्कपूरित अनेक पात्र रखे हैं तथा शत-शत स्वर्णसिंहासन दानके लिये सजा-सजाकर रखे हुए हैं।

यह सारी व्यवस्था व्रजेन्द्रने केवल तीन पहरमें की है। असंख्य गोपसेवकोंको लेकर आधी रातके समय व्रजेश्वरने कार्य प्रारम्भ किया था। पहर दिन चढ़ते-चढ़ते सारी व्यवस्था पूर्ण हो गयी है। अब इधर रेवती नक्षत्र भी प्रारम्भ हो चुका है। शुभ योग भी आ गया है। आज चन्द्र तो मीन लग्नमें अवस्थित हैं ही। ब्राह्मण भी कदलीमण्डपमें पधार गये हैं। अतः अविलम्ब क्रिया आरम्भ हो जाती है।

शास्त्र-विधिका अनुसरण करते हुए व्रजेन्द्र, व्रजरानी दोनों ही पुनः मङ्गलस्नान करते हैं। स्वयं निवृत्त होकर फिर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको स्नान कराती हैं, पश्चात् पूर्वाभिमुख होकर आसनपर नन्ददम्पति विराजते हैं। उस समय व्रजरानीकी गोदमें श्रीकृष्णचन्द्रको देखकर व्रजेन्द्र कुछ क्षणके लिये तो सब कुछ भूल जाते हैं। याजक भूदेवोंकी भी यही दशा होती है। मङ्गलगान करती हुए व्रजाङ्गनाएँ भी श्रीकृष्णचन्द्रकी वह दिव्य छबि देखकर विमुग्ध हो जाती हैं। ब्राह्मण कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होकर आचमन, स्वस्तिवाचन, दीपप्रज्वालन, अर्घ्यस्थापन आदि सम्पन्न कराते हैं; पर उनकी मुद्रा ऐसी हो गयी है, मानो किसी गाढ़ समाधिसे अभी-अभी उठे हों। व्रजेन्द्र भी नान्दीश्राद्ध आदि सभी कर्मोंका समाधान करते जा रहे हैं—किंतु इस तरह, जैसे उनके हाथोंसे कोई अचिन्त्य शक्ति क्रिया करवा दे रही हो, स्वयं वे इस शरीरसे कहीं अलग चले गये हों।

शास्त्रीय कर्मकाण्ड पूरा होते ही एक साथ दुन्दुभि, ढक्का, पटह, मृदङ्ग, मुरज, आनक, वंशी, संनहनी, कांस्य आदि वाद्य बजने लगते हैं। उमंगमें भरे वन्दीजन वाद्य-स्वरमें अपना स्वर मिलाकर गाने लगते हैं। व्रजाङ्गनाएँ तो सुमधुर कण्ठसे पहलेसे ही गा रही हैं। इनके अतिरिक्त इसी समय आकाशपथमें विद्याधरियाँ नृत्य करने लगती हैं और गन्धर्व गान करने लगते हैं। विशुद्ध-प्रेमरस-भावितचित्त व्रजवासी आश्चर्यसे आकाशकी ओर देखते हैं, नृत्य-गानका अनुभव करते हैं, पर किसीको देख नहीं पाते। वे सोचते हैं—सम्भव है, हमारे ही नृत्यगानकी प्रतिध्वनि हो अथवा अभी-अभी व्रजेन्द्रनन्दनके अन्नप्राशन-संस्कार-सम्बन्धी दी हुई आहुतिको ग्रहण करनेके लिये अन्तरिक्षमें जो देववृन्द पधारे थे, उन्हीका नर्तन-गायन हो, अस्तु!

अब तुमुल आनन्द-कोलाहलसे पुलकित होते हुए व्रजेन्द्र अपने पुत्रके अधरसे अन्नका स्पर्श कराते हैं—

> घरी जानि सुत-मुख-जुठरावन नँद बैठे लै गोद।
> महर बोलि बैठारि मंडली, आनँद करत विनोद॥
> कनक-थार भरि खीर धरी लै, तापर घृत-मधु नाइ।
> नँद लै-लै हरि मुख जुठरावत, नारि उठीं सब गाइ॥
> षटरस के परकार जहाँ लगि, लै-लै अधर छुवावत।
> बिस्वंभर जगदीस जगत-गुरु, परसत मुख करुवावत॥

जिस समय व्रजेन्द्र तीक्ष्ण, कटु, अम्ल, लवण रसोंका कृष्णचन्द्रके अधरोंसे स्पर्श कराते हैं, उस समय वे अभिनव बाल्यमाधुरीका प्रकाश करते हुए अपने होठ सिकोड़ने लगते हैं। ओह! जो अपने एक क्षुद्र अंशमें स्थित अनन्त ब्रह्माण्डको क्षणभरमें चूर्ण-विचूर्णकर विलीन कर लेते हैं, ऐसे अनन्त महाप्रलय, महाभोजनके समय भी जिनमें विकृति नहीं आती, उनका कणिकामात्र तीक्ष्ण, कटु आदि रसोंसे मुख करुआना—मुख विकृत करना कितना आश्चर्यमय है, यह कितना मोहक लीला-विलास है!

व्रजेन्द्रको भी ऐसा प्रतीत हुआ कि ऐसे सुकोमलतम पाटलदलसदृश अधरोंपर तीक्ष्ण, कटु रस रखना अत्याचार है, महान् क्रूरता, अत्यन्त नृशंसता है। इसलिये उन्होंने अतिशय शीघ्रतासे जल लेकर श्रीकृष्णके अधरोंको पोंछ दिया, पोंछकर व्रजरानीकी गोदमें उन्हें रख दिया।

> तनक-तनक जल अधर पोंछि कै, जसुमति पै पहुँचाए।

व्रजरानी गोदमें लेकर चाहती हैं कि इसे छोड़ूँ ही नहीं, हृदयसे लगाये ही रहूँ; पर अन्य व्रजाङ्गनाओंकी व्याकुलता देखकर वे द्रवित हो जाती हैं। पासमें खड़ी, यशोदानन्दनको हृदयपर धारण करनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित एक गोपीकी गोदमें वे पुत्रको रख देती हैं। फिर तो क्रमशः गोदमें ले-लेकर मुख चूम-चूमकर गोपसुन्दरियाँ कृतार्थ हो जाती हैं—

> हरषवंत जुबती सब लै-लै, मुख चूमतिं उर लाए।

इन सब कामोंसे निवृत्त होकर व्रजेन्द्र अगणित ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। दक्षिणाका तो कहना ही क्या है। इतनी प्रचुर

दक्षिणा प्रत्येक ब्राह्मणको मिली है कि वे ढो नहीं सकते। इनके अतिरिक्त कितना दान हुआ, इसकी इयत्ता करना सम्भव नहीं। वे सब अन्नादिके पर्वत भी वितरण कर दिये गये। दधि-दुग्धकी नदियोंके लिये तो कोई प्रतिबन्ध ही नहीं है। जो चाहे, जितना चाहे, उसमेंसे ले सकता है। बहुतोंने लिये भी, पर वह तो नदी है, चतुर्थांश भी रिक्त न हो सकी। इसलिये वह आनन्दोन्मत्त हुए गोपोंकी, गोपबालकोंकी क्रीडास्थली बन गयी। उसमें कूद-कूदकर वे स्नान करने लगे। व्रजेन्द्रने सोच-समझकर ही इनका निर्माण कराया था। व्रजेन्द्रनन्दनके जन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें दूध-दही बिखेरकर गोपोंने दधि-दुग्धकी धारा बहा दी थी, गर्त बना दिये थे। आज व्रजेन्द्रने उनका आनन्द-वर्द्धन करनेके लिये अपनी ओरसे दधि-दुग्ध आदिकी नदियाँ बहा दीं।

ब्राह्मण-भोजन, अतिथि-सत्कार समाप्तकर गोपकुलके साथ व्रजेन्द्र भोजन करने बैठते हैं—

महर गोप सबही मिलि बैठे, पनबारे परसाए।
भोजन करत अधिक रुचि उपजी, जो जाकैं मन भाए॥

व्रजेन्द्र भोजन करके उठे ही थे कि कुछ गोपबालकोंने आकर कहा—'बाबा! हम लोग तो यहाँ थे,उत्सवमें विभोर थे, पीछेसे किसीने आकाशसे समस्त गोकुलमें स्वर्णकी वृष्टि की है।' वास्तवमें ही वृष्टि हुई थी। कुबेर दर्शनकर कृतार्थ होनेकी आशासे श्रीकृष्णचन्द्रका अन्नप्राशन देखने आये थे। मनमें आया—अपने स्वामी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको मैं क्या भेंट चढ़ाऊँ? मेरे पास है ही क्या? सब वस्तु तो उनकी ही है, पर उनकी वस्तु ही उन्हें अर्पण कर देनेपर वे प्रसन्न हो जाते हैं; फिर संकोच क्या है। लो नाथ! मेरा यह क्षुद्र उपहार तुम्हारी प्रीतिका कारण हो। यह सोचकर कुबेरने तीन मुहूर्ततक स्वर्ण-वृष्टि करके गोकुलको परिपूर्ण कर दिया था—

त्रिमुहूर्तं कुबेरश्च श्रीकृष्णप्रीतये मुदा।
चकार स्वर्णवृष्ट्या च परिपूर्णं च गोकुलम्॥

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृष्णजन्मखण्ड, अ० १३। १७७)

गोप इस स्वर्ण-वृष्टिसे चकित अवश्य हुए, परंतु यह उनके आदरकी वस्तु नहीं बन सकी। कैसे बने? जिन व्रजवासियोंके सामने व्रजेन्द्रनन्दन हैं, उनके लिये इस तुच्छातितुच्छ स्वर्णराशिका मूल्य ही क्या है? ऐश्वर्यज्ञानविहीन विशुद्ध प्रेमके आस्वादनमें ये व्रजगोप, गोपसुन्दरियाँ तो तन्मय हैं। उनके लिये व्रजेन्द्रनन्दन तत्त्वतः क्या हैं, इसके अनुसंधानकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वस्तुस्थिति तो अनुसंधानकी अपेक्षा नहीं रखती। वह तो जो है, वह रहेगी ही। ये व्रजेन्द्रनन्दन ही तो आत्माके आत्मा हैं, प्रियोंके भी प्रियतम हैं; इन्हींके लिये देहादि भी प्रिय है, इनसे प्रेम करनेमें ही जीवनकी परम सार्थकता है—शेषशायी पुरुषके रूपमें व्रजेन्द्रनन्दनने ही तो यह कहा है—

अहमात्माऽऽत्मनां धातः प्रेष्ठः सन् प्रेयसामपि।
अतो मयि रतिं कुर्याद् देहादिर्यत्कृते प्रियः॥

(श्रीमद्भा० ३। ९। ४२)

ऐसे इन स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनको पाकर इनके प्रति अपना मन-प्राण न्योछावर कर देनेवाले व्रजपुरवासियोंके लिये तो कुबेरका वैभव अत्यन्त नगण्य है। वे भला इस तुच्छ वस्तुको क्या आदर दें?

इस तरह व्रजेन्द्रनन्दनका अन्नप्राशन-संस्कार समाप्त हुआ। उस दिनकी संध्या आयी, रात्रि आयी, फिर नूतन प्रभात आया। जननी यशोदा एवं व्रजवासियोंके लिये ये आठ पहर क्षणके समान बीत गये। जननी तो आठों पहर श्रीकृष्णचन्द्रका मुख ही देखती रही हैं। एक दिनसे नहीं, पाँच महीने इक्कीस दिन हो गये हैं। इतने दिनसे वे निरन्तर पुत्रकी छबि देखती आयी हैं और बलिहार जाती रही हैं—

जननी देखि छबि, बलि जाति।
जैसैं निधनी धनहिं पाएँ, हरष दिन अरु राति॥
बाल-लीला निरखि हरषति, धन्य-धन्य ब्रजनारि।
निरखि जननी-बदन किलकत, त्रिदस-पति दै तारि॥
धन्य नँद, धनि धन्य गोपी, धन्य ब्रज कौ बास।
धन्य धरनी-करन-पावन-जन्म सूरजदास॥

श्रीकृष्णकी मनोहर बाललीलाएँ

निर्मल चन्द्रज्योत्स्नासे उद्भासित नन्द-प्राङ्गणमें व्रज-पुरन्ध्रियोंके तालबन्धपर श्रीकृष्णचन्द्र नृत्य कर रहे हैं—

निर्मञ्छनं तव भजाम कुलेश-लाल्य!
बाल्यातिमोहन! बलानुज! नृत्य नृत्य।
इत्यङ्गनाभिरुदितस्थि थि थि थि थीति
क्लृप्तेन तालवलयेन हरिर्ननर्त्त॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

'व्रजेशदुलारे! अपनी बाल्यचेष्टासे विमोहित करनेवाले! हम सब तेरी बलिहार जायँ। तू नाच दे! नाच दे! बलराम-अनुज! यह ले—'थेई थेई थेई तत्त थेई '—इस प्रकार मनुहार करती हुई व्रजसुन्दरियाँ ताल देने लगीं एवं श्रीकृष्णचन्द्र नाचने लगे।

आजसे पंद्रह दिवस पूर्व, अशोक-आलवाल (थाल्हे)-में अर्घ्य समर्पण करते हुए, वृक्षशाखाकी ओटसे व्रजेन्द्रमहिषीने अपने नीलमणिका सर्वप्रथम नृत्य देखा था—

हरि अपनैं आँगन कछु गावत।
तनक-तनक चरननि सौं नाचत, मनहिं मनहिं रिझावत॥
बाहँ उठाइ काजरी-धौरी गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुँक बाबा नंद पुकारत, कबहुँक घर मैं आवत॥
माखन तनक आपनैं कर लै, तनक बदन मैं नावत।
कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ मैं, लौनी लिए खवावत॥
दुरि देखति जसुमति यह लीला, हरष अनंद बढ़ावत।
सूर स्याम के बाल-चरित, नित नितही देखत भावत॥

जननी अशोक-पूजन भूल गयीं। अर्घ्यपात्र हाथोंमें ही रह गया। निर्निमेष नयनोंसे नीलमणिका अद्भुत अस्फुट गायन, रुनझुन-रुनझुन तालसमन्वित नर्तन देखती हुई न जाने कितने समयके लिये वे आत्मविस्मृत हो गयीं।

इसके दूसरे दिन प्राणोंकी उत्कण्ठा लिये व्रजेन्द्र आये। पुत्रका वह मनोहर नृत्य उन्होंने देखना चाहा, किंतु पिताको देखकर श्रीकृष्णचन्द्र किंचित् संकुचित होने लगे। जननीने उन्हें गोदमें उठा लिया, कपोलोंको बारम्बार चूमकर वात्सल्यकी धारामें स्नान कराने लगीं। जब इस रसधारामें वह संकोच बह चला, तब जननी उन्हें पुनः मणिभूमिपर खड़ा करके प्रोत्साहन देने लगीं—

बलि-बलि जाउँ मधुर सुर गावहु।
अबकी बार मेरे कुँवर कन्हैया, नंदहि नाचि दिखावहु॥
तारी देहु आपने कर की, परम प्रीति उपजावहु।
आन जंतु-धुनि सुनि कत डरपत, मो भुज कंठ लगावहु॥
जनि संका जिय करौ लाल मेरे, काहे कौं भरमावहु।
बाहँ उचाइ काल्हि की नाईं, धौरी धेनु बुलावहु॥
नाचहु नैंकु, जाउँ बलि तेरी, मेरी साध पुरावहु।
रतन-जटित किंकिनि पग-नूपुर, अपनैं रंग बजावहु॥
कनक-खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक, लवनी ताहि खवावहु।
सूर स्याम मेरे उर तैं कहुँ टारे नैंकु न भावहु॥

बस, जननीका प्रेमनिर्बन्ध और पिताके प्राणोंकी लालसा—दोनोंने श्रीकृष्णचन्द्रको नचा ही तो दिया। नूपुरकी रुनझुन-रुनझुन तालपर करताली देते हुए वे नाचने लगे। उनके साथ व्रजेन्द्रका मन भी नाचने लगा। इतना ही नहीं, शरीरसे सर्वथा निकलकर व्रजेन्दका मन उस नूपुरध्वनिमें ही मानो विलीन हो गया। मन-शून्य व्रजेन्द्र प्रवालस्तम्भपर अपने शरीरका भार दिये, अपलक नेत्रोंमें उस छबिको भरे एक पहरके लिये अन्य सब कुछ भूल गये।

अब तो व्रजपुरमें यह लहर-सी दौड़ गयी। दल-की-दल व्रजवनिताएँ श्रीकृष्णचन्द्रका यह नृत्य देखने आने लगीं। श्रीकृष्णचन्द्र भी मुक्तहस्त होकर अपनी यह मधुरिमा वितरण कर रहे थे। केवल इतना ही नहीं, वे इसपर अन्य अनेक बाल्यसुलभ चेष्टाओंकी पुट भी लगा देते थे। मानो श्रीकृष्णचन्द्रकी शैशवधारा क्रमशः गम्भीर होती जा रही थी—पहले बुद्बुदे उठे, फिर धारा फेनिल हो उठी, इसके बाद उनके वक्षःस्थलपर तरंगे नृत्य करने लगीं और फिर उसमें आवर्त (भँवर) बन गये। इस प्रकार पहले उनके मुखारविन्दसे अस्फुट स्खलित शब्द निस्सरित हुए, पश्चात् उज्ज्वल हास्यरञ्जित तोतली वाणी निकली; फिर मधुर गायन-नर्तन आरम्भ हुआ और पुनः ये नृत्यगीत अत्यन्त मनोहर बाल्यभङ्गिमाओंसे सम्पुटित होने लगे। एक अद्भुत लीलामृतधारा व्रजपुरमें प्रवाहित हो रही थी। इस धाराका, इसके एक कणका आस्वाद इन्दिरा तो स्वप्नमें भी न पा सकीं; किंतु व्रजवनिताएँ अञ्जलि भरकर पान कर रही थीं—

इसमें अवगाहन कर रही थीं। निगम इसके स्वरूपनिर्धारणमें संलग्न थे; महेश सोच रहे थे; शेषकी समस्त युक्तियाँ समाप्त हो गयी थीं; पर किसीने भी पार नहीं पाया कि यह लीला-सुधाधारा क्या, कैसी, कितनी अद्भुत है। ओह! रूपयौवनभारसे दबी किन्नरियाँ जिन्हें कभी न देख पायीं, वीणाकी झंकारसे विश्वको विमोहित करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली गन्धर्वाङ्गनाओंके दृष्टिपथमें जो कभी न आये, पातालके सुरदुर्लभ वैभवकी अधिकारिणी नागतरुणियाँ जिनका कभी अनुसंधान न पा सकीं, उन श्रीकृष्णचन्द्रको गोबर पाथनेवाली आभीरबालाएँ करताली दे-देकर सूत्रबद्ध कपिकी भाँति नचा रही थीं; श्रीकृष्णचन्द्र भी सर्वथा उनके भावका अनुसरण करते हुए नाच रहे थे। नृत्यमात्र नहीं, उनके प्रत्येक मनोरथकी पूर्ति—प्रत्येक आज्ञाका पालन कर रहे थे।

एक गोपी कहती—'मेरे लाल! वह पाँवड़ी उठाकर मेरे हाथोंमें दे तो दे।' यह सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र जाते, अरुण-नव-किसलय हाथोंमें व्रजेन्द्रकी वह काष्ठनिर्मित पाँवड़ी (पादुका) उठा लाते, गोपीके हाथोंमें रख देते। दूसरी गोपी कहती—'मेरे प्राणधन! शक्ति लगाकर उस पीढ़ेको तो उठा ला!' यशोदानन्दन जाकर पीढ़ेको क्रमशः अपने घुटनोंपर, फिर उदरपर रखते, फिर मन्द-मन्द गतिसे चलते हुए ग्वालिनके सम्मुख जाकर उसे रख देते। तीसरी नन्दनन्दनको पीठ-वहनके श्रमसे श्रमित-सा देखकर कहती—'मेरे हृदयधन! सोहनी (झाड़ू) किसे कहते हैं? तू जानता है? उसे तू मेरे हाथमें दे दे तो जानूँ।' नन्दनन्दन पद्मराग-निर्मित चौखटकी आड़में पड़ी सोहनीकी ओर सलोनी चितवनसे देखते हुए उसे उठा लाते और गोपाङ्गनाके हाथोंपर रख देते। चौथी पूछती—'नन्दलाल! सीढ़ीपर चढ़ तो भला!' श्रीकृष्ण वैदूर्यरचित गृहचूड़ासे संलग्न स्फटिक निःश्रेणीकी ओर दौड़ पड़ते, चढ़ने लग जाते; आनन्दसे विवश होकर अश्रुपूरित-नेत्र हुई वह ग्वालिन शीघ्रतासे पकड़ लेती, प्राङ्गणमें लाकर खड़ा कर देती।

एक आभीरबाला संकेत करती—'वह देख, नीलमणि! मयूरका नृत्य देख! अहा! कितना सुन्दर नृत्य है। तू भी उसकी तरह नाच तो सही।' ग्वालिनके मनोरथकी पूर्तिके लिये नीलमणि अपनी दोनों भुजाओंको पीठकी ओर ले जाकर फैला देते, कमर झुका देते, पीठ बङ्किम बना लेते, ग्रीवा ऊपर उठा देते तथा रुनझुन-रुनझुन ध्वनि करते हुए आभीरबालाकी परिक्रमा करने लगते; नन्द-प्राङ्गण गोपाङ्गनाओंकी तुमुल हर्षध्वनिसे निनादित होने लगता। कोई गोपबाला प्रश्न करती—'बता, मेरे लाल! भ्रमरका गुञ्जारव कैसे होता है?' उसकी बात सुनकर श्रीकृष्ण कुछ क्षण उद्यानसे उड़-उड़कर आते हुए मधुमत्त भ्रमरोंकी ओर देखते; तत्पश्चात् उसीका अनुकरण करते हुए—'गूँ ऊँ ऊँ ऊँ...............'ध्वनि करते। गोपिकाएँ अट्टहास करने लगतीं, श्रीकृष्ण भी उनके स्वरमें मानो स्वर मिलाकर हँसने लगते। कोई ग्वालिन द्वारदेशतक दौड़नेकी आज्ञा देती, नीलमणि दौड़ पड़ते। द्वारतक पहुँचनेके पूर्व ग्वालिन अपनी ग्रीवासे हीरक-हार निकाल लेती और चौखटपर फेंक देती। ग्वालिनके प्राणोंमें स्पन्दन होने लगता—'आह! अब इस हीरक-हारसे क्या प्रयोजन? यशोदाके नीलमणिको ही वक्षःस्थलका हार बनाऊँगी।'

इस प्रकार व्रजवधुएँ जो-जो आदेश करतीं, वही-वही श्रीकृष्णचन्द्र करते; करनेके पश्चात् तोतली बोलीमें पूछते भी कि 'री चतुर हूँ न?' अवश्य ही जब किसीका निर्देश पाकर वे उन्मान (बाट) आदि भारी वस्तु उठाने जाते और वह न उठता तो रोने भी लग जाते। उनके रोते ही जननी दौड़ पड़तीं, हृदयसे लगाकर अरुण अधरोंका चुम्बन करने लग जातीं। इतनी छोटी आयुमें ही वे अनेक बातें सीख गये थे, उन्हें तोतले शब्दोंमें शिशु-सुलभ मुद्रामें व्रजसुन्दरियोंको सुनाते, सुनाकर उनकी ओर प्रत्याशाभरी दृष्टि डालते तथा फिर हँसने लग जाते। व्रजसुन्दरियाँ भी उत्तरके बदले उन्हें भुजपाशमें बाँध लेतीं। उनके (गोपसुन्दरियोंके) आनन्दका पार नहीं रहता। वे तो अपना समस्त गृहकार्य, सभी सेवा-शुश्रूषा भूल चुकी थीं; जागनेसे सोनेतक छायाकी तरह श्रीकृष्ण एवं बलरामका अनुगमन कर रही थीं। क्षुधा-पिपासासे भी वे ऊपर उठने लगी थीं। श्रीकृष्णके इन मधुमय चरित्रोंसे निरन्तर मधुका निर्झर झरता था। वे उसे पी-पीकर मत्त होती जा रही थीं। श्रीकृष्णलीला-रसपानसे छकी इन व्रजाङ्गनाओंके लिये अन्य समस्त अमृत-राशि नित्सार हो चुकी थी। अन्य तुच्छातितुच्छ वैषयिक सुखकी वासना उनमें जाग्रत् होनेकी बात तो अत्यन्त दूर, योगीन्द्र-

मुनीन्द्र-वाञ्छित मुक्ति-सुख भी इस परमानन्दकी तुलनामें उन्हें नमक-जैसा कटु प्रतीत हो रहा था—

बनी सहज यह लूट हरिकेलि गोपीन कैं, सुपनैं ये कृपा कमला न पावै।
निगम निरधार, त्रिपुरारहु विचार रह्यौ, पचि रह्यौ सेस, नहिं पार पावै॥
किंनरी बहुर अरु बहुर गंधरबनी पंनगनी चितवन नहिँ माँझ पावैं।
देत करताल वे लाल गोपाल सौं, पकर ब्रजबाल कपि ज्यौं नचावैं॥
कोऊ कहै ललन पकराव मोहि पाँवरी, कोऊ कहै लाल बल लाऔ पीढ़ी।
कोऊ कहै ललन गहाव मोहि सोहनी, कोऊ कहै लाल चढ़ि जाउ सीढ़ी॥
कोऊ कहै ललन देखौ मोर कैसैं नचैं, कोऊ कहै भ्रमर कैसैं गुंजारैं।
कोऊ कहै पौर लगि दौर आऔ लाल, रीझ मोतीन के हार बारैं॥
जो कछु कहैं ब्रजबधू सोइ सोइ करत, तोतरे बैन बोलन सुहावैं।
रोय परत वस्तु जब भारी न उठै तबै, चूम मुख जननी उर सौं लगावैं।
बैन कहि लोनी पुनि चाहि रहत बदन हँस, स्वभुज बीच लै लै कलोलैं॥
धाम के काम ब्रजबाम सब भूल रहीं, कान्ह बलराम के संग डोलै॥
सूर गिरिधरन मधु चरित मधु पान कै, और अमृत कछू आन लागै।
और सुख रंक की कौन इच्छा करै, मुक्तिहू लौन सी खारी लागै॥

कभी स्वजनोंका आनन्दवर्द्धन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र बाहुक्षेप करते—ताल ठोंकते। उस समय गोपिकाएँ कदाचित् कह बैठतीं—'नीलमणि! तेरी अपेक्षा तो राममें बल अधिक है।' यह सुनकर श्रीकृष्ण अपने चूर्णकुन्तलमण्डित सिरको हिला-हिलाकर असम्मति प्रकट करते। रोहिणीनन्दन राम भी अपने अनुजकी ओर देखकर हँसने लगते। गोपाङ्गनाएँ दोनोंको पुचकारकर पास खड़ा कर देतीं और स्वयं दो मण्डलोंमें विभक्त हो जातीं। एक मण्डली श्रीकृष्णको अधिक बलवान् बताती, दूसरी रोहिणीतनय रामका पक्ष-समर्थन करती। फिर तो—

बलेन सममन्योन्यं प्राबल्यं दर्शयन्निव।
ऊर्ध्वाधोभावमासाद्य सर्वा हासयति स्म सः॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

श्रीबलदाऊके साथ श्रीकृष्णचन्द्र नन्ही-सी भुजा फैलाकर लिपट पड़ते। दोनों परस्पर एक-दूसरेके प्रति अपना प्राबल्य दिखाते हुए-से कभी श्रीकृष्ण ऊपर तो राम नीचे, राम ऊपर तो श्रीकृष्ण नीचे—इस प्रकार एक परम मनोहारी अभिनव मल्ल-क्रीडाकी रचना करते। अपनी इस बाल्यमाधुरीसे व्रजसुन्दरियोंको हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देते। दोनों भाइयोंकी शोभा भी—वे जब कभी भी एकत्र होते—अद्भुत ही होती। ओह! स्वच्छता तो ऐसी मानो स्फटिकमणिके पार्श्वमें महामरकत हो। स्निग्धता वह, मानो पूर्णचन्द्रमण्डित जलधर-अंकुर हो। सौरभ्य, सौकुमार्य ऐसे मानो पुण्डरीक (उज्ज्वल कमल)-के सहित नीलोत्पल विकसित हुआ हो। सुखमयी ऐसी चेष्टा मानो हंसवलित यमुनालहरी हो। श्रीअङ्गकान्ति ऐसी मानो ज्योत्स्नाखण्ड-समन्वित तिमिर-अंकुर हो।

तदा स्फटिकमणिनेव महामारकतः, चन्द्रमसेव जलदाङ्कुरः, पुण्डरीकेणेव नीलोत्पलम्, हंसेनेव यमुना-तरङ्गः, ज्योत्स्नाशकलेनेव तिमिरकदम्बः।

(श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूः)

अस्तु! तबसे आज एक पक्ष पूर्ण हो रहा है। श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्यदर्शन, गान-श्रवण, क्रीडावलोकन ही व्रजसुन्दरियोंकी अविच्छिन्न दिनचर्या है। अब इस समय कोजागरी (आश्विन-पूर्णिमाकी) रजनीमें जागरण करनेके मिससे वे नन्दालयमें एकत्र हुई हैं तथा महान् आश्चर्य है, आज अभीतक श्रीकृष्णचन्द्र भी निद्रित नहीं हुए। हों कैसे? उन्हें तो जगत्के समक्ष, जगत्के अनन्त योगीन्द्र-मुनीन्द्रोंके सामने अपनी अप्रतिम भक्ताधीनता प्रकाशित करनी है। अपनी अतुल भृत्यवश्यताको प्रकट करते हुए ही तो वे प्रतिक्षण व्रजरामाओंके संकेतपर नित्य-नूतन बाल्यचेष्टाका विकास करते थे, व्रजको आनन्दमें निमग्न कर देते थे—

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम्।
व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान् बालचेष्टितैः॥

(श्रीमद्भा० १०। ११। ९)

—फिर आज जब शत-सहस्र गोपसुन्दरियाँ अन्तर्हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रकी कोई नयी-सी चेष्टा देखनेकी लालसा छिपाये आ रही हैं, उस समय वे सो जायँ—यह कभी सम्भव है? वे तो उनकी वासनाकी छाया लेकर उनकी कल्पनासे भी सर्वथा परेकी एक अतिशय कमनीय बाल्यभङ्गिमा ग्रहण करने जा रहे हैं; योगमायाके सजाये हुए

रंगमंचपर अवस्थित होकर वे तो प्रतीक्षा कर रहे हैं कि गोपसुन्दरियाँ आयें और अभिनय आरम्भ हो। उनके नेत्रोंमें आज निद्रा कहाँ? इसीलिये गोपसुन्दरियाँ श्रीकृष्णचन्द्रको जागे हुए ही पाती हैं, दिनकी भाँति ही उन्हें सर्वथा निरालस्य एवं चञ्चल देखकर नचाने लग जाती हैं; श्रीकृष्णचन्द्र भी 'थेइ थेइ थेइ तत्त थेई' तालपर पद-संचालन करते हुए नाच रहे हैं।

व्रजरानी समागत गोपरामाओंकी समुचित अभ्यर्थना इस समय नहीं कर पा रही हैं, पर उन्हें देखकर उनके आनन्दका पार नहीं; क्योंकि नन्दरानी सोच रही हैं—ये जागरण रखकर श्रीनारायणका नामोच्चारण करेंगी, उतने समयतक मेरे नीलमणिको कोई विपत्ति स्पर्शतक नहीं कर सकेंगी। तृणावर्त-निधनके दिनसे जननी अत्यन्त सावधान जो रहती हैं। और तो क्या, समीरके झोकोंसे तरुपत्र प्रकम्पित होते देखकर चंचल पत्रोंकी ध्वनिमात्र सुनकर वे पुत्रको गोदमें उठा लेती हैं। केवल व्रजरानी ही नहीं, व्रजेन्द्र भी अतिशय सजग हैं। उन्होंने अपनी महती सभामें सर्वसम्मतिसे उसी दिन यह निश्चय कर लिया है—नियम बना दिया है—

गोष्ठमिदं दुष्टानामधिष्ठानं वृत्तम्।
तस्माद् गृह एव गोपनीयमिदं बालयुगलमिति॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

—'यह गोष्ठ तो दुष्टोंका आवास बन गया है। इसलिये दोनों बालकोंको अन्तर्गृहमें ही छिपाये रखना चाहिये।' इसीलिये उस दिनसे श्रीकृष्णचन्द्र तोरणद्वारसे उस पार न जा सके। विशाल मणिमय प्राङ्गण ही तबसे उनका लीलामंच बना हुआ है। उसी मंचपर इस समय नूपुरकी स्वरलहरी झंकृत हो रही है, व्रजतरुणियाँ श्रीकृष्णचन्द्रका नृत्य देखकर तन-मन-प्राण न्योछावर कर रही हैं। अस्तु!

अचानक नृत्यका विराम करके श्रीकृष्णचन्द्र हँसने लगते हैं तथा समीपवर्ती मन्थन-गगरीकी ओर देखते हैं। गगरीमें गगनस्थ चन्द्र प्रतिबिम्बित है। इस प्रतिबिम्बने ही श्रीकृष्णचन्द्रका ध्यान आकर्षित किया है। अतः वे और भी समीप जाकर उसे देखते हैं। सोचते हैं—यह ऐसी सुन्दर वस्तु क्या है! फिर कुछ क्षण बाद जननीसे पूछते हैं—'री मैया! गगरीमें यह अत्यन्त उज्ज्वल क्या समाया हुआ है?' जननी पुत्रकी भोली बात सुनकर केवल उनके मुखकमलकी ओर देखती हैं, कोई उत्तर नहीं देतीं। उत्तर न पाकर श्रीकृष्ण किंचित् दूर खड़ी हुई जननीके पास जाकर, अंचल पकड़कर फिर प्रश्न करते हैं। इस बार जननी हँसकर कहती हैं—'मेरे लाल! यह चन्द्र-प्रतिबिम्ब है।' श्रीकृष्ण विस्फारितनेत्र होकर आश्चर्यमें भरकर बोले—'यह चन्द्र है?' उत्तरमें जननीके मुखसे निकल पड़ा—'हाँ, मेरे प्राणधन! यह चन्द्र है।' फिर तो श्रीकृष्णके उल्लासकी सीमा न रही। हाथोंको नचाकर ताली पीटकर वे बोले—'मेरी मैया! तू इसे गगरीसे निकालकर मेरे हाथोंपर रख दे।'

नन्दरानी हँसने लगती हैं, व्रजसुन्दरियाँ हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाती हैं; किंतु श्रीकृष्ण जननीके अंचलका छोर पकड़े बारम्बार कह रहे हैं—'री! उसे निकाल दे, शीघ्र निकालकर मेरे हाथोंमें दे दे।' जननी पुत्रको अन्य बातोंमें भुलाना चाहती हैं; पर वे तो भूलते ही नहीं, बल्कि रोना आरम्भ करते हैं। इसी समय समीप अवस्थित प्रभावती (उपनन्दपत्नी)-को एक सुन्दर बुद्धि उपज आती है। वे नन्दरानीको धीरेसे कानमें संकेत कर देती हैं। संकेत करके स्वयं भंडारमें चली जाती हैं, एक विशाल नवनीतखण्ड पीठकी ओर छिपाकर ले आती हैं तथा श्रीकृष्णकी दृष्टि बचाकर मन्थन-गगरीमें डाल देती हैं। यह हो जानेपर अंचलसे पुत्रकी आँखें पोंछती हुई जननी बोलीं—'अच्छा, चल, मैं तेरे हाथपर रख देती हूँ।' जननी आती हैं, गगरीके पास आकर उसमें हाथ डालकर उज्ज्वल नवनीतखण्ड निकाल लेती हैं तथा नीलमणिके हाथोंपर रख देती हैं। ओह! श्रीकृष्णचन्द्रके आनन्दका पार नहीं—जैसे सचमुच चन्द्र ही उनके हाथमें आ गया हो! आनन्दमें निमग्न हुए नीलमणि गगरीकी ओर देखते हैं। यद्यपि गोपिकाओंके निकट खड़े हो जानेसे प्रतिबिम्ब विलुप्त हो गया है, तथापि किंतु श्रीकृष्णचन्द्र यह सोच रहे हैं कि चन्द्र गगरीसे निकलकर मेरे हाथोंपर आ गया है—

रुदन्तमिन्दवे मन्थगर्गर्यां प्रतिरूपिणे।
पिण्डेन नावनीतेन वृद्धागर्द्धयतार्भकम्॥

(श्रीगोपालचम्पूः)

नवनीतपिण्ड लेकर वे आँगनमें दौड़े। उनके पीछे नन्दरानी एवं गोपिकाएँ भी दौड़ीं। पर बाहर जानेका द्वार तो

गोपिकाओंकी भीड़से रुद्ध है। वे बाहर जा ही कैसे सकते हैं? इसीलिये पुनः मन्थन-गगरीके ही समीप आ जाते हैं। अब भी चन्द्र गगरीमें प्रतिभासित हो रहा है। नीलमणिकी दृष्टि भी उसपर पड़ ही जाती है। बस!················ नीलमणिने समझ लिया—जननीने मेरी वञ्चना की है, चन्द्र तो अभी भी गगरीमें ही है। उनके पङ्कजनयनोंमें रोष-मान-व्यथा भर जाती है। वे वहीं भूमिपर लोट जाते हैं, हाथ-पैर पटक-पटककर करुणक्रन्दन प्रारम्भ करते हैं।

रूठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र जननीकी गोदमें भी नहीं उठना चाहते। किसी प्रकार जननी उन्हें वक्षःस्थलपर उठा लेती हैं। समझाती हैं—मेरे लाल! चन्द्र तो गगनमें है, गगरीमें नहीं। वह देख—

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपनैं हरिहिं लिए चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउँ तुम्हारी, देखौं धौं भरि नैन जुड़ावत॥

श्रीकृष्णचन्द्र गगनस्थ चन्द्रको देखकर चुप हो जाते हैं। वे कभी आकाशचन्द्रकी ओर, तो कभी गगरीमें प्रतिबिम्बित चन्द्रकी ओर देखने लगते हैं। उन्हें प्रतीत हो रहा है—दो चन्द्र हैं; एक गगरीमें, एक आकाशमें । जननी पुत्रका मनोभाव जान लेती हैं। समझाती हैं—'मेरे प्राणधन! देख, चन्द्र तेरा मुख देखने आता है; जब तू गगरीकी ओर देखता है, तब चन्द्र गगरीमें आ जाता है; तू आकाशकी ओर देखता है, तब आकाशमें चला जाता है।' जननीके इस उत्तरसे नीलमणिका यह समाधान तो हो जाता है कि चन्द्र एक है; पर इससे क्या हुआ? उन्हें तो चन्द्र जो चाहिये। उसे पानेके लिये वे उपाय सोचते हैं एवं चन्द्रको ला देनेके लिये जननीके सामने पुनः मचल उठते हैं—

मनहीं मन हरि बुद्धि करत हैं माता सौं कहि ताहिं मँगावत।
लागी भूख, चंद मैं खैहौं, देहि देहि रिस करि बिरुझावत॥

हठीले पुत्रको जननी बार-बार समझा रही हैं—

(आछे मेरे) लाल हो, ऐसी आरि न कीजै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, जोइ भावै सोइ लीजै॥
सद माखन घृत दह्यौ सजायौ, अरु मीठौ पय पीजै।
पालागौं हठ अधिक करौ जनि, अति रिस तैं तन छीजै॥

—किंतु श्रीकृष्ण मानते नहीं। जननी समझ नहीं पातीं कि कैसे समझाऊँ। वे सोच रही हैं—गगनस्थ चन्द्रको दिखाकर मैंने भूल की—

किहिं बिधि करि कान्हहिं समुझैहौं?
मैं ही भूलि चंद दिखरायौ, ताहि कहत मैं खैहौं!

कुछ देर सोचती रहकर फिर जननी बोलीं—

अनहोनी कहुँ भई कन्हैया, देखी-सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबकौ, खान कहत तिहिं तात॥

अच्छी बात है। खिलौना ही सही। तू इसे ला तो दे। मैं खाऊँगा नहीं, इससे खेलूँगा। मैं इस खिलौनेको लूँगा ही—श्रीकृष्णचन्द्र पहलेकी अपेक्षा भी और अधिक हठ कर बैठे—

मैया, मैं तौ चंद-खिलौना लैहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहीं, तेरी गोद न ऐहौं॥

अब व्रजसुन्दरियाँ एक नयी युक्ति करती हैं। निर्मल पात्रमें जल भर देती हैं। उस जलपात्रमें जननी चन्द्रका आवाहन कर रही हैं—

बार-बार जसुमति सुत बोधति, आउ चंद तोहिं लाल बुलावै।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, आपुन खैहै, तोहिं खवावै॥
हाथहिं पर तोहिं लीन्हे खेलै, नैंकु नहीं धरनी बैठावै।
जल-बासन कर लै जु उठावति, याही मैं तू तन धरि आवै॥

—कुछ देर इस भाँति चन्द्रको आनेके लिये बार-बार निमन्त्रितकर जननी जलपात्रको भूमिपर स्थापित कर देती हैं एवं उल्लासभरे स्वरमें कहती हैं—

लै लै मोहन, चंदा लै।
कमल नैन बलि जाउँ सुचित ह्वै, नीचैं नैंकु चितै॥
जा कारन तैं सुनि सुत सुंदर, कीन्ही इती अरै।
सोइ सुधाकर देखि कन्हैया, भाजन माहिं परै॥
नभ तैं निकट आनि राख्यौ है, जल-पुट जतन जुगै।
लै अपने कर काढ़ि चंद कौं जो भावै सो कै॥
गगन-मँडल तैं गहि आन्यौ है, पंछी एक पठै।
सूरदास प्रभु इती बात कौं, कत मेरौ लाल हठै॥

इस बार श्रीकृष्णचन्द्रका मनोरथ मानो पूर्ण हो गया, वे आनन्दमें भर जाते हैं; क्योंकि जलपात्रमें उन्हें चन्द्रके स्पष्ट दर्शन हो रहे हैं। वे गोदसे उतरकर चन्द्रको पकड़नेके उद्देश्यसे अपने दोनों हस्तकमल जलपात्रमें डाल देते हैं। झलमल-झलमल करती हुई चन्द्र-परछाई विलीन हो जाती है। ठीक उसी समय योगमायाप्रेरित एक शुभ्र मेघखण्ड

आकाशचन्द्रको आच्छादित कर लेता है। श्रीकृष्णचन्द्र दृष्टि फिराकर आकाशकी ओर देखते हैं—वहाँ भी चन्द्र नहीं है। जननीसे पूछते हैं—'री मैया! चन्द्र कहाँ चला गया?' मैया उत्तर देती हैं—'मेरे लाल! तू उसे हाथोंसे पकड़ना चाहता था, तुझसे डरकर वह पातालमें भाग गया।' 'पाताल क्या है?' —श्रीकृष्णने अतिशय आश्चर्यमें भरकर बड़ी उतावलीसे पूछा। जननीको अब कहीं पुत्रको भुलानेका सूत्र प्राप्त हुआ। वे बोलीं—'मेरे नीलमणि! पातालकी बड़ी सुन्दर कथा है; चल, तुझे पातालकी कथा सुनाऊँ।'

—यह कहती हुई नन्दरानी नीलमणिको हृदयसे लगाकर शय्या-मन्दिरकी ओर चल पड़ती हैं।

व्रजसुन्दरियाँ, हम कोजागरीका जागरण करने आयी हैं—यह कहकर आयी थीं। अत: वे व्रजेन्द्रके नारायणमन्दिरकी ओर चली जाती हैं। वहाँ जाकर वे जागरण कर भी रही हैं, पर उनके नयन-मन-प्राणोंमें तो श्रीकृष्णचन्द्र छाये हुए हैं। इसलिये वे नारायणका नामोच्चारण तो भूल गयी हैं, उसके बदले परस्पर एक दूसरीको अपने चित्तकी दशा सुना रही हैं। एक गोपसुन्दरी अपनी दशा बता रही है—

मैं देख्यौ जसुदा कौ नंदन, खेलत आँगन बारौ री।
ततछन प्रान पलटि गयौ मेरौ, तन-मन ह्वै गयौ कारौ री॥
देखत आनि सँच्यौ उर अंतर, दै पलकनि कौ तारौ री।
मोहिं भ्रम भयौ सखी, उर अपनैं चहुँ दिसि भयौ उज्यारौ री॥
जौ गुंजा सम तुलत सुमेरहिं, ताहू तैं अति भारौ री।
जैसैं बूँद परत बारिधि मैं, त्यौं गुन ज्ञान हमारौ री॥
हौं उन माहँ कि वै मोहिं महियाँ, परत न देह सँभारौ री।
तरु मैं बीज कि बीज माहँ तरु, दुहुँ मैं एक न न्यारौ री॥
जल-थल-नभ-कानन-घर-भीतर, जहँ लौं दृष्टि पसारौ री।
तितही तित मेरे नैननि आगैं निरतत नंद-दुलारौ री॥

मणिस्तम्भ-लीला (प्रथम नवनीत-हरण-लीला)

ग्वालिनने प्रत्याशाभरी आँखोंसे व्रजरानीकी ओर देखा। कदाचित् कोई-सा कार्यभार वे मुझे पुनः सौंप दें, कुछ क्षण यहाँ और रुक जानेका मिस हो जाय, श्रीकृष्णचन्द्रका सौन्दर्य निहारकर मैं शीतल होती रहूँ—अन्तस्तलके ये आकुल भाव उसके नेत्रोंकी ओटसे झाँक रहे थे। इधर रन्धनशालाके द्वारपर अवस्थित व्रजरानी भी सोच रही थीं—क्या करूँ? किसकी सहायता लूँ? रोहिणीजी तो समागत ब्राह्मणोंकी सेवा-सत्कारमें लगी हैं, परिचारिकाएँ गोष्ठसे आये हुए दुग्धपूरित कलशोंको यथास्थान रखनेमें अत्यन्त व्यस्त हैं, व्रजेश्वर नारायण-सेवामें संलग्न हैं, शीघ्र ही भोग-सामग्रियोंको नारायणमन्दिरमें पहुँचा देनेका आदेश भी आ चुका है, दधि-मन्थनका कार्य अधूरा छोड़कर मैं उठ भी आयी; पर मेरा नीलमणि स्तन्यपानके लिये अंचल पकड़े खड़ा है, स्तन्यपानके लिये मचल रहा है। इसे दूध पिलाकर, पुनः वस्त्रपरिवर्तन कर मैं रन्धनशालामें तो चली जाऊँगी; किंतु इस आधे मथे दहीसे माखन तो निकला नहीं। विलम्ब होनेपर तो निकलेगा ही नहीं। फिर पद्मगन्धा कजरीसे दूधका सद्योमथित नवनीत आज मैं अपने नीलमणिको कैसे दे पाऊँगी? अच्छा, इस ग्वालिनसे बिलोनेको कह दूँ क्या………? बस, दो हृदयकी ये चंचल धाराएँ अज्ञात चेतनाके धरातलपर जा मिलीं, व्रजरानी उस गोपसुन्दरीकी ओर दृष्टि फेरकर कह ही तो उठीं—

पाहुनी, करि दै तनक मह्यौ।
हौं लागी गृह-काज-रसोई, जसुमति बिनय कह्यौ।
आरि करत मनमोहन मेरो, अंचल आनि गह्यौ॥

अब तो उसके हर्षका पार नहीं। आनन्दमें निमग्न वह मथानीकी ओर चली। अवश्य ही उसकी दृष्टि मथानीको नहीं देख पा रही है, दृष्टि तो यशोदारानीके अङ्कमें विराजित श्रीकृष्णचन्द्रके रूपसे भरी है। वह कुञ्चित केशकलाप, ललाटका वह केसरबिन्दु, रतनारे चंचल नयन, सुढार युग्म कपोल, अरुणिम अधर, कठुलाभूषित कम्बुकण्ठ, व्याघ्रनखराजित वक्ष:स्थल, सुन्दर नाभिकमल, किङ्किणी-भूषित कटिदेश, सुकोमल छोटे बाहुयुगल, हस्तकमल, सुन्दर मनोहर जानु, गुल्फ, चरणतल—गोपसुन्दरीके नेत्रमें तो ये भरे हैं; मथानी समा सके, इतना अवकाश नेत्रोंमें कहाँ। इसीलिये अनुमानसे मथानीके समीप वह जा तो पहुँची, पर देख न पा सकी कि कहाँ क्या है। आते ही दधिभाण्डसे चरणोंका वेगपूर्ण स्पर्श हुआ, वह दधिपात्र उलटा हो गया, दहीकी धारा बह चली। गोपसुन्दरीने हाथसे टटोलकर केवल यह समझा कि मटका तिरछा हो गया है, अपनी जानमें सीधा करके वह

बिलोने चली। प्रेमविवश हुई ग्वालिन यह नहीं जानती कि वह रीते पात्रमें ही मन्थनदण्ड चला रही है, दही तो बाहर बह गया है—

ब्याकुल मथति मथनियाँ रीती, दधि भुव ढरकि रह्यौ॥

यशोदारानीने भी तब जाना कि जब श्रीकृष्णचन्द्र स्तन्यपानसे विरत होकर हँसते हुए-से उस ग्वालिनकी ओर देखने लगे, जननीको उस ओर देखनेके लिये इङ्गित करने लगे। अन्यथा जननी तो बिलोनेका आदेश देकर अपने नीलमणिमें ऐसी उलझ गयी थीं कि अन्य सब कुछ विस्मृत हो गया था। वे तो अपने नीलमणिको स्तन्यदान करनेमें तन्मय हो रही थीं। श्रीकृष्णचन्द्रने ही उन्हें जगाया तथा जागकर जननीने देखा—हैं! माखन तो बहता जा रहा है! जननीने पुकारकर कहा—'री सखी! अपनेको सँभाल!' अब कहीं जाकर व्रजसुन्दरीको मथानीकी, दधिपात्रकी वास्तविक अवस्थाका भान हुआ; फिर तो संकोच-लज्जामें वह बह चली। व्रजरानीको भी संकोच हुआ कि इसकी सुख-समाधि मैंने तोड़ दी—

माखन जात जानि नँदरानी, सखी सम्हारि कह्यौ।
सूर स्याम-मुख निरखि मगन भई, दुहुनि सँकोच सह्यौ॥

इसके दूसरे दिनकी बात है। ग्वालिन पुनः नन्दभवनमें आयी। आकर देखा—व्रजेश्वरी दूध पीनेके लिये अपने नीलमणिकी मधुर मनुहार कर रही हैं। अग्रज बलराज भी समीप ही बैठे हैं। उन्होंने तो जननीका लाड़ स्वीकारकर दूध पी लिया, किंतु हठीले श्रीकृष्णचन्द्र नहीं पीते। अन्तमें जननी बड़ी ही आकर्षक युक्ति अपने पुत्रके सामने रखती हैं—

कजरी कौ पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसैं देखि और ब्रज बालक, त्यौं बल-बैस चढ़ै॥

तथा इस प्रलोभनमें श्रीकृष्णचन्द्र फँस ही जाते हैं। कजरीके दुग्धपानसे मेरी वेणी बड़ी लंबी हो जायगी, इस उल्लासमें भरकर वे दूध पीने लग जाते हैं; किंतु साथ-साथ अपने घनकृष्ण केशोंपर हाथ रखकर देखते जा रहे हैं कि वेणी वास्तवमें बढ़ी या नहीं। जब बढ़ती नहीं दीखती, तब उन्हें अपनी जननीकी वञ्चनाका भान होता है। उस समय उनके मुखारविन्दपर नाचती हुई विविध भावलहरियोंकी शोभा देखने ही योग्य है। पराजयका रोष, अब भविष्यमें दुग्धपानसे विरत होनेकी भावना, जननीके प्रति अविश्वास, क्षुधाकी निवृत्ति, दुग्धपानजन्य स्वाभाविक तृप्ति—ये सब एक साथ उनके कमनीय मुखकमलपर व्यक्त हो रहे हैं। यशोदारानी हँसी संवरण न कर सकीं—

पुनि पीवत हीं कच टकटोरत, जूँठहि जननि रढ़ै।
सूर निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ै॥

अपनेको भूली-सी रहकर ग्वालिन यह दृश्य देख रही थी! इतनेमें जननीसे रूठे हुए श्रीकृष्णचन्द्र वहाँसे उठकर उसके समीप आकर खड़े हो गये। ग्वालिनका उनके शरीरसे किंचित् स्पर्श हो गया, फिर तो वह बाह्यज्ञान-शून्य हो गयी। जब चेतना हुई, तब घरके लोगोंने उसे बताया, पूरे आठ पहर वह प्रस्तर-प्रतिमाकी भाँति निस्पन्द बैठी थी। किंतु वह नन्दभवनसे अपने आवासमें कैसे चली आयी, यह प्रश्न किसीके मनमें उदय न हुआ; स्वयं ग्वालिनने भी इसका रहस्य न जाना। जाननेका अवकाश ही जो न था। वह तो निरन्तर देख रही थी—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र दुग्धपान कर रहे हैं एवं वेणी बढ़ी कि नहीं, इसकी परीक्षा कर रहे हैं। जब समाधिसे बाहर आयी, तब भी झाँकी नेत्रोंके सामने बनी ही थी; चिर अभ्यासवश आधी घड़ीमें ही उसने आवश्यक गृहकार्यकी व्यवस्था कर दी और नन्दभवनकी ओर दौड़ चली। अस्तु—

आज तीसरे दिन वह पुनः आयी है तथा देख रही है—विविध पक्वान्न-मिष्टान्न थालोंमें सजाकर सामने रखकर व्रजेश्वरी श्रीकृष्णचन्द्रको लाड़ लड़ा रही हैं; किंतु पक्वान्न भोजन करनेकी बात तो दूर, श्रीकृष्णचन्द्र उस ओर ताक भी नहीं रहे हैं, बल्कि खीझकर कह रहे हैं—

मैया री, मोहिं माखन भावै।
जो मेवा पकवान, कहति तू, मोहिं नहीं रुचि आवै॥

वह गोपसुन्दरी श्यामसुन्दरके ठीक पीछे खड़ी है; श्रीकृष्णचन्द्रके मधुर वचनोंसे अमृत झर रहा है, उसे पीकर वह मत्त होती जा रही है। इस मत्तताके आवेशवश ही उसके अन्तस्तलमें आज सहसा एक वासना जाग उठती है—'क्या श्रीकृष्णचन्द्र कभी मेरे घर चलेंगे, मेरे घरका नवनीत ग्रहण करेंगे? पर मेरे सामने रहनेपर तो ये संकुचित हो जायँगे! अतः मैं तो दधि-मन्थन करके छिप जाऊँ और तब ये मथानीके समीप जायँ, वहाँ बैठकर यथारुचि माखन आरोगें; मैं यह देखकर निहाल हो जाऊँ। मेरे नेत्रोंकी यह साध कभी पूरी होगी क्या?'

ग्वालिन तो अपनी जानमें अपने मनमें मनोरथचित्र अंकित कर रही है, पर ये अंकित हो रहे हैं अनन्तैश्वर्य-निकेतन, भक्तवाञ्छाकल्पतरु, प्रेमके भूखे, सर्वान्तर्यामी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके मनःपटलपर—

बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि मन की जानी॥

इस मनोरथके प्रवाहमें ग्वालिनका मन ही नहीं, शरीर भी मानो बह चला। सहसा वह नन्दभवनसे लौट पड़ी, अपने घर आ पहुँची। जाते समय दधिमन्थन किये बिना ही चली गयी थी। अब आकर यन्त्र-परिचालितकी भाँति दही बिलोने लग जाती है। रह-रहकर उसे ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो श्रीकृष्णचन्द्र उसके द्वारपर पधारे हैं; अचकचाकर वह कभी-कभी विस्फारित नेत्रोंसे द्वारकी ओर देखने भी लग जाती है, परंतु द्वार सूना पाकर पुनः अपने भावोंमें विभोर हो जाती है। उसे यह पता नहीं कि मनोरथतन्तुमें बँधे, आकृष्ट होते हुए वाञ्छाकल्पतरु स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र वास्तवमें ही उसके घरकी ओर चल पड़े हैं।

सचमुच ज्यों ही गोपसुन्दरी नेत्रोंसे ओझल हुई कि बस, श्रीकृष्णचन्द्र जननीकी गोदसे कूदकर बाहरकी ओर भाग चले। जननीने लपककर थाम तो लिया, पर अतिशय चेष्टा करके भी आज पक्वान्न-मिष्टान्न वे उन्हें न खिला सकीं। केवल किंचित् माखन ही मुखमें डाल सकीं। आज क्षणभरका भी विलम्ब श्रीकृष्णचन्द्रको सर्वथा असह्य हो रहा है। वे हाथ छुड़ाकर आखिर भाग ही गये। यशोदारानीको भी आश्चर्य हो रहा है; क्योंकि नीलमणिको बाहर जानेके लिये इतना अधिक व्यग्र उन्होंने पहली बार देखा है। अस्तु—

श्रीकृष्णचन्द्र क्षणभरमें ही गोपसुन्दरीके घरपर चले आये—

गए स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।
देख्यौ द्वार नहीं कोउ, इत-उत चितै, चले तब भीतर॥

बलराम एवं अन्य गोपबालक घरसे उनके साथ अवश्य चले थे; किंतु पथमें सभी पीछे रह गये, भ्रान्त होकर दूसरी ओर बढ़ गये। श्रीकृष्णचन्द्र निर्बाध एकाकी ग्वालिनके घरपर आये हैं। ग्वालिनने द्वारकी ओर देखा—हैं! नन्दनन्दन तो मेरे द्वारपर खड़े हैं। ओह! यह रूप! ग्वालिनके प्राणोंमें स्पन्दन होने लगता है, लेकिन क्षणभरका भी विलम्ब मनोरथको तोड़ देगा! ग्वालिन विद्युत्-गतिसे मणिस्तम्भकी ओटमें अपनेको छिपा लेती है—

हरि आवत गोपी जब जान्यौ, आपुन रही छपाइ।

तथा श्रीकृष्णचन्द्र चुपचाप भीतर प्रवेश कर जाते हैं, मथानीके निकट जाकर शान्त-मौन होकर बैठ जाते हैं—

सूनें सदन मथनियाँ कैं ढिग, बैठि रहे अरगाइ॥

ओह! उस समय उनकी अतुलित शोभा निहारकर गोपसुन्दरीका अणु-अणु मानो झंकार कर उठता है—

मुख पर चंद डारौं वारि।
कुटिल कच पर भौंर वारौं, भौंह पर धनु वारि॥
भाल-केसरि-तिलक छवि पर मदनसर सत वारि।

× × ×

मीन खंजन मृगज वारौं, कमल के कुल वारि॥

× × ×

झलक ललित कपोलछबि पर, मुकुट सत सत वारि॥
नसिका पर कीर वारौं, अधर बिद्रुम वारि।
दसन पर कन बज्र वारौं, बीज दाड़िम वारि॥
चिबुक पर चितबित्त वारौं, प्रान डारौं वारि।
'सूर' हरि की अंगसोभा, को सकै निरवारि।

किंतु अब वह सौन्दर्यसागर मानो तरंगित हो उठता है, श्रीकृष्णचन्द्र ग्वालिनके मनोरथकी पूर्ति करते हुए नवनीत-हरणकी लीला करने चलते हैं। उनके पास ही नवनीतपूर्ण एक पात्र पड़ा है। चंचल नेत्रोंसे एक बार वे द्वारकी ओर देखते हैं तथा फिर पात्रमेंसे माखन निकालकर खाने लगते हैं। सहसा मणिस्तम्भमें उन्हें अपना प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। उन्हें प्रतीत होता है कि मेरे आनेसे पूर्व एक अन्य शिशु यहाँ आया है, मणिस्तम्भसे सटकर खड़ा है। श्रीकृष्णचन्द्रको यह भय होने लगता है कि कहीं यह मेरी चोरी प्रकट न कर दे। वे उसे प्रलोभित करने लगते हैं। उससे कहते हैं—'भैया! देख, तू किसीसे मेरी बात बता न देना, भला! आजसे हम दोनों साथी हुए, हम लोग सभी वस्तु आधी-आधी बाँट लेंगे। यह ले, मैं खा रहा हूँ; तू भी खा!' यह कहकर श्रीकृष्णचन्द्र अपने हाथोंसे नवनीत उठाकर प्रतिबिम्बके मुखमें डाल देते हैं। तत्क्षण माखन नीचे गिर जाता है। वे सोचते हैं, शिशु रूठा हुआ है। उसे पुनः समझाते हैं—'अरे! तू फेंक क्यों दे रहा है? बावला हो गया है! नहीं भैया, यह ठीक नहीं; तू भी खा ले, मैं भी खाऊँ। अच्छा, बाँटकर खायगा? ले, यह एक लौंदा तेरे हाथपर, एक मेरे हाथपर। हैं! तूने फिर गिरा दिया! क्या सब लेना चाहता है? नहीं-नहीं, यह

तो उचित नहीं। अच्छा, अब तू मान जा, खा ले; कितना मीठा है! यदि तुझे भी अत्यन्त रुचिकर लगे तो मैं कमोरी भरकर तुझे माखन दूँ।'

नन्दनन्दनकी यह मुग्ध चेष्टा देखकर ग्वालिनके हृदयमें प्रेम-समुद्र लहराने लगता है, रसतरंगोंके आवेगसे धैर्यका बाँध टूट जाता है। आनन्दपूरित हँसीके रूपमें तरंगें मुखसे बाहर आ जाती हैं, ग्वालिन स्तम्भकी ओटसे मुख निकालकर हँसने लगती है। बस, फिर तो यवनिका गिर गयी। दृश्य परिवर्तित हो गया। श्रीकृष्णचन्द्रने ग्वालिनको देख लिया। एक अप्रतिम सुमधुर संकोचकी छाया नन्दनन्दनके मुखचन्द्रको आवृत कर लेती है, साथ ही वे तुरंत उठकर कुञ्जवीथीकी ओर भाग चलते हैं—

आजु सखी मनि-खंभ निकट हरि, जहँ गोरस कौं गो री।
निज प्रतिबिंब सिखावत ज्यौं सिसु, प्रगट करै जनि चोरी॥
अरध विभाग आजु तैं हम-तुम, भली बनी है जोरी।
माखन खाहु कतहिं डारत हौ, छाँड़ि देहु मति भोरी॥
बाँट न लेहु, सबै चाहत हौ, यहै बात है थोरी।
मीठौ अधिक, परम रुचि लागै, तौ भरि देउँ कमोरी॥
प्रेम उमँगि धीरज न रह्यौ, तब प्रगट हँसी मुख मोरी।
सूरदास प्रभु सकुचि निरखि मुख, भजे कुंज की खोरी॥

ओह! जिनसे इस जगत्का सृजन, संस्थान, संहार है, जिनकी सत्तापर ही जगत्की सत्ता अवलम्बित है, जगत्का अवसान हो जानेपर भी जो अक्षुण्ण रहते हैं, जो सर्वज्ञ हैं, अखण्ड अबाध ज्ञानसम्पन्न हैं, स्वयंप्रकाश हैं, जो अपने संकल्पमात्रसे पद्मयोनिमें वेदज्ञानका विस्तार करते हैं, जिनके सम्बन्धमें योगीन्द्र-मुनीन्द्र विमोहित हो जाते हैं, जिनके ज्ञानमय प्रकाशसे माया सदा निरस्त रहती है, उनका अपने प्रतिबिम्बसे मोहित हो जाना कितना आश्चर्यमय है! जिस मायासे मोहित होकर जगत्के मूढ प्राणी 'मैं-मेरे' का प्रलाप कर रहे हैं, वही माया जिनके दृष्टिपथमें ठहर भी नहीं पाती, लज्जित होकर भाग खड़ी होती है—

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः॥

(श्रीमद्भा० २। ५। १३)

—उनका मणिस्तम्भमें अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भ्रमित हो जाना कितना मोहक है! ओह! जिन विराट्के कटिसे ऊपरके भागमें भूलोक, नाभिमें भुवर्लोक, हृदयमें स्वर्लोक, वक्षःस्थलमें महर्लोक, ग्रीवामें जनलोक, स्तनोंमें तपोलोक एवं मस्तकमें सत्यलोककी कल्पना है, कटिदेशमें अतल, ऊरुओंमें वितल, जानुओंमें सुतल, जंघाओंमें तलातल, गुल्फोंमें महातल, एड़ियोंमें रसातल एवं पादतलमें पाताल कल्पित है; जिन विराट्के मुखसे वाणी एवं अग्नि उत्पन्न हुए; गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति एवं जगती—ये सात छन्द जिनकी सात धातुओंसे निर्गत हुए; हव्य, कव्य, अमृतमय अन्न, समस्त रस, रसनेन्द्रिय एवं वरुण जिनकी जिह्वासे निस्सृत हुए; पञ्चप्राण एवं वायु जिनके नासाछिद्रोंसे उद्भूत हुए; अश्विनीकुमार, ओषधिसमुदाय, मोद (साधारण गन्ध), प्रमोद (विशेष गन्ध) जिन विराट्की घ्राणेन्द्रियसे उत्पन्न हुए; रूप एवं तेज जिनके नेत्रेन्द्रियसे निकले; सूर्य एवं स्वर्ग जिनके नेत्रगोलकसे प्रकट हुए; समस्त दिशाएँ, समस्त तीर्थ जिनके कर्णयुगलसे व्यक्त हुए; आकाश एवं शब्द जिनके श्रोत्रेन्द्रियसे निकले; जिन विराट्का शरीरसंस्थान समस्त वस्तुओंका सारस्वरूप एवं समस्त सौन्दर्यका भाजन है; जिनकी त्वचासे सारे यज्ञ, स्पर्श एवं वायु निकले; जिनके रोमसे यज्ञके उपकरणभूत समस्त उद्भिज्ज उद्भूत हुए; जिनके केश, श्मश्रु (दाढ़ी-मूँछ) एवं नखोंसे मेघ, विद्युत्, शिला तथा लोह प्रकट हुए; जिनकी भुजाओंसे रक्षक लोकपाल आविर्भूत हुए; जिनका पदसंचालन 'भूः, भुवः, स्वः'—त्रिलोकका निर्माण कर देता है; जिनके भयहारी चरणकमल अप्राप्तकी प्राप्ति एवं प्राप्तकी रक्षा कर देते हैं, समस्त कामनाओंकी पूर्ति कर देते हैं; जो विराट् जल, वीर्य, सर्ग, पर्जन्य, प्रजापति, कामसुख, यम, मित्र, मलत्याग, हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु, निरयके उद्गम हैं; जिनके पृष्ठदेशसे पराजय, अधर्म, अज्ञान उद्भूत हुए; जिनकी नाड़ियोंसे नद-नदी-समूहका निर्माण हुआ; जिनके अस्थिसंस्थानसे पर्वतश्रेणियाँ निर्मित हुईं; जिनके उदरमें मूलप्रकृति रस नामक धातु, समुद्र, समस्त प्राणी-समुदाय, प्राणियोंका निधन समाया हुआ है; जिनके हृदयसे मनकी अभिव्यक्ति हुई; जिनका चित्त ब्रह्मा, शंकर, नारद, धर्म, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमारका आश्रय है, विज्ञान एवं अन्तःकरणका आधार है; अधिक क्या, जिन विराट्की ही अभिव्यक्ति ये ब्रह्मा, शंकर, नारद, सनकादि हैं; सुर, असुर, नर, नाग हैं; खग, मृग, सरीसृप हैं; गन्धर्व, अप्सराएँ हैं; यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, सर्प हैं; जिनकी मूर्तिमें पशु हैं,

पितर हैं, सिद्ध हैं, विद्याधर हैं, चारण हैं, द्रुमपुञ्ज हैं; जिन विराट्‌की परिणति नभ-जल-थलवासी विविध जीव हैं, जिन विराट्‌के ही रूप ग्रह, नक्षत्र, केतु, तारावलि, तडित्, मेघ हैं; अतीत, वर्तमान एवं भविष्यके विश्व जिनके रूप हैं;* उन विराट्पुरुषके भी स्रष्टा स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्रका यह नवनीत-हरण, यह मुग्धभाव, यह शैशव-नाट्य कितना विस्मित कर देनेवाला है! भक्तवत्सलताका ऐसा निदर्शन व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त और कहीं है क्या? व्रजेन्द्रनन्दन! यशोदाप्राणधन! श्रीकृष्णचन्द्र! बलिहारी है तुम्हारी ऐसी मुनिमनहरणी मोहिनी भक्तसर्वस्वदायिनी लीलाकी!

वह बड़भागिनी गोपसुन्दरी तो आनन्दातिरेकवश आत्मविस्मृत-सी हो गयी—विक्षिप्त-सी हुई घरसे बाहर निकल पड़ी। उसकी यह अत्यन्त अद्भुत विचित्र दशा देखकर अन्य गोपसुन्दरियाँ तो चकित रह गयीं। उसके रोम-रोमसे आनन्द झर रहा है, इतना तो स्पष्ट था; किंतु इस परमानन्दका हेतु कोई भी व्रजसुन्दरी ढूँढ़ नहीं पा रही थी। सभी कारण पूछतीं, पर बताये कौन? ग्वालिन तो दूसरे मनोराज्यमें रह रही थी। जब कभी यहाँ इस शरीरमें आती भी तो कण्ठको रुद्ध पाती, सखियोंको कुछ भी बतानेमें असमर्थ हो जाती। दूसरे दिन सारा भेद खुल गया, परंतु आज तो ग्वालिन केवल इतना ही बता सकी—'बहिन! मैंने एक अनूप रूपके दर्शन पाये हैं'—

फूली फिरति ग्वालि मन मैं री।
पूछतिँ सखी परस्पर बातैं, पायौ पर्‌यौ कछू कहुँ तैं री?
पुलकित रोम-रोम, गद-गद, मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हमकौं क्यौं न सुनावै॥
तन न्यारौ, जिय एक हमारी, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं; देख्यौ रूप अनूप॥

---

*भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः। हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः॥
ग्रीवायां जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात्। मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः॥
तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः। जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम्॥
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम्। पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान्॥

× × ×

वाचां वह्निर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः। हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च॥
सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने। अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः॥
रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी। कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः।
तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम्॥
त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि। रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु सम्भृतः॥
केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम्। बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम्॥
विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च। सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम्॥
अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः। पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः॥
पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद। हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः॥
पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः। नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः॥
अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च। उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम्॥
धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च। विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम्॥
अहं भवान् भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः। सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः। पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः॥
अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः। ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः॥
सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।

(श्रीमद्भा० २। ५। ३८—४१; २। ६। १—१५)

श्रीरामलीला-चिन्तन

[मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका विशेष महत्त्व है। श्रीरामके जीवनमें भगवत्ता, अलौकिकता और दिव्य गुणोंका दर्शन तो होता ही है, साथ ही उनका चरित मानवोचित मर्यादाओंसे भी बँधा है, जो सबके लिये अनुकरणीय है। इसलिये रामलीला-दर्शनके सभी अधिकारी हैं।

वास्तवमें परमात्मप्रभुके जिस स्वरूप, गुण और लीला-चरितका चिन्तन-मनन साधकद्वारा होता है, वे गुण साधकमें भी स्वतः आ जाते हैं। इसलिये मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका लीला-चरित सर्वसाधारणके लिये परम हितकारी है। अतः यहाँ श्रीराम-जन्म, सीता-राम-विवाह, वन-गमन और राज्याभिषेक आदि लीलाओंको संक्षिप्तरूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है।—सं०]

मर्यादापुरुषोत्तमका प्रादुर्भाव[१]—(श्रीराम-जन्म-महोत्सव)

साकेत मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नित्यधाम है। अयोध्या सामान्य नगर दीखनेपर भी भगवत्स्वरूप दिव्य भूमि है और अब तो इस समाचारसे वहाँकी प्रजा अत्यन्त उल्लसित हो उठी थी कि महारानियाँ अन्तर्वत्नी (गर्भवती) हैं। महाराज दशरथने देव-मन्दिरोंमें विशेष अर्चन-अनुष्ठानोंकी व्यवस्था करवा दी थी।

पुंसवन तथा गर्भाधान-संस्कारका प्रश्न ही नहीं था। महाराज दशरथने महारानियोंको अग्निदेवसे प्राप्त पायस प्रदान किया था, इसे 'पुंसवन' कहना हो तो कहा जा सकता है। उस पायसके प्राशनको 'गर्भाधान' मानना पड़ेगा। महारानियोंके अन्तर्वत्नी होनेके तीसरे मास सविधि 'सीमन्तोन्नयन-संस्कार' सम्पन्न हुआ।

चक्रवर्ती महाराज बार-बार महारानियोंसे पूछते रहते थे कि उनके मनमें कोई इच्छा होती है? केवल महारानी कौसल्याने दोहद (गर्भवती माताकी इच्छा) सूचित की। उनके मनमें ऋषियों-ब्राह्मणोंके पूजन तथा दान करनेकी इच्छा बनी रहती थी।

'तुम प्रारम्भसे ऐसी हो।' महाराजने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम्हें देव-विप्रपूजन तथा दानमें तो सदासे रुचि है। अपने लिये कोई विशेष आहार, आभरण, वस्त्र अथवा कहीं जाने, कुछ देखनेकी भी इच्छा होती है?'

महारानीने कहा—'मुझे दूसरोंको भोजन कराकर उसे तृप्त देखनेमें आनन्द आता है। वस्त्राभरण, स्वर्ण-अन्न एवं गौ आदि पाकर जब ब्राह्मण अथवा अन्य कोई प्रसन्न होता है, तब मेरा हृदय प्रफुल्लित हो जाता है। हाँ! इन दिनों एक विशेष इच्छा अवश्य हो रही है।'

'वही तो मैं बार-बार पूछता हूँ।' महाराजने आग्रहपूर्वक जानना चाहा।

'महाराज, घोषित कर दें कि राज्यमें जो भी अभाव-पीड़ित हों, ऋणग्रस्त हों, वे राजकीय कोषसे जितना धन चाहें ले लें।' महारानीने पुनः अनुरोधके स्वरमें कहा—'मैं चाहती हूँ कि राज्यमें किसीको किसी भी प्रकारका कष्ट न हो।'

महाराजने सस्मित कहा—'घोषणा तो मैं आज ही करवा देता हूँ, किंतु देवि, दशरथ कभी इतना कृपण अथवा प्रमत्त नहीं रहा कि राज्यमें कोई किसीसे ऋण ग्रहण करे अथवा अभावकी पीडा सहे। प्रजामें किसी प्रकारका कष्ट नहीं है, देवि! इस सम्बन्धमें आश्वस्त रह सकती हैं।'

'तुम्हारी अपनी कोई इच्छा?' महाराजने कैकेयीसे पूछा।

'महाराज! मैं तो कभी सेवा-प्रिय रही नहीं, परंतु इन दिनों बड़ी जीजीके समीपसे हटनेको मन ही नहीं होता है।' हँसकर महारानीने पुनः कहा—'बार-बार जी करता है कि उनके सदनकी सब दासियोंको पृथक् कर दूँ और उनकी सब सेवा स्वयं करूँ, लेकिन यह भी कर नहीं पाती, कारण कि किसी दासीको सेवाधिकारसे वंचित कैसे करूँ? और बड़ी जीजीसे तो इन दिनों पता नहीं क्यों कुछ कहनेमें मुझे संकोच होने लगा है। लगता है कि जो आनेवाला है, वह

१-प्रस्तुत लेखमें श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'जीद्वारा लिखित 'श्रीरामचरित' के कुछ अंश संक्षेपमें उद्धृत किये गये हैं।

बड़ी जीजीके कुमारका दृढ़ अनुगामी रहेगा।'

'मुझे कोई इच्छा नहीं होती।' महाराजके पूछनेपर सुमित्राने बड़े ही सरल भावसे कह दिया—'अपनी दोनों बहनोंकी सुविधाकी व्यवस्था मेरा स्वत्व है और मुझे इसमें परम संतोष है। दोनोंने स्नेहपूर्वक मुझे यह अधिकार दे रखा है। मुझे भी कुछ चाहिये—यह तो मैं सोच ही नहीं पाती।'

महाराजने अत्यन्त कुशल सेविकाएँ महारानियोंकी सेवामें नियुक्त कर रखी थीं। वे सेवामें, आवश्यक उपचारमें तो निपुण थीं ही, इस विषयमें भी अत्यन्त ख्यात थीं कि अन्तर्वत्नीके वस्त्र, आभरण कैसे होने चाहिये, उनके समीप कौन-से रत्न कब रहने चाहिये, उनका शृंगार एवं अंगराग किस ऋतुमें किस दिन कैसा रहे—इस विषयमें उनसे अधिक ज्ञाता मिलना दुष्कर है।

इन दिनों अयोध्यामें दुर्लभ पदार्थ भी सामान्य हो गये हैं—आकाश स्वच्छ रहता है, दिशाएँ निर्मल रहती हैं, नदियोंमें-सरोवरोंमें स्वच्छ जल परिपूर्ण रहता है, वायु सदा मन्द सुख-स्पर्शी चलता है एवं वर्षा समयपर और सुहावनी होती है तथा सूर्यातप केवल शीत-निवारण करता है।

सम्पूर्ण प्रकृति जैसे शृंगार करके किसीके स्वागतमें प्रतीक्षारत हो। स्वच्छता, सम्पन्नता, शोभा एवं संगीतसे विश्व भव्य हो गया है। लगता है कि भगवती ज्येष्ठाने अपने सब उपकरण समेट लिये और उन्हें लेकर कहीं ग्रहान्तर चली गयीं।

अयोध्यामें प्रतीक्षा चल रही है—प्रतीक्षा चल रही है जन-जनके मानसमें और प्रतीक्षा तो चल रही है स्वर्गमें, ऋषि-लोकोंमें तथा ब्रह्मलोकतकमें। परमपुरुष धरापर महाराज दशरथके राजसदनमें आविर्भूत होनेवाले हैं। उनके आगमनकी प्रतीक्षा चल रही है।

अयोध्यामें तो लोग रात्रिमें निद्रासे चौंक-चौंक पड़ते हैं—'राजभवनसे मङ्गल-ध्वनि गूँजी? स्वयं महाराज दशरथके समीप जब अन्तःपुरसे कोई सेविका आती है तो उसे देनेके लिये महाराजका कर अपने कण्ठकी मणिमालापर पहुँच जाता है। वे विश्वस्त हो जाते हैं कि—'यह शिशु-जन्मका शुभ-संवाद देने आ रही है!'

महाराजकी ही चर्चा क्यों, महर्षि वसिष्ठ तथा दूसरे ऋषिगण तक जो सहज वीतराग, परम गम्भीर हैं, राजसदनसे किसीको आता देखते हैं तो समुत्सुक होकर यज्ञाहुतिके लिये बढ़ाये हुए हाथको रोक लेते हैं, वह इसलिये कि सम्भवतः—'राजकुमारके जातकर्मका आमन्त्रण आ रहा है!'

सचमुच वह समय आ गया। चैत्र-मास, शुक्ल-पक्ष, नवमी-तिथि, दिवस मङ्गलवार, अन्ततः जो मर्यादापुरुषोत्तम पधार रहे थे, उनके स्वागतके लिये काल मधुमास शुक्ल-पक्षकी मध्य तिथि रिक्ता—किसी भी शुभाशुभसे शून्या-शुद्धा तथा मध्याह्नके ज्योति-क्षणसे अधिक उपयुक्त समय क्या प्रस्तुत कर सकता था! पावन पुनर्वसु-नक्षत्रका तृतीय चरण था।

कर्क-लग्नका उदयकाल था और लग्नाधिप चन्द्रके साथ उच्चके गुरु वहाँ आसीन थे। मेषमें सूर्यनारायण, तुलामें शनिदेव, मीनमें आचार्य शुक्र, मकरमें राहु तथा वृश्चिकमें केतु भी उच्चस्थ थे। बुध मिथुनमें स्वगृही थे। वृषमें राहु तथा वृश्चिकमें केतु भी उच्चस्थ थे।

सहसा महारानी कौसल्याका कक्ष ज्योतिके अपार अम्बारसे भर उठा। कोटि-कोटि पूर्णचन्द्र-ज्योत्स्ना—असीम

तेज, परंतु सुशीतल, सुमधुर, आह्लादक। महारानीको तो पता ही नहीं लगा कि प्रसववेदना क्या होती है? उन्हें न तन्द्रा आयी और न वे मूर्च्छित हुईं, किंतु जो नेत्रोंके सामने था—सहसा वे विश्वास नहीं कर सकीं कि वह प्रत्यक्ष है। उन्होंने दोनों करोंसे नेत्र मले—'मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ!'

कुछ देरमें महारानी कौसल्या केवल तन्द्राको प्राप्त हुईं। वे चकित, आनन्दमग्न थीं। नेत्र मलकर भी देख लिया—'नहीं, वे स्वप्न नहीं देख रही हैं।' वे जाग्रत् हैं और प्रत्यक्ष देख

रही हैं, किंतु जो कुछ देख रही हैं, वह कितना अतर्क्य, अविश्वसनीय एवं अद्भुत है, कितना आह्लादकारी है—वे समझ ही नहीं पातीं कि किसीके जीवनमें इतना कल्पनातीत सौभाग्य भी सम्भव है। उनके सम्मुख एक अमल, अचिन्त्य ज्योति है—सत्य तो यह है कि जो कुछ है, उसका वर्णन सम्भव नहीं है।

अबतक महारानी उस विग्रहको सम्पूर्ण रूपसे देख नहीं सकी थी। उन्होंने कुछ देखा भी था, यह भी कहना कठिन है। वह दिव्य ज्योति ही उनका 'स्व' बनकर अपनेको ही देख रही थी। उन अनन्त-असीमका क्या दीखना था। विराट्को देखा भी कैसे जा सकता है? यह तो उस ज्योतिका प्रभाव था कि उसे देखा गया—ऐसा लगने लगा था।

उन चतुर्भुज-परम पुरुष—वेदवेद्य, ऋषि-मुनि-आराध्य श्रीनारायणके सम्पूर्ण श्रीविग्रहका ध्यान हृदयमें भले कर लिया जाय—महारानी तो सदा ही करती रही हैं, किंतु जब वे ज्योतिर्घन होकर नेत्रोंके सम्मुख आये तब उन सौन्दर्यघनका सम्पूर्ण दर्शन क्या? दृष्टि जहाँ पहुँची—वहीं अटक गयी। केवल सूक्ष्म झाँकी, अस्पष्ट प्रतीति चतुर्भुज आकारकी—अन्यथा दृष्टि तो उनके कमल-दल-विशाल लोचनोंको ही देखती रह गयी थी। अहा! कैसे थे वे अरुणाभ अनन्त कृपावारिधि-लोचन। महारानीको उस समय भी अपना 'स्व' विस्मृत ही रहा था।

महारानीने स्तुति की, यह कहना उपयुक्त नहीं है। इनके मुखसे कुछ स्वत: निकलने लगा। जहाँतक उनकी बात है, उनका हृदय मचल उठा था—'उस शिशुको अङ्कमें उठा लेनेके लिये।'

वह ज्योति विलीन नहीं हुई, घनीभूत होकर शिशु बन गयी थी और महारानीके अङ्कमें ही थी। ज्योतिके इस घनीभावके साथ कक्षमें जो-जो भी थीं, सबकी चेतना जाग्रत् हो गयी, एक साथ सब हड़बड़ाकर उठीं और कक्ष कांस्यपात्रकी ध्वनिसे, शंखनादसे गूँजने लगा।

उस कक्षके वाद्योंकी ध्वनिके साथ ही राजद्वारपर वाद्य गूँजने लगे थे। क्षणभरमें तो सम्पूर्ण नगर वाद्यध्वनि तथा कोलाहलसे परिपूर्ण हो गया। गगन और धरामें जैसे वाद्य, नृत्य तथा गायनकी स्पर्धा चलने लगी। आकाशसे सुरगण पुष्पवृष्टि करने लगे। देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ—ये सभी कब गगनसे नृत्य करते, गाते, वाद्य लिये अयोध्याके हर्षमग्न लोगोंमें आ मिले, कौन जानने-पहचाननेकी स्थितिमें था!

'अयोध्याने युवराज पाया!' दासियाँ दौड़ीं, पहले समाचार देने महारानी कौसल्याके सदनसे।

'बड़ी महारानीको पुत्र हुआ!' वाद्य-ध्वनिने ही यह समाचार एक साथ सम्पूर्ण नगरको दे दिया; क्योंकि वाद्य-ध्वनि बड़ी महारानीके सदनसे उठी थी और पुत्रके होनेका मङ्गलवाद्य भी क्या पहचानना पड़ता है!

'बधाई!' जो जहाँ थे, वहींसे दौड़ पड़े। कोई नहीं देखता कि वह किससे कह रहा है। नियमत: सेवकोंको समाचार देना चाहिये। बड़ोंको उपहार देना चाहिये, किंतु जब आनन्दके महापूरमें तन-मनका स्मरण ही न हो, तब इन सबका ध्यान ही कौन रख सकता है? अयोध्यामें तो गृहपति, गृहस्वामिनी अपने ही सेवक या दासीको बधाई देने लगे थे। जिसे जो भी सम्मुख मिला, उसीको जो आभरण हाथमें आया, उतारकर दे दिया तो लेनेमें किसीने संकोच नहीं किया।

महाराज दशरथतक एक दासी दौड़ गयी थी। महाराज अभी मध्याह्न-संध्या करके उठे ही थे। करोंने कैसे कण्ठहार उतारकर दासीकी ओर बढ़ा दिया, महाराजको पता नहीं, दो क्षण महाराजका अङ्ग-अङ्ग आनन्दातिरेकसे शिथिल रहा।

महामन्त्री सुमन्त्र स्वत: रथ ले आये और सम्मुख खड़े हो गये। महाराजको एक शब्द नहीं बोलना पड़ा। उन्हें अविलम्ब कुलगुरुके समीप जाना था।

महर्षि वसिष्ठके आश्रममें महोत्सव प्रारम्भ हो गया था। अयोध्याके सभी वृद्ध, तरुण, युवा ब्राह्मण वहाँ आ चुके थे। मार्गमें ही महर्षिने महाराजसे सस्नेह कहा—'वत्स! तुम्हारा पुत्र होकर जो आया है, वह परम ज्योति अप्रकट नहीं रह सकता। मध्याह्न-हवनके समय आहुति-दानसे पूर्व ही अग्निदेव स्वत: निर्धूम ज्वाला देने लगे, ब्राह्मण-कुमारोंका समुदाय मेरे समीप दौड़ आया। सबने मुझे प्रणाम कर कहा—'महर्षिने यजमान पाया।'

महाराज दशरथने महर्षिको प्रणिपात किया तो महर्षिने

आशीर्वाद देते हुए कहा—'नवजात चिरायु हो! चिरायु हों उसके आनेवाले अनुज!'

महर्षिगण एवं विप्रवृन्द राजसदनकी ओर प्रस्थान कर रहे थे। आज अयोध्यामें किसीसे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं थी। औपचारिक शिष्टाचार आनन्दातिरेकके प्रवाहमें बह चुका था। वाद्य, शंखनाद, वेद-ध्वनिसे गगन गूँज रहा था। गायक, सूत, मागध, वन्दी पूरे उत्साहमें थे। उन्हें यह भी अपेक्षा नहीं थी कि उनका संगीत, उनका काव्य या स्तवन कोई सुन भी रहा है अथवा नहीं। स्त्री-पुरुष सब सुसज्जित हो विविध उपहार लिये राजसदनकी ओर दौड़ पड़े थे। राजपथोंपर रथ, अश्व या गजके लिये मार्ग नहीं रह गया था।

महाराज दशरथका राजकोष खुल गया था, यह कहना बहुत अल्प वर्णन है। अयोध्यामें प्रत्येक दे रहा था—लुटा रहा था। जो सम्मुख मिल जाय उसे ही दे रहा था। कोई नहीं देखता था कि वह सेवक होकर अपने सम्पन्नतम स्वामीको ही देने लगा है। यहाँ तक कि दासियाँ भी आभूषण उछाल रही थीं, सम्मुख जो मिले, उसीकी ओर।

दधि, दूर्वा, लाजा, कुंकुम, हरिद्रा और सुगन्धित पुष्पसार (इत्र)—इनसे राजपथ, वीथिकाओं-प्रांगणोंमें कीच हो जाती यदि गगनकी अजस्र पुष्प-वर्षा वहाँ सुमन-राशि आस्तृत न करती होती। गगन मेघाच्छन्न-जैसा बन गया कुंकुम उड़नेसे। आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सब रंगोंसे लथपथ और आनन्दमग्न। उछलते-कूदते, नाचते-गाते, स्तुति करते, जय-ध्वनि करते लोगोंका समुदाय। शंख तथा मङ्गलवाद्योंका चित्ताकर्षक स्वर।

महाराज दशरथने मुनियोंके साथ राजभवनमें प्रवेश किया। स्नान करके देवताओं एवं पितरोंका तर्पण-पूजन किया। महर्षि वसिष्ठने ब्राह्मणोंके साथ सविधि जातकर्म कराया।

महाराज दशरथको पुत्र-मुख-दर्शन करके जो आह्लाद हुआ—अङ्ग-अङ्ग शिथिल, स्तब्ध रह गया। रोम-रोम उत्थित, देह स्वेद-स्नात। किसी प्रकार महर्षिके चरण-कमलोंमें शिशुको रखा—'यह आपका मूर्तिभूत आशीर्वाद······।'

महर्षिका कण्ठ भी मन्त्र-पाठमें असमर्थ हो रहा था। इस महोत्सवका वर्णन अशक्य है और दान—आभूषणों तथा रत्नोंसे आवृत अयोध्याके पथ तथा प्रांगण चलनेके अयोग्य हो गये थे। उनको हटानेकी विशेष व्यवस्था महाराजके मन्त्रियोंको करनी पड़ी।

भरतादिका जन्म

अयोध्यामें महोत्सवका महापूर प्रवाहित हो रहा था। चैत्रशुक्ल नवमीके मध्याह्नमें महाराज दशरथका राजसदन प्रथम पुत्रके प्रादुर्भावसे प्रोज्ज्वल हुआ। मधुमास, मङ्गलवार महामङ्गल लेकर आया। पता ही नहीं लगा कि वह दिन कैसे क्षणार्धके समान व्यतीत हो गया और कैसे व्यतीत हो गयी वह रजनी!

धन्य था वह मङ्गलवार। अपने जाते-जाते, अपने अन्तिम प्रहरमें वह अयोध्याको एक और उपहार देता गया। ऐसा उपहार जो त्रिभुवनमें अतुलनीय रहा और रहेगा। किसीने संध्या समाप्त नहीं की थी, अभी सूर्योदय हुआ नहीं था। बुधवारका प्रभात तो होनेवाला था, अतः अवश्य ही सब लोगोंने संध्याके संकल्पमें अब दशमी तिथिका उच्चारण किया था। चन्द्रमा-पुष्य नक्षत्रपर आ चुके थे और मीन-लग्न था। इसी समय महारानी कैकेयीके सदनसे पुत्रके पदार्पणका मङ्गल-वाद्य गूँजा।

धर्मप्राण जन थे अयोध्याके, किंतु आज आह्निक कृत्यमें यह व्याघात सबको प्रिय—अत्यन्त प्रिय लगा। ऋषि-मुनियोंने ही नहीं, महर्षि वसिष्ठने भी बहुत शीघ्रतामें प्रातःकालीन तर्पण-हवन समाप्त किया। लगता था कि भगवान् भुवन-भास्करको भी अपने वंशकी यह परमोत्तम श्रीवृद्धि-दर्शनका कुतूहल है, इसी कारण वे भी त्वरित पदोंसे गगनमें उठ आये हैं।

वही उल्लास, वही जयनाद एवं वाद्यध्वनि—अभी तो प्रथम महोत्सव ही चल रहा था—इस कारण जो दूसरा आया था, उसका पहलेसे पृथक् अस्तित्व ही नहीं था। वह अपने लिये पृथक् महोत्सवका अवसर भी लेकर नहीं आया।

अयोध्याके पथ-वीथियाँ, उनके दिये-लुटाये पदार्थोंसे पटते जा रहे थे। उन्हें लगता था कि उन्हें ग्रहीता मिल नहीं रहे हैं—जो मिलते भी हैं, वे अत्यल्प भी बहुत आग्रह करनेपर स्वीकार करते हैं।

अभी इस महोत्सवका जैसे प्रारम्भ ही हुआ हो, अभी नर-नारी सबका उत्साह पूरे आवेगमें ही था कि महारानी सुमित्राके सदनसे भी मङ्गल-वाद्य गूँज उठा। महाराज दशरथके कुमारोंको लोकाराध्य होना था, अत: सभी कुमार आराधनाके पावन-कालमें ही प्रकट हुए।

दशमी-तिथि, बुधवार, वही चैत्रमासका शुक्लपक्ष। मध्याह्नका ही समय। महारानी सुमित्राके युग्मज संतान हुई—दो कुमार।

प्राय: युग्मज शिशुओंकी आकृति तथा प्रकृति समान होती है। महारानी सुमित्राके दोनों शिशुओंका शरीर तप्त-स्वर्ण-गौर, किंतु शरीरके अङ्ग तो जैसे चारों कुमारोंके एक ही साँचेमें ढले थे। इन दोनों कुमारोंमें भेद कर पाना, दोनों नील-सुन्दर कुमारोंमें भेद कर पानेसे भी कठिन था।

महारानी सुमित्राने पहली बात शिशुओंको देखते ही कही—'मैं निश्चिन्त हो गयी। ये दोनों अपने अग्रजोंके अनुगामी बनेंगे। मैं अपनी दोनों बहनोंकी सेवासे संतुष्ट हूँ। अब ये दोनों मुझे चारोंकी माताका गौरव देने आ गये हैं।'

महाराज दशरथको जैसे चारों पुरुषार्थ साकार प्राप्त हो गये। इन कुमारोंका दर्शन करके महर्षि वसिष्ठने कहा—'राजन्! धन्य हो तुम! श्रीनारायणका तुमपर असीम अनुग्रह। सृष्टिमें वे अपने चतुर्व्यूहात्मक स्वरूपोंसे आपको पिताका गौरव देने पधारे।'

महाराजके चार कुमार—परम सुन्दर, भुवन-मनोहारी चारों शिशु 'युग-युग जीते रहें।'

आशीर्वाद ब्राह्मण वेदमन्त्रोंके द्वारा देते हैं और आज तो वे 'स्वस्ति'-पाठ करते, आशीर्वाद देते मानो थकते ही नहीं। आशीर्वाद तो जन-जनके हृदयसे निकल रहा है। महिलाएँ अंचल फैलाकर सूर्यनारायणसे, देवताओंसे आशीर्वाद माँगने लगी हैं—इन चारों राजकुमारोंके लिये।

अयोध्यामें अब अविराम महोत्सव चलना था। असंख्य अतिथि आ रहे थे। उनके आवासकी, आतिथ्यकी व्यवस्था राजकर्मचारियोंने प्रारम्भ कर दी थी और महर्षि वसिष्ठने महाराजको आगत तपस्वी, ऋषि-मुनि-गणोंकी ओरसे निश्चिन्त कर दिया था।

अयोध्यामें यह पहचाननेका उपाय नहीं रह गया था कि आगतोंमें मानव-वेशमें कितने दिव्य लोकोंके पूज्य हैं, कितनी देवियाँ हैं। सबका ही पूजनीयके समान सत्कार और सभी तो आते थे स्नेहका, सेवाका अवसर पानेकी उत्कण्ठाका भाव लेकर ।

नित्य-नूतन पुरी अयोध्या। नित्य-नूतन महोत्सव। नित्य-नूतन उत्साह जन-जनमें। अब तो अतिथियोंका अजस्र प्रवाह अयोध्याकी ओर उमड़ पड़ा था। अयोध्यामें महाराज दशरथके अन्त:पुरमें जो शिशु आ गये थे, त्रिभुवन जैसे उनके जन्मोत्सवमें उन्मद हो उठा था।

बालक्रीडा

चक्रवर्ती महाराजके कुमार बड़े हुए और खड़े होकर चलने भी लगे, फिर ये किसी एक ही प्राङ्गणमें कैसे रह सकते थे? चाहे जब ये भवन-द्वारसे निकल पड़ते हैं और जिधर मनमें आये, उधर ही चल देते हैं। सेवक-सेविकाएँ साथ रहते हैं, किंतु बालकोंको मना करनेकी आज्ञा उन्हें नहीं है। ये सब केवल सुरक्षा तथा सहायता ही कर सकते हैं।

कुमार-क्रीडा

अयोध्याके नागरिकोंका आनन्द शत-सहस्र-गुणित हो उठा, जब चक्रवर्ती सम्राट्के कुमार राजसदनसे बाहर क्रीडाके लिये निकलने लगे। कितनी आकांक्षा थी सबकी कि कुमार उनके गृह, उनके आपण-स्थानतक भी कभी पधारें। अब उस अभिलाषाके पुष्पित-फलित होनेका अवसर आ गया।

चरणोंमें स्वर्ण-रत्न-खचित उपानह, कटिमें कौशेय कछनी, स्कन्धपर दुकूल, कण्ठमें मौक्तिक माला, वनमाला तथा भुजाओंमें रत्नाङ्गद, कलाइंयोंमें कङ्कण, अञ्जन-रञ्जित खञ्जन-मञ्जु विशाल दृग्, तिलक-भूषित भाल, कर्णोंमें रत्न-कुण्डल, घुँघराली सघन-सुकोमल अलकें, मस्तक मणिरत्न-खचित कुलहियोंसे मनोरम, करोंमें छोटे-छोटे धनुष और चमकते बाण। अभी ये परम सुकुमार इस योग्य कहाँ हैं कि कटिपर तूणीर धारण कर सकें। अभी तो सेवक इनके साथ निषङ्ग लिये चलते हैं, जब ये सरयू-पुलिनपर लक्ष्य-वेधकी क्रीडा करना चाहते हैं।

प्राय: एक ही रथमें चारों कुमार निकलते हैं। सेवक तथा मन्त्री-पुत्र साथ होते हैं और राजसदनसे बाहर आते ही अनेक रथ साथ हो जाते हैं। नगरके सभी बालक तो

इनके साथ ही रहना चाहते हैं।

चक्रवर्ती महाराजके सेवक तथा मन्त्री साथ चलते हैं—'राजकुमार जिस वस्तुको लेना चाहें, उसका पूरा निष्क्रय दिया जाय! यह आज्ञा है', किंतु वणिक् कहाँ इसे स्वीकार करते हैं। उनका एक ही स्वर है—'हमारे पिता-पितामहकी परम्परासे प्राप्त सम्पत्ति सम्राट्का प्रसाद है। हमारे ऐसे भाग्य कहाँ कि हम महाराजाधिराजके कुमारोंकी अल्प सेवा भी कर सकें। कोई क्षुद्र उपहार तक भी राजकुमार स्वयं पधारनेपर स्वीकार न करें। ऐसा अपराध तो हमारा नहीं माना जाना चाहिये।'

वस्त्र-आभूषण, मिष्टान्न, पुष्पसार, मालाएँ आदि सबके व्यापारी हैं। राजकुमार जब चाहे जिसकी प्रार्थनापर उसके यहाँ जा खड़े होते हैं और बालक अब चाहे जितना भी अस्वीकार करें, वह अपना श्रेष्ठतम उपहार राजसदन भेजेगा ही। मन्त्री प्रबन्ध कर देते हैं कि उस व्यापारीको निष्क्रय न कहकर राजकीय पारितोषिक रूपमें अनेक गुणित धन प्राप्त हो जाय।

इस प्रकार श्रीरामका समय अपने अनुजोंके साथ आमोद-प्रमोद और बाल-क्रीडामें व्यतीत होने लगा। जैसे-जैसे वे बड़े होने लगे, अपने पूज्य पिता दशरथके राजकाज तथा अन्य कार्योंमें स्वतः रुचि लेते और अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे सत्-परामर्श भी देनेका प्रयास करते। कुमारकी इन विशेषताओंको देखकर राजा दशरथका हृदय अत्यन्त आह्लादित हो जाता।

महर्षि विश्वामित्रका शुभागमन

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरथ दिनके प्रथम प्रहरके अन्तमें राजसभामें सिंहासनपर विराजमान हुए ही थे कि द्वारपालने समाचार दिया—'ऋषि विश्वामित्र महाराजसे साक्षात्कार करने पधारे हैं।'

'ब्रह्मर्षि विश्वामित्र!' अच्छी बात यह थी कि रघुकुल-गुरु महर्षि वसिष्ठ उस समय राजसभामें ही थे। वे सबसे पहले अपने आसनसे उठे और उन्होंने महाराजसे कहा—'ब्रह्मर्षि पहले राजर्षि रहे हैं, अतः ऋषिगणोंके साथ सेनापतियोंको भी उनका स्वागत करना चाहिये।'

महर्षि वसिष्ठके साथ वामदेव, जाबालि आदि सभी उपस्थित ऋषिगण उठे। सभी मन्त्री और सेनापति महाराजके साथ हो गये। महाराज शीघ्रतापूर्वक द्वारपर पहुँचे। शंख-ध्वनि, विप्रोंका मन्त्रपाठ एक क्षणको विरमित हुआ जब महाराजने भूमिमें पड़कर दण्डवत् प्रणिपात किया—'यह ऐक्ष्वाकु अज-तनय दशरथ श्रीचरणोंमें प्रणत है।'

विश्वामित्रजीने महाराजको उठाया। वसिष्ठजीने उन्हें अङ्कमाल दी। दूसरे सभी ऋषियोंने उनकी वन्दना की। मन्त्रपाठ, वाद्यध्वनिके स्वागतके मध्य महाराज विश्वामित्रजीको राजसभामें ले आये। वहाँ रत्नसिंहासनपर मृगचर्म आस्तृत करके उन्हें विराजमान कराकर महाराजने उनके चरण धोये। उस पादोदकसे पूरी राजसभा सिंचित हुई और उसे राजसदन सिंचित करनेको भेज दिया गया।

अर्घ्य, पाद्य, चन्दन-माल्य, धूप-दीपादिसे पूजा करके महाराजने कहा—'आज मेरे जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका उदय हुआ है। आज मेरे पितर परितृप्त हुए। आज मुझपर भगवान् जनार्दनकी कृपाका अवतरण हुआ कि आपके चरण-दर्शनका सौभाग्य मिला। आज आपका पादोदक पाकर मैं निष्कलुष हो गया। आपने जैसे इतनी अहैतुकी कृपा की है, वैसे ही राजसदन पधारकर अपना प्रसाद प्राप्त करनेका सौभाग्य अन्तः-पुरवासियों तथा राजकुमारोंको भी प्रदान करें।'

'राजन्! नियम यह है कि याचक अतिथि अपनी याचना-पूर्ति होनेपर ही आहार ग्रहण करता है।' विश्वामित्रजीने कहा—'मैं आप सत्यसन्ध तथा परमोदारके समीप याचक बनकर आया हूँ।'

'भगवन्! दशरथका इससे महान् सौभाग्य और क्या होगा।' महाराजने अंजलि बाँधकर भक्ति-विभोर-स्वरमें कहा—'यह सम्पूर्ण राज्य, समस्त कोष, सारी सेना, पूरा अन्तःपुर, मैं स्वयं और मेरे सब पुत्र आपके हैं। मैं अपना मस्तक भी देकर सेवा कर सकूँ तो कृतार्थ हो जाऊँगा।'

'रघुकुलकी परम्पराके अनुरूप आपका वचन है।' विश्वामित्रने शान्त-स्वरमें कहा—'विवश होकर ही मैं आपके समीप याचना करने आया हूँ।'

'आप आज्ञा करें!' महाराजने कहा—'मैं अपना सर्वस्व देकर उसे पूर्ण करूँगा।'

'राजन्! आप सत्यनिष्ठ हैं और परम उदार हैं। इस वंशमें

कोई ऐसा कृपण या कापुरुष नहीं हुआ जो आगत तपस्वीको निराश कर दे।' विश्वामित्रने फिर कहा—'आप तो प्रख्यात महादानी हैं। मुझे आपके औदार्यपर भरोसा न होता तो मैं तपोवन छोड़कर अयोध्या नहीं आता।'

महाराजने कहा—'धर्म और सत्यसे महान् कुछ नहीं है। आप आज्ञा करें!'

'मुझे हिमालयमें अपनी तपोभूमि कौशिकीके तटपर तपस्या करना प्रिय है। लोकमें और परलोकमें भी मेरी कोई स्पृहा नहीं है।' विश्वामित्रजीने कहना प्रारम्भ किया—'किंतु मैंने एक पार्वण-यज्ञका संकल्प किया और गङ्गातटपर सिद्धाश्रम आ गया। वह अनादि पुण्यस्थली मुझे प्रिय लगी। वहाँ पहलेसे ही अनेक तपस्वी मुनिगण रहते थे। सबने मुझे सहयोग दिया।'

महर्षि वसिष्ठ प्रारम्भसे ही चौंक गये थे—'ऐसी क्या समस्या है जो विश्वामित्रजी नहीं सुलझा पाते। सृष्टिमें इनके लिये दुर्लभ, दुर्गम, अलभ्य, अशक्य तो कुछ है नहीं। तब ये कहना क्या चाहते हैं!'

मन्त्रियोंको, ऋषियोंको भी आश्चर्य था—विश्वामित्रजी और याचना?

'लेकिन मेरा यज्ञ पूर्ण नहीं हो पाता है। जब पर्वपर हम लोग यज्ञारम्भ करते हैं, राक्षस आकर अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा करके यज्ञ-स्थान भ्रष्ट कर देते हैं।' विश्वामित्रजीने कहा—'आपके कुलगुरुके सम्मुख ही मैंने शस्त्र-न्यास किया। कोई यज्ञ-दीक्षित ऋषि अस्त्र लेकर असुर-संहार करे, यह उचित नहीं है। शाप देकर भी मैं उन सबको भस्म कर सकता हूँ; किंतु अनेक बार इसी प्रकार मेरा तप नष्ट हो चुका है। अत: मैं आपके समीप आया हूँ। यज्ञ-विघ्न करनेवाले राक्षसोंके नायक दूसरे किसीसे भी अवध्य हैं। अब उनकी मृत्युका समय आ गया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामके करोंसे ही उनकी मृत्यु विहित है। अत: मैं रामकी याचना करता हूँ।'

'श्रीरामकी याचना?' महाराज दशरथ तो सुनते ही लगभग मूर्च्छित-से हो गये। बड़े कातर कण्ठसे उन्होंने कहा—'भगवन्! वृद्धावस्थामें मुझे चार पुत्र प्राप्त हुए। चारों ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं और उनमें भी राम तो मेरे प्राण हैं। अभी तो राम पूरे सोलह वर्षके भी नहीं हुए। ये बालक हैं, कोई युद्ध-विशारद नहीं और न शत्रुके बलाबलको जानते हैं।'

'राजन्! कमललोचन रामके प्रभावको मैं जानता हूँ, आपके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ जानते हैं और दूसरे तपोधन जानते हैं। आप इनके प्रभावको नहीं जानते। आप तो इन्हें अपना सुकुमार पुत्र मात्र जानते हैं।' विश्वामित्र गम्भीर होकर बोले—'आप किसी प्रकारका भय मत करें। मैं इनकी रक्षाका दायित्व लेता हूँ। इनका कोई अनिष्ट नहीं होगा। इनका बहुत मङ्गल होगा।'

महर्षि वसिष्ठ संतुष्ट हो गये। जब विश्वामित्रजी रक्षाका दायित्व लेते हैं, तब सृष्टिमें अनिष्ट करनेकी शक्ति किसमें है। ब्रह्मर्षिके चरणोंमें प्रणिपात करके भाइयोंके साथ श्रीराम पिताके समीप बैठे थे। विश्वामित्रजी बात कर रहे थे महाराजसे, किंतु उनकी अपलक दृष्टि श्रीरामके मुखपर लगी थी। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामकी ओर देखा तो उन शील-सिन्धुने किंचित् मस्तक झुका दिया। यह उनकी स्वीकृति थी विश्वामित्रजीके साथ जानेकी।

'मैं एक अक्षौहिणी सेना लेकर आपके साथ चलता हूँ।' महाराजने कातर प्रार्थना की—'वृद्ध हो गया फिर भी मरणपर्यन्त युद्ध करूँगा। आप श्रीरामको ले जाना चाहते हैं तो मुझे ससैन्य साथ चलनेकी अनुमति दें।'

'राजन्! वे राक्षस-नायक हैं मारीच और सुबाहु। लंकाधिप राक्षसराज रावणके वे अनुचर हैं। रावण स्वयं नहीं आता, उसने अपने इन सेवकोंको हमारे उत्पीडनके लिये नियुक्त कर रखा है।' विश्वामित्रजीने अब संकटका स्वरूप स्पष्ट किया—'आप अयोध्याकी सेना लेकर चलेंगे तो दशग्रीव भी ससैन्य आ धमकेगा। श्रीराम बालक हैं, अत: उनके जानेसे आतंक नहीं फैलेगा। वे उन दुष्ट असुरोंको समाप्त कर देंगे। रावणको आनेका अवसर नहीं मिलेगा।'

'मैं युद्धमें अब इस वार्धक्यमें मायावी दशग्रीवको पराजित कर सकूँगा, इसकी आशा मुझे नहीं है।' महाराजने स्पष्ट कहा—'उस क्रूरसे शत्रुता करना बुद्धिमानी नहीं है। मैं उसके अनुचरोंके विरुद्ध युद्ध करने अपने पुत्रोंको नहीं भेज सकता। आप मुझे क्षमा………।'

महाराज दशरथकी बात पूरी नहीं हुई। विश्वामित्रजी क्रुद्ध हो सिंहासनसे उठकर खड़े हो गये। उनकी भृकुटि कठोर हो गयी। उन्होंने अत्यन्त उग्र स्वरसे कहा—'पहले प्रतिज्ञा करके अब तुम उसे भंग कर रहे हो? तुम ऐसा कर नहीं सकते।'

'ब्रह्मर्षि!' रघुकुलगुरु वसिष्ठजी अत्यन्त सशंक हो उठे। उन्होंने उठकर विश्वामित्रका हाथ पकड़ा और आसनपर बैठाया तथा अनुरोधके स्वरमें कहा—'आप मुझे भी कुछ समय अवश्य देंगे। अन्ततः मैं रघुकुलका पुरोहित हूँ। महाराज और श्रीराम मेरे भी शिष्य हैं।'

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रने वसिष्ठकी ओर देखा और फिर श्रीरामकी ओर देखा। उन पद्मपलाश-लोचनोंसे दृष्टि मिलते ही विश्वामित्रकी कठोर भृकुटि सीधी हो गयी। उनका रोपसे तमकता मुख सहज हो गया। वे सहज स्वरमें बोले—'अपनी प्रतिज्ञा भंग करके यदि आप सुखी होते हों तो मैं लौट जाऊँगा, किंतु विश्व सदा यही कहेगा कि रघुकुलका प्रथम नरेश दशरथ था, जिसके यहाँसे तपस्वी अतिथि निराश लौट गया और उस नरेशने तपस्वीको वचन देकर उसका मोहवश पालन नहीं किया।'

'राजन्! आप अपनी प्रतिज्ञा भंग करके धर्मको नष्ट मत करो।' अब महर्षि वसिष्ठ बोले—'श्रीराम अस्त्रज्ञ हों या न हों, ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जिसके रक्षक हैं, उसका त्रिभुवनके सब राक्षस मिलकर भी क्या बिगाड़ लेंगे? आपको पता नहीं है कि अमित-तेजा कृशाश्वने अपने सब अस्त्र विश्वामित्रजीको दे दिये हैं। सुप्रभाके भी सब अस्त्र इनके समीप हैं। देवताओं तथा असुरोंके समीप भी कोई ऐसा दिव्यास्त्र नहीं जो इन्हें उपलब्ध न हो। त्रिलोकीमें अभूतपूर्व अस्त्रज्ञ विश्वामित्रजी हैं। इनके समान अस्त्रज्ञ आगे भी नहीं होगा। इनके रक्षणमें रामको क्या भय है? ये राक्षसोंका वध करनेमें स्वयं समर्थ हैं, किंतु आपके पुत्रका हित करने आये हैं।'

महाराज दशरथके लिये अपने कुलगुरुकी आज्ञाको टाल देना सम्भव नहीं था। उन्होंने अत्यन्त कातरभावसे कुलगुरुकी ओर देखा।

'आप कुछ क्षण मुझे क्षमा करें।' महर्षिने विश्वामित्रजीसे कहा। उनके संकेतके अनुसार महाराज उनके पीछे एकान्त-मन्त्रणा-कक्षमें चले गये।

महर्षि विश्वामित्रके साथ राम-लक्ष्मणका प्रस्थान

'आप अब अपने श्रीचरणोंसे राजसदनको पवित्र करें।' महर्षि वसिष्ठने राजसभामें पहुँचते ही विश्वामित्रजीसे प्रार्थना-भरे स्वरमें कहा—'अयोध्या-नरेशको आपके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त होना चाहिये। आप आहार ग्रहण करके किंचित् विश्राम कर लें। श्रीरामको भी लक्ष्मणके साथ भोजन करके माताओंसे अनुज्ञा प्राप्त करनेका अवसर दें। दोनों राजकुमार इसके अनन्तर आपका अनुगमन करेंगे।'

'चक्रवर्ती महाराजका अक्षय यश भुवनको पवित्र करेगा।' ब्रह्मर्षि विश्वामित्र सुप्रसन्न होकर राजसदनके अन्तः-पुरमें जानेके लिये उठ पड़े। महर्षि वसिष्ठको उनका साथ देना था।

सानुज श्रीरामने माताओंको प्रणाम किया। प्राणप्रिय पुत्रोंको ऋषिके साथ राक्षसोंसे संग्राम करने जानेको भेजना बहुत दारुण, अत्यन्त दुःखद है, परंतु क्षत्राणी तो पुत्र उत्पन्न ही करती है युद्धमें सहर्ष भेजनेके लिये। अतः महारानियोंने उन्हें अङ्कसे लगाकर आशीर्वाद दिया। भरत-शत्रुघ्नने श्रीरामकी पद-वन्दना की।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्रका इष्टदेवके समान राजसदनमें सत्कार हुआ, किंतु वे आज ही प्रस्थान कर देना चाहते थे, अतः शीघ्र गमनोद्यत हो गये। पुत्रों, मन्त्रियों तथा कुलगुरुके साथ महाराज सरयू-तटतक ब्रह्मर्षिके साथ आये।

'राजन्! आप किसी प्रकारकी शंका मत करें।' विश्वामित्रजीने आश्वासन दिया—'इनका कल्याण होगा। ये आपके यशको उज्ज्वल करके आपके चरणोंमें प्रणाम करेंगे। विश्वामित्र अपने नेत्रगोलकोंके समान इन्हें मानेगा।'

राजसदनसे चलते समय ही ब्राह्मणोंके साथ महर्षि वसिष्ठने मङ्गल-पाठ किया था। सरयू-तटपर श्रीराम-लक्ष्मणने पिताको, कुलगुरुको, ब्राह्मणोंको पुनः प्रणाम किया। भाइयोंको अङ्कमाल दी। दोनों महर्षि मिले परस्पर। आशीर्वाद प्राप्तकर दोनों भाई विश्वामित्रजीके साथ अयोध्यासे प्रस्थान कर गये।

मस्तकोंपर राजकुमारोंके योग्य मुकुट नहीं थे। घुँघराली काली अलकोंमें पुष्पमाल्य सजे थे। ललाटपर लगे कुंकुम-

तिलकपर अक्षतके दाने चिपके थे। कुटिल भृकुटि, विशाल मनोहर लोचन, कर्णोंमें झलमलाते रत्नकुण्डल, कम्बुकण्ठोंमें मौक्तिक मालाएँ, वनमाला, उत्तरीय। पीठपर कसे त्रोण, वाम-स्कन्धपर धनुष, कटिमें पीतपट—दोनों भाइयोंकी अद्भुत छटा थी।

महर्षि विश्वामित्रने सरयूके दक्षिण-तटसे यात्रा प्रारम्भ की। मार्गमें दोनों राजकुमारोंको महर्षिने कई विद्याएँ प्रदान कीं। चलते-चलते एक वन आया। ताड़का राक्षसी इसी वनमें रहती है। दो कोसतक इस वनमें कोई प्रवेश नहीं करता। यह जन-वर्जित क्षेत्र हो गया है। महर्षि विश्वामित्रने दोनों राजकुमारोंको सावधान करते हुए ताड़का-वधका संकेत किया, फिर क्या था? एक बाणसे ही प्रभुने ताड़काका उद्धार कर दिया और वह वन निरापद हो गया।

इसी प्रकार अन्य राक्षसोंसे भी वहाँके यज्ञ-स्थलको मुक्त करना था। दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ आगे बढ़े और सिद्धाश्रममें पहुँचे, जहाँ कई तपस्वी निवास करते थे। विश्वामित्र इस सिद्धाश्रमके कुलपति थे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ। मारीच-सुबाहु आदि राक्षसोंने अपने दलबलके साथ यज्ञको ध्वंस करनेका प्रयत्न किया। प्रभुने सभी राक्षसोंका संहारकर उस भूमिको भी निरापद कर दिया। दोनों राजकुमारोंने कुछ समय यज्ञाश्रममें निवास किया। इसी क्रममें महर्षि विश्वामित्रने विदेहराज जनक और उनकी तनया भगवती सीताकी चर्चा राजकुमारोंसे की और जनकपुरसे परिचित कराया। इसी बीच महर्षिको यह समाचार मिला कि जनकपुरमें विदेहराजके द्वारा धनुष-यज्ञ और सीता-स्वयंवरका आयोजन किया गया है। राजकुमारोंको भी इस समारोहको देखनेकी उत्सुकता होनी स्वाभाविक थी। दोनों राजकुमार महर्षि विश्वामित्रके साथ जनकपुरके लिये प्रस्थान कर गये।

जनकपुरमें पदार्पण तथा नगर-दर्शन

अकस्मात् पहुँचे थे महर्षि विश्वामित्र मिथिलामें। ऋषि-मुनि किसीको पूर्व सूचना देकर कदाचित् ही आते हैं। अपनी इच्छाके धनी इन आत्माराम आप्तकाम महापुरुषोंका पदार्पण मानवका सौभाग्य। लेकिन विश्वामित्रजी अनवसर नहीं आये थे। मिथिला नरेश महायज्ञ कर रहे थे।

वहाँ उपस्थित सभीने यथाविधि सम्मान किया। सब जानते थे कि एक विख्यात कुलपति ऋषिको किसीके भी आश्रमकी अपेक्षा पृथक् आवासमें सुविधा होती है। अत: विश्वामित्रजीके लिये पृथक् आवासकी सुन्दर व्यवस्था की गयी।

जलका सुपास (सुभीता) था। आम्रोपवनकी शीतल छाया थी और आस-पासके ऋषि-मुनियोंने कन्द, मूल, फलकी राशि अर्पित कर दी थी प्रथम सत्कारमें। महर्षि विश्वामित्र तथा उनके साथके तपस्वी इधर-उधर वृक्षोंकी छायामें सुविधानुसार बैठ गये।

मध्याह्न-स्नान, संध्यादिके अनन्तर जब फलाहार करके महर्षि अल्प विश्राम कर चुके, श्रीराम सानुज महर्षिके समीप आकर बैठ गये। लक्ष्मणने अग्रजके मुखकी ओर देखा। उनके मनमें हो रहा था—'जनकपुरीकी प्रशंसा है कि यह विवेकी लोगोंकी नगरी है। वीतराग, नि:स्पृह, केवल कर्तव्य-पालनार्थ कर्म-तत्पर नागरिकोंका नगर कैसा होता होगा? इस नगरको एक दृष्टि देख तो आना चाहिये।'

अनुजकी साभिप्राय दृष्टिका तात्पर्य श्रीरामने समझ लिया। उन्होंने महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर अंजलि बाँध ली। इस शील-सौजन्य एवं शिष्टतापर मुग्ध महर्षि पुलकित-भावमें बोले—'वत्स! बिना संकोच कहो, क्या चाहते हो?'

'भगवन्! लक्ष्मण नगर-दर्शनको उत्सुक हैं।' श्रीरामने कहा—'अनुमति हो तो इन्हें ले जाऊँ। मैं शीघ्र इनको लेकर लौट आऊँगा।'

'तुम्हारे देखने योग्य है यह विदेहपुरी।' महर्षिने अनुमति दे दी। 'नगरके पुण्यात्मा नागरिकोंको तुम दोनों भाइयोंका दर्शन होना चाहिये, तुम जाओ। किसी प्रकार लौटनेमें शीघ्रताकी आवश्यकता नहीं है।'

किसीको साथ भेजनेकी आवश्यकता नहीं थी। कोई तपस्वी साथ होगा तो राजकुमारोंको संकोच होगा। अयोध्याके चक्रवर्ती महाराजके कुमारोंको किसी भी नगरमें न भटकनेका भय था, न कोई सूचना आवश्यक थी। मिथिला तो निरापद शान्त नगरी थी।

पहली ही दृष्टिमें मिथिलाने दोनों कुमारोंकी दृष्टिको आकृष्ट कर लिया। अयोध्याकी शोभाकी समता नहीं थी

सृष्टिमें, किंतु मिथिलाका आकर्षण भी कम नहीं था। अयोध्याके निर्माणमें, साज-सज्जामें जहाँ सौन्दर्य था, वहीं उस कलामें अपार वैभव एवं अजेय प्रभुत्वकी झलक सर्वत्र प्रकट थी, परंतु मिथिलाका निर्माण, साज-सज्जा सर्वथा पृथक् थी उससे। नगर सुसज्ज था, किंतु उस सज्जामें सौकुमार्य एवं सात्त्विकता थी। उपमा ही देना हो तो कहना होगा कि अयोध्या 'सम्राज्ञी' प्रतीत होती थी और मिथिला 'स्वयंवरोन्मुखी राजकन्या।'

राजपथ, वीथियाँ, चतुष्क, भवनद्वार सब सुसज्ज थे, किंतु सर्वत्र वही सुकुमारता, वही सात्त्विकता। कहीं राजस-प्रदर्शनका एक बिन्दु तक नहीं था वहाँ। वैभव था—विराट् वैभव था, किंतु रत्नखचित द्वारोंमें भी हंस, सरोज, कुसुम-कलिकाएँ और देवकुमारियाँ अंकित थीं। केसरी तथा महावृषभ चित्रांकनमें भी स्थान नहीं पा सके थे।

राजपथ तथा वीथियाँ, कौशेय पटोंके छाया-वितानोंसे, जौ-मुक्ता-झालरोंसे अलंकृत थीं। पथपर सुकुमार सुमन एवं लाजाके चित्रांकन थे। द्वारों तथा चतुष्कोंपर प्रदीप-समन्वित मङ्गल-कलश शोभित थे। सुरभि-सिंचित थे पथ और गवाक्षोंसे सुरभित धूम्र उठ रहा था।

श्रीरामने सानुज नगरमें प्रवेश किया तो सर्वप्रथम बालकोंका समूह समीप दौड़ आया। यह समूह क्रमशः बढ़ता गया। बालकोंके लिये अपना-पराया कहाँ होता है! उन्हें परिचय करते कितनी देर लगती है! कोई बालक दौड़ा आता था और श्रीराम या लक्ष्मणका हाथ पकड़कर कहने लगता था—'मेरा नाम जयध्वज है! मैं निमिवंशी क्षत्रिय हूँ। मेरे पिता महाराजके कृपापात्र हैं। आप दोनों कहाँसे आये? क्या नाम है आप दोनोंका? कब आ गये हमारे नगरमें? मैंने तो पहले आपको कभी नहीं देखा। आपके पिताश्री साथ आये हैं? कहाँ आवास लिया है आपने? मेरे भवन चलकर विराजें। मेरी माताजी बहुत प्रसन्न होंगी। मेरे पिताजी आप दोनोंका, आपके पिताश्री और सेवकोंका भी सत्कार करेंगे। आइये! मेरा भवन दूर नहीं है।'
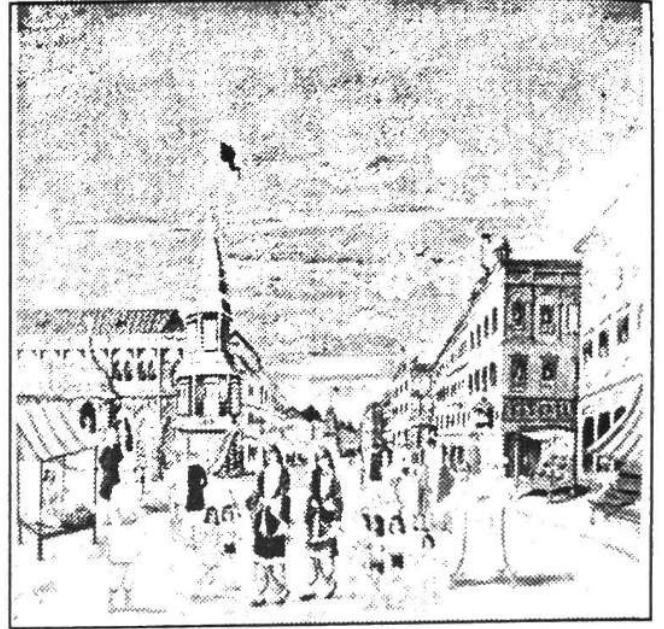
लोग भवनोंसे पथमें आ गये। पथके दोनों ओरसे भवनोंके गवाक्ष, छज्जे पुर-नारियोंसे भर उठे। वृद्धाएँ द्वारोंपर आ खड़ी हुईं। भवनोंसे लाजा, दूर्वा, पुष्पके साथ केसरके सीकरोंकी वर्षा प्रारम्भ हो गयी। जिधरसे निकल रहे थे, उधरके पथ एवं भवनोंपरसे आशीर्वादकी मङ्गल-ध्वनि गूँजती चलती थी।

'महर्षि विश्वामित्रके साथ चक्रवर्ती महाराज दशरथके दो कुमार नगरमें आये हैं।' पूरे नगरमें चर्चा फैल गयी—'इन्दीवर-सुन्दर श्रीराम और स्वर्ण-गौर लक्ष्मण। मन्मथ इनके चरणोंमें बैठे तो बहुत कुरूप दीखेगा, इतना सौन्दर्य और ऐसे शीलसिन्धु कि दोनोंमेंसे किसी एकने भी तो किसी गवाक्षकी ओर दृष्टि नहीं उठायी।'

'दोनों कुमार बहुत विनयी हैं।'

नगरमें दोनों अयोध्याके राजकुमारोंकी ही चर्चा थी और घरोंमें आज बालक प्रमुख हो गये थे। वृद्धाएँ, वधुएँ, कुमारियाँ ही नहीं, पुरुष भी बालकोंको समीप बैठाकर बार-बार अनेक प्रकारसे पूछ रहे थे दोनों कुमारोंके सम्बन्धमें और बालक इस प्रकार गर्वके साथ वर्णन कर रहे थे कि जैसे दोनों कुमार उनके अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हों और उनके सम्बन्धमें सब कुछ वे जानते ही हों।

श्रीसीता-राम-विवाह-लीला

(साकेतवासी लक्ष्मणकिलाधीश स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज)

[यद्यपि प्रभुकी समस्त लीलाएँ मङ्गलमयी हैं, आनन्दमयी हैं, किंतु विवाह-लीला परम मङ्गलमयी है, क्योंकि इस लीलामें युगलकिशोर चितचोरका मङ्गलमय दुलह-दुलहिनरूपमें भक्तोंको दर्शन प्राप्त होता है। त्रिदेव अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ युगलरूपका दर्शनकर आनन्दमें विभोर हो गये तथा शरीरकी सुधि-बुधि भूल गये—

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥

प्रभुके नाम, रूप, लीला तथा धामके साथ ही मधुरा-भक्तिका विवेचन जिस प्रकार विवाह-प्रसंगमें हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अतएव श्रीगोस्वामीजीने इस विवाह-लीलाको महामङ्गलमयी कहा है। मिथिलामें नगर-दर्शनसे लेकर विवाह-पर्यन्तकी लीलाओंका दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।—सं०]

मिथिला-प्रसंगमें श्रीराघवेन्द्रके नगर-दर्शनका समाचार सुनते ही नर-नारीगण धाम-काम छोड़कर दौड़ पड़े—

धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

मिथिलामें बाल-वृद्ध, नर-नारीगण सभी प्रभुके दर्शनार्थ दौड़े, यहाँ कोई किसीको रोकनेवाला नहीं। रंगभूमिके प्रसंगमें स्पष्ट है—

चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुबान जरठ नर नारी॥

नगर-दर्शनमें भी गोस्वामीजीने कहा है कि श्रीराघवेन्द्रने अपनी रूप-माधुरीसे समस्त नर-नारियोंको वशमें कर लिया—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

गोस्वामीजी 'नर' का नाम प्रथम लेते हैं 'नारी' का नाम बादमें लेते हैं। इसका निहितार्थ यह है कि नारियोंको वशमें करना सरल है, किंतु नरको वशमें करना कठिन है। श्रीराम-रूपकी यही विशेषता है कि कठोर चित्तवाले पुरुषोंको भी अपने रूप-गुणोंसे वशमें कर लेते हैं।

इस संदर्भमें सर्वप्रथम श्रीविदेहराज जनकका प्रसंग सामने आता है। वह अपने सचिव, पुरोहित, सेनापति एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ श्रीराघवेन्द्रका दर्शनकर विमुग्ध हो गये। उनका ब्रह्मानन्द भी शिथिल हो गया। उनके मनने ब्रह्मानन्दका परित्याग कर दिया—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

जब ज्ञानिशिरोमणिकी ऐसी दशा हो गयी, तब अन्य पुरवासियोंकी दशाका वर्णन कहाँ सम्भव है? फिर कोमल हृदयवाली सखियोंकी दशा तो नितान्त विलक्षण हो गयी। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा काम आदि समस्त रूप-सम्पन्नोंको श्रीरामरूपके समक्ष नगण्य कर दिया—

बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥

तब फिर अन्य देवोंकी क्या सामर्थ्य है? इनके रोम-रोमपर कोटि-कोटि काम न्योछावर कर दिये—

अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥

अन्तमें यह निर्णय दिया कि ऐसा कौन तनुधारी है जो इनको देखकर मोहित न हो जाय—

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥

यह मिथिलाका सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सूत्रके अनुसार सुर-असुर, नर-वानर आदि सभीका श्रीराघवेन्द्रकी रूप-माधुरीपर मोहित होना सूचित है। प्रभुको देखकर सर्प-बिच्छू भी अपने विषका परित्याग कर देते हैं। यह आश्चर्य-घटना मानसमें पठनीय है। ऐसे चराचर-मोहक श्रीरामरूपको देखकर भी सखियाँ कहती हैं कि यह वर श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजीके योग्य है—***'जोगु जानकिहि यह बरु अहई।'*** मधुर-रसका प्राण निष्कामता है। इसलिये परम वीतराग साधक इनके अधिकारी माने गये हैं। मिथिलाके मधुर-भावमें स्वसुखका गन्ध लेशमात्र भी नहीं है। एकमात्र तत्सुखसुखित्व अर्थात् श्रीयुगलकिशोरके सुखमें सुखी रहनेका भाव है। युगल-भावकी उपासना ही यहाँके मधुर-भावकी चरम परिणति है। चारों राजकुमारोंके दर्शन करनेके पश्चात् इन सखियोंका मनोरथ ध्यान देने योग्य तथा मननीय है—

पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

वे विधिसे अंचल फैलाकर याचना करती हैं कि श्रीसीताजीका श्रीरामसे, श्रीमाण्डवीजीका श्रीभरतजीसे, श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मणकुमारसे तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीसे श्रीशत्रुघ्नकुमारका विवाह हो तथा हम सब मङ्गल-गान करें। युगलोपासनाका यह उज्ज्वल स्वरूप अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता।

युगल-उपासनाका मूल स्रोत मिथिला है। यहीं युगलकिशोरका प्रथम मिलन हुआ। मधुर-भावके समस्त आलम्बन-उद्दीपन-विभाव आदि रस-तरंगें यहीं तरंगायित हुईं। श्रीप्रिया तथा प्रियतम एक दूसरेसे मिलनेके लिये लालायित रहे।

दोनों अनजान प्रिया-प्रियतमकी उत्कण्ठा, मिलनकी तीव्र इच्छा ही मिलनको रसमय बना सकती है। पुष्पवाटिकामें दो अपरिचितोंका मिलन हुआ। प्रथम मिलनमें प्रियाप्रियतमको चुपकेसे हृदयके एकान्त कुंजमें बिठाकर नेत्रके कपाट बंद कर लेती हैं—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥

उधर श्रीराघवेन्द्र श्रीराजकिशोरीका चित्र अपने कोमल हृदयकी भित्तिपर अंकित कर चले जाते हैं। जाते समय श्रीराजकिशोरीजी मृग, पक्षी, तरु और लता आदिको देखनेके बहाने राजकिशोरको देखती हैं। इस गुप्त दर्शनमें जो उत्कण्ठा एवं प्रेम है उसका वर्णन असम्भव है—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

उधर राजनन्दन श्रीरघुनन्दन भ्रातासे वार्तालाप करते हैं, किंतु मन श्रीजनकनन्दिनीजूके रूपमें लुब्ध है—***'मन सिय रूप लोभान'*** तथा संध्या-वन्दनको भूलकर श्रीराजकिशोरीकी शोभाका वर्णन करते हैं। चन्द्रमाको देखकर उद्दीपन-विभाव प्रकट हो गया। तथा—

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी।

प्रीतिका यह प्रवाह धनुष-यज्ञमें अत्यन्त वेगसे प्रवाहित हुआ है। एक ओर चक्रवर्तीन्द्रनन्दन श्रीरघुनन्दनकी सुकुमारता, दूसरी ओर धनुषकी कठोरता—इन दोनोंके विरोधपूर्ण स्वरूपसे मिलनकी उत्कण्ठामें असाधारण वृद्धि हुई।

जब श्रीविदेहराज धनुर्भंग न होनेपर दुखी और निराश होकर यह कह रहे थे कि ***'तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू॥'*** तब श्रीजानकीजीकी दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो उठी थी, किंतु श्रीलक्ष्मण-कुमारकी वीर वाणीका श्रवणकर प्रीति-लतिका पुनः प्रफुल्लित हो गयी—

'लखन सकोप बचन जे बोले।'
'सिय हियँ हरषु जनकु सकुचाने॥'

जब छोटे सरकारके प्रतापसे पृथ्वी डोल गयी, तब बड़े सरकारके बल-प्रतापकी क्या बात है? प्रीति-सागरमें ज्वारभाटाकी भाँति उथल-पुथल तबतक चलती रही, जबतक धनुर्भंग नहीं हुआ। धनुर्भंगमें जैसे-जैसे विलम्ब होता है, उत्कण्ठाका वेग तीव्र होता जाता है—

तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
गननायक बरदायक देवा॥

देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥

इस प्रकार देवताओंसे व्याकुल होकर प्रार्थना करने तथा श्रीमिथिला-राजकिशोरीके अङ्ग-अङ्ग पुलकित होने तथा नेत्रोंसे प्रेम-जलकी वर्षा होने आदिसे यह स्पष्ट है कि इस पूर्वराग-प्रसंगमें स्वेद, रोमांच, स्तम्भ आदि आठों सात्त्विक भावोंका प्रादुर्भाव हुआ है। अभी भी दोनोंके हृदयमें मिलनोत्कण्ठाकी प्रतिक्षण वृद्धि हो रही है, किंतु दोनोंके मिलनमें बाधक धनुषकी कठोरता अभी भी विद्यमान है। इसलिये पितृप्रण एवं धनुर्भंग—दोनों अवरोध प्रीति-रसकी वृद्धिमें महान् योगदान कर रहे हैं। जैसे मघाकी वर्षाके पश्चात् जब नदी वेगके साथ समुद्रमें मिलनेके लिये दौड़ती है, तब उसके तीव्र वेगमें तृण, वीरुध, वृक्ष-शिलाखण्ड—सभी उसके साथ बहकर समुद्रकी ओर अनायास चल पड़ते हैं, उसी प्रकार प्रेमी प्रेमास्पदके मध्य आनेवाले समस्त अवरोध—विघ्न-बाधाएँ प्रीतिरस-सरितामें प्रवाहित हो जाती हैं। जो अवरोध लौकिक दृष्टिसे बाधक हैं, वही सात्त्विक-आध्यात्मिक प्रेमकी वीथिकामें प्रीति-रस-वर्धक हैं, अतः

मानसका पूर्वराग विप्रलम्भ-प्रसंग अलौकिक, आश्चर्यमय है।

इधर प्रियके दर्शनसे प्रियाके मृग-शावक-नयनोंसे प्रेमाश्रु प्रवाहित हैं। किंतु पिताकी प्रतिज्ञाका स्मरण होते ही मनमें क्षोभ उत्पन्न हो जाता है—

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥

गीतावलीमें सखियाँ कहती हैं—'सखि! महाराज जनकके मनकी रीति प्रीति-रहित है—उनके मनमें प्रेमका कोई स्थान नहीं है। यदि ऐसी मनोहर मूर्तिको देखनेके बाद भी उनका पहला विचार और निश्चय बना रहा तथा उनका हृदय नहीं बदला तो वे पूर्णतः प्रीति-शून्य हैं। सखि! कोई महाराजको क्यों नहीं समझाता है कि प्रतिज्ञा तथा राजकुमारको प्रेमके तराजूपर एक बार तौल कर तो देखें। राजमर्यादाकी तुलापर नहीं, किंतु प्रेमकी तुलापर तौलनेपर प्रतिज्ञा हलकी हो जायगी तथा राजकुमार भारी हो जायँगे'—

जनक मनकी रीति जानि बिरहित प्रीति,

× × ×

'पन औ कुवँर दोउ प्रेमकी तुला धौं तारु'॥

जैसे-जैसे धनुर्भंगमें विलम्ब हो रहा है, वैसे-वैसे मिलनोत्कण्ठाका वेग बढ़ रहा है। पिताके दारुण हठकी चिन्ता हृदयको अत्यन्त विकल किये हुए है—

अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

धनुष कठोर है, राजकुमार अत्यन्त कोमल हैं। ऐसी दशामें राजकिशोरको धनुष तोड़नेके लिये विवश किया जाना सभीके लिये लज्जाजनक है। यदि महाराज विवेक खो बैठे हैं तो सचिव एवं सभासद उनको क्यों नहीं समझाते हैं? जैसे शिरीष-सुमनसे हीरेका भेदन असम्भव है, वैसे ही सुकुमार राजकुमारसे कठोर धनुषका भंजन कठिन है—

सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा॥

धनुषसे प्रार्थना करती हैं कि श्रीरघुनन्दन जितने कोमल हैं, उसी अनुपातमें तुम हलके हो जाओ। श्रीराजकिशोरीजीको इतना परिताप है कि एक-एक क्षण सैकड़ों युगोंके समान प्रतीत हो रहे हैं—

अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥

वे प्रभुकी ओर देखती हैं, साथ ही पृथ्वीकी ओर देख रही हैं। उनके चंचल नेत्र ऐसे लग रहे हैं, मानो कामदेवकी दो मछलियाँ विधु-मण्डलमें डोल-क्रीडा कर रही हों—

प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल॥

प्रेम-रस-रसिकोंने प्रेम-गोपनका महत्त्व स्वीकार किया है। चैलांचल-आच्छादित नेत्रोंसे प्रियके दर्शनका एक विलक्षण रस है। प्राणेश्वरसे प्रेयसीका चित्त मिला होनेपर भी घूँघटकी ओटसे देखनेमें जो आनन्द है वह अंचलरहित नेत्रोंसे देखनेमें नहीं है—

प्राणेश्वरश्चतुरया मिलितेऽपि चित्ते
चैलाञ्चलव्यवहितेन निरीक्षणीयः।

श्रीराजकिशोरीजीने अपने प्रेमका गोपन जिस कौशलसे किया, वह अनिर्वाच्य है—

लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना॥

जिस प्रकार कृपण सुवर्णको छिपाकर रखता है, उसी प्रकार श्रीराजकिशोरीजीने भी नेत्रसे निःसृत प्रेम-जलको नेत्रके कोनेमें छिपा लिया। यदि नेत्र-जल बाहर गिरता तो लोग जान जाते। भाव-गोपनकी यह मुद्रा वास्तवमें विस्मयकारिणी है।

देवताओंसे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी जब विश्वास नहीं हुआ कि श्रीराजकिशोर धनुर्भंग कर सकेंगे, तब किशोरीजीने अपने अलौकिक स्नेहपर विश्वास कर प्रेम-प्रण ठान लिया।

अब प्रेमराज्यकी राजधानी मिथिलापुरीमें दो प्रण प्रकट हो गये। एक जनकराजका दूसरा जनककिशोरीका। जनक-प्रण तो सर्वत्र प्रसिद्ध है जो मर्यादाकी सीमा है तथा जनकराजकिशोरीका प्रण प्रेमकी सीमा है।

स्नेह दो प्रकारका होता है एक असत्य और एक सत्य। स्वार्थसे सम्बन्धित स्नेह असत्य होता है तथा स्वार्थरहित स्नेह सत्य होता है। श्रीराजकिशोरीजीका स्नेह सत्य है। ऐश्वर्यकी दृष्टिसे तो दोनोंका पुरातन प्रेम है—'***प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥***' किंतु माधुर्यकी दृष्टिसे उनका प्रेम अलौकिक है।

अन्तमें श्रीराजकिशोरीजी इसी सिद्धान्तपर दृढ़ हो गयीं कि जिसपर जिसका सत्य स्नेह होता है, वह उसको अवश्य प्राप्त होता है—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥
प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना। कृपानिधान राम सबु जाना॥

यह स्नेह-रीतिकी पराकाष्ठा है। रतिके परिपाक होनेपर प्रेम और प्रेमके परिपाक होनेपर स्नेह-रसका उदय होता है। घृत-स्नेह तथा मधु-स्नेहके भेदसे स्नेह भी दो प्रकारका होता है। घृत-स्नेहमें तदीयत्व तथा मधु-स्नेहमें मदीयत्व है। श्रीराजकिशोरीमें मधु-स्नेह है। अतः इस स्नेहके परवश होकर श्रीराजकिशोर धनुर्भंगके लिये व्याकुल हो गये—

सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसें॥

जैसे छोटे साँपको गरुड देखता है, उसी प्रकार श्रीराजकिशोरजीने धनुषकी ओर देखा। जैसे गरुडकी दृष्टि पड़ते ही सर्प सिकुड़ कर छोटा हो जाता है, उसी प्रकार श्रीराघवेन्द्रको देखते ही धनुष सिकुड़कर छोटा हो गया।

इस प्रकार प्रिया-प्रेम-परतन्त्र श्रीराघवेन्द्रने देखा कि श्रीराजकिशोरीकी व्याकुलता इतनी अधिक है कि उनको एक निमेष कल्पके समान प्रतीत हो रहा है। अतः श्रीरामभद्रने खेल-खेलमें शिव-धनुषको तोड़ डाला—
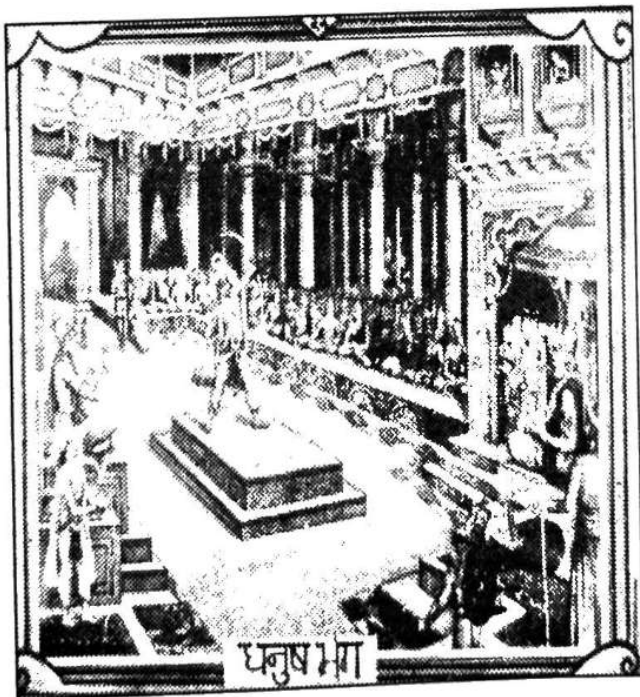
देखी बिपुल बिकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करइ का सुधा तड़ागा॥
का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥
अस जियँ जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेषी॥

× × ×

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥

गोस्वामीजी कहते हैं कि समस्त लोकोंमें जय-जयकार होने लगा तथा प्रमुदित नर-नारीगण *'हय गय धन मनि चीर'* न्योछावर करने लगे। विविध वाद्य बजने लगे, सखियाँ मङ्गलगान करने लगीं। श्रीराजकिशोरीके सुखका क्या कहना? उन्हें तो जैसे चातकीको स्वातिजल मिल गया हो—

सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

श्रीशतानन्दजीकी आज्ञासे श्रीजनकराजनन्दिनी श्रीरघुनन्दनको जयमाल पहनानेके लिये चलीं। साथमें सुन्दर सखियाँ मङ्गलगान करती चल रही हैं। बाल मरालकी गतिसे श्रीराजकिशोरीजी चल रही हैं, उनके अङ्गमें अपार सुषमा है—*'सुषमा अंग अपार।'* सखियोंके मध्यमें श्रीराजकिशोरीजी उसी प्रकार शोभा पा रही हैं जैसे छबि-समूहके मध्यमें महाछबि शोभित हो। कर-कमलमें जयमाल इस प्रकार शोभायमान है, मानो विश्व-विजयकी शोभा विद्यमान है। श्रीराजकिशोरीके मनमें उत्साह है, किंतु तनमें संकोच है, गूढ़ प्रेम किसीको पता नहीं है। समीप जाकर श्रीराघवेन्द्रकी शोभा देखकर चित्रलिखित-सी प्रतीत होने लगीं। चतुर सखीके समझानेपर युगल कर-कमलोंसे जयमाल उठा रही हैं, किंतु प्रेमके कारण पहना नहीं पा रही हैं। मानो दो नालसहित कमल सभीत चन्द्रमाको जयमाल पहना रहा हो। सखियाँ छबिका दर्शन कर गान करने लगीं। जयमाल लेकर श्रीराजकिशोरीने जब श्रीरघुनन्दनके वक्षःस्थलकी ओर देखा तो उनके हृदयमें एक सुन्दर राजकुमारीका चित्र दीखा—

जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी॥

साधारण अर्थ तो यही है कि भित्ति-चित्रकी भाँति राजकुमारी प्रतीत हो रही थीं। जैसे दीवारका चित्र जडवत् होता है, उसी प्रकार चेष्टाशून्य हो गयीं—प्रेमकी सर्वश्रेष्ठ दशा है जडता।

श्रीअवधके एक सिद्ध संतने-*'रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी।'* का विलक्षण अर्थ करते हुए कहा है—

'राजकुमारीजीने प्रियतमके वक्षःस्थलमें एक राजकुमारीका चित्र देखा। बस, मान-लीला प्रारम्भ हो गयी। श्रीराजकिशोरीजीको मानवश यह भ्रम हो गया कि इनके हृदयमें पहलेसे ही एक राजकुमारी बैठी है, फिर इनको

जयमाला पहनानेसे क्या लाभ? राजकिशोरीजीकी यह स्थिति देखकर एक चतुर सखीको यह समझाना पड़ा कि इनके हृदयमें जो चित्र है वह आपका ही है। आप अपनी अँगुलीकी अँगूठी आरसीसे मिलान कर देख लें। आपके मुखचन्द्रसे चित्र अभिन्न है या नहीं? श्रीराजकिशोरीने जब मिलान किया तो उनका भ्रम दूर हो गया। उन्हींका चित्र प्रियतमके हृदयमें विराजमान मिला, किंतु उनका आश्चर्य और बढ़ गया कि मेरा चित्र इनको मिला कैसे? तब सखीने कहा कि पुष्पवाटिकामें चुपकेसे आपका चित्र हृदयकी भित्तिपर राजकुमारने खींच लिया था, इसका आपको भान नहीं हो सका'—

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥

चतुर सखीने इस रहस्यको बताकर उनका मान दूर कर दिया। रसशास्त्रमें स्नेहकी पराकाष्ठामें मान-रसका उदय कहा गया है। मानके बिना मधुर-रसकी पुष्टि नहीं होती—ऐसा भी कहा गया है। जब मान दूर हुआ तब भी एक समस्या सामने खड़ी हो गयी। श्रीरघुनन्दन थोड़े बड़े हैं, सिरपर चौतनी भी धारण किये हैं—

पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं॥

ऐसी स्थितिमें जबतक श्रीरामचन्द्र झुकते नहीं हैं,

तबतक श्रीकिशोरीजी उनको जयमाला कैसे पहनावें? श्रीरघुकुलावतंस रघुवर झुकनेमें संकोच कर रहे हैं; क्योंकि राजसमाज सामने है। प्रेमरसकी दृष्टिसे अभीसे लाड़िलीजूके समक्ष झुकनेसे कहीं सर्वदा झुकना न पड़े यह भी आशंका है। इस रहस्यको सखियाँ समझ गयीं, अत: उन्होंने संगीतके उच्चतम राग-तालोंमें गान प्रारम्भ कर दिया। संगीत-लहरीमें राघवेन्द्र थोड़ा झुके और श्रीकिशोरीजीने श्रीराघवेन्द्रको जयमाला पहना दी। श्रीरघुवरके उरमें जयमाला देखकर देवता पुष्प बरसाने लगे। नगरमें तथा आकाशमें बाजे बजने लगे।

देवता, किन्नर, मनुष्य, नाग और मुनीश्वर 'जय हो, जय हो' ऐसा कह-कहकर आशीर्वाद दे रहे हैं। देवांगनाएँ नृत्य-गान करती हैं, बारम्बार पुष्पोंकी अंजलियाँ अर्पण की जा रही हैं। ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं, भाट विरदावली—वंशयशका उच्चारण कर रहे हैं। पृथ्वी, पाताल और आकाशमें यह यश फैल गया कि श्रीरामजीने शिव-धनुष तोड़कर श्रीसीताजीका वरण कर लिया—

महि पाताल नाक जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा॥

नगरके नर-नारी आरती उतार रहे हैं और अपनी धन-सम्पत्ति निछावर कर रहे हैं। आनन्दातिरेकके कारण धनका लोभ नहीं रह गया है। अपने सामर्थ्यसे अधिक धन न्योछावर कर रहे हैं। श्रीसीतारामजीकी जोड़ी ऐसी सुशोभित हो रही है, मानो छबि और श्रृंगार एक ही स्थानपर एकत्र हो गये हों। सखियाँ श्रीसीताजीसे कहती हैं—'प्रभुके चरणोंका स्पर्श करो', किंतु वे अत्यन्त भयके कारण चरणोंका स्पर्श नहीं करती हैं। यहाँ श्रीसीताजी छबि हैं और श्रीरामजी श्रृंगार हैं। यथा—

सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें। छबिगन मध्य महाछबि जैसें॥

श्रीसीताजी गौरवर्णा हैं और छबिका वर्ण भी उज्ज्वल है। श्रीरामजी श्याम हैं तथा श्रृंगार भी श्याम-वर्ण है—**'श्यामो भवति श्रृंगार:'**। अतएव गौर-श्याम जोड़ीकी महाशोभा है। जयमाल पहनानेके पश्चात् वधूको वरके चरणोंका स्पर्श करना चाहिये, किंतु श्रीसीताजी भयभीत हैं, अत: चरणस्पर्श नहीं करतीं। यह रहस्य सखियाँ नहीं जानती हैं, अतएव वे समझती हैं कि लज्जाके कारण सीताजी प्रभुके चरणोंका स्पर्श नहीं कर रही हैं। अत: सखियाँ, लोक-वेद-विधिज्ञा सर्वज्ञा श्रीसीताजीको लोकरीति बताती हैं और श्रीजानकीजीको

प्रभुके श्रीचरणोंका स्पर्श करनेको कहती हैं, किंतु फिर भी अति भीत होनेके कारण श्रीराजकिशोरीजी चरण-स्पर्श नहीं करती हैं, क्योंकि उन्हें ऋषि गौतमकी पत्नी अहल्याकी गतिका स्मरण करके भय हो रहा है कि कहीं इन चरणोंका स्पर्श करनेसे मेरी गति भी ऋषिपत्नीकी भाँति न हो जाय। इस भयसे श्रीचरणोंका हाथसे स्पर्श नहीं करती हैं। रघुकुलभूषण राघवेन्द्र श्रीसीताजीकी ऐसी अलौकिक प्रीति देखकर मनमें हँसने लगे—

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥

इस प्रकार धनुष-यज्ञ एवं श्रीसीय-स्वयंवर भी सम्पन्न हुआ। दुष्ट राजाओंके कटु वचनोंका श्रवणकर साधु राजाओंने भलीभाँति उनका प्रतिवाद किया तथा उन्हें फटकारा। श्रीलक्ष्मणकुमार श्रीराघवेन्द्रके भयसे कुछ बोल नहीं सकते; किंतु उनकी भृकुटी टेढ़ी हो गयी। वे राजाओंकी ओर क्रोधसे उसी प्रकार देखने लगे, जैसे मत्त गजराजको देखकर सिंह-शावक देखता है। उसी समय धनुर्भंग सुनकर श्रीपरशुरामजी पधारते हैं, जिनको देखकर समस्त राजा हतप्रभ हो जाते हैं तथा उनको प्रणाम कर धीरेसे चल देते हैं। तब श्रीजनकजी श्रीसीताजीको बुलाकर प्रणाम कराते हैं—

सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥

श्रीपरशुरामजीने आशीर्वाद दिया, सखियाँ प्रसन्न हुईं, पुनः श्रीराजकिशोरीजीको अपने समाजमें ले गयीं। '**सौभाग्यवती भव, सावित्री भव**' इत्यादि आशीर्वाद सुनकर सखियाँ प्रसन्न हुईं कि श्रीराघवेन्द्रको अब इनसे कोई भय नहीं है, इस आशीर्वादसे दोनोंका कल्याण भी निश्चित है। श्रीविश्वामित्रजीने दोनों भ्राताओंका परिचय देते हुए उनके चरणोंमें प्रणाम कराया। मनोज-मदमर्दन श्रीरघुनन्दनके अपार सौन्दर्यको देखकर श्रीपरशुरामजीके नेत्र चकित हो गये अर्थात् पलकोंका गिरना बंद हो गया। यद्यपि श्रीपरशुरामजी अत्यन्त क्रुद्ध हैं, किंतु श्रीराम-रूपका ऐसा चमत्कार है कि उनका क्रोध प्रभुके दर्शनमात्रसे दूर हो गया तथा वे श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्रके चकोर बन गये—

रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

श्रीपरशुरामजी विदेहराजकी ओर देखकर जानते हुए भी अनजानकी भाँति पूछते हैं कि यह भारी भीड़ कैसी है? श्रीजनकजीने सब समाचार कह सुनाया, जिस कारण सब राजा आये थे। समाचार सुनकर उन्होंने जब दूसरी ओर देखा तो भूमिपर धनुषके टुकड़े दीख पड़े, तब वे अत्यन्त क्रोधमें भरकर जनकजीसे इस प्रकार बोले—'रे जड जनक! सच-सच बता धनुष किसने तोड़ा है?'

इस प्रसंगमें ध्यान रखने योग्य बात यह है कि श्रीपरशुरामजी जानते हुए अनजान बनकर पूछ रहे हैं, अतः इससे स्पष्ट है कि इनके आगमनका विशेष प्रयोजन है। प्रथम तो श्रीमिथिलापुरीमें अमङ्गलको रोकना है, क्योंकि दुष्ट राजाओंके प्रति श्रीलक्ष्मणकुमारका क्रोध बढ़ रहा था। वे एक क्षणमें ही दुष्ट राजाओंका वध कर डालते। जयमालके पश्चात् जो मङ्गलमय वातावरण बना था, वह अमङ्गलमें परिणत हो जाता। दूसरा कारण है कि प्रभुके क्षमा-गुणका विस्तार करना। अन्तमें स्वयं प्रभुकी स्तुति करते हुए उन्होंने कहा है कि अनजानमें मैंने आपको बहुत अनुचित वचन कहे हैं, अतः क्षमाके मन्दिर दोनों भ्राता हमें क्षमा कर दें—

अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता॥

'रघुकुलकेतु! आपकी जय हो, जय हो, जय हो' ऐसा कहकर श्रीपरशुरामजी तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। श्रीपरशुरामजीके आगमनका तृतीय हेतु है—श्रीराघवेन्द्रकी भगवत्ताका प्रकाशन। अहल्योद्धार, शैव-धनुर्भंग तथा परशुराम-पराजय आदि प्रसंगोंसे श्रीरघुनाथजीकी असाधारण भगवत्ता तथा सर्वावतारी होना स्पष्ट है। पुनः मिथिलामें विवाह-महोत्सव प्रारम्भ हो गया। देवताओंने नगाड़े बजाये तथा प्रभुपर पुष्पोंकी वर्षा की। नगरके समस्त नर-नारी प्रसन्न हो गये—

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहिं मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनीं। करहिं गान कल कोकिलबयनीं॥

घमाघम बाजे बजने लगे, सभीने सुन्दर मङ्गल-साज सँवारकर रखे। समूह-के-समूह सुन्दर मुखवाली सुनयनी, कोकिल-बयनी स्त्रियाँ परस्पर मधुर गान करने लगीं। श्रीजनकजीने श्रीविश्वामित्रजीको प्रणाम किया और बोले—'प्रभो! आपकी कृपासे श्रीरामजीने धनुष तोड़ दिया। दोनों भ्राताओंने मुझे कृतार्थ किया, अब जो उचित हो उसके लिये आज्ञा करें।' मुनि बोले—'राजन्! विवाह धनुषके अधीन था। यद्यपि धनुषके टूटते ही विवाह हो गया, यह बात देव-दानव—सभीको विदित है; फिर भी अब आप जाकर वंशकी

परम्पराके अनुसार विप्रों, कुल-वृद्धोंसे पूछकर वेद-विहित आचारका पालन करें। अवधपुरीमें दूत भेजिये जो जाकर श्रीदशरथजीको बुला लावें। राजाने उसी समय दूतोंको बुलाकर अयोध्यापुरी भेज दिया। सभी महाजनोंको बुलाकर बाजार, मार्ग, देव-मन्दिर तथा समस्त नगरको सजानेकी आज्ञा दी। पुन: परिचारकोंको बुलाकर विचित्र मण्डप बनानेकी आज्ञा दी। मण्डप-रचनाकी विधिमें निपुण कारीगरोंने ब्रह्माजीकी वन्दना कर कार्य प्रारम्भ किया। उन्होंने सोनेके केलेके खम्भे बनाये, उनमें हरित मणियोंके पत्ते तथा फल एवं पद्मरागमणिके फूल ऐसे रचकर बनाये गये कि उस विचित्र रचनाको देखकर ब्रह्माका मन चकित हो गया कि यह केलेका वृक्ष वास्तविक है या कृत्रिम—

बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

× × ×

रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥

हरित मणिके ही बाँस बनाये गये; क्योंकि मण्डपमें हरे बाँस ही लगाये जाते हैं। पानोंकी लता सुवर्णकी बनायी गयी, क्योंकि पके पान पीले होते हैं। सोनेकी नाग-बेलिको रचकर उससे मण्डप बाँधा गया तथा बीच-बीचमें मुक्ताओंकी माला शोभित थी। माणिक, मरकत, हीरा तथा फिरोजाको चीरकर कमल बनाये गये। भौंरे तथा अनेक रंगके पक्षी बनाये गये जो पवनके संचारसे कलरव करते हुए गुंजार करते थे। यदि ये मणियोंके पक्षी मौन होते तो कृत्रिम जान पड़ते।

खम्भोंमें देवताओंकी प्रतिमाएँ गढ़कर निकाली गयी हैं तथा वे मङ्गल-पदार्थ लिये खड़ी हैं। खड़ी हुई प्रतिमा बनानेका भाव यह है कि श्रीरामचन्द्रजी इस मण्डपमें जब पधारेंगे, उस समय उनके आगमनपर सबको उठकर खड़ा होना चाहिये, किंतु पत्थरमें गढ़ी हुई कृत्रिम प्रतिमाएँ कैसे उठेंगी? न उठनेके कारण इनका धर्म भी जायगा तथा लोग इनको कृत्रिम जानेंगे। मिथिलाके गुणियोंका कौशल यहाँ दर्शनीय है। अनेक प्रकारकी गजमुक्तामय चौकें पुरायी गयीं। नीलमको खरोंचकर सुन्दर आमके पत्ते बनाये। सोनेकी बौर-पन्नाके घौर (गुच्छे) रेशमकी डोरसे बँधे हुए शोभा दे रहे हैं।

इस प्रकार मिथिला-मण्डपकी अलौकिक शोभाके विस्तारके लिये उसमें वंदनवार लटकाये। अगणित मङ्गल-कलश, ध्वजा, पताका, पाटम्बर, चमर आदिसे तथा मणिमय मनोहर दीपक आदिसे मण्डप सुशोभित है। मण्डपकी ऐसी शोभा है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता—***'जाइ न बरनि बिचित्र बिताना'***। वास्तवमें जिस मण्डपमें दुलहिन श्रीविदेहराजनन्दिनी हों तथा दूलह दशरथनन्दन श्रीरघुनन्दन हों उस मण्डपका वर्णन करे ऐसी बुद्धि किस कविकी है? युगल सरकार ऐश्वर्यकी दृष्टिसे अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि प्रकाशकोंके भी प्रकाशक हैं। उन्हींके प्रकाश-लेशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। अत: प्रकाश-प्रकाश्यका वर्णन कैसे हो? यह भी भाव है कि श्रीजनकराजनन्दिनीकी कृपासे निर्मल मतिको प्राप्तकर कुछ वर्णन किया—***'जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ'*** -से स्पष्ट है।

श्रीजनक-भवनकी जैसी शोभा है, वैसी ही नगरके प्रत्येक घर-घरमें दीख पड़ती है। जिसने उस समय मिथिलापुरीको देखा, उसे चौदहों भुवन तुच्छ लगते हैं। जो सम्पत्ति नीचके घरमें थी, उसे देखकर सुरपति इन्द्र भी मोहित हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि यदि मानसकार जनकके भवनको देखकर इन्द्रके मोहित होनेकी बात कहते तो जनकपुरकी बड़ाई नहीं होती, राजमहल मात्रकी ही बड़ाई होती, परंतु नीचके घरको देखकर इन्द्रके मोहित होनेके वर्णनसे सम्पूर्ण नगरकी बड़ाई हुई। जब जनकपुरका नीच भी इन्द्रसे अधिक ऐश्वर्यवाला है, तब राजाकी सम्पदाकी कौन कह सकता है—

जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥
जेहि तेरहुति तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहिं भुवन दस चारी॥
जो संपदा नीच गृह सोहा। सो बिलोकि सुरनायक मोहा॥

जिस नगरमें महालक्ष्मी नारीका कपट-वेष धारण कर वास करती हों, उस पुरकी शोभाका वर्णन करनेमें शेष-शारदाको भी संकोच होता है। कुछ लोग इसका अर्थ ऐसा भी करते हैं कि श्रीजानकीजीके अंशसे तो अगणित उमा, रमा तथा ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

अत: **'लच्छि'** शब्दसे सम्पदाकी देवी लक्ष्मी अभिप्रेत हैं। श्रीसीय-रघुवीर-विवाह-दर्शनार्थ वेष बदलकर वे मिथिलामें निवास कर रही हैं। आगे परिछनमें उनका आगमन होगा—

सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी॥
कपट नारि बर बेष बनाई। मिलीं सकल रनिवासहिं जाई॥

दिव्य मण्डपके निर्माणके बाद अत्र बारातके शुभागमन-

स्वागतकी तैयारी प्रारम्भ हो गयी। दूतोंको अयोध्या भेजा गया—

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगर बिलोकि सुहावन॥

मुनिकी आज्ञासे महाराजने श्रीअवधपुरसे दशरथजीको बुलाने जो दूत भेजे थे, वे वहाँ महाराजके दरबारमें पहुँचकर श्रीदशरथजी महाराजको प्रणामकर उन्हें पत्रिका दी। आनन्दित होकर उन्होंने स्वयं उठकर पत्रिका ले ली। पत्रिका पढ़ते ही दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। शरीर पुलकित हो गया। हृदय प्रसन्नतासे भर आया। श्रीराम-लक्ष्मणजी हृदयमें हैं तथा हाथमें सुन्दर पत्रिका है। वे अत्यन्त भाव-विह्वल हैं, फिर भी धैर्य धारणकर उन्होंने पत्रिका पढ़ी। माङ्गलिक समाचार सुनकर सारी सभा प्रसन्न हो गयी। चारों ओर आनन्द छा गया। मुनिकी आज्ञा है कि श्रीभरत-शत्रुघ्नजीके साथ बारात लेकर जनकपुर पधारें। यह मधुर बेला है।

श्रीभरतजी सखाओंके साथ खेल रहे थे, समाचार पाते ही मित्रों तथा शत्रुघ्नजीके साथ वहाँ आ गये। प्रेमसे सकुचाते हुए पिताजीसे पूछते हैं—'हे तात! पत्रिका कहाँसे आयी है? प्राणप्रिय दोनों भाई कुशलसे तो हैं? किस देशमें हैं?' प्रेमसिक्त वचन सुनकर राजाने पुनः पत्रिका पढ़ी। पत्रिका सुनकर दोनों भ्राता पुलकित हो गये, स्नेह शरीरमें नहीं समाता। श्रीभरतजीका पवित्र प्रेम देखकर सारी सभाको बहुत सुख प्राप्त हुआ। यहाँ श्रीभरतजीका श्रीराम-प्रेम दर्शनीय है। महाराजने दूतोंको समीप बैठाकर उनसे मधुर वचन कहे—'भैया! कहो दोनों बालक कुशलसे तो हैं? तुमने अपनी आँखोंसे उन्हें भलीभाँति देखा है? श्याम-गौर, नित्य-किशोर विश्वामित्रजीके साथ हैं। यदि तुम पहचानते हो तो उनका स्वभाव कहो;' प्रेमवश राजा इस प्रकार बार-बार पूछ रहे हैं। जिस दिनसे मुनि उनको साथ ले गये हैं, उस दिनसे आज ही सच्ची खबर पायी है। विदेहराजने उनको कैसे पहचाना?

प्रेमपूर्ण वचन सुनकर दूत मुसकराने लगे। महाराजसे बोले—'आपके समान कोई भी धन्य नहीं है, विश्वके विभूषण जिनके राम-लक्ष्मण पुत्र हैं। आपके पुत्र पूछने योग्य नहीं हैं—पुरुषोंमें सिंह तथा तीनों लोकोंके प्रकाशक हैं। जिनके प्रतापके सामने चन्द्रमा मलिन तथा सूर्य शीतल हैं, उनके लिये आप कहते हैं कैसे पहचाना? क्या सूर्यको हाथमें दीपक लेकर देखा जाता है? श्रीकिशोरीजीके स्वयंवरमें अनेक राजा आये, किंतु शिवजीके धनुषको कोई उठा तक न सका। जहाँ सभी वीर हार गये, सबकी शक्ति शिवजीके धनुषने तोड़ डाली, बाणासुर, रावण आदि भी पराजित हो गये, वहाँ श्रीरामजीने बिना प्रयास कठोर धनुषको उसी प्रकार तोड़ डाला—जैसे हाथी कमलकी डंडीको तोड़ डालता है। परशुरामजी भी पराजित होकर लौट गये। श्रीरामजीके समान ही श्रीलक्ष्मणजी भी तेजस्वी हैं। उनको देखकर सभी राजा ऐसे काँपने लगते थे, जैसे सिंह-शावकसे हाथी काँपने लगता है। देव! आपके दोनों पुत्रोंको देखकर अब कोई आँखके सामने नहीं आता।'

उपनिषद्में कहा गया है कि 'जिसको देखनेके बाद अन्य किसीको देखनेकी इच्छा न रह जाय—वही भूमा, पूर्ण आनन्द है।' दूतकी वही स्थिति है जो बड़ी साधनाके बाद ब्रह्मज्ञानीकी होती है। दूतके वचन सुनकर सभासहित महाराज प्रेममें निमग्न हो गये तथा दूतोंको न्योछावर देने लगे। दूतने कहा—'यह अनीति है'—ऐसा कहकर कान बंद कर लिये। धर्म समझकर सभीने सुख माना। दूत श्रीजानकीजीको अपनी कन्याके समान जानते हैं, फिर पुत्रीका धन कैसे लें? आज भी भारतमें अनेक स्थानोंमें यह प्रथा है कि जहाँ ग्रामकी कन्याका विवाह होता है, लोग वहाँका जल तक नहीं पीते, न्योछावर लेनेकी बात तो दूर रही। ऐसी बात कानसे सुनना भी नहीं चाहते, इसलिये कान बंद कर लिये। दूतोंकी इस निष्ठापर चारों पुरुषार्थ न्योछावर करने योग्य हैं। महाराजने वसिष्ठजीको पत्रिका दी तथा सब कथा सुनायी। गुरुदेवने कहा कि पुण्यात्मा पुरुषके लिये समस्त पृथ्वी सुखसे भरी रहती है। जिस प्रकार नदियाँ स्वयं समुद्रमें जाती हैं, उसी प्रकार सुख-सम्पत्तियाँ धर्मात्माके पास चली जाती हैं। वसिष्ठजीने बारात लेकर मिथिला चलनेकी आज्ञा दी। महाराजने रनिवासमें जाकर पत्रिका रानियोंको बाँचकर सुनायी। सभी रानियाँ शुभ समाचार सुनकर आनन्दविभोर हो गयीं। ब्राह्मणों एवं याचकोंको न्योछावर देने लगीं। चारों राजकुमारोंको चिरंजीवी होनेका आशीर्वाद देते हुए याचक चले गये—

'चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रबर्ति दसरत्थ के॥'

समाचार सुनते ही घर-घरमें बधाइयाँ बजने लगीं। श्रीजनकसुता तथा श्रीरघुवीरके विवाहका उत्साह चौदहों लोकोंमें भर गया—

भुवन चारिदस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥

यद्यपि श्रीअवध सदा सुहावनी तथा श्रीरामजीकी मङ्गलमयी पावन पुरी है, फिर भी प्रीतिकी अधिकताके कारण मङ्गल-रचनाओंद्वारा पुरी अधिक सजायी जा रही है। अवधपुरी इतनी सुन्दर है कि नारदादि, सनकादि इसका दर्शन करते ही अपने वैराग्यको भूल जाते हैं—

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥

जहाँ-तहाँ बिजली-सी कान्तिवाली मृग-शावक-नयनी, रति-मानमर्दनी, सुहागिनी स्त्रियाँ सुहाग-शृंगार किये हुए सुन्दर वाणीसे मङ्गल-गान कर रही हैं। विश्वभरको मोहित करनेवाले मण्डपकी रचना जहाँ हुई है, उस राजमहलका वर्णन कौन कर सकता है? कहीं वन्दी विरदावली गा रहे हैं, कहीं ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं। सुन्दर स्त्रियाँ श्रीरामजी तथा श्रीसीताजीका नाम लेकर मङ्गल-गान कर रही हैं। उत्साह बड़ा है तथा महल छोटा है, अत: उमड़कर चारों दिशाओंमें निकल चला। जहाँ समस्त देवताओंके शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीने अवतार लिया, उस दशरथजीके राजमहलकी शोभाका वर्णन कौन कवि कर सकता है?

महाराजने श्रीभरतजीको बुलाकर घोड़ा-हाथी सजाकर बारातमें चलनेकी आज्ञा दी। श्रीभरतजीने समस्त उच्च अधिकारियोंको घोड़े तथा हाथी सजानेकी आज्ञा दी। उनपर श्रीभरतजीके समान अवस्थावाले बने-ठने रँगीले राजकुमार सवार हुए, प्रत्येक सवारके साथ दो-दो पैदल सिपाही चल रहे हैं। सभी वीर नगरसे बाहर आकर अपने-अपने चतुर घोड़ोंको अनेक चालोंसे फिरा रहे हैं। सुसज्जित रथमें श्याम-कर्ण घोड़े लगे हैं। रथपर चढ़कर नगरके बाहर बारात एकत्र होने लगी, शुभ शकुन होने लगे।

सबके हृदयमें अपार हर्ष है, शरीर पुलकित है। सभीको यही लालसा लगी है कि श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भ्राताओंको नेत्र भरकर कब देखेंगे? श्रीअवधवासी नर-नारी-बाल-वृद्ध—सभीको श्रीराम-लक्ष्मण प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, अत: उनके दर्शनकी लालसामें हर्ष स्वाभाविक है। यहाँ अयोध्यावासियोंकी श्रीरामभक्तिका सम्यक् परिचय मिलता है। हाथियोंके गर्जन और घंटों, रथों, घोड़ों तथा नगाड़ोंके घोर शब्दके सामने अपना-पराया कुछ सुनायी नहीं देता। अटारियोंपर चढ़ी स्त्रियाँ थालियोंमें मङ्गल-आरती लिये देख रही हैं तथा सुन्दर गीत गा रही हैं। सुमन्तजी दो सुसज्जित रथ महाराजके पास लाये। एकपर श्रीवसिष्ठजी विराजमान हुए तथा दूसरेपर चक्रवर्तीजी स्वयं विराजमान हुए। सर्वत्र मङ्गल-गान हो रहे हैं। रसीले रागमें शहनाइयाँ बज रही हैं। देवगण पुष्पोंकी वर्षा कर रहे हैं। सेवकगण विभिन्न प्रकारके करतबें दिखाते चलते हैं। विदूषक हास्य-विनोद करते हुए चल रहे हैं। राजकुमारगण मृदंग-निशान आदिका शब्द सुनकर घोड़ोंको इस प्रकार नचाते हैं कि तालके बंधानसे डिगते नहीं। तालकी गतिसे घोड़ोंको नचाना संगीत-कलाकी पराकाष्ठा है। बारात ऐसी सजी है कि उसका वर्णन असम्भव है। मङ्गलदायक शकुन हो रहे हैं। नीलकण्ठ बायीं ओर चारा ले रहा है, दाहिनी ओर काक अच्छे खेतमें शोभित हैं। नकुलका दर्शन हो रहा है। तीनों प्रकारकी हवा अनुकूल होकर बह रही है। यात्रामें पीछेकी हवा शुभ होती है, आगेकी नहीं। सौभाग्यवती सुन्दर स्त्री बालक तथा जलसे भरे घड़ेके साथ आ रही है। लोमड़ी पीछे फिरकर दर्शन देती है। गाय अपने बच्चोंको सामने खड़ी दूध पिलाती है। मृग-समूह दाहिनी ओर आ गये। क्षेमकरी पक्षी कल्याणकी सूचना दे रही है। श्यामा पक्षी बायीं ओर वृक्षपर दिखायी दी। दही, मछली तथा दो विद्वान् ब्राह्मण पुस्तक हाथमें लिये सामने आये। सभी शकुन सच्चे होनेके लिये एक साथ प्रकट हो गये। अभीतक ये शकुन कोटि-कोटि वर-कन्याके विवाहमें प्रकट हुए होंगे, किंतु किसी कन्याका अखण्ड सौभाग्य प्राय: नहीं रहा। प्रथम बार अखण्ड सौभाग्यवती श्रीकिशोरीजीको प्राप्त कर सभी शकुन सच्चे हो गये—

राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि असि ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥

महाराज श्रीदशरथजीका आगमन सुनकर महाराज जनकने नदियोंमें सेतुका निर्माण करा दिया। बीच-बीचमें ठहरनेके लिये सुन्दर निवास-स्थान बनवाये। जहाँ देव-लोकके समान ऐश्वर्य भरा पड़ा था। सभी बराती भोजन, शय्या, वस्त्र आदि अपने-अपने मनके अनुकूल पाने लगे। नित्य-नवीन सुखको देखकर सभी बराती घरको भूल गये। अयोध्यावासियोंका वैभव असाधारण है। शेष भी उसका वर्णन नहीं कर सकते—

अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥

ऐसा ही सुख यहाँ मिला कि घर भूल गये। अथवा घरसे भी ज्यादा यहाँ सेवा हुई, इसलिये भी घर भूल गये। महाराज श्रीजनकने सुवर्णके कलश, अमृतके समान पकवान तथा फल आदि भूषण-वसन बारातकी अगवानीके समय भेंट-स्वरूप भिजवाये। दधि, चिउड़ा एवं अन्य भेंटकी वस्तुएँ बहँगियोंमें भर-भरकर कहार ले चले। मिथिलामें दही-चिउड़ाका महत्त्व प्रसिद्ध है। दधि अधिक हो चिउड़ा कम हो उसे दधि-चिउड़ा कहा जाता है। यदि चिउड़ा अधिक हो दधि कम तो उसे चिउड़ा-दधि कहा जाता है। अगवानियोंने जब बारातको देखा तो उनके हृदय भर गये। बारातियोंने भी सुसज्जित अगवानोंको देखकर नगाड़े बजाये। प्रसन्न होकर एक दूसरेसे मिलने लगे। जब बारात कन्याके गृह पहुँचती है तो इधरसे लोग अगवानीके लिये चलते हैं—इसीका यहाँ वर्णन किया गया।

देवांगनाएँ पुष्प-वर्षा कर गीत गा रही हैं और देवता नगाड़े बजा रहे हैं। अगवानीकी वस्तुएँ दशरथजीके समक्ष रखी गयीं। उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लिया। पुन: वे याचकोंको न्योछावरके रूपमें दे दी गयीं। आदरपूर्वक बारातको जनवासेमें लिवा ले चले। रंग-विरंगके बहुमूल्य वस्त्रोंके पाँवड़े पड़ रहे हैं। जिन्हें देखकर कुबेर भी धनका अभिमान छोड़ देते हैं। बारातको सुन्दर जनवासा दिया, जहाँ सबको आराम था। बारात नगरमें आ गयी, यह जानकर श्रीजानकीजीने अपनी कुछ महिमा प्रकट दिखायी—

जानी सियँ बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥
हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाई । भूप पहुनई करन पठाई॥

हृदयमें स्मरणकर समस्त सिद्धियोंको बुलाया तथा महाराज श्रीदशरथजीकी पहुनाई करनेके लिये भेजा। श्रीकिशोरीजीकी आज्ञा पाकर सिद्धियाँ समस्त सम्पदा-सुख तथा देवलोकका भोग-विलास लिये जनवासेमें उपस्थित हो गयीं। ***'कछु निज महिमा'*** -का तात्पर्य यह है कि श्रीराज-किशोरीजीके लिये सिद्धियोंको बुलाकर बारातका स्वागत करना कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता, इसलिये ***'कछु निज महिमा'*** -का प्रयोग किया। इन्द्र, वरुण, कुबेर आदि देवताओंके ऐश्वर्य भी श्रीकिशोरीजीके अधीन हैं। श्रीकिशोरीजीकी महिमाका गान करती हुई श्रीगङ्गाजी कहती हैं—

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही । तव प्रभाउ जग बिदित न केही॥
लोकप होहिं बिलोकत तोरें । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥

श्रीकिशोरीजीके कृपा-कटाक्षसे लोकपाल बनते हैं। समस्त सिद्धियाँ उनके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। इतना ही नहीं उमा-रमा-ब्रह्माणी अपनी-अपनी पतियोंके साथ श्रीजानकीजीकी वन्दना करती हैं। इनके कृपा-कटाक्ष देवता चाहते हैं; किंतु अपने पति श्रीराघवको छोड़कर अन्य देवताओंकी ओर देखनेका इन्हें अवकाश ही नहीं मिलता—

उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदंबा संततमनिंदिता॥
जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।

श्रीराजकिशोरीजीने जिन सिद्धियोंको जनवासेमें भेजा है वे साधारण सिद्धियाँ नहीं थीं, क्योंकि महाराज दशरथजीके महलमें साधारण सिद्धियाँ दासी बनकर सेवा करती हैं। गीतावलीमें गोस्वामीजी कहते हैं—

अष्टसिद्धि नवनिद्धि, भूति सब भूपति भवन कमाहिं।
समउ-समाज राज दसरथको लोकप सकल सिहाहिं॥

मुनियोंके आश्रममें भी सिद्धियाँ सेवा करती हैं, किंतु यहाँ वसिष्ठ आदि ऋषिगण तथा श्रीदशरथजी इन सिद्धियोंके चमत्कारको नहीं जान सके। सभी लोग श्रीजनकजीका ही ऐश्वर्य समझ रहे हैं। गुप्त रहस्य किसीने नहीं जाना। श्रीराजकिशोरीजीकी महिमाको केवल श्रीरघुनाथजी ही जान पाये। इससे वे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। प्रभुने विचार किया कि यद्यपि श्रीजनकराजने स्वागतकी पूरी व्यवस्था की है, किंतु कोई त्रुटि न रहे इसलिये श्रीकिशोरीजीने स्वागतकी व्यवस्था स्वयं सँभाल ली। अब विनोदमें भी श्रीराघवेन्द्र यह नहीं कह सकेंगे कि अमुक त्रुटि रह गयी। इसी हेतु-को जानकर प्रभु प्रसन्न हुए—

सिय महिमा रघुनायक जानी । हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥

पिताका आगमन सुनकर दोनों भ्राताओंके हृदयमें अत्यन्त आनन्द है। संकोचवश गुरुजीसे कह नहीं सकते, मनमें पिताके दर्शनकी बड़ी लालसा है। इस विनम्रताको देखकर महर्षिका शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंमें जल भर आया। दोनों भ्राताओंको हृदयसे लगा लिया। जब वे जनवासेको चले जहाँ श्रीदशरथजी थे तो ऐसा लगा मानो सरोवर प्यासेको देखकर उसकी ओर बढ़ चला हो। राजाने मुनिको दण्डवत् कर दोनों राजकुमारोंको हृदयसे लगाकर दु:सह दु:ख दूर किया, मानो मरे हुए शरीरमें प्राणोंका

संचार हो गया। वसिष्ठजी एवं ब्राह्मणोंको प्रणामकर आशीर्वाद प्राप्त किया। भरतजीने शत्रुघ्नजीके साथ प्रभुको प्रणाम किया, श्रीरामभद्रने उन्हें हृदयसे लगा लिया। श्रीरघुनाथजी सभी अवधवासियोंसे यथायोग्य मिले। श्रीरामजीको देखकर बारातियोंके नेत्र शीतल हो गये। राजाके पास चारों पुत्र ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—ये चारों फल शरीर धारण किये हुए शोभित हैं। बारातसहित राजाका आदर-सत्कार कर अगवानी करनेवाले लोग लौट आये।

बारात लग्नसे बहुत पहले आ गयी थी, अत: पुरवासियोंको ब्रह्मानन्दका अनुभव होने लगा। वे ब्रह्माजीसे विनय करते हैं कि दिन-रात बढ़ जायँ। विवाह मार्गशीर्ष शुक्ल पञ्चमीको हुआ, बारात कार्तिक कृष्ण त्रयोदशीको आ गयी। ब्रह्माका दिन-रात सबसे बड़ा होता है—चारों युग एक हजार बार बीत जाते हैं, तब ब्रह्माका एक दिन होता है तथा इतनी ही बड़ी रात्रि होती है। अत: विधिसे विनती करते हैं इन दिन-रातोंको अपने दिन-रातोंके समान बड़े कर दीजिये। श्रीजनकजीके सुकृतोंकी मूर्ति श्रीजानकीजी हैं, श्रीदशरथजीके सुकृत श्रीरामजी हैं। उनके समान न कोई हुआ न होनेवाला है। हम सब सम्पूर्ण पुण्योंकी राशि हैं जो श्रीजनकपुरके निवासी हुए। हमने श्रीजानकीजी तथा श्रीरामजीकी छबि देखी हमारे समान सुकृती कौन होगा? इतना ही नहीं, हम लोग श्रीरघुवीर-विवाहका भी दर्शन करेंगे। प्रेमके वश महाराज बार-बार श्रीसीताजीको बुलायेंगे, तब दोनों भ्राता उन्हें बिदा कराने आया करेंगे, फिर तो अनेक प्रकारसे उनकी पहुनाई होगी; क्योंकि ऐसी ससुराल किसको प्यारी न लगेगी? जब दोनों भ्राता बार-बार पधारेंगे तब उनको देखकर सभी पुरवासी सुखी होंगे।

सखि! जैसी श्रीराम-लक्ष्मणजीकी जोड़ी है, वैसे ही महाराजके साथ दो और पुत्र हैं। एक श्याम हैं दूसरे गोरे हैं, श्रीभरतजी श्रीरामजीके समान तथा श्रीलक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी एक-रूप हैं। दोनों अनुपम सुन्दर हैं, तीनों लोकोंमें इनकी उपमाके योग्य कोई नहीं है। सब जनकपुरकी स्त्रियाँ अंचल फैलाकर विधिको यह वचन सुना रही हैं कि चारों भाइयोंका इसी नगरमें विवाह हो तथा हम सब मङ्गल-गान करें—

पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहिं बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

मिथिलाकी इस 'तत्सुखसुखित्व'-की भावनापर समस्त उपासकोंकी उपासना न्योछावर करने योग्य हैं, ऐसी निष्कामता अन्यत्र दुर्लभ है। नगर-दर्शनमें प्रथम बार जब स्त्रियोंने श्रीराघवेन्द्रको देखा तब भी कहा कि ये श्रीजानकीजीके योग्य वर हैं। अब पुन: दूसरी बार कह रही हैं कि चारों राजकुमारियोंके साथ चारों राजकुमारोंका विवाह यहाँ हो और हम सब मङ्गल-गान करेंगी। श्रीयुगल-सरकारके सुखके समक्ष अपने सुखोंका परित्याग करनेवाला उपासक अत्यन्त दुर्लभ है। पूर्वाचार्योंके रहस्य-ग्रन्थके अनुशीलनसे स्पष्ट है कि अवध-मिथिलाकी युगलोपासनामें सखियोंकी अवस्था आठसे ग्यारह वर्ष मात्र है। ऐसी अवस्थामें विवाहका प्रश्न ही नहीं। श्रीप्रिया-प्रियतमको नित्य-विलास-आमोद-प्रमोदमें कोई संकोच न हो, इसलिये इन्होंने अपनी अवस्था छोटी रखी है। मधुरोपासनामें यह भावना अत्यन्त रमणीय एवं अनुकरणीय है।

जिस तिथिकी प्रतीक्षा थी, वह मङ्गलोंका मूल लग्नका दिन आ गया। हिम ऋतुमें सुन्दर अगहनका महीना आया। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, दिन आदि शोधकर ब्रह्माजीने उस लग्न-पत्रिकाको नारदजीके हाथ श्रीजनकजीके पास भेज दिया। श्रीजनकजीके ज्योतिषियोंने प्रथम ही इसी तिथिको निश्चित कर लिया था। महाराजने शतानन्दजीसे कहा कि अब विलम्बका क्या कारण है? मन्त्रियोंने समस्त मङ्गल-साज सजा दिये। सौभाग्यवती स्त्रियाँ मङ्गल-गीत गा रही हैं, ब्राह्मण वेद-ध्वनि कर रहे हैं। जनवासेसे श्रीदशरथजीको बुलाया गया। शिव-ब्रह्मादि देवगण विमानपर चढ़कर ऐसे अनुरक्त हो गये कि सभीको अपने-अपने लोक तुच्छ लगने लगे। यहाँकी समस्त रचनाएँ अलौकिक तथा अप्राकृत दीख पड़ीं। रूप एवं गुणोंके निधान नगरके नर-नारियोंको देखकर देवता तथा देवांगनाएँ ऐसे फीके पड़ गये जैसे चन्द्रमाके प्रकाशमें तारागण। अपनी एक भी करनी न देखकर ब्रह्माजीको भी आश्चर्य हुआ। श्रीशिवजीने सभी देवताओंको समझाया कि आश्चर्यमें मत भुला जाओ। हृदयमें धैर्य धारणकर विचार करो कि यह श्रीसिय-रघुवीरका विवाह है। जिनका नाम लेते ही संसारमें समस्त

अमङ्गलके मूल नष्ट हो जाते हैं तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ सहजमें प्राप्त हो जाते हैं—ये वही श्रीसीता-रामजी हैं। जिनके नामकी ऐसी महिमा है, उनकी विवाह-लीलाका वर्णन कौन कर सकता है? भाव यह है कि जब केवल नामका यह चमत्कार है तब यहाँ तो नाम, रूप, लीला और धाम चारों विराजमान हैं। श्रीसीता-रामजीकी ही भाँति उनके युगल-धाम भी दिव्य हैं, ब्रह्माकी सृष्टिसे परे हैं—

जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥
करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥

चारों राजकुमार श्रीमहाराज दशरथजीके साथ जनवासेसे विवाह-मण्डपकी ओर चले। मोरके कण्ठकी द्युतिके समान श्याम अंग हैं, तडित-विनिन्दक पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं। विवाहके आभूषण अंगमें सजाये हुए हैं। अलौकिक सौन्दर्य है। चंचल घोड़ोंको नचाते जा रहे हैं। जिस घोड़ेपर श्रीरघुनन्दन विराजमान हैं उसकी चाल देखकर गरुड भी लज्जित हैं, मानो कामदेवने घोड़ोंका वेष धारण कर लिया है और अपनी अवस्था, बल, रूप, गुण और चालसे समस्त लोकोंको मोहित कर रहा है। मणिमण्डित जड़ाऊ जीन जगमगा रही है। किंकिनी-लगामको देखकर सुर-नर-मुनि सब ठगे-से रह गये। प्रभुके मनमें अपने मनको लयलीन करके चलता हुआ घोड़ा ऐसी छबि पा रहा है मानो कोई बादल बिजली तथा तारागणसे विभूषित सुन्दर मोरको नचा रहा है। जिस घोड़ेपर श्रीरामजी सवार हैं, शारदा भी उसका वर्णन नहीं कर सकतीं। शिवजी अपने पंद्रह नेत्रोंसे दूलह-सरकारका दर्शन कर रहे हैं। विष्णु-भगवान्ने जब दूलह-रूपमें श्रीरघुनन्दनको देखा तो लक्ष्मीसहित लक्ष्मीपति मोहित हो गये। रमासहित रमापतिका मोहित होना एक असाधारण लीला है। रमापति श्रीहरि अपने रूप-गुणोंसे चराचरको मोहित करनेवाले हैं, उनका मोहित होना श्रीरामरूपके उत्कर्पका द्योतक है। श्रीहरिके अन्य अवतारोंमें न तो ऐसी विवाह-लीला हुई, न बारात निकली। न तो इस प्रकार घोड़ेपर सवार होकर परिछनके लिये चले। न तो मौर सिरपर धारण करके करकमलमें मेंहदी तथा चरणकमलमें महावर लगा और न ही इस प्रकार दूलह-रूपमें किसीको दर्शन हुआ था। इसी रस-वैचित्र्यके कारण ब्रह्माने आठ नेत्रसे, कार्तिकेयने बारह नेत्रसे तथा इन्द्रने हजारों नेत्रोंसे दूलह-चितचोरका दर्शन किया।

जब महारानी सुनयना सौभाग्यवती स्त्रियोंके साथ परिछनके लिये मङ्गल सजाने लगीं, तब इन्द्राणी, सरस्वती और भवानी आदि चतुर देवपत्नियाँ कपटसे श्रेष्ठ नारियोंका वेष बनाकर रनिवासमें जा मिलीं। आनन्दातिरेकके कारण न तो इनके तरफ किसीका ध्यान गया और न ही किसीने इन्हें पहचाना। मिथिलाका परिछन भी विलक्षण है—मङ्गल वस्तुओंसे परिपूर्ण थालमें ताम्बूल, दीपक तथा लोढ़ा भी होता है। पानके पत्तेमें घी लगाकर दीपककी बत्तीमें उसे गर्म करके दूलहके दोनों गाल सेंके जाते हैं। लोढ़ाको भी गर्मकर कपोलसे संस्पर्श कराया जाता है। श्रीलक्ष्मणकुमारने श्रीपरशुरामजीसे जो वार्तालाप किया, उसमें ईंटका जवाब पत्थरसे दिया था, अतः मिथिलाकी सखियाँ सोचने लगीं कि यदि इसी प्रकार मण्डप, कोहबर तथा कलेवामें दोका चार जवाब देंगे तो कठिनाई होगी, अतः गालको सेंक देना चाहिये। गर्म होनेपर कम बजेगा, ठंडा होनेपर अधिक बजेगा। इस माधुर्य-भावकी तुलना असम्भव है। मिथिलावासी गर्वके साथ गाते हैं कि—

आजु मिथिला नगरिया निहाल सखिया,
चारों दुलहामें बड़का कमाल सखिया।
जिनका लागी जोगी मुनि बड़ तप कैयलन,
सेहे हमर मिथिलामें पाहुन बनकर अइलन।
आज लोढ़ासे सेंकाइल इनकर गाल सखिया॥

मिथिलावासिनीका रूप धारणकर उमा तथा रमा आदिने जब दूलह-चितचोरके कपोलका संस्पर्श प्राप्त किया, तब वे कृतार्थ हो गयीं। परिछनकर कुल-रीतिके अनुसार महारानीने सभी व्यवहार किये। नाना प्रकारके वस्त्र-पाँवड़े पड़ रहे हैं। आरती आदिके पश्चात् श्रीराघवेन्द्र मण्डपमें पधारे। ब्रह्मादि देवता विप्र-वेष बनाकर विवाह-महोत्सव देखने लगे। नाई, बारी, भाट, नट निछावर पाकर दूलहको आशीर्वाद दे रहे हैं। देवगण कहते हैं कि जबसे ब्रह्माजीने संसार बनाया, तबसे हमने बहुत विवाह देखे-सुने हैं, किंतु समान-समधी हमने आज ही देखे। मण्डपकी रचना देखकर मुनियोंके मन मोहित हो गये। विधि, हरि, महेश, दिक्पाल तथा सूर्य आदि जो श्रीरघुवीरका प्रभाव जानते हैं, वे कपटसे ब्राह्मणका सुन्दर वेश बनाये हुए कौतुक देखकर आनन्दित हो रहे हैं। श्रीरघुनाथजीने उन्हें पहचान लिया

तथा उन्हें मानसिक आसन दिया।

रामचंद्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर॥

श्रीमिथिलेश-राजकिशोरी सीताजीका शृंगारकर सखियाँ मण्डपमें लिवा ले चलीं। सभी सोलह शृंगार किये हैं तथा मत्त गजगामिनी हैं। उनका मनोहर गान सुनकर मुनिगण ध्यान छोड़ देते हैं तथा कामदेव-रूपी कोकिल लज्जित हो जाते हैं। नूपुर, मंजीर, कंकण-तालकी गतिपर बज रहे हैं। सहज-सुन्दर जनक-लाड़िली श्रीसीताजी स्त्रियोंके झुंडमें ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो छबि-रूपी स्त्री-समाजके बीचमें परमा शोभा शोभित हो—

सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय॥

यहाँ सखियोंके शृंगार आदिका वर्णनकर परोक्षरूपसे श्रीराजकिशोरीजीकी भी शोभाका संकेत कर दिया। जब सखियोंके करधनी, मंजीर, नूपुर आदि तालकी गतिसे बज रहे हैं, तब स्वामिनीजूके भूषणोंकी ध्वनिका वर्णन कौन करे? श्रीराजकिशोरीजीकी सुन्दरताका वर्णन सम्भव नहीं है, क्योंकि सौन्दर्य अपार है, बुद्धि तुच्छ है। श्रीरामचन्द्रजी श्रीकिशोरीजीको देखकर पूर्णकाम हो गये। यद्यपि प्रभु पूर्णकाम हैं, किंतु श्रीजीकी प्राप्तिसे अपने अवतारका मुख्य प्रयोजन सिद्ध हुआ। श्रीराजकिशोरीजीके बिना उनकी लीला रसमयी नहीं होती। इस प्रकार श्रीराजकिशोरीजी मण्डपमें विराजमान हो गयीं।

दूलहको देखकर राजा-रानी प्रेममें मग्न हो गये तथा दम्पति उनके पद-कमलोंको पखारने लगे—

लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली॥

× × ×

करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहैं।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहैं॥

वर तथा कन्याकी हथेलियोंको मिलाकर अर्थात् वरकी दक्षिण हथेलीपर कन्याकी दक्षिण हथेली रखवाकर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करने लगे। पाणिग्रहण हुआ, यह देखकर देव-मुनि सभी आनन्दसे भर गये। श्रीजनकजीने लोक-वेद-विधानसे कन्यादान किया। जैसे हिमाचलने शिवजीको पार्वती तथा सागरने श्रीहरिको लक्ष्मी दी, वैसे ही श्रीजनकजीने श्रीरामभद्रको श्रीसीताजी समर्पण की। सुन्दर वर तथा कन्या भाँवरी फेर रहे हैं, सभी लोग नेत्रोंका लाभ ले रहे हैं। इस अद्वितीय मनोहर जोड़ीका वर्णन नहीं हो सकता। श्रीसीता-रामजीकी सुन्दर परछाई मणि-खम्भोंमें ऐसे झलक रही है मानो काम विवाह देख रहे हैं। दर्शनकी लालसासे प्रकट होते हैं और संकोचसे छिपते हैं। मुनियोंने आनन्दपूर्वक भाँवरी फिरवायी तथा नेगसहित सब रीति निपटायी। सात भाँवरी भी पूरी हुई। श्रीरामचन्द्रजी जब श्रीकिशोरीजीके सिरमें सिन्दूर दे रहे हैं, उस समयकी छटा ऐसी लग रही है मानो कमलमें भली प्रकार लाल पराग भरकर सर्प अमृतके लोभसे चन्द्रमाको भूषित कर रहा है। फिर वसिष्ठजीने आज्ञा दी, तब दुलहा-दुलहिन दोनों एक आसनपर विराजमान हो गये।

चौदहों लोकोंमें उत्साह भर गया। सभी कहने लगे कि श्रीरामचन्द्रजीका विवाह हो गया। जिह्वा एक है, मङ्गल महान् है; अत: किस प्रकार वर्णन करें? वैसे तो प्रभुका अन्य समग्र चरित्र मङ्गलमय ही है, किंतु विवाह-लीला महामङ्गलमयी है। बाललीला मङ्गलमयी थी, किंतु श्रीकिशोरीजीकी अनुपस्थितिके कारण महामङ्गलमयी नहीं हो सकी। बार-बार श्रीरामललाजीको श्रीजनकललीका स्मरण होता रहता था। राज्याभिषेक-लीला भी मङ्गलमयी थी; क्योंकि युगल-सरकार सिंहासनपर एक साथ विराजमान थे। श्रीदशरथजी महाराजके धाम पधारनेके कारण उनका अभाव बना रहा। माताओंके वैधव्यके कारण भी वह उत्सव फीका रहा। विवाह-लीलामें तो समस्त राज-समाज, देव-समाज एकत्रित है। एक मण्डपमें चारों जोड़ीका दर्शनकर सभी कृतकृत्य हैं। अत: यह विवाह-लीला महामङ्गलमयी है—

भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एक यहु मंगलु महा॥

वसिष्ठजीकी आज्ञासे श्रीजनकजीने श्रीमाण्डवी, श्रीश्रुतिकीर्ति, श्रीउर्मिलाजी—इन तीनों कन्याओंको बुला लिया। प्रथम महाराज कुशध्वजकी गुण-शील-सुख-शोभामयी बड़ी कन्या श्रीमाण्डवीजीका श्रीभरतजीके साथ विवाह कर दिया, फिर श्रीजानकीजीकी छोटी बहिन श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मण-कुमारके साथ तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीका श्रीशत्रुघ्नजीके साथ विवाह कर दिया। सब सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर दुलहोंके साथ एक ही मण्डपमें ऐसी शोभित हो रही हैं, मानो जीवके

हृदयमें चारों जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय अवस्थाएँ अपने-अपने स्वामियोंके साथ विराजमान हैं। 'जाग्रत्'-अवस्था श्रीश्रुतिकीर्तिजी और उनके विभु स्वामी विश्व-आत्मा श्रीशत्रुघ्नजी हैं। 'स्वप्न'-अवस्था श्रीउर्मिलाजी तथा उनके स्वामी श्रीलक्ष्मणकुमार विश्व-भावन हैं। 'सुषुप्ति'-अवस्था श्रीमाण्डवीजी प्राज्ञ श्रीभरतजी एवं 'तुरीय'-अवस्था श्रीसीताजी तथा स्वयं अन्तर्यामी श्रीरघुनाथजी हैं—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
अर्धमात्रात्मको रामः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥

विवाहके पश्चात् महाराज जनवासे पधारे तथा मुनिकी आज्ञासे सुन्दरी सखियाँ मङ्गल-गान करती हुई दुलहिनोंसहित चारों दुलहोंको लेकर कोहबरमें चलीं। कोहबरमें अनेक मधुर हास्य-विनोद-पूर्ण लीलाएँ होती हैं। जिसमें दुलहा-दुलहिन दोनोंको जितानेका प्रयास सखियाँ करती हैं। इस विनोद-लीलामें जिसकी विजय होती है, वही वर श्रेष्ठ घोषित किये जाते हैं। इसमें दुलहिनकी विजय तथा दुलहाकी पराजय निश्चितप्राय है—

तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै॥

श्रीराजकिशोरीजी बार-बार श्रीरघुनाथजीकी ओर देखती हैं, फिर सकुचा जाती हैं, किंतु मन नहीं सकुचाता। प्रेम-प्यासे नैन सुन्दर मछलीकी छबिका हरण कर रहे हैं। मण्डपमें श्रीकिशोरीजीने लज्जाके मारे श्रीरामजीकी ओर नहीं देखा। यहाँ केवल सखियाँ हैं, वे भी गान एवं हास्य-विलास करती हुई चल-फिर रही हैं। अतः अनुकूल समय पाकर अपने प्रियतमको देखती हैं। संयोगमें भी यह प्रेम-पिपासा उपासकोंके लिये रसनीय है।

कोहबरमें जाते समय श्रीराघवेन्द्रकी अपार शोभाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—प्रभुका श्याम शरीर स्वाभाविक सुन्दर एवं कोटि-कामकी शोभाको लज्जित करनेवाला है। महावरसे युक्त चरण शोभा दे रहे हैं, जिनमें मुनियोंके मनरूपी मधुप छाये रहते हैं। कटिमें पुनीत पीत धोती, किंकिनी, कटिसूत्र, भुजाओंमें सुन्दर भूषण शोभित हैं। पीत यज्ञोपवीत है, कर-मुद्रिका चित्तको चुरा लेती है। ब्याहके साजसे शोभित हैं। छाती चौड़ी है, उसपर उर-भूषण विराजमान है। मणि-मोती-मण्डित पीला दुपट्टा काँखा सोती पड़ा है। कानोंमें कुण्डल, भृकुटी सुन्दर, नासिका मनोहर, मस्तकपर तिलक सुन्दरताका निवास-स्थान है। माथेपर मङ्गलमय मणि-मुक्ताओंसे गुँथा हुआ मौर सोह रहा है। सुन्दर मौरमें महामणि गुँथे हुए हैं। सभी अङ्ग चित्तको चुरानेवाले हैं। नगरकी स्त्रियाँ तथा देवपत्नियाँ दूलहको देखकर तिनका तोड़ती हैं, जिससे किसीकी नजर न लगे। मणि-वस्त्र-आभूषणोंको न्योछावर कर आरती उतारती तथा मङ्गल-गीत गाती हैं। देवता फूल बरसाते हैं, सूत-मागध सुयश गाते हैं। सुवासिनी स्त्रियाँ दुलहा-दुलहिनको कोहबरमें लाकर गीत गाकर लौकिक रीति करने लगती हैं। गौरीजी श्रीराघवेन्द्रको लहकौरि सिखाती हैं तथा श्रीसरस्वतीजी श्रीराजकिशोरीजीको। समस्त रनिवास हास-विलासमें निमग्न है। सखियाँ सभी जन्मका फल पा रही हैं। अपने हाथकी मणियोंमें स्वरूप-निधान श्रीराघवेन्द्रका प्रतिबिम्ब देखकर श्रीजानकीजी दर्शनमें वियोगके भयसे भुजवल्ली तथा दृष्टिको नहीं हटातीं। हास्य-विलास-मोद-विनोद कहा नहीं जाता, सखियाँ ही जानती हैं—

कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।

मानसकारने विवाहकी फलश्रुतिमें कहा है कि जो श्रीसीता-रामजीके विवाहका गान-श्रवण करता है, उसका सदा मङ्गल होता है—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

इतना ही नहीं दूलह-दुलहिनकी छबिका दर्शन ही जीवनका फल है—

दूलह राम, सीय दुलही री!
घन-दामिनि बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिखनि बही, री॥
ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि अवली लखि ठगि-सी रही, री।
जीवन-जनम-लाहु, लोचन फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री॥
सुखमा सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही, री।
मथि माखन सिय-राम सँवारे, सकल भुवन छबि मनहु मही, री॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल, न जाति कही, री।
रूप-रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही, री॥

(गीतावली १। १०६)

[क्रमशः]

श्रीशिव-लीला-चिन्तन

[महामहेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके जिनको अपनी लीलाएँ एवं लीलाओंका रहस्य जनाते हैं, वे जान सकते हैं। उनकी कृपाके बिना तो उनकी विचित्र लीलाओंको देख-सुनकर देवी-देवता एवं मुनियोंको भी भ्रम हो जाया करता है, फिर साधारण लोगोंकी तो बात ही क्या? परंतु वास्तवमें शिवजी महाराज हैं बड़े ही आशुतोष! स्वल्प भी उपासना करनेवालेपर वे अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। उनकी कुछ लीलाओंका दिग्दर्शन यहाँ प्रस्तुत है।—सं०]

सतीशिरोमणि सती और भगवान् सदाशिव

भगवान् शंकर स्वभावसे ही विरक्त एवं आत्माराम हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें ही उन्होंने स्त्री-परिग्रहकी इच्छा त्याग दी। ब्रह्माजीको उनके इस अखण्ड वैराग्यसे अपने सृष्टिकार्यमें बाधा पड़ती दिखायी दी। वे शंकरजीके वीर्यसे एक पराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहते थे, जो विध्वंसकारी असुरोंका दमन करनेवाला तथा देवताओंका संरक्षक हो। इसके लिये उन्होंने शंकरजीसे विवाह करनेके लिये अनुरोध किया, किंतु वे अपने संकल्पसे विचलित न हुए। भगवान् शिव दीर्घकालीन समाधिमें संलग्न होकर सदा अपने इष्टदेव साकेत-विहारी श्रीरघुनाथजीका चिन्तन करते रहते थे। सृष्टि और संहारके झमेलेमें पड़ना उन्हें स्वीकार नहीं था। ब्रह्माजी एक ऐसी नारीकी खोजमें थे, जो महादेवजीके अनुकूल हो, उनके तेजको धारण कर सके और अपने दिव्य सौन्दर्यसे उनके मनपर भी अधिकार प्राप्त करनेमें समर्थ हो; किंतु ऐसी कोई स्त्री उन्हें दिखायी न दी। तब उन्होंने अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये भगवती विष्णुमायाकी आराधना करनी ही उचित समझी।

ब्रह्माजीके नौ मानस पुत्रोंमें प्रजापति दक्ष बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी उत्पत्ति ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे हुई थी। एक समय शापवश इनको यह शरीर त्यागना पड़ा। उसके बाद वे दस प्रचेताओंके अंशसे उनकी पत्नी मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए। तबसे प्राचेतस दक्षके नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। प्रजापति वीरणकी कन्या वीरिणी इनकी धर्मपत्नी थी।[1] ब्रह्माजीके आदेशसे दक्षने आराधना करके भगवतीको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया, परंतु भगवतीने उनसे पहले ही कह दिया कि 'यदि तुम कभी मेरा तिरस्कार करोगे, तो मैं तुम्हारी पुत्री न रह सकूँगी तथा शरीर त्यागकर अन्यत्र चली जाऊँगी।'

कन्याका साधु-स्वभाव और भोलापन देखकर ही माता-पिताने उसका नाम 'सती' रख दिया था। सतीका हृदय बचपनसे ही भगवान् शंकरकी ओर आकृष्ट था। कुछ बड़ी होनेपर उन्होंने खेल-कूद और मनोरंजनसे मनको हटा लिया और वे नियमपूर्वक महादेवजीकी आराधना करने लगीं। वे प्रात:काल ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर गङ्गास्नान करतीं और भगवान्‌की पार्थिव मूर्ति बनाकर फूल तथा बिल्वपत्र आदिसे उसकी विधिवत् पूजा करती थीं; फिर नेत्र बंद करके मन-ही-मन प्राणाधारका ध्यान करतीं और उनसे मिलनेके लिये उत्सुक होकर देरतक आँसू बहाया करती थीं।

सच्चे प्रेमकी पिपासा प्रतिक्षण बढ़ती ही रहती है, यही दशा सतीकी भी थी—उनके मन-प्राण भगवान् शंकरके लिये व्याकुल रहने लगे, उन्हें विरहका एक-एक क्षण युगके समान प्रतीत होता था, उनकी जिह्वापर 'शिव'-का नाम था एवं हृदयमें उन्हींकी मनोहर मूर्ति बसी हुई थी तथा उनकी आँखें शिवके सिवा दूसरे पुरुषको देखना नहीं चाहती थीं। वे सोचतीं—'क्या आशुतोष भगवान् शिव मुझ दीन अबलापर भी कभी कृपा करेंगे? क्या कभी ऐसा समय भी आयेगा, जब मैं अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित करके यह तन, मन, जीवन और यौवन सार्थक कर सकूँगी?' इन्हीं भावनाओंमें वे बेसुध रहती थीं। सतीकी यह प्रेम-साधना आगे चलकर कठोर तपस्याके रूपमें

१-कहीं-कहीं स्वायम्भुव मनुकी कन्या 'प्रसूति'को इनकी धर्मपत्नी बताया गया है।

परिणत हो गयी।

उधर ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरके पास गये और उनसे असुर-विनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये विवाह करनेका अनुरोध करने लगे। शिवने विवाहकी अनुमति दे दी और योग्य कन्याकी खोज करनेको कहा। ब्रह्माजीने कहा—'महेश्वर! दक्ष-कन्या सती आपको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या कर रही हैं। वे ही आपके सर्वथा अनुरूप हैं, आप उन्हें ग्रहण करें।' शिवने 'तथास्तु' कहकर देवताओंको विदा कर दिया।

सतीकी व्रताराधना अब पूर्ण होनेको आयी। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथि थी। सतीने उस दिन बड़े प्रेम और भक्तिके साथ अपने प्राणाराध्य महेश्वरका पूजन किया। दूसरे दिन व्रत पूर्ण होनेपर भगवान् शिव एकान्त कुटीरमें सतीके सम्मुख प्रकट हुए। सती निहाल हो गयीं।

जिनकी बाट जोहते-जोहते युग बीत गये थे, उन्हीं आराध्यदेवको सहसा सामने पाकर वे क्षणभरके लिये लज्जासे जडवत् हो गयीं। मन आनन्दके समुद्रमें हिलोरें लेने लगा, उनकी आँखें भगवान्‌के चरणोंमें जा लगीं तथा शरीर रोमांचित हो उठा। उन्होंने काँपते हाथोंसे प्रियतमका चरण-स्पर्श किया और भक्तिभावसे प्रणाम करके प्रेमाश्रुओंसे वे उनके पाँव पखारने लगीं।

भगवान्‌ने अपने हाथोंसे सतीको उठाकर खड़ा किया। उस समय उनका रोम-रोम अनिर्वचनीय रसमें डूबा हुआ था। शंकरजी सतीकी तपस्याका उद्देश्य जानते थे, तो भी उन्होंने उन्हींके मुँहसे उनका मनोरथ सुननेकी इच्छासे कहा—'दक्ष-कुमारी! मैं तुम्हारी आराधनासे बहुत संतुष्ट हूँ। बताओ, किसलिये तुमने अपने कोमल अङ्गोंको इस कठोर साधनाके द्वारा कष्ट पहुँचाया है?'

सती संकोचसे मुख नीचे किये हुए ही बोलीं—'देवाधिदेव! आप घटघटवासी हैं, मेरी अभिलाषा आपसे छिपी नहीं है। आप स्वयं ही आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' सतीका वह अलौकिक प्रेम देखकर भगवान् शिव उनके हाथों बिना दाम बिक गये। वे सहसा बोल उठे—'देवि! तुम मेरी पत्नी बनकर मुझे अनुगृहीत करो।' सतीका हाथ भगवान् शिवके हाथमें था। प्रभुकी वह अनुरागभरी वाणी सुनकर वे पुनः रमणी-सुलभ लज्जाके वशीभूत हो गयीं। उनकी जन्म-जन्मकी साध अब पूरी होने जा रही थी। उस समय उनके मनमें कितना सुख, कितना आह्लाद था, इसका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने थोड़ी ही देरमें अपनेको सँभाला और मन्द मुसकानके साथ संकोचयुक्त वाणीमें कहा—'भगवन्! मैं अपने पिताके अधीन हूँ; आप उनकी अनुमतिसे मुझे अपनी सेवाका सौभाग्य प्रदान करें।'

'बहुत अच्छा' कहकर शंकरजीने सतीको आश्वासन दिया और उससे विदा लेकर वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इधर सतीकी तपस्या और वरदान-प्राप्तिकी बात दक्षके घरमें फैल गयी। उसे सुनकर दक्ष बहुत चिन्तित थे कि 'किस प्रकार सतीका विवाह शिवजीके साथ होगा?' इतनेहीमें भगवान् शंकरकी अनुमतिसे ब्रह्माजीने आकर कहा—'मैं स्वयं ही शंकरजीको साथ लेकर यहाँ आऊँगा; तुम विवाहकी तैयारी करो।' नियत समयपर ब्रह्मा आदि देवताओंके साथ भगवान् शिव विवाहके लिये पधारे। उस समय भी उनका वही विचित्र वेष था। दक्षको उनकी वेश-भूषापर क्षोभ हुआ; फिर भी उन्होंने समारोहपूर्वक सतीका विवाह शिवजीके साथ कर दिया।

विवाहके पश्चात् सती माता-पितासे विदा हो पतिके साथ कैलासधाम चली गयीं। वे भगवान् शिवके साथ दीर्घकालतक वहाँके सुरम्य प्रदेशोंमें सुखसे रहने लगीं।

देवताओं और यक्षोंकी कन्याएँ उनकी सेवा किया करती थीं। भगवान् शिवके पास अनेक देवर्षि, ब्रह्मर्षि, योगी, यति, संत-महात्मा पधारते और सत्संगका लाभ उठाया करते थे। सतीको वहाँ भगवच्चर्चामें बड़ा सुख मिलता था। उस दिव्य वातावरणमें रहते हुए उन्हें कितने ही युग बीत गये। सतीके तन, मन और प्राण केवल शिवकी आराधनामें लगे रहते थे। उनके पति, प्राणेश और देवता सब कुछ भगवान् शिव ही थे।

एक बार त्रेतायुगमें पृथ्वीका भार उतारनेके लिये श्रीहरिने रघुवंशमें अवतार लिया था। उस समय वे पिताकी आज्ञासे राज्यका परित्याग करके तापस-वेषमें दण्डकवनके भीतर विचरण कर रहे थे। इसी समय रावणने मारीचको कपटमृग बनाकर भेजा था और एकान्त आश्रमसे सीताको हर लिया था एवं श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति विरहसे व्याकुल होकर लक्ष्मणजीके साथ वनमें सीताकी खोज कर रहे थे। जिनमें कभी संयोग-वियोग नहीं है, उनमें भी विरहका दु:ख प्रत्यक्ष देखा जा रहा था।

इसी अवसरपर भगवान् शंकर सतीदेवीके साथ अगस्त्यके आश्रमसे राम-कथाका आनन्द लेकर कैलासकी ओर लौट रहे थे। जब उन्होंने अपने आराध्यदेव श्रीरघुनाथजीको देखा, तब उनके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीराम शोभाके समुद्र हैं, उन्हें शिवजीने आँख भरकर देखा; परंतु ठीक अवसर न होनेके कारण परिचय नहीं किया। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा—'*जय सच्चिदानंद जग पावन।*' शंकरजी सतीके साथ चले जा रहे थे, आनन्दातिरेकसे उनके शरीरमें बारम्बार रोमांच हो आता था। सतीने जब उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया तो उनके मनमें बड़ा संदेह हुआ। वे सोचने लगीं—'शंकरजी तो सारे जगत्के वन्दनीय हैं; मनुष्य और मुनि सब इनको मस्तक झुकाते हैं; फिर इन्होंने एक राजकुमारको 'सच्चिदानन्द परमधाम' कहकर प्रणाम कैसे किया और उसकी शोभा देखकर ये इतने प्रेममग्न कैसे हो गये कि अबतक इनके हृदयमें प्रीति रोकनेसे भी नहीं रुकती! जो ब्रह्म सर्वत्र व्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छारहित और भेदशून्य है, जिसे वेद भी नहीं जान पाता, वह क्या देह धारण करके मनुष्य बन सकता है? देवताओंके हितके लिये जो मनुष्य-शरीर धारण करनेवाले विष्णु हैं, वे भी तो शिवजीकी ही भाँति सर्वज्ञ हैं, भला वे कभी अज्ञानीकी भाँति स्त्रीको खोजते फिरेंगे? परंतु शिवजीने सर्वज्ञ होकर भी उन्हें 'सच्चिदानन्द' कहा है, उनकी बात भी तो झूठी नहीं हो सकती।'

इस प्रकार सतीके मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया। यद्यपि उन्होंने प्रकट रूपसे कुछ भी नहीं कहा, फिर भी अन्तर्यामी शिवजी सब जान गये। उन्होंने सतीको समझाकर कहा कि 'समस्त ब्रह्माण्डोंके अधिपति मायापति, नित्य, परम स्वतन्त्र ब्रह्मरूप मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीरामने ही अपने भक्तोंके हितके लिये अपनी इच्छासे ही 'रघुकुल-रत्न' होकर अवतार लिया है।' पर सतीके मनमें उनका उपदेश नहीं बैठा। तब महादेवजी मन-ही-मन भगवान्की मायाका बल जानकर मुसकराते हुए बोले—'यदि तुम्हारे मनमें अधिक संदेह है, तो जाकर परीक्षा क्यों नहीं लेती? जबतक तुम लौट न आओगी, मैं इसी बटकी छाँहमें बैठा रहूँगा।'

भोली-भाली सतीपर भगवान्की योगमायाका प्रभाव पड़ चुका था। वे पतिकी आज्ञा पाकर भगवान्की परीक्षा लेने चल पड़ीं। इधर शंकरजी अनुमान करने लगे—'आज सतीका कल्याण नहीं है। मेरे समझानेपर भी जब संदेह दूर नहीं हुआ तो विधाता ही विपरीत है, इसमें भलाई नहीं है। जो कुछ रामने रच रखा है, वही होगा, तर्क करके कौन प्रपंचमें फँसे।' यों विचारकर वे भगवान्का नाम जपने लगे। उधर सतीने खूब सोच-विचारकर सीताका रूप धारण किया और आगे बढ़कर उस मार्गपर चली गयीं, जिधर श्रीरामचन्द्रजी आ रहे थे। लक्ष्मणजी सीताको मार्गमें खड़ी देखकर चकित हो गये। जिनके स्मरणमात्रसे अज्ञान मिट जाता है, उन सर्वज्ञ श्रीरामचन्द्रजीने सारी बात जानकर मन-ही-मन अपनी मायाके बलका बखान करते हुए हाथ जोड़कर सीतारूपिणी सतीको प्रणाम किया। अपना और अपने पिताका नाम बतलाया तथा हँसकर पूछा—'देवि! शिवजी कहाँ हैं? आप वनमें अकेली क्यों विचर रही हैं?' अब तो सतीजी संकोचसे गड़ गयीं। वे भयभीत होकर शंकरजीके पास लौट आयीं। उनके हृदयमें बड़ी चिन्ता हो गयी थी, वे सोचने लगीं—'हाय! मैंने स्वामीका कहना नहीं

माना, अपना अज्ञान श्रीरामचन्द्रजीपर आरोपित किया। अब मैं उनको क्या उत्तर दूँगी।'

फिर वे बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें प्रणाम करके उस स्थानकी ओर चलीं, जहाँ शिवजी उनकी प्रतीक्षामें बैठे थे। निकट जानेपर शिवजीने हँसकर कुशल-समाचार पूछा और कहा—'सच-सच बताओ, किस प्रकार परीक्षा ली है?' सतीने श्रीरघुनाथजीके प्रभावको समझकर भयके मारे शिवजीसे अपने सीतारूप धारण करनेकी बात छिपा ली। शंकरजीने ध्यान लगाकर देखा और सतीने जो कुछ किया था, वह सब जान लिया; फिर उन्होंने श्रीरामजीकी मायाको मस्तक झुकाया!

'सतीने सीताका वेष बना लिया', यह जानकर शिवजीके मनमें बड़ा विषाद हुआ। उन्होंने सोचा—'अब यदि मैं सतीसे पत्नीकी भाँति प्रीति करता हूँ तो भक्तिमार्गका लोप हो जाता है और बड़ा अन्याय होता है। सती परम पवित्र हैं, अतः इन्हें छोड़ते भी नहीं बनता और प्रेम करनेमें बड़ा पाप है।' महादेवजी प्रकटरूपसे कुछ नहीं कह सके; किंतु उनके हृदयमें बड़ा संताप था। तब उन्होंने श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम किया। भगवान्‌की याद आते ही उनके हृदयमें यह संकल्प उदित हुआ—***'एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।'*** ऐसा निश्चय करके वे श्रीरामका स्मरण करते हुए चल दिये। उस समय आकाशवाणी हुई—'महेश्वर! आपकी जय हो, आपने भक्तिको अच्छी दृढ़ता प्रदान की। आपको छोड़कर ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप श्रीरामचन्द्रजीके भक्त हैं, सर्वसमर्थ हैं और भगवान् हैं।'

सतीने भी वह आकाशवाणी सुनी। उनके मनमें बड़ी चिन्ता हो गयी। उन्होंने सकुचाते हुए पूछा—'दयामय! कहिये, आपने कौन-सा प्रण किया है। प्रभो! आप सत्यके धाम और दीनदयालु हैं। मुझ दीनपर दया करके अपनी की हुई प्रतिज्ञा बताइये।' सतीने भाँति-भाँतिसे पूछा, किंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया। तब सतीने अनुमान किया—'शिवजी सर्वज्ञ हैं, वे सब कुछ जान गये। हाय! मैंने इनसे भी छल किया। स्त्री स्वभावसे ही मूर्ख और बेसमझ होती है।' अपनी करनीको याद करके सतीके हृदयमें बड़ा सोच और अपार चिन्ता हुई। उन्होंने समझ लिया कि शिवजी कृपाके अथाह सागर हैं, इसीसे प्रकटमें इन्होंने मेरा अपराध नहीं कहा; किंतु उनकी मुखाकृतिका भाव देखकर सतीको यह विश्वास हो गया कि स्वामीने मेरा परित्याग कर दिया है।

त्यागका विचार आते ही उनका हृदय व्याकुल हो गया। सतीको चिन्तामग्न देख शंकरजी उन्हें सुख देनेके लिये सुन्दर-सुन्दर कथा-वार्ता कहने लगे। मार्गमें अनेक प्रकारके इतिहासका वर्णन करते हुए वे कैलासधाम पहुँचे। वहाँ अपनी प्रतिज्ञाको याद करके वे वटवृक्षके नीचे आसन लगाकर बैठ गये तथा अपने सहज स्वरूपका स्मरण किया और अखण्ड समाधि लग गयी। सतीजी कैलासपर रहकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगीं। उनके मनमें बड़ा दुःख था। एक-एक दिन एक-एक युगके समान बीत रहा था और इस दुःख-समुद्रसे पार होनेका कोई उपाय भी नहीं सूझता था।

इस प्रकार दक्ष-कुमारी सतीके दारुण दुःखकी कोई सीमा नहीं थी। वे रात-दिन चिन्ताकी आगमें झुलस रही थीं। इस अवस्थामें पड़े-पड़े उनके सत्तासी हजार वर्ष बीत गये। इतने दिनों बाद शिवकी समाधि खुली, वे स्पष्ट वाणीमें 'राम-राम'का उच्चारण करने लगे। तब सतीने जाना कि जगदीश्वर शिव समाधिसे जगे हैं। उन्होंने जाकर शंकरजीके चरणोंमें प्रणाम किया। शिवजीने उनको बैठनेके लिये सामने आसन दिया और श्रीहरिकी रसमयी कथाएँ सुनाने लगे। इस प्रकार दयालु महेश्वरने सतीके संतप्त हृदयको कुछ शीतल करनेका प्रयत्न किया। भगवच्चर्चामें लग जानेसे मानसिक दुःखका आवेग बहुत कुछ कम हो गया।

इसी बीचमें सतीके पिता दक्ष 'प्रजापति'के पदपर अभिषिक्त हुए। यह महान् अधिकार पाकर दक्षके हृदयमें बड़ा भारी अभिमान पैदा हो गया। संसारमें कौन ऐसा है, जिसे प्रभुता पाकर मद न हो। उन्होंने ब्रह्मनिष्ठ देवताओं-महात्माओंको, जिनमें शंकरजी भी थे, उपेक्षाकी दृष्टिसे देखना आरम्भ किया। शंकरजीपर उनके रोषका कुछ विशेष कारण था। वे उनके स्वरूप-तत्त्वसे बिलकुल अनभिज्ञ थे। सतीके विवाहके कुछ ही समय बाद एक बार प्रजापतियोंने यज्ञका आयोजन किया था। उसमें बड़े-बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि भी अपने अनुयायियोंसहित उपस्थित हुए थे। ब्रह्मा

और शिवजी भी उस सभामें विराजमान थे। उसी समय दक्ष भी वहाँ पधारे। सभी सभासद उनके स्वागतमें उठकर खड़े हो गये। केवल ब्रह्माजी और महादेवजी अपने स्थानपर बैठे रहे। ब्रह्माजी दक्षके पिता ही थे; अतः उन्होंने झुककर उनके चरणोंमें प्रणाम किया, किंतु शंकरजीका बैठे रहना उनको बहुत बुरा लगा। उन्हें इस बातके लिये खेद था कि 'शंकरजीने उठकर मुझे प्रणाम क्यों नहीं किया।' अतः उन्होंने भरी सभामें उनकी बड़ी निन्दा की, कठोर वचन सुनाये और शाप तक दे डाला। भगवान् शंकर चुपचाप चले आये। उन्होंने उनकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

इतनेपर भी दक्षका रोष उनके प्रति शान्त नहीं हुआ था। वे शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिसे द्वेष रखने लगे। यहाँतक कि अपनी पुत्री सतीके प्रति भी उनका भाव अच्छा नहीं रह गया। प्रजापतियोंके नायक बन जानेपर उनको वैर साधनका अच्छा अवसर मिला। पहले तो उन्होंने वाजपेय यज्ञ किया और उसमें शंकरजीको भाग नहीं लेने दिया। उसके बाद पुनः बड़े समारोहके साथ 'बृहस्पति-सव' नामक यज्ञका आयोजन किया। इस उत्सवमें प्रायः सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता और उपदेवता आदि आमन्त्रित थे। सबने अपनी-अपनी पत्नीके साथ जाकर यज्ञोत्सवमें भाग लिया और स्वस्तिवाचन किया। केवल ब्रह्मा और विष्णु कुछ सोचकर उस यज्ञमें सम्मिलित नहीं हुए। सतीने देखा, कैलासशिखरके ऊपर आकाशमार्गसे विमानोंकी श्रेणियाँ चली जा रही हैं। उनमें देवता, यज्ञ, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा किन्नर आदि बैठे हैं। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ भी हैं, जो चमकीले कुण्डल, हार तथा विविध रत्नमय आभूषण पहने भलीभाँति सज-धजकर गीत गाती हुई जा रही हैं।

सतीने पूछा—'भगवन्! यह सब क्या है? ये लोग कहाँ जा रहे हैं?' भगवान् शिवने मुसकराते हुए कहा—'तुम्हारे पिताके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। उसीमें यह लोग निमन्त्रित हैं।' पिताके यज्ञकी बात सुनकर सतीको कुछ हर्ष हुआ। उन्होंने सोचा—'यदि स्वामीकी आज्ञा हो तो यज्ञके ही बहाने कुछ दिन वहीं चलकर रहूँ।' यह विचारकर वे भय, संकोच और प्रेमरसमें सनी हुई वाणीमें बोलीं—'देव! पिताजीके घर यज्ञ हो रहा है तो उसमें मेरी अन्य बहनें भी अवश्य पधारेंगी। माता और पितासे मिले मुझे युग बीत गये। इस अवसरपर आपकी आज्ञा हो तो आप और मैं दोनों वहाँ चलें। यज्ञका उत्सव भी देखेंगे और सबसे भेंट-मुलाकात भी हो जायगी। प्रभो! यह ठीक है कि उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया; अतः वहाँ जाना ठीक नहीं है, तथापि पति, गुरु और माता-पिता आदि सुहृदोंके यहाँ बिना बुलाये भी जाना चाहिये। सम्भव है अति व्यस्तताके कारण वे निमन्त्रण देना भूल गये हों, अथवा देनेपर भी यहाँ पहुँच न पाया हो।'

शिवजीने कहा—'इसमें संदेह नहीं कि माता-पिता आदि गुरुजनोंके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, परंतु ऐसा तभी करना चाहिये जब वहाँके लोग प्रेम रखते हों। जहाँ कोई विरोध मानता हो, वहाँ जानेसे कदापि कल्याण नहीं होता। तुम्हारे पिता मुझसे द्वेष रखते हैं, अतः तुम्हें उनको और उनके अनुयायियोंको देखनेका भी विचार नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी तो इसका परिणाम अच्छा न होगा; क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिको जब अपने स्वजनोंद्वारा तिरस्कार प्राप्त होता है, तो वह तत्काल उसकी मृत्युका कारण बन जाता है।'

इसके बाद शंकरजीने बहुत प्रकारसे समझाया-बुझाया, पर सती रहना नहीं चाहती थीं। स्वजनोंके स्नेहका स्मरण करके उनका हृदय भर आया। वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। तब महादेवजीने अपने प्रधान-प्रधान पार्षदोंके साथ सतीको अकेली ही विदा कर दिया। सती अपने समस्त सेवकोंके साथ गङ्गातटपर बनी हुई दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। मण्डपमें पहुँचनेपर दक्षने सतीका किंचित् भी सत्कार नहीं किया। उनकी चुप्पी देखकर दूसरे लोग भी उन्हींके भयसे कुछ भी न बोले। केवल माता और बहनें सतीसे प्रेमपूर्वक मिलीं और उन्हें आदरपूर्वक उपहारकी वस्तुएँ देने लगीं, किंतु पितासे अपमानित होनेके कारण स्वाभिमानिनी सतीने किसीकी दी हुई कोई भी वस्तु स्वीकार नहीं की। सतीको स्वामीकी कही हुई बातें याद आने लगीं।

उस यज्ञमें शिवजीके लिये कोई भाग न देकर उनका घोर अपमान किया गया था। सतीने इस बातकी ओर भी

लक्ष्य किया। इससे उनके मनमें बड़ा क्रोध हुआ। उनकी भौंहें तन गयीं, आँखें लाल हो गयीं और ऐसा जान पड़ा, मानो वे सम्पूर्ण जगत्‌को भस्म कर डालेंगी। उनका यह भाव देखकर शिवके पार्षद भी दक्षको दण्ड देनेके लिये उद्यत हो गये, किंतु सतीने उन्हें रोक दिया और समस्त सभासदोंके सामने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

'पिताजी! भगवान् शंकर सम्पूर्ण देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं, उनसे बढ़कर इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। उनके लिये न कोई प्रिय है, न अप्रिय। वे सर्वरूप हैं, अतः उनका किसीके साथ भी वैर-विरोध नहीं है। ऐसे भगवान्‌के साथ आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध कर सकता है? विप्रवर! आप-जैसे ज्ञानशून्य लोग ही दूसरोंके गुणोंमें भी दोष देखते हैं, किन्तु श्रेष्ठ पुरुष ऐसा नहीं करते। जो दूसरोंके थोड़े-से गुणोंको भी बहुत बड़े रूपमें देखना चाहते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ महात्मा पुरुष हैं। आपने ऐसे महापुरुषोंमें भी दोष देखना आरम्भ किया है। जो दुष्ट इस मुर्दे शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे ईर्ष्यावश सदा ही महात्माजनोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि महापुरुषोंकी चरण-धूलि उन निन्दा करनेवाले पापियोंके तेजका नाश कर देती है; अतः उनके लिये यही उचित भी है। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरका नाम बातचीतके प्रसंगमें भी जिह्वापर आ जाय तो नाम लेनेवालेके समस्त पापोंका तत्काल विनाश कर देता है। जिनके शासनका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, जिनकी कीर्ति परम पवित्र है, उन्हीं मङ्गलमय शिवसे आप द्वेष करते हैं—यह महान् आश्चर्य है। सचमुच ही आप अमङ्गलरूप हैं। अहो! महापुरुषोंके मनरूपी भ्रमर ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरण-कमलोंका निरन्तर सेवन करते हैं तथा जो भोग चाहनेवाले पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी प्रदान करते हैं, उन्हीं विश्वबन्धु भगवान् भूतनाथसे आप वैर करते हैं, यह आपके लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है। सुनती हूँ, आप कहा करते हैं, वे केवल नाममात्रके शिव हैं; उनका वेष तो महान् अशिव—अभद्र है, क्योंकि वे नरमुण्डोंकी माला, चिताकी राख और हड्डियाँ धारण किये, जटा बिखराये, भूत-पिशाचोंको साथ लिये श्मशानमें विचरण करते रहते हैं। मालूम होता है, शिवके उस अशिव रूपका ज्ञान सबसे अधिक आपको ही है; आपके सिवा दूसरे देवता ब्रह्मा आदि भी इस बातको नहीं जानते। तभी तो वे शिवके चरणोंपर चढ़े हुए निर्माल्यको अथवा उनके चरणोदकको अपने मस्तकपर धारण करते हैं। पिताजी! शास्त्र क्या कहता है? यदि कोई उच्छृंखल प्राणी धर्मकी रक्षा करनेवाले ईश्वरकी निन्दा करे, तो अपनेमें उसे दण्ड देनेकी शक्ति न होनेपर दोनों कान मूँद ले और वहाँसे हट जाय। अथवा यदि शक्ति हो तो उस बकवादीकी दुष्ट जिह्वाको काटकर फेंक दे, ऐसा करते समय कदाचित् प्राणोंपर संकट आ जाय तो प्राणोंको भी त्याग दे; वही धर्म है। आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं; अतः आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं धारण करूँगी। यदि भूलसे कोई दूषित अन्न खा लिया जाय तो वमन करके उसे निकाल देना ही आत्मशुद्धिके लिये आवश्यक बताया गया है। भगवान् शिव जब-जब आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे हँसीमें भी दाक्षायणी (दक्षकुमारी)-के नामसे पुकारते हैं, तब-तब उस हास-परिहासको भूलकर मेरा मन तुरंत ही दुःखके अगाध समुद्रमें डूब जाता है। अतः आपके अङ्गसे उत्पन्न हुए इस शवतुल्य शरीरको अब त्याग देती हूँ; क्योंकि यह मेरे लिये कलंकरूप है।'

यज्ञमण्डपमें इस प्रकार कहकर देवी सती मौन हो उत्तर-दिशामें बैठ गयीं। उनका शरीर पीताम्बरसे ढका था। वे आचमन करके नेत्र बंद किये योगमार्गमें स्थित हो गयीं। पहले उन्होंने आसनको स्थिर किया, फिर प्राण और अपान वायुको एकरूप करके नाभिचक्रमें स्थापित किया। तदनन्तर उदान वायुको नाभि-चक्रसे धीरे-धीरे ऊपर उठाया और बुद्धिसहित हृदयमें स्थापित कर दिया; फिर हृदयस्थित वायुको वे कण्ठमार्गसे भृकुटियोंके बीचमें ले गयीं। महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शिव जिसको बड़े आदरके साथ अपने अङ्कमें बिठा चुके थे, उसी शरीरको मनस्विनी सतीदेवी दक्षपर क्रोध होनेके कारण त्याग देना चाहती थीं; अतः उन्होंने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें अग्नि और वायुकी धारणा की। इसके बाद वे अपने स्वामी जगद्गुरु भगवान् शिवके चरणारविन्द मकरन्दका चिन्तन करने लगीं;

उसके सिवा दूसरी किसी वस्तुका उन्हें भान न रहा। उस समय उनका वह दिव्य देह, जो स्वभावसे ही निष्पाप था, तत्काल योगाग्निसे जलकर भस्म हो गया।[1]
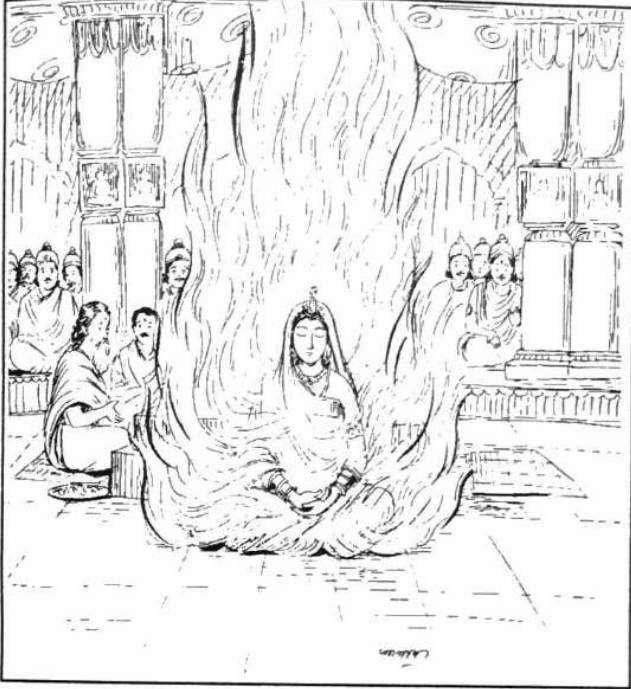
इस प्रकार पतिप्राणा सतीकी ऐहलौकिक लीला समाप्त हुई। उन्होंने जीवनभर सदा ही तन, मन, प्राणसे अपने पति भगवान् शिवकी सेवा और समाराधना की तथा अन्तमें भी उन्हींका चिन्तन करते-करते प्राण-त्याग किया। मरते समय भी उन्होंने भगवान्से यही वर माँगा था कि 'प्रत्येक जन्ममें मेरा भगवान् शिवके ही चरणोंमें अनुराग हो[2]।' इसीलिये वे पुनः गिरिराज हिमालयके यहाँ पार्वतीके रूपमें प्रकट हुईं और उन्होंने भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त किया। सतीका यह दिव्य पतिप्रेम भारतकी नारियोंके लिये आदर्श बन गया। आज घर-घरमें सती-पूजाकी जो प्रथा चली आती है, उसमें दक्ष-कन्या सतीके प्रति ही भारतीय नारियाँ अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित करती हैं। सतीजी भगवान् शिवके लिये ही उत्पन्न हुईं, उन्हींकी सेवाके लिये जीवित रहीं और उसीमें बाधा पड़नेपर फिर उन्हींको सम्पूर्णरूपसे प्राप्त करनेके लिये उन्होंने अपने शरीरको त्याग दिया। गङ्गाके किनारे जिस स्थानपर सतीने अपना शरीर छोड़ा था, वह आज भी 'सौनिक तीर्थ'के नामसे विख्यात है।

पार्वती-शंकरकी विवाह-लीला

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥

(रा० च० मा० १। २३५)

सतीत्व ही नारीका सौन्दर्य है, पातिव्रत्यकी रक्षा ही उसका व्रत है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा पतिके चरणोंमें पवित्र प्रेम ही उसका धर्म है। ऊँची-से-ऊँची स्थितिको पाकर भी मनमें अहंकारका उदय न होना, भारी-से-भारी संकट आनेपर भी धैर्य न छोड़ना, स्वयं कष्ट सहकर भी स्वामी तथा कुटुम्बीजनोंको यथायोग्य सेवासे प्रसन्न रखना, विनय, कोमलता, दया, प्रेम, लज्जा, सुशीलता और वत्सलता आदि सद्गुणोंको हृदयमें धारण करना—यह प्रत्येक साध्वी नारीका स्वभाव होता है। नारी न भीरु होती है, न अबला। भीरुता और अबलापनको तो वह अपने पति और गुरुजनोंके सामने केवल विनयकी रक्षा और अविनयसे बचनेके लिये धारण किये रहती है। सती नारीकी सबसे बड़ी शक्ति है उसका पातिव्रत्य, जो सम्पूर्ण जगत्को सबल और निर्भय बना सकता है। वह प्राणोंके रहते सतीत्वपर आँच नहीं आने देती। आवश्यकता हुई तो सतीत्वकी रक्षाके लिये वह शस्त्र भी ग्रहण करती है और आततायीके लिये भयानक रणचण्डी बन जाती है। अपने पति और पुत्रोंके ललाटमें रक्तका चन्दन लगाकर स्वयं ही उन्हें रणमें भेजती है और इस प्रकार संसारमें वह वीराङ्गना एवं वीरजननीके रूपमें सम्मानित होती है। नारीके इन सभी सद्गुणों और सभी रूपोंका एकत्र समन्वय देखना हो तो जगज्जननी भगवती पार्वतीके जीवनपर दृष्टिपात

१-ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम्। ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना॥ (श्रीमद्भा० ४। ४। २७)

२-सतीं मरत हरि सन बरु मागा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥ (रा० च० मा० १। ६५। ५)

करना चाहिये। पार्वतीने जहाँ प्रेम और विनयकी प्रतिमूर्ति होकर पतिके आधे अङ्गमें स्थान प्राप्त किया, उन्हें अर्धनारीश्वर बनाया; वहीं स्वामीको अपनी विराट् शक्ति देकर मृत्युञ्जयके रूपमें प्रतिष्ठित किया, दोनों पुत्रोंको सेनानी और गणाध्यक्ष बनाया तथा स्वयं भी वे पातिव्रत्यकी रक्षा एवं लोककल्याणके लिये शस्त्र हाथमें ले चण्ड-मुण्डविनाशिनी चामुण्डा बन गयीं; वेद, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, तन्त्र और आगम—ये सभी शिव और पार्वतीके गुणगानसे भरे हैं। यहाँ अति संक्षेपसे ही उनके जीवनपर कुछ प्रकाश डाला जा रहा है।

पार्वती पूर्वजन्ममें दक्षप्रजापतिकी कन्या सतीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। उस समय भी उन्हें भगवान् शंकरकी प्रियतमा पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त था। जब वे अपने स्वामीके साथ कैलास पर्वतपर रहती थीं, उन दिनों गिरिराज हिमालयकी धर्मपत्नी मेनकादेवी उनसे बड़ा प्रेम रखती थीं। उनके मनमें सदा यही अभिलाषा होती कि मेरे गर्भसे भी एक सती-जैसी ही सुन्दरी तथा सुलक्षणा कन्या जन्म ले। सतीका भी उनके प्रति माता-जैसा ही प्रेम था। दक्षके यज्ञमें सतीका देहावसान सुनकर मेनकाको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये बड़ी भक्तिके साथ आद्या शक्ति जगदम्बाकी आराधना आरम्भ कर दी। इससे प्रसन्न होकर देवीने प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा। मेनकाने पहले पुत्र और फिर कन्या प्राप्त होनेका वर माँगा। देवीने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की।

इसी प्रकार महर्षि कश्यपके उपदेशसे श्रेष्ठ संतानकी प्राप्तिके लिये गिरिराज हिमवान्ने तपस्या करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और उनसे उत्तम पुत्र और महान् सद्गुणवती कन्या प्राप्त करनेका वर-लाभ किया।

हिमालयकी पत्नी मेनका पितरोंकी मानसी कन्या थीं। वे कुल और शील दोनों ही दृष्टियोंसे श्रेष्ठ थीं। उनके गर्भसे पहले एक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम 'मैनाक' था। मैनाकके जन्मके कुछ काल पश्चात् सतीने नूतन शरीर धारण करनेके लिये मेनकाके गर्भमें प्रवेश किया। समय आनेपर जैसे सुनीति नवीन सम्पत्ति उत्पन्न करती है, उसी प्रकार मेनकाने एक कन्या-रत्नको जन्म दिया।

पर्वतसे उत्पन्न होनेके कारण कन्याको सब लोग 'पार्वती' कहने लगे। कुछ लोग 'गिरिजा' और 'शैलजा' भी कहते हैं। धीरे-धीरे पार्वती प्रतिदिन चन्द्रकलाके समान बढ़ने लगीं। वे ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयीं, त्यों-ही-त्यों उनके सुन्दर अङ्ग भी सुडौल होकर बढ़ने लगे। माता-पिताकी आँखें त्रिभुवनसुन्दरी पार्वतीको देखकर अघाती नहीं थीं। पार्वतीके जन्मका समाचार पाकर देवर्षि नारद भी उन्हें देखनेके लिये कौतूहलवश हिमाचलके घर पधारे। पर्वतराजने उनका बड़ा आदर किया। 'मेरा अहोभाग्य, जो मुनिराजके दर्शन हुए'—इस प्रकार अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए हिमवान्ने अपनी लाड़ली पुत्री पार्वतीको बुलाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम कराया। इसके बाद हाथ जोड़कर कहा—'मुनिवर! आप भूत, वर्तमान और भविष्य—इन तीनों कालोंके ज्ञाता हैं। आपकी सर्वत्र पहुँच है; अतः आप हृदयमें विचारकर कन्याके दोष और गुण बतलाइये।'

नारदजीने हँसकर रहस्ययुक्त कोमल वाणीमें कहा—'गिरिराज! तुम्हारी कन्या सब गुणोंकी खान है। यह स्वभावसे ही सुन्दर, सुशील और समझदार है। आगे चलकर यह 'उमा', 'अम्बिका' और 'भवानी' आदि विविध नामोंसे प्रसिद्ध होगी। इसमें सम्पूर्ण शुभ लक्षण विद्यमान हैं। यह अपने पतिको सर्वदा प्यारी होगी। इसका सुहाग सदा अचल रहेगा। इस

श्रीदशरथ-नन्दन

क्रीडावेषमें आनन्दकन्द
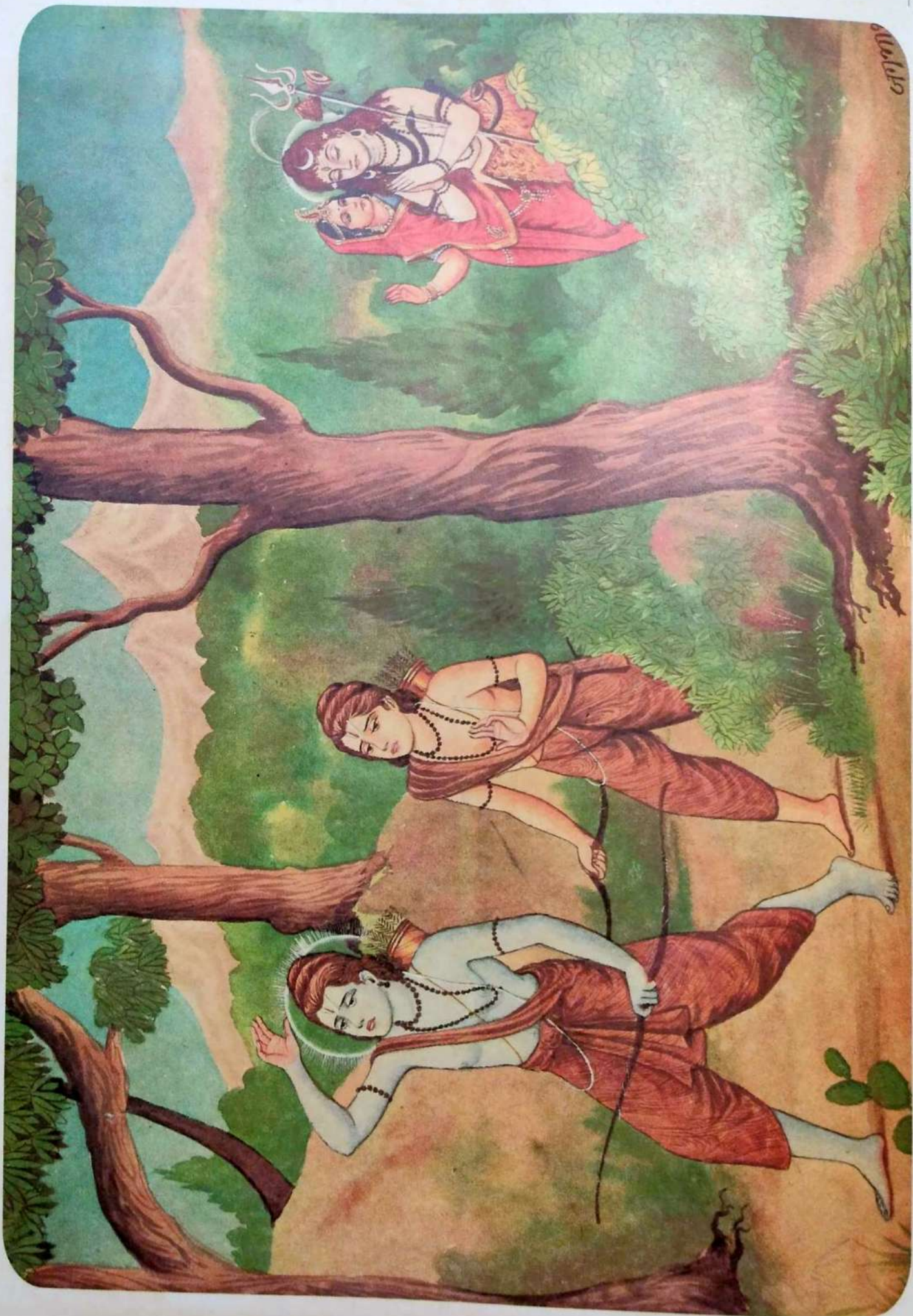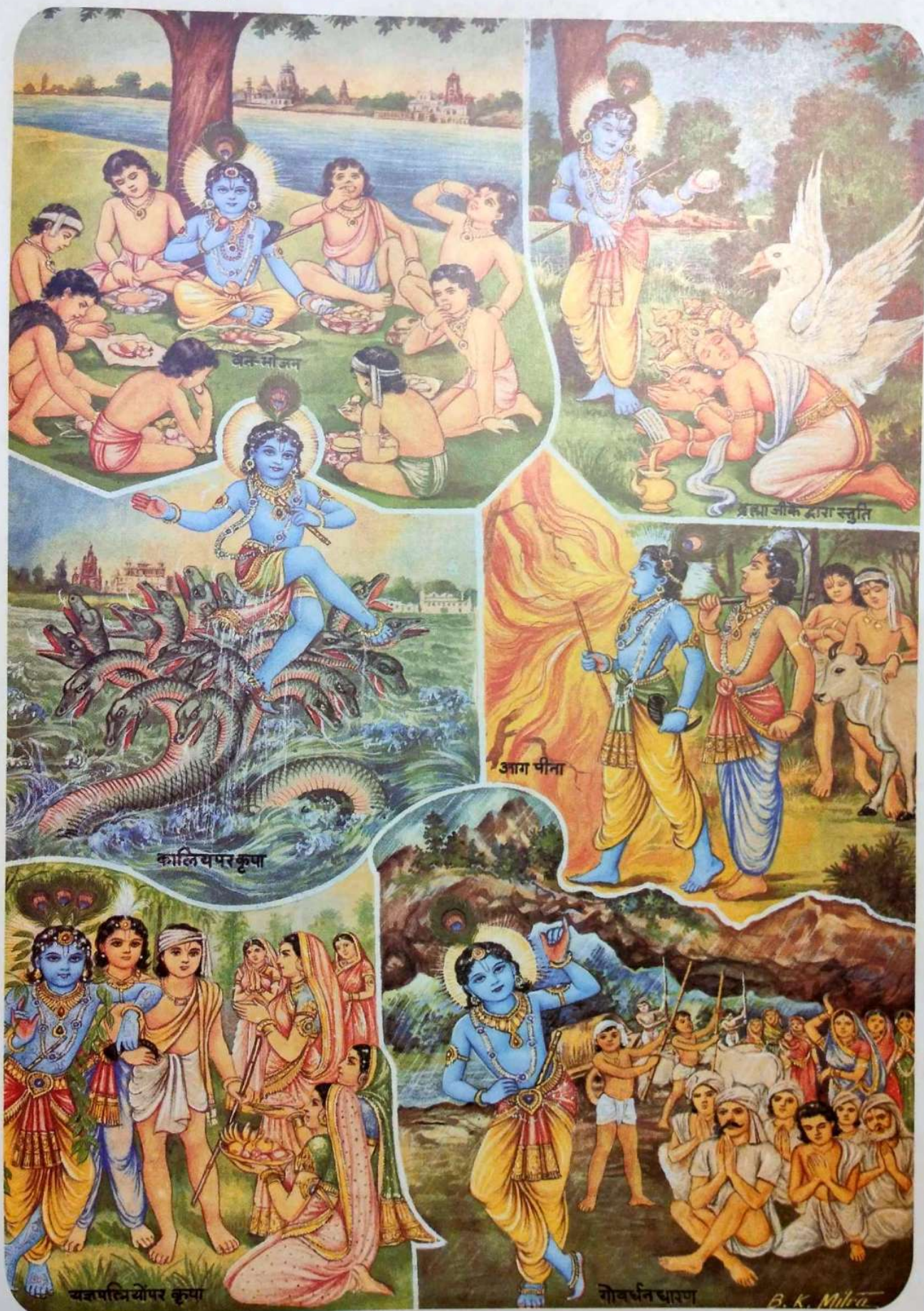
आनन्दकन्द व्रजेन्द्रनन्दनकी मधुर बाल-लीलाएँ

भगवान् शिवका ताण्डव-नृत्य
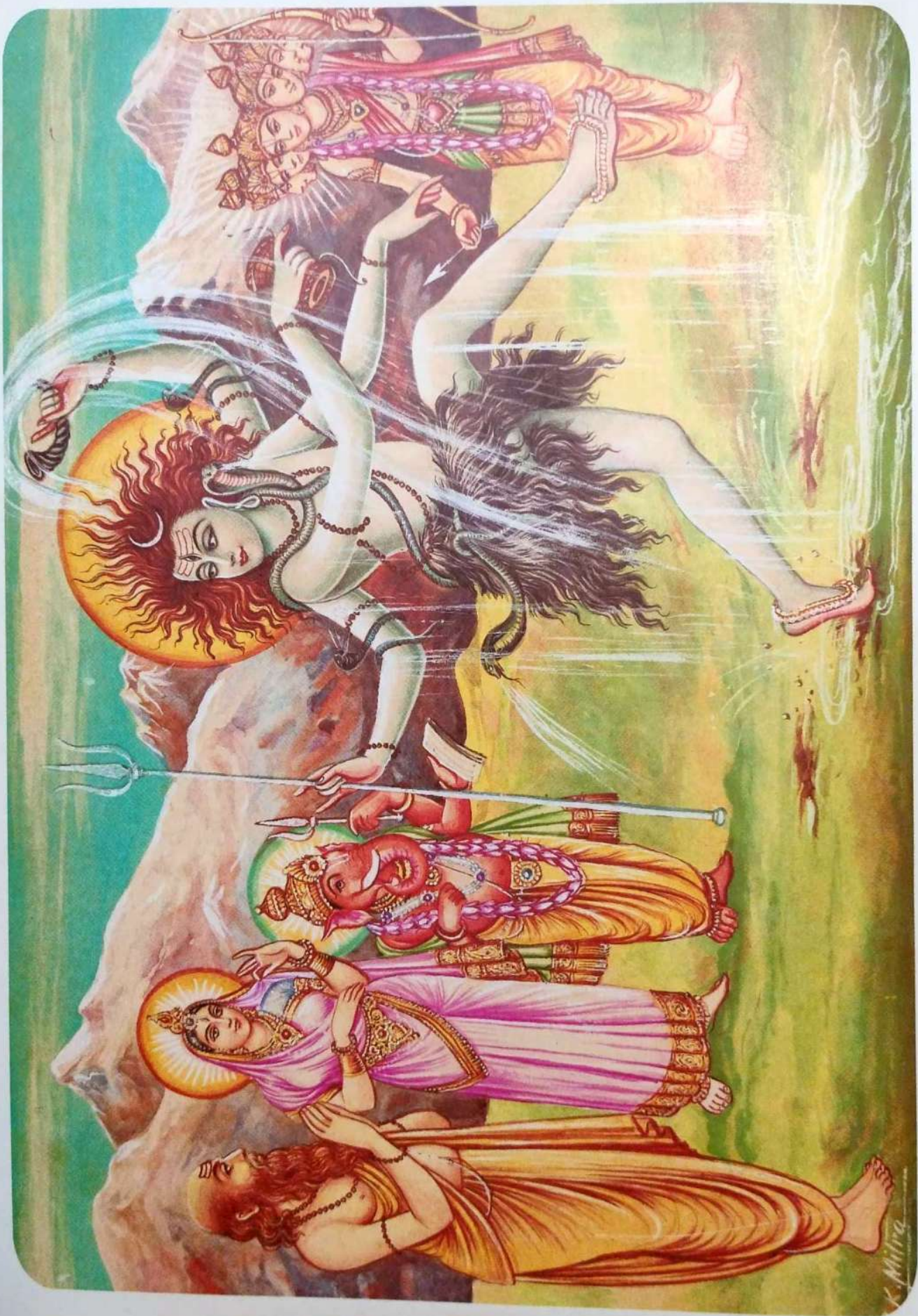
कन्यासे माता-पिताको बड़ा भारी यश मिलेगा। यह सारे जगत्‌में पूज्य होगी। इसकी सेवासे कुछ भी दुर्लभ न होगा। संसारमें स्त्रियाँ इसके नामका स्मरण करके पातिव्रत्यरूपी तलवारकी धारपर चढ़ जायँगी। शैलपते! इस प्रकार तुम्हारी कन्या सब प्रकारसे सुलक्षणी है; किंतु इसमें जो एक अशुभ लक्षण है, उसे भी सुन लो। इसको पति गुणहीन, मानहीन, माता-पितासे रहित, उदासीन, संशय-शून्य, योगी, जटाधारी, कामना-शून्य, नंगा और अमङ्गल वेषवाला मिलेगा। इसके हाथमें ऐसी ही रेखा पड़ी है।'

मुनिकी यह बात सुनकर और मन-ही-मन उसको सत्य जानकर दोनों दम्पति हिमवान् और मैना बहुत दु:खी हुए; किंतु पार्वतीजी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। हिमवान्‌को चिन्तित देखकर नारदजीने कहा—'हिमवान्! इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारी कन्याको वैसा ही वर प्राप्त होगा, जैसा कि मैंने बताया है; परंतु मैंने वरके जो-जो दोष बताये हैं, मेरे अनुमानसे वे सभी शिवजीमें हैं। यदि उनके साथ इसका विवाह हो जाय, तो दोषोंको भी सब लोग गुणके ही समान कहेंगे। शिवजी सहज समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान् हैं; अत: इस विवाहमें सब प्रकारसे कल्याण है। यद्यपि महादेवजीकी आराधना बड़ी कठिन है, तथापि तपस्या करनेसे वे शीघ्र ही संतुष्ट हो जाते हैं। यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो महादेवजी होनहारको भी मिटा सकते हैं। वे कृपाके समुद्र और सेवकोंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। शिवजीकी आराधना किये बिना करोड़ों योग और जप करनेपर भी मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि नहीं हो सकती।' ऐसा कहकर नारदजीने पार्वतीको आशीर्वाद दिया और भगवान्‌का स्मरण करके वे ब्रह्मलोकमें चले गये। हिमवान् पार्वतीके तप करनेका उपयुक्त अवसर देखने लगे।

उधर जबसे सतीने पिताके हाथों महादेवजीका अपमान होनेपर योगाग्निसे अपने शरीरको जला दिया, तबसे महादेवजीने दूसरा विवाह नहीं किया। भोग-विलासको तो वे बहुत पहलेसे ही छोड़ चुके थे। हिमालयके सुन्दर शिखरपर जाकर उन्होंने तपस्या आरम्भ की। वहाँ भगवान्‌की सेवामें उनके पार्षद प्रमथगण और नन्दी भी साथ-साथ रहते थे। परम विरक्त शिवजी श्रीरघुनाथजीका नाम जपते हुए उन्हींका ध्यान करने लगे। महादेवजीको तपस्यामें स्थित देख हिमवान् अपनी पुत्रीको साथ लेकर उनकी पूजाके लिये गये। पहले उन्होंने स्वयं शिवजीकी पूजा की; फिर अपनी पुत्रीको आज्ञा दी कि 'सखियोंके साथ आकर तुम यहीं रहकर भगवान्‌की पूजा करो।' यद्यपि पार्वतीजीके रहनेसे शिवजीकी तपस्यामें बाधा पड़नेकी सम्भावना थी; फिर भी उन्होंने पार्वतीजीकी सेवा स्वीकार कर ली; क्योंकि वास्तवमें ज्ञानी और महात्मा पुरुष वे ही हैं, जिनका चित्त विकारके साधन उपस्थित रहनेपर भी विचलित न हो। पार्वती नियमसे प्रतिदिन वहाँ रहकर पूजाके लिये फूल चुनकर लातीं, वेदीको धो-पोंछकर स्वच्छ बनातीं और नित्यकर्मके लिये जल और कुशा लाकर रख दिया करती थीं। यह सब करते हुए उनके तन-मनमें तनिक भी थकानका अनुभव नहीं होता था।

उन्हीं दिनों तारक नामसे प्रसिद्ध एक अजर-अमर असुर हुआ, जिसकी भुजाओंका बल, प्रताप और तेज बहुत अधिक था। उसने सब लोक और लोकपालोंको जीत लिया। तब उन्होंने ब्रह्माजीके पास जाकर अपनी कष्ट-कथा सुनायी। ब्रह्माजीने देवताओंको समझाकर कहा—'उस दैत्यकी मृत्यु तब होगी, जब शिवजीके वीर्यसे कोई पुत्र उत्पन्न हो। वही इसे युद्धमें जीतेगा। दक्षकन्या सती हिमवान्‌के यहाँ पार्वतीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। वे ही शिवका वीर्य धारण करनेमें समर्थ हैं; परंतु शिवजी परम विरक्त होकर समाधि लगाये बैठे हैं, हिमगिरिके शिखरपर तपस्या कर रहे हैं। उन्हें विवाहके लिये उद्यत करना कठिन है। इसके लिये तुम्हें कोई उपाय सोचना चाहिये।'

यह सुनकर इन्द्र आदि देवताओंने कामदेवको अपनी दु:खभरी गाथा सुनाकर वसन्त आदि सहायकोंके साथ वहाँ भेजा। उसके हाथमें पुष्पमय धनुष शोभा पा रहा था। वहाँ जाकर वह एक सुन्दर डालीपर जा बैठा। उसने पुष्प-धनुषपर अपने पाँचों बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोधसे लक्ष्यकी ओर देखकर उन्हें छोड़ दिया। बाण भगवान् शंकरके हृदयमें जा लगे। उनकी समाधि टूट गयी और वे जाग उठे। इससे

उनके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने आँखें खोलकर सब ओर देखा। आमके पत्तोंमें छिपे हुए कामदेवपर उनकी दृष्टि पड़ गयी। शिवजीने जैसे ही अपना तीसरा नेत्र खोला, कामदेव जलकर भस्म हो गया। जगत्‌में हाहाकार मच गया। कामदेवकी स्त्री रति अपने पतिकी यह दशा सुनकर मूर्च्छित हो गयी। वह रोती, चिल्लाती और करुण विलाप करती हुई शिवजीकी शरणमें गयी। आशुतोष शिव अबलाकी करुण पुकार सुनकर पिघल गये और बोले—'रति! तुम्हारा पति मरा नहीं है, केवल उसका शरीर जल गया है। अब वह बिना शरीरके ही सबमें व्याप्त हो सकेगा। अबसे उसका नाम 'अनङ्ग' होगा। जब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुवंशमें श्रीकृष्णका अवतार होगा, उस समय तुम्हारा पति उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न होगा। तभीसे उसे अपने खोये हुए शरीरकी भी प्राप्ति हो जायगी।' यह सुनकर रति लौट गयी। इसी समय गिरिराज हिमालयने वहाँ पहुँचकर अपनी कन्याको गोदमें उठा लिया और सखियोंसहित उसे घर ले आये। शंकरजीकी भक्ति और दृढ़तासे संतुष्ट होकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें दर्शन दिया और पार्वतीजीसे विवाह करनेको विवश किया। शिवने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।[1]

घर आनेपर पार्वतीजीने भगवान् शिवकी प्राप्तिके लिये घोर तपस्या करनेका निश्चय किया। उन्होंने अपना यह विचार माता-पितापर भी प्रकट किया। हिमवान्‌को तो यह अभीष्ट ही था; किंतु माताका कोमल हृदय इसे सहन न कर सका। उसने सोचा, 'मेरी सुकुमारी कन्या इन कोमल अङ्गोंसे तपस्याका कष्ट कैसे सह सकेगी।' इस विचारसे उसका हृदय भर आया, नेत्रोंमें आँसू छलक आये। मैनाने पार्वतीको छातीसे लगा लिया और कहा—बेटी 'उ'……'मा' (ऐसा न कर); तभीसे पार्वतीका नाम 'उमा' पड़ गया। माता-पिताको हर तरहसे समझा-बुझाकर पार्वतीजी बड़े हर्षके साथ तपस्या करनेके लिये चलीं। हिमालयके एक सुन्दर शिखरपर पार्वतीने घोर तपस्या आरम्भ की। उनका सुकुमार शरीर तपके योग्य नहीं था, तो भी शिवके चरणोंका चिन्तन करके उन्होंने सब भोग छोड़ दिये। स्वामीके चरणोंमें नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा और तपमें ऐसा मन लगा कि शरीरकी सुध-बुध बिसर गयी।

इस प्रकार रात-दिन कठोर तपस्याके द्वारा अपने सुकोमल अङ्गोंको सुखाकर पार्वतीने कठोर शरीरवाले तपस्वियोंको भी लज्जित कर दिया। इसी बीचमें पार्वतीके आश्रमपर एक तेजस्वी ब्रह्मचारी आया। उसका शरीर
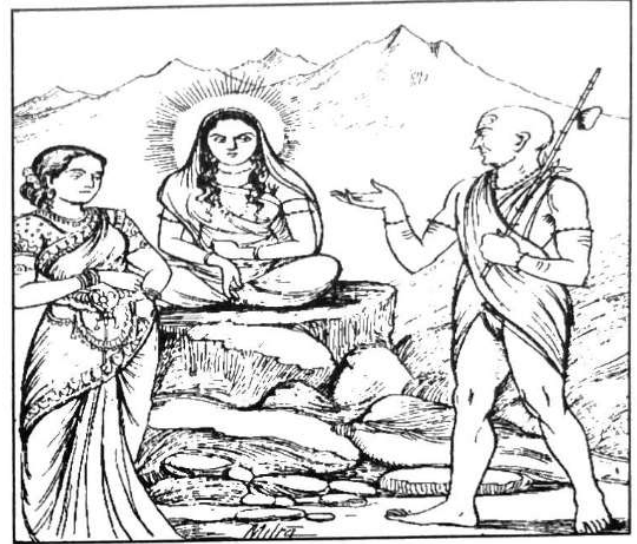
ब्रह्मचर्यके दिव्य तेजसे प्रकाशित हो रहा था। अतिथिका सत्कार करनेवाली देवी पार्वतीने बड़े आदरसे आगे बढ़कर ब्रह्मचारीका विधिवत् पूजन किया। ब्रह्मचारीने उनकी पूजा ग्रहण करके पलभर अपनी थकावट मिटायी; फिर पार्वतीकी तपश्चर्याकी महान् प्रशंसा करते हुए तपका उद्देश्य जानना चाहा। ब्रह्मचारीने ऐसे ढंगसे बातें कहीं, मानो उसने पार्वतीके हृदयमें पैठकर सब बातें जान ली हों। उन्हें सुनकर पार्वती ऐसी लजा गयीं कि अपने मनकी बात मुँहसे न निकाल सकीं, अतः उन्होंने सखीकी ओर देखकर उसे कहनेके लिये संकेत किया। तब पार्वतीजीकी सखीने ब्रह्मचारीको बड़े मधुर शब्दोंमें पार्वतीकी मानस स्थितिका वर्णन करते हुए यह बता दिया कि ये पिनाकपाणि श्रीमहादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तप कर रही हैं। इसपर ब्रह्मचारीने अपनी अरुचि व्यक्त करते हुए महादेवजीके अशुभ वेषका वर्णन करके उनकी निन्दा की

१-सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

और अन्तमें कहा कि 'मेरे विचारसे तुम्हें अपने मनको इस अनुचित आग्रहसे हटा लेना चाहिये। कहाँ तुम और कहाँ वह। दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है।'

ब्रह्मचारीकी ऐसी उलटी-सीधी बातें सुनकर पार्वतीके ओठ क्रोधसे काँपने लगे, भौंहें तन गयीं और आँखें लाल हो गयीं। उन्होंने ब्रह्मचारीकी ओर आँखें तरेरकर देखा और कहा—'निश्चय ही महादेवजीके वास्तविक स्वरूपको तुम नहीं जानते, तभी तुम्हारे मुँहसे ऐसी बातें निकली हैं। मूर्ख लोग महात्मा पुरुषोंके उस अलौकिक चरित्रकी निन्दा ही करते हैं, जिसके रहस्यको जानने या समझनेकी उनमें क्षमता नहीं होती। जो लोग अपने ऊपर आयी हुई विपत्ति दूर करना चाहते हैं अथवा धनके लिये उत्सुक रहते हैं, वे ही ढूँढ़-ढूँढ़कर माङ्गलिक कही जानेवाली वस्तुओंका सेवन करते हैं; परंतु जो सम्पूर्ण जगत्को शरण देनेवाले हैं, जिनके मनमें कोई इच्छा ही नहीं है, उन महेश्वरको ऐसी वस्तुओंसे क्या लेना है? कहते हो उनके पास कुछ नहीं है, वे श्मशानमें घूमते हैं और उनका रूप भयंकर है; किंतु सच बात यह है कि अकिंचन होते हुए भी वे ही सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। श्मशानमें विचरनेवाले होकर भी वे तीनों लोकोंके रक्षक हैं; भयानक रूपवाले होनेपर भी वे ही शिव (कल्याणकारी) कहलाते हैं। पिनाकपाणि महादेवजीके यथार्थ स्वरूपको जाननेवाले इस संसारमें नहीं हैं। वे सुन्दर आभूषण पहने या साँप लपेटे रहें। हाथीकी खाल ओढ़ें अथवा स्वच्छ वस्त्र धारण करें। हाथमें कपाल लिये हों अथवा माथेपर चन्द्रमाका मुकुट सजाये हों; संसारमें जितने भी रूप हैं, सब उन्हींके हैं; अत: उनका रूप ऐसा है, ऐसा नहीं है, इस बातका निश्चय नहीं किया जा सकता। जिन्हें तुम निर्धन कहते हो, वे ही जब अपने बैलपर चढ़कर चलते हैं, उस समय मदोन्मत्त ऐरावत हाथीपर चढ़कर चलनेवाला इन्द्र भी आकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाता है और खिले हुए पारिजात पुष्पोंके परागसे उनके चरणोंकी अँगुलियोंको लाल रंगका बना देता है। तुम्हारी आत्मा अपने स्वरूपसे भ्रष्ट हो चुकी है। तुम शंकरजीके दोष ही बतलाना चाहते थे, तो भी तुम्हारे मुखसे एक बात तो उनके लिये अच्छी ही निकल गयी। अरे! जो ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेवाले हैं, उन महेश्वरके जन्म, कुल और माता-पिता आदिका पता हो ही कैसे सकता है? जो सबके माता-पिता हैं, उनके माता-पिता दूसरे कौन हो सकते हैं; अस्तु, इस विवादसे कोई लाभ नहीं, तुमने शंकरजीके बारेमें जैसा सुना है, वे वैसे ही सही; मेरा प्रेम-रसमें डूबा हुआ मन उन्हींमें रम गया है। अब उसे उनकी ओरसे हटाया नहीं जा सकता। प्रेमीका अन्त:करण प्रेमास्पदके दोषोंपर दृष्टि नहीं डालता[१]।'

इतनेमें ही पार्वतीने देखा, ब्रह्मचारी फिर कुछ कहना चाहता है, तब वे सहसा बोल उठीं—'सखी! देखो, इस ब्रह्मचारीके ओठ फड़क रहे हैं। यह पुन: कुछ कहना चाहता है, इसे रोक दो। अब यह एक शब्द भी बोलने न पाये, क्योंकि जो महात्मा पुरुषोंकी निन्दा करता है, केवल वही नहीं पापी होता; जो उसके मुँहसे सुनता है, उसे भी पापका भागी होना पड़ता है।[२] अथवा मैं ही यहाँसे उठकर

१-गोस्वामी तुलसीदासजीने भी इस प्रसंगका अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। सप्तर्षियोंने पार्वतीकी प्रेम-परीक्षा लेते समय जब महादेवजीके दोष और विष्णुके गुणोंका वर्णन करके उनका मन विष्णुकी ओर खींचनेका प्रयत्न किया तथा नारदके उपदेशको हानिकर बताकर उन्हें तपस्यासे विरत करनेकी चेष्टा की, उस समय पार्वतीने उन्हें मुँहतोड़ उत्तर देते हुए कहा था—

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम॥

(रा० च० मा० १। ८०)

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

(रा० च० मा० १। ८१। ५)

२-निवार्यतामालि किमप्ययं वटुः पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्॥

(कुमारसम्भव ५। ८३)

चली जाऊँगी।' यों कहकर उमा ज्यों ही चलनेको उद्यत हुईं, महादेवजीने अपना वास्तविक रूप प्रकट करके मुसकराते हुए उनका हाथ पकड़ लिया। अपने जीवन-निधिको सहसा सामने उपस्थित देख पार्वतीजीके शरीरमें कम्पन होने लगा। समस्त अङ्ग पसीने-पसीने हो गये। आगे चलनेको जो पैर उठ चुका था, वह जहाँ-का-तहाँ रुक गया। भगवान् शंकर बोले—'कोमलाङ्गी! आजसे मैं तपस्यासे मोल लिया हुआ तुम्हारा सेवक हूँ।' इतना सुनते ही पार्वती अनिर्वचनीय आनन्दमें डूब गयीं। तपस्यासे उन्हें जितना कष्ट हुआ था, वह सब जाता रहा। मनोवाञ्छित फल मिल जानेके कारण उनके तन-मन दोनों हरे हो गये। तदनन्तर पार्वतीने अपनी सखीके मुँहसे यह कहलाया कि 'मेरे इस शरीरके स्वामी मेरे पिता हैं; अतः आप उन्हींके पास आदेश देकर मेरा वरण करें।' 'एवमस्तु' कहकर भगवान् शंकर वहीं अन्तर्धान हो गये।

कुछ कालके बाद हिमालयके विशाल शिखरपर पार्वतीका स्वयंवर रचाया गया। उस समय सम्पूर्ण देवताओंके विमानोंसे वह स्थान खचाखच भरा हुआ था। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग और किन्नरगण मनोहर वेष बनाये वहाँ उपस्थित थे। भगवती उमा माला हाथमें लिये देवसमाजमें खड़ी हुईं। इसी समय उनकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शंकर पाँच शिखावाले बालक बनकर उनकी गोदमें आकर सो गये। देवीने ध्यानके द्वारा उन्हें पहचानकर बड़े प्रेमके साथ अङ्कमें ले लिया। पार्वतीका संकल्प शुद्ध था। वे अपना मनोवाञ्छित पति पा गयीं; अतः भगवान् शंकरको हृदयमें रखकर स्वयंवरसे लौट पड़ीं। इन्द्रने उस बालकको अपने मार्गका कण्टक माना और उसे मार डालनेके लिये वज्रको ऊपर उठाया। यह देख शिशुरूपधारी शिवने उन्हें वज्रसहित स्तम्भित कर दिया। वे अपने स्थानसे हिल भी न सके। तब भगदेवताने एक तेजस्वी शस्त्र चलाना चाहा,

किंतु उनकी भी बाँह जडवत् हो गयी। यह देख ब्रह्माजीने भगवान् शिवको पहचान लिया और देवताओंको उनकी शरणमें जानेके लिये कहा। देवता भगवान्के चरणोंमें गिर पड़े। महेश्वर प्रसन्न हो गये, फिर सब देवताओंका शरीर पूर्ववत् हो गया। तदनन्तर भगवान् शिव अपने साक्षात् स्वरूपसे प्रकट हुए। पार्वतीने अपने हाथकी माला उनके चरणोंमें चढ़ा दीं।

तत्पश्चात् भगवान् शंकर और पार्वतीका विवाह बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। वरपक्षकी ओरसे ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता बारात लेकर आये थे, हिमवान्ने सबका बड़े प्रेमसे स्वागत-सत्कार किया। तदनन्तर विदाईका समय आया। उस समय प्रेम और करुणाका समुद्र उमड़ पड़ा। सबके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। माताने अपनी लाड़िली पुत्रीको गोदमें बिठाकर शिक्षा दी—'बेटी! तू सदा शिवजीके चरणोंकी पूजा करना। नारियोंका यही धर्म है। उनके लिये पति ही देवता है और कोई देवता नहीं है[१]।' इतना कहते-कहते माताके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उन्होंने कन्याको छातीसे चिपका लिया। उसके बाद पार्वती सबसे मिल-जुलकर विदा हुईं। हिमवान्ने सब बरातियोंको भी

१-करेहु सदा संकर पद पूजा। नारिधरमु पति देउ न दूजा॥ (रा०च०मा० १। १०२। ३)

आदरपूर्वक विदा किया।

कैलास पहुँचकर युगोंके बाद दो अनादि दम्पतियोंका पुनर्मिलन हुआ। वे सदासे ही एक प्राण—एक आत्मा थे और पुनः उसी प्रकार रहने लगे। फिर पार्वतीसे छः मुखोंवाले स्कन्द उत्पन्न हुए। छहों कृत्तिकाएँ भी इन्हें पुत्र मानती थीं, इसीसे इनका नाम 'कार्तिकेय' भी है। इन्होंने तारकासुरको मारकर देवताओंको निर्भय किया। देवसेनाके अध्यक्ष-पदपर अभिषिक्त होनेसे इनका नाम 'सेनानी' भी हो गया। पार्वतीजीके दूसरे पुत्र 'गणेश' हैं। ये अनादि देवता माने गये हैं। इनकी उत्पत्तिका वृत्तान्त विभिन्न पुराणोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका मिलता है। एक समयकी बात है, पार्वतीजीने स्नान करनेसे पहले अपने शरीरमें उबटन लगवाया। उससे जो मैल गिरी, उसको हाथमें लेकर देवीने कौतूहलवश एक बालककी प्रतिमा बनायी। वह प्रतिमा बड़ी सुन्दर बन गयी। ऐसा जान पड़ा, मानो कोई सुन्दर बालक सो रहा है। यह देख उन्होंने उसमें अपनी शक्तिसे प्राण-संचार कर दिया। बालक सजीव हो उठा और बोला, 'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' देवीने कहा—'तुम हाथमें शस्त्र लेकर इस स्थानपर पहरा दो; मैं स्नानके लिये जाती हूँ। जबतक स्नान करके लौट न आऊँ, तबतक किसीको अंदर न आने देना।' यों कहकर उमादेवी स्नानके लिये चली गयीं और बालक पहरा देने लगा। कुछ ही देरमें भगवान् शिव आये और घरके भीतर प्रवेश करने लगे। बालकने उन्हें रोका; फिर तो उन दोनोंमें भयंकर संग्राम छिड़ गया। शिवने त्रिशूलसे बालकका मस्तक काट गिराया। यह देख पार्वती धरतीपर लोटकर करुणक्रन्दन करने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। भगवान् शिव बालकको जीवित करनेकी इच्छासे इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे, किंतु उसका कटा हुआ मस्तक कहीं नहीं मिला। इतनेमें उनकी दृष्टि गजासुरपर पड़ी। उन्होंने तुरंत उस दैत्यका मस्तक काटकर हाथमें ले लिया और उस बालकके धड़से जोड़ दिया। बालक जी उठा। तबसे उसका नाम 'गजानन' पड़ा। ये गजानन ही अनादि सिद्ध गणेशके मूर्तिमान् स्वरूप हुए। इन्होंने भगवन्नामके प्रभावसे समस्त

देवादि गणोंका अध्यक्षत्व प्राप्त किया है।

एक बार पार्वतीदेवी कैलासके समीप बहनेवाली गङ्गाजीके तटपर स्नान करने गयीं। उस समय वहाँ सम्पूर्ण देवता देवीकी स्तुति कर रहे थे। पार्वतीने पूछा, 'आप लोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' इतनेहीमें उन्हींके शरीरसे एक कल्याणमयी देवी प्रकट हुईं और बोलीं—'ये देवता शुम्भ और निशुम्भ नामक दैत्योंसे पराजित और पीडित होकर यहाँ एकत्रित हुए हैं और मेरी ही स्तुति करते हैं।' वे अम्बिकादेवी पार्वतीजीके ही शरीरकोशसे प्रकट हुई थीं; इसलिये उन्हें 'कौशिकी' कहते हैं। कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीजीका शरीर काले रंगका हो गया; अतः वे हिमालय-निवासिनी 'कालिकादेवी' के नामसे विख्यात हुईं। इस प्रकार उनके दो रूप हो गये, 'गौरी' और 'काली'। इन दोनों ही रूपोंसे उन्होंने धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ और शुम्भ आदि बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करके सम्पूर्ण जगत्का कल्याण किया। वे कौशिकीदेवी ही 'महासरस्वती' के नामसे प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार पार्वती देवीने अन्यान्य भक्तोंको भी अपनी कृपासे ही अनुगृहीत किया था। हैहयराज कार्तवीर्य अर्जुनपर कृपा करनेवाली आदिशक्ति महामायादेवी ये ही हैं।

एक समयकी बात है, देवता असुरोंपर विजय पाकर अभिमानसे फूल उठे और ऐसा मानने लगे कि हमने अपनी ही शक्तिसे विजय पायी है। इतनेहीमें एक तेजस्वी यक्ष प्रकट हुआ। 'वह कौन है?' इसका पता लगानेके लिये क्रमशः अग्नि और वायु गये। यक्षने उनके सामने एक तिनका रख दिया, उसे वे अपनी सारी शक्ति लगाकर भी न जला सके, न उड़ा सके। अन्तमें इन्द्र गये। यक्ष अन्तर्धान हो गया। उसकी जगह पार्वतीजी खड़ी थीं; उन्होंने बताया, 'वह ब्रह्म था। उसीकी शक्तिसे तुमने विजय पायी है।' देवताओंका अभिमान दूर हो गया। इस प्रकार सबसे पहले ब्रह्मविद्यारूपा उमासे ही ब्रह्मका ज्ञान हुआ। (यह प्रसंग केनोपनिषद्में आया है।)

एक बार देवदेव महेश्वरके पूछनेपर गङ्गा आदि पवित्र नदियोंके सामने पतिव्रताशिरोमणि श्रीपार्वती—उमाने स्त्रीधर्मका वर्णन करते हुए कहा—

नारी-धर्म

'देवि! मुझे स्त्रियोंके धर्मका जैसा ज्ञान है, उसके अनुसार उसका विधिवत् वर्णन करती हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो—विवाहके समय कन्याके भाई-बन्धु पहले ही उसे स्त्री-धर्मका उपदेश कर देते हैं जब कि वह अग्निके समीप अपने पतिकी सहधर्मिणी बनती है। जिसके स्वभाव, बातचीत और आचरण उत्तम हों, जिसको देखनेसे भी पतिको सुख मिलता हो, जो अपने पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषमें मन नहीं लगाती और स्वामीके समक्ष सदा प्रसन्नमुख बनी रहती है, वह स्त्री धर्माचरण करनेवाली मानी गयी है। जो साध्वी स्त्री अपने स्वामीको सदा देव-तुल्य समझती है, वही धर्मपरायण और वही धर्मके फलकी भागिनी होती है। जो पतिकी देवताके समान सेवा-शुश्रूषा और परिचर्या करती, पतिके सिवा और किसीसे हार्दिक प्रेम नहीं करती, कभी रंज नहीं होती तथा उत्तम व्रतका पालन करती है, पुत्रके मुखकी भाँति स्वामीके मुखकी ओर सदा निहारती रहती है और नियमित आहारका सेवन करती है, वह साध्वी स्त्री धर्मचारिणी है। 'पति और पत्नीको एक साथ रहकर धर्मका आचरण करना चाहिये।' इस मङ्गलमय दाम्पत्यधर्मको सुनकर जो स्त्री धर्म-परायण हो जाती है, वह पतिके समान व्रतका पालन करनेवाली (पतिव्रता) है। साध्वी स्त्री सदा अपने पतिको देवताके समान देखती है। पति और पत्नीका यह सहधर्म (साथ-साथ रहकर धर्माचरण करना)-रूप धर्म परम मङ्गलमय है। जो अपने हृदयके अनुरागके कारण स्वामीके अधीन रहती है, अपने चित्तको प्रसन्न रखती है, उत्तम व्रतका पालन करती है और देखनेमें सुखदायक—सुन्दर वेष धारण किये रहती है, जिसका चित्त अपने पतिके सिवा और किसीका चिन्तन नहीं करता, वह प्रसन्नवदन रहनेवाली स्त्री धर्मचारिणी मानी गयी है। जो स्वामीके कठोर वचन कहने या क्रूरदृष्टिसे देखनेपर भी प्रसन्नतासे मुसकराती रहती है, वही स्त्री पतिव्रता है। पतिके सिवा दूसरे किसी पुरुषकी ओर देखना तो दूर रहा, जो पुरुषके समान नाम धारण करनेवाले चन्द्रमा, सूर्य और किसी वृक्षकी ओर भी दृष्टि नहीं डालती, वही पतिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। जो नारी अपने दरिद्र, रोगी, दीन अथवा रास्तेकी थकावटसे खिन्न हुए पतिकी पुत्रके समान सेवा करती है, उसीको धर्मका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो स्त्री अपने हृदयको शुद्ध रखती, गृहकार्य करनेमें कुशल होती, पतिसे प्रेम करती और पतिको ही अपने प्राण समझती है, वही धर्मका फल पानेकी अधिकारिणी होती है। जो प्रसन्नचित्तसे पतिकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती है, पतिके ऊपर पूर्ण विश्वास रखती है और उसके साथ विनययुक्त बर्ताव करती है, वह नारी-धर्मका फल पाती है। जिसके हृदयमें पतिके लिये जैसी चाह होती है, वैसी काम, भोग, ऐश्वर्य और सुखके लिये नहीं होती, जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठनेमें रुचि रखती, गृहके काम-काजमें योग देती और घरको झाड़-बुहारकर उसे गायके गोबरसे लीप-पोतकर स्वच्छ बनाये रखती है, जो पतिके साथ रहकर नित्य अग्निहोत्र करती, देवताओंको पुष्प और बलि अर्पण करती तथा देवता, अतिथि और सास-ससुर आदि पोष्य-वर्गको भोजन देकर न्याय और विधिके अनुसार शेष अन्नका स्वयं भोजन करती है

तथा घरके लोगोंको हृष्ट-पुष्ट एवं संतुष्ट रखती है, वही नारी-धर्मका पालन करनेवाली है। जो उत्तम गुणोंसे युक्त होकर सदा सास-ससुरके चरणोंकी सेवामें संलग्न रहती और माता-पिताके प्रति भक्ति रखती है, वह स्त्री तपस्विनी मानी गयी है। जो ब्राह्मणों, दुर्बलों, अनाथों, दीनों, अंधों और कंगालोंको अन्न देकर उनका पालन-पोषण करती है, उसे पतिव्रत-धर्मका फल प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन उत्तम व्रतका पालन करती, पतिमें ही मन लगाती और निरन्तर पतिके हित-साधनमें लगी रहती है, उसे पतिव्रता समझना चाहिये। जो नारी पतिव्रत-धर्मका पालन करती हुई स्वामीकी सेवामें तत्पर रहती है, उसका यह कार्य महान् पुण्य, बड़ी भारी तपस्या और अक्षय स्वर्गका साधन है। पति ही स्त्रियोंका देवता, पति ही उनका बन्धु-बान्धव और पति ही उनकी गति है। नारीके लिये पतिके समान न दूसरा कोई सहारा है, न दूसरा कोई देवता। एक ओर पतिकी प्रसन्नता और दूसरी ओर स्वर्ग; ये दोनों नारीकी दृष्टिमें समान हो सकते हैं या नहीं, इसमें संदेह है। मेरे प्राणनाथ महेश्वर! मैं तो आपको अप्रसन्न रखकर स्वर्गको भी नहीं चाहती। पति दरिद्र हो जाय, किसी रोगसे घिर जाय, आपत्तिमें फँस जाय, शत्रुओंके बीचमें पड़ जाय अथवा ब्राह्मणके शापसे कष्ट पा रहा हो और उस अवस्थामें वह न करने योग्य कार्य, अधर्म अथवा प्राण त्याग देनेकी भी आज्ञा दे तो उसे आपत्तिकालका धर्म समझकर नि:शंक भावसे तुरंत पूरा करना चाहिये। भगवन्! आपकी आज्ञासे मैंने यह स्त्री-धर्मका वर्णन किया है। जो स्त्री ऊपर बताये धर्मके अनुसार अपना जीवन बनाती है, वह पातिव्रत्य-धर्मके फलकी भागिनी होती है।'

पार्वतीजी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। भगवती सीताको इन्हींकी आराधनासे श्रीरघुनाथजीकी प्राप्ति हुई थी। ये महादेवजीको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। इन्हींके अनुरोधसे महादेवजीने अनेकानेक उपयोगी तथा गुप्त साधनोंका वर्णन किया है, जो भिन्न-भिन्न पुराणों, तन्त्रों, आगमों तथा गुरुपरम्परासे उपलब्ध होते हैं। बहुत-से मन्त्रोंका प्राकट्य भी इन्हींकी दयासे हुआ है। भगवान्‌के बहुत-से शतनाम, सहस्रनाम तथा अन्य स्तोत्र, व्रत आदि माहात्म्यसहित इन्हींके प्रयत्नसे प्रकट हुए हैं। इस प्रकार इनके द्वारा लोककल्याणके असंख्य कार्य हुए हैं।

भगवान् सदाशिवने पराम्बा—भगवती पार्वतीको ही सर्वप्रथम अमर कथाका श्रवण कराया था। गौरीशंकरकी मङ्गलमयी विवाह-लीला-कथाका पठन-श्रवण-मनन और चिन्तन सबके लिये कल्याणकारी है।

भगवान् शंकरका शाश्वत नृत्य

भगवान् शंकरको पुराणोंमें 'रुद्र' कहा गया है; क्योंकि वे प्रत्याहारके, प्रलयके आकर्षण हैं। वे परम नर्तक, महान् नटराज भी हैं। भगवान् शंकरका नृत्य शाश्वत है; क्योंकि उनमें कल्याणकी मङ्गलमयी अनुभूति भी शाश्वत है। यह विश्व ही उनकी नृत्यशाला है। संसारमें अणु-परमाणुसे लेकर बड़ी-से-बड़ी शक्तिमें जो स्पन्दन दिखलायी पड़ता है, वह उनके नृत्य एवं नादका ही परिणाम है। स्वयं भगवान् शंकरने स्वीकार किया है—

नित्यमात्तकरणक्रमोन्मिषच्चित्रभावशतसन्निवेशिनीः।
निष्क्रियो निजमरीचिनर्तकीर्नर्तयामि परनृत्तदेशिकः॥

अर्थात्, मैं सबसे उत्तम नाट्यका आचार्य निष्क्रिय होकर अपनी करणेश्वरीरूपी नटियोंको नचाता हूँ, ये इन्द्रियदेवियाँ सदैव अपने वृत्तिक्रमके प्रत्याहरणसे उदय होनेवाले अद्भुत और भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंके सन्निवेशवाली हैं।

नृत्यसे भगवान् शंकर ब्रह्माण्डमें गति लाते हैं और जीव-निर्जीवकी सृष्टि करते हैं। उनके नृत्यकी गति है उपरति, निवृत्ति, समाधि, प्रलयकी ओर—अर्थात् अन्तरतमकी, ऊर्ध्वतमकी ओर। उनका नृत्य भयंकर है, लेकिन शिवत्वसे शून्य नहीं। वे ब्रह्माण्डका कभी भी विनाश नहीं चाहते। वे तो स्रष्टा हैं, पालक हैं, कल्याण करनेवाले हैं। उन्हें संहार कदापि प्रिय नहीं; लेकिन जब पाप अपनी चरम स्थितिको प्राप्त कर लेता है तो उनका नर्तन विवश होकर प्रलयंकारी रूप ग्रहण कर लेता है, परंतु शिवकी यह क्रिया भी नि:संदेह जगत्‌की रक्षाके लिये ही होती है—

जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता।

पुष्पदन्तने लिखा है—'नर्तनके समय शंकरके पदाघातसे

पृथ्वी डोलने लगती है। परिधिकी तरह परिपुष्ट भुजाओंके घूमनेसे आकाश संत्रस्त हो उठता है। लेकिन उस समय भी शंकरके मनमें संहारकी नहीं, निर्माणकी भावना ही होती है।'

शंकरका नृत्य यथार्थमें ईशकी पञ्चक्रियाओं (सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव और अनुग्रह)-का द्योतक है। अलग-अलग ये क्रियाएँ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर और सदाशिवकी क्रियाएँ हैं। इन समस्त क्रियाओंकी निष्पत्ति शिवसे है—यही नटराजकी प्रतिमाका संकेत है।

भगवान् शिवका 'नटराज-नृत्य' उनके महिमामय स्वरूप और अमित ऐश्वर्यकी अभिव्यक्ति करता हुआ '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' का अमर संदेश देता-सा प्रतीत होता है। नटराजके रूपमें शिवकी कल्पना भारतीय संस्कृति और धर्मकी एक ऐसी समन्वयात्मक विशेषता है, जिसका दूसरा उदाहरण अन्यत्र उपलब्ध नहीं। चतुर्भुज नटराजके एक हाथमें रजोगुणका प्रतीक डमरू है, जो द्यावा, पृथ्वी, अनन्तलोक और जीव-जगत्‌की सृष्टि करता है और उनके दूसरे हाथमें है तमोगुणकी प्रतीक अग्नि, जिससे वे उन बन्धनोंका संहार करते हैं जो मानवात्माको बाँधे रहते हैं। भूमिपर आरोपित एक चरणसे वे माया, मोह और अविद्याको दबाये रहते हैं और उठे हुए दूसरे पैरसे संकटोंसे त्रस्त प्राणियोंको मुक्ति देते हैं। कटिवस्त्र दिक्‌का प्रतीक है और भुजाओंपर लिपटा हुआ सर्प कालका प्रतीक है।

'अशुभदभेदागम'में नटराजके चारों हाथोंका वर्णन यों किया गया है—नटराजकी मूर्ति उत्तम दशतालमें बनती है। नटराज-मूर्तिका सामनेका बायाँ हाथ दण्डहस्त या गजहस्त मुद्रामें होकर उत्थित वामपादकी ओर संकेत करता है। दूसरे वामहस्तमें पञ्चस्फुलिङ्गयुक्त अग्नि रहती है। सामनेका हाथ वरद मुद्रामें होता है, पीछेके दाहिने हाथमें डमरू होता है। डमरूका विशद और अद्भुत वर्णन पुराणों एवं अन्य ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है। संस्कृतके प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिके कथनानुसार, भगवान् शंकरके नृत्य करते समय उनके डमरूके घोषसे जो 'अ इ उ ण..............' इत्यादि चौदह वर्ण निकले, उन्हें सनकादि ऋषियोंने संगृहीत किया और उसीसे संस्कृत भाषाकी उत्पत्ति हुई—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥

शिवकी जटा-लटाएँ पाँचसे तेरहतक दिखलायी गयी हैं। जटाओंमें नर-कपाल और चन्द्रमा भी दिखाये गये हैं जो अमृत-तत्त्वके प्रतीक हैं। इसके अतिरिक्त धर्मकी प्रतीक गङ्गाका स्रोत-स्थान भी उनकी जटाएँ ही हैं। उनकी लंबी जटाएँ वैसे सदा बँधी रहती हैं, लेकिन युगान्तरोंमें (जब पापिनी और आसुरी शक्तियोंसे विश्व त्रस्त हो उठता है) एकाध बार सृष्टिके त्राणके लिये खुलती हैं।

यद्यपि ब्रह्माण्ड नटराजकी नाट्यशाला है, लेकिन उनकी व्याप्ति अनन्त है। आकाश उनका शरीर है। आठों दिशाएँ उनकी भुजाएँ हैं। तीनों ज्योति (सूर्य, चन्द्र अग्नि) उनके तीन नेत्र हैं। शिवका प्रथम नेत्र धरातल, द्वितीय आकाश, तृतीय बुद्धिके अधिदैव सूर्य एवं ज्ञानाग्निका सूचक है। इसी तृतीय नेत्रके खुलनेसे काम भस्म हो गया था। शिवकी निर्निमेष तापस ऊर्ध्व दृष्टि कुटिलको सरल बनाती है, अस्पष्टको स्फुट करती है और द्विधाको तिरोहित कर स्थैर्य और निश्चितता प्रदान करती है।

नटराज सर्वाङ्गमें विभूतिसे अनुलिप्त-आच्छन्न रहते हैं। भस्म मौलिक तत्त्व है, इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। शिवपुराणमें तो यहाँतक कहा गया है कि भस्मसे ही शंकरजी सृष्टिकी रचना करते हैं। नटराजकी कुछ प्रतिमाएँ त्रिशूलधारी हैं। त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखोंका सूचक है। त्रिशूल ही उनका परम प्रिय अस्त्र है।

नटराज-स्वरूपकी कथा

भगवान् शिव तो आशुतोष हैं, वे किसीका अकल्याण नहीं चाहते, फिर उन्होंने नटराज-स्वरूप क्यों ग्रहण किया? इस सम्बन्धमें दक्षिणमें बहुत-सी कथाएँ प्रचलित हैं। सर्वमान्य और सर्वाधिक प्रसिद्ध कथा यह है कि तारगम नामक एक निर्जन स्थानमें कुछ मीमांसक अभिमानी ऋषिगण निवास करते थे और वहाँके लोगोंको अपने स्वार्थोंकी सिद्धि-हेतु तंग किया करते थे। उनका मिथ्याभिमान चूर करनेके लिये वहाँकी जनताने शिवाराधना की। फलतः ऋषियोंके समक्ष भगवान् शिव गये, परंतु अभिमानी ऋषियोंने उन्हें वहाँ देखकर उनका सम्मान न किया और उलटे उनके प्रति क्रोध प्रकट किया। अभिमानी ऋषियोंने वाराहको भगवान्‌पर आक्रमण करनेका आदेश दिया। भयानक गुर्राहटके साथ वह शिवजीपर टूटा; परंतु अमित बलशाली

भगवान्ने उसे पकड़कर एक छिंगुलीमात्रसे उसकी खाल उधेड़ डाली और उसे पहन लिया। ये देखकर ऋषिगण आगबबूला हो उठे और भयंकर विषधर नागको शिवजीकी ओर फेंका, परंतु ज्यों ही वह शिवजीके पास पहुँचा, उन्होंने उसे गलेमें मालावत् लपेट लिया। क्रोध और अभिमानमें पागल ऋषियोंने अपने मन्त्रबलसे वहाँ एक राक्षस पैदा किया। वह राक्षस भीषण गर्जना करता हुआ भगवान् शंकरकी ओर दौड़ा, किंतु महिमामय भगवान्ने उसे पकड़कर पैरोंसे रौंद डाला और उसके शवपर खड़े होकर नृत्य करने लगे। यही भगवान् शिवके नटराज-स्वरूपके प्राकट्यकी कथा है।

शंकर और शक्ति

शंकर कभी अकेले नृत्य नहीं करते, नृत्यके समय उनकी अर्धाङ्गभूता शक्ति (गौरी) उनके साथ रहती हैं। 'प्रदोषस्तोत्र' में लिखा है—

कैलासभवने त्रिजगज्जनित्रीं
गौरीं निवेश्य कनकशैलाचितरत्नपीठे।
नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ
देवाः प्रदोषसमये नु भजन्ति सर्वे॥

लेकिन शंकरका यह अनादि और अनन्त नृत्य केवल उन्हींको दिखलायी पड़ता है, जो मायासे ही नहीं, महामायासे भी ऊपर उठ चुके हैं। (श्रीअशोक महाजन)

लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्रजीकी शिवोपासना

लीला-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी आठ पटरानियाँ थीं। उनमेंसे जाम्बवतीको एक भी पुत्र नहीं था। उन्होंने एक बार श्रीकृष्णजीसे प्रार्थना की कि 'हे देव! मुझे एक भी पुत्र नहीं है, इसलिये मैं बड़ी चिन्तित रहती हूँ। आपने भगवान् शंकरकी आराधना करके रुक्मिणीके आठ पुत्र उत्पन्न किये। इसी प्रकार आप मेरे लिये भी शंकरजीकी आराधना कीजिये। हे प्रभो! आपके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। आप अपने समान पुत्र देकर मुझे कृतार्थ एवं चिन्तारहित कीजिये।'

जाम्बवतीकी प्रार्थना सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण गरुडपर आरूढ हो हिमालय पर्वतकी ओर चल पड़े। वहाँ वे एक आश्रममें उतर गये। उस आश्रमकी शोभा विचित्र थी। धव, कदम्ब, नारिकेल, केतक, जम्बु, वट, बिल्व, सरल, कपित्थ, प्रियाल, साल तथा तमाल आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे वह आश्रम एकदम हरा-भरा हो रहा था। भिन्न-भिन्न प्रकारके विहंग सुस्वाद और सुपक्व फलोंके लोभसे उनपर मँडरा रहे थे। मृग, वानर, शार्दूल, सिंह, व्याघ्र, महिष, ऋक्ष आदि अनेक श्वापदोंसे उसमें एक विचित्र रमणीयता दृष्टिगोचर हो रही थी।

देवियोंके गीतसे, धाराके निनादोंसे, विहंगमोंके कलरवसे, मत्त-मतंगजोंके गर्जनसे, किंनरोंके मनोहर गानसे और सामवेदकी रमणीय ध्वनिसे वह आश्रम कर्णप्रिय शब्दोंसे गुंजायमान हो रहा था।

वहाँपर असंख्य मुनि तपस्या कर रहे थे। कोई केवल वायु पीकर जीवन-निर्वाह करते थे, तो कोई केवल जल पीकर अपने शरीरकी रक्षा कर रहे थे और कोई दो-चार घूँट दूध पीकर अपने पाञ्चभौतिक शरीरका पोषण कर रहे थे। वे सब केवल चीर अथवा वल्कल धारण किये हुए कठिन व्रतका पालन कर रहे थे और अपने जीवन-लाभका पूर्ण फल पा रहे थे।

भगवान् श्रीकृष्ण भी उसी परम पुनीत वनके एक रुचिर प्रदेशमें महर्षि उपमन्युकी दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे। उन्होंने दण्ड और मेखला धारण कर लिया। हाथमें कुशा ले लिया। मुण्डन करा लिया। एक शिवलिङ्ग स्थापित करके उनकी प्रतिदिन षोडशोपचारसे पूजा करते हुए घोर तप करने लगे। प्रारम्भमें उन्होंने एक महीनेतक केवल फल खाया। दूसरे महीनेमें केवल जल पीकर निर्वाह किया। तीसरे तथा चौथे और पाँचवें महीनेमें केवल वायु पीकर समय बिताया। ऊपरकी ओर बाँह उठाये हुए एक पैरपर खड़े हो वे पाँच महीनोंतक 'पञ्चाक्षर-मन्त्र' का एकाग्रचित्तसे जप करते रहे। एक दिन शिवार्चन करके वे आकाशकी ओर देखते हुए भगवान् शंकरका ध्यान कर रहे थे। उसी समय आकाशमें सहस्र सूर्यके समान एक देदीप्यमान तेज दृष्टिगोचर हुआ। उस तेजके मध्यमें जगन्माता पार्वतीसमेत भगवान् शंकर विराजमान थे। महादेवजी किरीटसे सुशोभित हो रहे थे, त्रिशूल हाथमें लिये हुए थे, व्याघ्रचर्म अपने

शरीरमें लपेटे हुए थे, नागका यज्ञोपवीत पहने हुए थे और अनेक वर्णके दिव्य पुष्पोंकी माला घुटनोंतक लटकती हुई अपूर्व शोभा दे रही थी। प्रमथ आदि गण उनके आस-पास विद्यमान थे। सभी देवता, सभी मुनि तथा सभी विद्याधर हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे थे।

उनके तेजसे भगवान् श्रीकृष्णकी आँखें बंद हो गयीं और वे हाथ जोड़े खड़े रह गये। उसी समय श्रीशिवजीने समीप आकर कहा कि 'हे श्रीकृष्ण! आप मेरे बड़े प्यारे हैं, आपने मेरी सैकड़ों बार आराधना की है। मैं आपसे बहुत प्रसन्न हूँ।' तब भगवान् श्रीकृष्णने उनको आदरसहित नमस्कार कर इस स्तोत्रसे स्तुति करना प्रारम्भ किया—

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वामृषयो वदन्ति।
तपश्च सत्त्वं च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यं च वदन्ति सन्तः॥
त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः॥
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं
ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः।
ये देवसंस्थास्तवदेवताश्च
तस्मात् परं त्वामृषयो वदन्ति॥
वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको हविः।
यज्ञोपगं च यत् किंचिद् भगवांस्तदसंशयम्॥
इष्टं दत्तमधीतं च व्रतानि नियमाश्च ये।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी॥
कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः।
आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव॥
कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम्।
मनसः परमा योनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः॥
अव्यक्तः पावनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः।
आदिर्गणानां सर्वेषां भवान् वै जीविताश्रयः॥
महानात्मा मतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च संवित् ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः॥
पर्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते।
त्वां बुध्द्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोहं विनियच्छति॥
हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिस्तुतः।
सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः॥
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि।
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्मसु॥
त्वं वै प्रभार्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः।
अणिमा महिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः॥
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसत्त्वा जितेन्द्रियाः॥
यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं
प्रभुं पुराणं पुरुषं च विग्रहम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वां च मूर्तितः।
प्रधानविधियोगस्थस्त्वामेव विशते बुधः॥

(महाभारत, अनुशा० पर्व १४। ४०७—४२३)

इस प्रकार स्तुति करनेसे भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उसी समय भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर सुगन्धित पुष्पोंकी वर्षा होने लगी और सुखद वायु बहने लगी। श्रीशिवजीने भगवान् कृष्णसे कहा कि 'मैं आपकी भक्तिसे परम संतुष्ट हूँ। मैं आठ वर देनेके लिये तैयार हूँ, आपको जो माँगना हो माँग लीजिये।'

भगवान् श्रीकृष्णने नतमस्तक हो प्रणाम करके कहा कि 'हे महाराज! आपके दर्शनोंसे ही मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। फिर भी आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मेरी धर्ममें दृढ़ बुद्धि हो, रणमें सब शत्रुओंका विनाश हो, यशकी वृद्धि हो, अलौकिक बल प्राप्त हो, योगसाधनकी ओर प्रवृत्ति बनी रहे, आपमें अटल भक्ति हो, आपका सांनिध्य प्राप्त हो और एक सहस्र पुत्र उत्पन्न हों।'

श्रीशिवजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ ये सब वर दे दिये। तब पार्वतीजीने कृपा करके कहा कि 'हे कृष्ण!

मुझसे भी आठ वर माँग लीजिये। मैं प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रदान करूँगी।'

श्रीकृष्णने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे मात:! आप मुझे ये वर दीजिये—'मुझे कभी ब्राह्मणके ऊपर कोप करनेका अवसर प्राप्त न हो, पूज्य पितरोंकी प्रसन्नता हो, सौ लड़के हों, सांसारिक सभी भोग सदा प्राप्त रहें, मेरे कुलमें कभी आपसमें वैमनस्य न हो, माताएँ प्रसन्न रहें, हृदयमें सदा शान्ति रहे और सब भार्याओंके ऊपर मेरा समान स्नेह रहा करे।'

जगदम्बाने ये सब वर बड़ी प्रसन्नताके साथ दे दिये और कहा कि 'आपकी १६,१०८ भार्याएँ आपसे सदा प्रेम रखेंगी, आपके कुलके लोगोंमें सदा अटूट स्नेह बना रहेगा। आपके शरीरके सौन्दर्यकी वृद्धि अक्षुण्ण बनी रहेगी।'

इस प्रकार वर देकर भगवती पार्वती और भगवान् श्रीशिव अपने गणोंके साथ अन्तर्धान हो गये तथा भगवान् श्रीकृष्ण तपस्या समाप्त करके अपनी नगरीको चले गये और वहाँ सुखपूर्वक अनेक प्रकारके भोग भोगने लगे। समय आनेपर जाम्बवतीके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए और सब प्रकार आनन्द हो गया।

भगवान् शंकरकी दयासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। महाभारतमें व्यासदेवने कहा है कि शिवजीके समान संसारमें कोई देवता नहीं। वे ही समस्त सांसारिक जीवोंको सद्गति देते हैं। कल्याण और सुख देनेमें शिवजीसे बढ़कर कोई दयालु नहीं। युद्ध करनेमें भी उनसे बढ़कर कोई पराक्रमी नहीं—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे॥

(महाभारत, अनुशा० पर्व० १५। ११)

ब्रह्माजीकी शिवोपासना

प्रजापति ब्रह्मदेवने सृष्टि रचनेका परम प्रयत्न किया, परंतु उसकी वृद्धि होती हुई न दिखायी दी। तब वे बड़े ही चिन्तित हुए और अन्तमें उन्होंने विचार किया कि 'देवदेव महादेवकी शरणमें जानेसे मेरी मन:कामना सिद्ध हो सकती है; क्योंकि वे त्रैलोक्यकी रचनामें समर्थ उस शक्तिसे सम्पन्न हैं, जो सम्पूर्ण सचराचर जगत्‌का नियन्त्रण करती है। सृष्टि रचनामें मेरी सहायता करनेकी असीम शक्ति उनमें है।' ऐसा निश्चय करके ब्रह्मदेवने भगवान् त्रिलोचनके सम्मुख चिरकालतक तप किया। उनके कठिन तपको देखकर सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए और अर्ध-नर-नारीश्वरका रूप धारण कर प्रकट हुए।

अर्धाङ्गिनी पार्वतीसमेत अद्वितीय अमोघ-शक्ति, अतुलनीय-पराक्रमसम्पन्न उन परम तेज देवदेवके दर्शन पाकर ब्रह्मदेव परम प्रसन्न हुए और साष्टाङ्ग प्रणाम करके हाथ जोड़ विनयपूर्वक शिव-पार्वतीकी स्तुति करने लगे। श्रद्धा-विनयसम्पन्न सारगर्भित भावपूर्ण शब्दोंमें वे कहने लगे कि 'हे देवदेव परम पूज्य शिव! आपकी जय हो। सर्वशक्तिमान् सर्वदेवाधिपति! आपकी जय हो। हे परम शक्तिमती जगत्‌की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेमें समर्थ पार्वती! आपकी जय हो। आपकी माया अपरम्पार है। हे पार्वतीश! आपकी यथार्थ स्तुति करनेमें सहस्रमुख शेषनाग भी असमर्थ हैं, दूसरोंकी बात ही क्या?' आपकी महिमा अपार है, उसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी नहीं जान सकते। आप वाणी और मनके अगोचर हैं तथा श्रुतियाँ और स्मृतियाँ चकित होकर आपकी स्तुति करती हैं, फिर भी पार नहीं पातीं। आपका ऐश्वर्य जगत्‌की उत्पत्ति, रक्षा और प्रलय करनेमें समर्थ है। चारों वेदोंके, छहों शास्त्रोंके और अठारहों पुराणोंके प्रतिपाद्य पर-तत्त्व आप ही हैं। अभीष्ट सिद्धिके लिये सभी देवोंने और सभी मुनियोंने आपकी आराधना की और यथेप्सित वर पाकर जगत्पूज्य बन गये। यह समस्त संसार आपकी सत्तासे व्याप्त है और आपहीके प्रकाशसे प्रकाशमान है। हे परमप्रकाशस्वरूप! आप अज्ञानान्धकारमें भटकते हुए जीवोंको सूर्यके समान प्रकाश देकर सन्मार्ग दिखा देते हैं। हे महाशिव! जब-जब भक्तोंके ऊपर कष्ट आता है, तब-तब आप उनका

उद्धार करते हैं और उनका कष्ट दूर करते हैं। हे महादेवि! आपकी शक्तिसे इस संसारकी उत्पत्ति है और उसीसे इसकी रक्षा होती है तथा संहार भी उसी शक्तिसे होता है। हे महाशक्ति! प्रजाके लिये कठिन प्रयत्न करनेपर भी मुझे सफलता नहीं मिल रही है। अत: असहाय होकर मुझे आपकी शरण आना पड़ा। हे जगन्मात:! आपकी दयाके बिना सृष्टिक्रम सुचारुरूपसे नहीं चल सकता।

इस प्रकार कोमल-कान्त-पदावलीसे स्तुति करते हुए वे बारम्बार प्रणाम करने लगे। इस परम मनोहर स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकर और भगवती परमेश्वरीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा कि इस तपस्या और आराधनासे हम बहुत प्रसन्न हैं। हमें अच्छी तरह ज्ञात है कि 'प्रजा-वृद्धिके लिये यह कठिन तपस्या की गयी है'—इसलिये हम वर देते हैं कि 'तुम्हारी अभीष्ट-सिद्धि हो।' इतना कहते ही महादेवी पार्वतीके भ्रूमध्यसे उन्हींके समान कान्तिवाली एक शक्ति उत्पन्न हुई। उसको देखकर शिवजी बहुत प्रसन्न हुए और उस शक्तिसे कहने लगे कि 'तुम ब्रह्माजीकी अभीष्ट-सिद्धिमें सहायता करो।' ऐसे वचन कहकर श्रीमहादेवजी अन्तर्धान हो गये और शक्ति शिवजीके आदेशानुसार प्रजापति ब्रह्माके कथनसे दक्षकी पुत्री हुई। तदनन्तर सृष्टिका क्रम सुचारुरूपसे चलने लगा और ब्रह्माजीको परम आनन्द तथा संतोष हुआ।

शिवकृपासे दानवीर राजा बलिका प्रादुर्भाव

प्राचीन कालमें देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला एक बड़ा पातकी कितव था। वह प्रतिदिन जुआ खेलता और उससे जो कुछ धन मिलता, उसे वेश्याओंको प्रसन्न करनेमें व्यय करता। संसारमें जितने बुरे व्यसन हैं, वे सब उसमें विद्यमान थे।

एक दिन उसने अपने साथियोंको धोखा देकर जुएमें बहुत-सा धन जीत लिया। उस धनसे उसने सुन्दर गजरे, बहुमूल्य इत्र तथा सुगन्धित चन्दन खरीदे और इन सबको हाथोंमें लिये दौड़ता हुआ वेश्याके घरकी ओर चला। रास्तेमें उसे जोरकी ठोकर लगी और वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही उसे मूर्च्छा आ गयी और कुछ देरतक वह उसी दशामें पड़ा रहा। उसके चन्दन, इत्र और गजरे भूमिपर गिरकर मिट्टीमें मिल गये। अब वे पदार्थ वेश्याके कामके नहीं रह गये, इसलिये उसने इन सब सुगन्धित द्रव्योंको शिवजीको चढ़ा दिया।

समय आनेपर जब उसकी मृत्यु हुई तो यमदूत उसे यमलोक ले गये। वहाँ यमराज कहने लगे कि 'रे दुष्ट! तूने बड़े-बड़े पातक किये हैं, इसलिये तुझे नरककी कठिन यातनाएँ भोगनी पड़ेंगी।' उसने हाथ जोड़कर कहा—'हे भगवन्! मैंने तो कोई भी पाप नहीं किया, आप चित्रगुप्तजीसे अच्छी तरह जाँच कराइये।'

चित्रगुप्तने खाता खोलकर देखा और कहा कि 'तुमने पाप तो असंख्य किये हैं और उन सबका फल भी तुम्हें भोगना पड़ेगा, पर तुमने शिवजीको चन्दन आदि चढ़ाये हैं, इसलिये तुम्हें आरम्भमें तीन घंटेके लिये इन्द्रपद मिलेगा।'

उसी समय ऐरावत हाथी आया और उसे इन्द्रलोक ले गया। बृहस्पतिने इन्द्रसे कहा कि 'हे महाराज! एक कितवने बिना श्रद्धाके शिवजीको गन्ध-पुष्प आदि चढ़ाये थे, उसके पुण्यसे उसे तीन घंटेके लिये इन्द्रपद मिला है। इसलिये आपको उतने समयके लिये अपना पद छोड़ देना चाहिये। देखिये, शिवजीकी बिना भक्तिकी आराधनासे भी एक महापातकी कितवको कितना भारी फल मिला। जो लोग श्रद्धा और भक्तिके साथ शिवजीकी आराधना करते हैं, उन्हें सायुज्य-मुक्ति तो मिलती ही है, बड़े-बड़े देवता भी उनके किङ्कर हो जाते हैं। शान्त-चित्तसे शिव-पूजा करनेवाले मनुष्योंको जो सुख प्राप्त होता है, वह ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंको भी नहीं मिलता। विषयलोलुप जीव इनकी आराधनाका माहात्म्य नहीं जानते।

बृहस्पतिके वचन सुनकर इन्द्र तो कहीं दूसरी जगह चले गये और कितवको इन्द्रासन मिला। उसी समय इन्द्राणी लायी गयीं, पर शिवजीकी पूजाके प्रभावसे कितवके हृदयमें सद्बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने उन्हें प्रणाम कर कहा कि 'आप मेरी माता हैं, आप अपने मन्दिरको जाइये।' तदनन्तर उसने अगस्त्यमुनिको ऐरावत हाथी, विश्वामित्रको उच्चैःश्रवा घोड़ा, वसिष्ठको कामधेनु, गालवको चिन्तामणि और कौंडिन्यको कल्पवृक्ष दे दिया। शिव-प्रीत्यर्थ उसने ऋषियोंको और भी अनेक दान दिये। इन सब दान-पुण्यके काममें तीन घंटे समाप्त हो गये और उसे फिर यमलोकको पहुँचाया गया।

इन्द्रने अपने यहाँके सब रत्नोंको समाप्त जानकर यमराजसे जाकर शिकायत की। यमराजने कितवसे कहा कि 'दान करनेका अधिकार भूलोकमें ही होता है। स्वर्गमें किसीको दान नहीं करना चाहिये। इसलिये हे मूढ! तू दण्डनीय है, तुझे नरककी दारुण यातना भोगनी पड़ेगी।'

यमराजकी बातें सुनकर चित्रगुप्तने कहा कि 'हे महाराज! इसने शिवजीके नामपर अगस्त्य आदि उत्तम ऋषियोंको इतने महार्घ्य दान दिये हैं, फिर इसे नरककी यातना क्यों भोगनी होगी? शिवके नामपर स्वर्गलोक अथवा मर्त्यलोक कहीं भी कुछ दिया जाय उसका अक्षय फल मिलता है—

शिवमुद्दिश्य यद्दत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यैर्नरैः।
तत्सर्वं त्वक्षयं विद्यान्निश्छिद्रं कर्म चोच्यते॥

(स्कन्दपुराण, माहेश्वर खं० १८। १०९)

इस कितवके जितने पाप थे, वे सब शम्भुके प्रसादसे भस्म होकर सुकृत हो गये। यमराजकी समझमें यह बात आ गयी और उन्होंने उस कितवसे क्षमा माँगी।

उसी पुण्यके प्रभावसे उस कितवका जन्म परम भागवत प्रह्लादके पुत्र महादानवीर विरोचनके घरमें पुण्यवती सुरुचिके उदरसे हुआ। विरोचन इतने बड़े दानी थे कि वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण किये हुए इन्द्रके माँगनेपर उन्होंने अपना सिरतक अपने हाथोंसे काटकर दे दिया। विरोचनका यह दान तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। आजतक कवि लोग उनके इस अपूर्व दानकी प्रशंसा करते हैं।

उन्हीं महापुरुष विरोचनके गृहमें इस कितवका जन्म हुआ और नाम रखा गया बलि। पूर्वजन्मोंके शिव-पूजनके प्रभावसे इस जन्ममें भी बलिमें दान देनेकी प्रबल प्रवृत्ति थी। दानमें वे अपना सर्वस्व देनेके लिये भी सदा तत्पर रहते थे।

देवोंका दुःख देखकर भगवान् विष्णुने जब वामनका रूप धारणकर बलिसे भिक्षा माँगी, तब उन्होंने त्रैलोक्यका राज्य और अपना आधा शरीर दानमें दे डाला। उस दानका आजतक विद्वान् लोग कीर्तन करते हैं। दानवीरोंकी जब गणना होने लगती है तो सर्वप्रथम राजा बलिका नाम लिया जाता है।

उस मिट्टीमें मिले हुए चन्दन आदिके चढ़ानेसे एक महापातकी जुआरी जगत्प्रसिद्ध राजा बलि हो गया। अतः जो लोग पूर्ण भक्ति और श्रद्धाके साथ गन्ध-पुष्प-फल आदिसे महेश्वरकी पूजा करते हैं, वे तो साक्षात् शिवके समीप पहुँच जाते हैं। शिवसे बढ़कर पूजनीय देव संसारमें दूसरे हैं नहीं। लूले, लँगड़े, अंधे, बहरे, जाति-हीन, चांडाल, श्वपच, अन्त्यज आदिमेंसे कोई भी हो, यदि शिवकी भक्ति करे तो अवश्य परमगतिको प्राप्त हो सकता है। परमार्थको जाननेवाले विद्वान् महेश्वरका सदा चिन्तन किया करते हैं। शिवकी आराधनाके बिना जितना काम किया जाता है, वह सब अशुभ होता है। इसलिये सदाशिवकी सदा पूजा करनी चाहिये। मुमुक्षुजनोंको लिङ्गरूपी महादेवकी आराधना करनी चाहिये, क्योंकि उनसे बढ़कर भुक्ति और मुक्ति देनेवाले अन्य कोई भी देवता नहीं हैं। स्कन्दपुराण (माहेश्वरखण्ड १९। ६८, ८२)-में लिखा है—

तस्मात् सदाशिवः पूज्यः सर्वैरेव मनीषिभिः।
पूजनीयो हि सम्पूज्यो ह्यर्चनीयः सदाशिवः॥
लिङ्गरूपो महादेवो ह्यर्चनीयो मुमुक्षुभिः।
शिवात् परतरो नास्ति भुक्तिमुक्तिप्रदायकः॥

पञ्चाक्षर-मन्त्रकी महिमा

'शिवोऽयं परमो देवः शक्तिरेषा तु जीवजा।' 'ॐ नमः शिवायेति याजुषमन्त्रोपासको रुद्रत्वम्प्राप्नोति। कल्याणम्प्राप्नोति। य एवं वेद।'

(त्रिपुरातापिन्युपनिषत्)

सर्वव्रतेषु सम्पूज्य देवदेवमुमापतिम्।
जपेत् पञ्चाक्षरीं विद्यां विधिनैव द्विजोत्तमाः॥

[सूतजी कहते हैं—]'हे मुनीश्वरो! समस्त व्रतोंमें देवदेव उमापति भगवान् शिवकी अर्चना करके विधिसे पञ्चाक्षरी विद्याका जप करना चाहिये।

ऋषियोंने पूछा कि पञ्चाक्षरी विद्या कौन है? उसका क्या प्रभाव है और जपका क्या विधान है? यह श्रवण करनेकी हमारी इच्छा है, आप इसका वर्णन करें।

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! एक समय पार्वतीजीके प्रति शिवजीने इस विषयमें जैसा वर्णन किया था, वही हम आपको सुनाते हैं—

पञ्चाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि।
न शक्यं कथितुं देवि तस्मात् संक्षेपतः शृणु॥

श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहने लगे—देवि! पञ्चाक्षर-मन्त्रके माहात्म्यका वर्णन करोड़ों वर्षोंमें भी होना कठिन है, परंतु संक्षेपमें हम सुनाते हैं, उसे सुनो। प्रलयकालमें स्थावर, जंगम, देव, असुर, नाग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। प्रकृतिके रूपमें तुम भी लीन हो जाती हो। तब हम अकेले ही रहते हैं, कोई दूसरा अवशिष्ट नहीं रहता। उस समय वेद और शास्त्र हमारी शक्तिद्वारा पालन किये हुए पञ्चाक्षर-मन्त्रमें निवास करते हैं। फिर जब हम दो रूप धारण करते हैं, तब हमारी प्रकृति ही मायामय शरीर धारणकर नारायणरूपसे समुद्रमें शयन करती है। उसके नाभिकमलसे पञ्चमुख ब्रह्मा उत्पन्न होकर सृष्टि करनेकी सामर्थ्य-प्राप्तिके लिये प्रार्थना करते हैं। एक बार ब्रह्माजीकी प्रार्थना सुन उनके हितके लिये मैंने पाँच मुखोंसे पाँच अक्षरोंका उच्चारण किया। उन वर्णोंको ब्रह्माजीने पाँच मुखोंसे ग्रहण किया और वाच्य—वाचक-भाव करके परमेश्वरको जाना। पाँच अक्षरोंद्वारा त्रैलोक्यपूजित शिव-वाच्य है। यह 'पञ्चाक्षर-मन्त्र' शिवका वाचक है। उस मन्त्रको तथा उसकी विधिको जानकर बहुत काल जप करके सिद्धि पाकर जगत्के हितके लिये अपने पुत्रोंको भी ब्रह्माजीने उस पञ्चाक्षर-मन्त्रका उपदेश किया। ब्रह्माजीने उस मन्त्रको पाकर भगवान् शिवजीको प्रसन्न करनेके लिये मेरु पर्वतके मुञ्जवान् शिखरपर दिव्य हजार वर्षतक तप किया। उनकी दृढ़ भक्ति देख भगवान्ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर लोकहितके लिये 'पञ्चाक्षर-मन्त्र'के ऋषि, छन्द, देवता, शक्ति, बीज, षडङ्गन्यास, दिग्बन्ध और विनियोगका उपदेश किया।

वे ऋषिगण भी इस तरह मन्त्रका माहात्म्य सुनकर अनुष्ठान करने लगे। क्योंकि उसीके प्रभावसे देवता, मनुष्य, असुर, चार वर्णोंके धर्मादि, वेद, ऋषि तथा शाश्वत धर्म और यह जगत् स्थित है।

पञ्चाक्षर-मन्त्र अल्पाक्षर है, परंतु अनन्त अर्थोंसे युक्त है। वेदका सार, मुक्ति देनेवाला, असंदिग्ध, अनेक सिद्धि देनेवाला, सुखसे उच्चारण करने योग्य, सब कामना देनेवाला, सब विद्याओंका बीज-मन्त्र, सब मन्त्रोंमें आदि-मन्त्र, वट-बीजकी भाँति बहुत विस्तार-युक्त और परमेश्वरका वाक्य पञ्चाक्षर ही है। उसके आदिमें प्रणव लगा देनेसे यह 'षडक्षर' हो जाता है।

'पञ्चाक्षर-मन्त्र' तथा 'षडक्षर-मन्त्र'में वाच्य-वाचक-भावसे शिव स्थित है। शिव वाच्य है और मन्त्र वाचक है, यह वाच्य-वाचक-भाव अनादि-सिद्ध है। जिस पुरुषके हृदयमें पञ्चाक्षर-मन्त्र विद्यमान है, मानो उसने सारे शास्त्र और वेद पढ़ लिये, क्योंकि शिव ही ज्ञान है, इतना ही परम पद है, इतनी ही ब्रह्मविद्या है। इसलिये नित्य 'पञ्चाक्षर-मन्त्र'को जपना चाहिये। पञ्चाक्षर भगवान् शिवजीका हृदय, गुह्यसे भी गुह्य और मोक्ष—ज्ञान-प्राप्तिका सबसे उत्तम साधन है।

जपके प्रभावको जानकर सदाचारमें तत्पर हो निरन्तर जप करे तो अवश्य कल्याण हो। आचारहीन पुरुषका सब साधन निष्फल होता है। परम धर्म और परम तप आचार ही है। आचारयुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं रहता। सदाचारके पालन करनेसे पुरुष ऋषि और देवता तक बन जाते हैं। मुख्यतः असत्यका त्याग करे, क्योंकि सत्य ब्रह्म है और असत्य ब्रह्मका दूषण है।

असत्य तथा कठोर वाक्य, पैशुन्य (चुगली), परस्त्री, पराया धन तथा हिंसा—इनको मन-वचन-कर्मसे त्याग दें।

गणेश-लीला-चिन्तन

बाल-लीला

उमा-महेश्वरके अलौकिक पुत्रद्वय स्कन्द और गणेश अद्भुत बाल-लीला करते थे। उन्हें देखकर माता-पिता अत्यन्त सुखी होते और उनका अतिशय स्नेहसे पालन करते थे। गणेशकी परम मनोहारिणी बाल-लीलाओंका ग्रन्थोंमें बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है। एक स्थानपर उल्लेख है—

क्रोडं तातस्य गच्छन् विशदबिसधिया शावकं शीतभानो-
राकर्षन् भालवैश्वानरनिशितशिखारोचिषा तप्यमानः।
गङ्गाम्भः पातुमिच्छन् भुजगपतिफणाफूत्कृतैर्दूयमानो
मात्रा सम्बोध्य नीतो दुरितमपनयेद् बालवेषो गणेशः॥

'बालक गणेशजी अपने पिता शंकरजीके मस्तकपर सुशोभित बालचन्द्रकलाको सुन्दर श्वेत कमलनाल समझकर उसे खींच लानेके लिये उनकी गोदमें चढ़कर ऊपर लपके; लेकिन तृतीय नेत्रसे निकली लपटोंकी आँच लगी, तब जटाजूटमें बहनेवाली गङ्गाका जल पीनेको बढ़े तो सर्प फुफकार उठा। इस फुफकारसे घबराये हुए गणेशको माता पार्वती बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गयीं। ऐसे बाल-गणेश हमारे सब पाप-तापका निवारण करें।'

स्कन्द और गणेशमें भी बड़ी प्रीति थी। वे सदा मिल-जुलकर साथ-साथ बाल-क्रीडा किया करते थे और एक-दूसरेके बिना रह नहीं सकते थे। वे दोनों शिशु अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक माता-पिताकी सेवा भी करते थे। इस कारण उन बालकोंपर माता-पिताका स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था।

विवाहकी स्पर्धा

धीरे-धीरे दोनों बालक विवाह-योग्य हुए। माता-पिता उनकी वय देखकर विवाह-सम्बन्धी परामर्श भी करने लगे। स्कन्द और गणेश—दोनों शिव और शिवाको समानरूपसे प्राणप्रिय थे। वे सोच रहे थे, इन बालकोंका मङ्गल-परिणय किस प्रकार करें?

'पहले मेरा विवाह होगा।' माता-पिताके विचार समझकर एकदन्तने उन लोगोंसे निवेदन किया।

'नहीं, पहले मैं विवाह करूँगा।' स्कन्दने शिवा-शिवसे कहा।

बालकोंकी इन बातोंको सुनकर जगदाधार महादेव और संसारस्वामिनी गिरिजा चकित हुईं। फिर एक दिन शिव और शिवाने अपने दोनों पुत्रोंको बुलाकर कहा—

'बालको! हमें तुम दोनों प्राणप्रिय हो। हमने तुम्हारे विवाहके लिये एक शर्त रखी है। तुम दोनोंमें जो कोई सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले लौट आयेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

माता-पिताके वचन सुनकर मयूरवाहन कार्तिकेय सम्पूर्ण धरित्रीकी यथाशीघ्र परिक्रमा करनेके लिये तत्क्षण मन्दरगिरिसे द्रुतगतिसे चल पड़े।

'मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?' परम बुद्धिमान् मूषकवाहन लम्बोदर वहीं खड़े-खड़े सोचने लगे—'मैं तो एक योजन भी नहीं चल सकता, फिर इस विशालतम पृथ्वीकी परिक्रमा करके पहले कैसे लौट पाऊँगा?'

फिर सचिन्त मनसे विचार करनेके अनन्तर विशालतुण्डने अपना कर्तव्य निश्चित किया। सर्पयज्ञोपवीतधारी गणेशजीने स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण किये।

'परमपूज्य पिताजी एवं माताजी! मैंने आप लोगोंके लिये
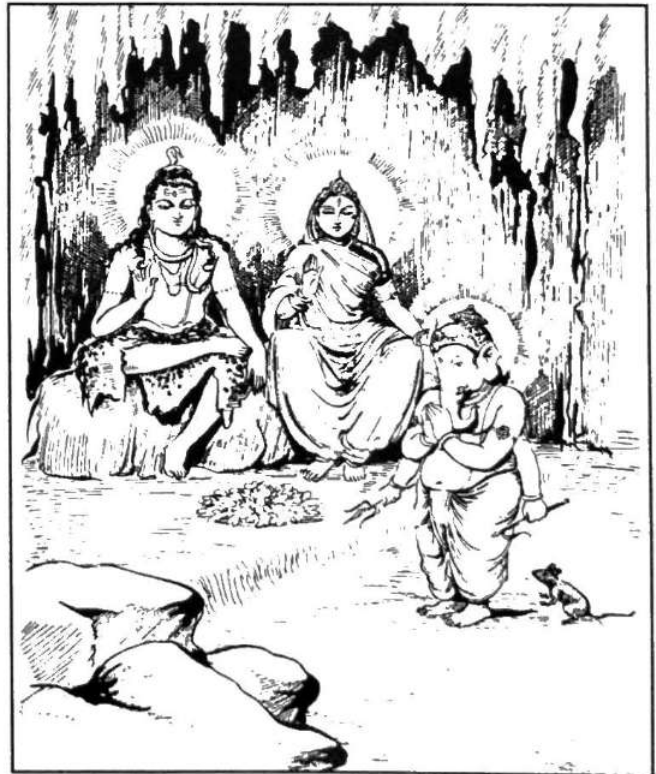
दो सुन्दर और पवित्र आसन बिछा दिये हैं।' सर्वविघ्नेशने चन्द्रार्धभूषण शिव एवं करुणामयी माता पार्वतीसे मधुर वाणीमें प्रार्थना की—'आप लोग कृपापूर्वक उसपर बैठकर मेरा मनोरथ पूर्ण करें।'

आशुतोष एवं सद्यःफलदायिनी जननी उक्त आसनपर विराजमान हुईं। मूषकवाहन गणेशने उन लोगोंकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की और उनके मङ्गलालय चरण-कमलोंमें बार-बार दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर वे अपने सर्वाधार एवं सर्वसमर्थ माता-पिताकी भक्ति-विभोर-भावसे परिक्रमा करने लगे। खण्डरद गणेश बार-बार शिव और शिवाके चरण-युगलमें प्रणाम करते और उनकी परिक्रमा करते जाते। इस प्रकार उन्होंने सर्वेश्वर महादेव एवं सर्वज्ञा माता पार्वतीकी सात प्रदक्षिणाएँ पूरी कीं और हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। फिर कहा—'अब आप लोग कृपापूर्वक मेरा मङ्गल-परिणय शीघ्र कर दीजिये।'

'गजानन!' महाबुद्धिमान् गणेशकी प्रार्थना सुनकर धर्माध्यक्ष वामदेवने उत्तर दिया—'तेरा भाई स्कन्द सरिताओं, समुद्रों, पर्वतों एवं काननोंसहित पृथ्वीकी परिक्रमा करने गया है। तू भी जा और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करके कार्तिकेयसे पहले लौट आ, तब तेरा विवाह पहले हो जायगा।'

'पवित्रतम धर्ममूर्ति माताजी और पिताजी!' नियम-परायण लम्बोदरने कुपित होकर कहा—'मैंने सम्पूर्ण भूमण्डलकी एक नहीं, सात प्रदक्षिणाएँ कर ली हैं।'

'अरे!' लीलाधारी शिवा-शिवने लौकिक रीतिसे आश्चर्य व्यक्त करते हुए अपने परम बुद्धिमान् पुत्र गणेशसे कहा—'तूने सप्तद्वीपवती विशाल वसुंधराकी परिक्रमा कब पूरी कर ली?'

'धर्माध्यक्ष पिता एवं परम पावनी माता! मैंने आप लोगोंकी सात परिक्रमा पूरी करके निश्चय ही गिरि-काननोंसहित सप्तद्वीपवती सम्पूर्ण वसुंधराकी परिक्रमा कर ली है।' परम बुद्धिमान् एवं ज्ञानमूर्ति महोदरने निवेदन किया—'धर्मके संग्रहभूत वेदों और शास्त्रोंके ये वचन सत्य हैं या असत्य?—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १९। ३९—४२)

'जो पुत्र माता-पिताकी पूजा करके उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पृथ्वी-परिक्रमाजनित फल सुलभ हो जाता है। जो माता-पिताको घरपर छोड़कर तीर्थयात्राके लिये जाता है, वह माता-पिताकी हत्यासे मिलनेवाले पापका भागी होता है; क्योंकि पुत्रके लिये माता-पिताके चरण-सरोज ही महान् तीर्थ हैं। अन्य तीर्थ तो दूर जानेपर प्राप्त होते हैं, परंतु धर्मका साधनभूत यह तीर्थ तो पासमें ही सुलभ है। पुत्रके लिये (माता-पिता) और स्त्रीके लिये (पति) सुन्दर तीर्थ घरमें ही वर्तमान हैं।'

बुद्धिराशि विघ्ननायकने आगे कहा—'वेद-शास्त्रोंके द्वारा निरन्तर उद्घोषित वचन असत्य सिद्ध होनेपर आप लोगोंका वेदवर्णित स्वरूप भी मिथ्या समझा जायगा; अतएव आप या तो वेद-वचन असत्य कीजिये, अन्यथा शीघ्र ही मेरा विवाह कर दीजिये। आप लोग धर्म-विग्रह हैं; अतः सर्वोत्तम निर्णय कीजिये।'

यथार्थभाषी एवं प्रतिभाशाली विलक्षण-बुद्धि पार्वतीनन्दनके वचन सुनकर शिवा-शिव अत्यन्त चकित हुए। फिर उन्होंने भालचन्द्र गणेशकी प्रशंसा करते हुए कहा—

'बेटा! तू महान् आत्मबलसे सम्पन्न है, इसीसे तुझमें निर्मल बुद्धि उत्पन्न हुई है। तुमने जो बात कही है, वह बिलकुल सत्य है, अन्यथा नहीं। वेद-शास्त्र और पुराणोंमें बालकके लिये धर्मपालनकी जैसी बात कही गयी है, वह सब तूने पूरी कर ली। तूने जो बात की है, वह दूसरा कौन कर सकता है? हमने तेरी बात मान ली; अब इसके विपरीत नहीं करेंगे।'

इस प्रकारके वचन कहकर शिवा-शिवने बुद्धिसिन्धु गजवक्त्रको सान्त्वना दी और फिर वे गणेश-विवाहके लिये

विचार करने लगे।

गजवक्त्रका परिणय

जब यह संवाद प्रजापति विश्वरूपको विदित हुआ तो उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उनकी दिव्य-रूप-यौवन-सम्पन्ना, परम लावण्यवती, सुशीला एवं सद्‌गुणवती 'सिद्धि' और 'बुद्धि' नामक दो कन्याएँ थीं। वे सर्वलोकपति शिवके भवन पहुँचे और उन्होंने शिवा और शिवसे अपनी पुत्रियोंका सर्वपूज्य गणेशके साथ विवाह करनेका अनुरोध किया। भगवान् शंकर और जगद्धात्री माता पार्वतीने उनका प्रस्ताव हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया।

फिर शुभ मुहूर्तमें विश्वकर्माने कर्पूरगौर शिव और परम सती पार्वतीकी इच्छाके अनुसार सविधि विवाह सम्पन्न

कराया। उस समय समस्त देव-समुदाय एकत्र हुआ। देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। सर्वत्र हर्ष व्याप्त था। देववाद्य बज रहे थे। नृत्य हो रहा था। मङ्गल-गीत गाये जा रहे थे। भगवान् शंकर और माता पार्वती—दोनों अपने परम प्रिय बुद्धिराशि शुभगुण-सदन पुत्र गणेशका विवाह करके परम प्रसन्न हुए।[१]

अपने मङ्गल-परिणयसे सर्वानन्दप्रदाता गजमुख भी बड़े आनन्दित हुए। अत्यन्त सुशीला एवं मधुरभाषिणी पत्नियोंके साथ उनका जीवन बड़ा सुखद था। समयपर गणेश-पत्नी सिद्धिकी कोखसे 'क्षेम' और बुद्धिके उदरसे 'लाभ' नामक अतिशय सुन्दर दिव्य बालकोंने जन्म लिया। इस प्रकार सर्वकारणकारण गणाध्यक्ष सानन्द निवास करने लगे।

खिन्न कार्तिकेय

उधर सम्पूर्ण धरित्रीकी परिक्रमा करके गजानन-भ्राता कार्तिकेय लौटे तो देवर्षि नारदके द्वारा गजवदनके विवाहका समाचार पाकर अत्यन्त खिन्न हुए। उन्होंने दुःखी मनसे अपने परम पूज्य पिताके चरणोंमें प्रणामकर शिव-सदन त्याग देनेका निश्चय कर लिया। शिवा तथा शिवने उन्हें बहुत समझाया, किंतु वे अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुए और क्रौञ्च-पर्वतपर चले गये।

'उसी दिनसे शिव-पुत्र स्वामिकार्तिकका कुमारत्व (कुँआरपना) प्रतिष्ठित हुआ।[२] उनका 'कुमार'-नाम त्रैलोक्यमें विख्यात हो गया। वह नाम शुभदायक, सर्वपापहारी, पुण्यमय और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्यकी शक्ति प्रदान करनेवाला है।'

(शिवपुराण रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड)

महिमामय मोदक-प्राप्ति

एक बारकी बात है। अत्यन्त सुन्दर, अद्भुत, अलौकिक एवं तेजस्वी गजानन और षडाननके दर्शन करके देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए। माता पार्वतीके चरणोंमें उनकी अगाध श्रद्धा हुई। उन्होंने सुधासिंचित एक दिव्य मोदक माता पार्वतीके हाथमें दिया। उक्त दिव्य मोदकको माताके हाथमें देखकर दोनों बालक उसे माँगने लगे।

'पहले इस मोदक (लड्डू)-का गुण सुनो।' माताने दोनों पुत्रोंसे कहा—'इस मोदककी गन्धसे ही अमरत्वकी प्राप्ति होती है। निस्संदेह इसे सूँघने या खानेवाला सम्पूर्ण

१-ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार भगवान् शंकरने सुर-समुदायकी संनिधिमें 'पुष्टि' नामक परम गुणवती अनिन्द्यसुन्दरी कन्याके साथ गणेशका विवाह किया था।

२-ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आया है कि प्रजापतिने अपनी रत्नाभरणभूषिता परम सुन्दरी एवं शीलवती कन्या 'देवसेना' (जिसे विद्वान् शिशुओंकी रक्षा करनेवाली 'महाषष्ठी' कहते हैं)-को वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयको समर्पित किया था।

शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान-विशारद और सर्वज्ञ हो जाता है।'

माता पार्वतीने आगे कहा—'मेरे साथ तुम्हारे पिताकी भी सहमति है कि तुम दोनोंमेंसे जो धर्माचरणके द्वारा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर देगा, वही इस मोदकका अधिकारी होगा।'

माताकी आज्ञा प्राप्त होते ही चतुर कार्तिकेय अपने तीव्रगामी वाहन मयूरपर आरूढ हो त्रैलोक्यके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल पड़े और मुहूर्तभरमें ही उन्होंने समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। इधर मूषकवाहन लम्बोदरने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिक्रमा की और हाथ जोड़कर वे उनके सम्मुख खड़े हो गये।

'मोदक मुझे दीजिये।' कुछ ही देर बाद स्कन्दने पिताके सम्मुख उपस्थित होकर निवेदन किया।

'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता-पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते।' माता पार्वतीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'अतएव यह गजानन सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है। इस कारण यह देवनिर्मित अमृतमय मोदक मैं गणेशको ही देती हूँ। माता-पिताकी भक्तिके कारण यह यज्ञादिमें सर्वत्र अग्रपूज्य होगा।'

'इस गणेशकी अग्रपूजासे ही समस्त देवगण प्रसन्न हों।' पिता कर्पूरगौर शिवने भी कह दिया।

माता पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया और अत्यन्त प्रसन्नतासे उन्होंने समस्त देवताओंके सम्मुख ही उन्हें गणोंके अध्यक्ष-पदपर प्रतिष्ठित कर दिया।

(पद्मपुराण)

कुशाग्रबुद्धि

इसी प्रकारकी एक कथा और मिलती है, जिससे गुणगण-निलय गणेशकी पितृभक्ति एवं असीम कुशाग्रबुद्धिताका परिचय प्राप्त होता है। वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है। चन्द्रार्धभूषण भगवान् शंकरने एक यज्ञ करनेका निश्चय किया। उक्त पावन यज्ञमें उन्हें समस्त देवताओंको निमन्त्रण देना आवश्यक था। उन्होंने यह भार अपने पुत्र कार्तिकेयको दिया; किंतु निश्चित अवधिके भीतर प्रत्येक देवताके समीप जाकर उन्हें आमन्त्रण दे देना सम्भव नहीं था। तब पार्वतीश्वरने यह भार महाकाय गजाननको दिया। वे अपने वाहन क्षुद्र मूषकपर सर्वत्र कैसे पहुँचते? पर उन्होंने उपाय ढूँढ़ निकाला, वे विद्या-बुद्धि-वारिधि जो ठहरे।

'मेरे परम पिता महादेवके पावनतम अङ्गमें समस्त देवता निवास करते हैं।'—यह सोचकर उन्होंने सर्वदेवमय पशुपतिकी तीन बार प्रदक्षिणा की और वहीं प्रत्येक देवताको यज्ञमें पधारनेका निमन्त्रण दे दिया। फलतः समस्त देवताओंको सर्वलोकमहेश्वर शिवके यज्ञकी सूचना प्राप्त हो गयी और सभी देवता यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये ठीक समयपर पहुँच गये।

(स्कन्दपु० काशीखण्ड)

सर्वहितकारी

एक बारकी बात है। मनु-कुलोत्पन्न राजर्षिश्रेष्ठ राजा रिपुंजयने अविमुक्त-क्षेत्रमें कठोर तप प्रारम्भ किया। उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। उन वीर एवं क्षत्रियधर्मके मूर्तिमान् विग्रह रिपुंजयनरेशके तपश्चरणसे संतुष्ट हो प्रजापति ब्रह्माने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'बुद्धिमान् नरेश! तुम वनों, पर्वतों एवं समुद्रोंसहित सम्पूर्ण वसुंधराका पालन करो। तुम्हारे धर्मनिष्ठ राज्यसे प्रसन्न होकर देवगण सदा तुम्हें स्वर्गीय रत्न और पुष्प प्रदान करते रहेंगे। मैं तुम्हें दिव्य सामर्थ्य प्रदान करूँगा।'

लोकस्रष्टाने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तपस्वी रिपुंजयसे आगे कहा—'नागराज वासुकि अपनी अनुपम लावण्यवती नागकन्या अनंगमोहिनी तुम्हें अर्पित करेंगे। तुम उसे सहधर्मिणीके रूपमें स्वीकार कर लेना और उसके साथ धर्मपूर्वक धराका शासन करना। '**दिवो दास्यन्ति**'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार तुम्हारा नाम 'दिवोदास' होगा।'

'पितामह! इस विशाल धरणीपर अनेक नरेश हैं।' अत्यन्त विनयपूर्वक रिपुंजयनरेशने विधातासे निवेदन किया—'फिर प्रजा-पालनका आदेश मुझे ही क्यों दिया जा रहा है?'

'तुम धर्माचरण-सम्पन्न आदर्श वीर पुरुष हो।' पितामहने उन्हें प्रेमपूर्वक समझाया—'तुम्हारा राज्य धर्मपर आधृत

होगा; इस कारण तुमपर संतुष्ट होकर देवराज इन्द्र सुवृष्टि करेंगे; सुवृष्टि होगी तो प्रजा धन-धान्यसे सम्पन्न रहेगी एवं धर्मप्राण प्रजासे देवता, पितर एवं सम्पूर्ण प्राणी सुखी रहेंगे। किसी अन्य धर्मविहीन नरेशके द्वारा अनावृष्टि आदिके कारण सर्वत्र दुःख-दारिद्र्यका साम्राज्य फैल जायगा।'

'महामान्य पितामह! त्रैलोक्यकी रक्षा करनेमें आप स्वयं समर्थ हैं।' रिपुंजयनरेशने विधाताकी स्तुति करते हुए कहा—'किंतु आप कृपापूर्वक मुझे यश प्रदान कर रहे हैं; अतएव आपका आदेश मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, पर यदि आप मेरा एक निवेदन स्वीकार कर लें तो सोत्साह आपके आज्ञा-पालनमें मुझे सुविधा रहेगी।'

'राजन्! तुम्हें जो कहना हो, अवश्य कहो।' पद्मोद्भवने तुरंत कहा—'मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छाकी पूर्ति करना चाहता हूँ।'

'परमपूज्य पितामह! यदि मैं धरतीका शासन-सूत्र ग्रहण करूँ तो सुर-समुदाय स्वर्गमें ही निवास करे; पृथ्वीपर न आये।' राजा रिपुंजयने अपने मनकी बात स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दी—'इस प्रकार मैं धरणीका निष्कण्टक राज्य कर सकूँगा।'

'तथास्तु!' सृष्टिकर्ताने तत्क्षण वचन दिया और वहीं अन्तर्धान हो गये।

'मनुष्योंके स्वस्थ और सुखी रहनेके लिये यह आवश्यक है कि देवगण इस पृथ्वीको छोड़कर अमरावती पधारें और वहीं रहें। वे कृपापूर्वक इस धरतीपर न आयें।' राजा दिवोदासके आदेशसे दुन्दुभि बजा-बजाकर चतुर्दिक् घोषणा कर दी गयी। 'नागगण भी यहाँ पधारनेका कष्ट न करें। मेरे शासनकालमें सुर-समुदाय स्वर्गमें और मनुष्य धरातलपर सानन्द निर्वाह करें।'

भगवान् शंकर मन्दरगिरिके तपसे संतुष्ट थे। इस कारण सृष्टिकर्ताके वचनोंकी रक्षाके लिये वे गिरिराज मन्दरपर चले गये। सम्पूर्ण देवता भी करुणामूर्ति उमापतिके साथ वहीं गये। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुने भूमण्डलके समस्त वैष्णव-तीर्थोंका त्याग कर दिया और वे भी अपने प्राणप्रिय महादेवजीके पास मन्दरगिरिपर जा पहुँचे।

पृथ्वीसे देवताओंके चले जानेपर परम पराक्रमी राजा दिवोदासने यहाँ निर्द्वन्द्व राज्य किया। उन्होंने काशीपुरीको अपनी राजधानी बनाया और धर्मपूर्वक शासन करने लगे। उनके शासनकालमें प्रजा धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे पूर्ण हो गयी। प्रत्येक दिशामें देश उन्नतिशील था। उनके राज्यमें अपराधका कहीं नाम भी नहीं था। असुर भी मनुष्यके वेषमें राजा दिवोदासकी सेवामें उपस्थित होते एवं उनकी आज्ञाके पालनमें सतत तत्पर रहते थे। धर्मपरायण नरेश दिवोदासके राज्यमें सभी नगर एवं ग्राम ईति[१]-भीतिसे रहित थे। सर्वत्र धर्मकी प्रधानता थी, अधर्मका कहीं नाम भी नहीं था। इस प्रकार राजा दिवोदासको शासन करते अस्सी सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

देवताओंका छिद्रान्वेषण

राजा दिवोदासकी इस व्यवस्थासे कि देवता लोग भूमि छोड़ अपने-अपने स्थानमें जाकर रहें; काशीका बिछोह हो जानेके कारण भगवान् शंकर तथा अन्य देवगण दुःखी थे और राजाका छिद्र इसलिये ढूँढ़ रहे थे कि इनका शासन समाप्त कर दिया जाय। उक्त धर्मप्राण नरेशका छिद्र ढूँढ़नेके लिये देवताओंने बड़ा प्रयत्न किया; किंतु वे सफल न हो सके। इन्द्रादि देवताओंने तपस्वी नरेश दिवोदासका शासन विफल करनेके लिये अनेक बाधाएँ उपस्थित कीं; किंतु नरेशके तपोबलके सम्मुख वे सफलमनोरथ न हो सके। इसके अनन्तर भगवान् शंकरने मन्दरगिरिसे चौंसठ योगिनियोंको राजाके छिद्रान्वेषणके लिये भेजा। वे योगिनियाँ काशीमें बारह मासतक रहकर निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी पुण्यात्मा राजामें कोई छिद्र (दोष) नहीं पा सकीं। राजापर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे वहीं रह गयीं।

'सप्ताश्ववाहन! तुम यथाशीघ्र मङ्गलमयी काशीपुरीमें जाओ, जहाँ धर्मात्मा राजा दिवोदास विद्यमान है।' भगवान् वृषभध्वजने श्रीसूर्यदेवको बुलाकर कहा—'राजाके धर्मविरोधसे जिस प्रकार वह क्षेत्र उजाड़ हो जाय, वैसा करो। किंतु उस राजाका अनादर न करना; क्योंकि वह परम धर्मात्मा एवं

१-ईतियाँ ये हैं—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहों, टिड्डियों और पक्षियोंद्वारा फसलका खाया जाना, अन्य नृपतियोंका आक्रमण, संक्रामक रोग, कलह और प्रवास।

तपस्वी है।'

आशुतोष शिवकी आज्ञा शिरोधार्य करके सूर्यदेव परम पावनी काशीपुरीमें गये। वहाँ बाहर-भीतर विचरते हुए उन्होंने राजामें तनिक भी धर्मका व्यतिक्रम नहीं देखा। भगवान् सूर्यने कभी, कहीं, किसी मनुष्यमें भी कोई छिद्र नहीं देखा। इस प्रकार तिमिरारि लोकचक्षु सूर्यदेव बारह रूपोंमें व्यक्त होकर महिमामयी काशीपुरीमें स्थित हो गये। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—'लोलार्क, उत्तरार्क, साम्बादित्य, द्रौपदादित्य, मयूखादित्य, खखोल्कादित्य, अरुणादित्य, वृद्धादित्य, केशवादित्य, विमलादित्य, गङ्गादित्य और यमादित्य।'

'कमलोद्भव! मैंने काशीका समाचार जाननेके लिये पहले योगिनियोंको और फिर सूर्यदेवको भेजा; पर वे अभीतक नहीं लौटे।' काशीको अत्यन्त प्रिय समझनेवाले भगवान् कर्पूरगौरने ब्रह्माजीसे कहा—'अतः अब आप जाइये। आपका मङ्गल हो।'

भगवान् पार्वतीवल्लभके आदेशानुसार लोकपितामह वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें काशी पहुँचे तो उस मनोहर पुरीका दर्शनकर उनका हृदय हर्षोल्लाससे भर गया। वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी ब्रह्मा राजा दिवोदासके समीप पहुँचे। राजाने उनके चरणोंमें प्रणामकर प्रत्येक रीतिसे उनकी पूजा की और उनके शुभागमनका कारण पूछा।

'राजन्! इस समय मैं यहाँ यज्ञ करना चाहता हूँ।' ब्रह्माने राजा दिवोदासके धर्मपूर्ण शासन एवं काशीकी महिमाका गान करते हुए कहा—'और इस कार्यमें तुम्हें सहायक बनाना चाहता हूँ।'

'यज्ञेच्छु श्रेष्ठ ब्राह्मण! मैं आपका दास हूँ।' धर्ममूर्ति दिवोदासने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आप मेरे कोषागारसे समस्त यज्ञ-सामग्रियोंको ले जायँ और एकाग्रचित्त होकर यज्ञ करें।'

धर्मपरायण राजा दिवोदासके श्रद्धा-भक्तिपूर्ण विनीत उत्तरसे लोकस्रष्टा अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने दिवोदासकी सहायतासे यज्ञ-सामग्रियोंका संग्रह करके दस अश्वमेध-महायज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया और तभीसे वाराणसीमें मङ्गलदायक 'रुद्रसरोवर' नामक तीर्थ 'दशाश्वमेध' के नामसे प्रख्यात हुआ। तदनन्तर पुण्यसलिला गङ्गाके पधारनेपर वह तीर्थ और अधिक पुण्यजनक हो गया। ब्रह्माजी वहाँ दशाश्वमेधेश्वरलिङ्गकी स्थापनाकर स्थित हो गये। चतुर्मुख ब्रह्मा धर्मानुरागी राजा दिवोदासमें कोई छिद्र नहीं पा सके; फिर वे भगवान् शंकरके समीप जाकर क्या कहते। उन्होंने उक्त क्षेत्रका प्रभाव समझकर वहीं ब्रह्मेश्वरलिङ्गकी स्थापना की और भगवान् विश्वनाथका ध्यान करते हुए परम पावनी काशीपुरीमें ही रह गये।

मङ्गलमूर्ति ज्योतिषी बने

इसके अनन्तर आशुतोषकी आज्ञा प्राप्तकर मङ्गलमूर्ति गणेशजी मन्दरगिरिसे काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए। श्रीगणेशजीने काशीमें प्रविष्ट होते समय वृद्ध ब्राह्मणका वेष धारण कर लिया। वे वृद्ध ज्योतिषीके रूपमें अविमुक्त-क्षेत्रके निवासियोंके घरोंमें जा-जाकर उन्हें प्रसन्न करते। वृद्ध ज्योतिषीके वेषमें श्रीगणेशजीकी वाणी अत्यन्त मधुर थी। उनके प्रत्येक वचन सत्य सिद्ध होते थे। इस प्रकार कुछ ही समयमें उनकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी। ख्यातिप्राप्त वृद्ध ज्योतिषी राजाके अन्तःपुरमें बुलाये गये। सर्वान्तर्यामी वयोवृद्ध ज्योतिषीने सर्वथा सत्य घटनाओंका उल्लेख किया। उसने रानियोंके प्रत्येक प्रश्नका प्रत्यक्ष द्रष्टाकी तरह उत्तर दिया। इस प्रकार वे सभी स्त्रियोंके विश्वास-भाजन ही नहीं, श्रद्धाके केन्द्र भी हो गये।

'राजन्! एक अद्भुत विद्वान् एवं वेदोंकी मूर्तिमान् निधि वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषी पधारे हैं।' एक दिन राजा दिवोदासकी पत्नी लीलावतीने अपने पतिसे निवेदन किया—'वे सद्गुणसम्पन्न, अत्यन्त बुद्धिमान् सुवक्ता ब्राह्मण हैं। आप भी उनका दर्शन कीजिये।'

दूसरे दिन धर्मात्मा नरेश दिवोदासने उक्त परम गुणज्ञ वृद्ध ज्योतिषीको अत्यन्त आदरपूर्वक बुलवाया। राजाने वृद्ध ब्राह्मण-वेषधारी पार्वतीनन्दनका यथावत् सत्कार किया।

'मेरी दृष्टिमें आप तत्त्वज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ द्विज हैं।' एकान्तमें राजा दिवोदासने अत्यन्त विनयपूर्वक वृद्ध ब्राह्मण-ज्योतिषीसे निवेदन किया—'इस समय मेरा मन जागतिक पदार्थों एवं सभी कर्मोंसे विरत हो रहा है। अतएव आप भलीभाँति विचारकर मेरे शुभ भविष्यका वर्णन कीजिये।'

'धर्ममूर्ति नरेश! आजके अठारहवें दिन उत्तर दिशासे एक तेजस्वी ब्राह्मण पधारेंगे।' वृद्ध ज्योतिषीने राजासे कहा—'यदि तुम श्रद्धापूर्वक उनसे प्रार्थना करोगे तो वे निश्चय ही तुम्हें उपदेश देंगे। तुम यदि उनकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करोगे तो निश्चय ही तुम्हारे सभी मनोरथ सिद्ध हो जायँगे।'

राजा दिवोदासने अत्यन्त प्रसन्न होकर ज्योतिषीजीकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पूजा की। ज्योतिषी महाराज धर्मात्मा नरेशकी अनुमति लेकर अपने आश्रमपर पहुँचे। इस प्रकार बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन गणेशजीने सम्पूर्ण काशीनगरीको अपने वशमें कर लिया। दिवोदासके राज-पद-ग्रहणके पूर्व काशीमें गणेशजीके जो-जो स्थान थे, उन-उन स्थानोंको गणेशजीने अनेक रूप धारण करके पुनः सुशोभित किया।

धर्मात्मा नरेश दिवोदाससे दूर रहकर भी गणेशजीने उनके चित्तको राज्यकी ओरसे विरक्त कर दिया; फिर अठारहवें दिन क्षीरोदधिशायी श्रीविष्णुने परम तेजस्वी ब्राह्मणके वेषमें पधारकर दिवोदासको सदुपदेश दिया। श्रीविष्णुके आदेशसे राजा दिवोदासने अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दिवोदासेश्वरलिङ्गकी स्थापनाकर उसकी सविधि पूजा की। राजा दिवोदासने शूलपाणि विश्वनाथके अनुग्रहसे सशरीर शिवधामकी परम शुभ यात्रा की।

शिवा-शिवका पुनः काशी-आगमन

इसके अनन्तर भगवान् शंकर अपनी धर्मपत्नी पार्वतीके साथ काशी पधारे। उस समय भगवान् शिवने गणेशजीकी बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने हर्षातिरेकसे कहा—

यदहं प्राप्तवानस्मि पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
मयाप्यतीव दुष्प्राप्यां स प्रसादोऽस्य वै शिशोः॥
यद् दुष्प्रसाध्यं हि पितुरपि त्रिजगतीतले।
तत् सूनुना सुसाध्यं स्यादत्र दृष्टान्तता मयि॥
पुत्रवानहमेवास्मि यच्च मे चिरचिन्तितम्।
स्वपौरुषेण कृतवानभिलाषं करस्थितम्॥

(स्कन्द०, काशी० ५७। १२-१३, १५)

'यह वाराणसीपुरी मेरे लिये भी दुष्प्राप्य है। इसको जो मैंने प्राप्त किया है, वह इस बच्चेका प्रसाद है। त्रिलोकमें जो काम पिताके लिये भी दुःसाध्य होता है, उसे पुत्र सिद्ध कर देता है, इसका दृष्टान्त मुझपर ही घटित हो रहा है। मैं ही पुत्रवान् हूँ; क्योंकि जो मेरी चिरचिन्तित अभिलाषा थी, उसको इसने अपने पौरुषसे करस्थित बना दिया।'

महाभारत-लेखन

'इस महान् पुण्यमय ग्रन्थका अध्ययन शिष्योंको किस प्रकार कराऊँ?' पञ्चम वेद महाभारतकी रचनाकर पराशरनन्दन ब्रह्मर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन विचार करने लगे—'इस ग्रन्थरत्नका प्रचार कैसे हो?'

सत्यवतीनन्दन भगवान् व्यासका विचार जानकर उनकी प्रसन्नता एवं लोककल्याणकी दृष्टिसे स्वयं चतुरानन उनके आश्रमपर उपस्थित हुए।

सहसा वेदगर्भ ब्रह्माके दर्शनकर महर्षि व्यास अत्यन्त चकित हो गये। उन्होंने अंजलि बाँध प्रीतिपूर्वक विधाताके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें बैठनेके लिये पवित्र आसन दिया। वे लोकस्रष्टाकी ओर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये। महर्षि व्यास मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

स्रष्टाकी आज्ञासे निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी उनके सम्मुख दूसरे आसनपर बैठ गये। फिर अत्यन्त विनयपूर्वक उन्होंने निवेदन किया—

'भगवन्! मैंने सम्पूर्ण लोकोंसे अत्यन्त पूजित एक महाकाव्यकी (मनमें ही) रचना की है। ब्रह्मन्! मैंने इस महाकाव्यमें सम्पूर्ण वेदोंका गुह्यतम रहस्य तथा अन्य सब शास्त्रोंका सार-सार संकलित करके रख दिया है। केवल वेदोंका ही नहीं, उनके अङ्ग एवं उपनिषदोंका भी इसमें विस्तारसे निरूपण किया है। ......और भी जितने लोकोपयोगी पदार्थ हो सकते हैं, उन सबका इसमें प्रतिपादन किया गया है; परंतु मुझे इस बातकी चिन्ता है कि पृथ्वीपर इस ग्रन्थको लिख सके, ऐसा कोई नहीं है।'

लोकपितामहने महर्षि व्यासविरचित महाकाव्यकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मुनिवर! अपने इस काव्यको लिखवानेके लिये तुम गणेशजीका स्मरण करो—

'काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।'

(महा०, आदि० १। ७४)

लोकस्रष्टा ब्रह्म-सदनके लिये प्रस्थित हुए। तदनन्तर सत्यवतीनन्दन व्यासने सिद्धि-सदन एकदन्त गणेशजीका

स्मरण किया। स्मरण करते ही भक्तवाञ्छाकल्पतरु श्रीगणेशजी महाराज व्यासजीके सम्मुख उपस्थित हो गये। महर्षि

व्यासने अत्यन्त आदर और प्रेमपूर्वक उनका अभिनन्दन किया। फिर पार्वतीनन्दन श्रीगणेशजीके बैठनेपर उन्होंने उनसे अत्यन्त आदरपूर्वक निवेदन किया—

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च॥

(महा०, आदि० १। ७७)

'गणनायक! आप मेरे द्वारा निर्मित इस महाभारत-ग्रन्थके लेखक बन जाइये; मैं इसे बोलकर लिखाता जाऊँगा। मैंने मन-ही-मन इसकी रचना कर ली है।'

महर्षि व्यासकी बात सुनकर बुद्धिराशि श्रीगणेशजीने उत्तर दिया—'व्यासजी! यदि लिखते समय क्षणभरके लिये भी मेरी लेखनी न रुके तो मैं इस ग्रन्थका लेखक बन सकता हूँ।'

........................यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम्॥

(महा०, आदि० १। ७८)

'आप किसी भी प्रसंगको बिना समझे एक अक्षर भी मत लिखियेगा।' व्यासजीने कहा।

'ॐ'—कहकर बुद्धिराशि, शुभगुण-सदन अरुणवर्ण श्रीगणेशजीने इसे लिखना स्वीकार कर लिया और उनके अनुग्रहसे महाभारत-जैसा लोकपावन ग्रन्थ-रत्न जगत्को प्राप्त हुआ।

(महाभारत, आदिपर्व)

ब्रह्माद्वारा गणेश-पूजा

गणेशपुराणके उपासना-खण्डमें आता है कि एक बार चतुर्मुख ब्रह्माके मनमें सृष्टिकर्तापनका अभिमान हो गया। इससे उनके सम्मुख इतनी आपदाएँ उपस्थित हुईं कि वे किंकर्तव्यविमूढ हो गये। अन्ततः उन्होंने एकदन्तधारी गणेशकी आराधना की। विधाताके तपसे संतुष्ट होकर दौर्भाग्यनाशन महामना गणेश उनके सम्मुख उपस्थित हुए। चतुराननने सृष्टिके आदिप्रवर्तक, परम तेजस्वी, सिन्दूरारुण गजकर्णकी भक्तिपूर्ण स्तुति की। सुराग्रजने प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वर प्रदान किया। मूषकारोही गणेशके उस वरके प्रभावसे पद्मयोनिने पुनः सृष्टि-रचना प्रारम्भ की।

विष्णुकी गणेशोपासना

वेदगर्भ ब्रह्मा जब जगत्की सृष्टिमें तल्लीन थे, तब क्षीरोदधिशायी विष्णुके कानोंसे मधु और कैटभ नामक दो शूर-वीर असुर उत्पन्न हुए। उन प्रबल पराक्रमी असुरोंके उपद्रवोंसे ऋषि-मुनि एवं देवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। विधाताने व्याकुल होकर योगमायासे प्रार्थना की। योगमायाकी प्रेरणासे लक्ष्मीपति विष्णुकी निद्रा भंग हुई।

मधु-कैटभके उपद्रवको शान्त करनेके लिये अद्भुत किरीट-कुण्डल एवं शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, नवघनश्यामवपु विष्णुने शंखध्वनि की। पाञ्चजन्यकी भयानक ध्वनिसे त्रैलोक्य काँप उठा। वीरवर मधु और कैटभ एक साथ ही मायापति विष्णुपर टूट पड़े। पाँच सहस्र वर्षोंतक सुरत्राता विष्णु उन दोनों असुरोंसे युद्ध करते रहे, पर उन्हें पराजित न कर सके।

तब श्रीविष्णुने संगीतज्ञ गन्धर्वका अत्यन्त सुन्दर रूप धारण कर लिया और दूसरे वनमें जाकर वीणाकी मधुर तान छेड़ दी तथा लोकोत्तर श्रुतिमधुर गीत गाने लगे। भगवान् लक्ष्मीपतिका वह गीत सुनकर मृग, पशु-पक्षी, देव-गन्धर्व और राक्षस—सभी मुग्ध हो गये। क्षीराब्धिशायीका वह

भुवनमोहन आलाप कैलासमें बार-बार सुनायी देने लगा। उस संगीतसे मुदित होकर भगवान् चन्द्रशेखरने उक्त गायकको बुला लानेके लिये भेजा।

निकुम्भ और पुष्पदन्त उक्त स्वर-लहरीके सहारे गन्धर्व-वेषधारी विष्णुके समीप पहुँचे और उन्होंने उनसे सदाशिवके समीप चलनेका अनुरोध किया। श्रीविष्णु प्रसन्नतापूर्वक कैलासके लिये प्रस्थित हुए। कैलासमें पहुँचकर गन्धर्वने प्रणतार्तिविनाशन कर्पूरगौरके चरण-कमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। भगवान् पार्वतीकान्तने अधोक्षजको अपने कर-कमलोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया और फिर उन्हें सुन्दर आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की। शेषशायीने अत्यन्त मुदित होकर देवाधिदेव महादेवसे कहा—'आज धर्म-काम-अर्थ-मोक्ष प्रदान करनेवाले परम प्रभुका दर्शन कर मैं धन्य हो गया।'

पुनः जनसुखदायक विष्णुने जब वीणाके तारोंका स्पर्श किया तो उसकी मधुर ध्वनिसे वृषभध्वज, माता पार्वती, गजमुख, स्वामिकार्तिक और सभी देवता मुग्ध हो गये। आनन्दघन विष्णुके गीत सुनकर पार्वतीवल्लभ आत्मविभोर हो गये। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी नवघनसुन्दर श्रीहरिको अपने हृदयसे लगा लिया। परम संतुष्ट महादेवने कहा—'आपने मुझे प्रसन्न कर लिया है। आप क्या चाहते हैं?'

'आप मधु-कैटभके वधका उपाय बताइये।' मधु-कैटभ असुरद्वयकी उत्पत्ति, उनके उपद्रव एवं उनके साथ अपने युद्धका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताते हुए विष्णुने शिवसे निवेदन किया—'मैं उन्हें पराजित नहीं कर पा रहा हूँ।'

'आपने मधु-कैटभसे युद्ध करनेके पूर्व विनायककी पूजा नहीं की, इसी कारण शक्तिहीन रहे और आपको क्लेश सहना पड़ा।' पार्वतीपतिने श्रीहरिसे कहा—'आप गणेशकी अर्चनाकर उन पराक्रमी असुरोंसे युद्ध करने जाइये। वे असुरोंको अपनी मायासे मोहितकर आपके वशमें कर देंगे, फिर मेरे प्रसादसे आप निश्चय ही उन दुष्टोंका संहार करेंगे।'

श्रीहरिके पूछनेपर आशुतोषने उन्हें गणेशका सर्वसिद्धिप्रद महामन्त्र प्रदान किया। तब श्रीविष्णुने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवेश शिवके चरणोंमें प्रणाम किया और प्रख्यात सिद्धक्षेत्रमें पहुँचे।

वहाँ क्षीरोदधिशायीने स्नानादिसे निवृत्त होकर मङ्गलमूर्ति पाशाङ्कुशधारी श्रीगणेशका ध्यानकर नाना प्रकारके मनोमय द्रव्योंद्वारा षोडशोपचारसे उनका पूजन किया। फिर संयतेन्द्रिय होकर उन्नतानन आदिदेवका ध्यान करते हुए वे उनके महामन्त्रका जप करने लगे।

इस प्रकार लोकपालक विष्णुके सौ वर्षोंतक कठोर आराधना करनेपर करि-कलभानन प्रसन्न हो गये। फिर कोटि सूर्याग्नि-तुल्य परम तेजस्वी इच्छाशक्तिधर गणेशने श्रीविष्णुके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे तपसे संतुष्ट हूँ। तुम जो कुछ चाहते हो, माँग लो। मैं सब कुछ दूँगा। यदि तुमने पहले ही मेरी पूजा की होती तो निश्चय ही तुम्हारी विजय हो गयी होती।'

'मधु-कैटभसे युद्ध करते-करते थककर मैं आपकी शरण आया हूँ।' श्रीहरिने सर्वसंहारकर्ता गणेशकी स्तुति कर निज-कर्णमलोद्भूत मधु-कैटभकी दुष्टता एवं अपने युद्धका हाल बताकर उनसे प्रार्थना की—'अब जिस प्रकार उनका वध हो, वही कीजिये। मैं मधु-कैटभका वधकर यश प्राप्त करना चाहता हूँ। इसके साथ ही आप मुझे अपनी दुर्लभ भक्ति भी प्रदान करें।'

'तुमने जो कुछ कहा है, वह सब कुछ तुम्हें निश्चय ही प्राप्त होगा।' कर्माकर्मफलप्रद आदिदेवने श्रीविष्णुसे कहा—'तुम यश, बल एवं महान् कीर्ति प्राप्त करोगे और कोई विघ्न नहीं होगा।'

यद्यत्ते प्रार्थितो विष्णो तत्तत्ते भविता ध्रुवम्॥
यशो बलं परा कीर्तिरविघ्नश्च भविष्यति।

(गणेशपु० १। १८। १८-१९)

—इतना कहकर सिन्दूरप्रिय अन्तर्धान हो गये।

श्रीहरिने मधु-कैटभसे युद्ध किया और वे दोनों असुर मारे गये, फिर श्रीविष्णुने प्रसन्न होकर सिद्धक्षेत्रमें विनायकका अद्भुत मन्दिर बनवाया और वहाँ सिद्धिविनायककी प्रतिमा स्थापित की। उस क्षेत्रमें सर्वप्रथम श्रीहरिने सिद्धि प्राप्त की, इस कारण उस पवित्र स्थलका नाम 'सिद्धक्षेत्र' प्रख्यात हुआ।

गृत्समदकी गणेशोपासना

वाचक्नवि मुनिकी पत्नी मुकुन्दाने कुपित होकर अपने पुत्र गृत्समदको शाप दे दिया—'तुझे भयानक पुत्र होगा।

वह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न भयंकर दैत्य होगा। उसके आचरणसे त्रैलोक्य काँप उठेगा।'

खिन्न-मन गृत्समद अत्यन्त रमणीय पुष्पकवनमें पहुँचे। वहाँ वीतराग वयोवृद्ध ऋषि रहते थे और जल-फल वहाँ सुविधानुसार प्राप्त थे। ऋषियोंकी आज्ञा प्राप्तकर गृत्समद वहीं रहने लगे।

गृत्समदने ज्ञान-गुण-अयन, औदार्यनिधि विनायकको प्रसन्न करनेके लिये बड़ी कठोर तपस्या प्रारम्भ की। स्नानादिके उपरान्त वे पैरके अँगूठेके बलपर खड़े होकर दीनवत्सल गणनाथका ध्यान करने लगे। अत्यन्त संयतेन्द्रिय गृत्समदने प्रथमेश्वर गणेशका जप करते हुए केवल वायुके आधारपर एक सहस्र दिव्य वर्षतक घोर तपश्चरण किया। तदनन्तर उन्होंने एक जीर्ण पत्ता खाकर पंद्रह हजार वर्षतक कठोर तपस्या की ।

जैसे गाय अपने बछड़ेका रँभाना सुनकर दौड़ती चली आती है, उसी प्रकार गृत्समदके अत्यन्त कठोर तपसे संतुष्ट होकर अनुग्रहमूर्ति गणेशजी अत्यन्त शीघ्रतासे उनके समीप पहुँचे। उस समय उनका तेज सहस्रों सूर्योंके समान था, जिससे वे सम्पूर्ण विश्वको उद्भासित कर रहे थे। तालपत्रके समान उनके कान हिल रहे थे। वे विशाल गजराजकी-सी लीला कर रहे थे और आकर्षक क्रीडामें सानन्द आसक्त थे। उनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभायमान था, गलेमें विशाल कमल-माला सुशोभित थी। उनके एक हाथमें सनाल कमल था और वे सिंहपर आरूढ थे। उनकी दस भुजाएँ थीं। वे सर्पका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे । उनके विग्रहपर केसर, अगर, कस्तूरी और शुभ्र चन्दनका लेप था। उन जगत्कारण प्रभुकी दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनके साथ थीं। उनका स्वरूप अनिर्देश्य था और वे लीलासे ही मुनि (गृत्समद)-के सम्मुख प्रकट हो गये। बुद्धिसिन्धु गणनाथने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वरसे कहा—'तुम्हारे कठोर तपसे मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छा व्यक्त करो; मैं उसे पूर्ण करूँगा।'

'सर्वशक्तिसम्पन्न प्रभो ! आप मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति दीजिये और यथार्थ ज्ञान प्रदान कीजिये।' गृत्समदने भयापह गजदन्तके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणामकर करबद्ध याचना की—'सर्वकल्याणकारी मङ्गलमय प्रभो ! यह 'पुष्पकवन' गणेशपुरके नामसे प्रख्यात हो और आप यहाँ रहकर भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करते रहें।'

'तुम मेरे नैष्ठिक भक्त होओगे और तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।' भक्तवत्सल वरदमूर्तिने वर प्रदान करते हुए कहा—'तुम्हें त्रैलोक्यविख्यात अत्यन्त शक्तिशाली पुत्रकी प्राप्ति होगी। उसे केवल कालकाल शिव ही पराजित कर सकेंगे। कृतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगमें इस क्षेत्रके नाम क्रमशः पुष्पक, मणिपुर, मानक और भद्रक होंगे। यहाँ स्नान-दानसे मनुष्यकी समस्त कामनाएँ पूरी होंगी।'

यों कहकर सर्प-यज्ञोपवीतधारी गजानन अन्तर्धान हो गये।

गृत्समदमुनिने अत्यन्त हर्षित होकर वहाँ एक सुन्दर मन्दिरका निर्माण करवाया और उसमें अपने आराध्य प्रथमेश्वर गजमुखकी प्रतिमा स्थापित की। उसका नाम 'वरद' प्रसिद्ध हुआ।

ब्राह्मणों एवं ऋषियोंसे सम्मानित गृत्समदमुनि अपने आराध्यके ही ध्यान, पूजन एवं भजन-स्मरणमें अपना समय व्यतीत करने लगे। एक दिनकी बात है, उनके सम्मुख एक अत्यन्त तेजस्वी वस्त्रालंकारभूषित बालक प्रकट हुआ।

त्रिपुरकी गणेशोपासना

आश्चर्यचकित मुनिके प्रश्न करनेपर उस बालकने कहा—'मैं आपका पुत्र हूँ। आपकी छींकसे मेरी उत्पत्ति हुई है। आप कृपापूर्वक मेरा कुछ दिन पालन करें। मैं अपने पौरुषसे इन्द्रादि देवताओंसहित त्रैलोक्यपर विजय प्राप्त करूँगा।'

उस तेजस्वी बालककी वाणीसे भयभीत मुनिने उसे अपने इष्टदेवकी उपासना करनेकी प्रेरणा दी। देवत्राता गणेशका मन्त्र भी उन्होंने उसे बता दिया।

पिताकी प्रेरणासे वह बालक एकान्त-शान्त वनमें चला गया और वहाँ वह एक अँगूठेपर खड़ा होकर अज, अनादि और अनन्त विनायकका ध्यान करते हुए उनके मन्त्रका जप करने लगा। इस प्रकार उसे निराहार रहकर कठोर तप करते हुए पंद्रह सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये।

भक्तवत्सल गजमुख प्रसन्न हुए। दयाधाम एकदन्तने

तपस्वी बालकके सम्मुख प्रकट होकर भयानक शब्द किया।

मुनिपुत्रने देखा—सम्मुख नाना प्रकारके वस्त्राभरणोंसे अलंकृत, चतुर्भुज महाकाय इष्टदेव खड़े हैं। उनके कर-कमलोंमें परशु, कमलमाला एवं मोदक सुशोभित है—

चतुर्भुजं महाकायं नानाभूषाविभूषितम्॥
परशुं कमलं मालां मोदकान् बिभ्रतं करैः।

(गणेशपु० १। ३८। २५-२६)

'प्रभो! आपके अपरिमित तेजसे मैं भयभीत हो रहा हूँ। आप कृपापूर्वक प्रसन्न होकर मेरी कामना-पूर्ति कीजिये।' चरणोंमें प्रणामकर मुनिपुत्रने डरते हुए सर्वव्यापी, सर्वात्मा, समस्त जीव-जगत्के स्वामी गजाननसे प्रार्थना की।

'मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ। तुम इच्छित वर माँगो।' सिन्दूराङ्गने अपना तेज समेटकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'मैं बालक हूँ। स्तुति करना नहीं जानता।' गृत्समदके पुत्रने इच्छाशक्तिधर गणपतिसे वरकी याचनाकी—'आप प्रसन्न होकर त्रैलोक्यको आकृष्ट करनेकी विशिष्ट शक्ति मुझे प्रदान कीजिये। देव, दानव, गन्धर्व, मनुष्य, राक्षस और सर्पादिकोंको मैं अपने वशमें कर लूँ। इन्द्रादि लोकपाल सदा मेरी सेवा करें और मेरी इच्छित सभी वस्तुएँ मुझे प्राप्त होती रहें। इस जीवनमें सम्पूर्ण सुखोंका उपभोग कर मैं मृत्युके समय मोक्ष प्राप्त कर लूँ। मेरी यह तपोभूमि पवित्र 'गणेशपुर' के नामसे प्रसिद्ध हो।'

'तुम सतत निर्भय एवं त्रैलोक्यविजयी होओगे।' रक्ताम्बरधर गजदन्तने वर प्रदान करते हुए कहा—'लौह, रजत एवं स्वर्णके तीन नगर मैं तुम्हें देता हूँ। भगवान् शूलपाणिके अतिरिक्त अन्य कोई इन्हें नष्ट नहीं कर सकेगा। तुम्हारा नाम 'त्रिपुर' होगा। जब भूतभावन महादेव अपने एक ही शरसे इन तीनों पुरोंको ध्वस्त करेंगे, तब तुम्हें मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। मेरी कृपासे तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूर्ण होंगी।'

ऐसा कहकर मूषकारोही अन्तर्धान हो गये। त्रिपुरासुरकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उसने वहाँ मूषकध्वजका अत्यन्त भव्य मन्दिर बनवाया और फिर आदिदेव गणेशकी प्रतिमा स्थापितकर उसकी श्रद्धा और विधिपूर्वक षोडशोपचारसे पूजा की। उसने गद्गद-कण्ठसे धन-धान्यपति सिद्धि-सदनकी स्तुतिकर, उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति लोटकर बार-बार प्रणाम किया। फिर उसने गजमुखसे क्षमा-याचना कर ब्राह्मणोंको दान दिया। तदनन्तर वह त्रैलोक्य-विजयके लिये निकल पड़ा।

वरप्राप्त महान् त्रिपुरके सम्मुख पृथ्वी, स्वर्ग और पातालके देव, दनुज तथा नाग आदि शूर-वीर नहीं टिक सके। सभी पराजित हुए। अमरावतीपर त्रिपुरका अधिकार हो गया। देव-समुदाय प्राण-भयसे यत्र-तत्र पलायित हुआ। गृत्समदके पुत्र त्रिपुरके भयसे चतुर्मुख नाभि-कमलमें प्रविष्ट हो गये। लक्ष्मीपति क्षीराब्धिके लिये प्रस्थित हुए। अत्यन्त शक्तिशाली त्रिपुरने अपने पुत्र चण्डको वैकुण्ठका और प्रचण्डको ब्रह्मलोकका अधिकार प्रदान किया।

इसके अनन्तर अत्यन्त उद्धत त्रिपुर युद्धकी कामनासे कैलास पहुँचा। उसने कैलासको झकझोर दिया। वरदमूर्ति गणेशके वरसे त्रिपुरकी शक्तिका अनुमान करके पार्वतीवल्लभने उसके सम्मुख जाकर कहा—'मैं संतुष्ट हूँ, वर माँगो।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कैलास मुझे देकर स्वयं मन्दरगिरिपर चले जायँ।' यही उसने निस्संकोच माँगा।

मदमत्त असुरसे बचनेके लिये देवाधिदेव महादेवने कैलास छोड़ दिया और मन्दरगिरिके लिये प्रस्थित हुए।

अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरने परम विरक्त तपस्वी ऋषि-मुनियोंको बंदी बनाकर उनके शान्ति-निकेतन आश्रमोंको ध्वस्त कर डाला। इतना ही नहीं, उसके भयसे यज्ञादि कर्म एवं श्रुतियोंका उद्घोष शान्त हो गया। त्रैलोक्यमें सर्वत्र असुरताका साम्राज्य व्याप्त था।

देवताओंद्वारा गणेशाराधन

स्वर्गसे निर्वासित गिरि-कन्दराओंमें छिपे देवगण चिन्तित एवं दुःखी थे। 'असुर कैसे पराजित हों?'—यही सोचा करते; किंतु वे सर्वथा असहाय एवं निरुपाय थे। उनकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी।

एक दिन उनके समीप ब्रह्मपुत्र देवर्षि नारद पहुँचे। उन्होंने सुरोंको बताया—'त्रिपुरकी अजेयताका मुख्य हेतु सर्वसमर्थ विनायकका वर है। आप लोग भी उन आदिदेव सिन्दूरपूर-परिपूरिताङ्ग गजमुखको संतुष्ट कर लें, तब उस

असुरका वध हो सकेगा।'

देवर्षिने देवताओंको सर्वव्यापी गणेशका मन्त्र बताया और वे अपनी वीणापर हरि-गुण-गान करते हुए प्रस्थित हुए।

देव-समुदाय आदिदेव गणेशकी तुष्टिके लिये उनकी आराधनामें प्रवृत्त हुआ। सुरोंकी निष्ठा देखकर करुणामय गजानन उनके सम्मुख उपस्थित हुए। देवताओंने हर्षातिरेकसे करि-कलभाननके चरण-कमलोंमें प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे।

'देवताओ! मैं तुम्हारी तपस्या एवं स्तुतिसे प्रसन्न हूँ।' करुणामय वरदाता गजकर्णने सुर-समुदायको आनन्द प्रदान करते हुए कहा—'तुम वर माँगो। मैं तुम्हारी समस्त कामनाएँ पूरी करूँगा।'

'सर्वेश्वर!' देवताओंने अपनी व्यथा-कथा सुनाते हुए निवेदन किया—'अमित शक्तिसम्पन्न त्रिपुरके भयसे हम गिरि-गुहामें रहनेके लिये विवश हैं। अमरावतीका उपभोग दुर्दान्त दानव कर रहा है। आप उद्दण्ड त्रिपुरका वध करके हमारी विपत्ति दूर करें।'

'मैं निश्चय ही क्रूरकर्मी त्रिपुरसे आप लोगोंकी रक्षा करूँगा।' द्विरदाननने सुरोंको आश्वस्त करते हुए कहा। यह कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये। वे बुद्धिराशि प्रभु ब्राह्मणके वेषमें त्रिपुरासुरके समीप पहुँचे और परिचय देते हुए बोले—

'कलाधर मेरा नाम है।' त्रिपुरासुरने उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी पूजा की। उसके पूछनेपर सर्वथा निःस्पृह ब्राह्मण-वेषधारी गणनाथने उसके वैभवकी प्रशंसा करते हुए कहा—'भगवान् शिवद्वारा पूजित सर्वकामप्रद अद्वितीय गणेश-प्रतिमा कैलासमें है; मैं उक्त त्रैलोक्यदुर्लभ मूर्तिकी कामनासे तुम्हारे पास आया हूँ।'

'मैं निश्चय ही वह मूर्ति आपको दूँगा।' त्रिपुरने ब्राह्मणको गणेश-प्रतिमा प्रदान करनेके लिये वचन देनेके साथ उन्हें वस्त्राभूषण, बहुमूल्य रत्न, मृगचर्म, सुरभि तथा अश्व, गज और रथ आदि भी प्रदान किये।

त्रिपुर-दूत मन्दरगिरि पहुँचे। वहाँ उन्होंने पार्वतीवल्लभसे उक्त गणेश-मूर्ति देनेके लिये कहा। शिवजी कुपित हो गये। उनके संरक्षणमें देवताओंका दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ा। दैत्योंका बड़ा विनाश हुआ, किंतु उनकी अपरिसीम सैन्य-शक्तिसे देवगण व्याकुल होकर भागने लगे।

शिवकी गणेशोपासना

देवताओंको युद्धक्षेत्रसे पलायन करते देखकर त्रिपुरासुर जगज्जननी पार्वतीको एकाकी जान कैलासकी ओर दौड़ा। इस संवादसे जननी काँप उठीं, पर हिमगिरिने उन्हें एक अत्यन्त सुरक्षित दुर्गम गिरिगह्वरमें पहुँचा दिया।

हिमगिरिनन्दिनीकी अनुपस्थितिमें त्रिपुरने कैलासमें ढूँढ़कर 'चिन्तामणि' की शुभमूर्ति प्राप्त कर ली। उक्त सर्ववाञ्छाकल्पतरु, दुर्लभ, सुन्दरतम गणेश-प्रतिमाको लेकर त्रिपुर स्वधामके लिये प्रस्थित हुआ। वन्दीजन उसका स्तवन कर रहे थे, किंतु मार्गमें विनायककी वह मङ्गलमयी मूर्ति त्रिपुरके हाथसे छूटकर अदृश्य हो गयी। यह अपशकुन देखकर त्रिपुरासुर खिन्न-चित्त हो लौटा।

सदाशिव चिन्तित थे। उद्धत असुर अत्यन्त पराक्रमशील था और धरतीपर अनीति, अनाचार एवं कुकर्मोंका ताण्डव हो रहा था। धर्मसंस्थापक मुञ्जकेश विरूपाक्ष उद्विग्न-से हो रहे थे। उसी समय देवर्षि नारद उनके समीप पहुँचे। पार्वतीकान्तने उन्हें आदरपूर्वक आसन देकर उनकी पूजा की।

'दैत्योंके पराक्रमसे त्रैलोक्यमें अधर्म फैल गया है।' दुःखी मनसे शूलपाणिने नारदजीको बताया—'युद्धमें देवता टिक नहीं सके; वे प्राण लेकर भाग खड़े हुए। महाबली असुरने मेरे अस्त्रोंको भी विफल कर दिया।'

'सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ एवं सर्वान्तर्यामी महेश्वर!' साश्चर्य देवर्षिने महादेवसे कहा—'आप सर्वसमर्थ एवं सृष्टिस्थित्यन्तकारी होकर भी अद्भुत लीला कर रहे हैं।'

कुछ क्षण ध्यान करके उन्होंने भुजगेन्द्रहारको बताया—'वह्निनेत्र! युद्धके लिये प्रस्थित होते समय आपने विघ्नेश्वरकी पूजा नहीं की, इसी कारण आपकी पराजय हुई। आप अपने पुत्र गणेशकी पूजाकर उन्हें प्रसन्न कर लीजिये; फिर आपकी विजय सुनिश्चित है।'

'ब्रह्मन्! आपका कथन यथार्थ है।' कर्पूरगौरने देवर्षिसे कहा—'उन्होंने पहले ही मुझे विघ्ननिवारक मन्त्र दिये हैं, किंतु युद्धमें मुझे उनके जपकी विस्मृति हो गयी।'

देवर्षि चले गये। शोक-शूल-निर्मूलन वृषभध्वजने

दण्डकवनमें जाकर पद्मासन लगाया और वे विनायकको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगे।

सौ वर्ष बीते। तपश्चरणनिरत व्याघ्रचर्माम्बरधर शिवके मुखसे एक परम तेजस्वी श्रेष्ठ पुरुष निकले। उनके पाँच मुख और दस हाथ थे, ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित था, उनकी शरीर-कान्ति चन्द्रमाको मात कर रही थी, कण्ठमें मुण्डमाला थी, सर्पोंके आभूषण थे एवं मुकुट और बाजूबंदकी निराली छटा थी। वे अपनी प्रभासे अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रहे थे। उन्होंने अपनी दसों भुजाओंमें दस आयुध धारण कर रखे थे।

'क्या मेरे ही दो रूप हो गये?' नीलकण्ठ शिव आश्चर्यचकित हो सोचने लगे—'या यह त्रिपुरासुरकी माया तो नहीं है? मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ अथवा मैं जिन आदिदेव विनायकका अहर्निश ध्यान करता हूँ, उन्होंने ही कृपापूर्वक मुझे दर्शन दिया है?'

'आप अपने मनमें जिनका विचार करते हैं, मैं वही विघ्नविनाशक हूँ।' सर्वकर्ता सुमुखने आशुतोषसे कहा—'मेरे यथार्थ स्वरूपको देवता, ऋषि और विधाता भी नहीं जानते। वेद और उपनिषद् भी नहीं जानते, फिर षट्शास्त्रोंके ज्ञाता तो कैसे जान सकते हैं? मैं अनन्त लोकोंका स्रष्टा, पालक एवं संहारक हूँ। मैं चराचर जगत् एवं ब्रह्मा तथा तीनों गुणोंका स्वामी हूँ। आपके तपसे संतुष्ट होकर मैं यहाँ वर प्रदान करने आया हूँ, महादेव! आप इच्छानुसार वर माँग लीजिये।'

वरद विनायकके वचन सुन महेश्वर अपना स्वरूप भूलकर हर्ष-गद्गद वाणीसे उनकी स्तुति करने लगे—

'हे देव! आज आपकी पूजा करनेसे मेरे दसों नेत्र और दसों भुजाएँ धन्य हैं। आपको प्रणाम करनेसे मेरे पाँचों सिर और आपका स्तवन करनेसे मेरे पाँचों मुख भी धन्य हो गये। पृथ्वी,जल, वायु, दिशाएँ, तेज, कलनात्मक काल, आकाश, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श, शब्द, मन, इन्द्रियाँ, गन्धर्व, यक्ष, पितर, मनुष्य, देवर्षि, देवगण, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वसु, साध्य तथा आपसे उत्पन्न सभी चराचर धन्य हैं। आप रजोगुणसे सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना और सत्त्वगुणसे पालन करते हैं, तथा हे गुणेश्वर! आप तमोगुणके द्वारा उनका संहार करते हैं। आप नित्य, निरपेक्ष एवं समस्त कर्मोंके साक्षी हैं।'

'आपके स्मरण करते ही मैं आपके समीप आ जाऊँगा और आपका कार्य पूरा हो जायगा।' देवाधिदेव महादेवके स्तवनसे संतुष्ट होकर गुणाधीशने उनसे कहा—'आप मेरे बीज-मन्त्र (गं)-का उच्चारण करके पुरत्रयपर एक शर छोड़ेंगे तो वह ध्वस्त हो जायगा।'

इसके अनन्तर शिवपर प्रसन्न हुए गम्भीरलोचन गजमुखने उन्हें अपने सहस्रनामका उपदेश दिया और बोले—'तीनों संध्याओंमें इसके पाठसे मनुष्यकी कामनाएँ सिद्ध होंगी। युद्धके पूर्व आप इसका पाठ कर लें तो असुरोंका शीघ्र नाश हो जायगा।'

द्विरदाननके वरसे प्रसन्न होकर काम-मद-मोचन शिवने विधिपूर्वक उनकी पूजा की[१] और वहाँ एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें उनकी प्रतिष्ठा की। फिर देवता, मुनि और सिद्धोंको तृप्तकर ब्राह्मणोंको दान दिया। इसके अनन्तर तामरसलोचन वृषभध्वजने पुनः गुरुमन्त्रफलप्रद गणेशकी प्रीतिपूर्वक पूजा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवगण गङ्गाधरप्रिय गजमुखका स्तवन कर रहे थे। उसी समय पशुपतिने कहा—'इन गणेशजीका यह स्थान सम्पूर्ण लोकोंमें 'मणिपुर' के नामसे विख्यात हो।'

गम्भीर-गुणसम्पन्न गणेश अन्तर्धान हो गये। ज्ञानद गणेशके दर्शनसे प्रसन्न देवता, मुनि, सिद्ध एवं ब्राह्मण भी अपने-अपने भाग्यकी प्रशंसा करते हुए प्रस्थित हुए। स्वर्गापवर्गदाता गङ्गाधर भी प्रसन्नतापूर्वक उठे। त्रिपुरासुर मारा गया। त्रैलोक्य तृप्त हुआ। सबने सुख-संतोषकी साँस ली। सर्वत्र हर्षकी लहर दौड़ गयी।

शिवपुराणमें कथा आती है कि असुरोंसे पूर्ण त्रिपुरको भस्म करनेके लिये कामारि शम्भुने शर-संधान किया। धनुषको दृढ़तासे धारण किये रणकर्कश शिव लक्ष्यपर दृष्टि गड़ाये एक लाख वर्षतक अडिग खड़े रहे, किंतु त्रिपुरपर[२]

१-कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥ (रा० च० मा० १। १००)

२-शिवपुराणके अनुसार तारकासुरको समान बलशाली तीन महान् पुत्र थे—तारकाक्ष, विद्युन्माली और कमलाक्ष। इन तीनोंने कठोर तपसे विधाताको संतुष्ट करके अपने-अपने लिये क्रमशः सुवर्ण, रजत एवं वज्रतुल्य लौह पुरोंको प्राप्त किया था। वे तीनों पुर एक सहस्र वर्षोंके बाद मध्याह्नमें अभिजित् मुहूर्तमें एक स्थानपर स्थित होते थे।

लक्ष्य स्थिर नहीं हुआ। उस समय देवत्राता शिवने आकाशवाणी सुनी—

भो भो न यावद् भगवन्नर्चितोऽसौ विनायकः।
पुराणि जगदीशेश साम्प्रतं न हनिष्यति॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, यु० खं० १०। ६)

'हे अखिलेश! हे भगवन्! जबतक आप विनायककी पूजा नहीं करेंगे, तबतक इन तीनों पुरोंको नष्ट नहीं कर सकेंगे।'

यह सुनकर अन्धकासुरसंहारी त्रिलोचनने भद्रकालीको बुलाकर गणेशजीकी पूजा की, भगवान् पशुपतिकी हर्षपूरित पूजासे विनायक संतुष्ट हुए, तत्पश्चात् लोकनाथ हरने महात्मा तारकपुत्रोंके तीनों पुरोंको देखा, तब उन्होंने अभिजित् मुहूर्तमें अपने अद्भुत धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचा। उससे अत्यन्त भयानक शब्द हुआ। देवदेव शिवने असुरोंको अपना नाम सुनाते हुए कोटिसूर्यसमप्रभ उग्र शर छोड़ दिया। उक्त परम तेजस्वी अग्नितुल्य दहकते हुए तीक्ष्ण शरके स्पर्शसे समस्त दैत्योंसहित त्रिपुर भस्म हो गया।

शिवप्राणवल्लभा भगवती उमाने भी मिष्टान्न-भोजी गजाननकी श्रद्धा और भक्तिसे पूजा की थी। रेणुकानन्दन परशुराम भी इन गङ्गाजल-रसास्वाद-चतुर गजमुखकी उपासनासे शक्ति अर्जित करनेमें समर्थ हुए।

(गणेशपुराण)

श्रीराधाकी गणेशोपासना

पुण्यमय शुभ क्षेत्र सिद्धाश्रमकी बड़ी महिमा है। सनत्कुमारने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। स्वयं लोक-पितामहने भी वहाँ तपश्चरण किया था और सिद्ध हुए थे। महात्मा कपिल और महेन्द्रने भी वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। इसी कारण उस दुर्लभ पावन क्षेत्रका नाम 'सिद्धाश्रम' प्रसिद्ध हुआ। उस पुण्यमय क्षेत्रमें नित्यदेवता गजानन नित्य निवास करते हैं।

वहाँ वैशाखी पूर्णिमाके अवसरपर सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि भी वरद गणपतिकी पूजा करते हैं।

एक बारकी बात है। पवित्र वैशाखकी पूर्णिमा थी। उस पुनीत अवसरपर हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीके साथ कल्याणकारी जगत्पति शिव, गणोंसहित षडानन और स्वयं पद्मयोनि भी सिद्धाश्रम पहुँचे। भगवान् गणेशकी पूजा करनेके लिये सभी देवता, मनु, मुनिगण और नरेश भी वहाँ उपस्थित हुए। द्वारकापुरीके निवासियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी वहाँ पधारे। सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा रासरासेश्वरी श्रीराधारानीका भी गोलोकवासिनी गोपकुमारी सखियोंके साथ वहाँ शुभागमन हुआ। भक्तानुग्रहमूर्ति श्रीराधारानीने वहाँ स्नान करके शुद्ध साड़ी और कंचुकी धारण की, फिर त्रैलोक्यपावनी कृष्णप्रियाने अपने चरणोंको अच्छी प्रकार धोया। इसके अनन्तर उन्होंने निराहार एवं संयतेन्द्रिय हो मणि-मण्डपमें प्रवेश किया।

वहाँ गोलोकविहारिणी श्रीकृष्णप्रियाने अपने प्राणधन श्रीकृष्णकी प्राप्तिकी कामनासे विधिवत् संकल्प किया। तदनन्तर उन्होंने परम पावनी सुरसरिके निर्मल जलसे भालचन्द गजाननको स्नान कराया। फिर सत्कीर्तिसम्पन्ना भगवती राधा अपने कर-कमलोंमें श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रकारसे

लम्बोदरका ध्यान करने लगीं। ध्यान करनेके अनन्तर परम सती राधाने उक्त पुष्पका अपने मस्तकसे स्पर्श कराकर, फिर सर्वाङ्गशुद्धिके लिये वेदोक्त न्यास किया। तदनन्तर ब्रह्मस्वरूपा राधारानीने पुनः उपर्युक्त कल्याणकर ध्यानके द्वारा उक्त पुष्प शूर्पकर्णके चरणोंमे अर्पित कर दिया। इसके बाद परम महिमामयी श्रीकृष्ण-प्राणवल्लभा श्रीराधाने सुगन्धित सुशीतल पवित्र तीर्थजल, दूर्वा, चावल, सुगन्धित श्वेत पुष्प,

सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य, पारिजात-पुष्पोंकी माला, कस्तूरी-केसरयुक्त चन्दन, उत्तम धूप, घृतदीप, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, फल, विविध प्रकारके मोदक और व्यञ्जन, अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासन, दो सुन्दर वस्त्र, मधुपर्क, ताम्बूल, अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-मुक्ता-हीरासे सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या, सवत्सा कामधेनु गौ और पुष्पाञ्जलि अर्पितकर अत्यन्त श्रद्धा और विधिपूर्वक शिवप्रिया पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्रकी षोडशोपचारपूर्वक पूजा की। इसके बाद श्रीकृष्णहृदयाधिकारिणी श्रीराधाने गणेशके इस षोडशाक्षर मन्त्रका एक सहस्र जप किया।

'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा॥'

(ब्रह्मवैवर्तपु०, कृ० ज० खं० १२१। १००)

जपके अनन्तर पराम्बा भगवती राधाके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सिर झुकाये पुलकित होकर गद्‌गद-कण्ठसे गणेशजीका स्तवन करने लगीं।

सर्वेश्वरी श्रीराधाने भक्तिपूर्वक विधिवत् गणेशकी पूजा एवं वन्दना की। उनके मङ्गलमय सर्वाङ्गमें धारण करने योग्य बहुमूल्य रत्नोंके विविध आभूषण प्रदान किये।

'जगज्जननी! तुम्हारा यह अर्चन-वन्दन जगत्‌को शिक्षा देनेके लिये है।' सत्यस्वरूपा श्रीराधाकी श्रद्धा-भक्ति एवं पूजोपकरणोंसे संतुष्ट होकर वरद गणेशने कहा—'तुम स्वयं ब्रह्मस्वरूपा एवं श्रीकृष्ण-वक्षःस्थलपर वास करनेवाली हो।'

महामहिमामयी श्रीराधाकी कल-कीर्तिका गान करते हुए परम प्रसन्न गणपतिने कहा—'मातः! तुमने मुझे जिन-जिन वस्तुओंको समर्पित किया है, उन सबको सार्थक कर डालो अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उन्हें ब्राह्मणोंको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा; क्योंकि देवताओंको देने योग्य दान या दक्षिणा ब्राह्मणको दे देनेसे अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है; क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं, वह देवताओंको मिलता ही है।'

तब गोलोकवासिनी श्रीराधाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया। इससे मङ्गलमूर्ति गणेश तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार अभीष्ट-पूर्त्यर्थ प्रायः समस्त देवताओंने समय-समयपर इन विघ्नविनाशन मोदकप्रिय आदिदेवकी पूजा-अर्चा की।

(ब्रह्मवैवर्त कृष्णजन्मखण्ड)

देवताओंद्वारा गणेश-वन्दना

एक बारकी बात है। पवित्र गौतमीके उत्तर तटपर देवताओंने यज्ञ प्रारम्भ किया, परंतु उसमें अनेक विघ्न पड़ने लगे। यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सका। उदास होकर देवताओंने ब्रह्मा और विष्णुसे इसका कारण पूछा। दयामय चतुराननने ध्यानस्थ होकर इसके कारणका पता लगाया और फिर उन्होंने सुर-समुदायसे कहा—'इस यज्ञमें श्रीगणेशजी विघ्न उपस्थित कर रहे हैं। इसी कारण यज्ञ सविधि सम्पन्न नहीं हो पा रहा है। आप लोग आदिदेव विनायकको प्रसन्न कर लें, तब यज्ञ पूर्ण हो जायगा।'

विधाताके परामर्शसे देवताओंने गौतमीके निर्मल जलमें स्नान किया और फिर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक वे अम्बिकानन्दन श्रीगणेशजीकी स्तुति करने लगे—

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसम्भवानाम्।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसम्प्रदाता।
निश्चित्य चैतत् त्रिपुरान्तकोऽपि तं पूजयामास वधे पुराणाम्॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन् महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां पूर्णा भविष्यन्ति मनोऽभिलाषाः॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव।
अतोऽवदन् सुरसंघाः कृतार्थाः सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः॥
यो मातुरुत्सङ्गगतोऽथ मात्रा निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु गणाधिनाथस्य विनोद एषः॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
संतोषितो नूपुररावमात्राद् गणेश्वरत्वेऽभिषिषेच पुत्रम्॥
यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत् स्कन्धे कुठारं च तथा परेण।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥
धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं नैव विनाशमस्ति तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥
यस्यार्चनात् प्रार्थनयानुरूपां दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्।

स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः।
संतोषयामास तदातितुष्टं तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥

(ब्रह्मपुराण ११४। ६—१६)

'सदा सब कार्योंमें सम्पूर्ण देवता तथा शिव, विष्णु और ब्रह्माजी भी जिनका पूजन, नमस्कार और चिन्तन करते हैं, उन विघ्नराज गणेशकी हम शरण ग्रहण करते हैं। विघ्नराज गणेशके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाला कोई देवता नहीं है, ऐसा निश्चय करके त्रिपुरारि महादेवजीने भी त्रिपुरवधके समय पहले उनका पूजन किया था। जिनका ध्यान करनेसे सम्पूर्ण देहधारियोंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं, वे अम्बिकानन्दन गणेश इस महायज्ञमें शीघ्र ही हमारे विघ्नोंका निवारण करें। देवी पार्वतीके चिन्तनमात्रसे ही गणेशजी-जैसा पुत्र उत्पन्न हो गया, इससे सम्पूर्ण जगत्‌में महान् उत्सव छा गया है।'—यह बात उन देवताओंने अपने मुखसे कही थी, जो नवजात शिशुके रूपमें गणेशजीको नमस्कार करके कृतार्थ हुए थे। माताकी गोदमें बैठे हुए और माताके मना करनेपर भी जिन्होंने पिताके ललाटमें स्थित चन्द्रमाको बलपूर्वक पकड़कर उनकी जटाओंमें छिपा दिया, यह गणेशजीका बालविनोद था। यद्यपि वे पूर्ण तृप्त थे, तब भी अधिक देरतक माताके स्तनोंका दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं बड़े भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। उनकी बुद्धिमें बालस्वभाववश भाईके प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान् शंकरने विनोदवश कहा—'विघ्नराज! तुम बहुत दूध पीते हो, इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' यों कहकर उन्होंने उनका नाम 'लम्बोदर' रख दिया। देवसमुदायसे घिरे हुए महेश्वरने कहा—'बेटा! तुम्हारा नृत्य होना चाहिये।' यह सुनकर उन्होंने अपने घुँघुरूकी आवाजसे ही शंकरजीको संतुष्ट कर दिया। इससे प्रसन्न होकर शिवने अपने पुत्रको गणेशके पदपर अभिषिक्त कर दिया। जो एक हाथमें विघ्नपाश और दूसरे हाथसे कंधेपर कुठार लिये रहते हैं तथा पूजा न पानेपर अपनी माताके कार्यमें भी विघ्न डाल देते हैं, उन विघ्नराजके समान दूसरा कौन है। जो धर्म, अर्थ और काम आदिमें सबसे पहले पूजनीय हैं तथा देवता और असुर भी प्रतिदिन जिनकी पूजा करते हैं, जिनके पूजनका फल कभी नष्ट नहीं होता, उन प्रथम पूजनीय गणेशको हम पहले मस्तक नवाते हैं। जिनकी पूजासे सबको प्रार्थनाके अनुरूप सब प्रकारके फलकी सिद्धि दृष्टिगोचर होती है, जिन्हें अपने स्वतन्त्र सामर्थ्यपर अत्यन्त गर्व है, उन बन्धुप्रिय मूषक-वाहन गणेशजीकी हम स्तुति करते हैं। जिन्होंने अपने सरस संगीत, नृत्य, समस्त मनोरथोंकी सिद्धि तथा विनोदके द्वारा माता पार्वतीको पूर्ण संतुष्ट किया है, उन अत्यन्त संतुष्ट हृदयवाले श्रीगणेशकी हम शरण लेते हैं।'

'देवताओ! अब तुम्हारा यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जायगा।' सुर-समुदायके स्तवनसे संतुष्ट होकर भगवान् गजाननने प्रकट होकर कहा—'जो लोग इस स्तोत्रसे मेरा स्तवन करेंगे, वे

दरिद्रता और दुःखसे बचे रहेंगे। इस तीर्थमें सोत्साह सविधि स्नान-दान करनेवालोंके कार्यमें भी विघ्न उपस्थित नहीं होगा। आप लोग भी इसका समर्थन करें।'

भगवान् लम्बोदरके वचनसे प्रसन्न होकर देवताओंने उक्त पावन अविघ्न तीर्थके सम्बन्धमें तुरंत एक स्वरसे कहा—'ऐसा ही होगा।'

फिर देवताओंने उल्लासपूर्वक यज्ञ पूर्ण कर लिया।

अभिशप्त चन्द्र

एक समय गणेशजीके द्वारा चन्द्रमाको शाप प्राप्त हुआ

था। गणेशपुराणकी वह कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

एक बारकी बात है, कैलासके शिव-सदनमें लोक-पितामह ब्रह्मा कर्पूरगौर शिवके समीप बैठे थे। उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे। उनके पास एक अतिशय सुन्दर और स्वादिष्ट अपूर्व फल था। उक्त फल देवर्षिने करुणामय उमानाथके कर-कमलोंमें अर्पित कर दिया।

उक्त अद्भुत और सुन्दर फल पिताके हाथमें देखकर गणेश और कुमार दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे। तब शिवने ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन्! देवर्षि-प्रदत्त यह अपूर्व फल एक ही है और इसे गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं; आप बतायें, इसे किसे दूँ?'

चतुर्मुखने उत्तर दिया—'प्रभो! छोटे होनेके कारण इस एकमात्र फलके अधिकारी तो षडानन ही हैं।'

गङ्गाधरने फल कुमारको दे दिया, किंतु पार्वतीनन्दन गणेश सृष्टिकर्ता ब्रह्मापर कुपित हो गये।

लोक-पितामहने अपने भवन पहुँचकर सृष्टि-रचनाका प्रयत्न किया तो गजवक्त्रने अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया। वे अत्यन्त उग्ररूपमें विधाताके सम्मुख प्रकट हुए। विघ्नेश्वरके उत्कट स्वरूपको देखकर विधाता भयभीत होकर काँपने लगे।

गजाननकी विकट मूर्ति एवं ब्रह्माका भय और कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणोंके साथ हँस पड़े।

चन्द्रमाको हँसते देख गजमुखको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने चन्द्रदेवको तुरंत शाप दे दिया—'चन्द्र! अब तुम किसीके देखने योग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसीने तुम्हें देख लिया तो वह पापका भागी होगा।'

गजकर्ण वहाँसे चले गये। चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त चिन्तापूर्वक मन-ही-मन कहने लगे—'अणिमादि गुणोंसे युक्त, जगत्-कारण-कारण परमेश्वरके साथ मैंने मूर्खकी भाँति दुराचरण कैसे किया? मैं सबके लिये अदर्शनीय, वर्णहीन और अत्यन्त मलिन हो गया। अब मैं पुनः कलाओंसे युक्त, सुन्दर, वन्द्य एवं देवताओंके लिये सुखद कैसे हो सकूँगा?'

ऐसा विचारकर दुःखी सुधाकर परम प्रभु गजमुखकी शरण हुए। वे पुण्यतोया जाह्नवीके दक्षिण तटपर उन सर्वसुखदायक प्रभु गजाननका ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्रका जप करने लगे। इस प्रकार चन्द्रदेवने गणेशको संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षतक कठोर तप किया। इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए।

सिन्दूरारुण, रक्तमाल्याम्बरधर, रक्तचन्दनचर्चित, चतुर्भुज, महाकाय, कोटिसूर्याधिक दीप्तिमान् देवदेव गजानन चन्द्रमाके सम्मुख प्रकट हो गये। निशानाथने परम प्रभुके महान् स्वरूपको देखा तो वे आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, भयसे काँपने लगे, परंतु फिर उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'मेरे सम्मुख दयामय आदिदेव गजानन ही मुझे कृतार्थ करनेके लिये प्रकट हुए हैं।' तब वे हाथ जोड़कर कहने लगे—

'दयानिधान! मैंने अज्ञान-दोषके कारण आपके प्रति अपराध किया है; उसके लिये आप क्षमा-प्रदान करें। महात्मन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। यदि आप शरणागतका त्याग कर देंगे तो यह आपके लिये भी दोषकी बात होगी; अतः मुझपर कृपा कीजिये।'

चन्द्रमाके गद्गद-कण्ठसे किये गये स्तवन और दण्डवत् प्रणामसे संतुष्ट होकर परम प्रभु गणेशने कहा—'चन्द्रदेव! पहले तुम्हारा जैसा रूप था, वैसा ही हो जायगा; किंतु जो मनुष्य भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको तुम्हें देख लेगा, वह निश्चय ही अभिशापका भागी होगा। उसे पाप, हानि एवं मूढताका सामना करना पड़ेगा। उस तिथिको तुम अदर्शनीय रहोगे।[१] कृष्णपक्षकी चतुर्थीको जो लोगोंद्वारा व्रत किया जाता है, उसमें तुम्हारा उदय होनेपर यत्नपूर्वक मेरी और तुम्हारी पूजा होनी चाहिये। उस दिन लोगोंको तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिये; अन्यथा व्रतका फल नहीं मिलेगा। तुम एक अंशसे मेरे ललाटमें स्थित रहो, इससे मुझे प्रसन्नता होगी। प्रत्येक मासकी द्वितीया तिथिको लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे।'

परम प्रभु गजाननके वर-प्रभावसे सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये। (गणेशपुराण)

१-भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थीको चन्द्र-दर्शनजनित दोष दूर करनेके लिये श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धके ५७वें अध्यायमें वर्णित स्यमन्तकहरणका प्रसंग पढ़ना या सुनना चाहिये।

पराम्बा-लीला-चिन्तन

[सृष्टिकर्त्री भगवती आदिशक्तिका नाम ही मूल प्रकृति है। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वयं 'प्रकृति' और 'पुरुष'—इन दो रूपोंमें प्रकट होकर अनेक प्रकारकी लीला करते हैं। ये प्रकृतिदेवी सृष्टिके पूर्वमें भी स्थित रहती हैं, इसलिये मूल प्रकृति कही जाती हैं। परब्रह्म परमात्माके सभी गुण इनमें विद्यमान रहते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इन्हींका लीला-विलास है। विभिन्न प्रकारकी सृष्टिका सृजनकर अपनी लीलासे जगत्‌को आह्लादित करना इनका प्रधान उद्देश्य है। भगवती प्रकृति भक्तोंके अनुरोधसे अथवा उनपर अनुग्रह करनेके लिये अनेक लीला-रूप धारण करती हैं। ये एक ही शक्तिदेवी मूल रूपसे विभिन्न लीलारूपोंमें प्रादुर्भूत होती हैं। इनका संक्षिप्त परिचय लीला-चिन्तनके रूपमें यहाँ प्रस्तुत है।—सं०]

भगवती मूल प्रकृतिके विविध लीलावतारोंका चिन्तन

भगवती सावित्री

देवी सावित्री वेद-जननी हैं। ये सदा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये इन्होंने शुद्ध चिन्मय विग्रह धारण किया है। इनका विग्रह मङ्गलमय तथा मन्त्रमय है। छन्द और वेद इन्हींसे आविर्भूत हैं। संध्या-वन्दनके मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी भगवती सावित्री ही हैं। इन्हींका नाम गायत्री है। ये जपरूपा, तपस्विनी ब्रह्मतेजसे सम्पन्न तथा सर्वसंस्कारमयी हैं। प्रातः-मध्याह्न तथा सायं तीन कालोंमें ये त्रिविध कृपामय लीला-विग्रह धारण करती हैं और अपने उपासकोंके कल्याणके लिये स्वयंको भी समर्पित कर देती हैं। इनकी नित्य त्रिकाल उपासनाका विधान निरूपित है। बिना गायत्रीकी उपासनाके कोई भी धर्म-कर्म सफल नहीं हो पाता। इसलिये अत्यन्त पवित्र-बुद्धिसे बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होकर भगवती सावित्रीकी उपासना करनी चाहिये। सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्माजीने इनकी उपासनाकर इन्हें अपनी शक्तिरूपमें प्राप्त किया था। ये अपने एक रूपसे सूर्यमण्डलमें स्थित रहकर नित्य सबको अपने लीला-विग्रहका दर्शन कराती रहती हैं। भगवती सावित्रीकी स्वच्छ कान्ति शुद्ध स्फटिक मणिके समान है। ये शुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे शोभा पाती हैं। ये परब्रह्मस्वरूपा हैं। ब्रह्मतेजसे सम्पन्न परम शक्ति हैं। महाराज अश्वपतिने इन्हीं देवी सावित्रीकी उपासना करके इन्हें अपनी पुत्रीके रूपमें प्राप्त किया, जिनका पातिव्रत्य-धर्म त्रैलोक्यके लिये आदर्श एवं पूज्य बन गया, इन्होंने कालशक्तिको जीत लिया। इस प्रकार अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवती सावित्री अनेक लीला-रूप धारणकर उन्हें परम आनन्द प्रदान करती हैं।

रासेश्वरी श्रीराधा

रासेश्वरी श्रीराधा नित्यनिकुंजेश्वरी, नित्य-किशोरी और रासक्रीडा तथा अलौकिक प्रवर्धमान आनन्दकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सौन्दर्यसारसर्वस्व हैं। ये साक्षात् लीला-रूप हैं, क्रीडा-रूप हैं, आनन्द-रूप हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके महारासमण्डलमें इन नित्यकिशोरीजीका आविर्भाव हुआ, वैसे ये परमात्मा श्रीकृष्णके हृदयमें नित्य विराजमान रहती हैं। गोलोक इनका लीलाधाम है। ये परम आह्लादस्वरूपिणी हैं। प्रेम-मूर्ति हैं। 'रासेश्वरी' तथा 'सुरसिका' इनका प्रसिद्ध नाम है। ये गोपी-वेषसे विराजती हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी, संत, महात्मा एवं ऋषि-मुनि भी इनके लीला-रहस्योंको तत्त्वतः समझनेमें भूल कर जाते हैं। वस्तुतः बिना रासेश्वरीकी कृपाशक्तिके उनकी लीलाको समझना असम्भव ही है। यद्यपि इनका विग्रह विशुद्ध चिन्मयरूप है, तथापि आनन्दमयी महालीलाके लिये ये वृषभानुपुत्रीके रूपमें अवतरित हुई हैं। ये नीलवर्णके दिव्य वस्त्र धारण करती हैं तथा अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये रहते हैं। इनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है और इनका सर्वाङ्गपूर्ण विग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। समग्र सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य, लावण्य, तेज, कान्ति, श्रीवैभव और समग्र परमानन्द इन देवी भगवती श्रीराधामें प्रतिष्ठित हैं। इनके

चरण-कमलका स्पर्श पाकर पृथ्वी परम पवित्र और धन्य हुई है। ये परब्रह्म भगवान्‌की सनातनी लीला हैं। इनकी लीलाएँ अचिन्त्य एवं परम आह्लादमयी हैं।

इस प्रकार भगवती मूल प्रकृति ही अपने पूर्णरूपमें दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री तथा राधा—इन पाँच पृथक्-पृथक् नामोंसे व्यवहृत होती हैं। ये मूल प्रकृतिकी परिपूर्णतम अवतार हैं। इन्हींके अंश, अंशांश, कला, कलांशसे यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है। ब्रह्माण्डमें स्त्रीवाचक जो भी शक्तिरूप है अथवा पुरुषवाची शक्तियों, पदार्थोंमें जो शक्ति अथवा विभूति निहित है, वह वस्तुत: इन्हीं भगवती मूल प्रकृतिकी कृपाका ही अंश है। इससे स्पष्ट है कि भगवती मूलशक्ति सर्वत्र व्याप्त हैं और समस्त स्थावर-जङ्गमात्मक यह जगत् उन्हींकी शक्तिका विलास है। जगत्‌की जितनी भी स्त्रियाँ हैं वे सब शक्तिरूपा ही हैं—'......**तव देवि भेदा: स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु**।' इन्हीं प्रकृति देवीके एक प्रधान अंशसे भगवती गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ और भगवती तुलसी भी इन्हीं देवी मूल प्रकृतिकी एक समग्र लीला-रूप हैं, ऐसे ही भगवतीके षष्ठी आदि कुछ लीला-विग्रहोंका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है—

भगवती षष्ठीदेवीकी लीला-कथा[१]

इन्हीं मूल प्रकृतिके छठे अंशसे जिन देवीका आविर्भाव होता है, वे 'षष्ठीदेवी' कहलाती हैं। ये षष्ठीदेवी बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। नवजात शिशुके जन्मके छठे दिन इनकी विशेष पूजा होती है, इसलिये भी ये षष्ठी कहलाती हैं। इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें ये देवसेनाके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये स्वामिकार्तिकेयकी पत्नी हैं। बालकोंको दीर्घायु बनाना और उनका भरण-पोषण तथा रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है, ये परम दयारूपिणी हैं। पूर्व समयमें जब देवता दैत्योंसे पराजित हो गये तो इन्होंने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष लेकर दैत्योंसे युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये, अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया।

मूलत: ये ब्रह्माजीकी मानसी कन्या हैं। इनके प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीन जन मनोहारिणी प्रिया, दरिद्री अभिलषित धन तथा पुरुषार्थी उत्तम कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त करता है। देवी षष्ठी मनुष्योंको सत्कर्म करनेकी प्रेरणा प्रदान करती हैं, उनकी सहायता करती हैं और सब प्रकारसे अपने भक्तोंका अभ्युदय करती हैं। इनका स्वभाव अत्यन्त ही करुणासे भरा है, वात्सल्यकी ये प्रतिमूर्ति हैं—अत्यन्त ही दयालु हैं। यों तो संसारके सभी प्राणी इनके पुत्र हैं, तथापि वात्सल्यकी अधिष्ठात्री होनेसे नवजात शिशुओंकी तो ये साक्षात् माता ही हैं। नवजात शिशु अकेलेमें जो स्वयंसे क्रीडा करते दीखता है, हँसता है, रोता है, हाथ-पाँव पटकता है तथा नींदमें भी कभी रोता है, कभी हँसता है और कभी चौंक जाता है, वस्तुत: यह सब माता षष्ठीदेवीका ही खेल है। वे बालकको अपना ही शिशु मानती हैं और उसके साथ अव्यक्त-रूपसे अनेक प्रकारकी लीलाएँ करती रहती हैं। ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं। अत: माताओंको अपने बालकोंकी रक्षा, उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घ आयु तथा अभ्युदयकी कामनासे देवी षष्ठीकी विशेषरूपसे आराधना करनी चाहिये।

वैसे तो देवीकी अनन्त लीलाएँ हैं, जो आनन्द देनेवाली हैं। फिर भी जैसे बालक स्वाभाविक बाल-लीला दिखाता है, उसी प्रकार देवी षष्ठी भी जगत्‌को बालरूप समझकर क्रीडा करती रहती हैं। यहाँ एक ऐसी ही लीला-कथा दी जा रही है—

स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत नामक पुत्र थे। वे सम्पूर्ण पृथ्वीके एकमात्र शासक थे। वे बड़े ही धर्मात्मा, न्यायप्रिय, उदार, दयालु और प्रजावत्सल थे। अध्यात्मज्ञान तथा तपस्यामें विशेष रुचि होनेके कारण ये विवाह नहीं करना चाहते थे; किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञासे सृष्टिके विस्तारके लिये उन्होंने विवाह कर लिया। दीर्घ कालतक उन्हें कोई संतान प्राप्त नहीं हुई, तब महर्षि कश्यपने इनसे पुत्रेष्टि-याग करवाया और यज्ञके प्रसाद चरुके प्रभावसे रानी मालिनीने यथासमय एक दिव्य कुमारको जन्म दिया, किंतु कालकी प्रेरणासे वह कुमार मरा हुआ था।

रानी मालिनी मरे हुए पुत्रको देखकर शोकसे मूर्च्छित

१-देवीभागवत, नवम स्कन्ध तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणके प्रकृति-खण्डमें यह कथा समान-रूपसे प्राप्त होती है।

हो गयी। राजा प्रियव्रत दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गये। समस्त राजपरिवार शोकसे संतप्त हो गया। राजा अत्यन्त विचारमें पड़ गये—'प्रथम तो कोई संतान ही नहीं और विशेष प्रयत्नसे हुई भी तो मरी हुई। हाय, मैं बड़ा हतभाग्य हूँ, न जाने मैंने कौनसे दुष्कर्म किये, जिसके परिणाम-स्वरूप यह दुःख भोगना पड़ रहा है। इससे तो अच्छा था संतान ही न होती', इस प्रकारसे वे विलाप करने लगे। मन्त्रियोंने उन्हें अनेक प्रकारसे ढाढस दिलाया और आगेका कार्य करनेकी सलाह दी।

रानीको रोता-विलखता छोड़ राजा प्रियव्रत पुत्रको लेकर श्मशानमें गये और वहाँ एकान्त भूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर उच्च स्वरमें रोने लगे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली। राजाकी अत्यन्त ही दयनीय स्थिति हो गयी थी, वे करें तो क्या करें, पुत्रशोकसे वे स्वयं भी मरे हुए-से हो गये थे।

इतनेमें ही उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखलायी पड़ा। शुद्ध स्फटिकके समान देदीप्यमान वह विमान अमूल्य रत्नों तथा मणियोंसे जटित एवं पुष्पोंकी मालासे सुशोभित था। राजाने उस विमानपर बैठी हुई दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित कान्तिपूर्ण एवं मनोरम स्वरूपवाली एक युवा देवीको देखा। उनका वर्ण श्वेत चम्पा-पुष्पके समान उज्ज्वल था। उनके मनोहर मुखमण्डलपर सौन्दर्य, माधुर्य एवं सौम्यताकी आभा झलक रही थी। देवीके मुखमण्डलके चारों ओर एक दिव्य तेजोमय मण्डल प्रकाशित हो रहा था। वे मधुर मुसकान बिखेर रही थीं। इस रुपमें उन्हें देखकर ऐसा मालूम पड़ता था, मानो वे साक्षात् कृपाकी मूर्ति ही हों।

उनका दर्शन करते ही राजाके मनमें एक विलक्षण शान्तिका अनुभव हुआ, उन्हें लगा कि निश्चित ही ये कोई दैवीशक्ति-सम्पन्न मातृरूपा देवी हैं, जो मेरे दुःखको देखकर मुझपर कृपा करने आयी हैं। सहज ही राजाके हाथ जुड़ गये, वे उन्हें प्रणाम करने लगे और फिर उन्होंने अपने मृत बालकको भूमिपर रख दिया तथा कातर दृष्टिसे वे देवीके किसी विशिष्ट अनुग्रहकी प्रतीक्षा करने लगे। देवी षष्ठी विमानसे उतरकर राजाके समीप चली आयीं और कहने लगीं—'राजन्! मैं देवसेना हूँ, मेरा नाम षष्ठी है, मैं बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हूँ। आज तुम्हारे पुत्रशोकसे दुःखी होकर मैं यहाँ आयी हूँ। राजन्! यह अपने ही कर्मोंका प्रभाव होता है कि कुछ लोग संतानहीन होते हैं, कुछ लोगोंकी संतानें मर जाती हैं और कोई उत्तम संतानसे युक्त होते हैं। सुख-दुःख, हर्ष-भय और शोक, सम्पत्ति तथा विपत्ति—ये सब कर्मोंके अनुसार ही होते हैं। ऐसा समझकर सबको सत्कर्ममें ही प्रेरित होना चाहिये। आपके दुर्दैवसे ही आपको संतानहीनता प्राप्त है, उसका फल आपको मिल ही गया है, किंतु मेरा दर्शन अमोघ है, यह बालक जैसे आपको प्रिय है, वैसे ही मुझे भी प्रिय है। आपकी रानी मालिनीका जितना मातृस्नेह इसके प्रति है, उससे अधिक मुझे इससे प्रेम है, बालकोंकी विशेष रूपसे रक्षा करना मेरा कार्य है, अतः अब आप शोकका परित्याग करें।' ऐसा कहकर कृपामयी देवीने उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया और अपनी योगलीलाद्वारा खेल-खेलहीमें उसे जीवित कर दिया।

अपनी वास्तविक माताके अङ्कका मधुर एवं दिव्य स्पर्श पाते ही उस बालककी आभा एवं छबि और भी द्विगुणित हो उठी और वह बालक माँकी गोदमें मुसकराते हुए किलकारी भरने लगा। राजा हाथ जोड़े उस अद्भुत दृश्यको देखते ही रह गये। महान् आश्चर्य और देवीकी कृपाशक्तिको देखकर राजा अभिभूत-से हो गये, तब देवीने राजासे कहा—

'राजन्! यह तुम्हारा पुत्र सभी सद्गुणोंसे सम्पन्न है, यह भगवान् नारायणका कलावतार है, यह क्षत्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति होते हुए सहस्र यज्ञोंको सम्पन्न करेगा। यह महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, गुणी, निर्मल-हृदय, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों और तपस्वियोंका सिद्ध-रूप होगा। इसे जन्मान्तरकी सभी बातें याद रहेंगी। तीनों लोकोंमें इसके यश एवं कीर्तिका

गुणगान होता रहेगा।' ऐसा कहकर देवीने उस बालकको 'सुव्रत' नामसे पुकारा और तभीसे उसका यह नाम प्रसिद्ध हो गया। देवीने पुनः कहा—'राजन्! तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो, सम्पूर्ण त्रिलोकीपर तुम्हारा शासन चलता है। अतः तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो।'

इस प्रकार कहकर षष्ठी देवीने बालक सुव्रतको राजाको समर्पित कर दिया और अनेक आशीर्वाद एवं वर प्रदानकर वे अन्तर्धान हो गयीं। राजाने प्रसन्न होकर अनेक माङ्गलिक उत्सव किये। देवी षष्ठीका पूजन किया और उनकी कृपाशक्तिका सभीको उपदेश दिया। तभीसे देवी षष्ठीके पूजा-महोत्सवका क्रम प्रारम्भ हो गया तथा प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको, बालकके जन्मपर छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके समय यत्नपूर्वक देवी षष्ठीकी पूजा होती आ रही है।

देवी दक्षिणाके आविर्भावकी लीला

भगवती दक्षिणा महालक्ष्मीके दक्षिण अंशसे प्रादुर्भूत हैं, इसलिये ये दक्षिणा कहलाती हैं। ये उपासकको सभी सत्कर्मोंके फल प्रदान करती हैं। इन्हें साक्षात् कमला (लक्ष्मी)-का कलावतार बताया गया है और ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं। इनके आविर्भाव तथा महिमाकी एक कथा[1] देवीभागवतमें प्राप्त होती है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

प्राचीन कालकी बात है, गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी एक गोपी थी, जिसका नाम सुशीला था। सौभाग्यमें वह लक्ष्मीके समान थी और सभी सद्गुणों तथा सदाचारसे सम्पन्न थी। भगवान् श्रीकृष्णमें उसकी परम निष्ठा थी तथा स्वयं भगवान् भी उससे विशेष स्नेह रखते थे और अधिकाधिक समय उसके पास ही रहते थे। रासेश्वरी भगवती श्रीराधाको सुशीलाका यह भाव अच्छा नहीं लगा, अतः भगवान्‌की लीलाको बिना समझे ही श्रीराधाजीने सुशीलाको गोलोकसे च्युत हो जानेका शाप दे डाला।

तदनन्तर महारासके मध्य एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण सहसा अन्तर्धान हो गये। यह देखकर रासेश्वरी भगवान्‌को जोर-जोरसे पुकारने लगीं, पर भगवान् अन्तर्हित ही रहे। अब तो रासेश्वरी शोकसे व्यथित होकर उनकी अनेक प्रकारसे प्रार्थना करते हुए क्षमा माँगने लगीं। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी अविरल धारा प्रवाहित होने लगी, तब भगवान्‌ने प्रकट होकर उन्हें आश्वस्त किया।

इधर गोलोकसे च्युत होकर वह सुशीला गोपी अनन्य-मनसे तपस्यामें निरत हो गयी। तपस्याके प्रभावसे उसने विष्णुप्रिया भगवती महालक्ष्मीके विग्रहमें प्रवेश कर लिया। उन्हीं दिनों एक विचित्र घटना यह हुई कि देवताओंको यज्ञका फल मिलना बंद हो गया। यह देखकर वे ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया, तब श्रीहरिने अपनी प्रिया महालक्ष्मीके दिव्य विग्रहसे एक अलौकिक देवीको प्रकट किया, दक्षिण भागसे प्रादुर्भूत होनेके कारण भगवान्‌ने उन देवीका 'दक्षिणा' नाम रखा। श्रीहरिने दक्षिणादेवीको ब्रह्माजीको सौंप दिया, तब ब्रह्माजीने यज्ञपुरुषके साथ दक्षिणादेवीका विवाह कर दिया। इसके बाद देवताओंको यज्ञका फल मिलने लगा; इसीलिये दक्षिणा-विरहित यज्ञ करनेका शास्त्रीय निषेध है। तभीसे देवी दक्षिणा यज्ञपुरुषकी पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं। भगवती दक्षिणाका जो पुत्र हुआ वह 'फल' नामसे प्रसिद्ध हुआ। देवी दक्षिणाकी कृपाके बिना प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। इसलिये प्राणिमात्रको यज्ञ-पत्नी भगवती दक्षिणाका अनुग्रह प्राप्त करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

माता स्वधाका लीला-आख्यान

माता स्वधा अत्यन्त करुणामयी एवं पितरोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। पितरोंके निमित्त श्राद्ध तथा तर्पण आदिमें प्रदत्त कव्योंको देवी स्वधा ही उनतक पहुँचाती हैं। इनकी अत्यन्त महिमा पुराणोंमें आयी है। पितामह ब्रह्माने कहा है कि स्वधादेवीके नामोच्चारणमात्रसे मनुष्य सभी तीर्थोंके स्नानका फल प्राप्त करता है, सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और

१-ब्रह्मवैवर्तपुराण, प्रकृतिखण्डमें यह कथा समान-रूपसे आती है।

वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करता है—

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥

(देवीभागवत० ९। ४४। ७)

इतना ही नहीं यदि 'स्वधा, स्वधा, स्वधा'—इस प्रकार तीन बार उच्चारण किया जाय तो श्राद्ध, बलिवैश्वदेव और तर्पणका फल प्राप्त हो जाता है—

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥

(देवीभागवत० ९। ४४। २८)

जबतक माता स्वधाका आविर्भाव नहीं हुआ था, तबतक पितरोंको भूख एवं प्याससे पीडित रहना पड़ता था; क्योंकि ब्राह्मण आदि जो कुछ उनके उद्देश्यसे देते थे, वह उनको मिल नहीं पाता था। भूखसे पीडित होकर वे पितर ब्रह्माके पास पहुँचे और उन्होंने अपना कष्ट उनसे निवेदित किया। पितरोंके इस कष्टसे ब्रह्मा चिन्तित हो गये; वे सोचने लगे कि मैंने इनके भोजनके लिये कव्यकी व्यवस्था की थी, वह ब्राह्मणोंके द्वारा देनेके बाद भी पितरोंतक क्यों नहीं पहुँचता। उन्होंने माता स्वधाका ध्यान किया तो वे उनके मनसे प्रकट हो गयीं। इसी कारण वह ब्रह्माजीकी 'मानसी कन्या' भी कहलाती हैं। मूलरूपमें देवी स्वधा मूलप्रकृतिकी अंशभूता और शुद्धस्वरूपा हैं। लक्ष्मीकी भाँति समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, इनका लीलाविग्रह नित्य सत्य और

पुण्यमय है। इनकी आभामें सैकड़ों चन्द्रमाके समान आह्लादता है। ये शतदल-कमलके आसनपर विराजमान रहती हैं। ये अत्यन्त सौम्य तथा शान्त हैं। इनके नेत्र और मुख अत्यन्त मनोरम और कमलके समान प्रफुल्लित हैं। नित्य युवा रहनेवाली देवी स्वधाका श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल वर्ण है। ये रत्नमय आभूषण तथा माला धारण करती हैं और वरदा तथा कल्याणरूपिणी हैं।

पितामहने भगवती स्वधाको पितरोंके हाथ सौंप दिया और मनुष्योंको एक गोपनीय बात भी बता दी कि पितरोंके उद्देश्यसे जो भी पदार्थ अर्पण किया जाय, उसमें 'स्वधा' अवश्य लगा दिया करें और तभीसे स्वधा लगाकर पितरोंको कव्य दिया जाने लगा, तब सब पदार्थ पितरोंको मिलने लगे।

उस समय सम्पूर्ण देवताओं, मुनियों और मानवोंने माता स्वधाकी सविधि भावपूर्वक पूजा एवं स्तुति की। तब माता

स्वधाने सबको मनोवाञ्छित वर प्रदान किया। पितामह ब्रह्माने घोषणा की कि अन्य अवसरोंपर तो भगवती स्वधाका पूजन होना ही चाहिये, श्राद्धके अवसरपर पहले स्वधादेवीकी पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये। इससे देवी श्रद्धाकी विशेष प्रीति प्राप्त होती है और पितर भी संतृप्त होकर उपासकको अक्षय फल प्रदान कर देते हैं।

माता स्वाहा देवीकी आविर्भाव-लीला

सृष्टिके आरम्भकालकी बात है, जब अव्यक्त-स्वरूपिणी देवी व्यक्तरूपमें प्रकट नहीं हुई थीं, उस समय ब्राह्मण आदि यज्ञकर्ता देवताओंको उद्देश्य करके विष्णुरूप-यज्ञमें जो हवनीय पदार्थ अर्पित करते थे, वह हव्य पदार्थ उनतक पहुँच नहीं पाता था; क्योंकि देवी स्वाहा ही देवताओंको हव्य पदार्थ उनके आहारके रूपमें उनतक पहुँचाती हैं। उदास होकर देवता ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें सम्पूर्ण

वृत्तान्त बतलाया। तब ब्रह्माजीने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की और नारायणने उन्हें बताया कि आप मूल प्रकृतिकी आराधना करें। ब्रह्माजीने भक्तिपूर्वक भगवती मूलप्रकृतिका स्मरण-ध्यान किया। तब भगवतीकी कलासे प्रकट होकर सर्वशक्तिस्वरूपिणी देवी स्वाहाने ब्रह्माजीको दर्शन दिया। उस समय देवी स्वाहाके लीला-विग्रहकी सुन्दर श्यामल कान्ति थी। वे प्रसन्नमुख तथा अत्यन्त सौम्यरूपमें थीं और एक विलक्षण दिव्य तेजसे व्याप्त थीं—

—भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उन भगवती स्वाहा-देवीने ब्रह्माजीसे वर माँगनेके लिये कहा।

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! आप भगवान् अग्निदेवकी दाहिकाशक्ति होनेकी कृपा करें। आपके बिना अग्नि आहुतियोंको भस्म करनेमें असमर्थ हैं, इसीलिये देवताओंको अर्पित हव्य पदार्थ उन्हें प्राप्त नहीं हो पा रहा है। अम्बिके! श्रीरूपिणी आप अग्निदेवकी गृहस्वामिनी बनकर लोकपर महान् उपकार करें।

उस समय माता स्वाहा भगवान् श्रीकृष्णके अनुरागमें अनुरक्त थीं, उनके ध्यान-चिन्तनमें निमग्न थीं। यह देखकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए और उन्होंने स्वाहाका सम्मान किया तथा कहा कि वाराहकल्पमें नाग्नजितीके रूपमें तुम

मुझसे मिलोगी। इस समय तुम अग्निदेवकी दाहिकाशक्तिके रूपमें उनकी पत्नी बनकर देवताओंको आप्यायित करो, भक्तोंका कल्याण करो।

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। देवी स्वाहाको भी अत्यन्त प्रसन्नता हुई, उन्होंने संसारके मङ्गलके लिये तथा देवताओंको संतृप्त करनेके लिये अग्निकी पत्नीके रूपमें स्वयंको माना। अनुकूल अवसर देखकर ब्रह्माने अग्निदेवताको भगवती स्वाहाके पास भेजा। अग्निदेवता वहाँ आये और सामवेदमें कही गयी विधिके अनुसार स्वाहाकी पूजा और स्तुति की। स्वाहा देवी अनुकूल हो गयीं। मन्त्रोच्चारणपूर्वक दोनोंका विवाह हुआ और शक्ति तथा शक्तिमान्‌के रूपमें दोनों प्रतिष्ठित होकर जगत्‌के कल्याणमें लग गये। तभीसे ऋषि-मुनि एवं द्विज मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा' का उच्चारणकर अग्निमें आहुति देने लगे और वह हव्य पदार्थ देवताओंके पास पहुँचकर उनके लिये तृप्तिकारक हो गया।

इस प्रकार भगवती स्वाहादेवीका स्वरूप अत्यन्त कृपामय है। दाहिकाशक्तिके रूपमें वे अव्यक्तरूपमें रहती हैं और भक्तोंकी उपासनासे प्रसन्न होकर दिव्य मनोरम देवीके रूपमें उन्हें दर्शन देती हैं। भगवान् अग्निदेवमें जो जलानेकी तीक्ष्ण तेजोरूपा शक्ति है, वह और कोई नहीं, देवी स्वाहाका ही सूक्ष्म रूप है। इनका दिव्य विग्रह मन्त्रसिद्धि-स्वरूप है, इसलिये मन्त्रोंके अन्तमें स्वाहाका नाम लेकर ही यज्ञाग्निमें आहुति दी जाती है। यदि स्वाहादेवीका नाम

स्मरण न किया जाय तो मन्त्रशक्ति निष्फल ही रहती है। ये हवनीय द्रव्यका परिपाक करके देवताओंके लिये आहाररूप बना देती हैं, इसीलिये '**परिपाककरी**' भी इनका एक श्रेष्ठ नाम है। देवी स्वाहाके नाम-स्मरण, पूजन, ध्यान और लीला-चिन्तनसे सब प्रकारका अभ्युदय तथा परम कल्याण हो जाता है।

देवी मङ्गलचण्डीका लीला-आख्यान

सर्वमङ्गलमङ्गला देवी मङ्गलचण्डी सब प्रकारसे मङ्गल करनेवाली और अद्भुत पराक्रम, शक्ति, बल, विद्या, ओज तथा परम ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हैं। ये मूलप्रकृति भगवती दुर्गाके ही लीला-रूपमें अवतरित हैं। जब त्रिपुर नामक दैत्यने तीनों लोकोंमें महान् उत्पात मचा रखा था, तब भयभीत देवता भगवान् शंकरकी शरणमें गये। जगत्-कल्याणार्थ भगवान् शंकरका त्रिपुरासुरके साथ भयंकर युद्ध हुआ। उस समय भगवान् शंकरने शक्तिरूपा दुर्गाका स्मरण किया। भगवती दुर्गा मङ्गलचण्डीके रूपमें आविर्भूत हुईं और शक्तिरूपसे भगवान् शंकरमें प्रविष्ट हो गयीं। विशेष शक्तिसम्पन्न हो जानेसे वे त्रिपुरको पराजित करनेमें समर्थ हो गये। भगवान् शंकरने पुनः भक्तिपूर्वक अनेक उपचारोंसे देवी मङ्गलचण्डीकी पूजा-आराधना की। यजुर्वेदकी माध्यन्दिन शाखामें कहे गये ध्यानमन्त्रके द्वारा भगवतीका ध्यान किया। तभीसे सभी देवताओं, ऋषि-महर्षियों तथा मनुष्योंने देवी मङ्गलचण्डीकी पूजा-उपासना प्रारम्भ कर दी।

देवी मङ्गलचण्डीका शुद्ध स्वरूप अत्यन्त दिव्य है। वे सुस्थिर-यौवना हैं। उनके ओष्ठ बिम्बफलके सदृश लाल हैं और मुखमण्डल शरत्कालीन कमलके सदृश प्रफुल्लित एवं कान्तियुक्त है। इनका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल है। आँखें खिले हुए नीलकमलके समान हैं। ये देवी सबका धारण-पोषण करनेवाली हैं। संसाररूपी घोर अन्धकारमय समुद्रमें पड़े हुए व्यक्तियोंके लिये ये ज्योतिःस्वरूपा हैं। ये सम्पूर्ण विपत्तियोंको ध्वंस करनेवाली तथा सदा हर्ष एवं मङ्गल प्रदान करनेवाली हैं। मङ्गल-ही-मङ्गल करनेके कारण और सर्वविध शक्ति प्रदान करनेके कारण इनका मङ्गलचण्डी यह नाम सार्थक ही है। इसीलिये ये मङ्गलदायिका, शुभा, मङ्गलदक्षा, मङ्गला तथा कल्याणी कहलाती हैं। ये समस्त कल्याण-मङ्गलोंकी आश्रयभूता हैं, मङ्गलाधार हैं और मङ्गलमयी हैं। भगवान् शंकरने मङ्गलवारके दिन ही इनकी पूजा की थी और इनके सर्वप्रथम पूजकके रूपमें भगवान् शंकर ही परिगणित हैं। इनके दूसरे उपासक भूमिपुत्र मङ्गल ग्रह हैं। मनुवंशमें उत्पन्न राजा मङ्गलने भी इनकी उपासना की तथा पुनः सभी स्त्रियों तथा मनुष्योंके भी ये विशेष पूज्य हो गये। मङ्गलवारका दिन भगवती मङ्गलचण्डिकाकी उपासनाके लिये विशेष रूपसे प्रशस्त है[1]।

देवी मनसाकी लीला-कथा

प्राचीन कालकी बात है, जब सृष्टिमें नागोंका भय हो गया तो उस समय नागोंसे रक्षा करनेके लिये भगवान् ब्रह्माजीने अपने मनसे एक देवीका प्राकट्य किया, जो मनसे प्रकट होनेके कारण 'मनसा'के नामसे विख्यात हुई और फिर बादमें ये महर्षि कश्यपकी कन्याके रूपमें जानी गयीं। मूलतः ये प्रकृतिदेवीके ही एक अंशसे समुद्भूत हैं। दिव्य योगशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण ये अपनी कुमारावस्थामें ही भगवान् शंकरके धाम कैलासमें पहुँच गयीं और दिव्य हजार वर्षोंतक उन्होंने महान् तप किया। भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर इन्हें उत्तम ज्ञान-योगसे सम्पन्न कर दिया, सामवेदका अध्ययन कराया तथा 'मृतसंजीवनी' विद्या भी प्रदान कर दी। साथ ही उन्होंने वैष्णवी दीक्षा एवं श्रीकृष्णके जपनीय अष्टाक्षर मन्त्र—'**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः**' का भी उपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् उनसे आज्ञा लेकर तपस्विनी मनसा पुष्कर क्षेत्रमें चली गयीं और वहाँ दिव्य तीन युगोंतक श्रीकृष्णकी आराधनामें संलग्न रहीं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर इन्हें दर्शन दिया। उस समय सिद्धयोगिनी देवी मनसाके वस्त्र और शरीर अत्यन्त जीर्ण हो गये थे। इसी कारण कृपानिधि भगवान् श्रीकृष्णने इनका नाम 'जरत्कारु' रख दिया और स्वयं उनकी पूजा कर इन्हें जगत्पूज्य तथा जगद्वन्द्य होनेका वर प्रदान किया। इसके बाद शंकर आदि देवताओंने भी इनकी पूजा की। तभीसे ये त्रिलोकीमें सर्वत्र पूज्य बन गयीं। भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अनेकों वर एवं सिद्धि प्राप्तकर ये देवी मनसा (जरत्कारु) महर्षि कश्यपके पास चली आयीं।

तदनन्तर महर्षि कश्यपने अपनी कन्या जरत्कारुका

१-देवीभागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इनके आख्यान तथा स्तोत्र-मन्त्रादि निरूपित हैं।

विवाह 'जरत्कारु' नामवाले ही एक महान् योगीके साथ कर दिया। ये मुनि 'जरत्कारु' भगवान् श्रीकृष्णके अंशरूप ही थे और साक्षात् कृपाके समुद्र थे। इस प्रकार मूलप्रकृति देवीकी अंशभूता भगवती मनसा (जरत्कारु) और भगवान् श्रीकृष्णके अंशभूत महर्षि जरत्कारुका दिव्य संयोग हो गया।

एक दिनकी बात है, महर्षि जरत्कारु अपनी पतिपरायणा देवी जरत्कारुके अङ्कमें सिर रखकर लेटे हुए थे। ऐसे ही उन्हें नींद आ गयी और कुछ समय बाद सायंकाल हो आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थीं, धर्मके रहस्योंको वे जानती थीं। उन्होंने मनमें विचार किया कि द्विजोंके लिये नित्य संध्या-वन्दन करनेका विधान है, यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा, क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रात: और सायंकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता है, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है। यदि ऐसा हो गया तो इसमें मुझे ही निमित्त बनना पड़ेगा और यदि इन्हें जगा देती हूँ तो मुझे इनके कोपका भाजन बनना पड़ेगा, फलत: ये मेरा परित्याग कर देंगे। ऐसी शर्त विवाहसे पूर्व महर्षि जरत्कारुने रखी थी कि जिस दिन मुझे किसी कार्यसे रोका जायगा उसी दिन मैं पत्नीका परित्याग कर दूँगा। शर्तके अनुरूप ही विवाह हुआ था। आज दैवी लीलासे वह परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी। पहले तो देवी जरत्कारु असमंजसमें पड़ गयीं, पर फिर उन्होंने निश्चय किया कि 'भले ही स्वामी मेरा परित्याग कर दें, लेकिन पतिके धर्मका लोप होना ठीक नहीं है।'—ऐसा निश्चय कर देवी मनसाने अपने पतिको जगा दिया। इसपर मुनि जरत्कारु क्रुद्ध हो गये, तब देवी मनसाने कहा—'प्रभो! आपका क्रोध उचित ही है, किंतु मैंने तो आपकी संध्याका लोप न हो जाय इस भयसे आपको जगाया है, यह मेरा दोष अवश्य है, इसलिये मुझे क्षमा करनेकी कृपा करें।' ऐसा कहकर वे बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगीं। उस समय महर्षि जरत्कारु अत्यन्त क्रोधमें थे। वे सूर्यको ही भर्त्सित करने लगे कि 'मैं संध्या न कर सकूँ और सूर्य अस्त हो जायँ, यह कैसे हो सकता है?' त्रिकाल-संध्योपासनाके प्रभावसे उन्हें असीम शक्ति एवं सामर्थ्य प्राप्त थी, वे सब कुछ करनेमें समर्थ थे। वे परम भगवद्भक्त थे, अपने आराध्यमें उनकी असीम निष्ठा थी, किंतु उनके आराध्य उनकी पूजा ग्रहण किये बिना कैसे चले जायँगे, ऐसा उनका अटूट विश्वास था और इसी दृढ़ आस्थासे वे अपने आराध्यपर ही कुपित हो बैठे। अब आराध्यको अपने भक्तको मनानेके लिये प्रकट होना ही था। उसी समय संध्यादेवीको साथ ले भगवान् सूर्य उनके समीप आये और कहने लगे—

'महर्षे! आप परम शक्तिशाली हैं, आपमें तपस्याका असीम बल है, आपकी भक्ति-निष्ठा आदर्शरूप है, किंतु इस समय क्रोध करना ठीक नहीं। आपकी ये साध्वी देवी जरत्कारु महान् पतिव्रता हैं, आपमें इनकी प्राणपणसे निष्ठा है, आपकी संध्याका लोप न हो जाय इसलिये इन्होंने आपको जगा दिया, यदि ये ऐसा न करतीं तो इनके सम्बन्धमें यही कहा जाता कि इन्होंने संध्याका समय होनेपर भी अपने पतिको जगाया नहीं, अत: आप इनपर प्रसन्न रहें। आपका मुझपर क्रोध करना भी उचित नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणोंका क्रोध उनकी तपस्याको ही क्षीण कर देता है। संतोंका हृदय तो सदैव नवनीतके समान कोमल रहता है, अत: आप शान्त हो जायँ।' सूर्यके वचनोंको सुनकर महर्षि जरत्कारुको परम प्रसन्नता हुई। तदनन्तर भगवान् सूर्य यथास्थान चले गये।

इधर महर्षि जरत्कारुने विवाहके समय की हुई अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये देवी मनसाका परित्याग कर दिया। देवी मनसा शोकसे विह्वल हो गयीं। फिर उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान्का स्मरण किया, उसी समय उनके विद्यादाता भगवान् शंकर, इष्ट देवता ब्रह्मा, भगवान् श्रीकृष्ण तथा पिता कश्यप वहाँ उपस्थित हो गये।

अपने परमाराध्य भगवान् श्रीकृष्ण और ब्रह्मादि देवताओंका दर्शनकर जरत्कारु हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उस समय ब्रह्माजीने मुनिसे कहा—मुने! आपकी ये धर्मपत्नी महान्

साध्वी हैं, अभी संतानसे रहित भी हैं, ऐसी अवस्थामें इनका परित्याग उचित नहीं है। अतः आप इन्हें पुत्रवती होनेका सौभाग्य प्रदान करें।

तब महर्षि जरत्कारुने अपने योगबलसे देवी मनसाको सभी दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, महान् ज्ञानी, योगी तथा विष्णुभक्त पुत्र प्राप्त करनेका वर प्रदान किया और उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति करनेका निर्देश देकर वे तपस्या करनेके लिये चले गये।

इधर देवी मनसा अपने गुरु भगवान् शंकरके धाम कैलासपर चली आयीं। वहाँ माता पार्वतीने उन्हें आश्वस्त किया और भगवान् शंकरने उन्हें दिव्य उपदेश दिया। ऐसे ही कुछ समय बाद एक दिन देवी मनसाने सर्वलक्षण-सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। उस दिन मङ्गलवार था। भगवान् शंकरकी कृपासे वह बालक जन्मजात दिव्य योग-ज्ञानसे सम्पन्न था। भगवान् शंकरने उस बालकके सभी संस्कार कराये और सभी विद्याओंको पढ़ाया। साथ ही 'मृत्युञ्जय' विद्याकी दीक्षा भी दे दी। चूँकि पिताके अस्त होनेके अवसरपर बालककी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये उसका 'आस्तीक' यह नाम रखा गया। इस समाचारको जानकर महर्षि जरत्कारुको भी परम प्रसन्नता हुई।

देवी मनसा अपने पुत्र आस्तीकको लेकर अपने पिता महर्षि कश्यपके यहाँ चली आयीं। वहाँ इस अवसरपर महान् हर्षोल्लास मनाया गया।

उन्हीं दिनोंकी बात है—महाराज परीक्षित् शृंगी मुनिके शापसे ग्रस्त हो गये थे कि 'एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प उन्हें काट लेगा।' शापके अनुसार तक्षकने उन्हें डँस लिया। परीक्षित्के पुत्र थे जनमेजय! पिताकी ऐसी मृत्यु देखकर उन्हें सर्पोंपर महान् क्रोध हुआ और उन्होंने नागवंशको ही समाप्त कर देनेके उद्देश्यसे सर्पसत्र (नागयज्ञ)-का अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। ब्राह्मणोंकी मन्त्रशक्तिके प्रभावसे प्रत्येक आहुतिपर सैकड़ों नाग यज्ञकुण्डमें पड़कर भस्म होने लगे। नागराज तक्षक जिसने राजा परीक्षित्को डँसा था, डरकर इन्द्रकी शरणमें जा पहुँचा। ऐसी स्थितिमें ब्राह्मणोंने इन्द्रसहित तक्षककी यज्ञमें आहुति देनेके लिये संकल्प करनेका विचार किया।

इन्द्र भयसे अधीर हो उठे। वे भगवती मनसादेवीकी शरणमें गये और उनकी स्तुति करते हुए अपनी रक्षाके लिये प्रार्थना करने लगे। तब देवी मनसाने योगिश्रेष्ठ अपने पुत्र आस्तीकको राजा जनमेजयके पास भेजा और फिर आस्तीकके महान् प्रयत्नसे जनमेजय सर्पसत्रसे विरत हो गये। ब्राह्मणोंने यज्ञ पूर्ण किया। इस प्रकार देवी मनसा तथा मुनिवर आस्तीकसे नागवंशकी रक्षा हुई। पुनः इन्द्रादि सभी देवताओंने भगवती मनसाकी अनेक प्रकारसे स्तुति—प्रार्थना की।

तभीसे सभी नाग देवी मनसाकी विशेष पूजा करने लगे। नागराज शेषने इन्हें अपनी बहन बना लिया। इन्होंने नागोंकी रक्षाकर उन्हें जीवनदान दिया, इसलिये ये नागमाता कहलाने लगीं और नागेश्वरी भी इनका नाम पड़ गया तथा नाग ही इनके वाहन एवं शय्या भी बन गये। ये स्वयं भी तपस्या करती हैं और तपस्वियोंको उनकी तपस्याका फल भी देती हैं। ये सम्पूर्ण मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, ब्रह्मतेजसे इनका विग्रह सदा प्रकाशित रहता है, इसीलिये ये 'परब्रह्मस्वरूपा' भी कहलाती हैं। 'गौरी' तथा 'जगद्गौरी' भी इनका नाम है। भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ये 'शैवी' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुकी अनन्य उपासिका होनेसे ये 'वैष्णवी' नामसे अभिहित होती हैं। दारुणसे भी दारुण विषका संहार करनेमें परम समर्थ होनेके कारण इनका 'विषहरी' भी एक मुख्य नाम है। इन्हें संजीवनीविद्याका ज्ञान है, अतः 'मृतसंजीवनी' और 'ब्रह्मज्ञानयुता' कही जाती हैं। आस्तीककी माता हैं, इसलिये 'आस्तीकमाता' कहलाती हैं, जरत्कारु नाम इन्हें भगवान् श्रीकृष्णद्वारा प्राप्त था और मानसी उत्पत्तिके कारण इनका 'मानसी' यह नाम ही विशेष प्रसिद्ध हो गया।

भगवती मनसाके नामोंका स्मरण करनेसे सर्पभयसे मुक्ति मिलती है तथा सर्पविषसे रक्षा हो जाती है। व्यक्ति नागोंका प्रिय भाजन होकर भगवान् विष्णुका सांनिध्य भी प्राप्त कर लेता है, साथ ही उसके वंशमें नागोंका भय नहीं रहता—

'तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च।'

(देवीभागवत ९। ४७। ५३)

अतः भगवती मनसा देवीकी कृपा प्राप्त करनेके लिये

उनकी आराधना करनी चाहिये। सामवेदमें उनकी पूजा निरूपित है। वे महान् करुणा एवं दयासे सम्पन्न हैं, भक्त उन्हें विशेष प्रिय हैं। वे सभी प्रकारके अभ्युदयोंको प्राप्त करा देती हैं। उनका स्वरूप भी अत्यन्त ही दिव्य, अलौकिक एवं चिन्मय है, वे विशुद्ध चिन्मय वस्त्रालंकारोंको धारण करती हैं। श्वेत चम्पकके समान उनकी दिव्य वर्णकान्ति है। वे अद्भुत लावण्यसे सम्पन्न हैं, सर्पोंका यज्ञोपवीत एवं हार धारण करती हैं, किंतु ये सर्प भक्तोंके लिये भयहेतु नहीं, अपितु प्रिय भाजन बने रहते हैं। उनका विष भक्तोंके लिये अमृत बन जाता है। देवी मनसा महान् ज्ञानसम्पन्न हैं एवं सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री हैं। इनकी लीलाएँ अचिन्त्य हैं और उन लीलाओंके स्मरण-ध्यानसे परम कल्याण सध जाता है। ऐसी उन कृपामयी—लीलामयी देवी मनसाको बार-बार नमस्कार है।

देवी पृथ्वीकी लीला-कथा

भगवती वसुन्धरा या पृथ्वी प्रकृति देवीके प्रधान अंशसे प्रकट हैं। ये सम्पूर्ण जगत्की आश्रय हैं। ये न रहें और इनकी कृपा न हो तो सारा चराचर जगत् कहीं भी ठहर नहीं सकता। 'सर्वशस्या' भी इन्हींका नाम है। सबका भरण-पोषण करनेके लिये देवी पृथ्वीका लीलारूप ही यह फैली हुई पृथ्वी है और जो पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी हैं वे भी 'पृथ्वी' नामसे ही अभिहित होती हैं। विस्तृत रूपसे भूमिके रूपमें जो फैली हुई हैं यह देवी पृथ्वीका पोषणात्मक रूप है, क्योंकि पृथ्वीपर ही सब लोग टिके हुए हैं और पृथ्वीकी शस्य-सम्पदासे ही अन्नरूप प्राण उत्पन्न होता है। इतना ही नहीं, ये पृथ्वीदेवी अपने गर्भमें अनन्त ऐश्वर्योंको रखे हुए हैं, इसीलिये लोग इन्हें 'रत्नगर्भा' और 'रत्नाकरा' भी कहते हैं। ये कश्यपकी पुत्री हैं। उनका एक देवी-रूप है जो भक्तोंके सामने व्यक्त होता है और उनपर अनन्त कल्याणकी वृष्टि करता है। इन पृथ्वीदेवीके श्रीविग्रहका वर्ण स्वच्छ कमलके समान उज्ज्वल है। मुख ऐसा जान पड़ता है, मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण अङ्गोंमें ये चन्दन लगाये रहती हैं। रत्नमय अलंकारोंसे इनकी अनुपम शोभा होती है। समस्त रत्न इनके ऊपर तथा अंदर भी विद्यमान हैं। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र धारण किये रहती हैं। इनका मुखमण्डल अत्यन्त सौम्य तथा मधुर मन्दस्मितहाससे सुशोभित रहता है। ये भक्तोंको वर देनेके लिये सदा उद्यत रहती हैं। इनका विग्रह पुण्यमय तथा शस्यमय है।

सृष्टिके समय ये प्रकट होकर जलके ऊपर स्थिर हो जाती हैं और प्रलयकालके उपस्थित होनेपर छिपकर जलके भीतर चली जाती हैं, यह इनकी विलक्षण लीला है। कल्प-भेदसे दूसरी कथा यह है कि जलसे ढकी इन पृथ्वीदेवीका मधु-कैटभके मेदसे स्पर्श हुआ इस कारण इनका 'मेदिनी' यह नाम पड़ गया। पृथ्वीदेवीकी आविर्भाव और तिरोधानलीला युगों, मन्वन्तरों तथा कल्प-कल्पान्तरोंसे भिन्न-भिन्न रूपोंमें होती ही आयी है। इस दृष्टिसे इनका अव्यक्त स्वरूप नित्य एवं शाश्वत है।

वाराहकल्पकी बात है। जब हिरण्याक्ष दैत्य पृथ्वीको चुराकर रसातल चला गया, तब भगवान् श्रीहरि हिरण्याक्षको मारकर रसातलसे पृथ्वीको ले आये और उसे जलपर इस प्रकार रख दिया, मानो तालाबमें कमलका पत्ता हो। इसके बाद ब्रह्माजीने उसी पृथ्वीपर मनोहर विश्वकी रचना की। उस समय वाराहरूपधारी श्रीहरिने परम सुन्दरी देवीके वेषमें उपस्थित पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीका सम्मान किया और वे 'विष्णुप्रिया'के नामसे जानी गयीं। भगवान्ने परम साध्वी पृथ्वीका वेदकी काण्वशाखाके मन्त्रोंद्वारा स्वयं पूजन किया और जगत्पूज्य होनेका उन्हें वर प्रदान किया। तबसे पृथ्वीदेवीकी सभी पूजा करने लगे।

यथासमय पृथ्वीदेवीका मङ्गल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ,

जो ग्रहोंमें प्रतिष्ठित हुआ। इसीलिये वह भौम, भूमिपुत्र या भूमिज कहलाया। इस प्रकार पृथ्वीदेवी अपने एक रूपसे संसारके रूपमें सर्वत्र फैली हुई हैं और दूसरे रूपसे देवी-रूपमें स्थित रहती हैं। इन पृथ्वीदेवीके दानकी बड़ी महिमा है, इससे पृथ्वीदेवीकी कृपा प्राप्त होती है और पृथ्वीपर शास्त्रविपरीत अभद्र व्यवहार अथवा आचरण करनेसे पृथ्वीदेवीको अप्रसन्नता होती है तथा घोर नरकोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये पृथ्वीदेवीका सदा सम्मान करना चाहिये। '**ॐ ह्रीं श्रीं वसुधायै स्वाहा**' यह पृथ्वीदेवीका जपनीय मन्त्र है।

देवीके शताक्षी, शाकम्भरी तथा दुर्गा नामवाले लीला-विग्रहोंकी कथाका चिन्तन

प्राचीन समयकी बात है, दुर्गम नामका एक महान् दैत्य था। उसकी आकृति बड़ी ही भयंकर थी। उसका जन्म हिरण्याक्षके वंशमें हुआ था तथा उसके पिताका नाम रुरु था। ब्रह्माजीके वरदानसे दुर्गम महाबली हो गया था। अपनी तपस्यासे ब्रह्माजीको प्रसन्नकर उसने चारों वेदोंको अपने हाथमें कर लिया और भूमण्डलमें अनेक उत्पात शुरू कर दिये। वेदोंके अदृश्य हो जानेपर सारी धार्मिक क्रियाएँ नष्ट हो गयीं, सभी यज्ञ-यागादि बंद हो गये तथा देवताओंको यज्ञभाग मिलना बंद हो गया। मन्त्र-शक्तिके अभावमें ब्राह्मण भी अपने पथसे च्युत हो गये। नियम, धर्म, जप, तप, संध्या, पूजन तथा देवकार्य एवं पितृकार्य सभी कुछ लुप्त-सा हो गया। धर्म-मर्यादाएँ विच्छृंखलित हो गयीं। न कहीं दान होता था, न यज्ञ होता था। इसका परिणाम यह हुआ कि पृथ्वीपर सौ वर्षोंतकके लिये वर्षा बंद हो गयी। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। सब लोग दुःखी हो गये। सबको भूख-प्यासका महान् कष्ट सताने लगा। कुआँ, बावली, सरोवर, सरिताएँ और समुद्र भी जलसे रहित हो गये। समस्त वृक्ष और लताएँ भी सूख गयीं। प्राणी भूख-प्याससे बेचैन होकर मृत्युको प्राप्त होने लगे।

देवताओं तथा भूमण्डलके प्राणियोंकी ऐसी दशा देखकर दुर्गम बहुत खुश था, परंतु इतनेपर भी उसे चैन न था। उसने अमरावतीपर अपना अधिकार जमा लिया। देवता उसके भयसे भाग खड़े हुए, पर जायँ कहाँ, सब ओर तो दुर्गमका उत्पात मचा हुआ था। तब उन्हें शक्तिभूता सनातनी भगवती महेश्वरीका स्मरण आया—'**क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति**'। वे सभी हिमालय पर्वतपर स्थित महेश्वरी योगमायाकी शरणमें पहुँचे। ब्राह्मण लोग भी जगत्-कल्याणार्थ देवीकी उपासना तथा प्रार्थना करनेके लिये उनकी शरणमें आये।

देवता कहने लगे—'महामाये! अपनी सारी प्रजाकी रक्षा करो, रक्षा करो! माँ! जैसे आपने शुम्भ, निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड, मधु-कैटभ तथा महिषासुरका वधकर संसारकी रक्षा की है, देवताओंका कल्याण किया है, उसी प्रकार जगदम्बिके! इस दुर्गम नामक दुष्ट दैत्यसे हम सबकी रक्षा करो। माँ! घोर अकाल पड़ गया है, हम आपकी शरणमें हैं। हे देवि! आप कोई लीला दिखायें, नहीं तो यह सारा ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जायगा। महेशानि! आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाली हैं, भक्तवत्सला हैं, समस्त जगत्‌की माता हैं। माँ! आपमें अपार करुणा है, आपके एक ही कृपा-कटाक्षसे प्रलय हो जाता है, आपके पुत्र महान् कष्ट पा रहे हैं। फिर हे मातेश्वरि! आज आप क्यों विलम्ब कर रही हैं, हमें दर्शन दें।' ऐसी ही प्रार्थना ब्राह्मणोंने भी की।

अपने पुत्रोंकी यह हालत माँसे देखी न गयी। भला पुत्र कष्टमें हो तो माँको कैसे सहन हो सकता है, फिर देवी तो जगन्माता हैं, माताओंकी भी माता हैं, उनके कारुण्यकी क्या सीमा? करुणासे उनका हृदय भर आया। वे तत्क्षण ही वहाँ प्रकट हो गयीं। उस समय त्रिलोकीकी ऐसी व्याकुलताभरी स्थिति देखकर कृपामयी माँकी आँखोंसे आँसू छलछला आये। भला दो आँखोंसे हृदयका दुःख कैसे प्रकट होता, माँने सैकड़ों नेत्र बना लिये, इसीलिये आप शताक्षी (शत-अक्षी) कहलायीं। नीले-नीले कमल-जैसी दिव्य आँखोंमें माँकी ममता आँसू बनकर उमड़ आयी। इसी रूपमें माताने सबको अपने दर्शन कराये। उनका मुखारविन्द अत्यन्त ही मनोरम था, वे अपने चारों हाथोंमें कमल-पुष्प तथा नाना प्रकारके फल-मूल लिये हुई थीं। करुणार्द्रहृदया भगवती भुवनेश्वरी प्रजाका कष्ट देखकर लगातार नौ दिन और नौ रात रोती रहीं। उन्होंने अपने सैकड़ो नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित कीं।

धन्य है माँ आपकी करुणामयी लीला! आपकी करुणाका थाह कौन पा सकता है? माँकी अनन्त करुणाको देखकर भगवान् व्यासदेवजीने तो यहाँतक कह दिया कि 'इस पृथ्वीपर महेश्वरी माता शताक्षीकी तरह कोई दयालु हो ही नहीं सकता। वे अपने बच्चोंका कष्ट देखकर नौ दिनोंतक लगातार रोती ही रहीं'—

न शताक्षीसमा काचिद् दयालुर्भुवि देवता।
दृष्ट्वारुदत् प्रजास्तप्ता या नवाहं महेश्वरी॥

(शिवपु० उमा० ५०। ५२)

देवी शताक्षीके सैकड़ों नेत्रोंसे जो अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित हुईं, उससे नौ दिनोंतक त्रिलोकीमें महान् वृष्टि होती रही। इस अथाह जलसे पृथ्वीकी सारी जलन मिट गयी। सभी प्राणी तृप्त हो गये। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। सम्पूर्ण औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। उस समय भगवतीने अनेक प्रकारके शाक तथा स्वादिष्ट फल देवताओं तथा अन्य सभीको अपने हाथसे बाँटे तथा खानेके लिये दिये और भाँति-भाँतिके अन्न सामने उपस्थित कर दिये। उन्होंने गौओंके लिये सुन्दर हरी-हरी घास और दूसरे प्राणियोंके लिये उनके योग्य भोजन दिया।

अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकों (भोज्य-सामग्रियों)-द्वारा उस समय देवीने समस्त लोकोंका भरण-पोषण किया, इसलिये देवीका 'शाकम्भरी' यह नाम विख्यात हुआ।

देवी शाकम्भरीकी कृपासे देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संतुष्ट हो गया। सबकी भूख-प्यास मिट गयी, उन सभीको अपनी माताके दर्शन हो गये। जीवलोक हर्षमें भर गया।

उस समय देवीने पूछा—'देवताओ! अब तुम्हारा कौन-सा कार्य मैं सिद्ध करूँ।' सभी देवता समवेत स्वरमें बोले—'देवि! आपने सब लोगोंको संतुष्ट कर दिया है। अब कृपा करके दुर्गमासुरके द्वारा अपहृत वेद लाकर हमें दे दीजिये।'

देवीने 'तथास्तु' कहकर कहा—'देवताओ! आप लोग अपने-अपने स्थानको जायँ, मैं शीघ्र ही उस दुर्गम दैत्यका वधकर वेदोंको ले आऊँगी।'

यह सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए और वे देवीको प्रणामकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये। सब ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। तीनों लोकोंमें महान् कोलाहल मच गया। इधर अपने दूतोंसे दुर्गम दैत्यने सारी स्थितिको समझ लिया। उसके विपक्षी देवता फिर सुखी हो गये हैं, यह देखकर उस दैत्यने सेना लेकर न केवल स्वर्गलोकको बल्कि पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्षलोकको भी घेर लिया। एक बार पुनः देवता संकटमें पड़ गये। उन्होंने पुनः मातासे रक्षाकी गुहार लगायी। माँ तो सब देख ही रही थीं, वे इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थीं।

शीघ्र ही भगवतीने अपने दिव्य तेजोमण्डलसे तीनों लोकोंको व्याप्तकर एक घेरा बना डाला और देवता, मनुष्य आदि उस घेरेमें सुरक्षित हो गये। स्वयं देवी घेरेसे बाहर आकर दुर्गमके सामने खड़ी हो गयीं। दुर्गम भी अपनी सेनाके साथ युद्धके लिये संनद्ध था। क्षणभरमें ही लड़ाई ठन गयी। दोनों ओरसे दिव्य बाणोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीच देवीके श्रीविग्रहसे काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी तथा मातङ्गी नामवाली दस महाविद्याएँ उत्पन्न हुईं, जो अस्त्र-शस्त्र लिये हुई थीं। तत्पश्चात् दिव्य मूर्तिवाली असंख्य मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था तथा वे दिव्य आयुधोंसे सुसज्जित थीं। उन मातृगणोंके साथ दैत्योंका भयंकर युद्ध हुआ। मातृकाओंने दुर्गम दैत्यकी सेनाको तहस-नहस कर दिया। दस दिन यह युद्ध चलता रहा। दैत्य-सेनाका विनाश देखकर ग्यारहवें दिन स्वयं दुर्गम सामने आ डटा। वह लाल रंगकी माला

और लाल वस्त्र धारण किये हुए था। एक विशाल रथमें बैठकर वह महाबली दैत्य क्रोधके वशीभूत हो देवीपर बाणोंकी बौछार करने लगा। इधर देवी भी रथपर आरूढ हो गयीं। उन्होंने भी बाणोंका कौशल दिखाना प्रारम्भ किया। युद्ध तो भयंकर हुआ, किंतु भगवती कालरात्रिके सामने दुर्गम कबतक टिका रहता? देवीने एक ही साथ पंद्रह बाण छोड़े। चार बाणोंसे रथके चारों घोड़े गिर पड़े। एक बाणने सारथीका प्राण ले लिया। दो बाणोंने दुर्गमके दोनों नेत्रोंको तथा दो बाणोंने उसकी भुजाओंको बींध डाला।

एक बाणने रथकी ध्वजाको काट डाला। शेष पाँच तीक्ष्ण बाण दुर्गमकी छातीमें जाकर घुस गये। रुधिर वमन करता हुआ वह दैत्य परमेश्वरीके सामने ही अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा। उसके शरीरसे एक दिव्य तेज निकला जो भगवतीके शरीरमें प्रविष्ट हो गया। देवीके हाथसे उसका उद्धार हो गया। देवी भुवनेश्वरीने दुर्गम दैत्यका वध किया था, इसीलिये वे 'दुर्गा' इस नामसे प्रसिद्ध हो गयीं। स्वयं देवीने भी अपने इस नामकी प्रसिद्धिके विषयमें कहा है—

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्॥
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४९-५०)

उन्होंने वेदोंको पुनः देवताओं तथा ब्राह्मणोंको समर्पित कर दिया। उस दैत्यके मर जानेपर त्रिलोकीका संकट दूर हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। माँकी कृपासे अभिभूत हो सभी अनेक प्रकारसे देवी दुर्गाकी स्तुति-प्रार्थना करने लगे। पुनः देवीने अनेक आशीर्वाद दिये और सभीको निर्भय बना दिया।

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत तेरह अध्यायोंमें जो देवी-माहात्म्य वर्णित है, वह सब भगवती दुर्गाकी ही महिमामें पर्यवसित है। वहाँ देवता भगवतीकी स्तुति करते हुए कहते हैं—'माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख-दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो'—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ४। १७)

भगवतीके स्वरूपका वर्णन

ध्यानम्—

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शंख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अङ्ग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कंकण, खनखनाती हुई करधनी और रुन-झुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

एक बार सभी देवता देवीके समीप गये और बड़े ही विनयपूर्वक पूछने लगे—'हे महादेवि! आप कौन हैं? इसे बतानेकी कृपा करें।' इसपर देवीने कहा—'मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। मुझसे प्रकृतिपुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है'—

'अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च॥'

इस प्रकारसे देवीने अपने सूक्ष्म तथा स्थूल और स्थूल-सूक्ष्मसे भी परे अपने परात्पर स्वरूपका वर्णन करते हुए बताया कि 'जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गाके

नामसे प्रसिद्ध हैं'—

यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥

(दुर्गा० देव्यथर्वशीर्ष २४)

भगवती शाकम्भरी नामवाले जिस लीलास्वरूपका पूर्वमें वर्णन हुआ है, वे ही शाकम्भरी देवी शताक्षी तथा दुर्गा कही गयी हैं—

शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता॥[1]

(दुर्गा, मूर्तिरहस्य १५)

दुर्गासप्तशतीमें देवताओंकी प्रार्थनापर देवीने उन्हें बताया कि 'जब पृथ्वीपर सौ वर्षोंके लिये वर्षा रुक जायगी और पानीका अभाव हो जायगा, उस समय मुनियोंके स्तवन करनेपर मैं पृथ्वीपर अयोनिजा रूपमें प्रकट होऊँगी और सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी, अतः मनुष्य 'शताक्षी'-नामसे मेरा कीर्तन करेंगे'—

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा॥
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४६-४७)

इसी प्रकार अपने शाकम्भरी नामवाले लीला-विग्रहके विषयमें देवीने बताया—

'देवताओ! उस समय मैं अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा समस्त संसारका भरण-पोषण करूँगी। जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सबके प्राणोंकी रक्षा करेंगे। ऐसा करनेके कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी' के नामसे मेरी ख्याति होगी—

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४८-४९)

देवी शाकम्भरीके शरीरकी कान्ति नीले रंगकी है। उनके नेत्र नील कमलके समान हैं। नाभि गम्भीर है तथा त्रिवलीसे विभूषित कटिभाग सूक्ष्म है। उनका वक्षःस्थल उन्नत एवं सुडौल है, वे परमेश्वरी कमलमें निवास करनेवाली हैं और हाथोंमें बाणोंसे भरी मुष्टि, कमल, शाकसमूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं। वह शाकसमूह अनन्त मनोवाञ्छित रसोंसे युक्त, क्षुधा, तृषा (प्यास) और मृत्युके भयको नष्ट करनेवाला तथा फूल, पल्लव, मूल एवं फलों आदिसे सम्पन्न है। वे शोकसे रहित, दुष्टोंका दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्तिको शान्त करनेवाली हैं। उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं। जो मनुष्य शाकम्भरीदेवीकी स्तुति, ध्यान, जप, पूजा और वन्दन करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृत-रूप अक्षय फलका भागी होता है—

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन्।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम्॥

(दुर्गा, मूर्तिरहस्य १७)

देवी रक्तदन्तिका, भीमा, भ्रामरी एवं नन्दा-रूप विग्रहोंके लीला-आख्यान

देवी रक्तदन्तिकाकी लीला-कथा

देवी भुवनेश्वरीने विविध प्रकारकी अवतार-लीलाओंके द्वारा दुष्ट दैत्योंका वध करके संसारको विनाशसे बचाया। वे देवी आर्तजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। शुम्भ आदि महान् दैत्योंसे त्राण पानेके बाद देवता लोग भगवती कात्यायनीकी स्तुति करते हुए कहने लगे—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३)

शरणागतकी पीडा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न

१-शाकम्भरी, शताक्षी और दुर्गा—इन तीनों स्वरूपोंकी अभिन्नताका वर्णन शिवपुराण (उमासंहिता अ० ५०) तथा देवी-भागवत (७। २८)-में भी हुआ है।

होओ। सम्पूर्ण जगत्की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर-जगत्की अधीश्वरी हो।

हे देवि! तुम्हीं इस जगत्का एकमात्र आधार हो। सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। नारायणि! तुम सब प्रकारका मङ्गल प्रदान करनेवाली मङ्गलमयी हो, कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो, तुम्हें नमस्कार है—

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। १०)

हे देवि! जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं—

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। २९)

हे जगन्मातः! हे अम्बिके! तुम अपने रूपको अनेक भागोंमें विभक्त कर नाना प्रकारके लीला-रूप धारण करती हो, वैसा क्या अन्य कोई कर सकता है?

रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३०)

इसलिये हे परमेश्वरि! आप सबके लिये वरदान देनेवाली होओ—

'लोकानां वरदा भव॥'

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ३५)

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने अनेक लीला-रूपोंमें आविर्भूत होकर दुष्टोंसे त्राण दिलानेका वर देवताओंको प्रदान किया। उस समय देवीने अपने रक्तदन्तिका नामक लीला-अवतारके विषयमें बताया—

अत्यन्त भयंकर-रूपसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी। उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत दाडिम (अनार)-के फूलकी भाँति लाल हो जायँगे, तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे—

स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४५)

देवी रक्तदन्तिकाका स्वरूप यद्यपि बहुत भयंकर है, किंतु वह केवल दुष्टोंके लिये ही है। भक्तोंके लिये तो उनका सौम्य, शान्त एवं मनोरम लीला-रूप ही प्रकट होता है। वे सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाली हैं। वे लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रंग भी लाल ही है और अङ्गोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख और दाँत—सभी रक्तवर्णके हैं। इसीलिये उन्हें रक्ताम्बरा, रक्तवर्णा, रक्तकेशा, रक्तायुधा, रक्तनेत्रा, रक्तदशना तथा रक्तदन्तिका आदि नामोंसे कहा जाता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिके प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी रक्तदन्तिका अपने भक्तोंपर स्नेह रखते हुए उसकी सेवा करती हैं—

'पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम्॥'

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य ६)

तथा—

तं सा परिचरेद् देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना॥

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य ११)

देवी रक्तदन्तिकाका आकार वसुधाके समान विशाल है। वे सबकी मातृरूपा हैं। सभी रक्तदन्तिका माताके पुत्र हैं। इसीलिये माता अपने पुत्रोंको अपना अमृतके समान आनन्ददायी दुग्ध पिलाकर सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करती हैं। वे अपने चार भुजाओंमें खड्ग, पानपात्र, मुसल और हल धारण करती हैं। रक्तचामुण्डा और योगेश्वरी भी इन्हींका नाम है। इन्होंने सम्पूर्ण चराचर-जगत्को व्याप्त कर रखा है।

जो भक्तिपूर्वक देवी रक्तदन्तिकाका पूजन, स्तवन, ध्यान, वन्दन करता है, वह भी चराचर-जगत्में व्याप्त हो जाता है—

'इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम्॥'

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य १०)

देवी भीमाका आख्यान

देवी भगवतीने हिमालयपर रहनेवाले मुनियोंकी रक्षा

करनेके लिये अपना 'भीम' नामक लीला-रूप धारण किया और राक्षसोंका वध किया। उस समय मुनियोंने भक्तिपूर्वक बड़े ही विनम्र-भावसे देवीकी स्तुति की। 'भीम'-रूप धारण करनेके कारण देवीका वह लीला-विग्रह 'भीमा' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने लीला-रूपके विषयमें देवीने देवताओंसे कहा—

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले॥
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥
भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ५०—५२)

भीमादेवीका वर्ण नीला है। उनकी दाढ़ें और दाँत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वे अपने हाथोंमें चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं, वे ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा भी कहलाती हैं।

भगवती भ्रामरीदेवीकी लीलाएँ

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका भगवती जगदम्बाकी लीलाएँ अचिन्त्य हैं, मङ्गलकारिणी हैं तथा आनन्ददायिनी हैं। उनके अनेक लीला-विग्रहोंमें भ्रामरी भी एक मुख्य विग्रह है। भ्रामरीदेवीकी कथा इस प्रकार है—

पूर्व समयकी बात है, अरुण नामका एक पराक्रमी दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह दानव पातालमें रहता था। उसके मनमें देवताओंको जीतनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी, अतः वह हिमालयपर जाकर ब्रह्माको प्रसन्न करनेके लिये कठोर तप करने लगा। कठिन नियमोंका पालन करते हुए उसे हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। तपस्याके प्रभावसे उसके शरीरसे प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाएँ निकलने लगीं, जिससे देवलोकके देवता भी घबरा उठे। वे समझ ही न सके कि यह अकस्मात् क्या हो गया। सभी देवता ब्रह्माजीके पास गये और सारा वृत्तान्त उन्हें निवेदित किया। देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजी गायत्रीदेवीको साथ ले हंसपर बैठे और उस स्थानपर गये जहाँ दानव अरुण तपमें स्थित था। उसकी गायत्री-उपासना बड़ी तीव्र थी। उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्माजीने वर माँगनेके लिये कहा। देवी गायत्री तथा ब्रह्माजीका आकाशमण्डलमें दर्शन करके दानव अरुण अत्यन्त प्रसन्न हो गया। वह वहीं भूमिपर गिरकर दण्डवत् प्रणाम करने लगा—
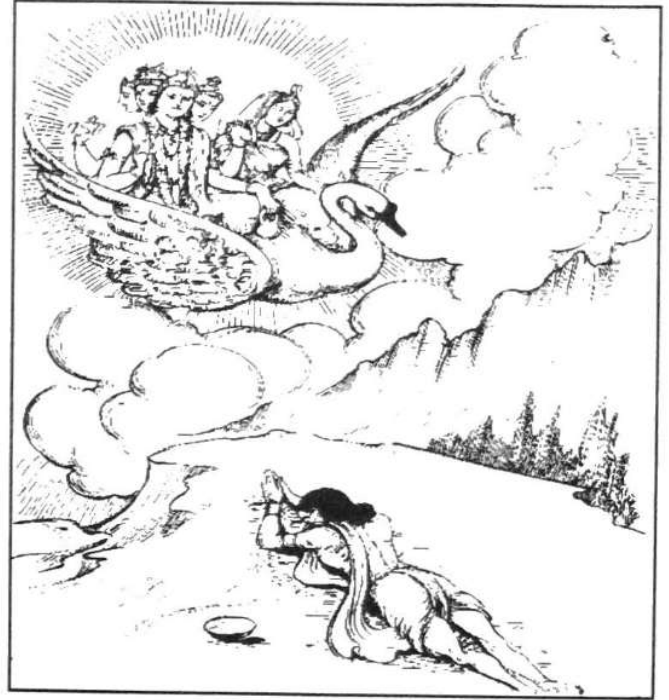
उसने अनेक प्रकारसे स्तुति की और अमर होनेका वर माँगा। परंतु ब्रह्माजीने कहा—'वत्स! संसारमें जन्म लेनेवाला अवश्य मृत्युको प्राप्त होगा, अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो।' तब अरुण बोला—'प्रभो! यदि ऐसी बात है तो मुझे यह वर देनेकी कृपा करें कि—'मैं न युद्धमें मरूँ, न किसी अस्त्र-शस्त्रसे मरूँ, न किसी भी स्त्री या पुरुषसे ही मेरी मृत्यु हो और दो पैर तथा चार पैरोंवाला कोई भी प्राणी मुझे न मार सके। साथ ही मुझे ऐसा बल दीजिये कि मैं देवताओंपर विजय प्राप्त कर सकूँ।'

'तथास्तु' कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये और इधर अरुण दानव विलक्षण वर प्राप्तकर उन्मत्त हो गया। उसने पातालसे सभी दानवोंको बुलाकर विशाल सेना तैयार कर ली और स्वर्गलोकपर चढ़ाई कर दी। वरके प्रभावसे देवता पराजित हो गये। देवलोकपर दानव अरुणका अधिकार हो गया। वह अपनी मायासे अनेक प्रकारके रूप बना लेता था। उसने तपस्याके प्रभावसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, यम, अग्नि आदि देवताओंका पृथक्-पृथक् रूप बना लिया और सबपर शासन करने लगा।

देवता भागकर अशरणशरण आशुतोष भगवान् शंकरकी शरणमें गये और अपना कष्ट उन्हें निवेदित किया। उस समय भगवान् शंकर बड़े विचारमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि ब्रह्माजीके द्वारा प्राप्त विचित्र वरदानसे यह दानव

अजेय-सा हो गया है, यह न तो युद्धमें मर सकता है न किसी अस्त्र-शस्त्रसे, न तो इसे कोई दो पैरवाला मार सकता है न कोई चार पैरवाला, यह न स्त्रीसे मर सकता है और न किसी पुरुषसे। वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये और उसके वधका उपाय सोचने लगे।

उसी समय आकाशवाणी हुई—'देवताओ! तुम लोग भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करो, वे ही तुम लोगोंका कार्य करनेमें समर्थ हैं। यदि दानवराज अरुण नित्यकी गायत्री-उपासना तथा गायत्री-जपसे विरत हो जाय तो शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जायगी।'

आकाशवाणी सुनकर सभी देवता आश्वस्त हो गये। उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिजीको अरुणके पास भेजा ताकि वे उसकी बुद्धिको मोहित कर सकें। बृहस्पतिजीके जानेके बाद देवता भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करने लगे।

इधर भगवती भुवनेश्वरीकी प्रेरणा तथा बृहस्पतिजीके उद्योगसे अरुणने गायत्री-जप करना छोड़ दिया। गायत्री-जपके परित्याग करते ही उसका शरीर निस्तेज हो गया। अपना कार्य सफल हुआ जान बृहस्पति अमरावती लौट आये और इन्द्रादि देवताओंको सारा समाचार बताया। पुनः सभी देवता देवीकी स्तुति करने लगे।

उनकी आराधनासे आदिशक्ति जगन्माता प्रसन्न हो गयीं और विलक्षण लीला-विग्रह धारणकर देवताओंके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनके श्रीविग्रहसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। असंख्य कामदेवोंसे भी सुन्दर उनका सौन्दर्य था। उन्होंने रमणीय वस्त्राभूषणोंको धारण कर रखा था और वे नाना प्रकारके भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे शोभायमान थीं। वे चारों ओरसे असंख्य भ्रमरोंसे घिरी हुई थीं। भ्रमर 'ह्रीं' इस शब्दको गुनगुना रहे थे। उनकी मुट्ठी भ्रमरोंसे भरी हुई थी।[१]

उन देवीका दर्शनकर देवता पुनः स्तुति करते हुए कहने लगे—सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली भगवती महाविद्ये! आपको नमस्कार है। भगवती दुर्गे! आप ज्योतिःस्वरूपिणी एवं भक्तिसे प्राप्य हैं, आपको हमारा नमस्कार है। हे नीलसरस्वती देवि! उग्रतारा, त्रिपुरसुन्दरी, पीताम्बरा, भैरवी, मातंगी, शाकम्भरी, शिवा, गायत्री, सरस्वती तथा स्वाहा-स्वधा—ये सब आपके ही नाम हैं। हे दयास्वरूपिणी देवि! आपने शुम्भ-निशुम्भका दलन किया है, रक्तबीज और वृत्रासुर तथा धूम्रलोचन आदि राक्षसोंको मारकर संसारको विनाशसे बचाया है। हे दयामूर्ते! धर्ममूर्ते! आपको हमारा नमस्कार है। हे देवि! भ्रमरोंसे वेष्टित होनेके कारण आपने 'भ्रामरी' नामसे यह लीला-विग्रह धारण किया है, हे भ्रामरीदेवि! आपके इस लीलारूपको हम नित्य प्रणाम करते हैं। बार-बार नमस्कार करते हैं—

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥

(देवीभागवत १०। १३। ९९)

इस प्रकार बार-बार प्रणाम करते हुए देवताओंने ब्रह्माजीके वरसे अजेय बने हुए अरुण दैत्यसे प्राप्त पीड़ासे छुटकारा दिलानेकी भ्रामरीदेवीसे प्रार्थना की।

करुणामयी माँ भ्रामरीदेवी बोलीं—'देवताओ! आप सभी निर्भय हो जायँ। ब्रह्माजीके वरदानकी रक्षा करनेके लिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अरुण दानवने वर माँगा है कि मैं न तो दो पैरवालोंसे मरूँ और न चार पैरवालोंसे, मेरा यह भ्रमररूप छः पैरोंवाला है, इसीलिये भ्रमर षट्पद भी कहलाता है। उसने वर माँगा है कि मैं न युद्धमें मरूँ और न किसी अस्त्र-शस्त्रसे। इसीलिये मेरा यह भ्रमररूप उससे न तो युद्ध करेगा और न अस्त्र-शस्त्रका प्रयोग करेगा। साथ ही उसने मनुष्य, देवता आदि किसीसे भी न मरनेका वर माँगा है, मेरा यह भ्रमररूप न तो मनुष्य है और न देवता ही। देवगणो! इसीलिये मैंने यह भ्रामरी-रूप धारण किया है। अब आप लोग मेरी लीला देखिये।' ऐसा कहकर भ्रामरीदेवीने अपने हस्तगत भ्रमरोंको तथा अपने चारों ओर स्थित भ्रमरोंको भी प्रेरित किया, असंख्य भ्रमर 'ह्रीं-ह्रीं' करते उस दिशामें चल पड़े जहाँ अरुण दानव स्थित था।

१-मार्कण्डेयपुराणमें बताया गया है कि भ्रामरीदेवीकी कान्ति विचित्र (अनेक रंगकी) है। वे अपने तेजोमण्डलके कारण दुर्धर्ष दिखायी देती हैं। उनका अङ्गराग भी अनेक रंगका चित्र-विचित्र आभूषणोंसे विभूषित है। चित्रभ्रमरपाणि और महामारी आदि नामोंसे उनकी महिमाका गान किया जाता है—

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्। चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते। (श्रीदुर्गासप्तशती, मूर्तिरहस्य २०-२१)

उन भ्रमरोंसे त्रैलोक्य व्याप्त हो गया। आकाश, पर्वत, शृंग, वृक्ष, वन जहाँ-तहाँ भ्रमर-ही-भ्रमर दृष्टिगोचर होने लगे। भ्रमरोंके कारण सूर्य छिप गया। चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार छा गया। यह भ्रामरीदेवीकी विचित्र लीला थी। बड़े ही वेगसे उड़नेवाले उन भ्रमरोंने दैत्योंकी छाती छेद डाली। वे दैत्योंके शरीरमें चिपक गये और उन्हें काटने लगे। तीव्र वेदनासे दैत्य छटपटाने लगे। किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे भ्रमरोंका निवारण करना सम्भव नहीं था। अरुण दैत्यने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वह भी असमर्थ ही रहा। थोड़े ही समयमें जो दैत्य जहाँ था वहीं भ्रमरोंके काटनेसे मरकर गिर पड़ा। अरुण दानवका भी यही हाल रहा। उसके सभी अस्त्र-शस्त्र विफल रहे। देवीने भ्रामरी-रूप धारणकर ऐसी लीला दिखायी कि ब्रह्माजीके वरदानकी भी रक्षा हो गयी और अरुण दैत्य तथा उसकी समूची दानवी सेनाका संहार भी हो गया।

इस प्रकारका अद्भुत कार्य करके वे सभी भ्रमर देवीके पास लौट आये और उन्हींमें प्रतिष्ठित हो गये तथा कुछ देवीके आभूषण रूपमें स्थित हो गये। देवता जय-जयकार करने लगे। ऐसी आश्चर्यजनक लीला देखकर वे कहने लगे—'भगवती महामायाके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है।' पुनः अनेक प्रकारसे स्तुतिकर तथा देवीका आशीर्वाद प्राप्तकर वे देवगण यथास्थान प्रस्थान कर गये। संसारके सभी प्राणी सुखी हो गये। और देवीने भी अपनी भ्रामरी-लीलाका संवरण कर लिया।

देवी नन्दा (विन्ध्यवासिनी)-की लीला-कथा

देवी नन्दाकी महिमा और कृपा-लीला विलक्षण ही है। इनका कृपामय विग्रह भक्तोंके लिये परम आराध्य है। देवी नन्दाका ही दूसरा नाम नन्दजा है और इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है विन्ध्यवासिनी। सबको आनन्द प्रदान करनेवाली होनेसे ये 'नन्दा', नन्दगोपकी कन्या होनेके कारण 'नन्दजा' और विन्ध्याचलपर निवास करनेके कारण 'विन्ध्यवासिनी' कहलाती हैं। इनके आविर्भावकी अनेक लीला-कथाएँ हैं, जिनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

मार्कण्डेयपुराण जो भगवती पराम्बाकी महिमा एवं आराधनामें पर्यवसित है, उसके देवी-माहात्म्यमें स्वयं भगवती अपने आविर्भावके विषयमें देवताओंको बताती हुई कहती हैं कि—

'देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामक दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे, तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण हो विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उन दोनों असुरोंका नाश करूँगी'—

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ११। ४१-४२)

भगवती नन्दाके श्रीअङ्गोंकी कान्ति कनकके समान उत्तम है। वे सुनहरे रंगके सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्णके तुल्य है तथा वे सुवर्णके ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं। उनकी चारों भुजाएँ कमल, अंकुश, पाश और शंखसे सुशोभित रहती हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं।

श्रीमद्भागवतमें वर्णित है कि कंसके भयसे त्रस्त वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको लेकर नन्दगोपके घरमें गये। वहाँ बालकको यशोदाके समीप सुलाकर देवी यशोदाकी कोखसे आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरामें चले आये और पूर्व-प्रतिज्ञानुसार कंसको सौंप दिया। उस समय क्रूर कंस उस कन्याको जब मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब वह दिव्य कन्या उसके हाथसे छूटकर आकाशमें विराट्रूपमें स्थित हो गयी। विराट्रुपा उन देवी योगमायाने दिव्य वस्त्रालंकारोंको धारण कर रखा था। उनके आभूषण रत्नोंसे जटित थे। उनकी आठ भुजाएँ थीं, जिनमें वे धनुष, बाण, त्रिशूल, ढाल, तलवार, शंख, चक्र तथा गदा धारण की हुई थीं। आकाशमें वे एक दिव्य तेजोमण्डलसे व्याप्त थीं, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशमान हो

रही थीं। समस्त देवता, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर एवं ऋषि-महर्षि उनकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। उनका वह विराट्रूप वसुदेव-देवकीके लिये तो अत्यन्त सौम्य तथा वरद था, किंतु कंसको वे साक्षात् कालरूपा ही दिखलायी पड़ रही थीं।

उस योगमायाने आकाशवाणीमें कहा—'अरे मूर्ख कंस! तुम मुझे क्या मारेगा? तुम्हें मारनेवाला तो दूसरी जगह पैदा हो गया है, अपना भला चाहता है तो भगवान्की शरण ले और अब निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर।' यह कहकर वे देवी अन्तर्धान हो गयीं और विन्ध्यपर्वतपर जाकर स्थित हो गयीं।

इस प्रकारकी लीला-कथाओंको प्रदर्शित करनेवाली भगवती नन्दा अथवा विन्ध्यवासिनीदेवी भक्तोंका सब प्रकारसे कल्याण करनेवाली हैं, इन्हें 'कृष्णानुजा' भी कहा गया है। वस्तुतः ये भगवान्की साक्षात् योगमाया हैं। सम्पूर्ण योगैश्वर्योंसे सम्पन्न हैं। इनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है। इनका वाहन सिंह समग्र धर्मका ही विग्रह-रूप है।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायिका राजराजेश्वरी भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान विन्ध्यपर्वतपर है। यह देवीका जाग्रत् शक्तिपीठ है। यहाँ देवी अपने समग्र रूपसे प्रतिष्ठित हैं और महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके त्रिकोणके रूपमें पूजित होती हैं। भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा करनेवालोंके अधीन तीनों लोक हो जाते हैं, ऐसी कृपामयी देवी नन्दाको बार-बार नमन है।—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥

(दुर्गा० मूर्तिरहस्य १)

भगवती सरस्वतीकी लीला-कथा

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।

सम्पूर्ण जगत्‌की कारणभूत आद्या शक्ति परमेश्वरीकी अभिव्यक्ति तीन रूपोंमें होती है—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती। इनकी मूल प्रकृति महालक्ष्मी ही हैं। वे ही विशुद्ध सत्त्वगुणके अंशसे महासरस्वतीके रूपमें प्रकट होती हैं। इनका चन्द्रमाके समान गौर वर्ण है। इनके हाथोंमें अक्षमाला, अंकुश, वीणा तथा पुस्तक शोभा पाती है। महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक् , सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धिकी स्वामिनी)—ये इनके नाम हैं। ये वाणी और विद्याकी अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। ऋग्वेदमें वाग्देवीका नाम सरस्वती बताया गया है। इनके तीन स्थान हैं—स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष। स्वर्गकी वाग्देवीका नाम भारती, पृथ्वीके वाग्देवीका नाम इला और अन्तरिक्षवासिनी वाग्देवीका नाम सरस्वती है। तन्त्रशास्त्रमें प्रसिद्ध तारादेवीका नाम भी सरस्वती है। तन्त्रोक्त नीलसरस्वतीकी पीठशक्तियोंमें भी सरस्वतीका नाम आया है। तारिणीदेवीकी एक मूर्तिका नाम भी सरस्वती है। सरस्वतीदेवी सम्पूर्ण संशयोंका उच्छेद करनेवाली तथा बोधस्वरूपिणी हैं। इनकी उपासनासे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये संगीत-शास्त्रकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। ताल, स्वर, लय, राग-रागिनी आदिका प्रादुर्भाव भी इन्हींसे हुआ है। सात प्रकारके स्वरोंद्वारा इनका स्मरण किया जाता है, इसलिये ये स्वरात्मिका कहलाती हैं। सप्तविध स्वरोंका ज्ञान प्रदान करनेके कारण इनका नाम सरस्वती है।

'देवीभागवत'में लिखा है, सरस्वतीदेवी भगवान् श्रीकृष्णकी जिह्वाके अग्रभागसे प्रकट हुई हैं। श्रीकृष्णने उन्हें भगवान् नारायणको समर्पित किया। श्रीकृष्णने ही संसारमें सरस्वतीकी पूजा प्रचारित की। पूर्वकालमें भगवान् नारायणकी तीन पत्नियाँ थीं—लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वती। तीनों ही बड़े प्रेमसे रहतीं और अनन्यभावसे भगवान्का पूजन किया करती थीं। एक दिन भगवान्की ही इच्छासे ऐसी घटना हो गयी, जिससे लक्ष्मी, गङ्गा और सरस्वतीको भगवान्के चरणोंसे कुछ कालके लिये दूर हट जाना पड़ा। भगवान् जब अन्तःपुरमें पधारे, उस समय तीनों देवियाँ एक ही स्थानपर बैठी हुई परस्पर प्रेमालाप कर रही थीं, भगवान्को आया देख तीनों उनके स्वागतके लिये खड़ी हो गयीं। उस समय गङ्गाने विशेष प्रेमपूर्ण दृष्टिसे भगवान्की ओर देखा। भगवान्ने भी उनकी दृष्टिका उत्तर वैसी ही स्नेहपूर्ण दृष्टिमें हँसकर दिया; फिर वे किसी आवश्यकतावश अन्तःपुरसे बाहर निकल गये। तब देवी सरस्वतीने गङ्गाके उस बर्तावको अनुचित बताकर उनके प्रति आक्षेप किया। गङ्गाने भी कठोर शब्दोंमें उनका प्रतिवाद किया। उनका विवाद बढ़ता देख लक्ष्मीजीने दोनोंको शान्त करनेकी चेष्टा की। सरस्वतीने लक्ष्मीके इस बर्तावको गङ्गाजीके प्रति पक्षपात माना और उन्हें शाप दे दिया, 'तुम वृक्ष और नदीके रूपमें परिणत हो जाओगी।' यह देख गङ्गाने भी सरस्वतीको शाप दिया, 'तुम भी नदी हो जाओगी।' यही शाप सरस्वतीकी ओरसे गङ्गाको भी मिला। इतनेहीमें भगवान् पुनः अन्तःपुरमें लौट आये। अब देवियाँ प्रकृतिस्थ हो चुकी थीं। उन्हें अपनी भूल मालूम हुई तथा भगवान्के चरणोंसे विलग होनेके भयसे दुखी होकर रोने लगीं।

इस प्रकार उनका सब हाल सुनकर भगवान्को खेद हुआ। उनकी आकुलता देखकर वे दयासे द्रवीभूत हो उठे। उन्होंने कहा—'तुम सब लोग एक अंशसे ही नदी होओगी; अन्य अंशोंसे तुम्हारा निवास मेरे ही पास रहेगा। सरस्वती एक अंशसे नदी होंगी। एक अंशसे इन्हें ब्रह्माजीकी सेवामें रहना पड़ेगा तथा शेष अंशोंसे ये मेरे ही पास निवास करेंगी। कलियुगके पाँच हजार वर्ष बीतनेके बाद तुम सबके शापका उद्धार हो जायगा। इसके अनुसार सरस्वती भारतभूमिमें अंशतः अवतीर्ण होकर 'भारती' कहलायीं। उसी शरीरसे ब्रह्माजीकी प्रियतमा पत्नी होनेके कारण उनकी 'ब्राह्मी' नामसे प्रसिद्धि हुई। किसी-किसी कल्पमें सरस्वती ब्रह्माजीकी कन्याके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और आजीवन कुमारीव्रतका पालन करती हुई उनकी सेवामें रहती हैं।

एक बार ब्रह्माजीने यह विचार किया कि इस पृथ्वीपर सभी देवताओंके तीर्थ हैं, केवल मेरा ही तीर्थ नहीं है। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने नामसे एक तीर्थ स्थापित करनेका निश्चय किया और इसी उद्देश्यसे एक रत्नमयी शिला पृथ्वीपर गिरायी। वह शिला चमत्कारपुरके समीप गिरी; अतः ब्रह्माजीने उसी क्षेत्रमें अपना तीर्थ स्थापित किया। एकार्णवमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल निकला, जिससे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ, वह स्थान भी वही माना गया है। वही पुष्कर तीर्थके नामसे विख्यात हुआ। पुराणोंमें उसकी बड़ी महिमा गायी गयी है। तीर्थ स्थापित होनेके बाद ब्रह्माजीने वहाँ पवित्र जलसे पूर्ण एक सरोवर बनानेका विचार किया। इसके लिये उन्होंने सरस्वती नदीका स्मरण किया। सरस्वतीदेवी नदीरूपमें परिणत होकर भी पापीजनोंके स्पर्शके भयसे छिपी-छिपी पातालमें बहती थीं। ब्रह्माजीके स्मरण करनेपर वे भूतल और पूर्वोक्त शिलाको भी भेदकर वहाँ प्रकट हुईं। उन्हें देखकर ब्रह्माजीने कहा—'तुम सदा यहाँ मेरे समीप ही रहो; मैं प्रतिदिन तुम्हारे जलमें तर्पण करूँगा।'

ब्रह्माजीका यह आदेश सुनकर सरस्वतीको बड़ा भय हुआ। वे हाथ जोड़कर बोलीं—'भगवन्! मैं जन-सम्पर्कके भयसे पातालमें रहती हूँ। कभी प्रकट नहीं होती; किंतु आपकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना भी मेरी शक्तिके बाहर है; अतः आप इस विषयपर भलीभाँति सोच-विचारकर जो उचित हो, वैसी व्यवस्था कीजिये।' तब ब्रह्माजीने सरस्वतीके निवासके लिये वहाँ एक विशाल सरोवर खुदवाया। सरस्वतीने उसी सरोवरमें आश्रय लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने बड़े-बड़े भयानक सर्पोंको बुलाकर कहा—'तुम लोग सावधानीके साथ सब ओरसे इस सरोवरकी रक्षा करते रहना; जिससे कोई भी सरस्वतीके शरीरका स्पर्श न कर सके।'

एक बार भगवान् विष्णुने सरस्वतीको यह आदेश दिया कि 'तुम बडवानलको अपने प्रवाहमें ले जाकर समुद्रमें छोड़ दो।' सरस्वतीने इसके लिये ब्रह्माजीकी भी अनुमति चाही। लोकहितका विचार करके ब्रह्माजीने भी उन्हें उस कार्यके लिये सम्मति दे दी। तब सरस्वतीने कहा—'भगवन्! यदि मैं भूतलपर नदीरूपमें प्रकट होती हूँ, तो पापीजनोंके सम्पर्कका भय है और यदि पातालमार्गसे इस अग्निको ले जाती हूँ तो स्वयं अपने शरीरके जलनेका डर है।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हें जैसे सुगमता हो, उसी प्रकार कर लो। यदि पापियोंके सम्पर्कसे बचना चाहो, तो पातालके ही मार्गसे जाओ; भूतलपर प्रकट न होना; साथ ही जहाँ तुम्हें बडवानलका ताप असह्य हो जाय, वहाँ पृथ्वीपर नदीरूपमें प्रकट भी हो जाना। इससे तुम्हारे शरीरपर उसके तापका प्रभाव नहीं पड़ेगा।'

ब्रह्माजीका यह उत्तर पाकर सरस्वती अपनी सखियों—गायत्री, सावित्री और यमुना आदिसे मिलकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं और वहाँसे नदीरूप होकर धरतीपर प्रवाहित हुईं। उनकी जलराशिमें कच्छप और ग्राह आदि जल-जन्तु भी प्रकट हो गये। बडवानलको लेकर वे सागरकी ओर प्रस्थित हुईं। जाते समय वे धरतीको भेदकर पाताल मार्गसे ही यात्रा करने लगीं। जब वे अग्निके तापसे संतप्त हो जातीं तो कहीं-कहीं भूतलपर प्रकट भी हो जाया करती थीं। इस प्रकार जाते-जाते वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचीं। वहाँ चार तपस्वी मुनि कठोर तपस्यामें लगे थे। इन्होंने पृथक्-पृथक् अपने-अपने आश्रमके पास सरस्वतीको बुलाया। इसी समय समुद्रने भी प्रकट होकर सरस्वतीका आवाहन किया। सरस्वतीको समुद्रतक तो जाना ही था, ऋषियोंकी अवहेलना करनेसे भी शापका भय था; अतः उन्होंने अपनी पाँच धाराएँ कर लीं। एकसे तो वे सीधे समुद्रकी ओर चलीं और चारसे पूर्वोक्त चारों ऋषियोंको स्नानकी सुविधा देती गयीं। इस प्रकार वे 'पञ्चस्रोता' सरस्वतीके नामसे प्रसिद्ध हुईं और मार्गके अन्य विघ्नोंको दूर करती हुई अन्तमें समुद्रसे जा मिलीं।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीने सरस्वतीसे कहा—'तुम किसी योग्य पुरुषके मुखमें कवित्वशक्ति होकर निवास करो।' ब्रह्माजीकी आज्ञा मानकर सरस्वती योग्य पात्रकी खोजमें बाहर निकलीं। उन्होंने ऊपरके सत्यादि लोकोंमें भ्रमण करके देवताओंमें पता लगाया तथा नीचेके सातों पातालोंमें घूमकर वहाँके निवासियोंमें खोज की; किंतु कहीं भी उनको सुयोग्य पात्र नहीं मिला। इसी अनुसंधानमें पूरा एक सत्ययुग बीत गया। तदनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें सरस्वतीदेवी भारतवर्षमें भ्रमण करने लगीं। घूमते-घूमते वे तमसा नदीके तीरपर पहुँचीं। वहाँ महातपस्वी महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्योंके साथ रहते थे। वाल्मीकि उस समय अपने आश्रमके इधर-उधर घूम रहे थे। इतनेमें ही उनकी दृष्टि एक क्रौञ्च पक्षीपर पड़ी; जो तत्काल ही एक व्याधके बाणसे घायल हो पंख फड़फड़ाता हुआ गिरा था। पक्षीका सारा शरीर लहूलुहान हो गया था। वह पीड़ासे तड़प रहा था और उसकी पत्नी क्रौञ्ची उसके पास ही गिरकर बड़े आर्तस्वरमें 'चें-चें' कर रही थी। पक्षीके उस जोड़ेकी यह दयनीय दशा देखकर दयालु महर्षि अपनी सहज करुणासे द्रवीभूत हो उठे। उनके मुखसे तुरंत ही एक श्लोक निकल पड़ा; जो इस प्रकार है—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

यह श्लोक सरस्वतीकी ही कृपाका प्रसाद था। उन्होंने महर्षिको देखते ही उनकी असाधारण योग्यता और प्रतिभाका परिचय पा लिया था; अतः उन्हींके मुखमें उन्होंने सर्वप्रथम प्रवेश किया। कवित्वशक्तिमयी सरस्वतीकी प्रेरणासे ही

उनके मुखकी वह वाणी, जो उन्होंने क्रौञ्चीकी सान्त्वनाके लिये कही थी, छन्दोमयी बन गयी। उनके हृदयका शोक ही श्लोक बनकर निकला था—'**शोकः श्लोकत्वमागतः**'। सरस्वतीके कृपापात्र होकर महर्षि वाल्मीकि ही 'आदिकवि' के नामसे संसारमें विख्यात हुए।

इस तरह सरस्वतीदेवी अनेक प्रकारकी लीलाओंसे जगत्‌का कल्याण करती हैं। बुद्धि, ज्ञान और विद्या-रूपसे सारा जगत् इनकी कृपा-लीलाका अनुभव करता है। ये मूलतः भगवान् नारायणकी पत्नी हैं तथा अंशतः नदी और ब्राह्मी रूपमें रहती हैं। ये ही गौरीके शरीरसे प्रकट होकर 'कौशिकी' नामसे प्रसिद्ध हुईं और शुम्भ-निशुम्भ आदिका वध करके इन्होंने संसारमें सुख-शान्तिकी स्थापना की। तन्त्र और पुराण आदिमें इनकी महिमाका विस्तृत वर्णन है। यहाँ संक्षेपसे ही इनके लीला-कथाका परिचय दिया गया है।

जगज्जननी लक्ष्मीकी प्राकट्य-लीला

पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्।
वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥

देवीकी जितनी शक्तियाँ मानी गयी हैं, उन सबका मूल महालक्ष्मी ही हैं। ये ही सर्वोत्कृष्ट पराशक्ति हैं। ये ही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति हैं। सारा विश्वप्रपञ्च महालक्ष्मीसे ही प्रकट हुआ है। तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी इनसे भिन्न नहीं है। स्थूल, सूक्ष्म, दृश्य, अदृश्य अथवा व्यक्त, अव्यक्त सब इन्हींके स्वरूप हैं। ये ही सच्चिदानन्दमयी साक्षात् परमेश्वरी हैं। यद्यपि अव्यक्तरूपसे ये सर्वत्र व्यापक हैं तथापि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम दिव्य चिन्मय सगुणरूपसे भी सदा विराजमान रहती हैं। इनके उस श्रीविग्रहकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णके सदृश है। ये नित्य सनातन होती हुई भी लीलाके लिये अनेक रूपोंमें प्रकट होती रहती हैं। 'देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जो कुछ पुरुषवाची है, वह सब भगवान् श्रीहरि हैं और जो कुछ स्त्रीवाची है, वह सब श्रीलक्ष्मीजी हैं। इनसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है'—

देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥
(वि०पु० १। ८। ३५)

यों तो महालक्ष्मी ही जगज्जननी हैं, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भी इन्हींसे प्रकट होते हैं; तथापि ये अपने एक-एक स्वरूपसे ब्रह्मा, विष्णु आदिकी सेवामें भी रहती हैं। लक्ष्मीकी अभिव्यक्ति दो रूपोंमें देखी जाती है—श्रीरूपमें और लक्ष्मीरूपमें। ये दो होकर भी एक हैं और एक होकर भी दो। दोनों ही रूपोंसे ये भगवान् विष्णुकी पत्नियाँ हैं। श्रुति भी कहती है—'**श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ।**' श्रीदेवीको कहीं-कहीं 'भूदेवी' भी कहते हैं। इस प्रकार लक्ष्मीके दो स्वरूप हैं—एक तो सच्चिदानन्दमयी लक्ष्मी, जो श्रीनारायणसे अभिन्न हैं, सदा उनके वक्षःस्थलमें वास करती हैं और कभी उनसे विलग नहीं होतीं। दूसरा रूप है भौतिक या प्राकृत सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवीका। यही श्रीदेवी या भूदेवी हैं। ये भी अनन्यभावसे भगवन्नारायणकी ही सेवामें रहती हैं। उक्त भौतिक या प्राकृत सम्पत्ति स्वरूपतः जड है, किंतु उसे भी 'श्री' या 'लक्ष्मी' कहा जाता है। यह प्रयोग औपचारिक है, मुख्य नहीं। इस जड-सम्पत्तिपर भिन्न-भिन्न समयमें भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंका अधिकार होता रहता है। यह कभी एककी होकर नहीं रहती, कहीं भी स्थिर नहीं रहती। इसीलिये लक्ष्मीको सर्वभोग्या, नीचसेव्या, चञ्चला, चपला, बहुगामिनी आदि कहकर आक्षेप किया जाता है। यहाँ यह बात ध्यानमें रखनेकी है, यह निन्दा अथवा आक्षेप जड-सम्पत्तिको लक्ष्य करके ही किया जाता है। साक्षात् चिन्मयी देवी श्रीलक्ष्मीजीको नहीं। वे तो पतिप्राणा हैं। सनातन भगवान्‌की सनातन अनपायिनी शक्ति हैं। उनका जीवन नित्य-निरन्तर भगवान्‌की सेवामें ही व्यतीत होता है। वे भगवान्‌के सिवा दूसरेको न देखती हैं, न जानती हैं। यह बात अवश्य है कि वह जड-सम्पत्ति उनके अधिकारमें रहती है। जिसे भगवान् देना चाहते हैं या जिसपर लक्ष्मीकी कृपा हो जाती है, उसे यदि आवश्यकता हो तो ये जड-सम्पत्ति प्रदान करती हैं। इन्हें कमल अधिक प्रिय है। ये कमलवनमें निवास करती हैं, कमलपर बैठती हैं और हाथमें भी कमल धारण किये रहती हैं। सब सम्पत्तियोंकी अधिष्ठात्री श्रीदेवी

शुद्ध सत्त्वमयी हैं। इनके पास लोभ, मोह, काम, क्रोध और अहंकार आदि दोषोंका प्रवेश नहीं है। ये स्वर्गमें 'स्वर्ग-लक्ष्मी,' राजाओंके यहाँ 'राज-लक्ष्मी,' मनुष्योंके घरोंमें 'गृह-लक्ष्मी,' वणिग्-जनोंके यहाँ 'वाणिज्य-लक्ष्मी' तथा युद्धमें विजेताओंके पास 'विजय-लक्ष्मी'के रूपमें रहती हैं।

पतिप्राणा चिन्मयी लक्ष्मी समस्त पतिव्रताओंकी शिरोमणि हैं। एक बार उन्होंने भृगुकी पुत्रीरूपमें अवतार लिया था; इसलिये इन्हें 'भार्गवी' कहते हैं। समुद्र-मन्थनके समय ये ही क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं; इसलिये इनका नाम 'क्षीरोदतनया' अथवा 'क्षीरसागर-कन्या' हुआ। ये पद्मिनी विद्याकी भी अधिष्ठात्री देवी हैं। तन्त्रोक्त नील-सरस्वतीकी पीठ-शक्तियोंमें भी इनका नाम आता है। भगवान् जब-जब अवतार लेते हैं, तब-तब उनके साथ लक्ष्मीदेवी भी अवतीर्ण हो उनकी सेवा करती और उनकी प्रत्येक लीलामें योग देती हैं। इनके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—

महर्षि भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे एक त्रिलोकसुन्दरी भुवनमोहिनी कन्या उत्पन्न हुई। वह समस्त शुभ लक्षणोंसे सुशोभित थी; इसलिये उसका नाम लक्ष्मी रखा गया। अथवा साक्षात् लक्ष्मी ही उस कन्याके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं; इसलिये वह लक्ष्मी कहलायी, धीरे-धीरे बड़ी होनेपर लक्ष्मीने भगवान् नारायणके गुण और प्रभावका वर्णन सुना। इससे उनका हृदय भगवान्‌में अनुरक्त हो गया। वे उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छासे समुद्रके तटपर जाकर घोर तपस्या करने लगीं। तपस्या करते-करते एक हजार वर्ष बीत गये। तब इन्द्र भगवान् विष्णुका रूप धारण करके लक्ष्मीदेवीके समीप आये और वर माँगनेको कहा। लक्ष्मीने कहा—'आप अपने विश्वरूपका मुझे दर्शन कराइये।' इन्द्र इसके लिये असमर्थ थे, अतः लज्जित होकर वहाँसे लौट गये। इसके बाद और कई देवता पधारे, परंतु विश्वरूप दिखानेकी शक्ति न होनेके कारण उनकी भी कलई खुल गयी।

यह समाचार पाकर साक्षात् भगवान् नारायण वहाँ देवीको दर्शन देने और उन्हें कृतार्थ करनेके लिये आये। भगवान्‌ने देवीसे कहा—'वर माँगो।' यह आदेश सुनकर देवीने भगवान्‌का गौरव बढ़ानेके लिये ही कहा—'देवदेव! यदि आप साक्षात् भगवान् नारायण हैं तो अपने विश्वरूपका दर्शन देकर मेरा संदेह दूर कर दीजिये।' भगवान्‌ने विश्वरूपका दर्शन कराया और लक्ष्मीजीकी इच्छाके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे बोले—'देवि! ब्रह्मचर्य ही सब धर्मोंका मूल तथा सर्वोत्तम तपस्या है। तुमने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक इस स्थानपर कठोर तपस्या की है, इसलिये मैं यहाँ 'मूलश्रीपति' के नामसे विख्यात होकर रहूँगा तथा तुम भी ब्रह्मचर्यस्वरूपिणी 'मूलश्री' के नामसे यहाँ प्रसिद्धि प्राप्त करोगी।'

लक्ष्मीजीके प्रकट होनेका दूसरा इतिहास इस प्रकार है—एक बार भगवान् शंकरके अंशभूत महर्षि दुर्वासा भूतलपर विचर रहे थे। घूमते-घूमते वे एक मनोहर वनमें गये। वहाँ एक विद्याधर-सुन्दरी हाथमें पारिजात-पुष्पोंकी माला लिये खड़ी थी, वह माला दिव्य पुष्पोंकी बनी थी। उसकी दिव्य गन्धसे समस्त वन-प्रान्त सुवासित हो रहा था। दुर्वासाने विद्याधरीसे वह मनोहर माला माँगी। विद्याधरीने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम करके वह माला दे दी। माला लेकर उन्मत्त वेषधारी मुनिने अपने मस्तकपर डाल ली और पुनः पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे।

इसी समय मुनिको देवराज इन्द्र दिखायी दिये, जो मतवाले ऐरावतपर चढ़कर आ रहे थे। उनके साथ बहुत-से देवता भी थे। मुनिने अपने मस्तकपर पड़ी माला उतारकर हाथमें ले ली। उसके ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। जब देवराज समीप आये तो दुर्वासाने पागलोंकी तरह वह माला उनके ऊपर फेंक दी। देवराजने उसे लेकर ऐरावतके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने उसकी तीव्र गन्धसे आकर्षित हो सूँड़से माला उतार ली और सूँघकर पृथ्वीपर फेंक दी। यह देख दुर्वासा क्रोधसे जल उठे और देवराज इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'अरे इन्द्र! ऐश्वर्यके घमंडसे तुम्हारा हृदय दूषित हो गया है। तुमपर जडता छा रही है; तभी तो मेरी दी हुई मालाका तुमने आदर नहीं किया है। वह माला नहीं, लक्ष्मीका धाम थी। माला लेकर तुमने प्रणाम तक नहीं किया। इसलिये तुम्हारे अधिकारमें स्थित तीनों लोकोंकी लक्ष्मी शीघ्र ही अदृश्य हो जायगी।' यह शाप सुनकर देवराज इन्द्र घबरा गये और तुरंत ही ऐरावतसे उतरकर मुनिके चरणोंमें पड़ गये। उन्होंने दुर्वासाको प्रसन्न करनेकी लाख चेष्टाएँ कीं, किंतु वे महर्षि टस-से-मस न हुए। उलटे इन्द्रको फटकारकर

पञ्च-दिव्यधामेश्वरी

रमा, राधिका, सीता, गौरी, ब्रह्माणीदेवी, अनुरूप।
दिव्यधाम-स्वामिनि ये पाँचों दिव्य नारिके हैं शुभरूप॥

वहाँसे चल दिये। इन्द्र भी ऐरावतपर सवार हो अमरावतीको लौट गये। तबसे तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो गयी।

इस प्रकार त्रिलोकीके श्रीहीन एवं सत्त्वरहित हो जानेपर दानवोंने देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवताओंमें अब उत्साह कहाँ रह गया था? सबने हार मान ली। फिर सभी देवता ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उन्हें भगवान् विष्णुकी शरणमें जानेकी सलाह दी तथा सबके साथ वे स्वयं भी क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने बड़ी भक्तिसे भगवान् विष्णुका स्तवन किया। भगवान् प्रसन्न होकर देवताओंके सम्मुख प्रकट हुए। उनका अनुपम तेजस्वी मङ्गलमय विग्रह देखकर देवताओंने पुनः स्तवन किया, तत्पश्चात् भगवान्ने उन्हें क्षीरसागरको मथनेकी सलाह दी और कहा—'इससे अमृत प्रकट होगा। उसके पान करनेसे तुम सब लोग अजर-अमर हो जाओगे; किंतु यह कार्य है बहुत दुष्कर; अतः तुम्हें दैत्योंको भी अपना साथी बना लेना चाहिये। मैं तो तुम्हारी सहायता करूँगा ही।'

भगवान्की आज्ञा पाकर देवगण दैत्योंसे संधि करके अमृत-प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। वे भाँति-भाँतिकी ओषधियाँ लाये और उन्हें क्षीरसागरमें छोड़ दिया; फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकिको नेती (रस्सी) बनाकर बड़े वेगसे समुद्रमन्थनका कार्य आरम्भ किया। भगवान्ने वासुकिकी पूँछकी ओर देवताओंको और मुखकी ओर दैत्योंको लगाया। मन्थन करते समय वासुकिकी निःश्वासाग्निसे झुलसकर सभी दैत्य निस्तेज हो गये और उसी निःश्वासवायुसे विक्षिप्त होकर बादल वासुकिकी पूँछकी ओर बरसते थे; जिससे देवताओंकी शक्ति बढ़ती गयी। भक्तवत्सल भगवान् विष्णु स्वयं कच्छपरूप धारणकर क्षीरसागरमें घूमते हुए मन्दराचलके आधार बने हुए थे। वे ही एक रूपसे देवताओंमें और एक रूपसे दैत्योंमें मिलकर नागराजको खींचनेमें भी सहायता देते थे तथा एक अन्य विशाल रूपसे, जो देवताओं और दैत्योंको दिखायी नहीं देता था, उन्होंने मन्दराचलको ऊपरसे दबा रखा था। इसके साथ ही वे नागराज वासुकिमें भी बलका संचार करते थे और देवताओंकी भी शक्ति बढ़ा रहे थे।

इस प्रकार मन्थन करनेपर क्षीरसागरसे क्रमशः कामधेनु, वारुणी देवी, कल्पवृक्ष और अप्सराएँ प्रकट हुईं। इसके बाद चन्द्रमा निकले, जिन्हें महादेवजीने मस्तकपर धारण किया। फिर विष प्रकट हुआ, जिसे नागोंने चाट लिया। तदनन्तर अमृतका कलश हाथमें लिये धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ। इससे देवताओं और दानवोंको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। सबके अन्तमें क्षीरसमुद्रसे भगवती लक्ष्मीदेवी प्रकट हुईं। वे

खिले हुए कमलके आसनपर विराजमान थीं। उनके श्रीअङ्गोंकी दिव्य कान्ति सब ओर प्रकाशित हो रही थी। उनके हाथमें कमल शोभा पा रहा था। उनका दर्शन करके देवता और महर्षिगण प्रसन्न हो गये। उन्होंने वैदिक श्रीसूक्तका पाठ करके लक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। फिर देवताओंने उनको स्नानादि कराकर दिव्य वस्त्राभूषण अर्पण किये। वे उन दिव्य वस्त्राभूषणोंसे विभूषित होकर सबके देखते-देखते अपने सनातन स्वामी श्रीविष्णुभगवान्के वक्षःस्थलमें चली गयीं। भगवान्को लक्ष्मीजीके साथ देखकर देवता प्रसन्न हो गये। दैत्योंको बड़ी निराशा हुई। उन्होंने धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका कलश छीन लिया; किंतु भगवान्ने मोहिनी स्त्रीके रूपसे उन्हें अपनी मायाद्वारा मोहित करके सारा अमृत देवताओंको ही पिला दिया। तदनन्तर इन्द्रने बड़ी विनय और भक्तिके साथ श्रीलक्ष्मीदेवीका स्तवन किया। उससे प्रसन्न होकर लक्ष्मीने देवताओंको

मनोवाञ्छित वरदान दिया। इस प्रकार ये लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुकी अनन्य प्रिया हैं। भगवान्‌के साथ प्रत्येक अवतारमें ये साथ रहती हैं। जब श्रीहरि विष्णु नामक आदित्यके रूपमें स्थित हुए तब ये कमलोद्भवा 'पद्मा' के नामसे विख्यात हुईं। ये ही श्रीरामके साथ 'सीता' और श्रीकृष्णके साथ 'रुक्मिणी' होकर अवतीर्ण हुई थीं। भगवान्‌के साथ इनकी आराधना करनेसे अभ्युदय और निःश्रेयस दोनोंकी सिद्धि होती है। लक्ष्मीजी सतीत्व और साधुताकी मूर्ति हैं। इसीलिये सभी सती-साध्वी स्त्रियोंको घरकी 'लक्ष्मी' कहकर सम्मानित किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णकी पट्टमहिषी महारानी रुक्मिणीजी एक बार अपनी अभिन्नरूपा लक्ष्मीजीसे भेंट करने वैकुण्ठ पधारीं और वहाँ लक्ष्मीजीको भगवान् विष्णुके समीप बैठी देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं, फिर लोक-कल्याणके लिये प्रद्युम्नकी माता रुक्मिणीजीने लक्ष्मीदेवीसे पूछा—'देवि! आप किस स्थानपर और कैसे मनुष्योंके पास रहती हैं?'

लक्ष्मीने उत्तर दिया—'कल्याणि! सुनो, जो मनुष्य मिष्टभाषी, कार्यकुशल, क्रोधहीन, भक्त, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उदार हैं, उनके यहाँ मेरा निवास होता है। सदाचारी, धर्मज्ञ, बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें तत्पर, पुण्यात्मा, क्षमाशील और बुद्धिमान् मनुष्योंके पास मैं सदा रहती हूँ। जो स्त्रियाँ पतिकी सेवा करती हैं, जिनमें क्षमा, सत्य, इन्द्रियसंयम, सरलता आदि सद्‌गुण होते हैं, जो देवताओं और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा रखती हैं, जिनमें सभी प्रकारके शुभ लक्षण मौजूद हैं, उनके समीप मैं निवास करती हूँ। सवारी, कन्या, आभूषण, यज्ञ, जलसे पूर्ण मेघ, फूले हुए कमल, शरद् ऋतुके नक्षत्र, हाथी, गायोंके रहनेके स्थान, आसन, फूले हुए कमलोंसे सुशोभित तालाब, मतवाले हाथी, साँड़, राजा, सिंहासन, सज्जन पुरुष, विद्वान् ब्राह्मण, प्रजापालक क्षत्रिय, खेती करनेवाले वैश्य तथा सेवापरायण शूद्र मेरे प्रधान निवासस्थान हैं। जिस घरमें सदा होम होता है और देवता, गौ तथा ब्राह्मणोंकी पूजा होती है, उस घरको मैं कभी नहीं छोड़ती। भगवान् नारायण धर्म, ब्राह्मणत्व और संसारके एकमात्र आधार हैं, इसीसे मैं इनके शरीरमें एकाग्रचित्त और अभिन्न रूपसे रहती हूँ। भगवान् नारायणके सिवा अन्यत्र कहीं भी मैं शरीर धारण करके नहीं रहती। जहाँ मेरा वास होता है, वहाँ धर्म, अर्थ और सुयशकी वृद्धि होती रहती है।

अब जिन स्थानोंसे मुझे घृणा है, उसका वर्णन सुनो—'जो अकर्मण्य, नास्तिक, कृतघ्न, आचारभ्रष्ट, नृशंस, चोर, गुरुद्रोही, उद्धत तथा कपटी हैं और बल, बुद्धि तथा वीर्यसे हीन हैं, उनके पास मैं नहीं रहती। जो हर्ष और क्रोधका अवसर नहीं जानते, धन-प्राप्तिकी आशा नहीं करते और थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोगोंके पास भी मैं कभी नहीं रहती। जो स्त्रियाँ गंदी रहती हैं, घरकी वस्तुओंको इधर-उधर बिखेरे रखती हैं, जिनमें उत्तम विचार नहीं होता, जो सदा पतिके प्रतिकूल बातें करती हैं, जिन्हें दूसरोंके घरोंमें रहना अधिक पसंद है, जिनमें न धैर्य है, न लज्जा, जो स्वभावसे निर्दय और शरीरसे अपवित्र होती हैं, काम-काजमें जिनका मन नहीं लगता, जो सदा लड़ाई-झगड़े किया करती और अधिक सोती हैं, उनके पास मैं कभी नहीं रहती।'

सूर्य-लीला-चिन्तन

[भुवन-भास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। ये परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं। इन्हें परमात्म-परब्रह्मस्वरूप माना गया है। सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हींमें उनका विलय भी हो जाता है। इनका अवतरण ही संसारके कल्याणके लिये हुआ है। चराचर-जगत्पर सहज कृपा करना ही इनका प्रभाव है। इनकी कुछ लीलाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।—सं०]

सूर्यके परब्रह्म होनेकी लीला-कथा

एक बारकी बात है, पितामह ब्रह्मा मुनियोंको भगवान् सूर्यकी महिमा तथा उनकी भक्तवत्सलताकी बात बता रहे थे, उसी प्रसंगमें ब्रह्माजीने बताया कि भगवान् सूर्य एक बार ध्यानमें निमग्न थे। इस बातको सुनकर मुनियोंके मनमें संदेह उत्पन्न हुआ और उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा—

'प्रभो! अभी-अभी आपने बतलाया कि सूर्य साक्षात् परब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं, फिर वे स्वयं किसका ध्यान करते हैं, क्यों तपस्या करते हैं? उन्हें किस वस्तुकी अभिलाषा है? इसे आप बतानेकी कृपा करें।'

ब्रह्माजी बोले—'मुनियो! यह अत्यन्त गोपनीय रहस्यका विषय है। पूर्वकालमें मित्र देवता (भगवान् सूर्यका एक नाम)-ने देवर्षि नारदको जो बात बतलायी थी, वही मैं आप लोगोंको बताता हूँ। आप लोग ध्यानसे सुनें—

एक समयकी बात है; महायोगी नारद लोकोंमें भ्रमण करते हुए गन्धमादन पर्वतके उस प्रदेशमें पहुँचे, जहाँ मित्र देवता (सूर्य) तपस्या कर रहे थे। उन्हें तपस्यामें संलग्न देखकर नारदजीके मनमें कौतूहल हुआ। वे सोचने लगे—'जो अक्षय, अविकारी, व्यक्ताव्यक्तस्वरूप और सनातन पुरुष हैं, साक्षात् नारायण हैं, जिन्होंने तीनों लोकोंको धारण कर रखा है, जो सब देवताओंके पिता और परसे भी परे हैं, वे किस देवताका ध्यान कर रहे हैं।' इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके नारदजी उनसे बोले—

भगवन्! अङ्गों तथा उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदों एवं पुराणोंमें आपकी महिमाका गान किया जाता है। आप अजन्मा, सनातन, धाता तथा उत्तम अधिष्ठान हैं। भूत-भविष्य तथा वर्तमान—सब कुछ आपमें ही प्रतिष्ठित हैं। गृहस्थ आदि चारों आश्रम प्रतिदिन आपका ही यजन करते हैं। आप ही सबके पिता, माता और सनातन देवता हैं, फिर आप किस देवताकी आराधना करते हैं, यह मेरी समझमें नहीं आता, इसे बतानेकी कृपा करें।

इसपर मित्र देवताने कहा—ब्रह्मन्! यह परम गोपनीय सनातन रहस्य कहने योग्य तो नहीं है, परंतु आप भक्त हैं, इसलिये यह रहस्य आपको बतलाता हूँ—'वह जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियरहित, इन्द्रियोंके विषयोंसे परे तथा सम्पूर्ण भूतोंसे पृथक् है, वही समस्त जीवोंकी अन्तरात्मा है, उसीको 'क्षेत्रज्ञ' भी कहते हैं। वह तीनों गुणोंसे भिन्न पुरुष कहा गया है। उसीका नाम 'भगवान् हिरण्यगर्भ' है, वही भगवान् सूर्यका अव्यक्त रूप है। वह सम्पूर्ण विश्वका आत्मा, शर्व (संहारकारी) और अक्षर (अविनाशी) है। वह स्वयं शरीरसे रहित है, किंतु समस्त शरीरोंमें निवास करता है। वह सबका साक्षी है, सगुण, निर्गुण, विश्वरूप तथा ज्ञानगम्य है। वह अव्यक्तपुरमें शयन करता है, अतः 'पुरुष' कहलाता है। वह बहुत रूपोंवाला है, इसलिये 'विश्वरूप' कहा जाता है। वह परमात्मा सैकड़ों रूपोंमें अपनेको अभिव्यक्त करता है और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये अनेक प्रकारकी लीलाएँ करता है। संसारमें जो चराचर भूत हैं, वे नित्य नहीं, परंतु वह परमात्मा अक्षय, अप्रमेय तथा सर्वव्यापी कहा जाता है। लोकमें देवकार्य तथा पितृकार्यके अवसरपर उसीकी पूजा होती है। वह श्रद्धापूर्वक की गयी पूजाको स्वीकार करता है और अभीष्ट मनोरथ तथा सद्गति प्रदान करता है। निर्गुण-निराकार होनेपर भी वह सगुण-साकार रूप धारण करता है। मैं अपने आत्मरूप उसी सूर्यका ध्यान करता हूँ। वर प्रदान करनेवाले उन दिवाकरका अर्चन-पूजन तथा वन्दन सभीको करना चाहिये।'

मित्र देवतासे भगवान् सूर्यकी परब्रह्ममयताका रहस्य जानकर नारदजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे भगवद्गुणानुवाद

करते हुए अन्य लोकोंमें विचरण करने लगे। मुनिगणोंको भी ब्रह्माजीसे भगवान् सूर्यकी लीला-कथा सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

भगवान् श्रीरामकी आदित्योपासना

धर्मविग्रह भगवान् श्रीराम साक्षात् परमात्मा हैं। अयोध्यामें महाराज दशरथके यहाँ इनका अवतरण, साधु-परित्राण, लोकरञ्जन, लोक-शिक्षण, धर्ममर्यादा-स्थापन तथा रावणादि राक्षसोंका उद्धार आदि सब कुछ सर्वविश्रुत है। उनके अनन्त कल्याणगुणगणोंमें भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। ये भगवान् सूर्यके कुलमें ही प्रकट हुए थे। इसीलिये ये 'सूर्यवंशी' कहलाते हैं।

भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-से मनुजी प्रकट हुए, जिन्होंने 'मनुस्मृति'का निर्माण किया। इन्हीं मनुके पुत्र इक्ष्वाकु हुए, इसी इक्ष्वाकुके वंशमें आगे चलकर मान्धाता, दिलीप तथा भगीरथ आदि महान् प्रतापी और धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुए, जो भगवान् सूर्यकी कृपासे त्रैलोक्य-विजयी हुए। आगे चलकर महाराज दशरथजीके यहाँ भगवान् श्रीरामका आविर्भाव हुआ। अतः अपने कुलके आदिपुरुष भगवान् आदित्यकी उपासना करना इनका सहज स्वभाव रहा है। समय-समयपर इन्हें भगवान् सूर्यने उपस्थित होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। श्रीरामके जन्म तथा कर्म सभी दिव्य, अलौकिक एवं चिन्मय थे, तथापि लोक-शिक्षणके लिये श्रीरामने लोकवत् सामान्य व्यवहार किया था, इसी कारण वे प्राकृत पुरुषोंके समान हर्ष, शोक, दुःख-सुख आदिसे प्रभावित दिखलायी देते हैं। इस क्रममें कहीं वे सीताके वियोगमें व्यथित होते हैं, तो कहीं युद्धादि क्षेत्रोंमें देवताओंकी आराधना करते हैं और रावणसे युद्ध करते समय वे अत्यन्त व्याकुल भी दिखायी देते हैं कि किस प्रकार रावणका वध किया जाय। इस प्रकार रणभूमिमें श्रीराम विचारमग्न हो जाते हैं।

उसी समय महामुनि अगस्त्यजी वहाँ आये और बोले—'श्रीराम! यह सनातन गोप्य स्तोत्र सुनो, इसके जप करनेसे तुम युद्धमें अपने समस्त शत्रुओंपर विजय पा सकोगे—**'येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे'** ऐसा कहकर अगस्त्यजीने भगवान् सूर्यकी महिमा तथा उनकी कृपाशक्तिका परिचय देनेवाला एक स्तोत्र उन्हें बतलाया तथा सूर्योपासनाकी विधि भी बतला दी और कहा—'हे राम! तुम एकाग्रचित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वर भगवान् सूर्यकी पूजा करो, इस 'आदित्यहृदयस्तोत्र' का तीन बार जप करनेसे तुम युद्धमें विजय प्राप्त करोगे—

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम्।
एतत् त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसे॥

(वा० रा० ६। १०५। २६)

—ऐसा कहकर अगस्त्यजी चले गये। भगवान् श्रीरामका शोक दूर हो गया। उन्होंने सूर्यका ध्यान करके तीन बार 'आदित्यहृदयस्तोत्र'का पाठ किया। फलतः वे युद्धमें विजयी हुए और युद्धस्थलमें उन्हें साक्षात् भगवान् सूर्यके दर्शन हुए।

सूर्यदेवद्वारा हनुमान्‌जीको विद्या-दान

रुद्रावतार श्रीहनुमान्‌जी सभी प्रकारके अमङ्गलोंको दूरकर कल्याणराशि प्रदान करनेवाले हैं। उनके हृदयमें भगवान् श्रीसीताराम सदा ही निवास करते हैं—

मंगल-मूरति मारुत-नंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी॥

(विनय-पत्रिका ३६। १-२)

बजरंगबली तथा महाबलीके रूपमें वे शक्ति, बल, वीर्य, ओज, स्फूर्ति, विद्या-बुद्धि, नीति, वाक्पाटव तथा ज्ञानके प्रदाता हैं और अपने भक्तोंको श्रीसीतारामजीसे मिला देते हैं।

अञ्जनादेवीके अङ्कमें त्रिभुवनगुरु शिव जब हनुमद्रूपसे अवतरित हुए, तब उनके शिक्षा-गुरु तथा आचार्य भगवान् सूर्यदेव ही बने। उनसे ही उन्हें सारी विद्याएँ प्राप्त हुईं। श्रीआञ्जनेय विद्या पढ़नेके लिये भगवान् सूर्यके पास ही गये—

'भानुसों पढ़न हनुमान गये'

(हनु० बाहु० ४)

कहा जाता है कि हनुमान्‌जीको जन्म-ग्रहण करनेके पश्चात् बारह घंटे व्यतीत हो जानेपर अधिक भूख लगी। माताके पयःपानसे वे तृप्त न हो सके। इससे चिन्तित होकर अञ्जना उनके लिये कुछ फल आदि लाने जंगलमें निकल गयीं, तबतक इधर सूर्योदय होने लगा। सूर्यको सहसा आकाशमें उठते देखकर हनुमान्‌जीने उन्हें कोई लाल फल समझा और वे उछलकर सूर्यको निगलनेके लिये आगे बढ़े। इसपर इन्द्रने उनपर वज्रका प्रहार किया, जिससे उनकी हनु (ठुड्डी) टेढ़ी हो गयी। उसी समय वायुदेव तथा ब्रह्माजीने

आकर हनुमान्‌को स्वस्थ कर दिया और अमरत्व प्रदान किया। हनुके टेढ़ी हो जानेसे उनका 'हनुमान्' यह नाम प्रसिद्ध हो गया। उस समय सूर्यदेवने भी उन्हें शिक्षा प्रदान करनेका वर दिया और कहा—

यदा च शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति।
तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति।

(वा० रा० ७। ३६। १४)

कुछ समय पश्चात् अध्ययन-अध्यापनका क्रम प्रारम्भ हुआ। भगवान् सूर्यदेवकी अध्यापन-शैली विचित्र थी। आदिकवि वाल्मीकिजीने उसका वर्णन करते हुए लिखा है—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयन्नप्रमेयः॥

(वा० रा० ७। ३६। ४५)

आशय यह है कि सूर्यभगवान्‌के पास हनुमान्‌जी पढ़ने गये, सूर्यदेवने प्रथम तो बालक्रीडा समझकर टालमटोल की और कहा कि मैं तो एक जगह स्थिर नहीं रहता हूँ, उदयाचलसे अस्ताचलकी ओर जाता रहता हूँ, पढ़ने-पढ़ानेके लिये गुरु-शिष्यका आसनपर आमने-सामने बैठना आवश्यक है। इसलिये मैं आपको नहीं पढ़ा पाऊँगा, किंतु श्रीहनुमान् ज्ञानपिपासु थे, वे बोले—'भगवन्! मैं आपके अतिरिक्त और किसीसे भी विद्या नहीं ग्रहण करूँगा।' उनकी दृढ़ता देखकर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये, वे तो उनकी ज्ञानपिपासाकी परीक्षा ले रहे थे। भला रामभक्त हनुमान्‌से श्रेष्ठ उन्हें कौन शिष्य मिल सकता था। वे विद्या-दान देनेको राजी हो गये, तब हनुमान्‌जीने सूर्यकी ओर मुख कर लिया और आकाश-मार्गमें वे भगवान् सूर्यके आगे-आगे उन्हींकी गतिसे लेटे-लेटे ही बालकोंके समान खेल करते हुए पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाने लगे। सूर्यदेव जो भी उपदेश देते, हनुमान्‌जी शीघ्र ही उसे याद कर लेते। ऐसा अद्भुत और आश्चर्यमय अध्ययन-अध्यापनादि इन्द्रादि देवताओं, त्रिदेवों तथा लोकपालोंने कभी नहीं देखा था। इस दृश्यको देखकर वे चकित रह गये और उनकी आँखें चौंधिया गयीं—

कौतुक बिलोकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सो।

(हनु० बा० ४)

सूर्यभगवान्‌ने थोड़े ही समयमें सम्पूर्ण विद्याएँ, वेदादि शास्त्र, समस्त आगम-पुराण, नीति, अर्थशास्त्र, दर्शन तथा व्याकरणशास्त्र आदिका शीघ्र ही उन्हें ज्ञान करा दिया। भगवान् सूर्यकी कृपासे उनके समान शास्त्र-विशारद और कोई नहीं हुआ। इसी कारण हनुमान्‌जी समस्त विद्या, छन्द तथा तपोविधानमें बृहस्पतिके समान हुए—

नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे
वैशारदे छन्दगतौ तथैव॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने
प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम्।

(वा० रा० ७। ३६। ४६-४७)

वाल्मीकीय रामायणमें स्वयं भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणसे इनके वाक्पाटव और व्याकरण-ज्ञानकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, उन्होंने कहा—

नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम्॥

(वा० रा० ४। ३। २८-२९)

अर्थात् 'जिसे ऋग्वेदकी शिक्षा न मिली हो, जिसने यजुर्वेदका अभ्यास नहीं किया हो तथा जो सामवेदका विद्वान् न हो, वह ऐसा सुन्दर नहीं बोल सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरणका अनेक बार अध्ययन किया है; क्योंकि बहुत-सी बातें बोलनेपर भी इनके मुखसे कोई अशुद्धि नहीं निकली।'

इस प्रकार हनुमान्‌जीका जो भी ज्ञान-विज्ञान है, वह भगवान् सूर्यदेवकी कृपाशक्तिका ही परिचायक है।

भगवान् सूर्यका अक्षयपात्र

महाराज युधिष्ठिर सत्यवादी, सदाचारी और धर्मके अवतार थे। महान्-से-महान् संकट पड़नेपर भी उन्होंने कभी धर्मका त्याग नहीं किया। ऐसा सब कुछ होते हुए भी राजा होनेके नाते दैवात् वे द्यूत-क्रीडामें सम्मिलित हो गये। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र दूरस्थ देशमें अपने

शत्रुओंके विनाशमें लगे हुए थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरको जूएमें अपना राज्य, धन-धान्य एवं समस्त सम्पदा गँवानी पड़ी। अन्तमें उन्हें बारह वर्षोंका वनवास भी जूएमें हार-स्वरूप मिला। महाराज युधिष्ठिर अपने पाँचों भाइयोंके साथ वनवासके कठिन दुःखको झेलने चल पड़े। साथमें सती द्रौपदी भी थीं। महाराज युधिष्ठिरके साथ उनके अनुयायी ब्राह्मणोंका वह दल भी चल पड़ा, जो अपने धर्मात्मा राजाके बिना अपना जीवन व्यर्थ मानता था। उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए महाराज युधिष्ठिरने कहा—'ब्राह्मणो! जूएमें मेरा सर्वस्व हरण हो गया। हम फल-मूल तथा अन्नके आहारपर रहनेका निश्चयकर संतप्त हृदयसे वनमें जा रहे हैं। वनकी इस यात्रामें महान् कष्ट होगा; अतः आप सब मेरा साथ छोड़कर अपने-अपने स्थानको लौट जायँ।' ब्राह्मणोंने दृढ़ताके साथ कहा—'महाराज! आप हमारे भरण-पोषणकी चिन्ता न करें। अपने लिये हम स्वयं ही अन्न आदिकी व्यवस्था कर लेंगे। हम सभी ब्राह्मण आपका अभीष्ट-चिन्तन करेंगे और मार्गमें सुन्दर-सुन्दर कथा-प्रसंगोंसे आपके मनको प्रसन्न रखेंगे, साथ ही आपके साथ प्रसन्नतापूर्वक वन-विचरणका आनन्द भी उठायेंगे।' (महाभारत, वनपर्व २। १०-११)

महाराज युधिष्ठिर उन ब्राह्मणोंके इस निश्चय और अपनी स्थितिको जानकर चिन्तित हो गये। उनको चिन्तित देखकर परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर और अध्यात्म-विषयके महान् विद्वान् शौनकजीने महाराज युधिष्ठिरसे सांख्ययोग एवं कर्मयोगपर विचार-विमर्श किया और धनकी अनुपयोगिता सिद्ध करते हुए बोले—'जो मानव धर्म करनेके लिये धनके उपार्जनकी कामना करता है, उसकी वह इच्छा ठीक नहीं है, अतः धनके उपार्जनकी इच्छा नहीं करना ही उचित है। कीचड़ लगाकर पुनः उसे धुला जाय, इसकी अपेक्षा कीचड़ नहीं लगाना ही ठीक है, श्रेयस्कर है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य श्रेयो न स्पर्शनं नृणाम्॥

(महाभारत, वनपर्व २। ४९)

शौनकजीने वन-यात्रामें युधिष्ठिरको आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये एक विचित्र त्यागीका मार्ग अपनानेके लिये बताया था। फिर भी किसी सत्पुरुषके लिये अपने अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करना परम कर्तव्य है, तो ऐसी स्थितिमें स्वागत कैसे किया जा सकेगा?

युधिष्ठिरके इस प्रश्नपर शौनकजीने कहा—

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

(महाभारत, वनपर्व २। ५४)

'हे युधिष्ठिर! अतिथियोंके स्वागतार्थ आसनके लिये तृण, बैठनेके लिये स्थान, जल और चौथी मधुर वाणी—इन चार वस्तुओंका अभाव सत्पुरुषोंके घरमें कभी नहीं रहता।' इनके द्वारा अतिथिसेवाका धर्म निभ सकता है।

महाराज युधिष्ठिर अपने पुरोहित धौम्यकी सेवामें उपस्थित हुए और उनकी सलाहसे सूर्यभगवान्‌की उपासनामें जुट गये। पुरोहितने भगवान् सूर्यके 'अष्टोत्तरशतनाम-स्तोत्र' (एक सौ आठ नामोंका जप)-का अनुष्ठान बताया और उपासनाकी विधि समझायी। महाराज युधिष्ठिर सूर्योपासनाके कठिन नियमोंका पालन करते हुए सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि इत्यादि एक सौ आठ नामोंका जप करने लगे। महाराज युधिष्ठिरने सूर्यदेवकी प्रार्थना करते हुए कहा—

त्वं भानो जगतश्चक्षुस्त्वमात्मा सर्वदेहिनाम्।
त्वं योनिः सर्वभूतानां त्वमाचारः क्रियावताम्॥
त्वं गतिः सर्वसांख्यानां योगिनां त्वं परायणम्।
अनावृतार्गलद्वारं त्वं गतिस्त्वं मुमुक्षताम्॥
त्वया संधार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाश्यते।
त्वया पवित्रीक्रियते निर्व्याजं पाल्यते त्वया॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ३६—३८)

'हे सूर्यदेव! आप अखिल जगत्‌के नेत्र तथा समस्त प्राणियोंकी आत्मा हैं, आप ही सब जीवोंके उत्पत्तिस्थान हैं और सब जीवोंके कर्मानुष्ठानमें लगे हुए जीवोंके सदाचार हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सम्पूर्ण सांख्ययोगियोंके प्राप्तव्य स्थान हैं, आप ही मोक्षके खुले द्वार हैं और आप ही मुमुक्षुओंकी गति हैं। हे सूर्यदेव! आप ही सारे संसारको धारण करते हैं; सारा संसार आपसे ही प्रकाश पाता है। आप ही इसे पवित्र करते हैं और आप ही इस संसारका बिना किसी स्वार्थके पालन करते हैं।'

इस प्रकार विस्तारसे महाराज युधिष्ठिरने भगवान्

सूर्यकी प्रार्थना की। भगवान् सूर्य युधिष्ठिरकी इस आराधनासे प्रसन्न होकर सामने प्रकट हो गये और उनके मनोगत भावको समझकर बोले—

यत् तेऽभिलषितं किञ्चित् तत् त्वं सर्वमवाप्स्यसि।
अहमन्नं प्रदास्यामि सप्त पञ्च च ते समाः॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ७१)

'धर्मराज! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है, वह तुमको मिलेगा। मैं बारह वर्षोंतक तुमको अन्न देता रहूँगा।'

भगवान् सूर्यने इतना कहकर महाराज युधिष्ठिरको वह अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया, जिसमें 'बना भोज्य

पदार्थ' 'अक्षय्य' बन जाता था। भगवान् सूर्यका वह अक्षयपात्र ताम्रकी एक विचित्र 'बटलोई' थी। उसकी विशेषता यह थी कि उसमें बना भोज्य पदार्थ तबतक अक्षय्य बना रहता था, जबतक सती द्रौपदी भोजन नहीं कर लेती थीं। पुनः जब वह पात्र माँज-धोकर पवित्र कर दिया जाता था और जब दूसरी बार भोज्य पदार्थ बनता था तो वही अक्षय्यता उसमें आ जाती थी—

गृह्णीष्व पिठरं ताम्रं मया दत्तं नराधिप।
यावद् वर्त्स्यति पाञ्चाली पात्रेणानेन सुव्रत॥
फलमूलामिषं शाकं संस्कृतं यन्महानसे।
चतुर्विधं तदन्नाद्यमक्षय्यं ते भविष्यति॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ७२-७३)

इस प्रकार भगवान् सूर्यने धर्मात्मा युधिष्ठिरको उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर अपना 'अक्षयपात्र' प्रदान किया और युधिष्ठिरकी मनःकामना सिद्ध करके भगवान् सूर्य अन्तर्हित हो गये।

महाभारतमें उसी प्रसंगमें यह भी लिखा है कि जो कोई मानव या यक्षादि मनको संयममें रखकर—चित्त-वृत्तियोंको एकाग्र करके युधिष्ठिरद्वारा प्रयुक्त स्तोत्रका पाठ करेगा, वह यदि कोई अति दुर्लभ वर भी माँगेगा तो भगवान् सूर्य उसे वरदानके रूपमें पूरा कर देंगे—

इमं स्तवं प्रयतमनाः समाधिना
पठेदिहान्योऽपि वरं समर्थयन्।
तत् तस्य दद्याच्च रविर्मनीषितं
तदाप्नुयाद् यद्यपि तत् सुदुर्लभम्॥

(महाभारत, वनपर्व ३। ७५)

सूर्यप्रदत्त स्यमन्तकमणिकी कथा

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम्॥
दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान्।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्॥

(हरिवंशपुराण १। ३८। १३-१४)

प्रसेन द्वारकापुरीमें विराजमान थे। उन्हें स्यमन्तक नामकी एक दिव्य मणि अपने बड़े भाई सत्राजित्से प्राप्त हुई थी। वह सत्राजित्को समुद्रके तटपर भगवान् भुवन-भास्करसे उपलब्ध हुई थी। सूर्यनारायण सत्राजित्के प्राणोंके समान प्रिय मित्र थे।

सुप्रसिद्ध महाराज यदुकी वंशपरम्परामें अनमित्रके पुत्र निघ्न नामक एक प्रतापी राजा हुए, जिनसे प्रसेन और सत्राजित् नामक दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। वे शत्रुओंकी सेनाओंको जीतनेमें पूर्ण समर्थ थे।

एक समयकी बात है—रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् रात्रिके अन्तमें स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्रके तटपर गये थे। जिस समय सत्राजित् सूर्योपस्थान कर रहे थे कि उसी समय सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो गये। सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके

मध्यमें विराजमान थे, जिससे सत्राजित्‌को सूर्यनारायणका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था। इसलिये उन्होंने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा—'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन्! मैं आपको जैसे प्रतिदिन आकाशमें देखता हूँ; यदि वैसे ही तेजका मण्डल धारण किये हुए अपने सामने अब भी खड़ा देखूँ तो फिर आप जो मित्रतावश मेरे यहाँ पधारे—इसमें विशेषता ही क्या हुई?[1]

इतना सुनते ही भगवान् सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे उस मणिरत्न स्यमन्तकको उतारा और अलग एकान्त स्थानमें रख दिया। तब राजा सत्राजित् स्पष्ट अवयवोंवाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उन भगवान् सूर्यके साथ मुहूर्तभर (दो घड़ी—अर्थात् ४८ मिनट) वार्तालाप किया। बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण वापस लौटने लगे, तब राजा सत्राजित्‌ने उनसे प्रार्थना की—'भगवन्! आप जिस दिव्यमणिसे तीनों लोकोंको सदा प्रकाशित करते रहते हैं, वह स्यमन्तकमणि मुझे देनेकी कृपा कीजिये[2]।'

तब भगवान् सूर्यनारायणने कृपा करके वह तेजस्वी मणि राजा सत्राजित्‌को दे दी। वे उसे कण्ठमें धारणकर द्वारकापुरीमें गये। 'ये सूर्य जा रहे हैं'—ऐसा कहते हुए अनेक मनुष्य उन नरेशके पीछे दौड़ पड़े। इस प्रकार नगरवासियोंको विस्मित करते हुए सत्राजित् अपने रनिवासमें चले गये।

वह मणि वृष्णि और अन्धककुलवाले जिस व्यक्तिके घरमें रहती थी, उसके यहाँ उस मणिके प्रभावसे सुवर्णकी वर्षा होती रहती थी। उस देशमें मेघ समयपर वर्षा करते थे तथा वहाँ व्याधिका किंचिन्मात्र भय नहीं होता था। वह मणि प्रतिदिन आठ भार सोना दिया करती थी।[3]

जब भगवान् संसारी लोगोंके साथ क्रीडा करनेके लिये अवतार धारण करते हैं, तो सर्वसाधारण अल्पज्ञ व्यक्ति उन नटनागरको अपने समान ही कर्मबन्धनमें बँधा हुआ समझते हैं, उनके कार्योंपर शंका करते हैं और लाञ्छन लगनेवाली समालोचना भी कर बैठते हैं; परंतु जब भगवान्‌को नरनाट्य करना होता है तो वे अपनी भगवत्ताका प्रदर्शन नहीं करते।

लोभका ऐसा घृणित प्रभाव है कि उसके कारण भाई-भाईमें विरोध उत्पन्न हो जाता है, अपने पराये हो जाते हैं तथा मित्र शत्रु बन जाते हैं। इसी भावको प्रदर्शित करनेके लिये भगवान् श्यामसुन्दरने स्यमन्तकमणिके हरणकी लीला दिखायी थी। इस स्यमन्तकमणिके हरण एवं ग्रहणकी लीलाका विस्तृतरूपसे वर्णन श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्ध (अ० ५६-५७)-में हुआ है।

ऐसी प्रसिद्धि है कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी चतुर्थी तिथिमें उदित चन्द्रमाका दर्शन होनेसे मनुष्यमात्रको कलंक लगनेकी सम्भावना होती है। चन्द्र-दर्शन हो जानेपर कलंकका निवारण हो जाय, इसके लिये श्रीमद्भागवतके इन दो (५६-५७) अध्यायोंका कथा-प्रसंग पढ़ना एवं सुनना अत्यन्त लाभप्रद है।

इस 'स्यमन्तकोपाख्यान'की फलश्रुतिका वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णके पराक्रमोंसे परिपूर्ण यह पवित्र आख्यान समस्त पापों, अपराधों और कलंकोंका मार्जन करनेवाला तथा परम मङ्गलमय है। जो इसे पढ़ता, सुनता अथवा स्मरण करता है, वह सब प्रकारकी अपकीर्ति एवं पापोंसे छूटकर परम शान्तिका अनुभव करता है।[4]

१- यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषाम्पते॥
तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्। को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै॥
(हरिवंशपुराण १। ३८। १७-१८)

२-तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि॥ (हरिवंशपुराण १। ३८। २१)

३-चार धानकी एक गुंजी या एक रत्ती होती। पाँच रत्तीका एक पण (आधे मासेसे कुछ अधिक), आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक पल (जो ढाई छटाँकके लगभग होता है), सौ पल (सोलह सेरके लगभग)-की एक तुला होती है, बीस तुलाका एक भार होता है अर्थात् आजके मापसे आठ मनका एक भार होता है।

४-यस्त्वेतद् भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च। आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद् वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम्॥
(श्रीमद्भा० १०। ५७। ४२)

लीला—सृष्टिका एकमात्र प्रयोजन

आप्तकामकी सृष्टिकामना

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

वेदने परमात्माको 'आप्तकाम'[१] कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि परमात्माको सभी कामनाएँ स्वत: प्राप्त रहती हैं; अत: वह कोई कामना कभी नहीं करता—

आप्तकामस्य का स्पृहा?

किंतु बहुत-सी ऐसी श्रुतियाँ मिलती हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि परमात्मा सृष्टिकी कामना करता है। जैसे—

(क) **सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति।**

(तैत्ति० उप० २। ६)

(ख) **तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति।**

(छा०उप० ६। २। ३)

अर्थात् परमात्माने कामना की कि 'मैं अकेला रह गया हूँ बहुत हो जाऊँ।' बहुत होनेका अभिप्राय है—अनेक नामों और रूपोंमें अभिव्यक्त होना—

तन्नामरूपव्याकरणं बहुभवनम् (शां०भाष्य)

जैसे शान्त समुद्र जब खेलनेकी इच्छा करता है, तब अपनेको अनेक तरंगों, बर्फों, बुद्बुदों और फेनोंके रूपमें अभिव्यक्त कर लेता है; फिर इन आभासित द्वैतोंके साथ खेल प्रारम्भ कर देता है। उमंगमें भरकर लहरोंको अपनेमें लिपटा लेता है, लहरें जब मचलकर अलग होने लगती हैं, तब फिर कसकर अपनेमें लिपटा लेता है। बर्फोंको कभी आलिंगनमें छिपा लेता है और कभी उछाल देता है। एक ओर बुलबुलोंके साथ आँख-मिचौनीका खेल खेलता है तो दूसरी ओर फेनोंके साथ हास-परिहासका। वेदने इसी दृष्टान्तसे सृष्टिरूपी लीलाको समझाया है—

समुद्रादूर्मिर्मधुमानः उदारत्।

(तै०आ० प्रपा० १० अनु० १०)

यहाँ 'मधुमान' पदका सबके साथ सम्बन्ध है। समुद्र भी मधुमान (प्रेममय) है, तरंगें भी मधुमान हैं, भोग्य वस्तुएँ भी मधुमान हैं और लीला-स्थली भी मधुमान है।

इससे यह समझमें आता है कि परमात्मा सृष्टिकी कामना करता है और कामनाके अनुरूप प्रेमका खेल भी प्रारम्भ कर देता है। इस तरह एक तरफ तो श्रुति 'आप्तकाम' कहकर सूचित करती है कि 'परमात्मा कोई कामना नहीं करता और दूसरी ओर अन्य वचनोंसे स्पष्ट प्रतिपादित करती है कि वह सृष्टिकी कामना करता है।' इस तरह परस्पर विरुद्ध होनेसे वेदमें वदतोव्याघात दोष आ जाता है—यह संशय होता है। इसके समाधानमें वेद कहता है—

.. जगन्निर्माणलीलया।
परमात्ममयी शक्तिरद्वैतैव विजृम्भते॥

(महोपनिषद् ६। ६२)

भाव यह है कि परमात्माकी सृष्टि-विषयक जो कामना है, वह केवल लीलाके लिये है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् (ब्र०सू० २। १। ३३)

लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन है ही नहीं। यदि लीलाके अतिरिक्त सृष्टि-रचनाका और कोई प्रयोजन होता, तब वेदमें व्याहत दोष आता।

लीलासे दोष कैसे हट जाता है?

अब जिज्ञासा होती है कि 'लीलामें ऐसी कौन-सी विशेषता है कि उक्त दोष हट जाता है। भगवान् शंकराचार्यने वह विशेषता बतायी है—

यथा चोच्छ्वासप्रश्वासादयोऽनभिसंधाय बाह्यं किञ्चित् प्रयोजनं स्वभावादेव सम्भवन्ति, एवमीश्वरस्याप्यनपेक्ष्य किञ्चित् प्रयोजनान्तरं स्वभावादेव केवलं लीलारूपा प्रवृत्तिर्भविष्यति।

(ब्रह्मसू० शां०भा० २। १। ३३)

१-आप्तकामश्रुते:। (ब्र०सू०शां०भा० २। १। ३३)

जैसे साँसोंका लेना और फेंकना किसी बाह्य प्रयोजनके बिना ही स्वभावसे होते रहते हैं, वैसे ही बिना किसी अन्य प्रयोजनके स्वभावसे ही ईश्वरकी लीला-रूप प्रवृत्ति हुआ करती है।

इसी तरह स्पष्ट हो जाता है कि 'लीलामें रमे रहना' ईश्वरका स्वभाव है। इसी तथ्यको श्रुतिने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है—**नित्यलीलानुरागी।**

इस लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन है ही नहीं। भाष्यकारने जोर देकर कहा है कि 'न तो किसी श्रुतिसे और न किसी युक्तिसे ही लीलाके अतिरिक्त सृष्टिका और कोई प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है—

न हीश्वरस्य प्रयोजनान्तरं निरूप्यमाणं न्यायतः श्रुतितो वा सम्भवति। (ब्रह्मसूत्र शां० भा० २। १। ३३)

परमात्माका स्वभाव ऐसा क्यों?

अब कोई यह आक्षेप कर सकता है कि 'परमात्मा' तो **'महतो महीयान्'** है, फिर वह बच्चोंकी तरह खेलना क्यों पसंद करता है? भाष्यकारने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि यह ईश्वरका स्वभाव है और स्वभावपर ऐसा आक्षेप करना अनर्थक है—

न च स्वभावः पर्यनुयोक्तुं शक्यते।

(ब्रह्मसूत्र शां०भा० २। १। ३३)

'स्वभाव' पर कोई आक्षेप नहीं किया जा सकता। भाष्यकारका यह कथन यथार्थ है। सबका स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है और यह स्वभावकी भिन्नता ही उसके अस्तित्वका कारण होती है। आगका स्वभाव है दाह करना और प्रकाश करना। उसका यह स्वभाव ही उसके अस्तित्वका कारण है। स्वभावका अर्थ है वस्तुकी सत्ता। यदि अग्निमें दाहकता और प्रकाशकता न रहे तो उसे कोई 'अग्नि' कैसे कह सकता है? हम जल और मिट्टीको आग नहीं कहते। इसलिये कि इनमें न दाहकता है और न प्रकाशकता। स्वभावकी भिन्नता ही वस्तुका स्वरूपाधायक होती है। हम आकाशसे अतिरिक्त 'वायु' को तत्त्व क्यों मानते हैं? केवल इसलिये कि वायुका स्वभाव जो 'स्पर्श' है, वह आकाशमें नहीं है। इसी वायुसे उत्पन्न होती है आग। 'आग' को हम पृथक् तत्त्व इसलिये मानते हैं कि इसमें विशेष स्वभाव आ गया है—'रूपका होना', 'जलाना' और 'प्रकाश करना'—ये तीनों ही विशेषताएँ इनके जनक वायु और आकाशमें नहीं हैं। अग्निसे उत्पन्न होता है जल। इसका स्वभाव है स्वाद और संयोजन। ये दोनों ही न इसके पिता अग्निमें हैं, न पितामह वायुमें हैं और न प्रपितामह आकाशमें ही हैं। क्या आगको जीभसे चखा जा सकता है या वायु अथवा आकाशको ही चखा जा सकता है? जलका 'रस'-रूप स्वभाव ही जलकी सत्ताका कारण है। जलसे उत्पन्न होती है पृथ्वी। पृथ्वीका स्वभाव है गन्ध। यही 'गन्ध'-स्वभाव पृथ्वीको जल, अग्नि, वायु और आकाशसे अतिरिक्त द्रव्य माननेके लिये बाध्य करता है।

ऐसी स्थितिमें किसी वस्तुका स्वभाव 'इस तरह क्यों है, कैसे है?' यह प्रश्न उठाना क्या सचमुच निरर्थक नहीं है क्या?

प्रेमका स्वभाव है—लीला

जैसे पृथ्वीका स्वभाव 'गन्ध' है, जलका स्वभाव 'स्वाद' है, अग्निका स्वभाव 'रूप' है, वायुका स्वभाव 'स्पर्श' है, वैसे ईश्वरका स्वभाव है प्रेम। स्वभाव ही स्वरूप होता है, अतः ईश्वर प्रेम-रूप[1] है, रस-रूप[2] है, और आनन्द-रूप[3] है।

प्रेमका स्वभाव 'लीला' है, इस तथ्यको हृदयंगम करनेके लिये पहले एक लौकिक दृष्टान्त ले लिया जाय। किसी नायकका एक नायिकासे प्रेम हो जाता है। अब उसकी दुनिया बदल जाती है। सब वस्तुएँ रंगीन हो जाती हैं, सब सरस हो जाती हैं। अब नायिकाके बिना उससे रहा नहीं जाता है, वह उसके आस-पास मँडराता रहता है। कभी एकटक निहारता है, कभी मीठी-मीठी बातें करता है। इतनी बातें करता है कि वे कभी समाप्त नहीं होतीं। सब बातें क्रमबद्ध हों, यह आवश्यक नहीं। बस, बात करनेमें उसे रस मिलता है, इसलिये बातें करता चला जाता है। ये

१-तस्मात् प्रेमानन्दात्। (सामरहस्योपनिषद्)

२-रसो वै सः। (तैत्ति० उप० २। ६। ९)

३-आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। (तैत्ति० उप० ३। ६। १)

जितनी क्रियाएँ हो रही हैं—यही तो 'लीला' है और प्रेममें यह स्वाभाविक है। प्रेमका यह 'स्वभाव' क्यों है, यह प्रश्न सचमुच निरर्थक है।

पति-पत्नीका जो प्रेम है, वह वस्तुतः उसी प्रेम-रूप प्रभुका अंश है। जैसे ईश्वरका 'सत्'-'अंश' सर्वत्र अनुस्यूत है, वैसे ही उसका प्रेमांश भी सभी प्रेमोंमें अनुस्यूत है। इसलिये कण-कणसे प्रेम करना मानवमात्रका कर्तव्य है। राष्ट्र-प्रेम, विश्व-प्रेम, भ्रातृ-प्रेम, पितृ-प्रेम तथा पुत्र-प्रेम आदि समस्त प्रेमोंमें उसी प्रभुका प्रेम अंशतः व्याप्त है, अतः पवित्र है। हाँ, प्रेमके नामपर आसक्ति नहीं होनी चाहिये; क्योंकि 'आसक्ति' प्राकृतिक है और प्रेम ईश्वरीय। आसक्ति पातक है और 'प्रेम' उन्नायक।

हाँ तो राष्ट्र-प्रेममें डूबकर यदि कोई आत्मदान करता है, विश्व-प्रेममें मत्त होकर जो अपना सब कुछ निछावर कर देता है, इस तरहकी और जितनी सुरभित क्रियाएँ करता है, आखिर इन्हीं क्रियाओंका नाम ही 'प्रेम-लीला' है न? प्रेममें इस तरहकी क्रियाओंका होना स्वाभाविक है। प्रेममें अगणित अभिलाषाएँ तो उठती ही रहती हैं और वे ही अगणित लीलाओंमें परिणत होती रहती हैं।

यह तो सांसारिक प्रेमकी बात हुई। परमात्मा तो प्रेम-रूप है। वह जो प्रेम अपने प्रेमास्पदोंसे करता है, वह सांसारिक प्रेममें कैसे सम्भव है? जब सांसारिक प्रेम होनेपर प्रेमी अपने प्रेमास्पदके बिना नहीं रह पाता, तब प्रेमरूप परमात्माका मन प्रलयमें प्रेमास्पदोंके बिना कैसे लगेगा? वेदने बताया है कि अकेले रहनेपर परमात्माका मन न लगा—

प्रजापतिर्वा एषोऽग्रेऽतिष्ठत् स नारमतैकः स आत्मानमभिध्यायद् बह्वीः प्रजा असृजत्।

(मैत्र० उप० २। ६)

अर्थात् प्रलयावस्थामें जब परमात्मा एक था, अद्वितीय था। तब (प्रेमास्पदोंके बिना) उसका मन न लगता था। प्रेमी तो अपने प्रियको देखना चाहता है, छूना चाहता है और गले लगाना चाहता है, फिर क्या? झट उसने अपने प्रेमास्पदोंको प्रकट कर लिया और स्वयं चिन्मय शरीर धारणकर उन्हें गले लगा लिया—

वर्ष्मणोप स्पृशामि।

(ऋग्वेद १०। १२५। ७)

मायात्मकेन मदीयेन देहेन उपस्पृशामि।

(सायण)

कैसा सुहावना खेल चल पड़ा, जब स्वयं प्रेम शरीर धारण करके प्रेमी बन जाता है और प्रियको अपने सुकोमल अङ्कमें भरकर अपनी आँखोंकी स्निग्ध छाया प्रदान करता है, सहलाता है, तब मुक्तोंको ब्रह्मानन्दमें जो उल्लास उठते होंगे, उनकी कोई सीमा रह जाती होगी क्या? यह लीला महान्-से-महान् है और कितना लुभावना है?

किंतु बिना सृष्टिके न तो लीलास्थली बन सकती है, न भोग्यजात बन सकते हैं और न लीलामें भाग लेनेवालोंकी भीड़ ही खड़ी हो सकती है। इसीके लिये सृष्टिकी रचना होती है।

प्रभुकी प्रेम-परवशता

साधारण प्रेममें जब प्रिय अपने प्रेमीके अधीन हो जाते हैं, तब प्रेमरूप प्रभुके लिये तो यह भक्त-पराधीनता सीमा लाँघ जाती है और सरकारका हृदय प्रेमीके हाथमें होता है। प्रेमीको छोड़कर भगवान् अपने-आपको भी नहीं चाहते—

नाहमात्मानमाशासे।

(श्रीमद्भा० ९। ४। ६४)

प्रेमकी लीला तो भगवान्को पागल तक बना देती है। वे स्वयं कहते हैं कि मैं अपने प्रेमीके पीछे-पीछे चक्कर लगाया फिरता हूँ कि इसके चरणकी धूलि मेरे मस्तकपर पड़ जाय—

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। १६)

है न यह पागलपन?

सिन्धु यदि बिन्दुके पीछे-पीछे इसलिये मारा फिरे कि वह इसके चरणकी धूल पा जाय और पवित्र हो जाय, तो क्या यह सिन्धुका पागलपन नहीं है?

किंतु प्रेममें यह पागलपन कितना प्यारा है, कितना महान् है और कितना सुहावना है।

यह है आप्तकामकी सरस कामना।

'भगवल्लीला' शब्दका धातुगत अर्थ, परिभाषा, पर्याय और लीलाका स्वरूप

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि स्कालर)

संस्कृत व्याकरणके अनुसार 'भगवल्लीला' शब्दमें दो शब्दोंका योग है। ये दोनों शब्द अपने-आपमें विशिष्ट हैं और जब इन दोनोंका योग हो जाय तो फिर पूछना ही क्या है? मणि-काञ्चन-योगकी तरह एक अपूर्व समरसता आ जाती है। इन दोनों शब्दोंमें षष्ठी-तत्पुरुष समास होनेके कारण इसका विग्रह होगा—'**भगवतः या लीला सा भगवल्लीला**'। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि दोनोंकी व्युत्पत्ति कैसी होगी और उनका धातुगत अर्थ क्या होगा? वस्तुतः '**भग**' शब्दके छः अर्थ होते हैं। जैसा कि कहा गया है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, शोभा (लक्ष्मी), ज्ञान **और वैराग्यको 'भग' कहते हैं। 'भग' है जहाँ और जिसमें, वह भगवान् या भगवती कहलाते हैं। यहाँ ऐश्वर्यबोधक 'भग' (भग ऐश्वर्ये) शब्दसे 'मतुप्' प्रत्यय करनेपर 'भगवत्' शब्द व्युत्पन्न होगा और इस 'भगवत्' शब्दसे निष्पन्न होगा 'भगवान्'**। भगवान्‌की स्वाभाविक या कृत्रिम लीला भगवल्लीला **कहलाती है।**

अब लीला शब्दपर जरा दृष्टिपात करें—'**लयनमिति लीः सम्पदादित्वात् क्विप्, पुनः लियं लातीति=ली+ला+क+टाप्=लीला**। इस लीला शब्दके शृंगार, भाव, चेष्टा, केलि, विलास और क्रीडा विशेष अर्थ होते हैं। इसकी पुष्टि श्रीमद्भागवतके उस श्लोकसे होती है, जिसमें कहा गया है कि—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥

(१। १। १८)

अर्थात् हे विद्वन्! अब उस भगवान् श्रीहरिके उन अवतार-कथाओंको कहिये, जिनमें ईश्वरकी आत्ममायासे स्वेच्छापूर्वक लीला-विहार करना कहा गया है। इससे भगवल्लीलाकी यथार्थता सिद्ध होती है।

'उज्ज्वलनीलमणि' में तो क्रीडा और विलासके अर्थमें लीला शब्दका प्रयोग किया गया है। जिससे दास्यभक्ति प्रकट होती है और उसमें नायिकाद्वारा प्रियतमके अनुकरणको ही 'लीला' कहा गया है—

अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकायाः
सख्याः पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेशगतिहास्यविलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकलयन्ति लीलाः॥

'हलायुध कोश' एवं 'वाचस्पत्यम्' आदि कोशोंमें इसी लीला शब्दकी व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा गया है—

अलब्धप्रियसमागमया स्वचित्तविनोदार्थं प्रियस्य या।
वेशगतिदृष्टिहसितभणितैरनुकृतिः क्रियते सा लीला॥

इसका आशय यह है कि जिस नायिकाके द्वारा प्रिय-समागमको अप्राप्त करके अर्थात् वियोगावस्थामें अपने चित्तके विनोदके लिये प्रियके वेश-भूषा, गति-गमन, दृष्टि, हँसना और कथोपकथन आदिका अनुकरण किया गया हो या किया जाता हो—उसी अनुकरणको 'लीला' कहते हैं।

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर 'लीला' शब्दके अनेक अर्थ हैं। इनमें प्रमुख अर्थ अवतारोंके चरित्र तथा कार्य-कलापोंका अभिनय ही है। यह अनुभूत विषय है कि जब परब्रह्म परमात्माके कार्य-कलाप या सृष्टिका रहस्य व्यक्ति नहीं समझ पाता, तब वह कहता है कि—'परमेश्वरकी यह अद्भुत लीला अपरम्पार है।' आशय यह है कि बुद्धिसे परे रहस्यमय कार्य-कलाप 'लीला' संज्ञासे अभिहित होता है। चाहे वह निर्गुण या सगुण ब्रह्मका हो अथवा मनुष्यका या अवतारके रूपमें किसी अन्य प्राणीका।

सर्वव्यापी भगवान्‌के विग्रहके दो रूप हैं—प्रथम परात्पर ब्रह्म और दूसरा मनुज-अवतार। इन दोनों रूपोंमें वह अपनी लीला करता है। लीलाका उद्देश्य भगवान्‌का विनोद अथवा क्रीडा है। ब्रह्मके रूपमें सृष्टि-रचना उसकी क्रीडा है। आदिकालसे भक्त लीला-दर्शनसे धन्य होते रहे हैं। निर्गुण

भक्त विश्वमें उसकी प्राकृतिक शक्तिसे चमत्कृत होते हैं। श्रद्धा या भक्तिका मूल कारण यह विश्व-व्याप्त लीला ही है।

अतः निर्गुण मतसे लीलाका यह रूप अगम है। उसके दर्शन तथा विवेचनके लिये ज्ञानसम्पन्न मेधाकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये कुछ ही सिद्ध पुरुष उसके दर्शनमें समर्थ होते हैं। भगवान्‌का दूसरा रूप मानव-अवतार है। इसमें वे मनुष्यकी भाँति कार्य-व्यापार करते हैं। उनकी नरलीला हमारे कार्य-व्यापारोंके तुल्य होती है। अतः उनके प्रति सहज आकर्षण होता है। जहाँ निर्गुण स्वरूपकी लीलाके दर्शनके लिये विवेक तथा ज्ञानकी आवश्यकता पड़ती है, वहाँ नरलीलाके स्वरूपको ग्रहण करनेके लिये हृदय स्वतः उसकी ओर उन्मुख होता है।

यदि लीलाकी भावनाको भक्तिका प्रमुख आधार माना जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। किसीको भक्तिके लिये हृदयमें श्रद्धाकी आवश्यकता पड़ती है। श्रद्धाका उदय अनायास नहीं होता। श्रद्धा सद्‌गुण या सत्कर्मके प्रति होती है। अतः श्रद्धाकी भावनाके लिये सर्वप्रथम भगवान्‌के दिव्य गुण तथा कर्मोंका दिग्दर्शन आवश्यक है। इस लक्ष्यकी पूर्तिके लिये लीलाका सम्यक् विवेचन तथा उसे हृदयंगम करनेकी परमावश्यकता पड़ती है। अतः निर्गुण तथा सगुण दोनों प्रकारके भक्त लीलाका महत्त्व स्वीकार करते हैं।

सगुण भक्तिमें निर्गुण एवं सगुण—इन दोनों प्रकारकी लीलाओंका समावेश है। भागवत सम्प्रदायकी कृष्णभक्ति-शाखामें भगवान्‌की दो लीलाएँ मानी गयी हैं। पहली लीला भगवान् गोलोकमें नित्य करते हैं। दूसरा रूप प्रतिबिम्ब लीलाका है जो वृन्दावनमें होती है। भगवान् रामकी लीलाके भी दो स्थल माने जाते हैं—पहला साकेत और दूसरा अयोध्या। वहाँकी स्थितिके अनुरूप लीलाके दो स्वरूप हैं। एकसे साकेतकी लीलाका तथा दूसरेसे अयोध्याकी लीलाका संचालन होता है। प्रथममें उनका अन्तरङ्ग 'आत्मस्वरूप' तथा द्वितीयमें ईश्वरत्वका 'बहिरङ्ग' रूप मिलता है। लीलाके लिये अन्य व्यक्तियोंकी भी आवश्यकता पड़ती है। अतः द्वैत-भावका विशिष्ट व्यवहार लीलाका मुख्य अंग है। अवतार-लीलासे सम्बन्धित सभी व्यक्ति साकेत लीलामें ही उपस्थित रहते हैं। इन दोनों प्रकारकी लीलाओंका उद्देश्य पृथक् है। दिव्य लीलामें भक्तोंको स्वरूपानन्द प्रदान करने अथवा नित्य कैंकर्य-सुख प्रदान करनेकी भावना है। पार्थिव या नरलीला जीवोंके उद्धार तथा पथ-प्रदर्शनके लिये होती है। लीलाका उद्देश्य माया-पीडित जीवका भगवान्‌के अन्तरङ्ग स्वरूपके दर्शनद्वारा उद्धार करना है। साक्षात् परमेश्वरकी लीलाके दर्शनसे मनुष्यके 'अहं' तथा 'स्वार्थ' की भावनाका परिष्कार हो जाता है; उसमें पूर्ण तन्मयता आ जाती है—उपास्यका आनन्द ही उसका आनन्द हो जाता है और वह उस आनन्दमें आप्लावित हो जाता है। जिस प्रकार भक्तिकी सम्यक् उपलब्धिके लिये भगवत्कृपाकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार लीलामें प्रवेश भगवान्‌की कृपासे होता है। वैष्णव मतानुसार मन्त्र-शक्ति-साधना एवं आचार्यके द्वारा लीला-दर्शन सम्भव है। ज्ञान तथा योगके साधक इच्छाको मारनेकी साधना करते हैं। लीला-दर्शन इच्छाके बिना नहीं हो सकता। अतः सगुण भक्ति इच्छाके परिष्कारद्वारा लीला-दर्शन करनेमें समर्थ है। भगवान्‌के समान ही लीला भी नित्य है।

भगवल्लीलाकी कोई इयत्ता नहीं है, वे कब किस प्रकारकी लीला करेंगे यह अज्ञात है। नानापुराण-निगम-आगम सबमें भगवल्लीला व्याप्त है। अनेक देवी-देवताओंकी लीलाएँ यत्र-तत्र-सर्वत्र उपलब्ध होती हैं। यहाँ तक कि लीलाके प्रसंगमें राम-पुरुषमें रामत्व, कृष्णमें कृष्णत्व, नृसिंहमें नृसिंहत्व, हनुमान्‌में हनुमत्त्वका पराक्रम आ ही जाता है। वाल्मीकीय रामायण तथा श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌की अनेक लीलाओंका दर्शन होता है। तभी तो रामचरितमानसमें कहा गया है—***'उमा करत रघुपति नरलीला' 'करउँ सकल रघुनायक लीला'।*** रामकी लीला तो विश्वके अधिकांश भागोंमें भी होती है। वन-गमन, अहल्या-उद्धार, ताड़का-वध, सीता-स्वयंवर-सभामें धनुर्भंग, तथा रावण-वध आदि रामकी अलौकिक लीलाएँ हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी तो लीलाएँ और भी अपरम्पार हैं। उनकी बाल-लीलाओंका श्रीमद्भागवतमें अद्भुत मनोहारी वर्णन है।

श्रीकृष्णका माखन खाना, ऊखलसे बाँधा जाना, यमलार्जुनका उद्धार, वत्सासुर-वकासुर-अघासुर और धेनुकासुरका उद्धार तथा ग्वाल-बालोंको कालिय नागसे बचाना आदि अलौकिक लीलाएँ हैं।

इस प्रकार भगवल्लीलाके स्वरूपका दिग्दर्शन हमें प्राप्त होता है।

भगवल्लीला-स्वरूप एवं वैशिष्ट्य

(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०, डी० एस्० सी०)

'लीला' शब्दका सामान्य अर्थ है क्रीडा, आनन्द अथवा विलास। भगवान् आत्माराम होते हुए भी क्रीडा अथवा स्वकीय मनोरंजनके लिये—दूसरे शब्दोंमें लीलाके लिये ही सृष्टि करते हैं।

भगवान्‌की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस विश्वका सृजन-पालन और संहार करते हैं; किंतु इसमें आसक्त नहीं होते। परम स्वतन्त्र होनेके कारण वे प्राणियोंके अन्त:करणमें अन्तर्हित होकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको तो ग्रहण करते हैं; परंतु रहते हैं उनसे सर्वथा असम्पृक्त ही। उनकी एतद्विषयक स्थिति पद्मपत्रमिवाम्भसा-जैसी होती है।

जिस प्रकार अज्ञानवश मानव नटके संकल्प तथा वचनोंसे रचित माया-सृष्टिको यथावत् नहीं पहचान पाता, उसी प्रकार भगवल्लीलाओंको भी नहीं पहचान पाता।

वे लीलामय विभिन्न लीलाओंके आश्रय होते हुए भी उनसे परे और विलक्षण हैं। वल्लभाचार्यजी कहते हैं—

सर्वाधारं वश्यमायमानन्दाकारमुत्तमम्।
प्रापञ्चिकपदार्थानां सर्वेषां तद् विलक्षणम्॥

(तत्त्वार्थ-दीप-निबन्ध, शास्त्रार्थ, प्र० का० ६७)

श्रीमद्भागवत आदिके अनुसार भगवल्लीलाएँ दशविध मानी गयी हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) सर्ग, (२) विसर्ग, (३) स्थान, (४) पोषण, (५) ऊति, (६) मन्वन्तर, (७) ईशानुकथा (८) निरोध, (९) मुक्ति तथा (१०) आश्रय। सर्वेशकी इन्हीं शाश्वत लीलाओंके अनुसार विश्वका खेल चलता रहता है।

इन लीलाओंका स्वरूप शास्त्रोंमें इस प्रकार प्रतिपादित हुआ है—

[१] सर्गलीला—सर्गका अर्थ है—सृष्टि। स्वेच्छारूपधारी परब्रह्म परमात्मा जब **'एकोऽहं बहु स्याम्'** का संकल्प करते हैं, तब वे प्रकृति, महत्तत्त्व, महाऽहंकार, आकाशादि पञ्चमहाभूत, स्पर्शादि पञ्चतन्मात्राएँ, दशेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारका समुदाय एवं अन्त:करण—इन पचीस तत्त्वोंसे युक्त पुरुष-संज्ञक अक्षर ब्रह्मरूपसे शरीर धारणकर विविध प्रकारकी लीलाएँ करते हैं—वे जब भी सगुण-रूपमें अवतरित होते हैं, उस समय प्रकृति और माया—ये दोनों नित्य शक्तियाँ उनके साथ ही रहती हैं, जैसा कि भगवान् स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीता (४। ६)-में कहते हैं—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

—इन्हीं माया-शक्तियोंके कारण मैं अनेक रूप धारण कर संसारमें आता हूँ।

[२] विसर्गलीला—इन्हीं अक्षर ब्रह्मद्वारा त्रिगुणात्मिका प्रकृतिजन्य गुणोंके वैषम्यसे ब्रह्मादिकी सृष्टिकी जो लीला निष्पादित होती है, उसीको विसर्ग-लीला कहा जाता है। ये अक्षर ब्रह्म परमधाम-व्यापी वैकुण्ठ-रूपसे स्थित रहकर भक्तोंको परमानन्द प्रदानकर, धामके साथ नामको भी—**'वैकुण्ठो विष्टरः श्रवाः'** अन्वर्थक बनाया करते हैं। श्रीमद्भागवतमें अक्षर ब्रह्मके इस परमधामके सम्बन्धमें कहा गया है—

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
विष्णोर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः॥

(३। ११। ४१)

समष्टिरूपमें सृष्टिके विस्तारकी उपक्रमभूता भगवल्लीला ही विसर्ग-लीला है। इस लीलाको रजोगुण-प्रधान प्रतिपादित किया जाता है।

[३] स्थानलीला—वैकुण्ठ-रूपसे व्याप्त श्रीमन्नारायणके आधिपत्यमें ब्रह्मादि देवोंका अपनी मर्यादामें स्थित हो जाना ही स्थानलीला है।

इस लीलाद्वारा सर्वनियन्ता प्रभु देवोंकी मर्यादा निश्चित करते हैं।

[४] पोषणलीला—अपने-अपने स्थानमें स्थित ब्रह्मादि देवोंको अनुग्रहपूर्वक पुष्टि प्रदान करते हुए उनके नियत कार्यके अनुरूप शक्ति प्रदानकर उन्हें कार्य-साधनमें सक्षम बनाना पोषणलीला है। पोषण वस्तुत: और कुछ नहीं बल्कि भगवदनुग्रह ही है, जैसा कि श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—**'पोषणं तदनुग्रहः।'**

उनकी अहैतुकी दयाके परिचायक श्रीमद्भागवतमें अनुस्यूत विभिन्न चरित्रोंमें मानव-जीवनकी सार्थकताका भाव और लक्ष्य पूर्णत: निहित है। समष्टिरूपमें भक्तोंका, शरणागतोंका

सम्बल प्रभुद्वारा गृहीत यह अनुग्रहात्मिका पुष्टिलीला ही है।

[५] **ऊतिलीला**—ब्रह्मादि देवोंके हृदयमें उनके गुणानुकूल कार्यको पूर्ण करनेकी सत्-कामना जाग्रत् करना भगवान्‌की ऊतिलीला है।

ऊतिका अर्थ है कर्मवासना—'**ऊतयः कर्मवासनाः**' (श्रीमद्भा० २। १०। ४)। इस लीला-प्रसंगमें बताया गया है कि ईश्वरांश जीवके नाना योनियोंमें जन्म लेकर कष्ट भोगनेका कारण उसके स्वकीय कर्म हैं। इस कर्मपाश तथा भटकावसे मुक्ति परमेश्वरकी दयोपलब्धि ही है। ईश्वरका अनुग्रह प्राप्तकर कर्मवासनासे छुटकारा पाना मानवका प्रथम कर्तव्य है।

[६] **मन्वन्तरलीला**—युग-युगान्तरसे सृष्टिक्रममें चली आ रही मनु-संततिके हृदयमें कल्पनाशक्ति, निश्चयात्मिका मनीषाशक्ति, कार्यसाधिका संकल्प-शक्ति आदि उत्पन्नकर उसे सद्धर्मकी ओर प्रेरित करना प्रभुकी मन्वन्तरलीला है।

तैंतालीस लाख बीस हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है। इकहत्तर चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें एक मनु होते हैं, जो अपने कालमें सद्धर्मकी रक्षा और प्रचार करते हैं। श्रीमद्भागवतमें मन्वन्तरका वर्णन आश्रयत्व (अवतार)-के समर्थनमें ही उपलब्ध होता है।

अवतार होता ही है धर्मकी रक्षा और स्थापनाके लिये। मन्वन्तरमें सद्धर्मकी स्थापनाका उद्देश्य मानवको धर्माभिमुखी बनाना है और यह कार्य जिनके सहयोगसे पूरा होता है, वे सब भगवदीय कथन—'**यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्**' के परिचायक होते हैं।

[७] **ईशानुकथालीला**—सृष्टिका क्रम अनवरत-रूपमें प्रवर्तित होता रहता है। यदि जीव भगवान्‌का आश्रय लेकर इस प्रवाह-परम्परासे ऊपर न उठ जाय तो उसे सतत भटकते ही रहना पड़ेगा। इसी आश्रयकी प्राप्तिके प्रसंगमें श्रीमद्भागवतमें ईशानुकथाका वर्णन आता है। भगवान् और भक्तोंके अनेक आख्यानोंसे युक्त चरित्रको 'ईशानुकथा' कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें निज अंशभूत प्राणियोंके कल्याणार्थ सृष्टि तथा स्रष्टाके एकत्व-दर्शनपूर्वक अपना प्रामाणिक ज्ञान प्रस्तुत करते हुए समय-समयपर विभिन्न अवतार धारण कर त्रिभुवनको पावन करनेके लिये भगवान् जो लीलाएँ करते हैं तथा इसीके साथ उनके आश्रित भक्तोंकी जो शिक्षादायिनी गाथाएँ हैं, उन्हीं सबको ईशानुकथा-लीला कहा गया है।

[८] **निरोधलीला**—निरोधका सामान्य शास्त्रीय अर्थ है प्रलय। जब संसारमें तमोगुणका आधिक्य हो जाता है, तब भगवान् विपरीत गतिका निरोध करनेके लिये प्रलय करते हैं। इसके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवतमें बताया गया है—'जब भगवान् अपनी शक्तियोंसहित सो जाते हैं, तब सारे जगत्‌का निरोध हो जाता है—

निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः।

(श्रीमद्भा० २। १०। ६)

[९] **मुक्तिलीला**—आत्यन्तिक लयको मुक्ति कहा जाता है। आत्यन्तिक लयकी उपलब्धि भगवत्तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति तथा भगवान्‌की प्राप्तिके उपरान्त होती है। ईश्वरोपलब्धिके पश्चात् ही जीवके पुरुषार्थकी समाप्ति होती है और उसके लिये संसारका आत्यन्तिक लय हो जाता है। वेदान्तकी दृष्टिसे एकमात्र मुक्ति कैवल्य ही है और उसकी उपलब्धि अन्तःकरणकी शुद्धिके पश्चात् परम ज्ञानकी प्राप्तिद्वारा अविद्याके नाशसे होती है। इस अविद्याका नाश अन्तःकरणकी शुद्धि, निष्कामकर्म और ईश्वरोपासना आदिपर निर्भर है। कैवल्य-मुक्तिके लिये ज्ञानोपलब्धि परमावश्यक है। श्रीमद्भागवतके अनुसार—'अपने अज्ञानकल्पित असत्य-रूपको छोड़कर अपने वास्तविक रूपमें स्थिति ही मुक्ति है'—

मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः॥

(२। १०। ६)

[१०] **आश्रयलीला**—श्रीमद्भागवतमें इस लीलाका वैशिष्ट्य इस रूपमें प्रतिपादित है—'**दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्**।' दशम आश्रयलीला-रूपसे सभीके आश्रय-स्वरूप स्वयं वे प्रभु ही निरूपित हुए हैं। आश्रयलीला विद्वानोंके अनुसार मुख्य रूपसे तीन प्रकारकी मानी जाती है—कृपामार्गी शरणागत भक्तोंकी, मर्यादामार्गी ज्ञानी पुरुषोंकी तथा प्रवाही-रूपसे अखिल विश्वकी।

कृपामार्गी शरणागत भक्त विडाल-शावकवत् प्रेमाभक्तिद्वारा कभी स्खलित न होनेवाले प्रभु-चरणोंका आश्रय पाकर सर्वात्मना निश्चिन्त हो जाते हैं। सर्वात्मना समर्पित इन भक्तोंका अपना कुछ नहीं होता, ये पूर्णतः विश्वात्माको ही समर्पित होते हैं और वे ही विश्वात्मा इनके सर्वस्व होते हैं।

मर्यादामार्गी ज्ञानी भक्त दशेन्द्रियों, मन, बुद्धि तथा

चित्तद्वारा गृहीत विषयासक्तिका त्यागकर भगवदाश्रित हो जाते हैं।

उपर्युक्त विभिन्न आश्रयणोंद्वारा प्राप्य परब्रह्म ही सर्ग (सृष्टि)-से लेकर मुक्तिपर्यन्त स्वत: सम्पादित होनेवाली लीलाओंके आश्रय-स्वरूप हैं। उन्हींका आधार पाकर यह जगत् प्रादुर्भूत होता, स्थित रहता तथा प्रलयकालमें उन्हींमें विलीन हो जाता है। इसे ही प्रवाही आश्रयलीला कहा जाता है।

लीला-आसक्तिकी महत्ता—ऊपर विवेचित दशविध लीलाओंके अन्तर्गत विशेषत: अनुग्रहरूपिणी पोषणलीला तथा ईशानुकथालीलाके अनुसार वे परब्रह्म सृष्टि तथा स्रष्टाके भेदको निरस्तकर ऐसी मङ्गलमयी लीलाएँ किया करते हैं, जिनके श्रवण, कीर्तन एवं मनन-मात्रसे जीव कृतकृत्य हो जाता है। इन लीलाओंमें आसक्ति होना अनेक जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका प्रभाव है। जिन भावुक भक्तोंके हृदयमें जिस समय भगवल्लीला-कथामें आसक्तिका उदय हो जाता है, उस समय उनके हृदयमें स्वयं 'श्रीहरि' ही आ विराजते हैं। इसे दृष्टिगत कर श्रीमद्भागवत (१। २। ८)-में कहा गया है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥

अर्थात् जिनकी प्रेरणासे सूर्यादि ग्रह निज कक्षामें अवस्थित रहकर निरन्तर निज-दायित्व निर्वहनमें संलग्न रहते हैं, विश्वकी सारी गतिविधियाँ जिनके कटाक्ष-मात्रसे परिचालित होती रहती हैं, उन सर्वेश्वरकी लीलाकथामें जिस धर्म-कर्मद्वारा प्रीति उत्पन्न नहीं होती, वह मात्र श्रम ही है और कुछ नहीं।

भगवल्लीला-आसक्ति अनन्यभक्ति, यथार्थ ज्ञान और वैराग्यकी उत्पादिका तो है ही, इन सबकी यथार्थताकी परिचायिका एवं रसज्ञताकी प्रामाणिक कसौटी भी है।

भगवल्लीलाकी महिमा वर्णनातीत है। जिनके हृदयमें सर्वेश्वरके कृपाप्रसादसे प्रभुकी लीलाकथामें अनुरक्ति उत्पन्न हो जाती है, वह भले ही नराधम ही क्यों न हो, श्रेष्ठतम साधु पुरुष ही बन जाता है। जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने श्रीमुखसे श्रीमद्भगवद्गीता (९। ३०)-में कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अत: प्राणिमात्रको पूर्णरूपेण भगवान्‌की ही शरण ग्रहण करनी चाहिये—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

अन्तत: यही सिद्ध होता है कि समष्टि-रूपमें भगवल्लीला ईश्वरके अपने अंशकी सर्वात्मना उन्नतिका आनन्दाभिधायी सोपान है।
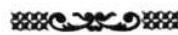
भगवान् शेष

सहस्रफणधारी, कमल-तन्तुके समान श्वेतवर्ण, मणिमण्डितमौलि, एक-कुण्डलधर, नीलवस्त्रधारी भगवान्‌का यह संकर्षण-विग्रह जगत्‌का आधार है। सम्पूर्ण पृथ्वी भगवान् शेषके एक फणपर राईके समान स्थित है। प्रलयके समय उनके फूत्कारकी अग्निमें विश्व सूखे गोबरके समान भस्म हो जाता है।

प्रलयकालमें भगवान् विष्णु शेषजीके भोगपर शयन करते हैं। भगवती लक्ष्मी चुपचाप उनके श्रीचरणोंको दबाती हैं। शेषजी अपने पूर्व फणसे उनके नाभिनालके लोकपद्मको, उत्तर फणसे प्रभुके मस्तकको एवं दक्षिण फणसे उनके चरणोंको आच्छादित किये रहते हैं। वे अपना पश्चिम फण फैलाकर सर्वेशको व्यजन करते हैं तथा अन्य फणोंसे भगवान्‌के शंख, चक्र, गदा, पद्म, नन्दक-खड्ग, दोनों तूणीर, धनुष तथा गरुड आदिको धारण किये रहते हैं।

पातालमें नागकन्याएँ भगवान् अनन्तके महाभोगको नाना प्रकारके सुगन्धित अङ्गरागोंसे उपलिप्त करती हैं। मुनिजन इष्टसिद्धिके लिये उनकी आराधना करते हैं। सनकादि उनसे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रभुका यह रूप प्राणतत्त्वका अधिष्ठान है। वे समस्त बलके आश्रय हैं और वे ही जीवोंके परमोपदेष्टा आदिगुरु हैं।

'करउँ सकल रघुनायक लीला'

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी)

श्रीरामचरित्रके—श्रीरामलीलाके परम रसिक एवं अनुभवी भक्तवर श्रीकाकभुशुण्डिजी अपने पूर्वजन्मके चरित्रको श्रीगरुडजीसे अत्यन्त भावपूर्ण भाषामें अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'मुझे तिर्यक् योनिसे लेकर देवयोनिपर्यन्त अनेक योनियोंमें—अनेक शरीरोंमें जन्म लेना पड़ा'—

कवन जोनि जनमेउँ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥

(रा० च० मा० ७। ९६। ८)

परंतु श्रीगुरुदेवकी भास्वती अनुकम्पासे और भगवान् देवाधिदेव महादेवके अलौकिक प्रभावसे जन्म-मृत्युका कठिन क्लेश हमें रंचमात्र भी व्याप्त नहीं कर सका। प्रत्येक योनियोंमें मेरी भगवद्भजनकी वृत्ति अक्षुण्ण रूपसे बनी रही—

त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥

(रा० च० मा० ७। ११०। १)

परमात्मप्रभुकी करुणामयी स्मृति और भगवद्भजनकी वृत्ति जिसके मनमें नैरन्तर्येण—अविच्छिन्नरूपेण सर्वदा विद्यमान रहती है, उसे किसी भी परिस्थितिमें, किसी भी योनिमें, किसी भी कालमें, किसी भी देशमें और किसी भी वेशमें क्लेश नहीं हो सकता है। सुतरां भक्तोंकी याचना होती है कि—

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥

(रा० च० मा० २। २४। ५-६)

रामभजनकी वृत्ति जिस भाग्यवान्के पास होती है, उसके अशेष क्लेशोंका शमन निश्चित ही हो जाता है।

श्रीकाकभुशुण्डिजी कहते हैं कि काक देहके पूर्व मुझे पवित्र एवं दुर्लभ ब्राह्मण-कुलमें जन्म मिला—

चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई॥

(रा० च० मा० ७। ११०। ३)

उस ब्राह्मण-शरीरके बचपनमें मैं बालकोंके साथ मिलकर खेल खेलता था—***'खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला'*** (७। ११०। ४)। परंतु मेरे खेलनेका साधन अन्य प्राकृत बालकोंसे सर्वथा भिन्न था, अनूठा था और अत्यन्त अनुरागमय था।

इस संदर्भमें यह ध्यातव्य है कि मात्र श्रीकाकभुशुण्डिजीका ही नहीं, अपितु इस कोटिके अन्य महाभागवतोंका बालपन भी लौकिक बचपनसे कुछ भिन्न प्रकारका ही होता है, अलौकिक होता है, दिव्य होता है और स्नेहोर्मिल होता है। उसमें भगवत्प्रेमकी मनोरम तरंगें समुच्छलित होती रहती हैं। महाभागवत श्रीउद्धवजीके अनोखे, रसमय, उपासनामय बालपनका वर्णन और उनके भक्तिमय क्रीडा-साधनका वर्णन महामुनीन्द्र व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी महाराज भावविह्वल होकर करते हैं—

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः।
तन्नैच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया॥

(श्रीमद्भा० ३। २। २)

श्रीउद्धवजी जब मात्र पाँच ही वर्षके थे, तब अपनी भावमयी बालक्रीडा सम्पन्न करनेके लिये भगवत्-अधिष्ठानकी कल्पना करके अर्थात् मृत्तिका आदिकी मूर्तिका निर्माण करके स्नेहोच्छलित भावपूर्ण हृदयसे उस भावमय श्रीविग्रहका समर्चन करते थे। यही उनका दिव्य एवं अलौकिक खेल था। उस समय भाग्यशालिनी जननी प्रातराश—बालभोग करनेके लिये जब बुलाती थीं, तब उन्हें श्रीकृष्णचन्द्रकी—अपने परम प्रियतम प्रेमाराध्य, परम प्रेमास्पद प्राणाराध्यकी पूजा बीचमें ही छोड़कर कलेवा करनेकी इच्छा नहीं होती थी और वे 'मेरी भगवत्परिचर्या अभी सर्वाङ्ग सम्पन्न नहीं हुई है'—इस प्रकारका भावपूर्ण प्रत्युत्तर दे देते थे अपनी वात्सल्यमयी जननीको। धन्य हैं श्रीउद्धवजी! धन्यातिधन्य है उनकी मङ्गलमयी-स्नेहमयी बालक्रीडा!

श्रीकाकभुशुण्डिजी अपने पूर्वजन्ममें, अपने जन्म-जन्मान्तरोंके श्रीरामभक्तिमय संस्कारोंके कारण; किंवा श्रीरामभक्तिरसका उदार हृदयसे परिवेषण करनेवाले भगवान् विश्वनाथकी भास्वती अनुकम्पाके कारण अपने समवयस्क बालकोंके साथ मिलकर अपने परम प्रेमास्पद करुणामय रघुनन्दन श्रीरामजीकी समग्र लीलाओंका अभिनय करते थे—

'करउँ सकल रघुनायक लीला'॥

उपर्युक्त पंक्तिमें 'सकल' शब्द अत्यन्त सारगर्भित है। 'सकल' का भाव है कि श्रीरामजन्मसे लेकर श्रीरामराज्याभिषेक-पर्यन्त वे समस्त लीलाओंका रसास्वादन करते थे। एक बात यहाँ विशेष मनन करने योग्य है कि श्रीकाकभुशुण्डिजी साधनके आरम्भकालमें स्वयं बालकोंके साथ मिल करके श्रीरामलीलाका दिव्य अनुकरण करते थे और साधनकी चरमावस्थामें भी भगवल्लीलारसका समास्वादन करके परमानन्द-सुधासागरमें अवगाहन करके परमानन्द-रससार-सर्वस्वका अनुभव करते थे—

'सिसुलीला बिलोकि सुख लहऊँ'॥

(रा० च० मा० ७। ११४। १३)

आरम्भिक अवस्थामें स्वयं लीलाभिनय करते थे और चरमावस्थामें भगवल्लीलाका मङ्गलमय दर्शन करते थे। भाव यह है कि लीलाभिनयका प्रत्यक्ष परिणाम है—स्वयं ठाकुरजीद्वारा सम्पादित लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन। दूसरा भाव है मानव देहद्वारा भगवल्लीलाका अनुकरण और काक शरीरद्वारा भगवल्लीलाका प्रत्यक्ष दर्शन तथा तीसरा भाव है—भगवल्लीलाके स्नेहमय अनुकरणस्वरूप साधनके द्वारा प्रत्यक्ष श्रीरामलीलाका सहज सम्भव दर्शन।

भगवल्लीलाका अनुकरण एवं चिन्तन वियोगी भक्तोंको भगवत्-मिलनकी तरह ही मधुर आनन्द प्रदान करता है। लीलाकी परिभाषा है—**'अनायासेन हर्षात् क्रियमाणा चेष्टा लीला'**। अपने प्रियतमकी भाँति वेश धारण करना, उनकी ही तरह चलना, दृष्टि निक्षेप करना, हँसना, सम्भाषण करना तथा पूर्णतया प्रियतमकी अनुकृति ही लीला है—

'अप्राप्तवल्लभसमागमनायिकायाः
सख्या पुरोऽत्र निजचित्तविनोदबुद्ध्या।
आलापवेषगतिहास्यविलोकनाद्यैः
प्राणेश्वरानुकृतिमाकथयन्ति लीलाः॥'

उदाहरणके रूपमें श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णगत-प्राणा व्रजसीमन्तिनियोंका प्रसंग—उनकी अलौकिक स्नेहोर्मिल लीलानुकृतिका प्रसंग मननीय है—

श्रीकृष्णवियोगिनी, श्रीकृष्णैकपरायणा, श्रीकृष्णैकमनस्का श्रीकृष्णमयी गोप-वधूटियाँ अपने प्राणप्रियतम प्राणेश्वर जीवनधन जीवन-सार-सर्वस्व रसिकशेखर परमानन्दकन्द व्रजचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रके वियोगका अनुभव करके आकुल-व्याकुल हो गयीं। उनके मन-प्राण वियोगाग्निसे संतप्त हो गये। उनके अदर्शनके तीव्र तापसे वे संतप्त हो गयीं—**'अतप्यंस्तमचक्षाणाः।'** ठाकुरजीकी गति, स्नेहमयी मुसकान, मधुर चितवन, मनको प्रलुब्ध करनेवाली मनोविनोदपूर्ण बातें, उनकी मधुमयी लीलाएँ तथा रमारमण चित्तचोरकी विविध भावभंगिमाओंने गोपाङ्गनाओंके चित्तका अपहरण कर लिया था। वे तो पूर्णरूपेण कृष्णात्मिका हो गयी थीं, फिर तो वे अपने प्राणेश्वरकी विविध चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं—

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै-
र्मनोरमालापविहारविभ्रमैः।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। २)

अनुराग-सरोवरमें निमग्न गोपियाँ अश्वत्थ, वट, प्लक्ष, रसाल, प्रियाल, कटहल आदि वृक्षोंसे तथा मालती, माधवी, मल्लिका, चमेली, जूही आदि लताओंसे अपने प्राणेश्वरके विषयमें पूछती हुई, भावपूर्ण अन्वेषण करती-करती जब वे श्रान्त-क्लान्त-परिश्रान्त हो गयीं, तब मुरली-मनोहर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णचन्द्रकी मधुर लीलाओंका अनुकरण करने लगीं—

इत्युन्मत्तवचोगोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३०। १४)

कोई भावमयी गोपी पूतना बन गयी। पूतनाके अभिनयमें उस गोपीका बड़ा स्नेहिल भाव था, धन्य है पूतना! श्लाघ्य है उसका सौभाग्य!

इसी प्रकार प्रस्तुत प्रसंगमें भी श्रीकाकभुशुण्डिजीके नेत्रोंमें, मनमें, प्राणोंमें श्रीरामदिदृक्षा—प्राणेश्वरकी दर्शन-लालसा समुल्लसित हो रही थी; सुतरां जन्म-जन्मान्तरके वियोगी भक्त श्रीकाकभुशुण्डिजी बालकोंके साथ सम्मिलित होकर अपने परमाराध्यके असमोर्ध्व मङ्गलमय सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रहकी मङ्गलमयी दर्शन-लालसासे अपने प्राणधन कौसल्यानन्द-संवर्धन दशरथनन्दन रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रकी समग्र लीलाओंका अनुकरण करने लगे। इसी भावनासे भावित हो करके पूज्य-चरण गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी लिखते हैं—

'करउँ सकल रघुनायक लीला'॥

गोकुल-लीलाका आध्यात्मिक संदेश

(आचार्य डॉ० श्रीविष्णुदत्तजी राकेश, पी-एच्० डी०, डी० लिट्०)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ साधकोंका मार्ग-दर्शन करनेवाली हैं और वे स्वयं सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने वेदोक्त धर्मका बार-बार आचरण करके साधनरत प्राणियोंको यह बात दिखला दी कि घरमें रहकर भी धर्म, अर्थ और कामकी पवित्र सिद्धि प्राप्त की जा सकती है—

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन् सतां गतिः।
गृहं धर्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयत् पदम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ९०। २८)

उपदेश देनेका सच्चा अधिकारी वही है, जो अपने जीवनको स्वयं वैसा बना चुका है। प्रवृत्ति और निवृत्ति-प्रधान धर्मको अपने जीवनमें उतारकर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने दोनों मार्गोंके साधकोंका मार्ग-दर्शन किया। द्वारकामें भगवान्का आचरण इसी प्रकारका रहा है। वे अनासक्त भावसे कामनाओंकी पूर्ति करते रहे और निष्काम कर्मयोगका आश्रय लेकर भोगोंके बीच रहते हुए भी महात्माओंका जीवन जीते रहे। श्रुति तथा लोकमार्गका समन्वय उन्होंने ही किया।

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः।
कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः॥

(श्रीमद्भा० ३। ३। १९)

श्रीकृष्णकी गोकुल-लीला कर्मयोगके इसी रहस्यको बतानेके लिये है। इसीलिये शुकदेवजी महाराजने इसका प्रारम्भ पूतना-मोक्षसे तथा समापन फल-विक्रयिणी लीलासे किया है। संसारमें साधकका स्वभाव कैसा हो? इसका संकेत पूतना-मोक्ष लीलामें है। श्रीकृष्ण शय्यापर लेटे हुए हैं। पूतना सुन्दरी बनकर वहाँ जाती है तथा श्रीकृष्णको गोदमें उठा लेती है। भगवान् उस बालघातिनीको देखकर आँखें मूँद लेते हैं—

चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः। (श्रीमद्भा० १०। ६। ८)

मानो भगवान् बताना चाहते हैं कि अविद्यारूपी पूतनाकी गोदमें रहना तो साधककी नियति है, पर अविद्याके क्रियाकलापके प्रति साधकको पूर्ण उपेक्षाभाव रखना चाहिये—उसकी ओरसे आँखें मूँद लेनी चाहिये। सांसारिक आकर्षणोंके प्रति आँखें मूँद लेना ही साधना है। श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। साधकोंको उपदेश करते हैं कि 'जहाँ साधक सांसारिक आकर्षणोंसे आँखें हटा लेता है तथा नेत्र मूँदकर ध्यानाभ्यासद्वारा चित्तकी प्रगाढ एकाग्रता बनाये रखता है, वहाँ यह पूतनारूपी अविद्या दिन-रात क्षीण होती हुई धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।' श्रीकृष्ण आँख मूँदकर निजात्मरूपका ध्यान करने लगे। उन्होंने अविद्यारूपी पूतनाको पहचान लिया; फिर भला उन आत्मारामका यह पूतना (अविद्या) क्या बिगाड़ सकती थी?

पूतनाके स्तनोंमें दूध और विष दोनों विद्यमान थे। संसारमें भी विष और अमृत दोनों प्राप्त होते हैं। यहाँ पाप-पुण्य, हर्ष-शोक, राग-विराग, जन्म-मरण-जैसे विषमभाव निरन्तर विद्यमान रहते हैं। बन्धन तथा मोक्ष भी रहते हैं। अब यह साधकपर निर्भर करता है कि वह बन्धन चाहता है या मोक्ष। पाप करता है या पुण्य। श्रीकृष्णने पूतनाका स्तनपान करते हुए दूध ग्रहण कर लिया तथा विष छोड़ दिया। हंसकी तरह दूध-पानी अलग-अलग कर दूध पी लिया। संतोंका स्वभाव ही ऐसा होता है—

जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार॥

श्रीकृष्णने उपदेश किया, जगत् गुण-दोषमय होता है, इसमेंसे मेरी तरह अच्छाई ग्रहण करो तथा बुराई छोड़ दो। यह कर्मयोगीका सकारात्मक गुण है।

ऐसे ही साधकको अपनी जागतिक प्रवृत्तियोंके शकटको उलट देना चाहिये। श्रीकृष्णने शकट-भञ्जन-लीलाद्वारा यही उपदेश दिया। उन्होंने लात मारकर शकट उलट दिया। साधकको भी भौतिक सुखों एवं अनात्म जगत्को ऐसे ही लात मार देनी चाहिये, उसे ठुकरा देना चाहिये। अनात्मका त्याग श्रेयस्कर होता है। यहाँ भागवतकारने शकटको उलट दिया—ऐसा वर्णन किया है—

कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात्॥

इससे सिद्ध है कि भगवान् साधकोंकी शिक्षाके लिये ही यह लीला कर रहे हैं। मानो भगवान् कहते हैं कि 'हे जीवात्मा! तू अपनेको नहीं जानता, इस नष्ट होनेवाली मिट्टीकी गाड़ीको सरपर रखकर लेटा हुआ है। तू चेतन पुरुष नीचे लेटा है और यह जड-प्रपञ्च तेरे सिरपर चढ़ा हुआ है। तू तो गरुडके समान सुन्दर और चिदाकाशमें उड़नेवाला है। तू इस धरती या एक परिवार, एक जाति,

एक देश तथा एक सम्प्रदायका नहीं। तू पृथ्वीसे ऊपर उठ, अपने ज्ञानालोकसे द्युलोकको प्रकाशित कर, अपने तेजसे दिशाओंको उन्नति कर।' यजुर्वेद (१७। ७२)-की एक श्रुति है—

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृꣳह॥

और ठीक इस लीलाके बाद इस मन्त्रके परिप्रेक्ष्यमें तृणावर्त-लीलाका आयोजन होता है। सुपर्ण कृष्ण पृथ्वीपर बैठे हैं—

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता।

अपनी दीप्तिसे अन्तरिक्षको भर देनेकी चाह उनमें पैदा हो रही है। वे संसारको दीप्त करनेवाले वैश्वानर हैं। प्राणियोंमें—**'अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः'** के कथनानुसार वे अग्निरूपसे विद्यमान हैं, अपने तेजसे वे संसारको व्याप्त किये हुए हैं। अतः साधकको उपदेश करते हैं कि 'तू वैश्वानर बन और मर्त्यलोकसे ऊपर उठ। तू गरुत्मान् है अर्थात् महान् आत्मावाला है, अतः उस महान् आत्माका साक्षात्कार कर।' तृणावर्त विक्षेप है और प्रपञ्चका व्यवहार विक्षेपशक्ति कहलाता है।

श्रीकृष्णतत्त्वको या आत्मतत्त्वको विक्षेपके समाप्त हो जानेपर ही पाया जा सकता है। अनात्मबोधके त्रिपुर या तृणावर्तको आत्मज्ञानके शिव ही मार सकते हैं। इसीलिये श्रीशुकदेवजी इस वधकी तुलना त्रिपुर-संहारसे करते हैं, क्योंकि त्रिपुर-संहार ज्योतिरूप दिव्यज्ञानास्त्रसे हुआ, अतः विक्षेपका निरसन भी ब्रह्मज्ञानके उदयसे ही होगा।

विक्षेपके साथ ही दूसरी शक्ति है आवरण। आवरण सत्य वस्तुके ज्ञानमें बाधक होता है। अतः निर्विकार आत्मदर्शनके लिये, श्रीकृष्णतत्त्वके साक्षात्कारके लिये आवरणकी निवृत्ति परमावश्यक मानी गयी है। माँ श्रीकृष्णको दूध पिलाते हुए उनके मुखमें सम्पूर्ण जगत्का दर्शन करती हैं। इस रूपको देखकर माँने आश्चर्यसे आँखें बंद कर लीं।

साधकको विश्वतोमुख भगवान्का परिचय आवरण हट जानेके बाद ही होता है। बिना आवरण हटे उनका स्वरूप नहीं दिखायी दे सकता। तभी तो भगवान् प्रेरणा देते हैं, साधको! स्वचक्षुओंको बंद करो तथा दिव्य चक्षुओंसे मेरे विराट् रूपका दर्शन करो'—

'न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।'

यहाँ यशोदाद्वारा अपनी आँखें मूँद लेनेका यही तात्पर्य है और इसीके बाद भगवान्का अनुग्रह बरसने लगता है। उन्हें दिव्य चक्षु मिल जाते हैं। वे विश्वरूपका दर्शन करती हैं तथा उनकी अहंता-ममता नष्ट हो जाती है। वे कह उठती हैं—'यह मैं हूँ, ये मेरे पति हैं, यह मेरा पुत्र है, मैं व्रजराजकी राजरानी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी हूँ। ये गोप, गोपी और गोधन मेरे अधीन हैं। जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए हैं, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं, मैं उन्हींकी शरणमें हूँ'—

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो
व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे
यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः॥

(श्रीमद्भा० १०। ८। ४२)

नल-कूबरके उद्धार-प्रसंगमें संत सांनिध्यकी महत्ता बतायी गयी है। बिना दरिद्रता या अकिंचनत्वके बोधके समदर्शिता या समताका भाव पैदा नहीं होता। सिद्धि या असिद्धिमें महत्त्व-बुद्धि होनेके कारण समताका उदय नहीं होता। उलूखल-बन्धन-लीला इसी ओर ध्यान खींचती है। विनाशी पदार्थोंका महत्त्व यदि अन्तःकरणमें बना रहता है तो समताका उदय नहीं होता। माँ यशोदा श्रीकृष्णको छोड़कर दही मथने बैठती हैं, यह विनाशी पदार्थोंके प्रति बढ़े हुए महत्त्वका ही सूचक है। अनुकूलता-प्रतिकूलताका, नाम और रूपका द्वन्द्व यहाँ बना रहता है। अतः यमलार्जुन-उद्धार प्रसंगमें देवर्षि नारदसे कहलवाया गया—संतोंके संगसे लालसा-तृष्णा मिट जाती है और साधकका अन्तः-करण शुद्ध हो जाता है, अतः दरिद्रता (बाह्य पदार्थोंसे संकोच)-का अभ्यास करो, क्योंकि उसके भोगपदार्थ क्रियामें तो छूटे हुए हैं ही, केवल विचारमें शेष हैं, तृष्णा लालसारूपमें विचाररूपसे रहनेवाले भोग साधुओंकी प्रेरणासे समूल नष्ट हो जाते हैं। अतः विचार और क्रिया दोनोंमें ही समभाव जाग्रत् हो जाता है—

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः।
सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद् विशुद्ध्यति॥

इसके बाद कर्म समर्पण या ब्रह्मार्पणभावसे क्रियासिद्धि प्राप्त होती है। यह दिखानेके लिये गोकुलकी फल-विक्रयिणी-लीला समापनके रूपमें घटित होती है। इसीके बाद श्रीकृष्णका वृन्दावन-गमन होता है, जहाँसे साधकको

भक्तियोगका संदेश मिलता है। गोकुल-लीला कर्मयोग सिद्धिकी लीला है।

कर्मयोगी जब कर्मका फल अपने लिये निर्धारित करता है, सत्कर्मके फलको धर्म, सम्पत्ति, पुत्र एवं पौत्रादि सुखतक सीमित मानता है, तबतक वह बन्धनका कारण रहता है, इसे फलका बेचना कहा गया है, पर जब कर्म ब्रह्मार्पणभावसे होता है तो वह मुक्ति प्रदान करनेवाला होता है। शुकदेवजी कहते हैं—वह फल बेचनेवाली गोकुलमें भगवान्‌की अटारीके सामने आवाज लगा रही थी—'फल, लो फल'—

क्रीणीहि भोः फलानि। (श्रीमद्भा० १०। ११। १०)

सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओंके फल देनेवाले भगवान् अच्युत फल खरीदनेके लिये अपनी छोटी-सी अंजलिमें अनाज लेकर दौड़े। उनकी अंजलिसे अनाज मार्गमें बिखर गया, फल बेचनेवालीने उनकी अंजलि फलोंसे भर दी और उधर भगवान्‌ने उसकी फल रखनेवाली टोकरी रत्नोंसे भर दी—

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम्।
फलैरपूरयद् रत्नैः फलभाण्डमपूरि च॥

जो यज्ञादि कर्म सकाम होते हैं। उनसे स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति होती है। किंतु जो निष्काम कर्म करते हैं, उन्हें भगवान् भक्तिरूपी रत्न प्रदान करते हैं। यह टोकरी यज्ञवेदी है। फल बेचनेवाली पूर्वमीमांसा है तथा श्रीकृष्ण यज्ञेश्वर परमपुरुष। भगवान् मानो उपदेश करते हैं कि सकाम उपासक पुण्यफलोंको बेचनेवाले हैं, अतः तुलनामें कम महत्त्वके हैं, पर निष्काम उपासक तथा कर्मयोगी पुण्यफलोंका समर्पण करनेवाले हैं, अतः अपेक्षाकृत वे सर्वश्रेष्ठ हैं। गीतामें भगवान्‌ने कहा भी है कि मुझे सम्पूर्ण यज्ञों तथा तपोंका भोक्ता, सम्पूर्ण लोकोंका महान् ईश्वर और सम्पूर्ण प्राणियोंका सुहृद् जानकर मनुष्य शान्तिको प्राप्त करता है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

इस प्रकार कर्मयोगीकी सिद्धि इस बातमें है कि वह समस्त पदार्थ समर्पित कर दे तथा पदार्थोंका दान आदि क्रिया-कलाप भी समर्पित कर दे। फलेच्छाका त्याग करके ही कर्म करना श्रेयस्कर है। भगवदर्पण-भावसे कर्म एवं कर्मफल प्रदान करनेसे समस्त कर्म शुद्ध हो जाते हैं और कर्ता कर्तापनके अहंकारसे विमुक्त तथा आसक्तिसे असंग होकर सर्वथा मुक्त हो जाता है। कर्म और कर्मफल उसे संलिप्त नहीं करते—'**न कर्म लिप्यते नरः।**'

सारांश यह कि निष्कामकर्म-सम्पादन, कर्मफलका ब्रह्मार्पण तथा परहित-चिन्तन मनुष्यको परमेश्वरकी प्रियता प्रदान करते हैं तथा ऐसा कर्मयोगी दुर्लभ मुक्तिको सहजमें ही प्राप्त कर लेता है।

भगवदवतार लीलानुवर्णन

(डॉ० आचार्य श्रीगौरकृष्णजी गोस्वामी शास्त्री, आयुर्वेद शिरोमणि, काव्य पुराणदर्शन तीर्थ)

'महतां चरितं चारुलीलानुश्रवणं हरेः'

इस वचनानुसार साधकजन नित्य एवं आवश्यक कर्तव्यके रूपमें महज्जनोंके चमत्कारिक चरित तथा मनोहारी भगवल्लीलाओंका अनुश्रवण-स्मरण आदि करते रहते हैं।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥

(श्रीमद्भा० १। ३। २६)

जिस प्रकार अगाध सरोवरसे निःसृत जल अनेक प्रणालियोंद्वारा प्रवाहित होता है, उसी प्रकार भगवान्‌के अनन्त अवतार हैं, जिनके द्वारा वे विविध रूपसे अपनी अलौकिक लीलाओंद्वारा जगत्‌को आनन्दित करते रहते हैं।

भगवान्‌के अवतारोंके मुख्यतः छः भेद हैं—

(१) पुरुषावतार

कारणार्णवशायी महाविष्णुके अवतार रूपमें यह संकर्षणके अंशावतार हैं, जो अपने भृकुटि-विन्याससे प्रकृतिको विक्षुब्ध-कर महत्तत्त्वादिद्वारा इस प्रपञ्चात्मक विश्वकी सृष्टि करते हैं।

(२) गुणावतार

जो सत्त्वगुणद्वारा विश्वके पालक विष्णुस्वरूप हैं उन्हींके द्वारा रजोगुणात्मक सृष्टि-कारक ब्रह्मा तथा तमोगुणात्मक

सृष्टि-संहारक शिवकी उत्पत्ति है।

(३) मन्वन्तरावतार

ये चौदह प्रकारके हैं। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं एवं प्रत्येक मन्वन्तरमें एक-एक अवतार होते हैं।

(४) शक्त्यावेशावतार

इसके आवेश, प्रभाव, वैभव तथा परावस्थ भेद हैं, इनमें उत्तरोत्तर अधिक शक्ति एवं प्रकाशकरूपमें अवतारोंकी श्रेष्ठता है।

(५) युगावतार

सत्य, त्रेता, द्वापर एवं कलियुग—इन चार युगोंमें भगवान् युगावतार-रूपमें अवतीर्ण होते हैं।

सत्ययुगमें—

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बरः।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्डकमण्डलू॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। २१)

भगवान् शुक्लवर्ण, जटावल्कल वस्त्रधारी, मृगचर्म, यज्ञोपवीत, अक्षमाला तथा दण्ड-कमण्डलु धारणकर अवतरित होते हैं।

त्रेतायुगमें—

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः।
हिरण्यकेशशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। २४)

भगवान् रक्तवर्ण, चतुर्भुज, त्रिगुण मेखलाधारक, सुनहरे केश, त्रयी वेदात्मक रूप तथा स्रुक-स्रुवादि धारणकर अवतीर्ण होते हैं।

द्वापरयुगमें—

द्वापरे भगवाञ्छ्यामः पीतवासा निजायुधः।
श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। २७)

भगवान् श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, चक्रादि आयुधोंसहित कौस्तुभादि मणियोंसे अलंकृत होकर अवतीर्ण होते हैं।

कलियुगमें—

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। ३२)

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कृष्ण-प्रभाभासित होकर अपनी महाभाव-स्वरूपा प्रियतमा श्रीराधिकाकी भावाङ्ग गौरकान्ति धारणकर अपने श्रीनित्यानन्दादि प्रिय पार्षदोंके सहित कलियुगका एकमात्र साधन हरिनाम संकीर्तनके प्रचार-प्रसारहेतु श्रीगौरांग महाप्रभु रूपमें अवतरित हुए। बौद्धिकजन संकीर्तनात्मक यज्ञसे उनकी आराधना करते हैं।

(६) लीलावतार

भगवान्‌के श्रीवामन, वाराह, कूर्म, धन्वन्तरि आदि अनेक लीलावतार हैं, जो प्रतिकल्पमें एक बार अवतरित होते हैं और इनकी अंशावतार-रूपमें परिगणना है।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा० १। ३। २८)

'कृष्णो वै परमं दैवतम्।'

(गोपालपूर्वतापिन्युपनिषत् १)

किंतु श्रीकृष्ण षोडश कलात्मक पूर्ण भगवदवतार हैं, एवं इस श्रीकृष्णावतारमें ऐश्वर्य और माधुर्यका पूर्ण प्रकाश होनेके कारण कृष्णावतार ही सर्वश्रेष्ठ अवतार है।

मानवरूपमें श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ हैं, वे सर्वोत्कृष्ट एवं रसिकजनोंके हृदयोंमें रसोत्पादक हैं। उनका वह नटवर-नागर गोपवेश चराचर जगत्‌को विमोहित कर देता है। जब वे कदम्ब-काननमें मधुर मादक मुरलीकी तान छेड़ते हैं, तब पानी-भरे बादल सहसा रुक जाते हैं, गन्धर्व अपने गायनको छोड़ चमत्कृत हो उठते हैं, सनकादि मुनियोंके ध्यानमें बाधा उत्पन्न हो जाती है, ब्रह्मा चकित-भ्रमित हो जाते हैं एवं शेषनाग फणोंको ऊपर उठाकर झूमने लगते हैं। इस प्रकार कन्हैयाकी बाँसुरीके स्वर ब्रह्माण्डको भेदकर चारों ओर गुंजायमान हो उठते हैं।

श्रीकृष्ण जब व्रजवृन्दावनमें स्वजनोंके साथ रहते हैं, तब उनका प्रकाश पूर्णतम, मथुरामें पूर्णतर, द्वारकामें पूर्ण तथा गोलोकमें पूर्ण कल्पकी स्थितिमें रहता है एवं इसीके अनुसार व्रजवृन्दावनमें माधुर्य विशेष तथा ऐश्वर्यमें कमी रहती है। मथुरासे द्वारकामें और द्वारकासे गोलोकमें माधुर्य कम तथा ऐश्वर्य विशेष रूपसे रहता है। गोलोककी लीलाएँ और वृन्दावनकी लीलाओंमें भेद नहीं है, किंतु व्रजवृन्दावनमें माधुर्य तथा गोलोकमें ऐश्वर्यका पूर्णतम प्रकाश है, यही इन दोनोंका भावान्तर भेद है।

वे रसिक भावुक व्रजवासीजन आज भी उस गौर-श्याम युगलकी लीलाओंका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्तकर अपने भाग्यकी सराहना करते हैं। धन्य है श्रीराधा-माधवका यह वृन्दावन और धन्य हैं उनकी वे ललित लीलाएँ।

श्रीकृष्णकी रासलीला एवं उसका आध्यात्मिक रहस्य

(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी, एम०ए०, एल० टी०, साहित्यरत्न)

रासलीला एक दिव्य प्रेम-सुधा-रसका समुद्र है, उसकी दो धाराएँ हैं। दो ओरसे आती हैं, टकराती हैं और एक हो जाती हैं। पहली लहर दूसरी हो जाती है, दूसरी लहर पहली हो जाती है। इस प्रकार प्रेमी-प्रियतम, प्रियतम-प्रेमीके अन्यतम मिलनकी यह अनन्त धारा चलती रहती है। नया मिलन, नया रूप, नया रस, नयी प्यास और नयी तृप्ति—यही प्रेम-रसका अद्वैत स्वरूप है। इसीका नाम रास है।

गोपियाँ रसविशिष्ट प्रेमवृत्ति हैं। राधारानी मूर्तिमती ब्रह्मविद्या हैं, आराधना हैं, आराधिका हैं, आह्लादिनी शक्ति हैं। एक कृष्ण, एक वृत्तिकी अद्वैत-रसभावनासे ओतप्रोत हृदयके रंगमंचपर संधिस्थानीय श्याम-ब्रह्म और तदाकार-वृत्तियोंकी धाराके रूपमें गोपियोंका नृत्य ही रासलीला है।

रास—शास्त्रीय दृष्टि

शास्त्रीय दृष्टिसे देखें तो—'**श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं, पूर्ण परब्रह्मके अवतार हैं और सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। सद्भावका प्रकाश उनके धर्माचरणमें, चिद्भावका प्रकाश उनके निर्विकार अनुभूति एवं उपदेशोंमें तथा आनन्दभावका परिपूर्ण विकास उनकी रासलीलामें हुआ है। रासलीला एक आनन्द-प्रधान लीला है। वेदोंमें मधु, आनन्द, रस एवं सुखके नामसे उन्हींका वर्णन है।

रासमें साहित्य, संगीत और कला (नृत्य)-का समन्वय होता है। '**सत्यं शिवं सुन्दरम्**' की यही पहचान है। इस रासलीलामें काम अंशमात्र भी नहीं है। देव, गन्धर्व, किन्नर तथा नारद आदिने भी आकाशसे एवं श्रीमहादेवजीने स्वयं गोपी बनकर गोपीश्वर महादेवके रूपमें वंशीवटपर वृन्दावनमें रासलीलामें प्रवेशकर महारासको अपने तीनों नेत्रोंसे निहारा करते हैं। आज भी श्रीगोपीश्वर महादेवके रूपमें निहार रहे हैं।

आध्यात्मिक रहस्य

रासलीलाके प्रमुखतः तीन सिद्धान्त हैं—(१) रासलीलामें गोपीके शरीरके साथ कुछ लेना-देना नहीं है, (२) लौकिक काम नहीं है और (३) यह साधारण स्त्री-पुरुषका नहीं, जीव और ब्रह्मका मिलन है।

शुद्ध जीवका ब्रह्मके साथ विलास ही रास है। शुद्ध जीवका अर्थ है—मायाके आवरणसे रहित जीव। ऐसे जीवका ही ब्रह्मसे मिलन होता है। इसीलिये गोपियोंके साथ श्रीकृष्णने महारससे पूर्व 'चीरहरण'-लीला की थी। चीरहरण-लीलामें जब बाह्यावरण उपाधि नष्ट हुई तो रासलीला हुई। जीव और ब्रह्मका तादात्म्य हुआ।

जिस प्रकार वस्त्र देह ढँकता है, उसी प्रकार वासना और अज्ञान आत्माको ढक देते हैं और परमात्माको दूर करते हैं। जबतक अज्ञान और वासनाका आच्छादन दूर नहीं हो जाता, तबतक शिवसे मिलन नहीं हो पाता। वस्त्रहरण-लीला बुद्धिगत वासना, बुद्धिगत अज्ञानको उड़ा ले जानेकी लीला है। वासना और अज्ञानरूपी वस्त्र प्रभु-मिलनमें बाधक हैं। इन्द्रियोंके कामको हटाना सरल है, किंतु बुद्धिगत कामको निकाल बाहर करना बड़ा कठिन है। श्रीकृष्णने गोपियोंके वासनारूपी आवरणको हटा दिया। शुद्ध-बुद्ध गोपियोंके साथ महारास किया।

श्रीधरस्वामीके अनुसार पञ्चाध्यायी रासलीला निवृत्तिधर्मका परम फल है। रासलीलाके पाँच अध्याय पञ्च प्राणोंके सूचक प्रतीत होते हैं। पञ्च प्राणोंका ईश्वरके साथ रमण ही 'रास' है।

वेणुगीतकी बाँसुरी तो केवल पशु-पक्षियोंको ही नहीं सबको सुनायी देती है, किंतु रासलीलाकी बाँसुरी तो ईश्वर-मिलनातुर अधिकारी जीव गोपीको ही सुनायी देती है।

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।

रासलीला कोई साधारण स्त्रीकी नहीं, देह-मान भूली हुई, देहाध्याससे मुक्त स्त्रीकी कथा है। देहाध्यास नष्ट होनेपर प्रभुकी चिन्मयी लीलामें प्रवेश मिलता है।

अन्तर्मुख-दृष्टि करके जीव जब भगवान्के पास पहुँचता है, तब वे उससे पूछते हैं—'मेरे पास क्यों आया है?' गोपियोंसे भी पूछा—'अर्धरात्रिमें क्यों आयी हो?' पतिसेवा तथा संतानसेवा करो, रात्रिमें मिलन उचित नहीं। जीवको परमात्मा सहज नहीं

मिलते हैं। जीवको भ्रान्ति होती है। संसारमें रत रहो, वहीं तुमको सुख मिलेगा। मैं सुख नहीं, केवल आनन्द ही दे सकता हूँ।

ब्रह्म जीवको संसारमें लौटाता है, प्रलोभन देता है, माया-जालमें फँसाता है। रासलीलाके रसिक-शिरोमणि नटवर नागर श्रीकृष्णके इतना कहनेपर गोपियाँ कहती हैं—

पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमधो करवाम किं वा॥

(श्रीमद्भा० १०। २९। ३४)

'(हे गोविन्द!) हमारे पाँव आपके चरण-कमलोंको छोड़कर एक पग भी पीछे हटनेको तैयार नहीं हैं, हम व्रजको लौटें तो कैसे? और यदि हम लौटें भी तो मनके बिना वहाँ हम क्या करें? हमारा मन आपमें ही रमा हुआ है। हम भी आपके स्वरूपसे तदाकार होना चाहती हैं।'

प्रभुने सोचा कि इन गोपियोंका प्रेम सच्चा है। जीव शुद्ध भावसे मुझसे मिलने आया है तो उसे अपना लिया। श्रीकृष्णने एक साथ अनेक स्वरूप धारण किये। जितनी गोपियाँ थीं, उतने स्वरूप बना लिये और प्रत्येक गोपीके साथ एक-एक स्वरूप रखकर रासलीला आरम्भ किया।

हजारों जन्मोंका विरही जीव आज प्रभुके सम्मुख उपस्थित हो सका है, जीव आज ईश्वरमय हो गया। वे दोनों एक हो गये। इस मिलनसे जीव और ईश्वर दोनोंको अति आनन्द हुआ।

गोपियाँ श्रीकृष्णमय तथा भगवन्मय हो गयीं। सभी हाथोंसे हाथ मिलाकर नाचने लगीं। यह तो ब्रह्मसे जीवका मिलन हुआ है। इस प्रकार अद्वैत सिद्धान्तके आचार्य श्रीशुकदेवजीने रासलीलामें अद्वैतका वर्णन किया है।

महारास देखते-देखते श्रीब्रह्माजी सोचने लगे कि कृष्ण और गोपियाँ निष्काम तो हैं, फिर भी देहभान भूलकर इस प्रकार परायी नारीसे लीला करना शास्त्र-मर्यादाका उल्लंघन ही है। ब्रह्माजी सशंकित हुए। ब्रह्माजी यह नहीं जानते कि यह रासलीला धर्म नहीं धर्मका फल है। श्रीकृष्णने एक और खेल रचा—

श्रीकृष्णने सभी गोपियोंको अपना स्वरूप दे दिया। अब तो सर्वत्र कृष्ण-ही-कृष्ण दिखायी दे रहे थे। गोपियाँ थीं ही नहीं। सभी पीताम्बरधारी कृष्ण हैं और एक-दूसरेसे रास खेल रहे हैं।

श्रीब्रह्माजीने मान लिया कि यह स्त्री-पुरुषका मिलन नहीं है। श्रीकृष्ण गोपीरूप हो गये हैं। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

यह विजातीय तत्त्वका—स्त्रीत्व और पुरुषत्वका मिलन नहीं अंश और अंशीका मिलन है। आज गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं, प्रभुरूप बन गयीं। ब्रह्मरूप हो जानेके बाद जीवका स्वत्व कहाँ रहा?

रासलीला करनेका कारण

जब हम '**श्रीकृष्णस्तु भगवान् स्वयम्**' कहते हैं तब यह बात अपने-आप स्पष्ट हो जाती है कि कृष्ण कामी नहीं, भोगी नहीं, बल्कि निष्काम-कर्मके अधिष्ठाता एवं स्वयं योगेश्वर हैं। जिस प्रकार उन्होंने ब्रह्माजीका गर्व गो-वत्स-हरण-लीला करके, अग्निका गर्व दावानल-पान-लीला करके और इन्द्रका गर्व गोवर्धन-धारण-लीला करके नष्ट किया, उसी प्रकार उन्होंने रासलीला करके कामदेवका गर्व भी नष्ट किया।

रासलीला श्रीकृष्णकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा और गोपियोंके साथ की गयी लीला है। उनका परस्पर अपूर्व मिलन है।

रासलीला श्रीकृष्णका श्रीकृष्णसे तथा जीवका ब्रह्मसे मिलन है। '**एकोऽहं बहु स्याम्**' में लीलाका आध्यात्मिक पर्यवसान है। ब्रह्म ही ऋषियोंसे, गोपियोंसे, आह्लादिनी शक्तिसे, राधा-गोपियोंसे एवं जीवधारियोंसे मिल रहा है।

उपर्युक्त लीला-प्रसंगोंमें यह बात स्पष्ट हो जाती है कि रासलीला महालीला है, अद्वैतभावका व्यक्त स्वरूप है, अंशका अंशीमें परम मिलन है, भेदबुद्धिरूप लौकिक दृष्टिका निरसनकर अभेदबुद्धिरूप आध्यात्मिक यथार्थ तत्त्वका महिमामण्डित स्वरूप है। प्रेम, प्रेमी और प्रेमास्पदका अभिन्न प्रतिपादक है। अतः इस लीलाके रसांशका भी अनुभव हो जानेपर जीवको वह सायुज्य प्राप्त हो जाता है, जिसे जन्म-जन्मान्तरके प्रयाससे भी सिद्ध, मुनि, योगी और साधक प्राप्त नहीं कर पाते और अन्ततः इस रासलीलाके आनन्दातिरेकमें जीव शिव हो जाता है। यह तादात्म्य ही रासलीलाकी आध्यात्मिकता है, उसका रहस्य है।

लीलाधरकी दिव्य-लीला

(श्रीनारायणदासजी भक्तमाली)

ब्रह्ममयी मायामयी, युग विध एकहि सृष्टि।
ताको तैसी लखि परै, जाकी जैसी दृष्टि॥

यह अखिल विश्व उस सद्घन-चिद्घन-आनन्दघन, परम सत्य-स्वरूप सर्वेश्वर, सर्वनियामक, सर्वाधार परमात्मा प्रभुका लीला-चिद्-विलास वैभव है। उस अपरिमेय, अपरिसीम, निरुपम, एकमेवाद्वितीय सर्वशक्तिमान् लीलाधर प्रभुने अपनी निरंकुश इच्छासे—अपने सत्-संकल्पद्वारा अपनेको तथा अपनी शक्तिको अनेक रूपोंमें विभाजित करके अपने मनोरंजनके लिये यह अद्भुत खेल रचा रखा है। यथा—

'एकोऽहं बहु स्याम्'

अर्थात् मैं हूँ तो एक, किंतु अनेक रूपोंमें व्यक्त होकर एक खेल रचाऊँ ऐसी इच्छा की। प्रश्न उठता है कि उस आत्माराम, पूर्णकाम प्रभुके मनमें ऐसी इच्छा क्यों? इस **'क्यों'** का सही-सही उत्तर तो वह परमात्मा ही दे सकता है, किंतु यह तो स्पष्ट है कि इच्छा करने अथवा न करनेमें वह स्वतन्त्र है, क्योंकि वह स्वराट् है। उसका नाम है **'राम'**। उसका नाम राम क्यों? रामका क्या तात्पर्य? इस सम्बन्धमें सूरिजन कहते हैं कि—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् ६)

'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' आदि वचनोंसे उसका सहज ही रमण (क्रीडा)-परायण स्वभाव व्यक्त होता है। हाँ, इस रमणकी प्रक्रियाके लिये उसे अपनी अभिन्न स्वरूपभूताशक्ति अर्थात् अपनी अन्तरङ्गा प्रकृति श्रीकिशोरीजीका सहारा लेना पड़ता है, जिन्हें अनेक नाम एवं रूपोंमें जाना जाता है। यथा—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६। ८)

इन्हें अन्तरङ्गा प्रकृति, बहिरङ्गा प्रकृति तथा तटस्था प्रकृतिके नामसे भी जाना जाता है। अन्तरङ्गा प्रकृति तो साक्षात् श्रीजी हैं, जो श्रीदेवी, भूदेवी एवं लीलादेवी अथवा नीलादेवीके रूपसे प्रभुकी रुचिके अनुसार सेवा करती रहती हैं। अन्य दो प्रकृतियाँ अनेक नाम और भेदसे जानी जाती हैं। बहिरङ्गा और तटस्थाको श्रीमद्भगवद्गीतामें अपरा एवं परा प्रकृति अथवा क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ कहकर वर्णन किया गया है। यथा—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। इत्यादि।

लीला-रचना एवं क्रीडाके लिये उस प्रभुको अपनी प्रकृतिका सहयोग लेना इसलिये आवश्यक हुआ कि—**'स एकाकी न रमते'**। अतः—**'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया'** अथवा **'योगमायामुपाश्रितः'** इत्यादि वचन इस बातके प्रमाण हैं कि अपनी प्रकृतिको अपनी संगिनीके रूपमें प्रकटकर वह क्रीडा करता है।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता ७। ४)

इस श्लोकमें वर्णित अष्टधा (अपरा) प्रकृतिको तो अपने विश्वरूपी रंगमंचकी तैयारी-हेतु करण अर्थात् साधन रूपमें प्रयुक्त किया। फिर इसकी रचना करनेके लिये कर्त्री अथवा कारिणीके रूपमें अपनी योगमाया शक्तिको निर्देशन दिया, जो योगमाया प्रभुकी रुचिके अनुसार रचना करती-कराती हैं। तत्पश्चात् प्रभुने इसके संचालनार्थ—अर्थात् रचनार्थ, पालनार्थ एवं उपसंहारार्थ, अपनेको तीन रूपोंमें व्यक्त किया। इसके लिये उन्हें पुनः अपनी प्रकृतिके सत्त्व, रज एवं तम—इन तीन गुणोंको स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार लीला-मंच भी तैयार हो गया, मंच एवं मंच-लीलाकी व्यवस्था करनेवाले रचनाकार, निर्देशक एवं समेटनेवाले भी तैयार हो गये। अब आवश्यकता प्रतीत हुई इस मंचपर पधारकर, विभिन्न रूपोंमें उपस्थित होकर अपनी-अपनी भूमिका निभानेवाले पात्र-परिकरोंकी। एतदर्थ प्रभुने अपने संकल्पसे प्रकट किये हुए अपने अंशभूत जीवात्म चेतनधारियोंको इस विश्वरूपी रंगमंचपर उतारा—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।'

(गीता १५। ७)

काल, कर्म, गुण एवं स्वभाव आदिके घेरेमें डलवाकर प्रभुने इन सबकी नकेल—डोरी अपने हाथोंमें रखी। यथा—

सारद दारुनारि सम स्वामी। रामु सूत्रधर अंतरजामी॥

(रा० च० मा० १। १०५। ५)

इस प्रकार यह विश्वरूपी रंगमंच सज गया एवं लीला प्रारम्भ हो गयी। इसका दर्शक कौन होगा? मानसके इन शब्दोंमें प्रभु ही दर्शक होकर आनन्द लेने लगे। यथा—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥

(रा० च० मा० २। १२७। १)

यह लीला कबसे प्रारम्भ हुई है, कुछ पता नहीं। कबतक चलेगी, इसका भी कोई निर्णय नहीं। कभी प्रलय करके एक बार सारा खेल समेट भी लिया जाय, तो पुनः सृष्टि-रचनाका वही पुराना क्रम चालू हो जाता है—**'यथापूर्वमकल्पयत्'**।

वह नटवर विचित्र खिलाड़ी है। कभी तो मात्र दर्शक रहकर देखता है, कभी स्वयं भी कूद पड़ता है और खेलने लगता है। विश्वके सभी चेतन उसीके अंश हैं। कोई किसी भावमें भावित हैं, कोई किसी भावमें भावित हैं। खेल अधिकतर सख्य-भावभावित होकर ही विशेष रूपसे जँचता है; क्योंकि—

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥

(रा० च० मा० २। ७४। ६)

इस दिशामें एक तुकबंदी प्रस्तुत की जा रही है। सम्भव है, उसके खेलका एक नमूना होकर भा जाय। यह नमूना उसके सख्य-भावभावित खेलका है—

दुनिया के बाल सखा, आपसमें
खेल कोई भी जब खेलैं।
तब एक दूसरे से आनन्द लहैं-
सुख सरितामें हेलैं॥
वृद्धावस्था तक खेल-खेल,
जीवात्मा उर संतोष धरै।
जीवात्मा एक जीवात्मा को
किस सीमा तक आह्लाद भरै॥
यद्यपि जीवात्मा ईश्वरांश है,
सत्-चित् और आनन्द रूप।
पर ईश्वर की तुलना में है,
सर-वापी और तड़ाग कूप॥
परमात्मा है आनन्द सिन्धु,
तो बिन्दु मात्र यह जीव अहे।
एक बिन्दु, दूसरे बिन्दु सखा से,
बिन्दु मात्र आनन्द लहे॥
आनन्द सिन्धु प्रभु सखा रूप में,
मिल जाये तो क्या कहना?
उसके आगे फिर शेष नहीं,
रह जाता है कुछ भी लहना॥
वे जीव भाग्यशाली अतिशय,
जिनको प्रभु ने अपनाय लिये।
जो अन्तर्मुख हो शरण पड़े,
औ प्रभु ने हृदय लगाय लिये॥
जब जैसा खेल उसे भावे
निज सखन संग खेला करता।
जो उसका रुचि अनुवर्त्ती है,
उसके नखड़े झेला करता॥
जग उसका खेल तमाशा है,
वह नटवर अजब खेलाड़ी है।
उसके इस खेल तमाशे को,
क्या समझे मूढ़ अनाड़ी है॥
कबहूँ नभ में उड़ती पतंग,
कबहूँ भौंरा और चकडोरी।
कबहूँ तो आँख मिचौनी खेले,
कबहूँ करै माखन चोरी॥
कबहूँ तो स्वयं आँख मींचे,
औ छिपैं सखा, खोजै नटवर।
कबहूँ अनजान बना भटकै,
कबहूँ तो लेइ पकड़ि सत्वर॥
कबहूँ मन में आई, अब लौं-
ये छिपे और खोजा मैंने।
अब मैं छिप जाऊँ ये खोजैं,
पड़ जावैं लैने के दैने॥

बोला, तुम सभी नेत्र मूँदो,
इस बार छिपूँगा मैं प्यारे।
छिपने की ठौर बता भी दूँ,
भव-अटवी में खोजो सारे॥
ऐसा कह कर छिप गया छली,
सबही की आँखें मुँदवाईं।
व्यापक हो बैठा कण-कण में
ज्यों मेंहदी में लाली छाई॥
सरसों और तिल में तैल-
पुष्प में गन्ध, ईख में मधुराई।
घृत छिपा दुग्ध में, वृक्ष बीज में,
बर्फ माँहि शीतलताई॥
अब खोजि लेहु मुझको मित्रो,
मैं छिपा विश्व के कण-कण में।
धरती पाताल गगन जल में,
जड़ चेतन, कार्य अरु कारण में॥
श्रुति शास्त्र सन्त औ सद्गुरु-
युक्ति बताते मुझको पाने की।
आवश्यकता है, प्रियतम की-
वह प्रीति-रीति अपनाने की॥
अपनाकर प्यारी प्रीति रीति,
प्रह्लाद ने पाये खम्भे में।
कुत्ते में पाये नामदेव,
दुनिया रह गई अचम्भे में॥
गर्दभ में एकनाथ पाये,
मीरा ने विषके प्याले में।
नाहर में रत्नावती देवि,
कुन्ती ने विपति कसाले में॥
धन्ना ने श्याम शिला के माँहिं,
कीर्तन में गौर निताई ने।
श्रीशालिग्राम शिला में पाये,
प्रेमी सदन कसाई ने॥
तुलसी ने देखा चित्रकूट में,
सूरदास वृन्दावन में।
श्रीरामानुज ने विन्ध्य क्षेत्र-
वन बीहड़ के सूनेपन में॥
देखा कबीर ने याचक में,
कुंजन में रूप सनातन ने।
जित देखें उत में श्याम-श्याम,
व्रज मण्डल के विरही जन ने॥
सतयुग वालों ने ध्यान योग में,
त्रेता यज्ञ-विधानों में।
द्वापर में परिचर्या विधि में,
कलियुग में हरि-गुण-गानों में॥
पण्डित प्रवरों ने श्वान श्वपच-
पर्यन्त मूर्ख-विद्वानों में।
समदर्शी हो, बहुतों ने देखा,
देवल और मसानों में॥
श्रीभीष्म सुधन्वा चन्द्रहास-
हंसध्वज ने समरांगण में।
शुक सनकादिक ज्ञानी भक्तन ने
लखा विश्व के कण-कण में॥
इस तरह बना जिनसे जैसा,
जिन जिन की दृष्टि रही जैसी।
तहँ तहँ तिन तिन ने मोहन प्यारे-
की झाँकी देखी तैसी॥
इन पूर्व खोजियों में से जिनकी,
पद्धति जिसको जँच जावै।
वह वही रीति अपनावै, औ-
गुरु कृपया नटवर को पावै॥
यद्यपि श्रुति सन्त कहैं, उसको,
साधन से कोई पा न सके।
फिर भी साधन करिये जिससे,
आलस्य प्रमाद सता न सके॥
वह साधन-साध्य नहीं प्यारे,
बस कृपा-साध्य कहलाता है।
जिसको मिलना चाहे छलिया,
बस वही तो उसको पाता है।
पर इसका यह तात्पर्य नहीं है,
साधन से मुँह मोड़ै हम।

जो प्रीति रीति गुरुवर ने दी,
वह जान बूझकर छोड़ें हम॥
अति वृष्टि होय या अनावृष्टि,
खेती नहिं छोड़ें कास्तकार।
ऐसे ही लागे रहो, भजन-सुमिरन
में हो के तदाकार॥
तुम उसको खोज नहीं पावो,
वह तुम्हें खोजता आयेगा।
वह दीनबन्धु असहाय-सखा,
कबहूँ न कबहूँ अपनायेगा॥
बौना ऊँची डालीका फल,
नहिं उछल कूद से पा सकता।
पर, बौना उछल रहा भरसक,
साधन नहिं छोड़ा जा सकता॥
एक लम्बे व्यक्ति, दयालु-हृदय में,
करुणा सहज उमड़ आई।
दे दिया तोड़ फल, हाथ बढ़ा,
अब तो बौने की बनि आई॥
अब करिये जरा बिचार बन्धु,
फल मिला उसे किस साधन से।
लम्बे दयालु की करुणा से,
या उछल कूद आराधन से॥
दोनों हैं परमावश्यक, लम्बे की-
करुणा, लघु का प्रयास।
लम्बे की कृपा क्यों होती, यदि,
बौना बैठा होता निराश॥
बौना तो है यह क्षुद्र जीव,
लम्बे दयाल हरि-गुरु कृपाल।
हरि-गुरु की कृपा होय जब ही,
यह जीव होय तब ही निहाल॥
है यदपि स्वरूप साम्य इसमें,
फिर भी ये जीव है बाल सखा।
श्रुति शास्त्र सन्त बतलाते हैं,
ईश्वर इसका प्रतिपाल सखा॥
इस बाल सखा को कृपा अपेक्षित,
अहै सदा प्रतिपालक की।
प्रतिपालक ही कर सकता है,
साँची सम्हाल इस बालक की॥
ईश्वर तो सदा व्यग्र रहता है,
कृपा-प्रेम बरसाने को।
'नारायण' रह तैयार सदा,
अपने में पात्रता लाने को॥
है हृदय तुम्हारा पात्र,
रहे नहिं औंधा, शीघ्र सीधा कर लो।
प्रभु-कृपा-प्रेम के अमृत से,
रह सतत प्रयत्नशील भर लो॥
संशय का छिद्र न हो हिय में,
कचड़ा भी हो न वासना का।
जग-चिन्ता तज, रख ध्यान सदा,
सन्तत प्रभु की उपासना का॥

यह तो रही, इस विश्वकी त्रिगुणात्मिका मंच-लीला। इसके अतिरिक्त वह नटवर, नट-नागर अपने नित्य सिद्ध परिकरोंके साथ अपने त्रिपाद-विभूतिगत साकेत, गोलोक अथवा वैकुण्ठ संज्ञक त्रिगुणातीत धाममें अपनी नित्यलीलामें सतत संलग्न रहता है। जिस धामका संकेत देते हुए श्रीमद्भगवद्गीता (१५। १६)-में वह स्वयं कहता है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

जो एक बार उस त्रिगुणातीत भगवद्धाममें पहुँच जाय, उसके लिये उद्घोष है—'**न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते, न स पुनरावर्तते।**'

यह समग्र स्थिति उन्हें सहजमें प्राप्त होती है, जो प्रभुके लीला-चरित्रका सेवन किया करते हैं, यथा—

यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥
(रा० च० मा० १। १९२ छं० ४)

जो जीव उस प्रभुकी विश्व-मंचवाली त्रिगुणात्मिका लीलाको नहीं समझ पाते हैं, या इस लीलामें उसकी लीलाका दर्शन नहीं कर पाते हैं, उनके लिये वह नटवर किसी-न-किसी बहाने अवतार लेकर अपना दिव्य धामगत लीला-वैभव लेकर सपरिकर स्वयं भूतलपर उतर आता है—

नारायण बैकुण्ठ मँहँ बैठे करत विचार।
बनै बहानो अस कछू, लूँ भूतल अवतार॥
विविध रूप धरि के करूँ, लीला को विस्तार।
जीवन के उद्धार हित, होय बड़ो आधार॥
जीव हमारे अंश हैं, भटकत जगत मँझार।
गाय-गाय लीला ललित, उतरैं भव से पार॥

इस अवतार-लीला-क्रममें साधारण-से-साधारण प्राणी भी सहज भावसे अत्यन्त सरलतापूर्वक उसके श्रीचरणारविन्दोंको प्राप्त कर लेता है। यह प्रभुकी लीलाका ही चमत्कार है कि साधनहीना, परम दीना, पतिता, परित्यक्ता एवं प्रस्तरीभूता अहल्या अपने पूर्व रूपको प्राप्तकर भक्ति-जैसे चरम लाभसे लाभान्वित हो सकी—

प्रभु को पद पद्म पराग परत पल भर में,
पतिता परित्यक्ता पाथरी में प्राण परि गो।

यदि उसकी लीलामें यह चमत्कार नहीं होता तो पूतना-जैसी लोक-बालघ्नी, रुधिराशना राक्षसीको—'**लेभे गतिं धात्र्युचितां०**' का सौभाग्य सुलभ हो पाता? और श्रीशुकदेवजी सरीखे नैर्गुण्य-परिनिष्ठित आत्माराम महानुभाव, लीलागृहीतचेता होकर श्रीमद्भागवतके अध्ययन एवं गायनमें प्रवृत्त हो सकते थे? यही तो विशेषता है कि भगवान् शिव भी इस लीला-रसके आस्वादनार्थ विश्वनाथत्व छोड़कर हनुमद्रूप वानरत्व एवं स्वामित्व छोड़कर सेवकत्व स्वीकारते हैं। तथा—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

—इस मुग्ध झाँकीका मुग्धकारी दर्शन दिया करते हैं। श्रीदेवर्षि नारद एवं श्रीसनकादि कुमार भी—

दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहु गुन गानहिं॥
सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥

जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहि तजि ध्यान।
जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान॥

(रा० च० मा० ७। २७। २; ७। ४२। ५—८; ७। ४२)

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा० १। ७। १०)

जो लोग संसारकी नश्वरता, विश्वकी व्यापकता, आत्मा-परमात्माके स्वरूप, सत्त्व, महत्ता एवं भगवत्ता आदिका ज्ञान रखते हैं, उनके भी ज्ञान आदिकी चरम परिणति इस लीलारसके समास्वादनमें ही है—

सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला॥

(रा० च० मा० ७। २२। ५)

जय लीलाधर, जय जय लीला।
मुनि-जन-मनन्हि, विमोहन शीला॥

परब्रह्म-स्तुति

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन्पुनर्लीयते
भासा यस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्ज्वलं यन्महः।
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरुषम्॥

जिन परमात्मासे यह विश्व प्रकट होता है, जिनके द्वारा आनन्दपूर्वक संचालित होता है और अन्तमें जिनमें विलीन हो जाता है, जिनके प्रकाशसे यह संसार प्रकाशित है, जिनका तेजोमय स्वरूप स्वभावसे ही विशुद्ध आनन्दमय है, जो नित्य, शान्त, निष्क्रिय और द्वैतमयी अज्ञानान्धकारको हटाकर मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं तथा पुण्यात्मा जन जिन परम पुरुष भूतेशकी शरण ग्रहण करते हैं, उनकी मैं (सदा) स्तुति करता हूँ।

लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य एवं माधुर्यमयी लीलाएँ

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

आनन्द-चिन्मय-सदुज्ज्वल-विग्रह वासुदेव श्रीकृष्ण निरतिशय ऐश्वर्यशाली होनेके कारण स्वयं साक्षात् भगवान् हैं तथा क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम परमतत्त्व हैं और जगत्-लीलाके असाधारण कारण होनेसे लीलापुरुषोत्तम हैं। यह समस्त स्मृति-पुराण-साहित्यका सिद्धान्त है।

इस प्रसंगमें एक स्वाभाविक जिज्ञासा होती है कि 'लीला' क्या है?

[ऋषियोंने बुद्धिमान् सूतजीसे पूछा—] 'भगवान् अपनी योगमायासे स्वच्छन्द लीला करते हैं। आप उन श्रीहरिकी मङ्गलमयी अवतार-कथाओं (लीला)-का अब वर्णन कीजिये।'

इस 'लीला' शब्दके अर्थको प्रकारान्तरसे 'शब्दकल्पद्रुम', 'हलायुध' आदि कोशोंमें इस प्रकार बतलाया गया है—'अपने प्रियतमके साक्षात्कार आदिका सुख न मिलनेपर अपने चित्त-विनोदके लिये नायिकाद्वारा जो प्रियतमके वेश, हसित, भणित, गति, दृष्टि आदिकी अनुकृति होती है, उसे 'लीला' कहते हैं। 'लीला' का यह रूप श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायी-प्रकरणमें लीलापुरुषोत्तम व्रजराज भगवान् श्रीकृष्णके अन्तर्हित हो जानेपर व्रजबालाओंकी लीलामें स्पष्ट देखा जाता है।

यह लीला दो प्रकारकी होती है। एक नित्य-वास्तविक लीला और दूसरी उसपर आधारित व्यावहारिक लीला। पद्मपुराणके अनुसार इसे प्रकट और अप्रकटलीला कहते हैं—

'प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते'

अप्रकटलीलामें पुरुषोत्तम भगवान्के अपने परमधाममें अनन्त प्रकाश और अनन्त लीलाओंका निरन्तर विलास होता रहता है तथा प्रकटलीलामें उनके एक प्रकाश (अंश)-से संसारमें यदा-कदा उनके सपरिकर जन्मादिकी लीला होती है। सांसारिक प्रपञ्चमें प्रत्यक्ष होनेके कारण इसे प्रकटलीला कहते हैं। इसी लीलामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका आदि स्थानोंमें जाना-आना होता है। अप्रकटलीला वास्तविक, नित्य, आद्यलीला है और प्रकटलीला व्यावहारिक तथा सामयिक लीला है।

ऐश्वर्य तथा माधुर्यके आधारपर 'लीला' का एक और भेद माना गया है—ऐश्वर्य-लीला एवं माधुर्य-लीला। ऐश्वर्य-लीला साधनरूप है तथा माधुर्य-लीला साध्यरूप; जो आगेके उदाहरणोंसे स्पष्ट होता है।

ईश्वरीय सांसारिक लीलाके सम्बन्धमें एक यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर जब पूर्णकाम और आप्तकाम हैं तो उन्हें कुछ भी प्राप्तव्य नहीं है, अतः उन्हें किसी कार्यका कोई प्रयोजन नहीं है। फिर भी वे जगत्की सृष्टि करते हैं तो इस सृष्टिका कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होना चाहिये। सारांश यह कि प्रयोजन-सापेक्ष सृष्टि माननेपर सृष्टिसे पूर्व ईश्वरमें पूर्णता सिद्ध नहीं होती और प्रयोजन-निरपेक्ष सृष्टि-लीला सम्भव नहीं। इस शंकाका समाधान महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने 'ब्रह्मसूत्र' के द्वितीय अध्यायमें '**न प्रयोजनत्वात्**' तथा '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' इन सूत्रोंके द्वारा किया है। तात्पर्य यह है कि जैसे लोकमें प्रमत्त व्यक्ति केवल सुखोद्रेकसे प्रयोजन-निरपेक्ष नृत्त, गान आदि लीलाएँ करता है, वैसे ही परमेश्वर भक्तजनानुरञ्जनार्थ सांसारिक लीलाएँ करते हैं। अतएव नारायणसंहितामें कहा गया है—

सृष्ट्यादिकं हरिर्नैव प्रयोजनमपेक्ष्य तु।
कुरुते केवलानन्दाद् यथा मत्तस्य नर्तनम्॥
पूर्णानन्दस्य तस्येह प्रयोजनमतिः कुतः।
मुक्ता अप्याप्तकामाः स्युः किमु तस्याखिलात्मनः॥

'माण्डूक्योपनिषद्' में भी ऐसे ही बतलाया गया है कि आप्तकाम परमेश्वर किसी इच्छापूर्तिके लिये सृष्टि नहीं करते, यह तो उनका शुद्ध स्वभावमात्र है—

देवस्यैष स्वभावोऽयमाप्तकामस्य का स्पृहा।

इसी प्रसंगमें एक और शंका होती है—ईश्वर जब सभी प्राणियोंके लिये समान है[1], तब इनकी सृष्टिमें विषमता क्यों देखी जाती है? इसका भी समाधान महर्षिने वहीं ब्रह्मसूत्रमें विस्तारके साथ किया है, जिसका सारांश है कि प्राणियोंके

१-समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। (गीता ९। २९)

अनादिकालीन अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही उनकी सृष्टि होती है, अतः ईश्वरमें वैषम्य, नैर्घृण्य-दोष नहीं है।[१] प्राणियोंके ये अनादि कर्म भी ईश्वराधीन ही हैं, इसलिये उनके सर्व-कर्तृत्वमें कोई आपत्ति नहीं है।[२]

इस उपर्युक्त विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि परम कारुणिक भगवान् केवल भक्तानुग्रहके लिये ही ऐश्वर्य एवं माधुर्यमय लीलाएँ जगत्में किया करते हैं। इन द्विविध लीलाओंमें ऐश्वर्य-लीलाद्वारा भगवान् भक्तोंके कष्टोंको दूर करते हैं। जब कभी भक्तोंको उनकी भगवत्तामें संदेह हो जाता है, तब लीलाद्वारा अपने ऐश्वर्यको प्रदर्शितकर उनके संदेहको मिटाते हैं। जब कभी भक्तके मनमें मिथ्याभिमान होने लगता है, उस समय उसके कल्याणके लिये अपना ऐश्वर्य दिखाकर उसके अहंकारको दूर करते हैं। किंतु अपनी माधुर्य-लीलामें भगवान् अपने अनन्य भक्तोंपर निरतिशय आनन्दामृतकी वृष्टि करते हैं। इस लीलामें न तो किसी प्रकारका भय है, न संदेह है और न ही अभिमानका लेश है। इसी माधुर्य-लीलामें भक्तोंको परम सिद्धि मिलती है। उदाहरणके लिये—

अर्जुनके मनमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐश्वर्यके प्रति कुछ संदेह हो गया था। भगवान्ने उन्हें दिव्य दृष्टि देकर विश्वरूपका दर्शन कराया। जिसे देखकर अर्जुनका मन भयसे अति व्याकुल हो गया[३], शरीर काँपने लगा[४] और सख्यभावसे पूर्वमें किये गये व्यवहारोंसे उन्हें पश्चात्ताप होने लगा। किंतु अनन्यशरण होकर ज्यों ही उन्होंने भगवान्के मधुर सौम्य-रूपका दर्शन किया, त्यों ही उनको अपूर्व आनन्दकी अनुभूति होने लगी।

भक्त प्रह्लादकी रक्षाके लिये भगवान्ने नृसिंहकी ऐश्वर्य-लीला की थी, वहाँ दुर्दान्त हिरण्यकशिपुका वध तो हुआ था; किंतु वातावरण क्रोधमय हो गया था। फिर भी भक्त प्रह्लादके द्वारा स्तुति करनेपर भक्तवत्सल भगवान्का मधुर वात्सल्यभाव उमड़ पड़ा था। उस माधुर्य-लीलामें आह्लाद-ही-आह्लाद था।

यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बाल-लीलाओंमें अनेक बार अपने ऐश्वर्यका प्रदर्शन किया था। मृद्-भक्षणके व्याजसे अपने मुखमें समस्त विश्वको दिखलाकर उन्होंने माताको आश्चर्यचकित कर दिया था। उलूखल-बन्धन-लीलामें रस्सियोंका दो अंगुल घटते ही रहना माताके लिये आश्चर्यजनक घटना थी। गोकुलसे मथुरा आनेके समय अक्रूरजी भगवान् श्रीकृष्णको यमुना-जलमें और स्थलपर एक ही क्षणमें देखकर चकित थे। इस तरह भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-लीलाओंके अनेक प्रसंग आते हैं, जिनमें भक्तोंको उनकी 'भगवत्ता' का ज्ञान हुआ है, जो भक्तोंकी परम सिद्धिमें साधनका काम करता है। परंतु उस पुरुषोत्तमकी माधुर्य-लीलामें अनन्य-शरण भक्त परमानन्दको प्राप्त करता है। इस लीलामें भक्तके लिये केवल आनन्द-ही-आनन्द है।

सांसारिक माधुर्य-लीलाका रासलीला चूडान्त निदर्शन है। अनन्यशरण होनेके बाद अर्जुनको इस माधुर्य-लीलाका दर्शन हुआ था। अतएव कहा जाता है कि पुरुषोत्तमकी दोनों ही लीलाएँ अपूर्व होनेपर भी ऐश्वर्य-लीला साधनरूप है और माधुर्य-लीला स्वयं सिद्धि-रूप है।

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्। कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥

(श्वेता० ५। १४)

श्रद्धा और भक्तिके भावसे प्राप्त होने योग्य, आश्रयरहित कहे जानेवाले, (तथा) जगत्की उत्पत्ति और संहार करनेवाले, कल्याणस्वरूप, (तथा) सोलह कलाओंकी रचना करनेवाले परमदेव परमेश्वरको, जो साधक जान लेते हैं, वे शरीरको (सदाके लिये) त्याग देते हैं—जन्म-मृत्युके चक्करसे छूट जाते हैं।

१-वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति। (ब्रह्मसूत्र २। ३४)

२-द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च। यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया॥

३-गीता (११। ४५), ४-गीता (११। ३५)

विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधार—परब्रह्म परमात्मा

(प्रो० श्रीसिद्धेश्वरप्रसादजी, राज्यपाल—त्रिपुरा)

विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाका सूत्रधार, परब्रह्म परमेश्वरके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? परब्रह्म परमेश्वर ही सृष्टिके निमित्त और उपादान कारण हैं (ब्रह्मसूत्र १-२ तथा २। १। ११। ३३)। अत: विश्व-ब्रह्माण्ड परब्रह्म परमेश्वरका ही '**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव**' (कठोपनिषद् २। २। ९) है। ऐसी स्थितिमें '**ईशावास्यमिदꣳ सर्वं०** (ईश० १)-के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

सृष्टिके एकमात्र निमित्त और उपादान कारणको '**रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव**'के कारण ही लीलाके सूत्रधारकी संज्ञा दी गयी है। साधारण बुद्धि यह समझ नहीं पाती कि विश्व-ब्रह्माण्ड उसी एकका प्रतिरूप है। 'भगवल्लीला' शब्दमें परब्रह्म परमेश्वरके लीलारत होनेका भाव निहित है। लीलाका सामान्य अर्थ है क्रीडा। इस अर्थमें क्रीडा मनबहलाव है। क्या इसी सामान्य अर्थमें भगवल्लीला क्रीडा है? स्पष्ट उत्तर है—नहीं। 'भगवल्लीला' शब्दमें सृष्टि-प्रक्रियाका गूढार्थ एवं उसका सात्त्विक स्वरूप निहित है। सृष्टि-प्रक्रियाके इस सात्त्विक स्वरूपकी अनिर्वचनीयताको 'भगवल्लीला' शब्दसे व्यक्त किया जाता है; क्योंकि यह तत्त्व इतना गूढ है कि सामान्य गणितका नियम यहाँ अप्रासंगिक हो जाता है—'**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते**'— पूर्णमेंसे पूर्णको निकाल लें तब भी पूर्ण ही शेष रहता है। जीव-विज्ञान इसी अनिर्वचनीय नियमसे शासित होते हैं, उस निर्जीव भौतिक विज्ञानके गणितके नियमसे नहीं, जिसमें पूरेसे पूरा निकाल लेनेपर शेष रहता है शून्य।

प्रचलित धारणा है कि भगवल्लीलाका सम्बन्ध सगुण-साकार ईश्वरसे है, निर्गुण-निराकार ब्रह्मसे नहीं। यह न केवल अतिशयोक्तिपूर्ण है, बल्कि सनातन भारतीय परम्पराकी मान्यताके भी विपरीत है। हाँ, यह अवश्य है कि सगुण-साकार ईश्वरकी लीलाका स्वरूप निर्गुण-निराकार ब्रह्मकी लीलाके स्वरूपसे भिन्न होता है। वेदके देवतावाचक सभी शब्द, ब्रह्म, विष्णु तथा नारायणके ही वाचक हैं, जो इस धारणाको पुष्ट करते हैं कि सगुण और साकार तथा निर्गुण और निराकारका अन्तर्भाव परस्पर अभेद सम्मत है।

ऋग्वेदका नासदीय सूक्त (१०।१२९।१—७) विश्वसाहित्यमें लीला-भावकी पूर्ण दार्शनिक अभिव्यक्ति है, जिसमें अव्यक्तके व्यक्त, व्यक्तके अव्यक्त और इन दोनोंसे परे अनेक अनिर्वचनीय स्वरूपोंको अत्यन्त कवित्वपूर्ण रूपमें ऋषिने देखा है। यह सृष्टिके आरम्भके पूर्वकी उस स्थितिकी दृष्टि है जब न असद् (अव्यक्त) था, न सद् (व्यक्त), न मृत्यु थी, न अमृत था, न रात्रि थी, न दिन था। उस निर्वात-स्थितिमें भी वह एक अकेला स्वत: साँस ले रहा था।

इस सूक्तके अन्तिम मन्त्रका उत्तरार्ध मनुष्यकी उस परम जिज्ञासाको व्यक्त करता है, जो सृष्टिकी इस अनिर्वचनीय लीलामें अनादि कालसे रमती आ रही है। यह उत्कट, उद्दाम, उदात्त और विराट् जिज्ञासा वस्तुत: दर्शनीय है, जो यह प्रश्न उठाती है कि यह सृष्टि जिससे पैदा हुई, जो इसे धारण करता है, परम व्योममें स्थित जो इसका अध्यक्ष है, वह भी इसका रहस्य जानता है अथवा नहीं, इसे कौन जानता है? (**'वेद यदि वा न वेद'**) सृष्टि-रहस्यसे अभिभूत होकर आइन्स्टीनने कहा था कि 'हमारी सर्वाधिक प्रीतिकर अनुभूति रहस्यमय होती है। यही भाव कला और विज्ञानका मूल है।'

लीलामें आनन्दका, भगवल्लीलामें विराट्के विस्मयकारी रूप-दर्शनके आनन्दका भाव निहित होता है। भगवल्लीला आनन्दका, रास-लीलाका, उत्स क्यों है? क्योंकि सृष्टिका आरम्भ ही होता है इच्छासे—'**कामस्तदग्रे समवर्तताधि०** (ऋग्वेद १०। १२९। ४) अर्थात् प्रजापतिके मनमें काम-भावना—सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई। तैत्तिरीय उपनिषद् (२। ६)-में कहा गया है—'**सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति**'। अर्थात् उस (परमात्मा)-ने कामना की कि मैं बहुत हो जाऊँ। यह विस्तार कैसे सम्भव हुआ? '**स तपोऽतप्यत**' अर्थात् उसने तप करके यह सारा जगत् उत्पन्न किया। ऐतरेयोपनिषद् (१। १)-में एकके मनमें बहुत होनेकी कामना उत्पन्न होनेकी बात कही गयी है। पर साथ ही दो और बातें भी हैं। उसने एकसे बहुत होनेकी इच्छा क्यों की? क्योंकि वह एक अकेला था—'**आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्**'। दूसरा यह कि वहाँ '**अकामयत**' के स्थानपर '**ईक्षत**' शब्दका प्रयोग किया गया है। आत्माने कामना की, विचार किया। स्पष्ट है, एकमें दूसरा भाव भी समाविष्ट है।

आत्माकी इस सृजन-प्रक्रियाके सम्बन्धमें मुण्डकोपनिषद् (१। १। ७)-में कहा गया है—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि
तथाक्षरात् सम्भवतीह विश्वम्॥

अर्थात् जिस प्रकार मकड़ी जालेको बनाती है और फिर निगल जाती है, जिस प्रकार पृथ्वीमें नाना प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं और जिस प्रकार जीवित पुरुषसे केश और रोयें निकलते हैं, उसी प्रकार अक्षर-ब्रह्मसे यह विश्व उत्पन्न होता है।

लीला-प्रसंगमें ब्रह्मके मूर्त एवं अमूर्त-रूपको लेकर शंका की जाती है। इस सम्बन्धमें बृहदारण्यकोपनिषद् (२। ३। १)-में कहा गया है—

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च।'

अर्थात् ब्रह्मके दो रूप हैं—'मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और यत् (चर) तथा सत् और त्यत्।' शंकराचार्यने अपने भाष्यमें अन्य (मर्त्य-अमृत आदि)-को मूर्त और अमूर्तका विशेषण कहा है।

तपके बिना सृष्टि सम्भव नहीं है। इसीलिये कहा गया है—**'स तपोऽतप्यत'** (तैत्तिरीय० २। ६)। ब्रह्मने केवल कामना ही नहीं की, उस कामनाकी सिद्धिके लिये तप किया। तप क्या है? तैत्तिरीय उपनिषद् (२। ६)-के अनुसार **'ज्ञानमयं तपः'**—तप ज्ञान-रूप है। इसीलिये आचार्यने कहा है—**'तप इति ज्ञानमुच्यते।'** अर्थात् 'तप' शब्दसे यहाँ 'ज्ञान' कहा जाता है। इस ज्ञानका विस्मरण हो जानेपर लीला-भाव मोह-जाल हो जाता है।

मुण्डकोपनिषद् (१। २। ८) सृष्टिके क्रमको इस रूपमें स्पष्ट करता है—

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम्॥

अर्थात् ब्रह्म तपसे वृद्धिको प्राप्त होता है, उससे अन्न उत्पन्न होता है, अन्नसे प्राण, मन, सत्य, समस्त लोक और कर्मोंसे अमृत उत्पन्न होता है।

यह अव्यक्त व्यक्त होने, उसके इन्द्रियातीतसे इन्द्रियगम्य होने और लीलाकी भाषामें कहें तो उसके अवतरणकी प्रक्रियाकी दार्शनिक-वैज्ञानिक स्थितिका निरूपण है—इस निर्गुण-निराकारके सगुण-साकार अवतरण-प्रक्रियाकी अभिव्यक्ति है।

निर्गुण-निराकार ब्रह्मका जब सगुण-साकार-रूपमें अवतरण होता है तो उस नर-चरितको देखकर बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है—

'बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥'

विकल नर-रूपमें रामको देखकर सतीके मनमें भ्रम पैदा हुआ—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

पर शिवको कोई भ्रम नहीं हुआ—

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥

राम ब्रह्म हैं, माँ कौसल्याको यह जन्मके समय ही प्रतीत हो जाता है—

करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता॥

तुलसीदासकी इन पंक्तियोंमें अवतार-तत्त्व, भक्ति-तत्त्व, लीला-तत्त्व और वात्सल्य-भाव सबका समावेश है। राम कौसल्या-सुत तो हैं, पर हैं परब्रह्म परमेश्वर ही। कृष्णकी बाल-लीलाका वर्णन करनेवाली सूरदासकी इन पंक्तियोंमें भी इसी भावको चित्रांकित किया गया है—

घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए॥

'स्पष्ट है, अवतार-भावके आधारके बिना भगवल्लीला-भाव सम्भव नहीं है। इसीलिये तुलसीदासजी बार-बार स्मरण दिखाते हैं—

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

रामावतारके बारेमें तुलसीदासजीने जो कुछ यहाँ कहा है; कृष्णावतार या अन्य अवतारोंके बारेमें भी इसी भावसे अन्यत्र भी ऐसी ही बातें कही गयी हैं।

'भागवत-धर्म-सार' के मराठी संस्करणकी प्रस्तावनामें भगवत्-लीला-कथाके सम्बन्धमें भक्तिप्रवणता एवं लीलातत्त्वसे ओतप्रोत ग्रन्थ श्रीमद्भागवतके विषयमें संत विनोबाने लिखा है—'भागवतने जिसके मनको पकड़ न लिया हो, जिसके चित्तको रिझाया न हो, रमाया न हो और शान्त न किया हो, ऐसा कौन भक्त इस जाग्रत् भारतमें हुआ होगा?

भक्तके लिये सर्वस्व मुक्ति नहीं भक्ति है। नारदभक्तिसूत्रमें भक्तिको 'परमप्रेमरूपा' एवं 'अमृतस्वरूपा' कहा गया है। कैसी होती है ऐसी भक्ति? नारद कहते हैं—'**यथा व्रज-गोपिकानाम्**'। गोपिकाओंको कृष्णकी भक्तिके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये—न मुक्ति, न युक्ति और न ज्ञान। कृष्णकी भक्तिमें वे ऐसी रमीं कि स्वयं 'परमप्रेमरूपा' हो गयीं।

नवधा भक्ति वस्तुतः भगवल्लीलाका विभिन्न रूपोंमें श्रवण-कीर्तन है। नाम-रूपका भेद भक्तकी सीमाके कारण है। घट-घटमें वास करनेवाले भगवान् भक्तके बाह्याचारको नहीं, उसके अन्तर्मनके समर्पण-भावके भूखे होते हैं। विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाके सूत्रधारके सामने आत्म-वञ्चनाके लिये कोई स्थान नहीं होता, जैसे प्रकाशके सामने अन्धकारका।

भक्त अपने इष्टकी भक्ति ईश्वरके रूपमें करता है, वह इष्ट ही उसकी दृष्टिमें सर्वस्व-सर्वोपरि है, लीलाका सूत्रधार है। इसका मूलाधार यह वैदिक दृष्टि है—'**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।**' (ऋग्वेद १। १६४। ४६)। उसके नामका कोई अन्त है क्या? विष्णुसहस्रनामकी सीमाके भी वह परे है, लक्ष या कोटिके भी परे। वह तो अनन्त है।

भक्तिमें भेदके लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। रामने बालिका वध किया है, इस कारण जब रावणने अंगदके मनमें भेद पैदा करना चाहा तो अंगदने उत्तर दिया—

सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाकें॥

भक्तके लिये तो सारी सृष्टि प्रभुमय हो जाती है।

सारांश यह कि भारतीय जीवन-दृष्टि भगवल्लीला-दृष्टि है। वेदसे लेकर आजतक यह जीवन-दृष्टि निर्बाध विविध रूपोंमें विकसित होती चली आ रही है। अद्वैत भक्ति-भावके बिना इस लीला-तत्त्वको हृदयंगम नहीं किया जा सकता। इसके अभावके कारण ही कभी भक्तिके लिये द्वैताद्वैतका सहारा लिया जाता है, कभी द्वैतका, कभी किसी औरका। वस्तुतः भगवल्लीला विश्व-ब्रह्माण्ड-लीलाका ही भाव-रूप है, परमप्रेम-रूप होनेके कारण ही यह अमृतस्वरूपा भी है, अतः आनन्दरूपा और अखण्ड ज्योतिरूपा भी है।

इसका सूत्रधार सृष्टिके कण-कणमें व्याप्त है, हम सबके हृदयमें समाया हुआ है। जब हमारा चित्त निर्मल होगा, तभी वह हमें दिखायी देगा, फिर इसकी यह लीला भी हमें रसमय प्रतीत होगी।

भगवान्‌की द्वैध-लीला

(डॉ० श्रीभुवनेश्वरप्रसादजी वर्मा 'कमल', एम्० ए०, डी० लिट्०)

भगवान् दो रूपोंमें अपनी लीलाएँ प्रकट करते हैं—एक निराकार और निर्गुण-रूपमें तथा दूसरा सगुण और साकार-रूपमें। इसलिये उनकी लीलाएँ द्वैध—दो प्रकारकी हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद् (२। ६)-में आया है कि '**सोऽकामयत। बहु स्यां प्रजायेयेति**'। तात्पर्य यह कि उस परमेश्वरने विचार किया कि मैं प्रकट हो जाऊँ (अनेक नाम-रूप-धारण करके बहुत हो जाऊँ), इस स्थितिमें एक ही परमात्मा अनेक नाम-रूपोंमें होनेकी भावनासे प्रेरित होकर जब सृष्टिकी रचना करते हैं; क्षिति, जल, पावक, गगन और समीरका निर्माण करते हैं; अनन्त अन्तरिक्षमें सूर्य-चन्द्रादि विभिन्न ग्रहों और नक्षत्रोंको अपनी कक्षाओंमें घूमनेका विधानं करते हैं; पृथ्वी और अन्य लोकोंपर विविध प्राणियोंका सर्जन करते हैं तथा उन्हें कर्मानुसार सुख-दुःख भोगनेको विवश करते हैं, तब हम उनकी इन लीलाओंको निर्गुण-लीलाके नामसे अभिहित करते हैं।

गीता (१०। ८)-में भगवान् श्रीकृष्णने स्पष्ट शब्दोंमें उद्घोष किया है—'**अहं सर्वस्व प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।**' अर्थात् मैं वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्तिका कारण हूँ और मेरेसे ही सारा जगत् चेष्टा करता है। पुनः उन्होंने कहा है—'**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।**' अर्थात् हे अर्जुन! तुम मुझे ही सम्पूर्ण प्राणियोंका सनातन बीज समझो।

दूसरी ओर कठोपनिषद् कहती है—'**एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति** (२। २। १२)। अर्थात् वह ब्रह्म सर्वभूतोंके अन्तरात्माके रूपमें सम्पूर्ण विश्वमें एक है और एक रूपको अनेक रूपोंमें प्रकट करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् (३। १)-का कहना है—'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।**' अर्थात् जिससे ये सारे भूत उत्पन्न होते हैं, जिससे ये सारे उद्भूत

प्राणी जीवन धारण करते हैं और पुनः अन्तमें जिसमें सब लीन हो जाते हैं—वही जानने योग्य है, वही ब्रह्म है। वाल्मीकिरामायणमें ब्रह्माका वचन है—'**कर्ता सर्वस्व लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानविदां विभुः**' (युद्धकाण्ड ११७। ६)। अर्थात् हे ईश्वर! आप ही सम्पूर्ण लोकोंके कर्ता हैं। श्रीमद्भागवत (४। ७। ५०)-में भगवान् कहते हैं—'**अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।**' अर्थात् मैं ही सम्पूर्ण सृष्टिकी रचना करता हूँ। मैं ही उसका मूल कारण हूँ। तथा श्रीमद्भागवत (११। ३। ३५)-में '**स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य**' कहकर इसी भावनाकी पुष्टि की गयी है कि भगवान् नारायण ही सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं और यह सारा दृश्य जगत् उन्हीं अलख अगोचर-परब्रह्मका लीला-विस्तार है।

यह अनन्त ब्रह्माण्ड उसी एक अगम-अगोचर अलख निरंजन परब्रह्म परमात्माका खेल ही तो है। इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका खेल ही उसकी निर्गुण-लीला है। जैसे बालक मिट्टीके घरौंदेको बनाता है, कुछ क्षण उसमें रहनेका अभिनय करता है और अन्तमें उसे ध्वस्त कर चल देता है। उसी प्रकार निर्गुण-निराकार ब्रह्म भी इस अनन्त सृष्टिकी रचना करता, उसका पालन करता और अन्तमें उसका संहारकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। यही उसकी क्रीडा है। यही उसका अभिनय है। यही उसका मनोविनोद है। यही उसकी निर्गुण-लीला है। जिसमें हम उसकी लीलाको तो देखते हैं, परंतु उस लीलाकर्ताको नहीं देखते। तभी तो गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहुँ न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रू बिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा॥

यहाँ स्पष्ट है कि इस सम्पूर्ण सृष्टिका लीला-विस्तार कठपुतलीके नृत्यके समान है, जिसमें हम कठपुतलियोंको नाचते-गाते तो देखते हैं, पर उसके सूत्रधारको नहीं देखते। हमारा यह अलख-अगोचर-ब्रह्म उसी सूत्रधारकी तरह नेपथ्यमें रहकर ही सूर्य, चन्द्र और तारोंको नचाता है, जिसे हम नहीं देख पाते। इसीलिये उसकी यह लीला निर्गुण-लीला है। भगवान्की इन्हीं निर्गुण-लीलाओंपर विस्मय-विमुग्ध होकर गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकामें लिखा—

केसव! कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र हरि! समुझि मनहिं मन रहिये॥

भगवान्की वे ही निर्गुण-लीलाएँ अतर्क्य हैं, अगम्य हैं, विचित्र हैं और मन-वाणीके लिये परम अगोचर हैं।

भगवान्के निर्गुण-स्वरूपको समझना और उनकी निर्गुण-लीलाओंका वर्णन करना आसान नहीं। जैसे निराकार भगवान्का स्वरूप अग्राह्य है, उसी प्रकार उनकी निर्गुण-लीलाएँ वर्णनातीत हैं। ऐसी स्थितिमें स्वभावतः भक्तप्रवर सूरदासकी बुद्धि इन निर्गुण-लीलाओंको देखकर चकरा गयी थी, इन लीलाओंके सूत्रधारका अता-पता नहीं चल रहा था, तभी उन्होंने बड़ी विवशताके साथ भगवान्के सगुण-स्वरूप और उनकी सगुण-लीलाओंका गान करनेका निश्चय किया था—

रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातें सूर सगुन-पद गावै॥

जैसे निर्गुण-निराकार परब्रह्म परमात्माकी निर्गुण-लीलाओंका वर्णन करनेमें सूरदासजीके मन-बुद्धि स्तम्भित हो गये, ठीक उसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास तथा नंददास प्रभृति भक्त कवियोंने भगवान्की निर्गुण-निराकार लीलाओंका वर्णन करनेमें अपनेको असमर्थ पाकर सगुण परमात्माकी लीलाओंके गानको ही अपनी प्रतिभा और लेखनीका उपजीव्य बनाया। यह लीला-वर्णन अगम नहीं, सुगम है—कविके लिये भी और भगवान्की लीलाओंकी रसमाधुरीका पान करनेवाले भक्तोंके लिये भी।

जो प्रभु त्रिगुणातीत हैं, जो मन और वाणीसे अगम रहते हुए भी अपनी इच्छासे ही भिन्न-भिन्न युगोंमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें अवतार धारणकर प्राकृत नरके अनुरूप लीलाएँ किया करते हैं, उन्हें ही हम सगुण-लीलाके नामसे जानते हैं।

परंतु भगवान्की इन सगुण-लीलाओंको देखकर समझना सबके वशकी बात नहीं। माता सतीकी बुद्धि भी भगवान् रामकी प्राकृत नर-लीलाओंको देखकर भ्रमित हो गयी थी और उन्होंने भगवान् शंकरजीसे प्रश्न कर दिया था—

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(रा० च० मा० १। ५०)

गोस्वामी तुलसीदासजी स्पष्टतः भगवान्की इन लीलाओंको दुरूह और अतर्क्य मानते हैं—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी।

—तथापि यह सत्य है कि जिसे हम अलख, निर्गुण-निराकार परब्रह्म कहते हैं, वे प्रेम-भक्तिके वशीभूत होकर विविध अवसरोंपर अवतार धारण करते हैं और अपनी सगुण-लीलाओंसे भक्तोंको विस्मय-विमुग्ध करते रहते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

भगवान्‌की सगुण-लीलाओंको देखकर समझ लेना अत्यन्त दुरूह है। इसी कटु सत्यका उद्‌घोष गोस्वामीजी करते हैं—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

भगवान्‌ने जितने भी अवतार धारण किये और विभिन्न अवतारोंमें जो-जो लीलाएँ कीं, वे सारी लीलाएँ दर्शकोंको कौतूहलमें डाल देती हैं। सगुण-रूपधारी नृसिंह भगवान् जब खम्भा फाड़कर प्रकट होते हैं तो हिरण्यकशिपु आश्चर्यचकित हो जाता है। उसे विश्वास नहीं होता कि वह जो कुछ देख रहा है, वह सच है। माता कौसल्या यह देखकर विस्मित हो जाती हैं कि मैंने तो अपने लल्लाको पलनापर पौढ़ा दिया था, फिर यहाँ इष्टदेवका भोग कौन लगा रहा है—

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।

माता कौसल्या उसे पकड़नेके लिये दौड़ती हैं, जिसका अन्त वेद भी नहीं पा सका—

निगम नेति सिव अंत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा॥

जिस ब्रह्मकी साँसोंसे वेदकी उत्पत्ति हुई, वह विद्याध्ययनके लिये गुरुगृह जाता है—

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

भगवान् राम जब सीताकी खोजमें भटकते हैं, तब माता पार्वतीको आश्चर्य होता है—

बिष्नु जो सुर हित नरतनु धारी।
× × ×
खोजइ सो कि अग्य इव नारी।

इसी प्रकार लोगोंको यह देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि अल्पवयस्क बालक राम ताड़का-जैसी राक्षसीका वध कर सकता है और एक दुधमुँहा बालक कृष्ण दूध पीनेके बहाने विशालकाय पूतनाका वध कर सकता है। इस बातपर भी सहसा विश्वास नहीं होता कि एक अल्पवय किशोर कृष्ण अपनी मात्र कनिष्ठिका अँगुलीपर विशाल गोवर्धन पर्वतको उठा सकता है। भगवान्‌की सगुण-लीलाओंको समझनेमें यही दुरूहता है।

सामान्य जनोंके लिये तो ये लीलाएँ अति विचित्र हैं ही—***'अति बिचित्र रघुपति चरित'०*** (रा० च० मा० १। ४९)। परंतु इन लीलाओंको देखकर विमल विचारवाले विज्ञजन आश्चर्य नहीं मानते—

सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार॥

श्रीरामने भी शिवलीला की

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

शिव कौन? जो विश्व-ब्रह्माण्डके लिये कल्याणकारी है, वही शिव। अपने सर्वविदित गुण और लक्षणके कारण उनका नाम गुणवाचक अथवा कल्याणकारी गुणोंका बोधक बन गया है। परम त्यागी और सतत तपस्वी रहते हुए सर्व कल्याणकारी—ऐसी उनकी प्रकृति, ऐसा उनका अलौकिक व्यक्तित्व है। वे सर्वसमर्थ परमात्मा और सृष्टिके गुरुतत्त्व हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने **'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्'** कहकर रामचरितमानसमें उनकी प्रारम्भिक वन्दना की है। उनका वाहन वृषभ या बैल उनके मूल आधारभूत अलौकिक स्वरूपका परिचय देता है। वृषभ तो धर्मका प्रतीक माना गया है, अनेक शास्त्रोंमें ऐसी चर्चा है। अर्थात् शिवजी धर्मपर आरूढ हैं या वे स्वयं धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं।

शिवजीके इष्टदेव कौन? मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम—परात्पर परब्रह्म श्रीराम। वाल्मीकिरामायणमें उनका तीन शब्दोंका एक परिचय **'रामो विग्रहवान् धर्मः'** त्रेतायुगसे आजतक जन-जनतक पहुँच चुका है और यह परिचय भी किसके मुखसे कराया गया है? उनके शत्रुपक्षके मारीच राक्षसके द्वारा उस समय, जब रावण उसके पास आया—यह अनुरोध करने कि वह छलसे स्वर्णमृग बनकर सीताजीको लुभाये और जब श्रीराम धनुष-बाण लेकर उसे मारने दूरतक जायँ, तब वह (रावण) साधु-वेशमें जाकर भिक्षा लेनेके बहाने सीताजीका हरण कर ले। तब मारीच रावणको समझाता है कि श्रीराम

'धर्मके विग्रह' हैं, अतएव उनसे मित्रता करनी चाहिये। उनसे वैर ठानना अपनी मृत्युको निमन्त्रित करना है। अन्ततः वही हुआ।

धर्मकी मूल प्रकृति या आधार है समष्टिके लिये व्यष्टिका त्याग अर्थात् आत्म-त्याग या आत्म-बलिदान, जिसपर धर्मका प्रासाद खड़ा होता है। शिवजी जैसा सर्वत्यागी कौन हो सकता है? सम्पत्तिके नामपर केवल एक व्याघ्रचर्म जो उनका आसन और वसन दोनों है। औढरदानी ऐसे कि चाहे जो उनसे माँग लें—सुर, असुर, नाग, किन्नर, मानव, अमानव कोई भी। भूत-प्रेत जिनको सब अशुभ, अपावन और अकल्याणकारी मानते हैं, वे सब उनके गण हैं और शिव-विवाह होनेपर वे देवताओंके साथ बाराती बनकर जाते हैं। सच्चे अर्थोंमें उनसे बड़ा सर्वहितकारी कौन होगा। इतना ही नहीं, बल्कि जब समुद्र-मन्थनसे अनेक दुर्लभ वस्तुओंमें लक्ष्मीसहित अमृत निकला, तब सृष्टिका सारभूत हलाहल विष भी निकला था। उस समय लक्ष्मीजी विष्णुजीके पास चली गयीं, अन्य अनेक दुर्लभ वस्तुओंका वितरण उनके अधिकारियोंमें हो गया और देवतागण अमृत पा गये। तब समस्या हुई कि सर्वविनाशकारी हलाहलका पान कौन करे? उस समय शिवजी सर्व-सहायक बने और रामका नाम लेकर उस हलाहलका पान कर गये। बल्कि कण्ठमें ही रोक लेनेसे 'नीलकण्ठ' बन गये।

जिनका नाम लेकर शिवजीने हलाहल पान किया, वे भी जब मानव बनकर संसारमें आये, तब जीवनके सभी पक्षों और आचार-विचारोंमें मर्यादाओंके बाँध बाँधकर उन्होंने धर्मकी साक्षात् और शाश्वत परिभाषा प्रस्तुत की। इन मर्यादाओंके पूर्णरूपेण पालनमें उन्हें तथा उनके परिवारको आजीवन अपार कष्टों, दुःखों और संघर्षोंका सामना करना पड़ा। राजतिलक होते-होते परिस्थितियाँ अचानक ऐसी बदलीं कि उन्हें पत्नी और अनुजके साथ चौदह वर्षोंके लिये वन जाना पड़ा। वियोगमें चक्रवर्ती सम्राट् पिताकी मृत्यु हुई, माताएँ विधवा हो गयीं, पत्नीका हरण हुआ, वानर-भालुओंको जुटाकर और सेतु बाँधकर महाप्रतापी रावणका वध किया, राज्याभिषेक हुआ तथा रामराज्य स्थापित हुआ, परंतु इसके बाद भी श्रीरामके लिये सर्वोच्च आत्म-बलिदानकी स्थिति तब उत्पन्न हुई, जब उनकी प्राणप्रियतमा सती-साध्वी सीताको वनवास देना पड़ा और इस प्रकार आजीवन अपने पारिवारिक सुख-चैनको तिलाञ्जलि देनी पड़ी।

इस अपूर्व त्याग, तपस्या, संघर्ष, बलिदानका फल तो अच्छा होना ही था। वे भारतके त्यागमयी धर्म और संस्कृतिके जीवन्त स्वरूप बन गये। धर्मकी परिभाषा जाननी हो तो रामके महान् जीवनको प्रस्तुत किया जा सकता है। राम और भारतीय संस्कृति एक दूसरेके पर्याय बन गये। वे साक्षात् आदर्शरूपी हिमालयके चमकते सर्वोच्च शिखर हैं। भारत ही नहीं विश्वकी मानव संस्कृति उनके इर्द-गिर्द घूमती है। इसमें कोई रामके पास है और कोई उनसे दूर। सम्पूर्ण विश्वके सांस्कृतिक इतिहासको प्रभावित करनेवाला ऐसा कोई अन्य महापुरुष आजतक धरतीपर नहीं जन्मा। भारतके हिमालयका सर्वोच्च शिखर वस्तुतः विश्वका सर्वोच्च है।

किंतु राम बननेकी इस सम्पूर्ण प्रक्रियामें उनको एक और शिव बनना पड़ा? यदि शिवको सृष्टि बचानेके लिये उसके सारभूत हलाहलको पान करना पड़ा तो रामको सम्पूर्ण मानव-सृष्टिमें धर्म और मर्यादाके पालन और पुनःस्थापना-हेतु अपार कष्ट, संघर्ष, दुःख और वियोगका हलाहल पीना पड़ा। रामका रामत्व उनके शिवत्वमें ही है। तभी राम और शिव अन्योन्याश्रित हैं, एक हैं या एक दूसरेके पूरक हैं। शिवका शिवत्व राम बननेमें है और रामका रामत्व शिव बननेमें। भारतीय संस्कृतिकी अमर गङ्गा एकके चरणसे प्रकट होकर दूसरेके सिरपर आरोहित होकर कोटि-कोटिका कल्याण करती हुई धरतीपर प्रवाहित होती है। वस्तुतः शिवके संकल्प और रामकी मर्यादासे प्रतिपादित धर्मका पूर्ण दर्शन आत्म-त्यागके प्रकाशमें ही किया जा सकता है। वस्तुतः श्रीरामने सीताजीसहित जीवनपर्यन्त इतने अपार दुःख और कष्ट सहन किये कि अब उनका नाम लेने मात्रसे मनुष्यके समस्त दुःख-दर्द दूर हो जाते हैं, मानो उन्होंने सबके हिस्सेमें प्राप्त विपत्तियाँ स्वयं झेल लीं। राम-नाम सर्व विपत्तियोंके हरण या शमनमें पूर्ण समर्थ है। छोटी-सी शर्त यह है कि पहले हम उससे जुड़ें तो।

भगवल्लीला-शक्तिका स्वच्छन्द विलास

(श्रीश्यामलालजी हकीम)

परब्रह्म आनन्दघन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण रसस्वरूप हैं—'**रसो वै सः**'। उनकी स्वरूपगत स्वाभाविकी अनन्त शक्तियाँ हैं। स्वरूपाशक्ति परमास्वाद्या है एवं भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें अविच्छिन्नरूपसे वह नित्य अवस्थित है।

भगवल्लीला-क्षेत्र एक स्वतन्त्र परिमण्डल है, परम स्वच्छन्द स्वयम्प्रकाश प्रदेश है। उसकी अधिष्ठात्री है योगमाया। वह अपने अचिन्त्य प्रभावसे लीला-क्षेत्रमें अनन्त वैचित्र्य एवं अनन्त रसास्वादन-चमत्कारिता स्वतः प्रकाशित करती है। रसिकशेखर श्रीभगवान् वहाँ आस्वादनजनित मनःप्रसादकी चरम पराकाष्ठा प्राप्तकर विमुग्ध हो जाते हैं। भगवल्लीलाशक्तिके रसपरिवेषणका कौशल इतना कौतुकमय है कि वह लीलाधारी श्रीभगवान्के अनुसंधानकी अपेक्षा नहीं रखता। उनको आत्मविस्मृत कर देता है; फिर लीलान्तःपाती तो भाव-मुग्ध रहते ही हैं। परम स्वच्छन्द विलास है योगमायाका। भगवल्लीला-क्षेत्रमें श्रीब्रह्मा-शिव आदि देवगणों तथा सुर-मुनियोंकी महामुग्धताका क्या कहना?

बाल-क्रीडा-रसिक श्रीनन्दनन्दनने सोचा—सब सखाओंके साथ सबेरेका कलेवा एक दिन वनमें किया जाय, फिर क्या था? लीलाशक्तिकी प्रेरणासे उस दिन सब ग्वाल-बाल अपनी भोजन-सामग्री छीकों, पोटलियोंमें बाँधकर श्रीकृष्णके साथ आनन्द मनाते हुए वनकी ओर चल दिये। आगे-आगे असंख्य बछड़े कूदते-फाँदते चल रहे थे।

कंसका भेजा हुआ अति विकराल असुर अघासुर भयानक अजगरका रूप धारणकर मार्गमें आ लेटा और पर्वत-गुफाके समान मुँह फाड़े हुए श्रीकृष्णसहित सखा एवं बछड़ोंको निगल जानेकी प्रतीक्षा करने लगा। यह दृश्य देखकर एक सखा कहने लगा—'देखो भई! लगता है यह सामने कोई अजगर मुँह फैलाए बैठा है।' दूसरेने कहा—'अरे! यह हमारे वृन्दावनकी शोभा है।' रमणीय लाल सड़क गुफाकी ओर जा रही है। 'जितने मुँह उतनी बातें।' अन्तमें एक सखाने कहा—'मित्रो! यदि अजगर भी हो तो हमें निगलकर उसे मरना है क्या? हमारा कन्हैया तो हमारे साथ है!'

श्रीनन्दनन्दनने देखा—यह तो सचमुच अजगर है, परंतु मेरे सखा तो मात्र अजगर-जैसे होनेकी बात ही कर रहे हैं। गिरिगुहा जानकर इसके मुँहमें प्रवेश कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें रोकनेकी बात अभी सोच ही रहे थे कि इतनी देरमें समस्त बछड़े-बालक उस अजगररूपी गुहामें घुस गये। लीलाशक्तिने ग्वाल-बालोंके संकल्पकी पूर्तिको प्राथमिकता दे दी, क्योंकि वह अघासुरका नाश कराकर भगवान् श्रीनन्दनन्दनके 'हतारिगतिदायक' (मारे जानेवाले शत्रुओंको भी मुक्ति प्रदान करनेवाले) गुणको प्रकाशित करना चाह रही थी। दस हजार ग्वाल-बाल और असंख्य बछड़े अजगरके मुँहमें समा गये। परंतु योगमायाने उसे मुँह तबतक बंद नहीं करने दिया, जबतक श्रीकृष्ण उसमें प्रविष्ट नहीं हुए।

श्रीभगवान्ने उसके मुँहमें जाते ही अपना शरीर इतना बढ़ाया कि दम घुटनेसे तत्क्षण अजगरके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर बाहर निकल गये। उसके शरीरसे एक ज्योति निकली और वह वैकुण्ठमें चली गयी। उसके पलक झपकते ही श्रीनन्दनन्दनने अपनी अमृतदृष्टिसे उन ग्वाल-बालों और बछड़ोंको जीवित कर दिया। सबको साथ लेकर पूर्व-संकल्पानुसार श्रीकृष्ण अति रमणीय यमुना-पुलिनमें आकर हरी-हरी घासपर बैठ गये। कलेवा करनेके लिये सब अपनी-अपनी भोजन-सामग्री खोलने तथा परोसने लगे। बछड़ोंको वनमें चरनेके लिये छोड़ दिया गया था। ग्वाल-बाल मण्डलाकार पंक्तियोंमें सटकर बैठ गये एवं उनके बीचमें श्रीनन्दनन्दन शोभायमान थे। लीलाशक्तिने ऐसा कौतुक रचा कि सब ग्वाल-बालोंको ऐसा लगा कि श्रीकृष्ण उन्हींकी ओर मुख किये बैठे हैं। अब हास-परिहास करते हुए वे सब मिलकर भोजन करने लगे।

अघासुर अत्यन्त बलवान् था। उसके भयसे अमृतपान करनेवाले देवता भी मृत्युसे डरते थे। उसके मर जानेपर देवताओंने इतने जोर-जोरसे जय-जयकी हर्षध्वनि की कि ब्रह्मलोकमें बैठे ब्रह्मा भी विस्मित हो उठे। वे हंस-वाहनसे तपोलोकमें आये तथा फिर वहाँसे जनलोकमें आये। वहाँ

आकर वृन्दावनमें अघासुरके विनाशका समाचार सुना। विशेषकर उसकी सामीप्य-मुक्तिकी बात सुनी तो ब्रह्माजी आश्चर्यचकित रह गये। सोचने लगे कि आजतक मैंने भी किसी जीवात्माकी ज्योतिको श्रीभगवान्‌में लीन होते या भगवल्लोकमें जाते आँखोंसे नहीं देखा; परंतु अघासुर-जैसे पापीके लिये अत्यन्त दुर्लभ सामीप्य-मुक्ति! जिसे सबने देखा?—

अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः
प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम्॥

(श्रीमद्भा० १०। १२। ३८)

ब्रह्माजीने सोचा—बड़े सौभाग्यसे वृन्दावन आया हूँ। अतः श्रीनन्दनन्दनकी कोई और भी मनोहारी लीलाका दर्शन करना चाहिये। हंसपर बैठे-बैठे आकाशसे उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ भोजन कर रहे हैं। देखते ही वे स्तब्ध हो गये—'क्या ये सब वही सामग्री खा रहे हैं, जिसे लेकर अजगरके उदरमें प्रविष्ट हुए थे? अपवित्र और विषैला भोजन? छिः-छिः, ये तो एक दूसरेका जूठा पदार्थ भी खा रहे हैं। अरे! यह क्या—श्रीकृष्ण तो हथेलीपर ही दही-भात और अचार-मुरब्बेकी फाँकें लिये बैठे हैं।' 'क्या ये वही हैं जो यज्ञोंमें केवल उद्देश्यमात्रसे मन्त्रोंद्वारा समर्पित हवि ग्रहण करते हैं?' ब्रह्माजी कुछ समझ न पाये, भगवान् श्रीकृष्णके इस लीलासे वे विमोहित हो गये।

भगवल्लीला-शक्तिने भी ब्रह्माजीको श्रीकृष्णकी लीलामायाकी महिमासे छकानेका पूरा मन बना लिया। इस लीला-शक्तिकी लीला-प्रेरणाके वशीभूत होनेपर सृष्टिकर्ता ब्रह्माके मनमें बछड़ोंको चुरा लेनेकी सूझी, किंतु लीलाशक्तिने इसके पहले ही उन सब बछड़ोंको अन्तर्धानकर वहाँ मायिक बछड़े विचरनेके लिये छोड़ दिया। ब्रह्माने उन्हें चुराकर अपनी बड़ी चतुराई समझी। तब योगमायाने भोजनमें तन्मय ग्वाल-बालोंका ध्यान बछड़ोंकी तरफ आकृष्ट किया। जब सब चिन्तित होकर उठने लगे, तब श्रीकृष्णने उन्हें वहीं बैठे रहनेको कहा और स्वयं ही उन्हें ढूँढ़ने चले गये। योगमाया उन्हें बहुत दूर वन-पर्वत आदिकी गुफाओंमें ले गयी, ताकि ब्रह्मा कुछ और भी चुरा सकें। अपने मनकी कर लें। ब्रह्माने जब देखा कि सब ग्वाल-बाल अकेले हैं, वहाँ श्रीकृष्ण नहीं हैं तो उन्हें भी चुरा ले जाना चाहा। योगमायाने पहले ही उन ग्वाल-बालोंको भी अन्तर्धान कर दिया और उनके स्थानपर मायिक ग्वाल-बाल स्थापित कर दिये। ब्रह्मा उन ग्वाल-बालोंको भी ले गये। ब्रह्मलोकमें ले जाकर मायासे निद्रित कर सुला दिया। सृष्टिका ईश्वर और चोरी? यह सब स्वच्छन्द विलास है भगवल्लीला-शक्तिका।

सर्वज्ञ भगवान् बछड़ोंको कहीं न देखकर भोजन-स्थलीपर आये। कैसा आश्चर्य कि यहाँ ग्वाल-बाल भी नदारद। कुछ क्षणोंके लिये लीलाशक्तिने अपने स्वामीको भी चक्करमें डाल दिया, किंतु उन्हें यह जाननेमें अधिक देर न लगी कि यह सब करतूत सृष्टिकर्ता ब्रह्माकी है; फिर भी वे यह न जान पाये कि मेरे ग्वाल-बाल, बछड़े योगमायाने अपने पास सुरक्षित कर लिये हैं। कैसा अचिन्त्य प्रभाव है भगवल्लीला-शक्तिका?

भगवान् श्रीकृष्णने जान लिया कि ब्रह्माको सृष्टि-रचनाका गर्व है, वे भले ही मेरेद्वारा सृजित उपादानोंको लेकर ही सृष्टि क्यों न करते हों, स्वतन्त्र-सृष्टि देखकर इनका गर्व-खण्डन होगा, मेरी मंजु महिमाका भी उन्हें अनुभव हो सकेगा। मैं भी सखाओं तथा बछड़ोंके बिना तो गोष्ठमें नहीं जा सकता।

ऐसा सोचते ही भगवान् श्रीकृष्णने अपनेको उतने ही ग्वाल-बालों और बछड़ोंके रूपमें प्रकटित कर लिया। जैसे उनके छोटे-बड़े शरीर थे, वय, वस्त्र, छींके, लाठी और भूषण आदि थे; वैसे ही सब कुछ आप भी बन गये। वैसी ही चाल-ढाल और वैसा ही स्वभाव तथा रंग-रूप धारण कर लिया। अपराह्णके समय निजरूपी बछड़ोंको, निजरूपी ग्वाल-बालोंको, निजरूपसे घेरते हुए प्रतिदिनकी भाँति गोष्ठमें खेलते-कूदते प्रवेश किया। परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वयं प्रयोजक—कर्ता थे, स्वयं ही बछड़ोंके रूपमें कार्य थे, स्वयं ही सखाओंके रूपमें बछड़ोंके घेरनेवाले प्रयोज्य-कर्ता थे। स्वयं ही आत्मस्वरूपभूत सखाओंके साथ खेलनेवाले क्रिया-कारक थे। श्रीकृष्णरूपमें अपने पुत्रोंको पाकर गोपीवृन्द तथा गौएँ अतिशय वर्द्धित प्रेममें विभोर हो उठीं। किंतु इस रहस्यको गोष्ठमें कोई भी न जान सका।

एक दिन नहीं, एक मास नहीं, बल्कि एक वर्षपर्यन्त यह अद्भुत लीला-विलास चलता रहा। अब ब्रह्माजी सोचने लगे, जरा देखूँ—'क्या हुआ नरशिशुलीला नन्दलालाका?' देखा कि यहाँ तो सब सखा बछड़ोंके साथ वनमें आ रहे हैं, गोष्ठमें लौट रहे हैं, उनकी बालक्रीडा ज्यों-की-त्यों आनन्दसे चल रही है। ब्रह्माजी झट ब्रह्मलोकमें भागकर गये। वहाँ देखा मेरे चुराये हुए सब सखा तथा बछड़े निद्रित-अवस्थामें तो यहीं मोहित पड़े हैं, फिर वृन्दावनमें वे ग्वाल-बाल, बछड़े कौन हैं? दोनों स्थलोंपर एक ही समान यह दृश्य कैसे? ज्ञान-दृष्टिसे वास्तविकता देखना चाहा, किंतु ज्ञान-दृष्टि कुछ काम न आयी। अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो अपनी ही मायामें स्वयं मोहित हो गये।

इतनेमें ब्रह्माजी देखते हैं कि सभी ग्वाल-बाल और बछड़े सुन्दर श्यामवर्ण हैं। पीताम्बरधारी श्रीविष्णुरूपमें उनके सामने शोभायमान हैं। एक-एक विष्णु पृथक् एक-एक ब्रह्माण्डका ईश्वर है। प्रत्येकके सामने एक-एक ब्रह्मा उपस्थित हैं और अनेक उपकरणोंसे उनकी आराधना-पूजा कर रहे हैं। समस्त सिद्धियाँ-शक्तियाँ उनकी उपासना कर रही हैं। आश्चर्यचकित ब्रह्माजीके नेत्र मुँद गये। वृन्दावनके एक भागमें ही अगणित ब्रह्माण्डोंको चारों ओर देखकर ब्रह्मा अपनेको सँभाल न सके। हंसवाहनसे अचेत होकर नीचे आ गिरे।

जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि अब ब्रह्माजी मेरी लीला-महिमा-सागरमें डूब गये हैं। वृन्दावनमें विद्यमान होते हुए भी उन्हें इसका दर्शन प्राप्त नहीं हो रहा है। तब उन्हीं भगवान्‌की इच्छासे कल्पवृक्ष परिवेष्टित पुष्पान्वित श्रीवृन्दावनका दर्शन प्राप्त हुआ और जब योगमायाने अपना प्रभाव हटाया, तब उन्होंने नराकृति परब्रह्म लीलापुरुषोत्तमको किंचित् पहचाना। मायापतिपर अपनी मायाके प्रसार करनेकी मूर्खतापर ब्रह्माजी पछताने लगे। नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। अब वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते हुए दोनों हाथ जोड़कर उनकी अद्भुत स्तुति करने लगे।

अब ब्रह्माका गर्व-भंग हुआ देखकर भगवल्लीला-शक्तिने भी अपने स्वच्छन्द विलासका अदृश्य रूपमें उपसंहार किया। उसने ब्रह्माद्वारा चुराये हुए मायिक बालक और बछड़ोंको अन्तर्धान कर दिया, जिनको उसने आच्छादित कर अपने पास सुरक्षित रख लिया था, उन वास्तविक बालकों, बछड़ोंकी श्रीकृष्णरूपी बालकों तथा बछड़ोंके साथ एकात्मता स्थापित कर दी। वे तो पहले श्रीकृष्ण-स्वरूपभूत थे, किंतु इस कौतुकका अनुसंधान भगवान् लीलापुरुषोत्तम भी न कर पाये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसस्वरूप रसिकशेखर अपनी स्वरूपाशक्तिके स्वच्छन्द विलासमें एक ही लीलामें विभिन्न रसवैचित्र्यका अद्भुत आस्वादन प्राप्त करते हैं। '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' होते हुए भी लीलापुरुषोत्तम अपने प्रिय भक्तोंके अनेक प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे अपने श्रीमुखसे स्वीकारते हैं—

'मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः।'

वास्तवमें प्रिय—परिकर भक्तोंके विनोदार्थ सम्पन्न होनेवाली असंख्य लीलाओंके अति गम्भीर रससागरके अन्तस्तलमें रसिकचूडामणि श्रीभगवान्‌की निजी स्वरूपगत रसास्वादन-स्पृहारूपी अगणित स्फटिक-मणियाँ छिपी हुई हैं, जिन्हें देख पाते हैं, निकाल पाते हैं लीलारस-सागरके गोताखोर रसिकजन।

आनुषंगिकरूपमें जीवानुग्रह—कातर भगवान् लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण सृष्टि-लीलामें जीव-जगत्के प्रति करुणा-कादम्बिनी प्रकाशित करते हैं और साथ ही अनेक प्रकारके दुःखोंके दावानलमें जलते-झुलसते सांसारिक लोगोंके लिये अति दुस्तर भवसागरसे पार उतरनेके लिये अपनी लीला-कथा-रस-माधुरीकी एकमात्र सुदृढ़ नौका स्थापित करते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ४०)

निरन्तर नाम-जप एवं भगवल्लीला-दर्शन

(डॉ० श्रीसत्यपालजी गोयल, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आयुर्वेदरत्न)

नामचिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णशुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

अर्थात् नाम और नामीमें कुछ भी भेद नहीं है। इसलिये श्रीकृष्ण-नाम श्रीकृष्णकी तरह चैतन्य रसविग्रह है, सर्वशक्तिपूर्ण है तथा नित्यमुक्त एवं चिन्तामणिकी तरह सर्वाभीष्ट प्रदान करनेवाला है।

पूर्वजन्मोंके पाप-कर्मोंका प्रबल प्रभाव ही जीवको नामके प्रति निष्ठा उत्पन्न नहीं होने देता। माया उसे निरन्तर अपनी ओर खींचती रहती है। संसारकी विषयासक्ति उसे भगवान्के नाम-रूप-गुण और लीलाके प्रति लगाव उत्पन्न नहीं होने देती। जिस प्रकार पाण्डुरोगसे पीडित व्यक्तिको मिश्री कड़वा लगती है, परंतु उसी मिश्रीका निरन्तर सेवन करनेसे रोगीके पीलिया (पाण्डु)-रोगका शमन हो जाता है। उसी प्रकार मायाग्रस्त जीव भव-व्याधिसे पीडित है। उसे नामका जप कड़वा लगता है, परंतु निरन्तर कृष्ण या रामका नाम-जप करनेसे संसार-बन्धन क्षीण हो जाता है और उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। उसके हृदयमें भगवान्के दिव्य रूप, गुण और लीलाकी अनुभूति होने लगती है।

भगवान् जिस प्रकार नित्य-शुद्ध-तत्त्व हैं, उसी प्रकार उनकी लीलाएँ भी नित्य-शुद्ध हैं। वे अनादि-तत्त्व हैं। उनकी लीलाएँ भी अनादि हैं। पाप-पंकिल हृदयमें उनकी दिव्य लीलाएँ स्फूर्त नहीं होती हैं। अतएव उनका नाम ही कृपा करके जीवको अपनी ओर आकर्षित करता है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः॥
सेवोन्मुखे हि जिह्वाऽऽदौ स्वयमेव स्फुरत्यदः।

(भक्तिरसामृतसिन्धु पूर्वविभाग २। ६२-६३)

अर्थात् श्रीकृष्ण-नाम चिन्मय होनेसे प्राकृत इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जा सकते, परंतु जब लोगोंकी रसना उसे ग्रहण करनेकी इच्छा रखती है, तब कृष्ण-नाम कृपा करके स्वयं रसनापर स्फुरित होने लगते हैं।

संतोंका ऐसा अनुभव है कि साधकको नाम, संत, लीला और धाममेंसे किसी एकसे अवश्य जुड़ जाना चाहिये, फिर तो साधककी निष्ठा उसे चारोंसे जोड़ देगी। नाममें नामीसे भी अधिक शक्ति है। नाम एक क्षणमें ब्रह्माण्डके समस्त जीवोंको शुद्ध कर नामीसे मिलानेकी शक्ति रखता है।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण नित्य सनातन तथा अद्वय तत्त्व हैं, जीव भी उसी प्रकार नित्य और सनातन तत्त्व है। प्रत्येक जीवका भगवान्से अद्वय नित्य-सम्बन्ध है। जीवका भगवान्से यह सम्बन्ध दास, मित्र, माता या पिता एवं प्रेमिका—किसी भी रूपमें हो सकता है। मायाबद्ध हो जानेसे वह अपने स्वरूपको भूल गया है, इसलिये श्रीकृष्णसे उसका क्या सम्बन्ध है? उसे यह भी ज्ञात नहीं है।

निरन्तर कृष्ण-नामका जप करनेसे उसकी चित्तवृत्ति शुद्ध होने लगती है। उसका मन एकाग्र होकर कृष्ण-नाम-जपमें निष्ठावान् हो जाता है। उस समय उसके सभी संकल्प-विकल्प शान्त हो जाते हैं तथा साधकको उसके नित्य-सम्बन्धके अनुरूप लीलाओंकी स्फूर्ति होने लगती है। जब आप दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं, उस समय दर्पणको निरन्तर हिलाते-डुलाते रहें तो उस दर्पणमें आपका प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं देगा, परंतु यदि उस दर्पणको स्थिर कर स्वच्छ कर लिया जाय तो अपना प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखायी पड़ने लगेगा। उसी प्रकार चंचल मनको शुद्ध और स्थिर कर लेनेपर आपको अपना तथा श्रीकृष्णका स्वरूप एवं उनकी लीलाओंका स्पष्ट दर्शन होने लगेगा। अनवरत नाम-जपमें ही वह दिव्य शक्ति है, जो मन तथा विचारको शुद्ध कर लीलाओंकी अनुभूति कराने लगती है।

श्रीकृष्ण-नाम-जप प्रारम्भ करते समय किसी भी प्रकारके सम्बन्धकी स्थापना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इस प्रकार बनाया गया सम्बन्ध काल्पनिक तथा अल्पकालके लिये ही होगा और नाम-जपमें बाधक भी होगा। अनवरत नाम-जप करते-करते नाम-प्रभुकी कृपासे जीवका नित्य-शुद्ध सम्बन्ध स्वतः जाग्रत् होने लगता है तथा साधक उसी भावसे साधना करने लगता है—

'साधक देहे भावे जेई
सिद्ध देहे पावे सेई'

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

जीव और कृष्णके मध्य जो नित्य-सम्बन्ध (भाव) है,

वह तीन प्रकारसे सिद्ध हो सकता है—(१) गुरुकृपा-साध्य, (२) कृष्णकृपा-साध्य तथा (३) साधन-साध्य। परंतु इस भाव-सम्बन्धमें कृत्रिमताका आवरण कभी नहीं ओढ़ना चाहिये, अन्यथा भयंकर पतनकी सम्भावना रहती है।

व्रजके गोप-गोपियाँ, नन्द बाबा, माता यशोदाजी, राधाजी तथा लीला-परिकरोंका श्यामसुन्दरके प्रति जो प्रेम है उसे 'राग' कहते हैं। व्रजलीला-परिकरोंकी इस प्रेमवृत्तिको रागात्मिका भक्ति कहते हैं। जब कोई साधक व्रजलीलाके किसी परिकरके अनुगत होकर सेवा-साधना करता है तो उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। स्वतन्त्र-रूपसे स्वयंको नन्द, यशोदा, राधा, ललिता, विशाखा या मनसुखा आदि मानकर नाम-जप-साधना कर लीला-स्फूर्ति करनेसे इन परिकरोंके चरणोंमें अपराध हो सकता है, क्योंकि यशोदा-नन्द, राधा एवं ललिता सखी तो एक ही हो सकती हैं; परंतु उनके आनुगत्यमें, उनके मार्गदर्शनमें, उनके भावाधीन होकर साधना करनेसे किसी अपराधकी सम्भावना नहीं रहती।

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४०)

अर्थात् जो साधक भक्ति-अंगोंका अनुष्ठान करते हैं, अपने प्रिय कृष्ण-नामका संकीर्तन (जप) करते-करते उनके हृदयमें कृष्ण-प्रेम (लीला-स्फूर्ति) उदय हो जाता है, वे उन्मत्तकी तरह उच्च स्वरमें कभी हँसने लगते हैं तो कभी रोने लगते हैं तथा कभी अपने प्यारेकी लीला-स्मृतिमें नृत्य करने लगते हैं और ***'हा कृष्ण! हा कृष्ण!!'*** कहकर जोर-जोरसे पुकारने लगते हैं—यह नाम-जप-स्मरण एवं चिन्तनका दिव्य प्रभाव है।

वैष्णवनिष्ठ साधकोंके हृदयमें दिव्य लीलाओंकी स्फूर्ति निरन्तर होती रहती है, उन्हें सांसारिक दायित्वों तथा सम्बन्धोंमें रंचमात्र भी आसक्ति नहीं रहती। प्रतिक्षण उनके हृदयमें अपने प्यारेकी अष्टकालीन लीलाओंका दिव्य प्रकाश होने लगता है। व्रजभावके बिना कृष्ण-प्रेमकी उज्ज्वल रसानुभूति कदापि सम्भव नहीं है। यह कृष्ण-नाम-स्मरण हो रहा है या नहीं—इसका साधकको निरन्तर आत्मपरीक्षण करते रहना चाहिये, क्योंकि—

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः॥

(श्रीमद्भा० २। ३। २४)

अर्थात् शौनकजीने सूतजीसे कहा—'हे सूत! श्रीकृष्ण-नाम-ग्रहण करते-करते यदि नेत्रोंमें अश्रु तथा शरीरमें रोमांचादि विकार उत्पन्न होकर हृदय द्रवीभूत नहीं होता हो तो वह हृदय वज्रके समान कठोर होता है।'

जबतक अश्रु-रोमांचादि नाम-ग्रहणके समय उत्पन्न न हों, तबतक साधकको समझना चाहिये कि उसके हृदयमें कृष्ण-नामके प्रति निष्ठाका उदय नहीं हुआ तथा मन एवं हृदय शुद्ध नहीं हुआ है। उसमें भौतिक विषयासक्ति बनी हुई है।

परंतु जब भगवान्‌के नाम, रूप, गुणके जप-चिन्तन-मननके आनन्दोद्रेकसे साधकका रोम-रोम खिल उठता है, आसुओंके मारे कण्ठ गद्‌गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने लगता है, पागलकी तरह कभी हँसने एवं रोने लगता, कभी ध्यान करने और भगवन्नामका जप करने लगता है। जब वह भगवान्‌में एकदम तन्मय हो जाता है, बार-बार **'हरे! नारायण!! जगन्नाथ!!!'** पुकारने लगता है—तब नाम-जपके प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार अर्थात् भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसे भगवल्लीलाका साक्षात् दर्शन होने लगता है।

अतः जिन भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण एवं प्रणति सर्वदाके लिये सभी दुःखोंको शान्त कर देती है, आत्यन्तिक सुख—तदाकारकारिता प्रदान करती है। उन्हीं परमात्मस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ—

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २३)

श्रीभगवान्‌की लीलाओंसे पग-पगपर प्रेरणा

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

भारत ऐसी पवित्रतम एवं दिव्यातिदिव्य भूमि है, जहाँ भगवान् धर्मकी पुनःस्थापना करने, अधर्मियों और अन्यायियोंका नाश करने तथा अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे जीवोंका उद्धार करने एवं उन्हें प्रेरणा देनेके लिये अवतार लेते हैं—

जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥

(रा०च०मा० १।१२१।६—८)

जब-जब धर्मपर आघात किये जाते हैं, धर्म तथा नैतिक मूल्योंका ह्रास होने लगता है और असुरों, धर्मद्रोहियोंका बोलबाला होने लगता है, वे अनीति एवं अधर्ममें लिप्त हो जाते हैं, तब-तब भगवान् मनुष्य-शरीर धारण करके गो-ब्राह्मणों तथा सज्जनोंकी पीडा हरनेके लिये अवतरित होते हैं।

धर्मकी पुनःस्थापना तथा अन्यायियों एवं पापियोंके विनाशके साथ-साथ भगवान् अपनी लीलाओंके माध्यमसे न केवल मनुष्यों, अपितु जीवमात्रको भक्ति, सन्मार्गपर चलनेका तथा उनके कल्याणका मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। हमारे अनेक आचार्योंने भगवान्‌के लीलाके लिये अवतार लेनेके प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा है—

शीलः क एष तव हन्त दयैकसिन्धो
क्षुद्रे पृथग्जनपदे जगदण्डमध्ये।
क्षोदीयसोऽपि हि जनस्य कृते कृतीत्व-
मत्रावतीर्य ननु लोचनगोचरोऽभूः॥

हे दयाके एकमात्र सागर प्रभु, अपने विराट् ब्रह्माण्डके बीच क्षुद्र प्राणियोंके कल्याणके लिये आप अवतार धारणकर हम सबको साक्षात् दर्शन देनेके लिये प्रस्तुत हो गये हैं, आपका यह शील, आपकी यह लीला अनुपमेय है।

भगवान् करुणा या अनुग्रहके लिये ही लीलावतार धारण करते हैं। कहा गया है—

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० १०।३३।३७)

भगवान्‌को गीता (११।४३)-में सारे संसारका पिता कहा गया है—'**पितासि लोकस्य चराचरस्य**' अर्थात् वे साक्षात् दयामूर्ति, करुणामूर्ति एवं भक्तवत्सल हैं। जहाँ वे प्राणियोंपर अपनी अहैतुक कृपाकी बौछार करके उसके अन्तः-करणमें बैठकर ज्ञानदीपसे अज्ञानका उन्मूलन करके उसे आत्मस्वरूपका साक्षात्कार कराते हैं, वहीं लीलाधारी भगवान् अपने भक्तोंको संकटसे उबारनेमें एक पलका भी विलम्ब नहीं करते। असंख्य भक्तोंने शुद्ध हृदय तथा निष्कपट-मनसे जब कभी भगवान्‌की भक्ति की, तो भगवान्‌ने उन्हें अवश्य शरणागति प्रदान की। कहा गया है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः कमनीयरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

कैसे-कैसे लोगोंको लीलावतार भगवान्‌ने अपनी शरणागति देकर तार दिया। प्राणियोंकी हत्या करके जीवन-यापन करनेवाला व्याध, निष्कपट प्रभुभक्त बालक ध्रुव, कंसका पिता उग्रसेन, कुरूपा कुबड़ी तथा निर्धन सुदामा—ये सभी इस लीलाधिपति भगवान्‌की अनुकम्पाका प्रसाद पाकर जीवन्मुक्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण तो साक्षात् लीलावतार थे, जिन्होंने अपनी दिव्य लीलाओंके माध्यमसे विभिन्न प्रयोजनों-हेतु असंख्य प्राणियोंका उद्धार किया, उन्हें बार-बार जन्म लेनेके झंझटसे मुक्ति दिलायी। महाभारत-युद्धके पीछे निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्णकी राजनीतिसे सराबोर दिव्य लीला ही है, जो अन्यायके विरुद्ध सतत संघर्ष करनेकी सदैव प्रेरणा देती रहेगी।

इसी प्रकार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी लीलाओंके माध्यमसे हम माता-पिताकी आज्ञाका पालन करने, ऋषि-मुनियों तथा गोमाताको सतानेवाले राक्षसोंका संहार करनेको आगे आने, पर-स्त्रीपर कुदृष्टि रखनेवाले साम्राज्याधिपति तकके विरुद्ध सतत संघर्षकर उसका समूल विनाश कर डालने-जैसे राष्ट्रिय कर्तव्यकी प्रेरणा प्राप्त करते रहेंगे।

श्रीरामकी पावन लीलाएँ एवं श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाएँ अतिभौतिकवादकी चकाचौंधमें फँसे आजके मानव-जीवनको भी बदल डालनेकी अद्भुत सामर्थ्य रखती हैं, इसके उदाहरण

समय-समयपर मिलते रहते हैं।

श्रीरामलीला देखकर चरण-स्पर्श करना सीखा

आजकल विदेशोंमें भी प्रवासी भारतीयोंद्वारा भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका मंचन कराया जाता है। जिसके परिणामस्वरूप संसारके अनेक देशोंमें भगवान्की लीलाओंके प्रदर्शनकी बहुत सराहना भी होती है। कुछ दिन पूर्वकी बात है—भूतपूर्व सांसद स्व० श्रीप्रकाशवीर शास्त्री लन्दन गये तो वे अपने पूर्व-परिचित प्रवासी भारतीय परिवारमें ठहरे। सबेरे जब वे सोकर उठे तो उस परिवारके कई युवक तथा बच्चे उनके पास आये और चरण-स्पर्शकर आशीर्वाद प्राप्त किये। शास्त्रीजी पहले भी कई बार इस परिवारका आतिथ्य ग्रहण कर चुके थे। उस समय परिवारके युवक तथा बच्चे हाथ हिलाकर 'गुडमार्निंग' कहा करते थे। इस बार चरण-स्पर्शको देखकर वे कुतूहलमें पड़ गये। शास्त्रीजीके कुतूहलको देखकर परिवारके मुखिया बोले—'शास्त्रीजी, जब हमारे यहाँ लन्दनमें भारतीय सांस्कृतिक केन्द्रकी ओरसे रामलीलाका प्रदर्शन किया गया, उसी समय अनेक प्रवासी भारतीय परिवारोंके बच्चोंने भगवान् श्रीरामको अपने माता-पिता और गुरुके चरण-स्पर्श करते देखकर चरण-स्पर्श करनेकी प्रेरणा ली। रामलीला तथा कृष्णलीलाने तो हमारे बच्चों एवं महिलाओंपर अमिट प्रभाव छोड़ा है। ऐसे आयोजन करके ही हम भारतीयोंकी नयी पीढ़ीको भारतीयता तथा धार्मिक संस्कारोंसे जोड़े रख सकते हैं।'

शास्त्रीजीने जब यह घटना सुनायी तो हमें लगा कि भगवान्की लीलाएँ ही पूरे संसारमें रहनेवाले भारतीयोंके अंदर भारतीय संस्कारको अक्षुण्ण रखनेकी क्षमता रखती हैं।'

रूसी बालक रामलीलासे प्रभावित

सन् १९८८ की बात है। मास्को (रूस)-में रहनेवाले दसवर्षीय बालक 'दिमित्रीत्सिगत्ज' रामचरितमानसमें वर्णित भगवान् श्रीरामकी लीलाओंसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने भगवान् श्रीराम एवं सीताजीकी लीलाओंके अनेक सुन्दर चित्र बना डाले। उसने भगवान्की लीलाभूमि भारतके दर्शनोंका संकल्प किया तथा अपने बनाये रामलीलाके चित्रोंके साथ वह १४ जनवरी १९८९ को भारत आनेमें सफल हो गया। दिल्लीकी 'नेशनल म्यूजियम ऑफ नेचुरल हिस्ट्री'की ओरसे आयोजित चित्र-प्रतियोगितामें उसके द्वारा निर्मित श्रीरामलीलाके चित्र पुरस्कृत किये गये। उसने उस समय दूरदर्शनपर दिये गये साक्षात्कारमें कहा था—'मैंने श्रीरामकी लीलाओंका दिग्दर्शन करके तथा रूसी भाषामें अनूदित रामचरितमानस पढ़कर सुरापान एवं मांसाहार त्याग दिया तथा अपना जीवन भगवान् श्रीरामकी भक्तिके लिये समर्पित कर दिया है।'

स्वामी भक्तिवेदान्तजीकी अनुभूति

श्रीकृष्णभावनामृत-अभियानके प्रणेता पूज्यपाद श्रीकृष्ण-कृपामूर्ति श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपादजी महाराजने पूरे संसारमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका प्रचार करके लाखों विदेशियोंको सनातनधर्ममें दीक्षित करनेमें सफलता प्राप्त की थी। एक बार उन्होंने नयी दिल्लीमें हम पत्रकारोंसे बातचीत करते हुए बताया था कि इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, जर्मनी, इटली आदि अनेक देशोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलाओंसे प्रेरणा प्राप्तकर पति-पत्नीके बीच तलाककी प्रवृत्तिपर नियन्त्रण लगता जा रहा है। प्रवासी भारतीयोंमें भी पाश्चात्त्य कुसंस्कारोंके कारण तलाक-जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही थीं। हमने श्रीकृष्णलीला तथा श्रीरामलीलाका प्रचार करके तथा प्रभुकी लीलाओंसे प्रेरित करके अनेक परिवारोंको आदर्श भारतीय बननेकी दिशामें संकल्पित कराया। हम श्रीकृष्ण-भक्तिके प्रचारके साथ-साथ माता-पिताकी सेवा करने, बड़ोंका आदर करने, मांसाहार एवं शराबका त्याग करने एवं शुद्ध शाकाहार करनेका संकल्प भी दिलाते हैं। भगवान्की लीलाओंसे प्रभावित होकर न केवल भारतीय परिवार ही, अपितु असंख्य विदेशी भी हमारे 'हरे कृष्ण-आन्दोलन'के लिये समर्पित होते जा रहे हैं।

उन्होंने बताया कि केवल अँग्रेज एवं अमेरिकन ही नहीं, लाखों रूसी और चीनीतक भगवान् श्रीकृष्णके तत्त्वको समझकर हिन्दू (सनातन)-धर्मकी शरणमें दीक्षित हो चुके हैं। वे सिर मुड़वाकर लम्बी-लम्बी चोटियाँ रखते हैं। माथेपर तिलक लगाते हैं तथा श्रीकृष्णलीलामृतके रस-पानसे भाव-विभोर होकर सड़कोंपर संकीर्तन करते हुए सभीको आश्चर्यचकित कर देते हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्णलीलाओंके दर्शन, चिन्तन, मनन एवं दिव्य प्रेरणासे संसारके असंख्य शीर्षस्थ बुद्धिजीवी भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण कर चुके हैं।

भगवल्लीला-चिन्तन

(श्रीराजेशजी पाठक, शास्त्री 'दीन')

भगवत्पादारविन्द-मकरन्द-रससार-सरोवरमें निमग्न जीव ही परम पुरुषार्थकी ओर अग्रसर होता है। वह परब्रह्म परमात्मा भगवान् निर्गुण-निराकार है एवं अपने भगवत्-भागवत-परायण भक्तोंके लिये अकारण-करुण-करुणावरुणालय लोकमङ्गलकारी श्रीराम-कृष्णादिके रूपमें सगुण-साकार भी है। सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त परब्रह्म परमेश्वर ही भगवान् हैं।

भगवान्‌की लीला-रस-माधुरीका रसास्वादन करनेहेतु बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र भी बलात् खिंचे चले आते हैं। शेष-महेशादि भी अनन्तानन्दकी लीलाओंमें सदा निमग्न रहते हैं। उस भगवान्‌की लीलाएँ अद्भुत एवं असंख्य हैं।

परब्रह्म परमात्मा भगवान्‌की रसमयी मधुमयी सुमधुर लीलाओंका चिन्तन योगी एवं भक्तजन करते रहते हैं। भगवान्‌की अति मधुर लीलाओंका चिन्तन उनके परम प्रिय नित्य-सेवकोंको ही लभ्य है, वे धन्यातिधन्य हैं। भगवान्‌के मङ्गलमय नामका चिन्तन, सुमनोहारि त्रिभङ्गललित बाँकी-झाँकीका चिन्तन, उस प्यारे-दुलारे नटवरनागर गोपीजनवल्लभकी सुमधुर लीलाओंका चिन्तन तथा व्रज, अवध एवं वैकुण्ठ आदि धामोंका चिन्तन—ये सभी भगवत्तत्त्वको प्राप्त करानेवाले हैं।

भगवत्तत्त्व-विमर्श—अब 'भगवत्' शब्दके अर्थपर विचार करते हैं। भगवत् '**भग**' शब्दसे '**मतुप्**' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है।

पुराणोंकी दृष्टिसे 'भगवत्' शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(श्रीमद्भा० १। २। ११)

तत्त्ववेत्ता महापुरुष इसे तत्त्व कहते हैं। निरतिशय बृहद् होनेसे वही तत्त्व ब्रह्म है। सबका अन्तरात्मा होनेके कारण परमात्मा एवं समस्त भजनीय गुणोंसे युक्त होनेके कारण यही तत्त्व 'भगवान्' नामसे निरूपित होता है।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि ....।
..सत्यं परं धीमहि॥

(श्रीमद्भा० १। १। १)

श्रीमद्भागवतके इस प्रथम श्लोकके अनुसार भगवान् ही जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका जनक है, वही स्वयम्प्रकाश है, सर्वज्ञ है, ब्रह्माको वेदोंका ज्ञान देनेवाला है, जिसके सम्बन्धमें विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं एवं जो त्रिगुणात्मिका मायासे परे है, उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं। इसमें भी सत्यस्वरूप भगवान्‌का ही महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

'भगवान्' शब्दकी व्याख्या विष्णुपुराण (६। ५। ७४)-के अनुसार इस प्रकार है—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान एवं समग्र वैराग्य—इन छः भगोंसे युक्त तत्त्व ही भगवान् है।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

(विष्णुपु० ६। ५। ७८)

इन चराचरात्मक प्राणियोंकी उत्पत्ति, विनाश, विद्या-अविद्या एवं गमनागमनको जो जानता है, वही 'भगवान्' नामसे शास्त्रोंमें वर्णित किया गया है।

लीलातत्त्व-विमर्श—'लीला' शब्द श्लेषार्थक '**लीङ् श्लेषणे**' धातुसे '**क्विप्**' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है—आश्लेष अर्थात् परब्रह्म परमात्माका—भगवान्‌का जिसके द्वारा मिलन हो जाय, संयोग हो जाय, संश्लेष प्राप्त हो जाय; उसका नाम 'लीला' है। '**ली**' माने हृदयसे लगाना, '**ला**' माने ग्रहण करना (**ला आदाने**)। जो हमको भगवान्‌के हृदयसे लगा दे, ग्रहण करा दे—मिला दे, उसका नाम 'लीला' है। सत्य-स्वरूप भगवान्‌का संश्लेष-संस्पर्श ही लीलाका अर्थ है। यह भगवान्‌की लीला-रसस्वरूप है, अमृतस्वरूप है एवं इस रसमय लीलाके द्वारा प्राणी आनन्दमय हो जाता है।

ब्रह्म चिन्मय, अद्वितीय, निष्कल एवं अशरीर है। उसे उपासकों (भक्तों)-की कार्यसिद्धिहेतु तथा अपनी लीलाओंके लिये इस धराधामपर अवतार ग्रहण करना पड़ता है। उसे भक्तोंके विशुद्ध भावोंमें अवश्य ही आना होता है। '**आनन्दो**

ब्रह्मेति व्यजानात्' और वही ब्रह्मानन्द-लीलारस-ब्रह्म साँवरा-सलोना अवधराजकिशोर होकर अवधमें आया, व्रजमें आया एवं अनन्त अद्भुत लीलाओंका प्रदर्शन किया, जिसके दर्शनार्थ मुक्त-सिद्ध-मुनि भी यहाँ आते हैं, एवं उसकी लीलाके मृग्य बनकर विचरते रहते हैं—

मुक्ताश्चापि लीलाविग्रहं कृत्वा भगवन्तं भजन्ति।

(नृसिंहताप० उप० शां० भाष्य)

यह बड़ी अद्भुत लीला है भक्तिकी। भगवान् परम स्वतन्त्र हैं, वे माया आदिसे मुक्त हैं, परंतु वे सर्व-सार-स्वरूप अपनी आह्लादिनी शक्तिको भक्तके हृदय-देशमें स्थित करके अपनी लीलाओंका विस्तार करते हैं—

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावनः।
लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु॥

(श्रीमद्भा० १। २। ३४)

इस प्रकार विश्वात्मा भगवान् मानव एवं निम्न प्राणियोंसे पूरित समस्त लोकोंका पालन करते हैं तथा लीलापूर्वक राम-कृष्ण आदि अनेक अवतारोंका नाट्य स्वीकार करते हैं, ताकि जीवको विशुद्ध सत्त्व-तत्त्वकी प्राप्ति हो जाय।

यो लीलालास्यसंलग्नो गतोऽलोलोऽपि लोलताम्।
तं लीलावपुषं बालं वन्दे लीलार्थसिद्धये॥

जो ब्रह्म स्वकार्य-सिद्धि-हेतु लीलापूर्वक लीला-लास्यमें संलग्न हैं, निमग्न हैं, उस लीलावपुधारी बालकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। भगवान्की लीला-कथामें तन्मय रहना ही जीवका परम सौभाग्य है।

चिन्तन-शब्द-विमर्श— चिन्तन '**चिति स्मृत्याम्**' धातुसे '**ल्युट्**' प्रत्यय होनेपर निष्पन्न होता है। जिसका अर्थ है स्मरण करना, स्मृति रखना। भगवान्की अति मधुर लीलाओंका चिन्तन करते रहना ही जीवका परम धर्म है। भगवल्लीलाओंका सुमधुर चिन्तन करते-करते भगवन्मय बन जाओगे, अमृताधिक्य बन जाओगे एवं प्रभुकी अनन्त लीलाओंका चिन्तन आपको लीलामय परमात्मा भगवान्से अवश्य ही मिला देगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।

व्रजांगनाएँ भगवान् श्रीकृष्णके मथुरागमनके बाद व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी उन अनन्त लीलाओंके चिन्तन-मनन एवं ध्यानमें सदैव तल्लीन रहती हैं—श्रीकृष्ण-प्रेममें खोयी रहती हैं। '**तत्सुखसुखित्वम्**' की कामना लिये गोपियाँ श्रीकृष्णरसकी सरितामें अवगाहन करती हुई निमग्न रहती हैं—

रसो वै सः। रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

देवर्षि नारदके शब्दोंमें भगवान्को प्राप्त करनेके लिये व्रजवनिताओंने तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपालादि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने पारिवारिक-सम्बन्धसे, तुम लोगों (पाण्डवों)-ने स्नेहसे एवं हम लोगोंने भक्तिसे अपने मनको भगवान्में लगाया है—

गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद् यूयं भक्त्या वयं विभो॥

(श्रीमद्भा० ७। १। ३०)

वैरकी ग्रन्थि बाँधकर कंस उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते एवं चलते-फिरते, सदा ही श्रीकृष्णके चिन्तनमें लगा रहता था—

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन् महीम्।
चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत् तन्मयं जगत्॥

(श्रीमद्भा० १०। २। २४)

हृषीकेश भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन कंसकी प्रत्येक क्रिया-अक्रियामें होने लगा था—हर काल, हर समय उसे श्रीकृष्ण ही दीखते थे। इस अनन्य चिन्तनके कारण ही उसे भगवत्सारूप्यकी उपलब्धि हुई।

भगवान्का चिन्तन किसी भी भावसे करो, कुभावसे करो, अन्तमें उनकी कृपा अवश्य होती है—

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा० च० मा० १। २८। १)

निष्कर्ष— भगवान्की लीलाएँ अनन्त एवं अद्भुत हैं, वेद-शास्त्र भी जिनका वर्णन करनेमें असमर्थता प्रकट करते हैं एवं नेति-नेति शब्दके द्वारा यही कहते रहते हैं कि भगवान्की लीलाओंकी 'इति' नहीं है। संसारके निर्माणसे आजतक जितनी भी वर्षाकी बूँदें गिरी हैं, जितने भी बालूके कण हैं एवं आकाशमें जितने भी तारे हैं उन सबकी गणना सम्भव है, परंतु परमात्माकी लीलाओंकी गणना सम्भव ही नहीं है। परब्रह्म परमात्मा लोकमें लीला-हेतु निर्गुण-निराकारसे नराकार बन जाता है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

उस प्यारे प्रभुकी लीला-माधुरीका अनुपम चिन्तन ही कल्याणकारी है। भगवल्लीला-चिन्तन करते-करते भगवन्मय बन जाओ एवं लीला-चिन्तनके साथ-ही-साथ अपनी जीवन-लीलाको भी भगवल्लीला-चिन्तनमें विलीन कर दो।

पञ्चदेवोंके लीला-आख्यान

[इस सृष्टिके कर्ता-धर्ता-हर्ता एकमात्र ईश्वर ही हैं। ये ही परमदेव हैं। शास्त्रोंके अनुसार एक, अनन्त, अखण्ड, अद्वय, निर्गुण-निराकार, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप सच्चिदानन्द ही परमतत्त्व हैं। इनका न कोई नाम है, न रूप। न क्रिया है, न सम्बन्ध और न कोई गुण है, न कोई जाति ही है। तथापि इनमें गुण-सम्बन्धका आरोपण करके कहीं इन्हें विष्णु, कहीं शिव, कहीं देवी, कहीं गणेश और कहीं सूर्यनारायण कहा गया है—ये पाँचों भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। प्रत्येक सगुण-साकार ब्रह्मके एक-एक रूप हैं। इन एक-एक देवोंकी विभिन्न अवतार-लीलाएँ होती हैं तथा अपनी रुचिके अनुसार व्यक्ति किसी एकको अपना इष्ट मानकर उसकी उपासना तथा उसकी लीलाओंका चिन्तन करता है। यहाँ हम पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतार-लीलाओंका आख्यान प्रस्तुत करते हैं।—सम्पादक]

लीलावपु भगवान् श्रीगणेशका लीला-वैचित्र्य

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, गणपतिखण्ड १३। ३२)

भगवान्‌के लीला-अवतारोंके चरित विभिन्न पुराणों-शास्त्रोंमें विभिन्न रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। भगवान् लीला-विहारी सर्वसमर्थ हैं एवं कल्पभेदसे उनके अनन्त अवतार हुए हैं; अतएव उनके चरित भी अनन्त हैं। '***हरि अनंत हरिकथा अनंता***'से संतशिरोमणि श्रीतुलसीदासजीने इसी भावको स्पष्ट किया है। वस्तुतः भगवान्‌के सभी चरित यथार्थ हैं एवं भक्तोंके प्राण हैं। प्रस्तुत प्रसंगका अध्ययन करते समय इस तथ्यको निरन्तर स्मृतिमें रखना चाहिये; तभी भगवान् श्रीगणेशकी लीलाओंके आस्वादनका वास्तविक आनन्द एवं फल प्राप्त हो सकेगा।

सिद्धि-सदन श्रीगणेश सर्वात्मा शिव और धर्ममध्यनिवासिनी पार्वतीके प्राणप्रिय पुत्र तथा परम तेजस्वी, परम पराक्रमी षडाननके अग्रज हैं। कहीं-कहीं ये स्वयं उनके अनुज माने जाते हैं। ये खर्व (छोटे कदवाले), अरुणवर्ण, एकदन्त, गजमुख, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, अरुण-वस्त्र, त्रिपुण्ड्रतिलक, मूषकवाहन, पार्वती-पुत्र, विद्या-वारिधि एवं मङ्गलमूर्ति हैं। भगवान् गणपति बुद्धिके अधिष्ठाता हैं और साक्षात् प्रणवरूप हैं। भौतिक सिद्धि प्राप्त करनेवालोंको चाहिये कि वे गणेशजीकी उपासना करें, क्योंकि पार्वतीनन्दन अत्यल्प श्रमसे ही मुदित और द्रवित हो जाते हैं। इन मङ्गलवपुके नाम-स्मरण, ध्यान, जप, आराधना एवं प्रार्थनासे मेधाशक्ति तीव्र होती है, समस्त कामनाओंकी पूर्ति और विघ्नोंका निवारण हो जाता है। त्रयतापका शमन हो जाता है एवं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष हस्तामलकवत् हो जाते हैं। मोदक-प्रिय गजमुखकी प्रसन्नतासे निरन्तर आनन्द-मङ्गलकी वृद्धि होती ही रहती है।

वेदविहित समस्त कर्मोंमें प्रथमपूज्य अम्बिकानन्दन गणेश नित्यदेवता हैं, किंतु भिन्न-भिन्न कालों एवं अवसरोंपर जगत्‌के मङ्गलके लिये इनका मङ्गलमय लीला-प्राकट्य होता है। इनकी लीला और इनके कर्म अद्भुत और अलौकिक होते हैं। करुणामूर्ति गणेश सदा ही अधर्म, अनीति, अनाचार एवं पाप-तापका शमन करते हुए साधु-

परित्राण एवं सद्धर्मकी स्थापनाकर उसका संवर्धन करते हैं।

बुद्धि-विधाता गणपतिका प्राकट्य, उनका मङ्गलमय विग्रह एवं उनकी लीलाएँ सभी अद्भुत एवं अलौकिक हैं— आनन्दमयी एवं मङ्गलप्रदायिनी हैं। भक्तप्राणधन वृषभध्वजके पुत्र गजमुखकी विभिन्न काल-क्रमोंकी विभिन्न लीला-कथाएँ अनुपम, आदर्श एवं मनोहर हैं। उन कथाओंमें शंका उचित नहीं—

मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजेउ संभु भवानि।
कोउ सुनि संसय करै जनि सुर अनादि जियँ जानि॥

(रा०च० मा० १। १००)

भगवान् गणेशका प्राकट्य एवं उनकी लीलाएँ

(१)

हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीका पाणिग्रहण करनेके बाद भगवान् शंकर रमणीय उद्यानों और एकान्त वनोंमें उनके साथ विहार करने लगे। परमानन्द-प्रदायिनी भवानीके प्रति शुद्धात्मा शिवके हृदयमें अत्यधिक अनुराग था। एक बारकी बात है—शंकरेच्छानुवर्तिनी पार्वतीने सुगन्धित तैल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीके समान था। क्रीडा करते हुए उन्होंने उस गजमुख पुरुषाकृतिको पुण्यसलिला गङ्गाजीके जलमें डाल दिया। त्रैलोक्यतारिणी गङ्गाजी त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीको अपनी सहेली मानती थीं। उनके पुण्यमय जलमें पड़ते ही वह पुरुषाकृति विशालकाय हो गयी। प्रथम तो शंकरार्धशरीरिणी माता पार्वतीने उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा, फिर सुरसरिने भी उसे 'पुत्र' कहकर सम्बोधित किया तथा देव-समुदायने 'गाङ्गेय' कहकर सम्मान प्रदान किया। इस प्रकार गजवदन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। कमलोद्भव ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

(२)

एक बारकी बात है। देवताओंने परस्पर विचार किया कि 'प्रायः सभी असुर सृष्टिस्थित्यन्तकारी वृषभध्वज एवं चतुर्मुखकी आराधना करके उनसे इच्छित वर प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण युद्धमें हम उनसे सदा पराजित होते रहते हैं और हमें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। अतः हम लोग दैत्योंके कार्यमें विघ्न उपस्थित करने, उनपर विजय प्राप्त करने तथा सर्वसिद्धि-प्राप्तिके लिये आशुतोष शिवसे प्रार्थना करें।'

सुर समुदाय पार्वतीवल्लभ शिवके समीप पहुँचकर उनकी स्तुति करने लगा। वृषभध्वज प्रसन्न हुए और उन्होंने देवताओंसे कहा—'अभीष्ट वर माँगो।'

'करुणामूर्ति प्रभो!' देवताओंकी ओरसे बृहस्पतिने निवेदन किया—'देव-शत्रु दानवोंकी उपासनासे संतुष्ट होकर आप उन्हें वर-प्रदान कर देते हैं और वे समर्थ होकर हमें अत्यन्त कष्ट पहुँचाते हैं। उन सुरद्रोही दनुजोंके कर्ममें विघ्न उपस्थित हुआ करे, हमारी यही कामना है।'

'तथास्तु।' परम संतुष्ट वरद आशुतोषने सुर-समुदायको आश्वस्त किया।

कुछ ही समय बाद सर्वलोकमहेश्वर शिवकी सती पत्नी पार्वतीके सम्मुख परब्रह्मस्वरूप स्कन्दाग्रजका प्राकट्य हुआ। उक्त परम तेजस्वी बालकका मुख हाथीका था। उसके एक हाथमें त्रिशूल तथा दूसरे हाथमें पाश था।

सर्वविघ्नेश मोदक-प्रियके धरतीपर अवतरित होते ही देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक सुमन-वृष्टि करते हुए गजाननके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। गजमुख अपने कृपाविग्रह माता-पिताके सम्मुख आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे।

त्रैलोक्यतारिणी दयामयी हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीने अपने समस्त मङ्गलालय पुत्रको अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र वस्त्राभरण पहनाये। देवाधिदेव महादेवने प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणप्रिय पुत्रका जातकर्मादि संस्कार करवाया। तदनन्तर उन्होंने अपने पुत्रको प्रेमपूर्वक गोदमें उठाकर वक्षसे सटा लिया। फिर सर्वदुरितापहारी कल्याणमूर्ति शिवने अपने पुत्रसे कहा—

'मेरे पुत्र गणेश! यह तुम्हारा अवतार दैत्योंका नाश करने तथा देवता, ब्राह्मण एवं ब्रह्मवादियोंका उपकार करनेके लिये हुआ है। देखो, यदि पृथ्वीपर कोई दक्षिणाहीन यज्ञ करे तो तुम स्वर्गके मार्गमें स्थित हो उसके धर्मकार्यमें विघ्न उत्पन्न करो; अर्थात् ऐसे यज्ञकर्ताको स्वर्ग मत जाने दो। जो इस जगत्‌में अनुचित ढंगसे—अन्यायपूर्वक अध्ययन, अध्यापन, व्याख्यान और दूसरा कार्य करता हो, उसके प्राणोंका तुम सदा ही हरण करते रहो। नरपुंगव प्रभो! वर्णधर्मसे च्युत स्त्री-पुरुषों तथा स्वधर्मरहित व्यक्तियोंके भी प्राणोंका तुम अपहरण करो। विनायक! जो स्त्री-पुरुष ठीक समयपर सदा तुम्हारी पूजा करते हों, उनको तुम अपनी

समता प्रदान करो। हे बाल गणेश्वर! तुम पूजित होकर अपने युवा एवं बूढ़े भक्तोंकी भी सब प्रकारसे इस लोकमें तथा परलोकमें भी रक्षा करना। तुम विघ्नगणोंके स्वामी होनेके कारण तीनों लोकोंमें पूज्य एवं वन्दनीय होओगे, इसमें संदेह नहीं। जो लोग मेरी, भगवान् विष्णुकी अथवा ब्रह्माजीकी भी यज्ञोंद्वारा अथवा ब्राह्मणोंके माध्यमसे पूजा करते हैं, उन सबके द्वारा तुम पहले पूजित होओगे। जो तुम्हारी पूजा किये बिना श्रौत, स्मार्त या लौकिक कल्याणकारक कर्मोंका अनुष्ठान करेगा, उसका मङ्गल भी अमङ्गलमें परिणत हो जायगा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंद्वारा भी तुम सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये भक्ष्य-भोज्य आदि शुभ पदार्थोंसे पूजित होओगे। तीनों लोकोंमें चन्दन, पुष्प, धूप-दीप आदिके द्वारा जो तुम्हारी पूजा किये बिना ही कुछ पानेकी चेष्टा करेंगे, वे देवता हों अथवा और कोई, उनका अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। जो लोग तुझ विनायककी पूजा करेंगे, वे निश्चय ही इन्द्रादि देवताओंद्वारा भी पूजित होंगे, परंतु यदि वे फलकी कामनासे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र अथवा अन्य देवताओंकी तो पूजा करें, किंतु तुम्हारी पूजा न करें, तब तुम उन्हें विघ्नोंद्वारा बाधा पहुँचाना।'

सर्वात्मा प्रभु शिवका आशीर्वाद प्राप्तकर भगवान् गणपतिने विघ्नगणोंको उत्पन्न किया और उन गणोंके साथ उन्होंने भगवान् शंकरके मङ्गलमय चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया; फिर वे त्रैलोक्यपति पशुपतिके सम्मुख खड़े हो गये। तबसे लोकमें श्रीगणपतिकी अग्रपूजा होती है। इसके बाद श्रीगणेशजीने दैत्योंके सुरद्रोही कर्मोंमें विघ्न पहुँचाना आरम्भ कर दिया।

(लिङ्गपुराण)

(३)

ब्रह्मवैवर्तपुराणके अनुसार शिव-प्राणवल्लभा पार्वतीके मङ्गलमय अङ्कमें श्रीकृष्णरूपी परमतत्त्व ही व्यक्त हुआ था, वह पाप-संतापहारिणी एवं निखिलानन्दवर्द्धिनी कथा भगवान् श्रीनारायणने देवर्षि नारदको इस प्रकार सुनायी थी—वैराग्यज्ञाननिरता शैलपुत्री पार्वतीके साथ सर्वसाक्षी वृषभध्वजके मङ्गल-परिणयके अनन्तर चराचरात्मा शिव उन्हें साथ लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक देवाधिदेव महादेवका विहार चलता रहा। एक दिन धर्मज्ञा पार्वतीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो! मैं एक श्रेष्ठ पुत्र चाहती हूँ।'

'प्रिये! मैं तुम्हें सम्पूर्ण व्रतोंमें एक श्रेष्ठ व्रत बताता हूँ, जो सम्पूर्ण अभीष्ट-सिद्धिका बीजरूप, परम मङ्गलदायक तथा हर्ष प्रदान करनेवाला है।' सर्वभूतपति भगवान् त्रिपुरारिने त्रैलोक्यसुन्दरी पार्वतीसे मुदित मनसे कहा—'उस परम शुभद व्रतका नाम 'पुण्यक' है। तुम श्रीहरिका स्मरणकर यह व्रत प्रारम्भ करो। इसके अनुष्ठानकी पूर्ति एक वर्षमें होती है।'

'इस व्रतके फलस्वरूप श्रीहरिके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति हो जाती है और भुवन-विख्यात पुत्र, सौन्दर्य, पति-सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं अपरमिति धनकी प्राप्ति होती है। यह महान् व्रत प्रत्येक जन्ममें वाञ्छित सिद्धियोंका बीज है।'

पाप-संतापहारिणी भगवती पार्वती अपने सर्वलोकमहेश्वर पतिके अमृतमय वचनोंसे आनन्द-विभोर हो गयीं और तपके विधाता भगवान् चन्द्रमौलि पार्वतीको सदुपदेश देकर चले गये।

हिमगिरिनन्दिनी उमाने अपने पतिकी आज्ञासे प्रसन्नतापूर्वक महान् 'पुण्यक-व्रत' के अनुष्ठानका सुदृढ़ निश्चय करके पुष्प और फल आदि व्रतोपयोगी सामग्रियोंको एकत्र करनेके लिये ब्राह्मणों तथा भृत्योंको प्रेरित किया। सभी वस्तुओंके एकत्र हो जानेपर वेद-विद्या-प्रकाशिनी भगवती पार्वतीने शुभ मुहूर्तमें व्रतारम्भ किया और वे 'पुण्यक-व्रत'के पालनीय प्रत्येक नियमोंका वर्षपर्यन्त श्रद्धा एवं विश्वासके साथ सोल्लास पालन करती रहीं।

अस्वाभाविक दक्षिणा

'सुव्रते! मुझे दक्षिणा चाहिये।' व्रत-समाप्तिपर पुरोहितने देवी पार्वतीसे कहा।

'मैं मुँहमाँगी दक्षिणा दूँगी।' परम तपस्विनी अम्बिकाने पुरोहितसे कहा—'आप कौन-सा दुर्लभ पदार्थ चाहते हैं?'

'देवि! इस व्रतमें दक्षिणास्वरूप मुझे अपने पतिको दे दो।' पुरोहितने अस्वाभाविक दक्षिणाकी याचना की।

सर्वथा अकल्पित, अनभ्र वज्रपात-जैसी निष्ठुर वाणी सुनकर देवी उमा व्याकुल होकर विलाप करती हुई वहीं मूर्च्छित हो गयीं।

निखिल-सृष्टि-नियामिका मोहनाशिनी भगवती पराम्बाको मूर्च्छित देखकर लोकपितामह ब्रह्मा, विष्णु एवं मुनियोंको हँसी आ गयी। तब उन्होंने पार्वतीको समझानेके लिये उमापति महादेवको भेजा।

'धर्मिष्ठे! उठो; निश्चय ही तुम्हारा मङ्गल होगा।'

पार्वतीको होशमें लानेके लिये उन्हें समझाते हुए आशुतोषने अनेक धर्ममय वचन कहे। उनकी चेतना लौट आनेपर देवदेव महादेवने कहा—'देवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नैमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणासे रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता है; और उस कर्मसे दाता निश्चय ही कालसूत्र नामक नरकमें गिरता है। उसके बाद वह दीन होकर शत्रुओंसे पीडित होता है। ब्राह्मणको संकल्प की हुई दक्षिणा उसी समय न देनेसे वह बढ़कर कई-गुनी हो जाती है।'

क्षीरोदधिशायी विष्णु और कमलासनने भी पार्वतीसे धर्म-रक्षाके लिये अनुरोध किया। स्वयं धर्मने कहा—'साध्वि! पुरोहितकी अभीष्ट दक्षिणा देकर मेरी रक्षा करो। महासाध्वि! मेरे सुरक्षित रहनेपर प्रत्येक रीतिसे मङ्गल होगा।' देवताओंने भी यही बात कही। मुनियोंने भी हवन पूरा करके दक्षिणा देनेकी प्रेरणा देते हुए कहा—'धर्मज्ञे! हम लोगोंके यहाँ रहते तुम्हारा अकल्याण सम्भव नहीं।'

'शिवे! या तो तुम मुझे दक्षिणामें अपने सर्वेश्वर पतिको प्रदान करो या अपने दीर्घकालीन कठोर तपका फल भी त्याग दो।' ब्रह्माके तेजस्वी पुत्र सनत्कुमारने देवी पार्वतीसे सुस्पष्ट कहा—'साध्वि! इस प्रकार इस महान् कर्मकी दक्षिणा न मिलनेपर मैं इस दुर्लभ कठोर व्रतका फल ही नहीं, यजमानके (तुम्हारे) समस्त कर्मोंका फल भी प्राप्त कर लूँगा।'

'देवाधिपो! पतिसे वञ्चित हो जानेवाले कर्मसे क्या लाभ?' अत्यन्त उद्विग्न सत्यस्वरूपा परम सती पार्वतीने देवताओंसे कहा—'दक्षिणा देनेसे तथा धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे मेरा क्या हित होगा? पृथ्वीदेवीकी उपेक्षाकर वृक्षकी पूजासे क्या प्राप्त हो सकेगा? यदि बहुमूल्य प्राण ही विसर्जित हो जायँ तो शरीरकी रक्षा कैसे होगी?'

अत्यधिक दुःखसे शिवप्रियाने आगे कहा—'देवेश्वरो! साध्वी स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंके समान होता है। ऐसी स्थितिमें यदि व्रतमें अपने पतिकी ही दक्षिणा दे दी जाय तो पुत्रसे क्या लाभ होगा? पुत्र पतिका ही वंश होता है, किंतु उसका एकमात्र मूल तो पति ही होता है। मूलधनके नष्ट होनेपर तो समस्त व्यापार ही विनष्ट हो जायगा।'

उसी समय अन्तरिक्षमें देवताओं और ऋषियोंने एक बहुमूल्य रत्ननिर्मित रथ देखा, जो घननील पार्षदोंसे घिरा था। वे सभी पार्षद वनमालाधारी और रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। उस रथसे चतुर्भुज वैकुण्ठवासी श्रीनारायण उतरकर देवताओंके सम्मुख उपस्थित हुए। उन परम तेजस्वी, भक्त-प्राणधन, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीनारायणको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने एक श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर बैठाकर उनके पाप-तापहारी अभयद चरण-कमलोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और हाथ जोड़कर गद्गद कण्ठसे उनकी स्तुति की।

वहाँका सारा वृत्तान्त जानकर भक्त-भयहारी श्रीनारायणने अपने स्वरूप-तत्त्वकी विस्तृत व्याख्या करते हुए देवगणों और मुनियोंसे कहा—'शिवप्रिया पार्वतीका यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है, अपने लिये कदापि नहीं; क्योंकि ये तो स्वयं समस्त व्रतों एवं तपस्याओंका फल प्रदान करनेवाली हैं, इनकी मायासे ही चराचर जगत् मोहित है।'

फिर परम प्रभु श्रीनारायणने त्रैलोक्यवन्दिता उमासे कहा—'शिवे! इस समय तुम अपने पति महादेवको दक्षिणामें देकर अपना व्रत पूर्ण कर लो, पुनः समुचित मूल्य देकर अपने जीवनधनको वापस ले लेना। गौओंकी भाँति शिव भी विष्णुके शरीर हैं; अतः तुम ब्राह्मणको गोमूल्य प्रदानकर अपने पतिको लौटा लेना।'

इतना कहकर महामहिम त्रैलोक्यपावन श्रीनारायण वहीं अन्तर्धान हो गये। सृष्टिनायक श्रीनारायणके मुखारविन्दसे ये मङ्गलमय वचन सुनकर समस्त सुर-मुनि-समुदाय हर्षोत्फुल्ल हो गया। कलिकल्मषहन्त्री शिवा भी प्रसन्नमनसे अपने प्राण-सर्वस्वको दक्षिणामें देनेके लिये उद्यत हो गयीं।

भगवती पार्वतीने हवनकी पूर्णाहुति की और अपने जीवननाथ शिवको दक्षिणा-रूपमें दे दिया।

'स्वस्ति!' कहते हुए सनत्कुमारने दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयवश परम कोमलाङ्गी पार्वतीके कण्ठोष्ठ-तालु सूख गये।

'विप्रवर! गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर है।' अम्बिकाने दुःखी हृदयसे अत्यन्त मधुर एवं विनीत वाणीमें ब्राह्मणसे निवेदन किया—'मैं आपको अत्यन्त सुन्दर एक लाख गायें प्रदान करूँगी; इसके बदले आप मेरे जीवन-सर्वस्वको लौटा दें। अभी तो मैं आत्मासे रहित कोई भी कर्म करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ; प्राणनाथके मिल जानेपर मैं पुनः ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणाएँ प्रदान करूँगी।'

'देवि! मैं ब्राह्मण हूँ।' सनत्कुमारने सतीशिरोमणि पार्वतीसे कहा—'मैं एक लाख गौएँ लेकर क्या करूँगा? अरे! इस दुर्लभ रत्नके सम्मुख इन गौओंकी क्या तुलना? मैं परमधन इन दिगम्बरको अपने साथ लेकर त्रिलोकीमें भ्रमण करूँगा। उस समय समस्त बालक इन्हें देखकर प्रसन्नतापूर्वक ताली बजा-बजाकर अट्टहास करेंगे।'

इतना कहकर सनत्कुमारने उमानाथको अपने समीप बैठा लिया।

पार्वतीकी व्याकुलता और विश्वविमोहन श्रीकृष्णके दर्शन

'आह!' सुकोमलहृदया गिरिजा जलहीन मीनकी भाँति छटपटाने लगीं। मन-ही-मन वे सोचने लगीं—'कैसा दुर्भाग्य है कि मुझे न तो अभीष्ट देवका दर्शन प्राप्त हुआ और न व्रतका फल ही प्राप्त हो सका।' अधीर होकर परम सती हिमगिरितनया शरीर-त्यागके लिये प्रस्तुत हो गयीं।

उसी समय पार्वतीसहित देवता और ऋषियोंने शून्यमें कोटि-कोटि सूर्योंके प्रकाशसे भी परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उस प्रभा-पुंजसे समस्त दिशाएँ एवं विस्तृत कैलास देदीप्यमान हो गया था। उसकी मण्डलाकृति असीम एवं अनन्त थी। प्रभुके उस महान् तेजःपुंजको देखकर जगन्माता पार्वतीने भगवान् शिवकी प्रेरणासे व्रतके उन आराध्यदेवका गुणगान करते हुए कहा—'परमात्मन्! मैं पुत्र-दुःखसे दुःखी होकर आपकी स्तुति कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ; परंतु अङ्गोंसहित वेदके विधानानुसार इस व्रतमें अपने पतिकी दक्षिणा दी जाती है, यह अत्यन्त दारुण कार्य है। दयामय! यह सब समझकर आप मुझपर दया कीजिये।'

भगवती पार्वती श्रीकृष्णके ध्यानमें तल्लीन थीं, उस समय उस असीम एवं महान् तेजोराशिके मध्य उन्होंने अद्भुत रूप-लावण्य-सम्पन्न विश्वविमोहन श्रीकृष्ण-स्वरूपका दर्शन किया। वह हीरकजटित बहुमूल्य रत्ननिर्मित आसनपर आसीन एवं मणियोंकी मालासे सुशोभित था। नवनीरद-वपुपर अद्भुत पीताम्बरकी अवर्णनीय शोभा थी। रत्नाभरणोंसे अलंकृत उस अनुपम विग्रहके कर-कमलोंमें पीयूषवर्षिणी मुरली विद्यमान थी। उनके ललाटपर चन्दनकी खौर और मस्तकपर मनको मोहित करनेवाला सुन्दर मयूरपिच्छ था। उस अनुपम सौन्दर्यकी तुलना कहीं सम्भव नहीं थी।

ऐसे भुवनमोहन अनूप रूपको देखकर भगवती पार्वती उसीके सदृश पुत्रकी कामना करने लगीं और उसी क्षण उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इतना ही नहीं, उस समय शिवाने जो-जो कामनाएँ कीं, वे सब पूरी हुईं। देवताओंके भी अभीष्टकी पूर्ति हुई। तदनन्तर वह तेज वहीं तिरोहित हो गया।

तब सुर-समुदायने ब्रह्मपुत्र सनत्कुमारको समझाया और उन्होंने दिगम्बर शिवको उनकी प्राणेश्वरी शिवाको लौटा दिया।

फिर तो भगवती पार्वतीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। जगज्जननीने ब्राह्मणोंको बहुमूल्य रत्न प्रदान किये। वन्दियों एवं भिक्षुओंको स्वर्ण-राशि देकर ब्राह्मणों एवं देवताओंको परम सुस्वादु व्यञ्जनोंका भोजन कराया।

महिमामयी भवानीने अलौकिक उपहारोंसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक अपने प्राणनाथ देवदेव महादेवकी पूजा की। देववाद्य बजने लगे। अनेक माङ्गलिक कार्योंके साथ-साथ श्रीहरिसे सम्बन्धित गाये गये माङ्गलिक गीतोंसे वह शुभ स्थान ध्वनित हो उठा। सर्वत्र आनन्द और उल्लासका साम्राज्य व्याप्त हो गया।

इस प्रकार सनातनी उमाका पवित्रतम 'पुण्यक-व्रत' सम्पन्न हुआ। पराम्बाने विपुल रत्नराशिका दान करके सबको भोजन कराया। तदनन्तर उन्होंने अपने जीवनधन धर्माध्यक्ष शिवके साथ स्वयं भी भोजन किया; फिर सबको कर्पूरादिसे सुवासित ताम्बूल देकर उन्होंने भगवान् शिवके साथ स्वयं भी उसे ग्रहण किया। इसके अनन्तर जगदम्बा प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिके साथ एकान्तमें चली गयीं।

परब्रह्मका प्राकट्य

'महादेव! मैं क्षुधा और तृषाधिक्यसे व्याकुल अत्यन्त दीन और दुर्बल ब्राह्मण भोजनकी इच्छासे बड़ी दूरसे चलकर आपकी शरणमें आया हूँ।' एक दीन-हीन ब्राह्मण सर्वसम्पत्समन्विता पार्वतीके द्वारपर आया और क्षुधा-निवारणार्थ भोजनकी याचना करते हुए कहा—'शिव! आप क्या कर रहे हैं? जगन्माता पार्वती शीघ्र आओ। माताके रहते पुत्र भूखा कैसे रह सकता है?'

भगवान् शंकर और पार्वती द्वारपर आये। अत्यधिक दुर्बल ब्राह्मण किसी प्रकार उनके चरणोंमें प्रणामकर स्तुति करने लगा। उसके मधुरातिमधुर वचन सुनकर शिव-पार्वती दोनों प्रसन्न हो गये।

'विप्रवर! आप कहाँसे पधारे हैं?' भगवान् शंकरने अशक्त वृद्ध ब्राह्मणसे पूछा—'कृपया बताइये आपका शुभ नाम क्या है?'

'वेदज्ञ ब्राह्मण! आपका आगमन कहाँसे हुआ है?'

धर्ममयी पार्वतीने भी बड़े प्रेमसे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने अतिथिके रूपमें मेरे द्वारपर पधारनेका कष्ट किया। अभीष्ट अतिथिकी सेवाकी अमित महिमा है।'

'माता! आप वेदोक्त-विधिसे मेरी पूजा कीजिये।' वृद्ध ब्राह्मणने काँपते हुए कहा—'उपवासव्रती, रोगग्रस्त एवं क्षुधार्त व्यक्ति स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है। मैं तृषा-क्षुधासे आकुल हूँ।'

'द्विजसत्तम! आप क्या भोजन करना चाहते हैं?'

साक्षात् अन्नपूर्णाने कहा—'आपका त्रैलोक्यदुर्लभ अभीष्ट पदार्थ मैं आपकी सेवामें उपस्थित कर दूँगी। आप मुझे आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।'

'माता! मैं आप पुत्रहीनाका अनाथ पुत्र हूँ।' ब्राह्मणने रुक-रुककर धीरे-धीरे कहा—'मैंने सुना है, आपने महान् **'पुण्यक-व्रत'** सम्पन्न किया है। उसके लिये दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र हुई होंगी। उन अद्भुत पक्वान्नों एवं मिष्टान्नोंसे आप मेरी पूजा कीजिये। इसके अनन्तर सुवासित निर्मल तथा स्वादिष्ठ जल और सुवासित श्रेष्ठ ताम्बूल प्रदान कीजिये। ये दुर्लभ पदार्थ इतना खिलाइये, जिससे मेरी तोंद सुन्दर हो जाय, मैं लम्बोदर हो जाऊँ।'

'आपके आशुतोष पति सृष्टिकर्ता एवं सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाले हैं और आप सम्पूर्ण सत्कीर्तियोंको प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं। अतः आप मुझे रमणीय रत्नसिंहासन, बहुमूल्य रत्नाभरण, अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र, अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति, मृत्युञ्जय नामक ज्ञान, सुखदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिये।'

'सती माता! पुत्रके लिये आपको क्या अदेय है?' वृद्ध ब्राह्मण धीरे-धीरे कहते जा रहे थे—'मैं तप एवं उत्तम धर्मका पालन करते हुए समस्त कर्मोंका पालन करूँगा; किंतु जन्म-जरा-व्याधि और मृत्युके हेतुभूत कर्मोंका स्पर्श भी नहीं करूँगा।'

इस प्रकार संसारकी असारता एवं भगवद्भक्तिका माहात्म्य-गान करते हुए ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, तेजस्वी कृशकाय ब्राह्मणने अन्तमें कहा—'समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली माता! आप नित्यस्वरूपा सनातनी देवी होकर भी लोकशिक्षाके लिये पूजा और तपश्चरण करती हैं। प्रत्येक कल्पमें गोलोकवासी श्रीकृष्ण गणेशके रूपमें आपके अङ्कमें प्रकट होकर क्रीडा करते हैं।'

इतना कहते-कहते अशक्त वृद्ध ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर परम साध्वी, परम मङ्गलमयी एवं परम धन्या माता पार्वतीकी शय्यापर नवजात शिशुके रूपमें लेटकर छतकी ओर देखने लगे—

शुद्धचम्पकवर्णाभः कोटिचन्द्रसमप्रभः।
सुखदृश्यः सर्वजनैश्चक्षूरश्मिविवर्धकः॥
अतीव सुन्दरतनुः कामदेवविमोहनः।
मुखं निरुपमं बिभ्रच्छारदेन्दुविनिन्दकम्॥
सुन्दरे लोचने बिभ्रच्चारुपद्मविनिन्दके।
ओष्ठाधरपुटं बिभ्रत् पक्वबिम्बविनिन्दकम्॥
कपालं च कपोलं च परमं सुमनोहरम्।
नासाग्रं रुचिरं बिभ्रत् खगेन्द्रचञ्चुनिन्दकम्॥
त्रैलोक्येषु निरुपमं सर्वाङ्गं बिभ्रदुत्तमम्।
शयानः शयने रम्ये प्रेरयन् हस्तपादकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ८ । ८५—८९)

'उस बालकके शरीरकी आभा शुद्ध चम्पकके समान थी। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। सब लोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी ज्योतिको बढ़ानेवाला था। उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर कामदेवको विमोहित करनेवाला था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रका उपहास कर रहा था। उसके सुन्दर नेत्र मनोहर कमलको तिरस्कृत करनेवाले थे। ओष्ठ और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ

बिम्बफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। रुचिर नासिका गरुडकी चोंचको भी तिरस्कृत करनेवाली थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह शय्यापर सोया हुआ रमणीय शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।'

किंतु अत्यन्त कृशकाय वृद्ध ब्राह्मणवेषधारी अतिथिके अकस्मात् अन्तर्हित हो जानेपर परमादर्श गृहिणी पार्वती व्याकुल हो गयीं। उन्होंने अपने प्राणपति शिवजीको उन्हें ढूँढ़नेके लिये कहा और स्वयं दुःखी होकर कहने लगीं—'तृषा-क्षुधासे आकुल ब्रह्मन्! आप कहाँ चले गये? भूखसे पीड़ित अतिथिके द्वारसे चले जानेपर गृहस्थका जीवन व्यर्थ चला जाता है।'

'जगज्जननी! शान्त हो जाओ।' अतिथिदेवके अचानक अन्तर्हित हो जानेपर छटपटाती हुई अम्बिकाने आकाशवाणी सुनी—'मन्दिरमें जाकर अपने पुत्रको देखो। 'पुण्यक-व्रत' के फलस्वरूप परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण ही तुम्हारे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।'

यत्तेजो योगिनः शश्वद् ध्यायन्ते सततं मुदा॥
ध्यायन्ते वैष्णवा देवा ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
यस्य पूज्यस्य सर्वाग्रे कल्पे कल्पे च पूजनम्॥
यस्य स्मरणमात्रेण सर्वविघ्नो विनश्यति।
पुण्यराशिस्वरूपं च स्वसुतं पश्य मन्दिरे॥
कल्पे कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम्।
पश्य त्वं मुक्तिदं पुत्रं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
तव वाञ्छापूर्णबीजं तपः कल्पतरोः फलम्।
सुन्दरं स्वसुतं पश्य कोटिकन्दर्पनिन्दकम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिख० ९ । ९—१३)

'योगी लोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्न-मनसे निरन्तर ध्यान करते हैं, वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं, प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं तथा जो पुण्यराशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रकी ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योतिरूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। यह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्तरूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल और सुन्दरतामें करोड़ों कामदेवोंको तिरस्कृत करनेवाला है, अपने उस लावण्यमूर्ति पुत्रको तो देखो।'

आकाशवाणीने आगे अम्बिकाका भ्रम निवारण करते हुए कहा—'उस क्षुधार्त अतिथि वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें तुम्हारे सम्मुख साक्षात् जनार्दन ही उपस्थित हुए थे।'

'तुम प्रसन्नचित्त हो अपने देवाग्रगण्य सुन्दरतम पुत्रको देखो'—आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकारकी प्रेरणा प्राप्त होते ही माता पार्वती शीघ्रतासे अपने महलमें पहुँचीं। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत, परम सुन्दर, पद्मपत्राक्ष शिशुको अपनी शय्यापर लेटे हुए देखा। वह त्रैलोक्यसुन्दर तेजस्वी शिशु छतकी ओर निहार रहा था। उसके दिव्य अङ्गोंसे दिव्य तेज फैल रहा था। वह इधर-उधर अपने हाथ-पैर फेंक रहा था। परम पावनी माताका स्तनपान करनेके लिये वह क्रन्दन कर रहा था।

'प्राणनाथ! आप घर चलकर मन्दिरके भीतर तो देखिये।' हर्षोल्लासपूर्ण हृदयसे पुत्रवत्सला भगवती उमाने दौड़कर त्रिलोकैश्वर्यदायक भक्तवाञ्छाकल्पतरु शिवसे कहा—'सद्यः फलदायिनी आपकी ध्यानमूर्ति ही पुत्रके रूपमें प्रकट हुई है।'

भुजङ्गभूषण भी हर्षमग्न हो गये। वे तुरंत उठकर अपनी प्राणप्रियाके साथ घरमें गये। वहाँ उन्होंने शय्यापर तप्त-स्वर्ण-तुल्य कान्तिमान् अपने पुत्रको देखा। घोरदैत्यघ्न शिव प्रसन्न और चकित होकर सोच रहे थे—'अरे! मैं जिस परम

तेजस्विनी और परम मङ्गलमयी मूर्तिका ध्यान करता रहता हूँ, वह मूर्ति तो प्रत्यक्ष मेरे पुत्रके रूपमें मेरे सम्मुख मुस्कराती हुई क्रीडा कर रही है।'

सर्वानन्दप्रदायिनी पार्वतीके आनन्दकी सीमा न थी। उन्होंने पुत्रको अङ्कमें ले लिया और हर्षके आवेगमें उसका चुम्बन करने लगीं। आनन्दमग्ना नित्यरूपा पार्वतीने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—

सम्प्राप्यामूल्यरत्नं त्वां पूर्णमेव सनातनम्।
यथा मनो दरिद्रस्य सहसा प्राप्य सद्धनम्॥
कान्ते सुचिरमायाते प्रोषिते योषितो यथा।
मानसं परिपूर्णं च बभूव च तथा मम॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ९ । २७-२८)

'बेटा! जैसे दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर संतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिसे मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है।'

इस प्रकार कहती हुई माता पार्वती शिशुको अत्यन्त प्रेमसे अपना अमृतमय दूध पिलाने लगीं।

इसके अनन्तर चराचर प्राणियोंके आश्रय भगवान् शंकरने भी अत्यन्त प्रसन्नतासे अपने पुत्रको गोदमें उठा लिया। वहाँ पधारे सभी ऋषियों, मुनियों और सिद्धोंने नवजात शिशुको अनेक प्रकारके मङ्गलमय आशीर्वचन दिये। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर अपने हृदयका सम्पूर्ण आशीर्वाद प्रदान किया एवं वन्दियोंने समस्त मङ्गलकामनाएँ प्रकट कीं।

पार्वतीनन्दनका छिन्न मस्तक

उसी समय गौरीनन्दनके दर्शनार्थ प्रज्वलित अग्निशिखा-तुल्य दीप्तिमान्, पीताम्बरधारी, श्यामल सूर्यपुत्र शनैश्चर वहाँ पधारे।

सूर्यपुत्र शनैश्चरने अलौकिक भवनमें उस समय प्रवेश किया, जब वस्त्रालंकारभूषिता मङ्गलमयी जननी पार्वती नवागत शुभानन शिशुको गोदमें लेकर रत्नसिंहासनपर बैठी हुई प्रसन्नतासे मुसकरा रही थीं। पाँच सखियाँ उनके समीप खड़ी होकर श्वेत चँवर डुला रही थीं। शनैश्चरने त्रैलोक्यदुर्लभ जननी पार्वतीके पाद-पद्मोंमें मस्तक झुकाये श्रद्धा एवं प्रीतिपूर्वक प्रणाम किया। जगदम्बाने उन्हें आशिष् देकर उनसे कुशल-समाचार पूछा—

'ग्रहेश्वर! आपके नेत्र कुछ मुँदे हैं और आपने सिर झुका रखा है', सम्पूर्ण बाधाओं एवं कलाओंके अधिपतिकी जननी पार्वतीने धर्मात्मा शनैश्चरसे पूछा—'आप मेरी ओर और मेरे पुत्रकी ओर देख नहीं रहे हैं! इसका क्या हेतु है?'

'माता! सम्पूर्ण प्राणी अपने कर्मका ही फल भोगते हैं।' शनैश्चरदेवने सिर झुकाये कहा—'वे अपने शुभाशुभ कर्मोंसे ही सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। मेरी कथा गोपनीय है और माताके सम्मुख कहने योग्य नहीं है; तथापि आपकी आज्ञासे मैं उसे प्रकट कर दे रहा हूँ।'

'शंकरवल्लभे!' शनैश्चरदेवने आगे कहा—'बाल्यकालसे ही मेरे मनमें श्रीकृष्ण-पद-पद्मानुरक्ति थी। मैं प्रायः उन्हींके अत्यन्त सुखद ध्यानमें तल्लीन रहता था। सर्वथा विरक्त एवं तप-निरत था, किंतु मेरे पिताने चित्ररथकी पुत्रीसे मेरा परिणय करा दिया। मेरी पत्नी साध्वी, तेजस्विनी एवं तपस्विनी थी।

'एक दिनकी बात है; मेरी सहधर्मिणी ऋतुस्नानके अनन्तर उस समय मेरे समीप आयी, जब मैं भगवच्चरणोंके ध्यानमें तल्लीन सर्वथा बाह्यज्ञानशून्य था।'

'तुम जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे, वही नष्ट हो जायगा।' ऋतुकालके विफल होनेपर उसने दुःखी मनसे मुझे शाप दे दिया।

'यद्यपि ध्यानसे विरत होनेपर मैंने उसे संतुष्ट किया, किंतु वह पश्चात्ताप करनेपर भी शाप लौटानेमें समर्थ नहीं थी। इसी कारण मैं जीवहिंसाके भयसे अपने नेत्रोंसे किसीकी ओर नहीं देखता और सहज ही सदा सिर झुकाये रहता हूँ।'

शनैश्चरदेवकी बात सुनकर नर्तकियों और किंनरियोंके समुदायके साथ अनन्तानन्तसुखदायिनी जगदम्बा हँसने लगीं।

'सम्पूर्ण विश्व ईश्वरेच्छाके अधीन है।' सर्वकाम-फलप्रदायिनी जगदीश्वरीने ऐसा कहते हुए शनैश्चरदेवसे कहा—'तुम मेरी ओर तथा मेरे शिशुकी ओर देखो।'

'मैं पार्वतीनन्दनकी ओर देखूँ या नहीं ?' शनैश्चरदेव मन-ही-मन सोचने लगे। 'यदि मैं इस दुर्लभ बालककी ओर देखूँगा तो निश्चय ही इसका अनिष्ट हो जायगा; किंतु सर्वेश्वरी जननीकी आज्ञा कैसे टाली जाय?'

इस प्रकार सोचते हुए धर्मात्मा शनैश्चरदेवने धर्मको साक्षी देकर गिरिजाकी ओर तो नहीं, किंतु उनके पाप-संताप-हरण पुत्रकी ओर देखनेका निश्चय किया।

पहलेसे ही खिन्न शनैश्चरके कण्ठोष्ठतालु शुष्क हो गये थे; फिर भी उन्होंने वामनेत्रके कोनेसे केवल पार्वतीनन्दनकी ओर दृष्टिपात किया। शनैश्चरदेवकी शापग्रस्त दृष्टि पड़ते ही भगवान् शिव एवं भगवती उमाके प्राणप्रिय पुत्रका मस्तक धड़से पृथक् होकर गोलोकमें अपने अभीष्ट परात्पर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। अत्यन्त दुःखी शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और सिर झुकाकर खड़े हो गये।

अपने अङ्कमें दुर्लभतम कम्बुकण्ठ शिशुका रक्तसे लथपथ शरीर देखकर माता पार्वती चीत्कार कर उठीं। वे बालकका धड़ वक्षसे सटाये रोती-कलपती और विलाप करती उन्मत्तकी तरह इधर-उधर घूमती हुई मूर्च्छित होकर धरतीपर गिर पड़ीं। यह आश्चर्यजनक दृश्य देखकर वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा समस्त कैलासवासी अवसन्न हो गये। वे सभी निष्प्राण-से प्रतीत होने लगे।

पार्वती-पुत्र गजमुख हुए

मस्तकहीन रक्तस्नात पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करनेके बाद श्रीहरिने सबको मूर्च्छित देखा तो तुरंत गरुडपर विराजमान हो तीव्रगतिसे उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने पुष्पभद्रा नदीके तटपर एकान्त वनमें हथिनी और बच्चोंके साथ एक गजेन्द्रको सोते हुए देखा। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था। सर्वमङ्गलकर श्रीहरिने तुरंत अपने सहस्रारसे उसका मस्तक उतारकर गरुडपर रख लिया।

गजके कटे अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। अपने स्वामीकी निर्जीव देह देखकर वह चीत्कार करने लगी। उसके बच्चे भी अपनी माताके रुदनसे जगकर व्याकुलतासे क्रन्दन करने लगे। हथिनीने गरुडासनपर विराजमान सम्पूर्ण निषेक (कर्मफलयोग)-का खण्डन करनेमें समर्थ शंख-चक्र-गदा-पद्मधर नवजलधरवपु श्रीहरिकी अचिन्त्य सौन्दर्यमयी मूर्तिको देखा तो वह परम प्रभुका स्तवन करने लगी।

हथिनीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वसमर्थ प्रभुने दूसरे गजका मस्तक उतार उसके शरीरसे जोड़ दिया और फिर अपने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया।

'भाग्यवान् गज! तू सकुटुम्ब कल्पपर्यन्त जीवित रह।' अपने मङ्गलमय चरणोंसे उसके सर्वाङ्गका स्पर्श करते हुए परम प्रभुने उसके परम मङ्गलके लिये वरदान प्रदान किया। तदनन्तर गरुड वायुवेगसे उड़कर तुरंत कैलासपर पहुँच गये।

श्रीहरिने पार्वती-पुत्रको उठाकर अपने वक्षसे सटा लिया और गज-मुखको सुन्दर बनाकर शिवनन्दनके धड़से जोड़ दिया।

'हुं'! परम प्रभुके इस उच्चारणसे ही वह बालक जीवित हो गया; फिर तो उन्होंने मोहनिवारिणी अम्बिकाको सचेत करके उनका पुत्र उनके अङ्कमें रख दिया और विविध मनोरम मधुर वचनोंसे शोकाकुल पार्वतीको समझाने लगे।

श्रीहरिकी वाणी सुनकर वात्सल्यमयी जननी पार्वती संतुष्ट हो गयीं और उन परम प्रभुके अरुणोत्पल-चरणोंमें प्रणामकर अपने शिशुको गोदमें लेकर उसे दुग्धपान कराने लगीं। फिर उन्होंने अपने प्राणवल्लभ शिवकी प्रेरणासे हाथ

जोड़कर भक्तिपूर्वक श्रीहरिकी स्तुति-प्रार्थना की।

परम तपस्विनी उमाके स्तवनसे प्रसन्न होकर लक्ष्मीपति विष्णुने अपना कौस्तुभ उस लम्बोष्ठ बालकके गलेमें डालते हुए उसे तथा जगदीश्वरी पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

लम्बकर्ण पार्वती-पुत्रके जीवित हो जानेपर हर्षातिरेकसे लोकस्रष्टाने उसे अपना किरीट और धर्मने रत्नाभूषण प्रदान किया। इसके अनन्तर देवियों, उपस्थित सभी देवताओं, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और एकत्र समस्त स्त्रियोंने प्रसन्न-मनसे बहुमूल्य रत्नादि उस शम्भुकुमारको प्रदान किये।

अपने सुमङ्गलमङ्गल बालकके जीवित होनेकी प्रसन्नतामें सर्वलोकमहेश्वर शिव एवं निखिलसृष्टि-संचालिका पार्वतीने असंख्य रत्नोंका दान किया। हिमगिरिने वन्दियोंको सौ गज तथा एक सहस्र अश्व प्रदान किये। देवताओंने सभी ब्राह्मणोंको दान दिया और स्त्रियोंने भी अपने दानोंसे वन्दियोंको संतुष्ट कर दिया।

क्षीरोदधिशायी लक्ष्मीपतिने समस्त माङ्गलिक कार्योंके साथ वेदों और पुराणोंका पाठ करवाया तथा समस्त ब्राह्मणोंको अत्यन्त आदरपूर्वक दुर्लभ सुमिष्ट पक्वान्नोंके भोजनसे पूर्ण तृप्त कर दिया।

'तुम अङ्गरहित हो जाओ।' उक्त सभाके बीच लज्जावश शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर माता पार्वतीने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दे दिया।

गजमुखको प्रथमपूज्यताका आशीर्वाद

कुछ समय व्यतीत हुआ। क्षीराब्धिशायी लक्ष्मीपति विष्णु शुभ मुहूर्तमें देवताओं और मुनियोंके साथ भगवान् शंकरके सदनमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रेष्ठतम उपहारोंसे पद्म-प्रसन्न-नयन गजाननकी पूजा की और आशीर्वाद प्रदान की—

सर्वाग्रे तव पूजा च मया दत्ता सुरोत्तम।
सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव वत्सेत्युवाच तम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३।२)

'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है, अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।'

प्रसन्न-कमलनयन विष्णुने रुद्रप्रिय बालकके कण्ठमें वनमाला पहनायी और मोक्षदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदानकर उसे अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सामग्रियाँ देकर देवताओं और मुनियोंके साथ उसका नामकरण किया—

विघ्नेशश्च गणेशश्च हेरम्बश्च गजाननः।
लम्बोदरश्चैकदन्तः शूर्पकर्णो विनायकः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३।५)

'विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—ये उस बालकके नाम रखे गये।'

तत्पश्चात् दयामय श्रीहरिने पुनः मुनियोंको बुलवाकर हेरम्बको आशीर्वाद दिलवाया। इसके अनन्तर सभी देव-देवियों एवं मुनियों आदिने मुक्तिदाता शिवपुत्रको विविध प्रकारके उपहार प्रदान किये और बार-बार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया।

फिर सर्वव्यापिनी जननीने अपने अघनाशन पुत्रको रत्नसिंहासनपर बैठाकर समस्त तीर्थोंके जलपूरित सौ कलशोंसे स्नान कराया। उस समय मुनिगण वेद-मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। इसके अनन्तर उन्होंने अपने दुःख-भञ्जनकारक पुत्रको अग्निशुद्ध दो वस्त्र दिये। फिर जननीने गणेशको पुण्यतोया गोदावरीके जलसे पाद्य, पापनाशिनी गङ्गाजीके जलसे अर्घ्य एवं दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनमिश्रित पवित्र तीर्थ पुष्करके जलसे आचमन कराकर रत्नपात्रमें रखे हुए मधुपर्क एवं शर्करायुक्त द्रव प्रदान किये।

इसके अनन्तर स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णु-तैल, बहुमूल्य-रत्नाभरण, विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्प, पारिजातकी पुष्पमालाएँ, अनेक प्रकारके सुगन्धित चन्दन तथा दिव्य सुगन्धमय धूप-दीप प्रदान किये; फिर पशुपाशविमोचन गणाधिराजको उनका प्रिय लड्डू तथा उनको प्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके अन्य अनेक व्यञ्जन अर्पित किये। उन पुष्कल व्यञ्जनोंका पर्वत-तुल्य ढेर लग गया। तदनन्तर ढेर-के-ढेर अनार, बेलके फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, कटहल, आम, केला और नारियलके फल दिये। फिर आचमन और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके जननीने सुन्दर पानके बीड़े और सैकड़ों स्वर्णपात्र लड्डुकप्रिय गणेशको अर्पित किये।

इसके अनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र, वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने—

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० १३ । ३२)

—इस मन्त्रसे प्रणताज्ञानमोचन गिरिजापुत्रकी पूजा की और उन्हें भाँति-भाँतिकी दुर्लभ वस्तुएँ प्रदान करके वे आनन्दमें निमग्न हो गये।

परशुरामका कैलास-दर्शन

एक दिनकी बात है, जब जमदग्निनन्दन परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरु भूतनाथके चरणोंमें प्रणाम करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवा तथा उनके नारायण-तुल्य दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणनायकको देखनेकी लालसासे कैलास पहुँचे। वहाँ उन्होंने अत्यन्त अद्भुत कैलासपुरीका दर्शन किया।

अपने गुरुदेवकी उस दिव्य पुरीके दर्शनकर रेणुकानन्दन आनन्द-विभोर हो गये।

'बन्धुवर! मैं परमानुग्रहमूर्ति, भक्तवत्सल, समदर्शी अपने गुरु शूलपाणिका दर्शन करना चाहता हूँ।' वीरवर परशुरामने सम्मुख खड़े मुद्गरायुध गणेशसे कहा।

'इस समय भूतेश्वर शिव एवं माता पार्वती अन्तःपुरमें हैं।' अमोघ-सिद्ध गणेशने उन्हें अनेक प्रकारसे समझाते हुए कहा—'अतएव अभी आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये।'

'मैं तो परमपिता शिव एवं दयामयी माँके दर्शनार्थ जाऊँगा ही।' बलपूर्वक रेणुकानन्दन आगे बढ़ना ही चाहते थे कि विघ्नराजने उन्हें रोक दिया।

इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करनेवाले भृगुनन्दन कुपित हो गये और उनका गणाधिराजसे विवाद ही नहीं मल्लयुद्ध भी होने लगा। कुमार कार्तिकेयने भी उन्हें समझानेका प्रयत्न किया; किंतु क्रुद्ध क्षत्रियद्रोही परशुरामने परम विनयी बुद्धिविशारद ईशानपुत्रको धक्का दे दिया, जिससे वे गिर गये।

शिवपुत्र गणेशने उठकर परशुरामकी उद्दण्डताके लिये उनकी भर्त्सना की तो परशुरामने अपना तीक्ष्ण परशु उठा लिया। तब अजरामर गौरीतेज गणेशने अपनी सूँड़ बढ़ाकर परशुरामको उसमें लपेट लिया और उन्हें घुमाने लगे। योगाधिप गणेशकी महान् सूँड़में लिपटे परशुराम सर्वथा असहाय और निरुपाय थे। धरणीधर गणेशके योगबलसे परशुराम स्तम्भित हो गये थे।

गजमुख एकदन्त हुए

कुछ ही देर बाद परशुराम सचेत हो गये। तब उन्होंने अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णके जगद्गुरु शिवद्वारा प्रदत्त परम दुर्लभ स्तोत्र एवं कवचका स्मरण किया और सम्पूर्ण शक्तिसे ग्रीष्मकालीन मध्याह्न सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्णतम अपने परशुसे प्रणतार्ति निवारक गौरीनन्दनपर प्रहार कर दिया। गणाधिराजने अपने परमपूज्य पिताके अमोघ अस्त्रका सम्मान करनेके लिये उसे अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया। शिव-शक्तिके प्रभावसे वह तेजस्वी परशु गणेशके बायें दाँतको समूल काटकर पुनः रेणुकापुत्र परशुरामके हाथमें लौट आया।

सिद्धि-बुद्धि-प्रदायक गणेशका दाँत टूटते समय भयानक शब्द हुआ और सत्यसंकल्प गिरिजानन्दनके मुखसे रक्तका फव्वारा छूट पड़ा। मुँहसे निकलकर रक्तसे सना दाँत भूतलपर गिर पड़ा। उस समय धरित्री काँप उठी। यह दृश्य देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय, क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा शून्यमें देवगण अत्यन्त भयाक्रान्त हो हाय-हाय करने लगे।

कैलासवासी डरसे मूर्च्छित हो गये। निद्रापति शुद्धात्मा शिवकी निद्रा भङ्ग हो गयी।

'बेटा! यह क्या हुआ?' दौड़ी हुई परमाद्या भगवती पार्वती आयीं तो उन्होंने अपने प्राणप्रिय पुत्र गणेशके टूटे दाँत तथा रक्तमें डूबे हुए मुँहको देखा और देखा कि उनके हृदयखण्ड गणेश क्रोधशून्य, परम शान्त, लज्जासे सिर झुकाये खड़े हैं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने स्कन्दसे पूछा—'क्या बात है? यह कैसे हुआ?' स्कन्दके द्वारा सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महामोहशमनी सती पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुईं और अपने प्राणाधिक प्रिय सुकुमार पुत्र गणेशको अङ्कमें लेकर क्रन्दन करने लगीं।

'समदर्शी प्रभो!' दुःख और शोकसे अभिभूत देवी पार्वतीने डरते-डरते अपने पति दयासिन्धु शूलपाणिसे कहा—'मेरे पुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराममें किसका दोष है, आप ही निर्णय करें।'

अत्यन्त दुःखसे व्याकुल पुत्रवत्सला पार्वतीने गणेशकी महिमाका बखान करते हुए परशुरामसे कहा—'जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखों-करोड़ों जन्तुओंको मार डालनेकी शक्ति रखता है; परंतु वह मक्खीपर भी हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ यह गणेश तेजमें श्रीकृष्णके ही समान है। अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं। इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है।'

इतना कहकर क्रोधाभिभूत गिरिराजकिशोरी परशुरामको मारनेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। भयवश परशुरामने मन-ही-मन करुणासागर गुरुको प्रणामकर अपने इष्टदेव गोलोकनाथ श्रीकृष्णका स्मरण किया।

तत्क्षण उमाने अपने सम्मुख भानुकोटिशतप्रभ एक बौने ब्राह्मण-बालकको देखा।

उस परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकको देखकर आतुरतासे भृत्योंसहित भगवान् शंकरने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उसके बाद माता पार्वतीने भी उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। परम तेजस्वी ब्राह्मण-बालकने भृत्योंसहित शिव एवं पार्वतीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया।

तत्पश्चात् फिर भगवान् शंकरने उनका षोडशोपचार पूजन एवं स्तवन किया। वे वामनभगवान् रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। उनका उत्कृष्ट तेज सर्वत्र फैल रहा था।

'आज मेरा परम सौभाग्य है, जो आपने कृपापूर्वक मेरे यहाँ पधारकर मुझे सेवाका अवसर प्रदान किया है।' भगवान् शंकरने मधुर शब्दोंमें कहा—'अतिथि-सत्कार करनेवालेके द्वारा स्वतः समस्त देवताओंकी पूजा सम्पन्न हो जाती है; क्योंकि अतिथिके संतुष्ट होनेसे स्वयं श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं।'

'आप लोगोंकी वर्तमान परिस्थिति जानकर मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ।' आशुतोष शिवकी मधुर वाणीसे प्रसन्न होकर ब्राह्मण-बालकरूपी स्वयं श्रीहरिने गम्भीर स्वरमें कहा—'मेरे भक्तोंका कभी अमङ्गल नहीं होता। मेरा सहस्रार उनके रक्षार्थ प्रतिक्षण प्रस्तुत रहता है; किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर मैं विवश हो जाता हूँ। गुरुकी अवहेलना बलवती होती है। विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे सौगुना श्रेष्ठ है। गुरुसे बढ़कर कोई देवता नहीं है और '**न पार्वतीपरा साध्वी न गणेशात्परो वशी।**' (ब्रह्मवैवर्त, गणपतिखं० ४४। ७५) पार्वतीसे बढ़कर कोई पतिव्रता नहीं है तथा गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय नहीं है। भृगुनन्दनने गुरु-पत्नी एवं गुरुपुत्रकी अवहेलना कर दी है, उसीका मार्जन करनेके लिये मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।'

'हिमगिरिनन्दिनि!' अब श्रीहरिने भगवती पार्वतीसे कहा—'तुम जगज्जननी हो। तुम्हारे लिये गणेश और कार्तिकेयके समान ही परशुराम भी पुत्र-तुल्य हैं। इन परशुरामके स्नेहके प्रति शिव और तुम्हारे मनमें भेद नहीं है। अतएव जो उचित समझो, करो। दैव बड़ा प्रबल होता है। बालकोंका यह विवाद तो दैव-दोषसे ही घटित हुआ है। तुम्हारे इस प्रिय पुत्रका 'एकदन्त'-नाम वेदोंमें प्रसिद्ध है। पुराणोंमें भी तुम्हारे पुत्रके आठ नाम बताये गये हैं—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्।
लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ४४। ८५)

'गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र और गुहाग्रज।' इस प्रकार श्रीहरिने माता पार्वतीको अनेक प्रकारसे सान्त्वना दिया।

पुनः श्रीहरिने परशुरामसे कहा—'राम! तुमने क्रोधवश

शिवा-पुत्र गणेशका दाँत तोड़कर अनुचित किया है।' इस कारण तुम निश्चय ही अपराधी हो। ये सर्वशक्तिस्वरूपा पार्वती प्रकृतिसे परे और निर्गुण हैं। श्रीकृष्ण भी इन्हींकी शक्तिसे शक्तिशाली हुए हैं। ये समस्त देवताओंकी जननी हैं। तुम इनकी स्तुति करके इन्हें संतुष्ट करो।'

इतना कहकर श्रीहरि वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए और परशुरामने स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारण किये। फिर वे हाथ जोड़ गुरुदेवके चरणोंमें प्रणामकर सिर झुकाये जगज्जननी गौरीका स्तवन करने लगे—

रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व मे।
शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति॥

(ब्रह्मवैवर्त०, गणपतिखं० ४५। ५७)

'जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो, मेरे अपराधको क्षमा कर दो। भला, कहीं बच्चेके अपराध करनेसे माता कुपित होती है?'

स्तुति करनेके बाद परशुरामने माता पार्वतीके चरणोंमें प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखी होकर वे रोने लगे।

'वत्स! तुम अमर हो जाओ!' परशुरामकी करुण प्रार्थनासे करुणामयी भक्तवत्सला जननी पार्वतीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने प्रीतिपूर्वक परशुरामको अभय-दान देते हुए कहा—'बेटा! अब शान्त हो जाओ। प्रभु आशुतोषके अनुग्रहसे तुम्हारी सर्वत्र विजय हो। सर्वान्तरात्मा श्रीहरि तुमपर सदा प्रसन्न रहें। गुरुदेव शिवमें तुम्हारी भक्ति सुदृढ़ रहे।'

इस प्रकार सर्वशक्तिसमन्विता दयामयी पार्वतीने परशुरामको आशीर्वाद दिया और फिर वे अपने अन्तः-पुरमें चली गयीं।

उस समय वहाँ श्रीभगवान्‌के मङ्गलमय नामका उच्च घोष होने लगा। परशुरामके हर्षकी सीमा न रही।

फिर रेणुकानन्दनने एकदन्त गणेशका स्तवन किया और गन्ध, पुष्प, धूप-दीप एवं तुलसीरहित नैवेद्य आदिसे लम्बोदरकी प्रीतिपूर्वक पूजा की। परशुरामने भक्तिभावसे भाई गणेशको संतुष्ट करके जगन्माता पार्वती एवं कृपासिन्धु त्रिलोचनके चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक तपश्चरणके लिये प्रस्थान किया।

गणेशका तुलसीको शाप

ब्रह्मकल्पकी बात है। नवयौवनसम्पन्ना परम लावण्यवती तुलसीदेवी भगवान् नारायणका स्मरण करती हुई तीर्थोंमें भ्रमण कर रही थीं। इस प्रकार वे पतितपावनी श्रीगङ्गाजीके पावनतम तटपर पहुँचीं।

'अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक रूप है आपका?' वहाँ तुलसीदेवीने अत्यन्त सुन्दर और शुद्ध पीताम्बर धारण किये नवयौवनसम्पन्न परमसुन्दर कृष्णपादाब्जका ध्यान करते हुए निधिपति गणेशको देखा। उनके सम्पूर्ण शरीरमें चन्दनकी खौर लगी थी और वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। सर्वथा निष्काम एवं जितेन्द्रिय पार्वतीनन्दनको देखकर तुलसीदेवीका मन उनकी ओर बरबस आकृष्ट हो गया। विनोदके स्वरमें उन्होंने योगाधिप खण्डेन्दुशेखरसे कहा—'गजवक्त्र! शूर्पकर्ण! एकदन्त! घटोदर! सारे आश्चर्य आपके ही शुभ विग्रहमें एकत्र हो गये हैं। किस तपस्याका फल है यह?'

'वत्से! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? यहाँ किस हेतुसे आयी हो?' उमानन्दन एकदन्तने शान्त स्वरमें कहा—'माता! तपश्चरणमें विघ्न डालना उचित नहीं। यह सर्वथा अकल्याणका हेतु होता है। मङ्गलमय प्रभु तुम्हारा मङ्गल करें।'

'मैं धर्मात्मजकी नवयुवती पुत्री हूँ।' तुलसीदेवीने उपहास छोड़कर मधुरवाणीमें परम जितेन्द्रिय शम्भुकुमारसे निवेदन किया—'मैं मनोऽनुकूल पतिकी प्राप्तिके लिये तपस्यामें संलग्न हूँ। आप मुझे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लीजिये।'

'माता! विवाह बड़ा दुःखदायी होता है।' घबराते हुए लम्बोदरने उत्तर दिया। तुम मेरी ओरसे अपना मन

हटाकर किसी अन्य पुरुषको पतिके रूपमें वरण कर लो। मुझे क्षमा करो।'

'तुम्हारा विवाह अवश्य होगा!' कुपित होकर तुलसीदेवीने लम्बोदरको शाप दे दिया।

'देवि! तुम्हें भी असुर पति प्राप्त होगा।' एकदन्त गणेशने भी तुरंत तुलसीको शाप दिया—'उसके अनन्तर महापुरुषोंके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी।'

पार्वतीनन्दनके अमोघ शापके भयसे तुलसीदेवी सर्वाग्रपूज्य हेरम्बका स्तवन करने लगीं।

'देवि! तुम पुष्पोंकी सारभूता एवं कलांशसे नारायण-प्रिया बनोगी!' भक्तसुलभ मूषक-वाहनने तुलसीकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर उनसे कहा—'यों तो सभी देवता तुमसे संतुष्ट होंगे, किंतु श्रीहरिके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारे द्वारा श्रीहरिकी अर्चनाकर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेंगे; किंतु मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी। इतना कहकर भालचन्द्र गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथके संनिकट चले गये।[१]

(ब्रह्मवैवर्त; प्रकृतिखण्ड)

(४)

श्वेतकल्पकी गणेशोत्पत्तिकी कथा

श्वेतकल्पमें गणेशोत्पत्तिकी मङ्गलमयी कथा इससे सर्वथा भिन्न है। उस कल्पमें स्वयं भगवान् शंकरने ही अपने पुत्र गणेशजीका मस्तक काट दिया था। वह पापनाशिनी कथा 'शिवपुराण' में इस प्रकार वर्णित है—

भगवती पार्वती अपने प्राणपति भगवान् शंकरके साथ आनन्दोल्लासपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थीं। उनकी अत्यन्त रूपवती, गुणवती एवं मधुरहासिनी जया और विजया—ये दो सखियाँ थीं।

'सखी! सभी गण रुद्रके ही हैं।' एक दिन उन दोनों सखियोंने भगवती उमाके समीप आकर कहा—'नन्दी, भृङ्गी आदि जो हमारे हैं, वे भी भगवान् शंकरकी ही आज्ञामें तत्पर रहते हैं। असंख्य प्रमथगणोंमें भी हमारा कोई नहीं है। वे शिवकी अनन्यताके कारण ही द्वारपर खड़े रहते हैं। यद्यपि वे सभी हमारे भी हैं, तथापि आप कृपापूर्वक हम लोगोंके लिये भी एक गणकी रचना कर दीजिये।'

माता पार्वती उन सहचरियोंकी बात ध्यानपूर्वक सुनकर विचार करने लगीं।

एक दिनकी बात है। भगवती उमा स्नानागारमें थीं। लीलावपु भगवान् कामारि अपनी प्राणप्रियाके द्वारपर पहुँचे।

'माता स्नान कर रही हैं।' नन्दीने महेश्वरसे निवेदन किया।

किंतु भगवान् भूतभावनने नन्दीके निवेदनकी उपेक्षा कर दी। वे सीधे स्नानागारमें पहुँचे।

परम प्रभु शिवको देखकर स्नान करती हुई माता पार्वती लज्जित होकर खड़ी हो गयीं। वे चकित थीं।

'जया-विजया ठीक ही कह रही थीं।' शिवप्रियाने मन-ही-मन विचार किया—'द्वारपर यदि मेरा कोई गण होता तो मेरे प्राणनाथ सहसा स्नानागारमें कैसे आ जाते? निश्चय ही इन गणोंपर मेरा पूर्ण अधिकार नहीं है। मेरा भी कोई ऐसा सेवक होना चाहिये, जो परम शुभ तथा कार्यकुशल हो एवं मेरी आज्ञाका सतत पालन करनेमें कभी विचलित न हो।'

इस प्रकार सोचकर त्रिभुवनेश्वरी उमाने अपने मङ्गलमय पावनतम शरीरके मैलसे एक चेतन पुरुषका निर्माण किया।

१. कालान्तरमें तुलसीदेवी वृन्दाके नामसे दानवराज शंखचूड़की पत्नी हुईं। शंखचूड़ भगवान् शंकरके त्रिशूलसे मारा गया और उसके बाद नारायण-प्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयीं। यह कथा पुराणोंमें विस्तारसे आयी है।

वह शुभ लक्षणोंसे संयुक्त था। उसके सभी अङ्ग दोषरहित एवं सुन्दर थे। उसका वह शरीर विशाल, परम शोभायमान और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था। देवीने उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, नाना प्रकारके आभूषण और बहुत-से उत्तम आशीर्वाद देकर कहा—'तुम मेरे पुत्र हो। मेरे अपने ही हो। तुम्हारे समान प्यारा मेरा यहाँ कोई दूसरा नहीं है।'

परम सुन्दर, परम बुद्धिमान् और परम पराक्रमी उस पुरुषने आदिशक्ति माता पार्वतीके चरणोंमें अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ प्रणाम करके अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—'माता! आपका प्रत्येक आदेश शिरोधार्य है। आप क्या चाहती हैं, आज्ञा प्रदान करें। मैं आपका बताया प्रत्येक कार्य निष्ठापूर्वक करूँगा।'

'तुम मेरे पुत्र हो, सर्वथा मेरे हो।' महाशक्ति देवी पार्वतीने कहा—'तुम मेरे द्वारपाल हो जाओ। चाहे कोई हो, कहींसे भी आया हो, मेरी आज्ञाके बिना मेरे अन्त:पुरमें प्रवेश न कर सके, इसका ध्यान रखना।'

गणेशका शिवगणोंसे अद्भुत युद्ध

शिवप्रियाने अपने पुत्र गणेशके हाथमें एक सुदृढ़ छड़ी दे दी। फिर उन्होंने अपने यष्टि-धारी पुत्रका सौन्दर्य देखा तो आनन्दमग्न हो गयीं। उन्होंने अपने परम प्रिय एवं सर्वाङ्गसुन्दर पुत्रको अङ्कमें लेकर उसके मुखका चुम्बन किया। इसके अनन्तर दयामयी माता पार्वतीने अपने प्राणप्रिय दण्डधारी गणराजको द्वारपर नियुक्त कर दिया और स्वयं अपनी सखियोंके साथ स्नान करने चली गयीं।

'देव! आप कहाँ जाना चाहते हैं?' कुछ ही देरमें स्वयं कर्पूरगौर शशाङ्कशेखर वहाँ पहुँचे। वे शिवाके प्राणप्रिय पुत्रसे सर्वथा अपरिचित थे। चन्द्रमौलि अन्त:पुरमें प्रविष्ट होना ही चाहते थे कि उन्हें रोकते हुए दण्डधारी गणराजने उनसे कहा—'आप माताकी आज्ञाके बिना भीतर नहीं जा सकते। जननी स्नान कर रही हैं। इस समय आप यहाँसे चले जाइये।'

'मूर्ख! तू किसे रोक रहा है?' दण्डधारी गणराजके द्वारा अनपेक्षित व्यवधान देखकर करुणामय त्रिनयनने कहा—'तुझे पता नहीं कि मैं कौन हूँ? मैं प्रत्यक्ष शिव ही यहाँ आया हूँ।'

'आप चाहे जो कोई हों, किंतु मेरी माताकी आज्ञाके बिना इस समय भीतर नहीं जा सकते।' मातृभक्त वीर बालक गणेशने अपनी सुदृढ़ यष्टि आगे कर दी।

'यह कौन है और मेरा मार्गावरोध क्यों कर रहा है?' लीलानायक सर्वान्तर्यामी, विनोदी शिवने अपने गणोंको आज्ञा दी और स्वयं वहाँसे कुछ दूर हटकर द्वारके समीप ही खड़े हो गये।

'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? और तुम्हें क्या अभीष्ट है?' महेश्वरके गणोंने पार्वतीनन्दनके समीप जाकर उससे कहा—'यदि तुम अपनी प्राण-रक्षा चाहते हो तो यहाँसे शीघ्र ही अन्यत्र चले जाओ।'

'तुम लोग कौन हो और कहाँसे आये हो?' अत्यन्त धीर-वीर गिरिजानन्दनने निर्भय होकर शिवगणोंसे कहा—'देखनेमें तो बड़े सुन्दर हो, किंतु अकारण मुझे क्यों छेड़ रहे हो?'

'हम मुख्य शिवगण और द्वारपाल हैं।' 'हम सर्वान्तर्यामी एवं सर्वसमर्थ श्रीपार्वतीवल्लभके आदेशसे तुम्हें यहाँसे हटाने आये हैं। तुम्हें भी गण समझकर हम लोगोंने कुछ नहीं कहा है। अब कुशल इसीमें है कि तुम यहाँसे स्वत: हट जाओ; अन्यथा व्यर्थ ही मृत्यु-मुखमें चले जाओगे।'

'मैं माता पार्वतीका पुत्र हूँ। माताने मुझे किसीको भी भीतर प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं दी है।' महाशक्तिके शक्तिमान् पुत्र गणेशने शिवगणोंसे कहा—'यदि तुम्हें अपने स्वामी शिवकी आज्ञाका पालन करना आवश्यक है तो यहीं खड़े रहो; पर द्वारके भीतर नहीं जा सकते।'

'प्रभो! वह बालक माता पार्वतीका पुत्र है और अपने स्थानसे विचलित नहीं हो रहा है।' शिवगणोंने महेश्वरके समीप जाकर उनकी स्तुति करते हुए अत्यन्त विनीत स्वरमें निवेदन किया—'वह शक्तिसम्पन्न तेजस्वी बालक द्वारसे किसी प्रकार नहीं हटता और युद्धके लिये प्रस्तुत है।'

'एक बालकके सम्मुख तुम लोग सर्वथा अवश हो गये।' लीलाविहारी कर्पूरगौर श्रीपार्वतीवल्लभने सरोष मुद्रामें अपने गणोंसे कहा—'कुछ नहीं कर सके? वह निरा बालक और एकाकी है। यदि तुम्हें युद्ध भी करना हो तो अवश्य

करो। शत्रुकी भाँति बकनेवाले बालकको द्वारसे शीघ्र भगा दो।'

शिवगणोंने महेश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया और अपने-अपने शस्त्र ले पार्वतीनन्दनकी ओर चले। शिवगणोंकी सशस्त्र-वाहिनीको अपनी ओर आती देख परमपराक्रमी षडानन-अनुज दण्डपाणिने अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक उनसे कहा—

'शिवकी आज्ञा-पालन करनेवाले गणो! आओ! मैं अकेला बालक ही शिवाकी आज्ञाका पालन करनेवाला हूँ, तथापि देवी पार्वती अपने पुत्रका और त्रिपुरारि अपने गणोंका बल देखें।

सर्वेश्वरी-तनयने आगे कहा—'विजय और पराजय हमारी-तुम्हारी नहीं होगी। यह तो माता अम्बिका और पशुपतिकी होगी। तुम लोग अपने स्वामीकी ओर देखकर अपने शस्त्रोंका प्रयोग करो, मैं अपनी माताकी आज्ञाके पालन-हेतु युद्धके लिये प्रस्तुत हूँ।'

बालक गणपतिके तीक्ष्ण वाक्-शरोंसे क्रुद्ध होकर नन्दी, भृङ्गी आदि गणोंने उनपर आक्रमण कर दिया। तब कुपित होकर गणेशजीने भी उनपर कठोर प्रहार करना प्रारम्भ किया। गणेशजीके भीषण प्रत्याक्रमणसे शिवगण अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे शक्ति-पुत्रके असह्य प्रहारसे प्राण बचाकर यत्र-तत्र भाग खड़े हुए।

कल्पान्तकरणे कालो दृश्यते च भयंकरः।
यथा तथैव दृष्टः स सर्वेषां प्रलयंकरः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। २०)

'जैसे कल्पके अन्तमें भयंकर काल दिखायी देता है, उसी प्रकार गणेशजी उस समय सबको प्रलयंकर दिखायी देने लगे।'

उस समय जगन्माता पार्वतीके अप्रतिम शूर पुत्रके कठोर प्रहारसे कितने ही शिवगणोंका अङ्ग-भंग हो गया, कुछ गण वहीं धराशायी हो गये और कुछके शरीरसे रुधिर बहने लगा।

'उस प्रबल पराक्रमीके सम्मुख हम नहीं टिक सकते। कुछ गणोंने तुरंत भगवान् भूतभावनके चरणोंमें प्रणामकर विनयपूर्वक निवेदन किया। 'उस बालकका प्रलयाग्नि-तुल्य क्रोध हमें दग्ध-सा किये देता है।'

अपने गणोंके मुखसे उनके संहार एवं पराजयका संवाद प्राप्तकर लीला-विशारद महादेव क्रुद्ध हुए। उन्होंने इन्द्रादि देवताओं, षडानन आदि श्रेष्ठ गणों एवं भूत-प्रेत-पिशाचोंको बुलाकर उनसे कहा—'उसे पराजित करो। मेरे ही द्वारपर बालकका यह उपद्रव मुझे असह्य हो रहा है।'

सुरेन्द्रादि देव, वीरवर तारकारि कार्तिकेय आदि गण एवं समस्त प्रेत-पिशाचोंने अपने-अपने आयुध उठाये और निर्विकार कामारिके आदेशानुसार योगक्षेमकर्त्री माहेश्वरीके किशोर कुमार गणेशको चारों ओरसे घेर लिया।

चतुर्दिक् अप्रतिम सशस्त्र देवता, गण एवं भूत-प्रेत उनके मध्य सर्वथा एकाकी दण्डपाणि पार्वती-पुत्र गणेश। सबने एक साथ बुद्धिविशारद गणेशपर भयानक आक्रमण कर दिया, किंतु महाशक्तिके पुत्र कुमार गणेश अप्रतिम शौर्य-वीर्यसम्पन्न एवं प्रबल पराक्रमी थे। उन्होंने शत्रुपक्षके तीक्ष्णतम प्रहारको शिरीष-सुमनके तुल्य समझा और स्वयं वे शिवप्रेषित वाहिनीका वीरतापूर्वक संहार करने लगे।

शर्वाणी-सुत गणेशके प्रहारसे अधीर होकर देव-गण आदि परस्पर कहने लगे—

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं न ज्ञायन्ते दिशो दश।
परिघं भ्रामयत्येष सव्यापसव्यमेव च॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १५। ५३)

'क्या करें? कहाँ जायँ? दिशाएँ दीखती नहीं, यह बालक दायें-बायें दोनों ओर परिघ घुमाता है।'

'प्रभो! यह कौन-सा श्रेष्ठ गण है?' युद्धसे भागे हुए देवता और गणोंने नीलकण्ठके चरणोंमें बारम्बार प्रणामकर निवेदन किया। 'हमने अनेक युद्ध देखे हैं, पर ऐसा समर न कभी सुना, न देखा है। इस दुर्धर्ष उग्र बालकपर विजय प्राप्त करना कठिन प्रतीत होता है। आप कृपापूर्वक कोई यत्न कीजिये।'

शिवके त्रिशूलसे दण्डपाणि गणेशका मस्तक कटा

'इस संवादसे परम क्रोधी रुद्र अत्यधिक कुपित हुए। वे अपने गणोंके साथ माया संहार-रूपिणी उमाके अन्यतम वीर पुत्र गणेशके सम्मुख पहुँचे। यह देख सम्पूर्ण देव-सेना क्षीराब्धिशायी विष्णुके साथ हर्षोल्लासपूर्वक शिवके समीप पहुँच गयी।'

रुद्रदेवको बालक गणेशके साथ युद्धके लिये उद्यत देखकर देवताओंने उनके त्रैलोक्यपावन चरणोंका स्पर्श किया और फिर सोत्साह रणाङ्गणमे कूद पड़े। महादिव्य आयुधधारी महाशक्तिशाली श्रीहरि भी गणेशसे युद्ध करने लगे।

महाशक्ति-पुत्र गणेशने देवताओंपर भीषण दण्ड-प्रहार किया। उनके दण्ड-प्रहारसे श्रीहरि भी घबरा गये। भगवान् त्रिलोचन भी दीर्घकालतक भीषण संग्राममें अपने सैन्यदलका निर्मम दलन होते देखकर चकित हो गये। उन्होंने मन-ही-मन विचार किया—'**छलेनैव च हन्तव्यो नान्यथा हन्यते पुनः।**' (शिवपु० रुद्रसं०, कु० खं० १६।८)—इसे छलसे ही मारा जा सकता है, अन्य किसी रीतिसे इसे मारना सम्भव नहीं।'

इस निश्चयके साथ ही त्रिनेत्र विशाल वाहिनीके मध्य खड़े हो गये। सर्वाधार श्रीहरि भी वहाँ आ गये। शिवके गण हर्षोल्लासपूर्वक नृत्य करने लगे। उस समय धर्म-परायणा पार्वतीके पुत्रने अपने दण्डसे श्रीविष्णुकी पूजा की।

'विभो! मैं इसे मोहित करता हूँ।' श्रीहरिने धीरेसे वृषभध्वजसे कहा—'उस समय आप इसे मार डालें। यह बालक छलके बिना नहीं मारा जा सकता।'

भगवान् शिवने श्रीहरिको ऐसा करनेकी अनुमति दे दी। त्रैलोक्यपति श्रीविष्णुके विचारसे अवगत होते ही धर्ममयी पार्वतीकी दोनों शक्तियोंने गणेशको अपना बल दे दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। श्रीहरिने आशुतोष शिवका स्मरण किया और गणेशको ठगनेका प्रयत्न करने लगे।

भगवान् शिवने कुपित होकर अपना तीक्ष्णतम त्रिशूल उठाया। शिवापुत्र गणेशने शिवको त्रिशूल उठाते देख सर्वशक्तिप्रदायिनी माताके चरणोंका स्मरणकर शिवके हाथमें शक्ति मारी। गणेशके भयानक प्रहारसे शिवका त्रिशूल उनके हाथसे छूट गया।

रुद्र अत्यन्त कुपित हुए। उन्होंने अपना पिनाक नामक धनुष उठाया। वीरवर गणेशने परिघ-प्रहारसे उसे भी धरतीपर गिरा दिया। उनके पाँचों हाथ भी घायल हो गये। तब उन्होंने दूसरे पाँच हाथोंमें शूल लिये।

महाशक्तिका शक्तिमान् पुत्र अपने परिघके प्रहारसे देवसैन्यको व्यथित और विचलित कर रहा था। यह देखकर त्रिपुरारिने मन-ही-मन कहा—'अरे! जब इस युद्धमें मेरी यह दशा है; तब मेरे गणोंको कितना कष्ट हुआ होगा?'

अद्भुत पराक्रमी पार्वतीपुत्रके परिघ-प्रहारसे देवता और गण खड़े नहीं रह सके। वे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जिधर मार्ग दीखा, उधर ही भागने लगे।

गणपतिने अपनी जननीका स्मरणकर अनुपम यष्टिसे विष्णुपर आक्रमण किया। उस घातक आक्रमणसे विष्णु धरती पर गिर पड़े, किंतु फिर उठकर वे पार्वतीनन्दनसे युद्ध करने लगे।

पार्वती-पुत्र गणेशको विष्णुसे युद्धमें संलग्न देख भगवान् शिवने उत्तर दिशासे अपने तीक्ष्णतम शूलसे उनपर प्रहार किया जिससे बालक गणेशका मस्तक कटकर दूर जा गिरा।

देवताओं और गणोंने संतोषकी साँस ही नहीं ली, हर्षोल्लासपूर्वक वे मृदङ्ग और नगाड़े भी बजाने लगे।

शिवाकी व्यथा और उनका कोप

'मेरे पुत्रका शिरश्छेद करके देव-समुदाय और शिवगण विजय-महोत्सव मना रहे हैं'—यह विदित होते ही शंकरार्धशरीरिणी रुद्राणी विकल-विह्वल हो गयीं।

फिर उमाने कुपित होकर सहस्रों तेजस्विनी शक्तियोंकी रचना की। वे सभी शक्तियाँ परम शक्तिसम्पन्न एवं सर्वसमर्थ थीं। उन्होंने जगदम्बाके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया

और अत्यन्त विनयपूर्वक पूछा—'माता! हमें क्या आज्ञा है?'

'शक्तियो! मेरी आज्ञासे तुम लोग किसी प्रकारका विचार किये बिना प्रलय मचाओ।' अत्यन्त शोकाकुल जगज्जननीने क्रुद्ध होकर शक्तियोंको आज्ञा प्रदान की—'तुम लोग देव, ऋषि, यक्ष, राक्षस तथा स्वजन-परिजन—जिनको जहाँ पाओ, वहीं भक्षण करो।' फिर क्या था? वे महाभयानक देवियाँ कुपित होकर देवता आदि जिन्हें जहाँ पातीं, वहीं उन्हें पकड़कर अपने भयानक मुँहमें डाल लेतीं। उन शक्तियोंका वह जाज्वल्यमान तेज सभी दिशाओंको दग्ध-सा कर रहा था। सर्वत्र हाहाकार मच गया। इन्द्रादि देवगण तथा ऋषियोंके मनमें असमयमें ही संहारका विश्वास होने लगा। सभी अपने जीवनसे निराश होने लगे।

'यदि भगवती गिरिजा संतुष्ट हों, तभी यह आपदा टल सकती है। सबने मन्त्रणा की। सुख-शान्तिका अन्य कोई पथ नहीं दीखता।'

'क्रुद्धा पार्वतीके समीप कौन जाय?' 'देवताओंकी बुद्धि काम नहीं कर रही थी। पुत्रका वधकर माताके सम्मुख जानेका साहस कौन करे?'

उसी समय देवर्षि नारद वहाँ पहुँचे। विपत्तिग्रस्त देवताओंने उन्हें अपनी व्यथा-कथा सुनायी और कहा—'परमेश्वरी गिरिजाकी प्रसन्नताके बिना हमारा कल्याण सम्भव नहीं।'

माता पार्वतीकी स्तुति

नारदजीके साथ समस्त देवता और ऋषिगण माता पार्वतीके समीप पहुँचकर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे। ऋषियोंकी स्तुति एवं उनका दैन्य देखकर दयामयी सर्वलोकेश्वरी जननीका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने ऋषियोंसे कहा—

मत्पुत्रो यदि जीवेत तदा संहरणं न हि।
यथा हि भवतां मध्ये पूज्योऽयं च भविष्यति॥
सर्वाध्यक्षो भवेदद्य यूयं कुरुत तद्यदि।
तदा शान्तिर्भवेल्लोके चान्यथा सुखमाप्स्यथ॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० ख० १७। ४२-४३)

'ऋषियो! यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाय और वह आप लोगोंके मध्य पूजनीय मान लिया जाय तो संहार नहीं होगा। जब आप लोग उसे 'सर्वाध्यक्ष' का पद प्रदान कर देंगे, तभी लोकमें शान्ति हो सकती है, अन्यथा आप लोगोंको सुख नहीं प्राप्त हो सकता।'

दण्डपाणि गजमुख हुए

'ठीक है, जिस प्रकार त्रैलोक्य सुखी हो, वही करना चाहिये।' ऋषियोंने निखिल-सृष्टि-नियामिका जननीका कथन इन्द्रादि देवताओंको सुनाया। वे सभी उदास और दुःखी मनसे अहिभूषणके समीप पहुँचे। उन्होंने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक त्रैलोक्यपति शिवके चरणोंमें प्रणामकर माताकी बात कही। तब सर्वान्तर्यामी कर्पूरगौरने देवताओंसे कहा—'अब उत्तर दिशाकी ओर जाना चाहिये और जो जीव पहले मिले, उसका सिर काटकर उस बालकके शरीरपर जोड़ देना चाहिये।'

महेश्वरकी आज्ञासे देवताओंने तत्काल सर्वपापविमोचनी पार्वतीके शिशु गणेशका कबन्ध (मस्तकरहित शरीर) धो-पोंछकर विधिपूर्वक उसकी पूजा की और फिर उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े।

वहाँ मार्गमें सर्वप्रथम एक गज मिला, जिसको एक ही दाँत था। देवताओंने उसका सिर लाकर गणेशके शरीरपर जोड़ दिया।

'हमने अपना काम पूरा कर लिया।' देवताओंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिदेवोंके चरणोंमें प्रणामकर निवेदन किया और नीलकण्ठकी ओर अभिमुख होकर वे कहने लगे—'प्रभो! आपके जिस तेजसे हम सब प्रकट हुए हैं, आपका वही तेज वेद-मन्त्रोंके योगसे इस शिशुमें प्रवेश करे।'

इस प्रकार समस्त देवताओंने वेद-मन्त्रोंसे जलको अभिमन्त्रित किया, फिर सर्वात्मा शिवका स्मरणकर उस जलको उस बालकपर छिड़क दिया। उस अभिमन्त्रित जलका स्पर्श होते ही सर्वदेवमय शिवकी इच्छासे उस बालककी चेतना लौट आयी। वह जीवित हो गया और इस प्रकार उठ बैठा, जैसे निद्रा त्यागकर उठा हो—

सुभगः सुन्दरतरो गजवक्त्रः सुरक्तकः।
प्रसन्नवदनश्चाति सुप्रभो ललिताकृतिः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १७। ५७)

'वह सौभाग्यशाली बालक अत्यन्त सुन्दर था। उसका

मुख हाथीका-सा था। उसके शरीरका रंग लाल था, चेहरेपर अत्यन्त प्रसन्नता खेल रही थी। उसकी कमनीय आकृतिसे सुन्दर प्रभा फैल रही थी।'

उस परम तेजस्वी पार्वती-पुत्रको जीवित देखकर उपस्थित सुर-समुदाय एवं शिवगण आनन्द-विभोर हो

गये। सबका दुःख दूर हो गया। सबने यह सुखद संवाद हिमगिरिनन्दिनी पार्वतीको सुनाया। जननी दौड़ी आयीं और अपने योग्यतम शिशुको जीवित देखा तो जैसे सब कुछ भूल गयीं। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही।

समस्त देवताओं और गणाध्यक्षोंने गजाननका अभिषेक किया।

आनन्दोत्सव और गजमुखको बर-प्रदान

जननीने तो हर्षविह्वल होकर अपने प्राणप्रिय पुत्रको दोनों हाथोंसे उठाकर अपनी गोदमें लेकर छातीसे सटा लिया। पुत्रके पुनर्जीवित हो जानेसे उनका प्रज्वलित हृदय शीतल हो रहा था। हर्षातिरेकसे जगदीश्वरीके नेत्र मुँद-से गये थे। कुछ देर बाद योगमार्गप्रदर्शिनी माता पार्वतीने प्रसन्न होकर अपने प्राणाधिक पुत्र गजमुखको अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषण प्रदान किये।

सिद्धियोंने उनकी विधिपूर्वक पूजा की तथा क्लेशनाशिनी करुणामूर्ति जगदम्बाने अपने सर्वदुःखहारी कर-कमलोंसे उनके अङ्गोंका स्पर्श किया। अत्यधिक स्नेहके कारण जननी अपने पुत्र गजाननका मुख बारम्बार चूमने लगीं।

'बेटा! इस समय तुम्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा।' फिर अत्यन्त प्रेमपूर्वक शिवज्ञानस्वरूपिणी शिवप्रियाने अपने अद्वितीय पुत्रको वर प्रदान करते हुए कहा—तू धन्य है। अबसे सम्पूर्ण देवताओंमें तेरी अग्रपूजा होती रहेगी और तुझे कभी दुःखका सामना नहीं करना पड़ेगा—

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।
सर्वेषाममराणां वै सर्वदा दुःखवर्जितः॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ८)

संसारतारिणी दयामयी जननीने अपने आत्मज गजवक्त्रको अमोघ वर प्रदान करते हुए आगे कहा—

'इस समय तेरे मुखपर सिन्दूर दीख रहा है, इसलिये मनुष्योंको सदा सिन्दूरसे तेरी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य पुष्प, चन्दन, सुन्दर गन्ध, नैवेद्य, रमणीय आरती, ताम्बूल और दानसे तथा परिक्रमा और नमस्कार करके विधिपूर्वक तेरी पूजा करेगा, उसे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी और उसके सभी प्रकारके विघ्न नष्ट हो जायँगे—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।'

इन्द्रादि देवगण पार्वतीके प्रिय पुत्र गजमुखको लेकर आशुतोष शिवके पास पहुँचे और उन्हें परमपिता शिवकी गोदमें बैठा दिया। तब सर्व-पावन भगवान् वृषभध्वजने भी उनके मस्तकपर अपना वरद कर-कमल रखते हुए कहा—'**पुत्रोऽयमिति मे परः**'—'यह मेरा दूसरा पुत्र है।'

अरुणवर्ण गणेशने भी उठकर अपने पिता नीलकण्ठके अभयद पद-पङ्कजमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। फिर उन्होंने अपनी मोक्षप्रदायिनी माता पार्वतीसहित ब्रह्मा, विष्णु तथा नारदादि समस्त ऋषियोंके चरणोंमें प्रणामकर कहा—

'क्षन्तव्यश्चापराधो मे मानश्चैवेदृशो नृणाम्।'

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। १९)

'यों अभिमान करना मनुष्योंका स्वभाव ही है, अतः

आप लोग मेरा अपराध क्षमा करें।' तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव—त्रिदेवोंने प्रसन्न होकर शिवा-पुत्र गणेशको एक साथ वर प्रदान करते हुए कहा—

'अमरवरो! जैसे त्रैलोक्यमें हम तीनों देवोंकी पूजा होती है, उसी तरह तुम सबको इन गणेशका भी पूजन करना चाहिये।......मनुष्योंको चाहिये कि पहले इनकी पूजा कर लें; तत्पश्चात् हम लोगोंका पूजन करें। ऐसा करनेसे हम लोगोंकी पूजा सम्पन्न हो जायगी। देवगणो! यदि कहीं इनकी पूजा पहले न करके अन्य देवोंका पूजन किया गया तो उस पूजनका फल नष्ट हो जायगा—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

इतना ही नहीं, अमित महिमाशालिनी पार्वतीको प्रसन्न करनेके लिये ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी सुरोंने वहीं उनके पुत्र शूर्पकर्णको 'सर्वाध्यक्ष' घोषित कर दिया।

अत्यधिक हर्षोत्फुल्ल होनेके कारण भवाब्धिपोत धूर्जटिने आगे कहा—'गणनाथ! तू भाद्रपद-मासके कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी-तिथिको शुभ चन्द्रोदय होनेपर उत्पन्न हुआ है, गिरिजाके सुन्दर चित्तसे रात्रिके प्रथम प्रहरमें तेरा रूप प्रकट हुआ है; इसलिये उसी तिथिमें तेरा उत्तम व्रत करना चाहिये।[१]

फिर सर्वसिद्धिप्रद उत्तम 'चतुर्थी-व्रत'की विधि बताते हुए करुणामय सर्वभूतपति कर्पूरगौरने कहा—

सर्वैर्वर्णैः प्रकर्तव्या स्त्रीभिश्चैव विशेषतः।
उदयाभिमुखैश्चैव राजभिश्च विशेषतः॥
यं यं कामयते यो वै तं तमाप्नोति निश्चितम्।
अतः कामयमानेन तेन सेव्यः सदा भवान्॥

(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ५९-६०)

'सभी वर्णके लोगोंको, विशेषकर स्त्रियोंको यह पूजा अवश्य करनी चाहिये तथा अभ्युदयकी कामना करनेवाले राजाओंके लिये भी यह व्रत अवश्यकर्तव्य है। व्रती मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी कामना करता है, उसे निश्चय ही वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; अतः जिसे किसी वस्तुकी अभिलाषा हो, उसे अवश्य तुम्हारी सेवा करनी चाहिये।'

'तथास्तु!' स्वर्गापवर्गदाता उमानाथके प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान करनेपर सम्पूर्ण देवताओं, ऋषियों और गणोंने उसका अनुमोदन करते हुए अनेक विधि-विधानोंसे गणाध्यक्षकी पूजा की। शिवगणोंने विशेषरूपसे वक्रतुण्डकी अर्चना एवं वन्दना की। अपने प्राणप्रिय पुत्र गजमुखकी श्रेष्ठ प्रतिष्ठा देखकर योगेश्वरेश्वरी भवानी अत्यन्त मुदित हुईं।

---

१. चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नो भाद्रे मासि गणेश्वर। असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे॥
प्रथमे च तया यामे गिरिजायाः सुचेतसः। आविर्बभूव ते रूपं यस्मात्ते व्रतमुत्तमम्॥
(शिवपु०, रुद्रसं०, कु० खं० १८। ३५-३६)

भगवान् श्रीगणेशके विभिन्न अवतारोंकी लीला-कथाएँ

जब-जब आसुरी शक्तियोंके प्रबल होनेसे जन-जीवन कण्टकाकीर्ण हो जाता है, निर्दय दैत्य सत्त्वगुण-सम्पन्न सुर-समुदायका सर्वस्व हरणकर निरन्तर उन्हें पीडित करते हैं, धराधामपर सर्वत्र अनीति, अनाचार और दुराचारका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, धर्मका ह्रास एवं अधर्मकी वृद्धि होने लगती है, तब-तब मङ्गल-मोद-निधान श्रीगणेशजी भू-भार-हरणार्थ अवतार ग्रहण करते हैं। वे गुणतत्त्व-विवेचक आदिदेव गजमुख दैत्योंका विनाशकर देवताओंका अपहृत अधिकार उन्हें लौटाते हैं तथा प्रत्येक रीतिसे सद्धर्मकी स्थापना करते हैं, जिससे समस्त प्राणियोंको सुख-शान्तिकी अनुभूति होती है।

प्रत्येक युगमें उन महामहिम प्रभुके नाम, वाहन, गुण, लीला और कर्म आदि पृथक्-पृथक् होते हैं तथा उनके द्वारा जिन दैत्योंका संहार होता है, वे भी भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

कृतयुगमें ये परमप्रभु गजानन सिंहारूढ 'महोत्कट विनायक'के नामसे प्रख्यात हुए, त्रेतामें ये मङ्गलमोद-प्रदाता गणेश मयूरारूढ 'मयूरेश्वर'के नामसे प्रसिद्ध हुए; द्वापरमें मूषकवाहन शिवपुत्रकी 'गजानन' या 'गौरीपुत्र'के नामसे ख्याति हुई; तथा कलिके अन्तमें ये धर्मरक्षक गजानन अश्वारोही 'धूम्रकेतु' के नामसे प्रसिद्ध होंगे।

(१)

महोत्कटका प्राकट्य एवं उनकी लीलाएँ

एक बारकी बात है, महर्षि कश्यप अग्निहोत्र कर चुके थे। सुगन्धित यज्ञ-धूम आकाशमें फैला हुआ था। इसी समय पुण्यमयी अदिति अपने पति महर्षि कश्यपके समीप पहुँचीं। परम तपस्वी पतिके श्रीचरणोंमें प्रणामकर उन्होंने निवेदन किया—'स्वामिन्! इन्द्रादि देवगणोंको तो मैंने पुत्ररूपमें प्राप्त किया है; किंतु पूर्ण परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मा मेरे पुत्ररूपसे प्राप्त हों—यह कामना मेरे मनमें बार-बार उदित हो रही है। वे परम प्रभु किस प्रकार मेरे पुत्र होकर मुझे कृतकृत्य करेंगे, आप कृपापूर्वक बतलानेका कष्ट कीजिये।'

महर्षि कश्यपने अपनी प्रिय पत्नी अदितिको विनायकका ध्यान, उनका मन्त्र और न्याससहित पुरश्चरणकी पूरी विधि विस्तारपूर्वक बताकर उन्हें कठोर तपस्याके लिये प्रोत्साहित किया।

महाभागा अदिति अत्यन्त प्रसन्न हुईं और पतिकी आज्ञा प्राप्तकर कठोर तप करनेके लिये एकान्त शान्त अरण्यमें जा पहुँचीं तथा वहाँ देवदेव विनायकके ध्यान और जपमें तन्मय हो गयीं।

भगवती अदितिकी सुदृढ़ प्रीति एवं कठोर तपसे कोटि-कोटि भुवनभास्करकी प्रभासे भी अधिक परम तेजस्वी, कामदेवसे भी अधिक सुन्दर देवदेव गजानन विनायकने उनके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुम्हारे अत्यन्त घोर तपसे संतुष्ट होकर तुम्हें वर प्रदान करने आया हूँ। तुम इच्छित वर माँगो। मैं तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करूँगा।'

'प्रभो! आप ही जगत्के स्रष्टा, पालक और संहारकर्ता हैं। आप सर्वेश्वर, नित्य, निरञ्जन, प्रकाशस्वरूप, निर्गुण, निरहंकार, नाना रूप धारण करनेवाले और सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपापूर्वक मेरे पुत्ररूपमें प्रकट होकर मुझे कृतार्थ करें। आपके द्वारा दुष्टोंका विनाश एवं साधु-परित्राण हो और सामान्य-जन कृतकृत्य हो जायँ।'

'मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा।' वाञ्छाकल्पतरु विनायकने तुरंत कहा—'साधुजनोंका रक्षण, दुष्टोंका विनाश एवं तुम्हारी इच्छाकी पूर्ति करूँगा।'

इतना कहकर देवदेव विनायक अन्तर्धान हो गये।

देवमाता अदिति अपने आश्रमपर लौटीं। उन्होंने अपने पतिके चरणोंमें प्रणामकर उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। महर्षि कश्यप आनन्दमग्न हो गये।

× × ×

उधर देवान्तक और नरान्तकके कठोरतम क्रूर शासनमें समस्त देव-समुदाय और ब्राह्मण अत्यन्त भयाक्रान्त हो कष्ट

पा रहे थे। वे अधीर और अशान्त हो गये थे। तब ब्रह्माजीके निर्देशानुसार दुष्ट दैत्योंके भारसे पीडित—व्याकुल धरित्रीसहित देवताओं और ऋषियोंने हाथ जोड़कर आदिदेव विनायककी स्तुति करते हुए कहा—'देव! सम्पूर्ण जगत् हाहाकारसे व्याप्त एवं स्वधा और स्वाहासे रहित हो गया है। हम सब पशुओंकी तरह सुमेरु-पर्वतकी कन्दराओंमें रह रहे हैं। अतएव हे विश्वम्भर! आप इन महादैत्योंका विनाश करें।'

—इस प्रकार करुण प्रार्थना करनेपर पृथ्वीसहित देवताओं और ऋषियोंने आकाशवाणी सुनी—

कश्यपस्य गृहे देवोऽवतरिष्यति साम्प्रतम्।
करिष्यत्यद्भुतं कर्म पदानि वः प्रदास्यति॥
दुष्टानां निधनं चैव साधूनां पालनं तथा।

(गणेशपु० २। ६। १७—१८)

'सम्प्रति देवदेव गणेश महर्षि कश्यपके घरमें अवतार लेंगे और अद्भुत कर्म करेंगे। वे ही आप लोगोंको पूर्वपद भी प्रदान करेंगे। वे दुष्टोंका संहार एवं साधुओंका पालन करेंगे।'

'देवि! तुम धैर्य धारण करो।' आकाशवाणीसे आश्वस्त होकर पद्मयोनिने मेदिनीसे कहा—'समस्त देवता पृथ्वीपर जायँगे और निःसंदेह महाप्रभु विनायक अवतार ग्रहणकर तुम्हारा कष्ट निवारण करेंगे।'

पृथ्वी, देवता तथा मुनिगण विधाताके वचनसे प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

× × ×

कुछ समय बाद सती कश्यप-पत्नी अदितिके समक्ष मङ्गलमयी वेलामें अद्भुत, अलौकिक, परमतत्त्व प्रकट हुआ। वह अत्यन्त बलवान् था। उसकी दस भुजाएँ थीं। कानोंमें कुण्डल, ललाटपर कस्तूरीका शोभाप्रद तिलक और मस्तकपर मुकुट सुशोभित था। सिद्धि-बुद्धि साथ थीं और कण्ठमें रत्नोंकी माला शोभायमान थी। वक्षपर चिन्तामणिकी अद्भुत सुषमा थी और अधरोष्ठ जपापुष्प-तुल्य अरुण थे। नासिका ऊँची थी और सुन्दर भ्रुकुटिके संयोगसे ललाटकी सुन्दरता बढ़ गयी थी। वह दाँतसे दीप्तिमान् था। उसकी अपूर्व देह-कान्ति अन्धकारको नष्ट करनेवाली थी। उस शुभ बालकने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था।

महिमामयी अदिति उस अलौकिक सौन्दर्यको देखकर चकित और आनन्द-विह्वल हो रही थीं। उस समय परम तेजस्वी अद्भुत बालकने कहा—'माता! तुम्हारी तपस्याके फलस्वरूप मैं तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे आया हूँ। मैं दुष्ट दैत्योंका संहारकर साधु-पुरुषोंका हित एवं तुम्हारी कामनाओंकी पूर्ति करूँगा।'

'आज मेरे अद्भुत पुण्य उदित हुए हैं, जो साक्षात् गजानन मेरे यहाँ अवतरित हुए।' हर्ष-विह्वल माता अदितिने विनायकदेवसे कहा—'यह मेरा परम सौभाग्य है; जो चराचरमें व्याप्त, निराकार, नित्यानन्दमय, सत्यस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर गजानन मेरे पुत्रके रूपमें प्रकट हुए। किंतु अब आप इस अलौकिक एवं परम दिव्य रूपका उपसंहारकर प्राकृत बालककी भाँति क्रीडा करते हुए मुझे पुत्र-सुख प्रदान करें—

इदं रूपं परं दिव्यमुपसंहर साम्प्रतम्।
प्राकृतं रूपमास्थाय क्रीडस्व कुहको यथा॥

(गणेशपु० २। ६। ३५)

तत्क्षण अदितिके सम्मुख अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट सशक्त बालक धरतीपर तीव्र रुदन करने लगा। उसके रुदनकी ध्वनि आकाश, पाताल और धरतीपर दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गयी। अद्भुत बालकके रुदनसे धरती काँपने लगी, वन्ध्या स्त्रियाँ गर्भवती हो गयीं, नीरस वृक्ष सरस हो गये; देव-समुदायसहित इन्द्र आनन्दित और दैत्यगण भयभीत हो गये।

महर्षि कश्यपकी पत्नी अदितिके अङ्कमें बालक आया जानकर ऋषि-मुनि एवं ब्रह्मचारी आदि आश्रमवासी तथा देवगण सभी प्रसन्न थे। बालकके स्वरूपके अनुसार पिता कश्यपने उसका नामकरण किया—'महोत्कट।'

ऋषिपुत्र—महोत्कटके जन्मका समाचार सुनकर असुरोंके मनमें भय व्याप्त हो गया और उन्हें बाल्यकालमें ही मार डालनेका प्रयत्न करने लगे। असुरराज देवान्तकने महोत्कटको मारनेके लिये 'विरजा' नामकी एक क्रूर राक्षसीको भेजा, परंतु महोत्कटने खेल-खेलमें ही उसे परमधाम प्रदान कर

दिया। इसके बाद 'उद्धत' और 'धुन्धुर' नामक दो राक्षस शुक-रूपमें कश्यपके आश्रममें पहुँचकर अपने तीक्ष्ण चोंचोंसे मुनिकुमार 'महोत्कट'को मारनेका प्रयास करने लगे। इसपर क्रुद्ध हो उन्होंने क्षणभरमें उन शुकरूप राक्षसोंको धरतीपर पटककर मार डाला। इसी प्रकार महोत्कटने धूम्राक्ष, जृम्भा, अन्धक, नरान्तक तथा देवान्तक आदि भयानक मायावी असुरों एवं आसुरी सेनाका अनेक लीलाओंसे संहारकर तीनों लोकोंको आनन्दित किया—विश्वकी रक्षा की। भगवान्‌के हाथों मृत्यु होनेसे इन असुरोंको परमपदकी प्राप्ति हुई। देवान्तक-युद्धमें प्रभु द्विदन्तीसे एकदन्ती हो गये और अपने एक रूपसे 'ढुण्ढिविनायक'के नामसे काशीमें प्रतिष्ठित हो गये।

(२)

भगवान् मयूरेश्वरकी लीला-कथा

त्रेतायुगकी बात है। मैथिलदेशमें प्रसिद्ध गण्डकी नगरके सद्धर्मपरायण नरेश चक्रपाणिके पुत्र सिन्धुके क्रूरतम शासनसे धराधामपर धर्मकी मर्यादाका अतिक्रमण हो रहा था। उसी समय भगवान् गणेशने 'मयूरेश्वर'के रूपमें लीला-विग्रह धारणकर विविध लीलाएँ कीं और महाबली सिन्धुके अत्याचारोंसे त्रैलोक्यका रक्षण करते हुए पुनः विधाताके शाश्वत नियमोंकी प्रतिष्ठापना की।

अत्यन्त शक्तिशाली सिन्धुके दो सहस्र वर्षकी उग्र तपस्यासे सहस्रांशु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अभीष्ट वरके रूपमें अमृतपात्र प्रदान करते हुए कहा—'जबतक यह अमृतपात्र तुम्हारे कण्ठमें रहेगा, तबतक तुम्हें देवता, नाग, मनुष्य, पशु एवं पक्षी आदि कोई भी दिन, रात, प्रातः तथा सायं किसी भी समय मार न सकेगा।' अब तो वर प्राप्तकर वह अत्यन्त मदोन्मत्त हो गया। अकारण ही सत्य-धर्मके मार्गपर चलनेवालोंका तथा निरपराध नर-नारियों एवं अबोध शिशुओंकी हत्या करनेमें गर्वका अनुभव करने लगा। सम्पूर्ण धरित्री रक्त-रंजित-सी हो गयी। इसके बाद उसने पातालमें भी अपना आधिपत्य जमा लिया और ससैन्य स्वर्गलोकपर चढ़ाई करके वहाँ शचीपति इन्द्रादि देवताओंको पराभूतकर तथा विष्णुको बंदी बनाकर सर्वत्र हाहाकार मचा दिया।

चिन्तित देवताओंने इस विकट कष्टसे मुक्ति पानेके लिये अपने गुरु बृहस्पतिसे निवेदन किया। सुरगुरुने कहा—'परम प्रभु विनायक स्वल्प पूजासे ही शीघ्र प्रसन्न होनेवाले हैं; अतः आप लोग असुरसंहारक, दशभुज विनायककी स्तुति-प्रार्थना करें। ऐसा करनेसे वे करुणासिन्धु अवतरित होकर असुरोंका वधकर धराका भार हलका करेंगे और आप लोगोंका अपहृत पद पुनः प्रदान करेंगे।' प्रसन्नतापूर्वक देवताओंने भक्तिपूर्वक उनका स्तवन प्रारम्भ कर दिया।

देवताओंकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर परम प्रभु विनायक प्रकट हो गये और कहने लगे—'जिस प्रकार मैंने महामुनि कश्यपकी परम साध्वी पत्नी अदितिके गर्भसे जन्म लिया था, उसी प्रकार शिवप्रिया माता पार्वतीके यहाँ अवतरित होकर महादैत्य सिन्धुका वध करूँगा और आप सबका अपना-अपना पद प्रदान करूँगा। इस अवतारमें मेरा नाम 'मयूरेश्वर' प्रसिद्ध होगा'—इतना कहकर परम प्रभु विनायक अन्तर्धान हो गये। देवगणोंके तो हर्षका ठिकाना न रहा।

एक बार माता पार्वती देवाधिदेव भगवान् शंकरको तपश्चरणमें निरत देख उनसे कहने लगीं—'प्रभो! आप तो स्वयं सृष्टिके पालन एवं संहारकर्ता तथा अनन्तानन्त-कोटि-ब्रह्माण्डोंके नायक हैं, फिर आप किसे प्रसन्न करनेके लिये तप करते हैं'? शूलपाणिने उत्तर दिया—'निष्पापे! मैं उन अनन्त महाप्रभुकी प्रसन्नताके लिये तप करता हूँ, जिनकी शक्ति, गुण और कर्म सभी अनन्त हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड उनके प्रत्येक रोममें निवास करते हैं और समस्त गुणोंके ईश होनेके कारण वे 'गुणेश' कहे जाते हैं। मैं उन्हीं 'गुणेश' का निरन्तर ध्यान करता रहता हूँ।' यह सुनकर गौरीने जिज्ञासा प्रकट की—'प्रभो! वे परम प्रभु मुझपर कैसे प्रसन्न होंगे, मुझे उनका प्रत्यक्ष दर्शन किस प्रकार हो सकेगा?' भगवान् शंकरने कहा—'हे प्रिये! निष्ठापूर्वक किये गये आराधन तथा तपश्चरणसे ही उनका दर्शन सुलभ हो सकेगा। इसके लिये तुम्हें बारह वर्षोंतक गणेशके एकाक्षरी मन्त्रका

जप करना होगा।' जगन्माता पार्वती भगवान् शंकरसे उपदिष्ट उस एकाक्षरी गणेशमन्त्र (गं)-का जप करने लगीं।

× × ×

कुछ ही समय बाद भाद्रपद-मासकी शुक्ल पक्षीय चतुर्थी-तिथि आयी। सभी ग्रह-नक्षत्र शुभस्थ एवं मङ्गलमय योगमें विराजमान थे। उसी समय विराट्रूपमें पार्वतीके सम्मुख भगवान् गणेशका अवतरण हुआ। इस रूपसे चकित-थकित होती हुई तपस्विनी पार्वतीने कहा—'प्रभो! मुझे अपने पुत्र-रूपका दर्शन कराइये।' इतना सुनना था कि सर्वसमर्थ प्रभु तत्काल स्फटिकमणितुल्य षड्भुज दिव्य विग्रहधारी शिशुरूपमें क्रीडा करने लगे। उनकी देहकी कान्ति अद्भुत लावण्ययुक्त एवं प्रभासम्पन्न थी। उनका वक्षःस्थल विशाल था। सभी अंग पूर्णतः शुभ चिह्नोंसे अलंकृत थे। दिव्य शोभासम्पन्न यह विग्रह ही 'मयूरेश्वर' रूपमें साक्षात् प्रकट हुआ था। मयूरेशके आविर्भावसे ही प्रकृतिमात्र आनन्दविभोर हो उठी। आकाशस्थ देवगण पुष्प-वर्षण करने लगे।

आविर्भावके समयसे ही सर्वविघ्नहारी शिवा-पुत्रकी दिव्य लीलाएँ प्रारम्भ हो गयी थीं। एक दिनकी बात है। समस्त ऋषियोंके अन्यतम प्रीतिभाजन हेरम्ब क्रीडा-मग्न थे, सहसा गृध्ररूपधारी एक भयानक असुरने उन्हें अपनी चोंचमें पकड़ लिया और बहुत ऊँचे आकाशमें उड़ गया। जब पार्वतीने अपने प्राणप्रिय बालकको आकाशमें उस विशाल गृध्रके मुखमें देखा तो सिर धुन-धुनकर करुण विलाप करने लगीं। सर्वात्मा हेरम्बने माताकी व्याकुलता देखकर मुष्टि-प्रहार मात्रसे ही गृध्रासुरका वध कर दिया। चीत्कार करता हुआ वह विशालकाय असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बाल भगवान् मयूरेश उस असुरके साथ ही नीचे आये थे, परंतु वे सर्वथा सुरक्षित थे, उन्हें खरोंचतक नहीं लगी थी। माता पार्वतीने दौड़कर बच्चेको उठा लिया और देवताओंकी मिन्नतें करती हुई दुग्धपान कराने लगीं।

इसी तरह एक दिन माता पार्वती जब उन्हें पालनेमें लिटाकर लोरी सुना रही थीं, उसी समय क्षेम और कुशल नामक दो भयानक असुर वहाँ आकर बालकको मारनेका प्रयत्न करने लगे, पार्वती अभी कुछ समझ पातीं तबतक बालकने अपने पदाघातसे ही उन राक्षसोंका हृदय विदीर्ण कर दिया। वे राक्षस रक्त-वमन करते हुए वहीं गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें मोक्ष प्रदान कर दिया।

× × ×

एक दिन माता पार्वती सखियोंके साथ मन्दिरमें पूजा करने गयीं। बालक गणेश वहीं मन्दिरके बाहर खेलने लगे। उसी समय क्रूर नामक एक महाबलवान् असुर ऋषिपुत्रके वेषमें आकर उनके साथ खेलने लगा और खेल-खेलमें हेरम्बको मार डालनेके लिये उनके केश पकड़कर धरतीपर पटकना चाहता था, परंतु लीलाधारी भगवान्ने उसका गला दबाकर तत्क्षण ही उसकी इहलीला समाप्त कर दी। सखियोंसहित पार्वती यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं।

इसी तरह मङ्गलमोद प्रभु गणेशने लीला करते हुए असुर सिन्धुद्वारा भेजे गये अनेक छल-छद्मधारी असुरोंको सदा-सर्वदाके लिये मुक्त कर दिया। इस क्रममें उन्होंने दुष्ट वकासुर तथा कुत्तेरूपधारी 'नूतन' नामक राक्षसका वध किया। अपने शरीरसे असंख्य गणोंको उत्पन्न कर 'कमलासुर' की बारह अक्षौहिणी सेनाका विनाश कर दिया तथा त्रिशूलसे कमलासुरका मस्तक काट डाला। उसका मस्तक भीमा नदीके तटपर जा गिरा। देवताओं तथा ऋषियोंकी प्रार्थनापर गणेश वहाँ 'मयूरेश' नामसे प्रतिष्ठित हुए।

इधर दुष्ट दैत्य सिन्धुने जब सभी देवताओंको कारागारमें बंदी बना लिया, तब भगवान्ने दैत्यको ललकारा। भयंकर युद्ध हुआ। असुर-सैन्य पराजित हुआ। यह देख कुपित दैत्यराज अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे मयूरेशपर प्रहार करने लगा; परंतु सर्वशक्तिमान्के लिये शस्त्रास्त्रोंका क्या महत्त्व! सभी प्रहार निष्फल हो गये। अन्तमें महादैत्य सिन्धु मयूरेशके परशु-प्रहारसे निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे दुर्लभ मुक्ति प्राप्त हुई। देवगण मयूरेशकी स्तुति करने लगे। भगवान् मयूरेशने सबको आनन्दितकर सुख-शान्ति प्रदान किया और अपने लीलावतरणके प्रयोजनकी पूर्णता बतलाते हुए अन्तमें अपनी लीलाका संवरण करके वे परम प्रभु परमधामको पधार गये—वहीं अन्तर्धान हो गये।

(३)

श्रीगजाननकी प्राकट्य-लीला

द्वापर युगकी बात है। एक दिन पार्वतीवल्लभ शिव ब्रह्म-सदन पहुँचे। उस समय चतुर्मुख शयन कर रहे थे। कमलासनने निद्रासे उठते ही जँभाई ली। उसी समय उनके मुखसे एक महाघोर पुरुष प्रकट हुआ। जन्म लेते ही उसने त्रैलोक्यमें भय उत्पन्न करनेवाली घोर गर्जना की। उसके उस गर्जनसे सम्पूर्ण वसुधा काँप गयी, दिक्पाल चकित हो गये।

उस महाघोर पुरुषकी अङ्ग-कान्ति जपा-पुष्पके सदृश लाल थी और उसके शरीरसे तीव्र सुगन्ध निकल रही थी। उसके रूप-सौन्दर्यको देखकर पद्मयोनि भी चकित हो गये। उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ है और तुम्हें क्या अभीष्ट है?'

उक्त पुरुषने उत्तर दिया—'देवाधिदेव! आप अनेक ब्रह्माण्डोंका निर्माण करते हैं, सर्वज्ञ हैं, फिर अनजानकी तरह कैसे पूछ रहे हैं? जँभाई लेते समय मैं आपके मुखसे प्रकट हुआ आपका पुत्र हूँ; अतएव आप मुझे स्वीकार कीजिये और मेरा नामकरण कर दीजिये।'

विधाता अपने पुत्रका सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये थे, अब उसकी मधुर वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटा! अतिशय अरुणवर्ण होनेके कारण तेरा नाम 'सिन्दूर' होगा। त्रैलोक्यको अधीन करनेकी तुझमें अद्‌भुत शक्ति होगी। तू क्रोधपूर्वक अपनी विशाल भुजाओंमें पकड़कर जिसे दबोच लेगा, उसके शरीरके सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे, त्रैलोक्यमें तेरी जहाँ इच्छा हो, तुझे जो स्थान प्रिय लगे, वहीं निवास कर।'

पितासे इतने वर प्राप्तकर मदोन्मत्त सिन्दूर सोचने लगा—'उनका वर-प्रदान सत्य है कि नहीं, कैसे पता चले? यहाँ कोई है भी नहीं, जिसे मैं अपनी भुजापाशमें आबद्धकर वरका परीक्षण कर लूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं तो कोई नहीं दीखता।'

अब वह सीधे पितामहके समीप पहुँचा। उसने अपनी दोनों भुजाओंको तौलते हुए गर्जना की। उसकी कुचेष्टाकी कल्पना करके भयभीत पद्मयोनिने दूर जाकर पूछा—'लौट कैसे आये बेटा?'

'आपके वरकी परीक्षा करना चाहता हूँ।'

सिन्दूरका कथन सुनकर पितामहने उसे शाप देते हुए कहा—'सिन्दूर! अब तू असुर हो जायगा। सिन्दूर-प्रिय सिन्दूरारुण प्रभु गजानन तेरे लिये अवतरित होंगे और निश्चय ही तुझे मार डालेंगे।'

इस प्रकार शाप देते हुए पितामह प्राण लेकर भागे। दौड़ते-दौड़ते वे वैकुण्ठ पहुँचे और श्रीहरिसे निवेदन किया—'प्रभो! इस दुष्टसे आप मेरी रक्षा कीजिये।'

वर-प्राप्त सिन्दूरकी सुगठित प्रचण्ड काया देखकर श्रीविष्णुने अत्यन्त मधुर वाणीमें उसे समझाना चाहा; लेकिन सर्वथा मूर्ख, उद्दण्ड-प्रचण्ड वह असुर युद्धके लिये विष्णुकी ओर बढ़ने लगा। तब भगवान् विष्णुने उसे भगवान् शंकरसे युद्धके लिये प्रेरित किया।

बलोन्मत्त मूर्ख असुर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह बड़े वेगसे उड़ा और कैलासपर्वतपर जा पहुँचा। वहाँ आशुतोष शिव पद्मासन लगाये ध्यानस्थ थे। नन्दी और भृङ्गी आदि गण उन परम प्रभुके आस-पास थे और माता पार्वती उनकी सेवा कर रही थीं।

सिन्दूर सतीकी ओर मुड़ा ही था कि वे वटपत्रकी भाँति काँपती हुई मूर्च्छित हो गयीं। महापातकी असुरने जगज्जननीकी वेणी पकड़ ली और उन्हें बलपूर्वक ले चला। कोलाहलसे त्रिपुरारिकी समाधि भङ्ग हुई।

यह देख क्रोधसे भगवान् शंकरके नेत्र लाल हो गये। वे तीव्रतम गतिसे सिन्दूरके पीछे दौड़े तथा क्षणभरमें ही उसके समीप पहुँच गये। अत्यन्त कुपित वृषभध्वज भी असुरसे युद्ध करनेके लिये उद्यत थे ही; उसी समय माता पार्वतीने मन-ही-मन मयूरेशका चिन्तन किया। तत्क्षण कोटि-सूर्यसमप्रभ देवदेव मयूरेश्वर ब्राह्मणके वेषमें सिन्दूर और शंकरके बीच प्रकट हो गये। वे अत्यन्त सुन्दर एवं वस्त्राभूषण-भूषित थे। उन्होंने अपने तीक्ष्णतम तेजस्वी परशुसे असुरको पीछे हटाकर अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा—'माता गिरिजाको तुम मेरे पास छोड़ दो; फिर शिवके साथ युद्ध करो। युद्धमें जिसकी विजय होगी, पार्वती उसीकी होंगी; अन्यथा नहीं।'

ब्राह्मणवेषधारी मयूरेशके वचन सुनकर सिन्दूर संतुष्ट हुआ। उसने माता पार्वतीको मयूरेशके पास चले जाने दिया और फिर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुके आघातसे सिन्दूरकी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गयी। उसके शिथिल होते ही

मदनान्तकने उसपर अपने कठोर त्रिशूलका प्रहार किया, जिससे आहत होकर असुर वहीं गिर पड़ा।

विवश हो सिन्दूरने पार्वतीकी आशा छोड़ दी और वह पृथ्वीके लिये प्रस्थित हुआ। शंकर विजयी हुए।

अब ब्राह्मणवेषधारी मयूरेश अपने स्वरूपमें प्रकट हो गये और अपनी माताकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुस्कराने लगे तथा मातासे कहा—'मैं आपके पुत्ररूपमें शीघ्र ही प्रकट होकर असुरोंका विनाश करूँगा।' इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

इधर जब सिन्दूरके आतंकसे त्रैलोक्य कम्पित हो गया तब सुरगुरु बृहस्पतिके निर्देशानुसार देवगण करुणामय विनायककी स्तुति करने लगे। स्तुति करके देवता और मुनि सभी तपस्यामें संलग्न हुए। देवताओं और ऋषियोंके कठोर तपसे देवदेव गणराज प्रसन्न हो उनके समक्ष प्रकट हुए और उन्होंने कहा—'देवताओ! मैं असुर सिन्दूरका वध करूँगा। तुम लोग निश्चिन्त हो जाओ। 'गजानन' यह मेरा सर्वार्थसाधक नाम प्रसिद्ध होगा। मैं सिन्दूरका वधकर पार्वतीके सम्मुख अनेक प्रकारकी लीलाएँ करूँगा।' इतना कहकर गजानन अन्तर्धान हो गये।

देवाधिदेव भगवान् शंकरके अनुग्रहसे जगज्जननी पार्वतीके सम्मुख अतिशय तेजोराशिसे उद्दीप्त चन्द्र-तुल्य परमाह्लादक परम तत्त्व प्रकट हुआ।

माता पार्वतीने उस परम तेजस्वी मूर्तिसे पूछा—'आप कौन हैं? कृपया परिचय देकर आप मुझे आनन्द प्रदान करें।'

तेजस्वी विग्रहने उत्तर दिया—'माता! त्रेतामें शुभ्रवर्ण षड्भुज मयूरेश्वरके रूपमें मैंने ही आपके पुत्रके रूपमें अवतरित होकर सिन्धु-दैत्यका वध किया था और द्वापरमें पुनः आपको पुत्र-सुख प्रदान करनेका जो वचन दिया था, उसका पालन करनेके लिये मैं आपके पुत्र-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। मैंने ही ब्राह्मण-वेषमें आकर सिन्दूरके हाथसे आपकी रक्षा की थी। माता! अब मैं सिन्दूरका वधकर त्रिभुवनको सुख-शान्ति दूँगा और भक्तोंकी कामना-पूर्ति करूँगा। मेरा नाम 'गजानन' प्रसिद्ध होगा।

देवदेव विनायकको पहचानकर गौरीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वे उनका स्तवन करने लगीं।

माताकी प्रार्थना सुनते ही परम प्रभु अत्यन्त अद्भुत चतुर्भुज शिशु हो गये। उनकी चार भुजाएँ थीं। नासिकाके स्थानपर शुण्डदण्ड सुशोभित था। उनके मस्तकपर चन्द्रमा और हृदयपर चिन्तामणि दीप्तिमान् थी। वे गणपति दिव्य वस्त्र धारण किये, दिव्यगन्धयुक्त नवजात शिशुकी तरह माताके सम्मुख उपस्थित थे। कुछ क्षणके पश्चात् शिशुरूपधारी परम प्रभु गजाननने शिवसे कहा—'सदाचारपरायण परम पवित्र धर्मात्मा राजा वरेण्य मेरा भक्त है। उसकी सुन्दरी साध्वी पत्नीका नाम पुष्पिका है। पुष्पिका पतिव्रता, पतिप्राणा और पतिवाक्परायणा है। उन दोनोंने मुझे संतुष्ट करनेके लिये बारह वर्षोंतक कठोर तप किया था। मैंने प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान किया था—'निश्चय ही मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।' पुष्पिकाने अभी-अभी प्रसव किया है, किंतु उसके पुत्रको एक राक्षसी उठा ले गयी है। इस समय वह मूर्च्छित है; पुत्रके बिना वह प्राण त्याग देगी। अतएव आप मुझे तुरंत उस प्रसूताके पास पहुँचा दीजिये।'

गजाननकी वाणी सुनकर भगवान् शंकरने नन्दीको बुलाकर कहा—'पराक्रमी नन्दी ! माहिष्मती नामक श्रेष्ठ नगरीमें वरेण्य नामक नरेशकी पत्नी पुष्पिकाने अभी कुछ ही देर पूर्व प्रसव किया है। वह कष्टसे मूर्च्छित हो गयी है और उसके शिशुको एक राक्षसी उठा ले गयी है। तुम इस पार्वती-पुत्रको तुरंत उसके समीप रखकर लौट आओ। पुष्पिकाकी मूर्च्छा दूर होनेके पूर्व ही यह शिशु उसके समीप पहुँच जाय; अन्यथा प्रसूताके प्राण-संकटकी सम्भावना है।'

नन्दी अपने स्वामीके चरणोंमें प्रणामकर गजाननको लेकर वायुवेगसे उड़ चले और मूर्च्छिता पुष्पिकाके सम्मुख चुपचाप गजमुखको रखकर तुरंत लौट आये।

रात्रि व्यतीत हुई। अरुणोदय हुआ। पुष्पिकाने ध्यानपूर्वक अपने शिशुको देखा—रक्तवर्ण, चतुर्बाहु, गजवक्त्र, कस्तूरी-तिलक, चन्दन-चर्चित अङ्गपर पीतवर्ण-परिधान और मोतियोंकी माला तथा विविध रत्नाभरण शोभित हो रहे थे।

इस प्रकारका अद्भुत बालक देखकर पुष्पिका चकित और दुःखी ही नहीं हुई, भयसे काँपती हुई वह प्रसूति-गृहसे बाहर भागी। वह शोकसे व्याकुल होकर रोने लगी। रानीका रुदन सुनकर परिचारिकाएँ प्रसूति-गृहमें गयीं। अलौकिक बालकको देखकर वे भी भयाक्रान्त हो काँपती हुई बाहर आ गयीं। दूसरे जिन-जिन स्त्री-पुरुषोंने उन

शिशु-रूपधारी परम पुरुषका दर्शन किया, वे सभी भयभीत हुए। कुछ तो मूर्च्छित हो गये।

प्रत्यक्षदर्शियोंने राजासे कहा—ऐसे विचित्र बालकको घरमें नहीं रखना चाहिये।'

सबके मुँहसे भयभीत करनेवाले ऐसे वचन सुनकर नरेश वरेण्यने अपने दूतको बुलाकर आज्ञा दी—'इस शिशुको निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

राजाके दूतने नवजात शिशुको उठाया और शीघ्रतासे निर्जन वनमें एक सरोवरके तटपर धीरेसे रख दिया और द्रुत गतिसे लौट चला।

गहन काननमें सरोवरके तटपर पड़े नवजात शिशुपर अचानक महर्षि पराशरकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने शिशुके समीप पहुँचकर देखा—'दिव्य वस्त्रालंकारविभूषित, सूर्यतुल्य तेजस्वी, चतुर्भुज, गजमुख अलौकिक शिशु।'

महामुनिने शिशुको बार-बार ध्यानपूर्वक देखा। उसके नन्हे-नन्हे अरुण चरण-कमलोंपर दृष्टि डाली। उनपर ध्वज, अंकुश और कमलकी रेखाएँ दिखायी दीं।

महर्षिको रोमांच हो आया। हर्षातिरेकसे हृदय गद्गद, कण्ठ अवरुद्ध और नेत्र सजल हो गये। आश्चर्यचकित मुनिके मुँहसे निकल गया—'अरे, ये तो साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं। इन करुणामयने देवता और ऋषियोंका कष्ट निवारण करने और मेरा जीवन—जन्म सफल बनानेके लिये अवतार ग्रहण किया है।'

महर्षिने शिशुके चरणोंमें प्रणामकर उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अङ्कमें ले लिया और प्रसन्न-मन द्रुत गतिसे आश्रमकी ओर चले।

गजाननके चरण-स्पर्शसे ही महर्षि पराशरका सुविस्तृत आश्रम अतिशय मनोहर हो गया। वहाँके सूखे वृक्ष भी पल्लवित और पुष्पित हो उठे। वहाँकी गायें कामधेनु-तुल्य हो गयीं। सुखद पवन बहने लगा। आश्रम दिव्यातिदिव्य हो गया।

'मेरे शिशुका पालन दिव्यदृष्टि-सम्पन्न महर्षि पराशर कर रहे हैं।' इस संवादसे नरेश वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने यहाँ पुत्रोत्सव मनाया। वाद्य बजने लगे। घर-घर मिष्टान्न-वितरण हुआ। नरेशने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुमूल्य वस्त्र, स्वर्ण और रत्नालङ्करण देकर संतुष्ट किया।

गजानन नौ वर्षके हुए। इस बीच उन्होंने अपनी भुवनमोहिनी बाल-क्रीडाओंसे महर्षि पराशर, माता वत्सला और आश्रमके ऋषियों, ऋषि-पत्नियों तथा मुनि-पुत्रोंको अतिशय सुख प्रदान किया। साथ ही कुशाग्रबुद्धि विचक्षण गजानन समस्त वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों एवं शस्त्रास्त्र-संचालन आदिमें पारंगत विद्वान् हो गये। उनकी प्रखर प्रतिभाका अनुभव करके महर्षि पराशर चकित हो जाते; ऋषिगण विस्मित रहते। गजमुख सबके अन्यतम प्रीति-भाजन बन गये थे।

इधर सर्वथा निरंकुश, परम उद्दण्ड, शक्तिशाली सिन्दूरका अत्याचार पराकाष्ठापर पहुँच गया था। उसके भयसे देव-पूजन और यज्ञ-यागादि सब बंद हो गये थे तथा देवता, ऋषि और ब्राह्मण त्रस्त थे, भीत थे। कुछ गिरि-गुफाओं और निविड वनोंमें छिपकर अपने दिन व्यतीत करते थे। अधिकांश सत्त्वगुणसम्पन्न धर्मपरायण देव-विप्रादि सिन्दूरके कारागारमें यातना सह रहे थे।

उस उद्धत असुरकी इस अनीतिका संवाद जब पराशर-आश्रममें पहुँचता तो गजानन अधीर और अशान्त हो जाते और अब तो त्रैलोक्यकी दारुण स्थिति उनके लिये असह्य हो गयी। क्षुब्ध गजाननने अपने पिता पराशरके समीप जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'मुनिवर ! सिन्दूरासुरके दुराचारसे धरती त्रस्त हो गयी है, अतः आप और माँ दोनों मुझे आशिष् दें, जिससे मैं अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना कर सकूँ।'

पुलकित महर्षि और महर्षि-पत्नीके नेत्र बरस पड़े। वे लोग गजाननके सिरपर हाथ फेरते हुए गद्गद-कण्ठ हो बोल न सके, उनके मुँहसे केवल अधूरा वाक्य निकल सका—'माता-पिता तो अपने प्राण-प्रिय पुत्रकी सदा ही विजय……।'

फिर वत्सलानन्दन अपने चारों हाथोंमें अंकुश, परशु, पाश और कमल धारणकर मूषकपर आरूढ हुए। वीर बालक गजाननने गर्जना की। उनके गर्जनसे त्रिभुवन काँपने लगा। गजानन वायुवेगसे चल पड़े। उनके परम तेजस्वी स्वरूपसे प्रलयाग्नि-तुल्य ज्वाला निकल रही थी।

भयभीत दूतोंने सिन्दूरके पास जाकर इसकी सूचना दी। सिन्दूर आकाशवाणीकी स्मृतिसे चिन्तित हो गया;

किंतु दूसरे ही क्षण क्रोधसे उसके नेत्र लाल हो गये। वह वेगसे चला और गजमुखके सम्मुख पहुँच गया तथा अनेक प्रकारके अनर्गल प्रलापसे गजाननको डराने-धमकाने लगा।

'दुष्ट असुर!' गजाननने अत्यन्त निर्भीकतासे कहा—'मैं दुष्टोंका सर्वनाश कर धरणीका उद्धार और सद्धर्मकी स्थापना करनेवाला हूँ। यदि तू मेरी शरण आकर अपने पातकोंके लिये क्षमा-प्रार्थनापूर्वक सद्धर्मपरायण नरेशकी भाँति जीवित रहनेकी प्रतिज्ञा कर ले, तब तो तुम्हें छोड़ दूँगा; अन्यथा विश्वास कर, तेरा अन्तकाल समीप आ गया है।'

इतना कहते ही पार्वतीनन्दनने विराट् रूप धारण कर लिया। उनका मस्तक ब्रह्माण्डका स्पर्श करने लगा। दोनों पैर पातालमें थे। कानोंसे दसों दिशाएँ आच्छादित हो गयीं। वे सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपाद विश्वरूप प्रभु सर्वत्र व्याप्त थे। वे अनादिनिधन, अनिर्वचनीय विराट् गजानन दिव्य वस्त्र, दिव्य गन्ध और दिव्य अलंकारोंसे अलंकृत थे। उन अनन्त प्रभुका तेज अनन्त सूर्योंके समान था।

महामहिम गजाननका महाविराट् रूप देखकर परम प्रचण्ड वर-प्राप्त असुर सिन्दूर सहम गया, पर उसने धैर्य नहीं छोड़ा। उसने भयानक गर्जना की और फिर वह प्रज्वलित दीपपर शलभकी तरह अपना खड्ग लेकर प्रहार करना ही चाहता था कि देवदेव गजाननने कहा—'मूढ! तू मेरे अत्यन्त दुर्लभ स्वरूपको नहीं जानता; अब मैं तुझे मुक्ति प्रदान करता हूँ।'

देवदेव गजाननने महादैत्य सिन्दूरका कण्ठ पकड़ लिया। इसके बाद वे उसे अपने वज्र-सदृश दोनों हाथोंसे दबाने लगे। असुरके नेत्र बाहर निकल आये और उसी क्षण उसका प्राणान्त हो गया।

क्रुद्ध गजाननने उसके लाल रक्तको अपने दिव्य अङ्गोंपर पोत लिया। इस कारण जगत्‌में उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुका 'सिन्दूरवदन' और 'सिन्दूरप्रिय' नाम प्रसिद्ध हो गया।

'जय गजानन!' उच्च घोष करते हुए आनन्दमग्न देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। वहाँ हर्षके वाद्य बज उठे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं।

ब्रह्मा, इन्द्रादि देव और वसिष्ठादि मुनि 'गजाननकी जय' बोलते हुए पवित्रतम उपहार लिये धरणीका दुःख दूर करनेवाले परम प्रभु गजमुखके सम्मुख एकत्र हुए। सिन्दूर-वधसे प्रसन्न नृपतिगण भी वहाँ पहुँच गये।

उन सबने सर्वाभरणभूषित, पाश, अंकुश, परशु और मालाधारी, चतुर्भुज, मूषक-वाहन गजाननकी भक्तिपूर्वक षोडशोपचार पूजा की।

'मेरे पुत्रने लोककण्टक सिन्दूरको समाप्त किया है।' इस समाचारसे प्रसन्न होकर राजा वरेण्य भी वहाँ आ पहुँचे।

अपने पुत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव देखकर राजा वरेण्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक गजाननकी पूजा की और कहा—'जिस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-नायकको ब्रह्मादि देवगण भी नहीं जान पाते, भला मैं अज्ञानी मनुष्य उसे कैसे जान पाता। मैं अपनी मूढताको क्या कहूँ? घर आयी कामधेनु और सुरतरुको मैंने बाहर खदेड़ दिया। आपकी मायासे मोहित होकर मैंने बड़ा अनर्थ किया है। आप मुझे क्षमा करें।'

पश्चात्ताप करते हुए राजा वरेण्यकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर वरेण्यनन्दन गजाननने उन्हें अपनी चारों भुजाओंसे आलिङ्गन किया और फिर कहा—'नरेश! पूर्वकल्पमें जब तुमने अपनी पत्नीके साथ सूखे पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करते हुए दिव्य सहस्र वर्षोंतक कठोर तप किया था, तब मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दर्शन दिया। तुमने मुझसे मोक्ष न माँगकर मुझे पुत्र-रूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। अतएव तुम्हारे पुत्र-रूपमें सिन्दूर-वधकर भू-भार-हरण करने तथा साधु-जनोंके पालनके लिये मैंने साकार विग्रह धारण किया; अन्यथा मैं तो निराकार-रूपसे अणु-परमाणुमें व्याप्त हूँ। मैंने अवतार धारणकर सारा कार्य पूर्ण कर लिया। अब स्वधाम-प्रयाण करूँगा। तुम चिन्ता मत करना।'

'प्रभो! जगत् शाश्वत दुःखालय है।' प्रभुके स्वधाम-गमनकी बात सुनते ही राजा वरेण्यने अत्यन्त व्याकुलतासे हाथ जोड़कर कहा—'आप कृपापूर्वक मुझे इससे मुक्त होनेका मार्ग बता दीजिये।'

कृपापरवश प्रभु गजानन वहीं आसनपर बैठ गये। अपने सम्मुख बद्धाञ्जलि-आसीन राजा वरेण्यके मस्तकपर उन्होंने अपना त्रितापहारी वरद हस्त रख दिया। तदनन्तर उन्होंने नरेश वरेण्यको सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान् श्रीगजानन अन्तर्धान हो गये।

परम प्रभुकी संनिधि, उनके कर-स्पर्श एवं अमृतमय उपदेशसे नरेश वरेण्य पूर्ण विरक्त हो गये। उन्होंने राज्यका दायित्व अमात्योंको सौंपा और स्वयं तपश्चरणार्थ वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अपना चित्त विषयोंसे हटाकर परब्रह्म श्रीगजाननमें केन्द्रित किया तथा अपना जीवन-जन्म सफल कर लिया।

श्रीगजानन-प्रदत्त वह अमृतोपदेश 'गणेश-गीता' के नामसे प्रख्यात हुआ।

(४)

श्रीधूम्रकेतु

श्रीगणेशका कलियुगीय भावी अवतार 'धूम्रकेतु' के नामसे विख्यात होगा। जब कलियुगमें सर्वत्र धर्मका लोप हो जायगा, अत्याचार-अनाचारका साम्राज्य व्याप्त हो जायगा, आसुरी-तामसी वृत्तियोंकी प्रबलता छा जायगी, तब कलिके अन्तमें सर्वदुःखापह परम प्रभु गजानन धराधामपर अवतरित होंगे। उनका 'शूर्पकर्ण' और 'धूम्रवर्ण' नाम भी प्रसिद्ध होगा। क्रोधके कारण उन परम तेजस्वी प्रभुके शरीरसे ज्वाला निकलती रहेगी। वे नीले अश्वपर आरूढ होंगे। उन प्रभुके हाथमें शत्रु-संहारक तीक्ष्णतम खड्ग होगा। वे अपने इच्छानुसार नाना प्रकारके सैनिक एवं बहुमूल्य अमोघ शस्त्रास्त्रोंका निर्माण कर लेंगे।

फिर पातकध्वंसी परम प्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज एवं सेनाके द्वारा सहज ही म्लेच्छोंका सर्वनाश कर देंगे। म्लेच्छ या म्लेच्छ-जीवन व्यतीत करनेवाले निश्चय ही परम प्रभु धूम्रकेतुके द्वारा मारे जायँगे। उन धर्म-संस्थापक प्रभुके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होती रहेगी।

वे सर्वाधार, सर्वात्मा प्रभु धूम्रकेतु उस समय गिरिकन्दराओं एवं अरण्योंमें छिपकर वनफलोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें सम्मानित करेंगे और करुणामय धर्ममूर्ति शूर्पकर्ण उन सत्पुरुषोंको सद्धर्म एवं सत्कर्मके पालनके लिये प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करेंगे। फिर सबके द्वारा धर्माचरण सम्पादित होगा और धर्ममय सत्ययुगका शुभारम्भ हो जायगा। (गणेशपुराण)

श्रीगणेशके प्रमुख आठ अवतार

मुद्गलपुराणमें कहा गया है कि विघ्नविनाशन गणेशके अनन्त अवतार हैं। उनका वर्णन सौ वर्षोंमें भी सम्भव नहीं है। उनमें कुछ मुख्य हैं। उन मुख्य अवतारोंमें भी ब्रह्मधारक आठ मुख्य अवतार हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—

'वक्रतुण्डावतार' देह-ब्रह्मको धारण करनेवाला है, वह मत्सरासुरका संहारक तथा सिंहवाहनपर चलनेवाला माना गया है। 'एकदन्तावतार' देहि-ब्रह्मका धारक है, वह मदासुरका वध करनेवाला है; उसका वाहन मूषक बताया गया है। 'महोदर'-नामसे विख्यात अवतार ज्ञान-ब्रह्मका प्रकाशक है। उसे मोहासुरका विनाशक और मूषक-वाहन बताया गया है। जो 'गजानन' नामक अवतार है, वह सांख्यब्रह्म-धारक है। उसको सांख्ययोगियोंके लिये सिद्धिदायक जानना चाहिये। उसे लोभासुरका संहारक और मूषकवाहन कहा गया है। 'लम्बोदर' नामक अवतार क्रोधासुरका उन्मूलन करनेवाला है; वह सत्स्वरूप जो शक्तिब्रह्म है, उसका धारक कहलाता है। वह भी मूषकवाहन ही है। 'विकट'-नामसे प्रसिद्ध अवतार कामासुरका संहारक है। वह मयूर-वाहन एवं सौरब्रह्मका धारक माना गया है। 'विघ्नराज' नामक जो अवतार है, उसके वाहन शेषनाग बताये जाते हैं, वह विष्णुब्रह्मका वाचक (धारक) तथा ममतासुरका विनाशक है। 'धूम्रवर्ण' नामक अवतार अभिमानासुरका नाश करनेवाला है, वह शिवब्रह्म-स्वरूप है। उसे भी मूषक-वाहन ही कहा जाता है।

इस प्रकार मङ्गलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्रीगणपतिके अवतारोंकी अत्यन्त संक्षिप्त मङ्गलमयी लीला-कथा पूरी हुई। इसका पठन, श्रवण और मनन-चिन्तन जन-जनके लिये परम कल्याणकारक है। इन अवतारोंका पौराणिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, उससे भी बढ़कर आध्यात्मिक महत्त्व है। सर्वव्यापी परमात्मा श्रीगणपति सबके हृदयमें नित्य विराजमान हैं। संग और प्राक्तन संस्कारवश प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें समय-समयपर मात्सर्य, मद, मोह, लोभ, काम, ममता एवं अहंता—इन आन्तरिक दोषोंका उद्‌बोधन होता ही है। आसुरी सम्पत्तिके प्रतीक होनेसे इनको 'असुर' कहा गया है। इन आसुरी वृत्तियोंसे परित्राण पानेका अमोघ उपाय है—'भगवान् गणपतिका चरणाश्रय।' गीतामें भी भगवान्ने यही कहा है—'**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥**' अतः इन आसुरी वृत्तियोंके दमन तथा दैवी सम्पदाओंके संवर्धनके लिये परम प्रभु गणपतिका मङ्गलमय स्मरण करना सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है और यही इस अवतार-कथाका सारभूत संदेश है।

भगवान् सूर्य और उनकी लीला-कथाएँ

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥
(आदित्य-हृदय०)

'जो जगत्‌के एकमात्र नेत्र (प्रकाशक) हैं, संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं, उन वेदत्रयीस्वरूप, सत्त्वादि तीनों गुणोंके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन रूप धारण करनेवाले भगवान् सूर्यको नमस्कार है।'

भगवान् सूर्यकी महिमा और ब्रह्ममयता

भुवनभास्कर भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं। वे सम्पूर्ण चराचरकी अन्तरात्मा हैं (**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** ऋ० १।११५।१), सर्वत्र व्याप्त हैं और सभीको नित्य प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। प्रतिदिन वे पूर्व दिशामें उदित होते हैं और सायंकाल पश्चिम दिशामें अस्त होते हैं। उनकी यह दैनन्दिन लीला है। अपनी इस दैनन्दिन लीलाका वे सबको साक्षात्कार कराते हैं। वे प्रतिदिन उदय होने, उन्नतिके शिखरपर आरूढ होने तथा अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान् सूर्यकी इस त्रिविध लीलाके साथ त्रिकाल गायत्री-उपासनाका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं, इसलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। सूर्य साक्षात् परमात्म-परब्रह्म-स्वरूप हैं। सूर्यसे ही समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, पालन होता है और उन्हींमें विलय हो जाता है। सूर्योपनिषद्‌में कहा गया है—

सूर्याद् भवन्ति भूतानि सूर्येण पालितानि तु।
सूर्ये लयं प्राप्नुवन्ति यः सूर्यः सोऽहमेव च॥

सूर्यनारायण और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है। तत्त्वतः भगवान् सूर्य परब्रह्म हैं। ब्रह्मके भर्ग—तेजका रूप ही सूर्यनारायण हैं। श्रुतियों तथा उपनिषदोंमें भगवान् सूर्य तथा ब्रह्मको एक ही निरूपित किया गया है। छान्दोग्य श्रुतिका कथन है—

'सूर्याद्वै खल्विमानि भूतानि जायन्ते।' 'असावादित्यो ब्रह्म।'

प्राणिमात्रके हेतु, सृष्टिकर्ता तथा प्रत्यक्ष देवता होनेके कारण सूर्य ब्रह्मरूप हैं, इसलिये सबके उपास्य हैं। ये सर्वप्रसिद्ध देवता हैं। अन्य किसी देवताकी स्थितिमें संदेह भी हो सकता है; किंतु भगवान् सूर्यकी सत्तामें किसीको भी संदेहके लिये किंचिन्मात्र कोई अवसर नहीं है। भगवान् भुवनभास्कर आकाशमण्डलमें स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। अशेष जगत्पर जो उनका नित्य चैतन्यमय अनुग्रह प्रसारित होता आया है, उसकी कोई इयत्ता नहीं है। उनकी अनन्त महिमा है। वे साक्षात् लीला-विग्रहके रूपमें सबको अपना प्रत्यक्ष दर्शन दे रहे हैं। उनका सबपर समान अनुग्रह है। उनकी अनुग्रह-लीलाओंसे सभी प्राणी अभिभूत हैं। एक दिन भी उनकी आविर्भाव एवं तिरोधान-लीला न हो तो जगत्‌की सम्पूर्ण मर्यादाएँ विच्छृंखलित हो जायँगी। संसारके समस्त प्राणी, जीव-जन्तु तथा वनस्पतियाँ भगवान् सूर्यकी चैतन्यशक्तिसे ही अनुप्राणित हैं। सूर्यके अभावमें न तो संसारमें कोई गति हो सकती है और न कोई क्रिया ही होना सम्भव है।

उपनिषदोंमें भगवान् सूर्यके तीन रूप माने गये हैं—(१) निर्गुण-निराकार, (२) सगुण-निराकार तथा (३) सगुण-साकार। यद्यपि भगवान् सूर्य निर्गुण-निराकार हैं, तथापि अपनी माया-शक्तिके सम्बन्धसे सगुण-साकार भी हैं। उपनिषदोंमें इनके स्वरूपका मार्मिक वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

'य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीत।'

(छान्दोग्य० १। ३। १)

'जो ये भगवान् सूर्य आकाशमें तपते हैं, उनकी उद्‌गीथरूपसे उपासना करनी चाहिये।' '**आदित्यो ब्रह्मेति** (छान्दोग्य० ३। १९। १)। 'आदित्य ब्रह्म है'—इस रूपमें आदित्यकी उपासना करनी चाहिये।

'आदित्य ओमित्येवं ध्यायंस्तथात्मानं युञ्जीतेति॥'

(मैत्रा० ५। ३)

'आदित्य ही ओम् है'—इस रूपमें आदित्यका ध्यान करते हुए अपनेको तद्रूप करना चाहिये।

चाक्षुषोपनिषद्‌में यह वर्णन आया है कि सांकृति मुनिने आदित्यलोकमें जाकर भगवान् सूर्यको नमस्कार किया और चाक्षुष्मती-विद्या-प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की। महामुनि-याज्ञवल्क्यने भी आदित्यलोकमें जाकर और उन्हें प्रणामकर कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये।' सूर्यदेवने दोनों मुनियोंको अभीष्ट विद्याएँ प्रदान कीं।

भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्व (अध्याय ४८। २१—२८)-में भगवान् वासुदेवने साम्बको उनकी जिज्ञासाका उत्तर देते हुए कहा—'सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं, वे इस समस्त जगत्‌के नेत्र हैं, इन्हींसे दिनका सर्जन होता है। निरन्तर रहनेवाला इनसे अधिक कोई देवता नहीं है। इन्हींसे यह जगत् उत्पन्न होता है और अन्तसमयमें इन्हींमें लयको प्राप्त होता है। कृत आदि लक्षणोंवाला यह काल भी दिवाकर ही कहा गया है। जितने भी ग्रह, नक्षत्र, योग, राशियाँ, करण, आदित्यगण वसुगण, रुद्र, अश्विनीकुमार, वायु, अग्नि, शक्र, प्रजापति, समस्त भूर्भुवः स्वः आदि लोक, सम्पूर्ण नग (पर्वत), नाग, नदियाँ, समुद्र तथा समस्त भूतोंका समुदाय है—इन सभीके हेतु दिवाकर ही हैं। इन्हींसे यह जगत् स्थित रहता, अपने अर्थमें प्रवृत्त होता तथा चेष्टाशील होता हुआ दिखलायी पड़ता है। इनके उदय होनेपर सभीका उदय होता है और अस्त होनेपर सब अस्त हो जाते हैं। जब ये अदृश्य होते हैं तो फिर कुछ भी यहाँ नहीं दीख पड़ता। तात्पर्य यह कि इनसे श्रेष्ठ कोई देवता न है, न हुआ है और न भविष्यमें होगा ही। इसीलिये ये समस्त वेदोंमें 'परमात्मा' नामसे पुकारे जाते हैं। इतिहास और पुराणोंमें इन्हें 'अन्तरात्मा' नामसे अभिहित किया जाता है। ये बाह्यात्मा, सुषुम्णास्थ, स्वप्नस्थ और जाग्रत्-स्थितिवाले होकर रहते हैं। इस प्रकार ये भगवान् सूर्य आर्य देवता हैं।'

जैसे भगवान् विष्णुका स्थान वैकुण्ठ, भूतभावन शंकरका कैलास तथा चतुर्मुख ब्रह्माका स्थान ब्रह्मलोक है, वैसे ही भुवनभास्कर सूर्यका स्थान आदित्यलोक सूर्यमण्डल है। प्रायः लोग सूर्यमण्डल और सूर्यनारायणको एक ही मानते हैं। सूर्य ही कालचक्रके प्रणेता हैं, सूर्यसे ही दिन-रात्रि, घटी, पल, मास, पक्ष, अयन तथा संवत् आदिका विभाग होता है। सूर्य सम्पूर्ण संसारके प्रकाशक हैं, इनके बिना सब अन्धकार है। सूर्य ही तेज, ओज, बल, यश, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा और मन हैं—

'आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशश्चक्षुःश्रोत्रे आत्मा मनः'

(नारायणोपनिषद् १५)

'मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते।'

(तै० उ० १। ५। १)

भूः, भुवः एवं स्वः—इन तीन लोकोंकी अपेक्षा 'महः' जो चौथा लोक है, वह आदित्य ही है। आदित्यमें ही समस्त लोक वृद्धिको प्राप्त करते हैं। आदित्यलोक महान् है। 'भूः, भुवः और स्वः'—ये तीनों लोक इसके अवयव—अङ्ग हैं और यह अङ्गी है। आदित्यके योगसे ही अन्य लोकादि महत्ता प्राप्त करते हैं, अतः आदित्यकी महिमा अद्वितीय है।

आदित्यलोकमें भगवान् सूर्यनारायणका साकार विग्रह है। वे रक्तकमलपर विराजमान हैं, उनका वर्ण हिरण्मय है, उनकी चार भुजाएँ हैं। वे दो भुजाओंमें पद्म धारण किये हैं और उनके दो हाथ अभय तथा वर-मुद्रासे सुशोभित हैं, वे सप्ताश्वयुक्त रथमें स्थित हैं। जो उपासक ऐसे स्वरूपवाले उन भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं—'उन्हें मनोवाञ्छित फल प्राप्त होता है। उपासकके सम्मुख प्रकट होकर वे उसकी इच्छापूर्ति करते हैं और उनकी कृपासे मनुष्यके मानसिक, वाचिक तथा शारीरिक सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।' ब्रह्मपुराणमें कहा गया है—

मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्।
सर्वं सूर्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥

भगवान् सूर्य अजन्मा हैं, फिर भी एक जिज्ञासा अन्तस्तलको प्रेरित करती रहती है—'उनका जन्म कैसे हुआ, कहाँ हुआ और किसके द्वारा हुआ?' यह बात ठीक है कि वे परमात्मा हैं तो उनका जन्म कैसा? परंतु परमात्माका अवतार होता ही है, तो उनका क्या अवतार

हुआ? उन्होंने क्या जन्म ग्रहण किया? इस सम्बन्धमें पुराणोंमें एक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार एक बार देवासुर-संग्राममें दैत्य-दानवोंने मिलकर देवताओंको हरा दिया, तबसे देवता मुँह छिपाये अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षामें सतत प्रयत्नशील थे। देवताओंकी माता अदिति प्रजापति दक्षकी कन्या थीं, उनका विवाह महर्षि कश्यपसे हुआ था। इस हारसे अत्यन्त दुःखी होकर वे सूर्यकी उपासना-प्रार्थना करने लगीं—'भगवन्! आप मुझपर प्रसन्न हों। गोप (किरणोंके स्वामिन्)! मैं आपको भलीभाँति देख नहीं पाती। दिवाकर! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मुझे आपके स्वरूपका सम्यक् दर्शन हो सके। भक्तोंपर दया करनेवाले प्रभो! मेरे पुत्र आपके भक्त हैं। आप उनपर कृपा करें। प्रभो! मेरे पुत्रोंका राज्य एवं यज्ञभाग दैत्यों एवं दानवोंने छीन लिया है। आप अपने अंशसे मेरे गर्भद्वारा प्रकट होकर पुत्रोंकी रक्षा करें।' भगवान् सूर्य प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—'देवि! मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। मैं अपने हजारवें अंशसे तुम्हारे उदरसे प्रकट होकर तेरे पुत्रोंकी रक्षा करूँगा।' इतना कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये।

तदनन्तर माता अदिति विश्वस्त होकर भगवान् सूर्यकी आराधनामें तत्पर हो यम-नियमसे रहने लगीं। महर्षि कश्यपजी इस समाचारसे अत्यन्त प्रफुल्लित हुए। समय पाकर भगवान् सूर्यका जन्म अदितिके गर्भसे हुआ। इस अवतारको 'मार्तण्ड'के नामसे पुकारा जाता है। देवतागण भगवान् सूर्यको भाईके रूपमें पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। अग्निपुराणमें चर्चा है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका जन्म हुआ। ब्रह्माजीके पुत्रका नाम मरीचि है। मरीचिसे महर्षि कश्यपका जन्म हुआ। ये महर्षि कश्यप ही सूर्यके पिता हैं।

नित्य-निरन्तर सबको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले तो भगवान् भुवनभास्कर सूर्य ही हैं। सौर सम्प्रदायके अनुसार वेदोक्त सहस्रबाहु, सहस्रशीर्षा, प्रजापति, परमपुरुष, पुराणात्मा, सभी भुवनोंके गोप्ता, आदित्य-वर्णसे निर्दिष्ट ये प्रत्यक्ष सूर्यदेव ही हैं—

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निगद्यते।
आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः पुराणः॥

(भविष्यपुराण १। ७७। १९, २०)

परम दिव्य तेजःपुञ्ज ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है, जिसकी (दीप्तिमान्) प्रभाशक्तिसे चौदहों लोक दीप्तिमान् हो रहे हैं। सूर्यके समग्र तेजोमण्डल दो भागोंमें विभक्त हैं, उनका कार्य पाताललोकसे ब्रह्मलोकपर्यन्त चतुर्दश लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंके भीतर ज्ञान एवं क्रिया-शक्तिका उद्दीपन करना है। सूर्यमण्डलका पहला तेज ऊर्ध्वकी ओर ब्रह्मलोकपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्ति 'संज्ञा' है। दूसरा तेज अधोगामी—पृथ्वीसे पातालपर्यन्त उद्दीपन करता है। उस तेजकी शक्तिका नाम 'छाया' है। पुराणकी कथाके अनुसार संज्ञा तथा छाया—ये दोनों सूर्यकी पत्नियाँ मानी गयी हैं। भगवान् सूर्यकी ये पत्नियाँ शक्तिके स्थानपर निरन्तर कार्यरत रहती हैं।

कहते हैं कि देवता, मुनि और महर्षियोंने श्रेय तथा प्रेयका मार्ग भगवान् सूर्यके तेजसे ही उपलब्ध किया था। संज्ञा श्रेयोगामिनी शक्ति है, यह मुनि एवं महर्षियोंके हृदयमें संवित्-चेतनाका उदय कराती है, जिसके कारण भगवान् सूर्यके द्युलोक-व्याप्त तेजसे अनन्य संयोग होनेपर 'विद्या' नामकी शक्ति उत्पन्न हुई। '**विद्ययामृतमश्नुते**'—इस श्रुतिके अनुसार विद्याकी उपासनासे उन्हें अमृतपानका अवसर मिला।

अविद्या प्रेयमार्गका प्रकाशन करनेवाली शक्ति है। भगवान् सूर्यका अधोव्याप्त तेज छायासे संयुक्त होनेपर अर्थात् छाया और तेजके परस्पर मिलनेसे अविद्या उत्पन्न हुई। छाया अविद्याकी जननी है। अविद्यासे मनुष्योंको कर्मका मार्ग ही सत्य दिखलायी पड़ता है। वेद-शास्त्रके ज्ञाता विद्वान् भी प्रेय-ऐहिक विषयसुख या आमुष्मिक स्वर्गमें प्राप्त भोग-ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये अविद्याकी उपासना करते हैं।

सभी प्राणियोंको जन्मसे ही भगवान् सूर्यकी विविध लीलाओंके दर्शन होते हैं। वे इस ब्रह्माण्डके केन्द्र, स्थूल कालके नियामक, तेजके महान् आकर, विश्वके पोषक, प्राणदाता, समस्त चराचर प्राणियोंके आधार तथा प्रत्यक्ष दीखनेवाले और समस्त देवोंमें श्रेष्ठ हैं। त्रिकाल-संध्यामें सूर्यरूपसे भगवान् नारायणकी ही उपासना होती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल, आयु, बुद्धि तथा नेत्र-ज्योतिकी वृद्धि होती है और मृत्युके अनन्तर वे अपनी रश्मियोंके द्वारा भगवान्के परमधाममें ले जाते हैं। भारतीय चिन्तन-पद्धतिके अनुसार सूर्योपासना किये बिना कोई भी मानव किसी भी शुभ कर्मका अधिकारी नहीं बन सकता। भगवान् श्रीकृष्णने

विभूतिस्वरूपके वर्णनमें '**ज्योतिषां रविरंशुमान्**'-से स्वयंको इंगित किया है। पातञ्जलयोगसूत्र (३। २६)-में वर्णित है कि सूर्यका ध्यान करनेसे निखिल भुवनमण्डलका ज्ञान हो जाता है—'**भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्**'।

महाभारतमें युधिष्ठिरने सूर्यकी स्तुति करते हुए कहा है—

त्वामिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
त्वमग्निस्त्वं मनः सूक्ष्मं प्रभुस्त्वं ब्रह्म शाश्वतम्॥

अर्थात् हे सूर्य! आप इन्द्र, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, अग्नि सूक्ष्म मन, प्रभु और शाश्वत ब्रह्म हैं।

सूर्यतापिनी-उपनिषद्में कहा गया है कि ये सूर्य ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और भास्कर हैं। ये ही त्रिमूर्तिरूप और वेदत्रयी हैं। ये सूर्य सर्वदेवमय हैं—

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्र एष हि भास्करः।
त्रिमूर्त्यात्मा त्रिवेदात्मा सर्वदेवमयो रविः॥

आदित्यहृदयके अनुसार एक ही सूर्य तीनों कालोंमें क्रमशः त्रिदेव बनते हैं। यथा—

उदये ब्रह्मणो रूपं मध्याह्ने तु महेश्वरः।
अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रिमूर्तिश्च दिवाकरः॥

ये कभी क्षीण नहीं होते, इनका मण्डल सदा अक्षय बना रहता है। ये पितरोंके भी पिता और देवताओंके भी देवता हैं। असंख्य योगिजन अपने कलेवरका त्याग करके वायुस्वरूप हो तेजोराशि भगवान् सूर्यमें ही प्रवेश करते हैं। ये सम्पूर्ण जगत्‌के माता-पिता और गुरु हैं।

भगवान् सूर्यकी रश्मियोंमें विलक्षण जीवनीशक्ति है तथा सभी प्रकारके शारीरिक तथा मानसिक रोगोंको सर्वथा अपहत करनेकी अद्भुत सामर्थ्य है।'**आरोग्यं भास्करादिच्छेत्**'— इस पुराण-वचनसे सिद्ध है कि आरोग्यकी प्राप्तिके लिये भगवान् भास्करकी आराधना विशेष फलवती होती है। नित्य अरुणोदय-वेलामें भगवान् सूर्यके अरुण विम्बके दर्शन तथा पुनः प्रत्यक्ष सूर्यके दर्शनसे न केवल नेत्र-ज्योतिका विकास होता है, अपितु अन्तःकरण भी निर्मल होता है, बुद्धि शुद्ध हो जाती है, सात्त्विकताका संचार होता है और मानव सत्कर्म करनेके लिये प्रेरित होता है। अक्षि-उपनिषद् तथा चाक्षुष्मती विद्याके पाठसे नेत्र-ज्योति दिव्य हो उठती है तथा कुष्ठादि रोग दूर हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक सूर्यार्घ्यदान, सूर्य-नमस्कार, सूर्य-सम्बन्धी स्तोत्रोंका पाठ तथा यथाधिकार संध्या-वन्दन करनेसे भगवान् सूर्यकी अनुकम्पा सहज ही प्राप्त हो जाती है। ऋषियोंके दीर्घ आयुष्य, विशदप्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मवर्चस्‌का एकमात्र मूल कारण दीर्घकालीन संध्यामें सौरी गायत्रीका जप एवं सूर्योपस्थान आदि क्रियाएँ ही थीं। ऋषिगण तीनों संध्याओंमें प्राणायाम और समाधिद्वारा भगवान् सविताके वरेण्य तेजका ध्यान करते हुए गायत्री-मन्त्रका जप करते थे। गायत्री-मन्त्रमें मूलतः परब्रह्मस्वरूप सूर्यदेवताकी आराधना ही ध्येय है, इसीलिये नित्य त्रिकाल संध्या-वन्दनका विधान शास्त्रोंमें प्रतिपादित है। यहाँतक कि अशौच आदिमें भी संध्या-कर्मका लोप नहीं होता। यह सब भगवान् सूर्यकी ही महिमाका परिचायक है।

सूर्यके विविध लीला-विग्रह

सूर्यनारायणके अनेक ध्यानरूप-लीला-विग्रह बताये गये हैं। कुछका निर्देश इस प्रकार है—

एक ध्यानस्वरूपमें बताया गया है कि—'उत्तम रत्नोंसे जटित मुकुट जिनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहे हैं, जो चमकते हुए अधरोष्ठकी कान्तिसे शोभित हैं, जिनके सुन्दर केश हैं, जो भास्वान् अलौकिक तेजसे युक्त हैं, जिनके हाथोंमें कमल हैं, जो प्रभाके द्वारा स्वर्णवर्ण हैं एवं ग्रहवृन्दके सहित आकाशदेशमें उदयगिरि-उदयाचल पर्वतपर शोभा पाते हैं, जिनसे समस्त जीवलोक आनन्द प्राप्त करते हैं, हरि और हरके द्वारा जो नमित हैं, ऐसे विश्वचक्षु भगवान् सूर्यनारायण मेरी रक्षा करें।' ध्यानका मूल श्लोक इस प्रकार है—

भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचा रञ्जितश्चारुकेशो
भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णः प्रभाभिः।
विश्वाकाशावकाशे ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ
सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः॥

भगवान् भास्करदेवका एक अन्य प्रसिद्ध लीला-विग्रह इस प्रकार निर्दिष्ट है—

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसंनिविष्टः ।

केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥

(तन्त्रसार)

भगवान् सूर्य ग्रहाधिपति हैं। नवग्रह-मण्डलमें उनका प्रथम आवाहन एवं पूजन होता है। उनके आवाहनमें इस प्रकारसे ध्यानस्वरूप प्रतिपादित है—

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥

वेदोंमें तो भगवान् सूर्यके शतशः मन्त्र निर्दिष्ट हैं, उनका प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेनाऽऽदेवो याति भुवनानि पश्यन्॥

(ऋ० १। ३५। २)

भगवान् सूर्यके द्वादश लीला-विग्रहोंके आख्यान

एक ही परमात्मा सूर्य संसारचक्रके प्रवर्तनके लिये तथा कालकी मर्यादा प्रतिष्ठित करनेके लिये बारह रूपोंमें प्रविभक्त होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें भगवान् सूर्यके 'आदित्य' तथा 'सविता'—ये दो नाम विशेषरूपसे निरूपित हैं। सृष्टिके भी आदिमें प्रतिष्ठित रहने तथा माता अदितिके पुत्र होनेके कारण सूर्य ही 'आदित्य' कहलाते हैं। वेदोंमें जिन तैंतीस देवताओंका परिगणन किया गया है, उनमें द्वादश आदित्य ही प्रधान हैं। वहाँ इन्हें सब प्रकारसे उपकारी, अनन्त शक्तिसम्पन्न और सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपोंमें निरूपित किया गया है तथा इनकी महिमाका गान अनेक सूक्तों-मन्त्रोंमें किया गया है। पुराणोंमें भी सूर्यरथके वर्णन-प्रकरणमें बारह महीनोंमें बारह आदित्य ही बारह नामोंसे अभिहित किये गये हैं। इन द्वादश आदित्योंके नाम इस प्रकार हैं—

(१) इन्द्र, (२) धाता, (३) पर्जन्य, (४) त्वष्टा, (५) पूषा, (६) अर्यमा, (७) भग, (८) विवस्वान्, (९) विष्णु, (१०) अंशुमान्, (११) वरुण तथा (१२) मित्र।

—इन बारह मूर्तियोंद्वारा परमात्मा सूर्यने सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। इनका अति संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

इन्द्र—भगवान् आदित्यकी जो प्रथम मूर्ति है, उसका नाम 'इन्द्र' है, वह देवराज-पदपर प्रतिष्ठित है, वह देवशत्रुओंका नाश करनेवाली लीला-मूर्ति है तथा आश्विन मासकी अधिष्ठाता है। इस आश्विनमासके आदित्यके लीला-विग्रहका नाम 'इन्द्र' है। वेदों तथा पुराणोंमें भगवान् आदित्यके इन्द्र नामवाले लीला-विग्रहके अनेक प्रसिद्ध आख्यान आये हैं। वे वृष्टिके भी स्वामी हैं।

धाता—भगवान् सूर्यके दूसरे विग्रहका नाम 'धाता' है, जो प्रजापतिके पदपर स्थित हो नाना प्रकारके प्रजावर्गकी सृष्टि करते हैं, इन्हींका दूसरा नाम 'ब्रह्मा' भी है। कार्तिक-मासके सूर्यका नाम 'धाता' है।

पर्जन्य—सूर्यदेवकी तीसरी लीलामूर्ति 'पर्जन्य' के नामसे विख्यात है। यह बादलोंमें स्थित हो अपनी किरणोंद्वारा वर्षा करती है। श्रावणमासके सूर्य 'पर्जन्य' नामसे कहे जाते हैं।

त्वष्टा—भगवान् सूर्यके चौथे विग्रहका नाम 'त्वष्टा' है। त्वष्टा सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंमें स्थित रहते हैं। फाल्गुनमासमें 'त्वष्टा' नामक सूर्य तपते हैं।

पूषा—भगवान् सूर्यके पाँचवें विग्रहका नाम 'पूषा' है। ये अन्नमें स्थित होकर सर्वदा प्रजाजनोंकी पुष्टि करते हैं। पौषमासके सूर्यका नाम 'पूषा' है।

अर्यमा—सूर्यकी जो छठी मूर्ति है, उसका नाम 'अर्यमा' है। यह वायुके आश्रयसे समस्त देवताओंमें स्थित रहती है। वैशाखमासके सूर्य 'अर्यमा' कहलाते हैं।

भग—भगवान् भास्करका सातवाँ विग्रह 'भग' नामसे विख्यात है। यह ऐश्वर्य-रूपमें तथा देहधारियोंके शरीरमें प्रतिष्ठित रहता है। माघमासके सूर्यदेव 'भग' नामसे प्रसिद्ध हैं।

विवस्वान्—सूर्यदेवकी आठवीं मूर्ति 'विवस्वान्' कहलाती है, यह अग्निमें स्थित होकर जीवोंके खाये हुए अन्नको पचाती है। ज्येष्ठमासके सूर्य 'विवस्वान्' नामसे जाने जाते हैं।

विष्णु—सूर्यकी नवीं मूर्ति 'विष्णु'के रूपमें प्रतिष्ठित है, जो देवशत्रुओंका विनाश करनेके लिये अवतार धारण करती है। राम, कृष्ण आदि इसी वैष्णवी विग्रहके अवतार हैं। चैत्रमासके सूर्य 'विष्णु' नामसे प्रसिद्ध हैं। महाभारतमें कहा गया है कि द्वादश आदित्योंमें विष्णु ही सबसे श्रेष्ठ हैं और गुणोंमें सबसे बढ़कर हैं—

'.......सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः॥'

(महा०, आदिपर्व)

लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुकी लीला-कथाएँ अति प्रसिद्ध तथा महान् कल्याणकारिणी हैं।

अंशुमान्—सूर्यकी दसवीं मूर्तिका नाम 'अंशुमान्' है, जो वायुमें प्रतिष्ठित होकर समस्त प्रजाको आनन्द प्रदान करती है। आषाढ़मासके सूर्य 'अंशुमान्' कहलाते हैं।

वरुण—सूर्यका ग्यारहवाँ रूप 'वरुण' के नामसे प्रसिद्ध है, जो सदा जलमें प्रतिष्ठित होकर प्रजाका पोषण करता है। इस प्रकार सूर्यदेव ही जल-रूप होकर अन्न उत्पन्न करते हैं और जीवोंकी पिपासा शान्त करते हैं। जीवन-धारणके लिये जलकी कितनी आवश्यकता है, यह सबके अनुभवका विषय है। भगवान् सूर्यका जलरूप होना हमारे लिये कितने बड़े उपकारकी बात है। भाद्रपदमासके सूर्य ही 'वरुण' कहलाते हैं, इसीलिये भाद्रपदमासमें वृष्टि अधिक होती है।

मित्र—सूर्यदेवकी जो बारहवीं लीला-मूर्ति है, उसका नाम है 'मित्र'। अपने नामके अनुरूप भगवान् सूर्य सबके सच्चे मित्र तथा हितैषीके रूपमें स्थित रहते हैं और सम्पूर्ण जगत्के कल्याणमें निरत रहते हैं। मार्गशीर्षमासके सूर्यदेव ही 'मित्र' देवताके नामसे विख्यात हैं।

इस प्रकार द्वादश आदित्य सब प्रकारसे संसारका भला ही करते हैं। ये व्यक्त तथा अव्यक्त दोनों रूपोंमें प्रतिष्ठित हैं। इनकी पूजा-उपासनासे अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

सूर्यार्घ्य-दानकी महत्ता

भगवान् सूर्यके अर्घ्यदानकी विशेष महत्ता है। प्रतिदिन प्रात:काल रक्तचन्दनादिसे मण्डल बनाकर, पीठशक्तियोंकी स्थापना-पूजाकर ताम्रमय पात्रमें जल, लालचन्दन, तण्डुल, श्यामाक, रक्तकमल (अथवा रक्तपुष्प) और कुश आदि रखकर घुटने टेककर प्रसन्न-मनसे सूर्यमन्त्रका जप करते हुए अथवा निम्नलिखित श्लोकका पाठ करते हुए भगवान् सूर्यको अर्घ्य देकर पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये, तत्पश्चात् प्रदक्षिणा एवं नमस्कार अर्पित करना चाहिये—

सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सुपङ्कजाय ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय॥
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं स्त्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं प्रशस्तमर्घ्यं भगवन् प्रसीद॥

(शिवपु०, कै० सं० ६। ३९-४०)

'सिन्दूरवर्णके-से सुन्दर मण्डलवाले, हीरक-रत्नादि आभरणोंसे अलंकृत, कमलनेत्र, हाथमें कमल लिये, ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रादि (सम्पूर्ण सृष्टि)-के मूल कारण (हे प्रभो! हे आदित्य!) आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सुवर्णपात्रमें रक्तवर्णके चूर्ण-कुंकुम, कुश, पुष्पमालादिसे युक्त, रक्त-स्वर्णिम जलद्वारा दिये गये श्रेष्ठ अर्घ्यको ग्रहणकर प्रसन्न हों।'

इस अर्घ्यदानसे भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर आयु, आरोग्य, धन-धान्य, क्षेत्र, पुत्र, मित्र, कलत्र, तेज, वीर्य, यश, कान्ति, विद्या और वैभव एवं सौभाग्य आदि प्रदान करते हैं तथा सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। भगवान् सूर्य अत्यन्त उपकारक और दयालु हैं, वे अपने उपासकको सब कुछ प्रदान करते हैं। उसके लिये मुक्ति भी सुलभ हो जाती है, इसमें संदेह नहीं।

भगवान् सूर्यकी दशाङ्ग-उपासनामें उनके मन्त्र, ध्यान, कवच, हृदय, पटल, सूक्त, स्तोत्र, स्तवराज, शतनाम, सहस्रनाम, उनके चरित्रका पठन तथा यजन-पूजन आदि भी संनिविष्ट रहते हैं।

सूर्योपासकोंको निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये—

१-प्रतिदिन सूर्योदयसे पूर्व ही शय्या त्यागकर शौच-स्नान करना चाहिये।

२-स्नानोपरान्त श्रीसूर्यनारायणको तीन बार अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

३-नित्य संध्याके समय भी अर्घ्य देकर प्रणाम करना चाहिये।

४-प्रतिदिन उनके स्तोत्र तथा शतनाम अथवा सहस्रनामका श्रद्धापूर्वक पाठ करना चाहिये तथा उनके मन्त्रका जप करना चाहिये।

५-'आदित्यहृदय'का नियमित पाठ करना चाहिये।

६-स्वास्थ्य-लाभकी कामना एवं नेत्ररोगसे बचने एवं अंधेपनसे रक्षाके लिये नेत्रोपनिषद्-(अक्षि-उपनिषद्)-का प्रतिदिन पाठ करना चाहिये।

७-रविवारको तेल, नमक नहीं खाना चाहिये तथा एक

समय हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करना चाहिये।

वेदों, शास्त्रों और विशेषकर पुराणोंमें भगवान् सविताकी सर्वज्ञता, सर्वाधिपता, सृष्टि-कर्तृता, कालचक्र-प्रणेता आदिके रूपोंमें वर्णन करते हुए इनकी उपासनाका विधान किया गया है, अतः प्रत्येक आस्तिक जनके लिये ये उपास्य और नित्य ध्येय हैं।

उपासकको उनकी लीलाओंके चिन्तनसे सब प्रकारका अभ्युदय प्राप्त हो जाता है।

सूर्यकी आराधनासे महाराज राज्यवर्धनको दीर्घ आयुकी प्राप्ति

भगवान् श्रीरामके पूर्वज सूर्यवंशी राजा दमके पुत्र महाराज राज्यवर्धन बड़े विख्यात नरेश हुए हैं। वे अत्यन्त सजगतासे धर्मपूर्वक अपने राज्यका शासन करते थे। उनके राज्यमें सभी लोग सुखी एवं प्रसन्न थे। प्रजा धर्मके अनुकूल रहकर ही विषयोंका उपभोग करती थी। दीनोंको दान दिया जाता एवं यज्ञोंका आयोजन होता रहता था।

राजा राज्यवर्धनको सुखपूर्वक प्रजा-पालन करते हुए बहुत समय बीत गया। एक दिन महाराज राज्यवर्धनकी महारानी उनके सिरमें तेल लगा रही थीं। उसी समय उन्हें अपने पतिके सिरमें एक सफेद बाल दिखायी दिया। उसे देखकर उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। आँसू देखकर महाराजने साग्रह पूछा—'प्रिये! तुम्हारे इस प्रकार दुःखी होनेका कारण क्या है?' रानीने उत्तर दिया—'नाथ! आपके मस्तकका यह पका हुआ श्वेत केश ही मेरे दुःखका कारण है।' राजाने कहा—'कल्याणि! मैंने सभी तरहसे अपना कर्तव्य-पालन कर लिया है, अतः अब जीवनकी क्या चिन्ता है? जन्म लेनेवालेकी तो मृत्यु निश्चित है ही, अतः अब मुझे वनमें जाकर तपस्या करनी चाहिये।'

महाराजके वनगमनकी बात सुनकर सभी प्रजाजन व्याकुल हो उठे। प्रजापालक राज्यवर्धनके अनुरागके सामने प्रजावर्ग नतमस्तक था, कृतज्ञ था। सभी लोगोंने महाराजसे आग्रहपूर्वक कहा—'नाथ! आप हमारी प्रार्थना सुनकर कुछ दिन और प्रजा-पालन करें।' तत्पश्चात् सभी प्रजाजन महाराज राज्यवर्धनकी दीर्घ आयुके लिये भगवान् भास्करकी आराधनामें लग गये। कुछ लोगोंने विधिपूर्वक भगवान् भास्करको अर्घ्य देना आरम्भ किया, कुछ लोगोंने 'सूर्यसूक्त'का पाठ प्रारम्भ किया, कुछ लोगोंने वेद-मन्त्रोंके जप, स्वाध्याय एवं कुछ लोगोंने व्रत-उपवासद्वारा भगवान् सूर्यदेवको प्रसन्न करना चाहा। सभी लोगोंकी एक ही अभिलाषा थी कि महाराज राज्यवर्धन दीर्घायु हो जायँ।

अन्तमें कृपालु भगवान् सूर्यदेव प्रजाजनकी आराधनासे प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गये और उन्होंने उनका अभीष्ट वर (राज्यवर्धनकी यौवनयुक्त लंबी आयु) प्रदान किया। सभी प्रजाजन भगवान् भास्करकी कृपा प्राप्तकर परम प्रसन्न हो गये।

महाराज राज्यवर्धनको जब यह बात ज्ञात हुई तो वे प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने सोचा—'मैं तो लंबी आयुका उपभोग करूँगा, परंतु मेरे परिवार एवं प्रजाके लोग तो समयपर मृत्युको प्राप्त होंगे।' अतः वे भी अपनी रानीके साथ कामरूप (आसाम) पर्वतपर जाकर भगवान् दिवाकरकी आराधनामें लग गये। भगवान् सूर्यको प्रसन्न करनेके लिये महाराज राज्यवर्धन एवं रानी व्रत-उपवासादि करते हुए उनकी पूजा-स्तुति करने लगे। अन्तमें भगवान् सूर्य कृपा करके उनके सामने प्रकट हो गये और उनके इच्छानुसार उन्होंने राजपरिवार एवं प्रजाजनकी आयु भी राजाके समान ही लंबी होनेका वर प्रदान किया। भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्तकर महाराज राज्यवर्धन एवं सभी प्रजाजन सुखपूर्वक रहने लगे।

भगवान् सूर्यका परिवार

अधिकांश पुराणोंमें सूर्यलोकमें सूर्यके परिवारकी स्थिति समानरूपसे निर्दिष्ट हुई है। वहाँ वे अपने समस्त परिवार, परिकर एवं परिच्छदोंके साथ सुशोभित रहते हैं। इस संदर्भमें भविष्यपुराणके ब्राह्मपर्वमें उपलब्ध सामग्री विशिष्ट कोटिकी है। तदनुसार सूर्यलोकमें भगवान् सूर्यके समक्ष इन्द्रादि सभी देवता, ऋषिगण स्थित रहते हैं तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व, नाग, यक्ष तथा रम्भादि अप्सराएँ—ये सभी नृत्य-गीत करते हुए उनकी स्तुति करते रहते हैं। तीनों संध्याएँ मूर्तिमान् रूपमें उपस्थित होकर वज्र एवं नाराच धारण किये भगवान् सूर्यकी स्तुति करती हैं। वे सात

छन्दोमय अश्वोंसे युक्त हैं। घटी, पल, ऋतु, संवत्सरादिकालके अवयवोंद्वारा निर्मित दिव्य रथपर आरूढ होकर सुशोभित होते रहते हैं। गरुडके छोटे भाई अरुण अपने ललाटपर अर्धचन्द्राकार कमल धारण किये हुए अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिसे सूर्यके सारथिका कार्य करते हैं। उनके दोनों पार्श्वोंमें दाहिनी ओर राज्ञी (संज्ञा[१]) और बायीं ओर निक्षुभा (छाया) नामकी दो पत्नियाँ स्थित रहती हैं। उनके साथमें पिङ्गल नामके लेखक, दण्डनायक नामके द्वाररक्षक तथा कल्माष नामके दो पक्षी द्वारपर खड़े रहते हैं। दिण्डि उनके मुख्य सेवक हैं, जो उनके सामने खड़े रहते हैं।

इनके साथ ही भगवान् सूर्यकी दस संतानें हैं। संज्ञा (अश्विनी)-से वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि (भद्रा) और सावर्णि मनु हुए। इनमेंसे रेवन्त नामक पुत्र सभी प्रतिमा तथा चित्रादिमें नित्य उनके साथ विशेष रूपसे प्रविष्ट रहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य देवता तथा सौरमण्डलके ग्रह-नक्षत्रादि भी मूर्तिमान्-रूपमें उनकी उपासना करते हैं। इनके परिवारकी मुख्य कथा जो भविष्य, मत्स्य, पद्म, ब्रह्म, मार्कण्डेय तथा साम्ब आदि पुराणोंमें वर्णित हैं, उसका सारांश संक्षेपमें इस प्रकार है—

विश्वकर्मा (त्वष्टा)-की पुत्री संज्ञा (त्वाष्ट्री)-से जब इनका विवाह हुआ, तब वह अपनी प्रथम तीन संतानों—वैवस्वत मनु, यम तथा यमी (यमुना)-की उत्पत्तिके बाद उनके तेजको न सह सकनेके कारण अपने ही रूप-आकृति तथा वर्णवाली अपनी 'छाया'को वहाँ स्थापितकर अपने पिताके घर होती हुई 'उत्तरकुरु' में जाकर वडवा (अश्वा)-का रूप धारणकर अपनी शक्तिवृद्धिके लिये कठोर तप करने लगी। इधर सूर्यने छायाको ही पत्नी समझा तथा उससे उन्हें सावर्णि मनु, शनि, तपती तथा विष्टि (भद्रा)—ये चार संतानें हुईं, जिन्हें वह अधिक प्यार करती; किंतु वैवस्वत मनु तथा यम, यमीका निरन्तर तिरस्कार करती रहती।

एक दिन दुःखी होकर धर्मराज (यमराज)-ने छायापर पैर उठाया, जिसपर उसने उनके पैरको गिर जानेका शाप दे दिया। इसपर उन्होंने अपने पिता सूर्यसे कहा कि 'यह हम लोगोंकी माता नहीं हो सकती, क्योंकि एक तो यह निरन्तर हमें तिरस्कृत करती है, यमीकी ताड़ना भी करती है; वहीं दूसरी ओर सावर्णि मनु आदिको अधिक प्यार करती है। मेरे द्वारा दुःखी होकर पैर उठानेपर उसने उसे गिर जानेका शाप दे दिया, जो अपनी माताके लिये कभी सम्भव नहीं है। संतान माताका कितना ही अनिष्ट करे, किंतु वह अपनी संतानको कभी शाप नहीं दे सकती।' यह सुनकर सूर्यने कहा—'तुम दुःखी न होओ, तुम्हारा पैर नहीं गिरेगा, केवल इसका एक लघु कण कृमि लेकर पृथ्वीपर चले जायँगे।' ऐसा कहकर सूर्य कुपित होकर छायाके पास गये और उसके केश पकड़कर पूछा—'सच-सच बता तू कौन है? कोई भी माता अपने पुत्रके साथ ऐसा निम्न कोटिका व्यवहार नहीं कर सकती।' यह सुनकर छाया भयभीत हो गयी और सारा रहस्य प्रकट कर दिया।

सूर्य तत्काल संज्ञाको खोजते हुए विश्वकर्माके घर पहुँचे। विश्वकर्माने तेज न सहन करनेके कारण उसके उत्तरकुरुमें तप करनेकी बात बतायी। विश्वकर्माने सूर्यकी इच्छापर उनके तेजको खरादकर कम कर दिया। अब भगवान् सूर्य अश्वरूपमें वडवा (संज्ञा—अश्विनी)-के पास उससे मिले। वडवाने परपुरुषके स्पर्शके भयसे सूर्यका तेज नाकोंसे फेंक दिया, उसीसे दोनों अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई, जो देवताओंके वैद्य हुए। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो गुह्यकों एवं अश्वोंके अधिपतिरूपमें प्रतिष्ठित हुए। इस प्रकार भगवान् सूर्यका विशाल परिवार प्रतिष्ठित हो गया, जिसकी पूजा-उपासना सदासे होती रही है।

भगवान् भुवनभास्करकी कृपामयी लीलाएँ

भगवान् सूर्यका अवतरण ही संसारके कल्याणके लिये हुआ है। वे नित्य सभीको चेतनता तथा गति प्रदान करते हैं। चराचर जगत्पर कृपा करना ही उनका सहज स्वभाव है। अपने भक्तों तथा उपासकोंपर तो उनकी विशेष प्रीति रहती है। भगवान् सूर्य नित्य त्रिकाल उपास्यदेव हैं। पञ्चदेवोपासनामें उनका विशिष्ट स्थान है। भगवान् भास्कर समस्त बुराइयोंको दूरकर भद्र, कल्याण, श्रेय तथा मङ्गलको देनेवाले हैं, इसीलिये उनसे प्रार्थना की जाती है—

१-पुराण, आगम एवं शिल्पग्रन्थोंमें इनके सुरेणु, त्वाष्ट्री, द्यौ, वडवा तथा प्रभा—ये नाम भी आते हैं।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव॥

(ऋ० ५। ८२। ५, यजु० ३०। ३)

भगवान् किरणमालीकी कृपासे व्यक्ति अतिमृत्युको भी लाँघ जाता है। बल्कि यहाँतक कहा गया है कि उनकी कृपाके बिना मोक्ष भी दुर्लभ है—

तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

(यजु० ३१। १८)

सहस्रों किरणवाले भुवनभास्कर असत्से सत्की ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर तथा मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले जानेवाले हैं—

असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय॥

(शतपथब्राह्मण १४। ४। १३०)

उनका अनुग्रह प्राप्त होनेपर व्यक्ति शतायु ही नहीं दीर्घायु हो जाता है—**'जीवेम शरदः शतं ......भूयश्च शरदः शतात्॥** (यजु० ३६। २४) भगवान् सविताकी उपासनासे बुद्धि अत्यन्त निर्मल हो जाती है, अन्तःकरण पवित्र हो जाता है और साधक भगवत्प्राप्तिके योग्य हो जाता है। बुद्धिके प्रेरक भगवान् सविता ही हैं, इसीलिये गायत्री-मन्त्रमें सद्बुद्धि-प्राप्तिकी प्रार्थना की गयी है—**'धियो यो नः प्रचोदयात्।'**

वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि-महर्षि सभी आदित्योपासनाके द्वारा ही अध्यात्म-ज्ञान तथा आर्ष-मेधासे सम्पन्न हुए। भगवान् सूर्य स्वल्प भी उपासना-आराधनासे प्रसन्न होकर भक्तको अपनी महनीय कृपाका अवलम्बन प्रदान कर देते हैं। उनकी कृपासे न जाने कितनोंका उद्धार हुआ, इसकी कोई गणना नहीं। औपनिषदिक ऋषियोंको भगवान् सूर्यकी कृपा प्राप्त थी। उपनिषदोंमें वर्णित ब्रह्मविद्या, दहरविद्या, मधुविद्या, उपकोसलविद्या पञ्चाग्निविद्या आदिके मूलमें भगवान् सूर्यकी उपासना ही प्रतिपादित है।

अव्यक्त एवं अजन्मा परतत्त्वरूप भगवान् सूर्यके अवतारकी लीलाकथा पुराणोंमें विस्तारसे प्राप्त होती है, उसीका सार-रूप यहाँ प्रस्तुत है—

पूर्व समयमें यह सम्पूर्ण लोक प्रभा एवं प्रकाशसे रहित था। चारों ओर घनघोर अन्धकार व्याप्त था। उस समय परम कारणस्वरूप एक अविनाशी एवं बृहत् अण्ड प्रकट हुआ। उसके भीतर सबके प्रपितामह लोकस्रष्टा कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माजी विराजमान थे। उस अण्डका भेदन करते समय उनके मुखसे महान् 'ॐ' शब्द प्रकट हुआ। उसमें ॐकारसे भूः, भुवः तथा स्वः—ये तीन व्याहृतियाँ उत्पन्न हुईं, जो भगवान् सूर्यके स्वरूप हैं। 'ॐ' इस स्वरूपसे सूर्यदेवका अत्यन्त सूक्ष्मरूप प्रकट हुआ। उससे क्रमशः महः, जनः, तपः और सत्यम्—ये स्थूलरूप प्रकट हुए। इस प्रकार ये सात सूर्यके सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं। ब्रह्माजीके मुखसे चारों वेदोंका आविर्भाव हुआ। उस ॐकारमें चारों वेद प्रतिष्ठित हुए। सबके आदिमें प्रकट होनेके कारण वह प्रणव ही 'आदित्य' कहलाया। वह आदित्य ही इस विश्वका अविनाशी कारण है। इसीलिये भगवान् सूर्य वेदात्मा, वेदमें स्थित, वेद-विद्यारूप तथा परम पुरुष कहलाते हैं। वे सनातन देवता सूर्य ही गुणोंका आश्रय लेकर सृष्टि, पालन और संहारके हेतु बनते हैं। वे आदित्य महान् तेजोरूप हैं। उनके असह्य तेजसे जब सभी लोक संतप्त होने लगे और ब्रह्माजीकी रची हुई सृष्टि दग्ध होने लगी तब ब्रह्माजी आदित्यकी शरणमें गये। उन्होंने उनकी प्रार्थना की और कहा—'प्रभो! मैं सृष्टि करनेके लिये उद्यत हूँ, किंतु आपका यह तेजःपुञ्ज सृष्टिका विनाशक हो रहा है, अतः आप अपने इस तेजको समेट लीजिये।'

ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर भगवान् सूर्यने अपने तेजको स्वल्प एवं सुखदायक बना लिया। तदनन्तर ब्रह्माजीने पूर्वकल्पोंके अनुसार जगत्की सृष्टि की। समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाजन किया; देवताओं, मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वृक्ष-लताओं तथा अन्य सभीका सृजन किया।

सूर्यको गुरु भी कहा गया है। श्रीमारुतिने इन्हींसे शिक्षा ग्रहण की थी। इन्हींकी कृपासे भगवान् सांकृति तथा महायोगी याज्ञवल्क्यको ब्रह्मविद्या तथा चाक्षुष्मती विद्याका ज्ञान प्राप्त हुआ।

महर्षि याज्ञवल्क्यने सूर्योपासनाद्वारा ही शुक्लयजुर्वेदको प्रकाशित किया। भगवान् श्रीरामने 'आदित्यहृदयस्तोत्र'का पाठ करके रावणपर विजय पायी थी। धर्मराज युधिष्ठिरने भगवान् सूर्यकी कृपासे ही अक्षय-पात्र प्राप्त किया था।

कुष्ठरोगसे अभिभूत मयूरकविने 'सूर्यशतक'की रचना करके उनके अनुग्रहसे कुष्ठरोगसे छुटकारा प्राप्त किया। कृष्णपुत्र साम्बकी सूर्योपासनाका चमत्कार तो प्रसिद्ध ही है। महाराज अश्वपतिने सूर्यकी कृपासे सावित्रीदेवीको अपनी कन्याके रूपमें प्राप्त किया था। सूर्यवंशी सभी राजाओंको उनका अनुग्रह प्राप्त था। महाराज सत्राजित् सूर्यके महान् भक्त थे, उन्हींकी कृपासे उन्हें स्यमन्तक मणि प्राप्त हुई थी। अपनी एक कृपालीलाके द्वारा भगवान् सूर्यने महाराज राज्यवर्धनके साथ-ही-साथ उनकी प्रजाको भी दीर्घ आयु तथा अपना लोक प्रदान किया था। समर्थ रामदासजी सूर्यको नित्य एक सौ आठ बार साष्टाङ्ग प्रणाम करते थे, इसलिये वे समर्थ कहलाये, गुरुपदभाक् बने। संत श्रीतुलसीदासजीको भी सूर्यकी कृपा प्राप्त थी। ऐसे ही सहस्रों आख्यान हैं, जिनमें भगवान् सूर्यकी कृपामयी लीलाका वर्णन हुआ है। यहाँ संक्षेपमें कुछ लीला-कथाओंको दिया जा रहा है—

(१)

महर्षि याज्ञवल्क्यपर भगवान् सूर्यकी कृपा

महान् योगी, अध्यात्मज्ञानी, श्रीरामकथाके प्रवक्ता तथा निरन्तर सूर्योपासनामें निरत महर्षि याज्ञवल्क्यजी वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। त्रिकाल संध्योपासना तथा सूर्योपस्थान आदि दीर्घकालीन साधनाओंसे भगवान् आदित्यके लोकमें आया-जाया करते थे। एक बार वे आदित्यलोकमें गये और वहाँ भगवान् सूर्यको प्रणामकर उन्होंने कहा—'भगवन् आदित्य! आप अपने आत्मतत्त्वका वर्णन कीजिये'—

याज्ञवल्क्यो ह वै महामुनिरादित्यलोकं जगाम। तमादित्यं नत्वा भो भगवन्नादित्यात्मतत्त्वमनुब्रूहीति।'

(मण्डलब्राह्मणोपनिषत् १। १)

—इसपर सूर्यदेवने कृपाकर उन्हें अपने आत्मतत्त्वका उपदेश दिया।

याज्ञवल्क्यजीने अपने गुरु वैशम्पायनजीसे वेदोंका ज्ञान प्राप्त किया था, किंतु एक बार उनसे कुछ विवाद हो जानेके कारण गुरुजी रुष्ट हो गये और कहने लगे—'तुम मेरे द्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो।' गुरुजीकी आज्ञा अनुल्लंघनीय थी, अतः याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपसे वे ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजीके दूसरे शिष्योंने तीतर (एक पक्षी-विशेष) बनकर ग्रहण कर लिया। यजुर्वेदकी वही शाखा, जो तीतर बनकर ग्रहण की गयी थी, 'तैत्तिरीयशाखा'के नामसे विख्यात हुई।

पुनः याज्ञवल्क्यजीने वेदज्ञान और वेदविद्या प्राप्त करनेका निश्चय किया; किंतु अब उन्हें ज्ञान कौन प्राप्त कराता? गुरुजी तो रुष्ट हो चुके थे। महर्षि याज्ञवल्क्य भगवान् सूर्यकी कृपाशक्तिसे परिचित थे, अतः उन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करनेका निश्चय किया। फिर क्या था, वे अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें लग गये। उन्होंने प्रार्थना की कि 'हे भगवन्! मुझे ऐसे यजुर्वेदकी प्राप्ति हो, जो अभीतक किसीको न मिला हो—

अहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति॥

(श्रीमद्भा० १२। ६। ७२)

महर्षि याज्ञवल्क्यकी स्तुति-उपासनासे प्रसन्न होकर भगवान् उनके सामने अश्वरूपसे प्रकट हुए और उन्हें यजुर्वेदके उन मन्त्रोंका उपदेश दिया, जो अभीतक किसीको भी प्राप्त नहीं हुए थे—

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः॥

(श्रीमद्भा० १२। ६। ७३)

अश्वरूप सूर्यसे मध्याह्नकालमें प्राप्त होनेके कारण शुक्ल यजुर्वेदकी यह शाखा 'वाजसनेय' या 'माध्यन्दिन' नामसे प्रसिद्ध हुई।

भगवान् सूर्यकी कृपासे ही महर्षि याज्ञवल्क्य शतपथब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषदके द्रष्टा बने। जनक-जैसे महान्-ज्ञानीका गुरु होनेका सौभाग्य इन्हें प्राप्त था। सौरी दीक्षासे सम्पन्न होनेके कारण ही ये महाराज जनकके दरबारमें ब्रह्मनिष्ठ ऋषियों तथा ऋषिका गार्गी आदिको शास्त्रार्थमें संतुष्ट कर सके और इसी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण इन्हें भगवान् श्रीरामकी भी कृपा प्राप्त थी। प्रयागमें इन्होंने ऋषियोंके समाजमें महर्षि भरद्वाजजीको दिव्य रामचरित सुनाया। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में जो दिव्य ज्ञान तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादा प्रतिष्ठित हुई है, वह भगवान् सूर्यकी कृपाका ही परिणाम है। भगवान् सवितादेवकी आराधनाके मुख्य मन्त्र ब्रह्मगायत्रीका इन्होंने ही सर्वप्रथम भाष्य किया है, जो

उनकी सूर्योपासना तथा सूर्यकी कृपामयी लीलाका ही परिचायक है। इस प्रकार भगवान् सूर्यने अपने महान् भक्त महर्षि याज्ञवल्क्यजीको समय-समयपर सम्पूर्ण विद्या-बुद्धि और ज्ञान प्राप्त कराकर लोकका महान् उपकार किया।

(२)

सूर्योपासक महर्षि विश्वामित्रपर सवितादेवका अनुग्रह

तपस्याके धनी महर्षि विश्वामित्रजीका नाम सर्वविश्रुत ही है। इन्होंने अपने पुरुषार्थसे क्षत्रियत्वसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया और ये राजर्षिसे ब्रह्मर्षि बन गये। तपस्याके प्रभाव तथा भगवती गायत्रीकी उपासनासे ये जगत्पूज्य हुए तथा सप्तर्षियोंमें इन्हें स्थान प्राप्त हुआ। इसी कारण ये भगवान् श्रीरामके भी गुरु बने। मूलतः आज जो ब्रह्मगायत्री[1] है, उसके मुख्य द्रष्टा विश्वामित्रजी हैं। यह गायत्री-मन्त्रमें निर्दिष्ट भगवान् सवितादेवके अनुग्रहशक्ति प्राप्त होनेका ही परिणाम है। इन्हें ही सर्वप्रथम वेदमाता भगवती गायत्रीके दर्शन हुए। महर्षि विश्वामित्र वैदिक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। ऋग्वेदके तृतीय मण्डलके मन्त्रोंका इन्हें ही सर्वप्रथम दर्शन हुआ। इसलिये यह मण्डल 'वैश्वामित्र मण्डल' कहलाता है। इस प्रकार गायत्री-मन्त्र जो सूर्यकी कृपा प्राप्त करनेका अन्यतम साधन है, महर्षि विश्वामित्रद्वारा ही हमें प्राप्त है। महर्षि विश्वामित्रजीने 'विश्वामित्रकल्प', 'विश्वामित्रसंहिता' तथा 'विश्वामित्रस्मृति' आदि अनेक ग्रन्थ रचे। ये सभी ग्रन्थ गायत्री-उपासना, संध्योपासन-विधान तथा सूर्यकी उपासना एवं उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये ही निर्मित हैं। इस दृष्टिसे सूर्योपासक महामुनि विश्वामित्रजीका हमपर बड़ा उपकार है।

(३)

भक्तके अधीन रहनेकी एक लीला

महाभारतके आदिपर्वमें जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बड़े भारी तपस्वी और मनस्वी थे। उन्होंने सर्पराज वासुकिकी बहन अपने ही नामवाली जरत्कारु नामक नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होंने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि 'यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा।'

एक बारकी बात है, ऋषि अपनी धर्मपत्नीकी गोदमें सिर रखे लेटे हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्यास्तका समय हो आया, किंतु ऋषि जागे नहीं, वे निद्रामें थे। ऋषिपत्नीने सोचा कि ऋषिकी सायं-संध्याका समय हो गया, यदि इन्हें जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो संध्या करनेकी वेला बीत जायगी, जिससे ऋषिके धर्मका लोप हो जायगा। ऋषिपत्नी धर्मसंकटमें पड़ गयी। अन्तमें उसने यही निर्णय लिया कि पतिदेव मेरा परित्याग भले ही कर दें, परंतु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर उसने पतिको जगा दिया। ऋषिने अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर रोष प्रकट किया और अपनी पूर्व-प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको छोड़ देनेपर उतारू हो गये। जगानेका कारण बतानेपर ऋषिने कहा—'देवि! इतने दिन मेरे साथ रहकर भी तुमने मेरे प्रभावको नहीं जाना। मैंने आजतक कभी संध्याकी वेलाका अतिक्रमण नहीं किया। मैं नित्य त्रिकाल-संध्या करता हूँ। भगवान् सवितादेव मेरे इष्ट हैं, वे मेरी आस्था एवं विश्वासके सम्बल हैं, आजतक कभी ऐसा नहीं हुआ, फिर क्या आज सूर्यभगवान् मेरा अर्घ्य लिये बिना ही अस्त हो सकते थे, कभी नहीं—

शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः।
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते॥

(महा०, आदि० ४७। २६)

अर्थात् हे वामोरु! मेरे हृदयमें यह विश्वास है कि मेरे सोते रहनेपर भगवान् सूर्यकी यह शक्ति नहीं है कि वे अस्ताचलकी ओर जानेमें समर्थ हो सकें।

सच है, जिस भक्तकी उपासनामें इतनी दृढ़ निष्ठा होती है कि उसके इष्टदेव उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकते तो ऐसे हठीले भक्तोंके लिये भगवान्‌को अपने नियम भी तोड़ने पड़ते हैं। उन्हें तो जैसे भी हो अपने भक्त, अपने उपासकका ख्याल रखना ही पड़ता है। भगवान् अपने विरदको कभी नहीं भूलते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा की थी कि मैं कुरुक्षेत्रके मैदानमें शस्त्र नहीं उठाऊँगा, किंतु अपने प्यारे भक्त अर्जुनकी रक्षा तथा महाभागवत पितामह भीष्मकी प्रीतिके लिये उन्हें शस्त्र उठाना पड़ा। वास्तवमें भगवान् अपने भक्तके अधीन रहते हैं, 'अहं

१-'तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥' (ऋग्वेद ३। ६२। १०)

भक्तपराधीनः' इसीमें उनकी भक्तवत्सलता है और इसीमें है उनकी भगवत्ता।

(४)

साम्बपर भगवान् भास्करकी कृपा

भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र साम्ब महारानी जाम्बवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। बाल्यकालमें इन्होंने बलदेवजीसे अस्त्रविद्या सीखी थी। बलदेवजीके समान ही ये बलवान् थे। महाभारतमें इनके सम्बन्धमें विस्तृत वर्णन मिलता है। ये द्वारकापुरीके सप्त अतिरथी वीरोंमें एक थे, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी श्रीकृष्णके साथ हस्तिनापुरमें आये थे। इन्होंने वीरवर अर्जुनसे धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने शल्यके सेनापतित्वमें क्षेमवृद्धिको युद्धमें पराजित किया था और वेगवान् नामक दैत्यका भी वध किया था।

भविष्यपुराणमें उल्लेख है कि साम्ब बलिष्ठ होनेके साथ ही अत्यन्त रूपवान् भी थे। अपनी सुन्दरताके अभिमानमें वे किसीको कुछ नहीं समझते थे। यही अभिमान आगे इनके पतनका कारण बना। अभिमान किसीको भी गिरा देता है।

हुआ यह कि एक बार वसन्त ऋतुमें रुद्रावतार दुर्वासा मुनि तीनों लोकोंमें विचरते हुए द्वारकापुरीमें आये। उन्हें तपसे क्षीणकाय देखकर साम्बने उनका परिहास किया। इससे दुर्वासा मुनिने क्रोधमें आकर अपने अपमानके बदलेमें साम्बको शाप दे दिया कि 'तुम अति शीघ्र कोढ़ी हो जाओ।' उपहास बुरा होता है; वही हुआ। साम्ब शप्त होनेपर संतप्त हो उठे।

साम्बने अति व्याकुल हो कुष्ठ-निवारणार्थ अनेक प्रकारके उपचार किये; परंतु किसी भी उपचारसे उनका कुष्ठ नहीं मिटा। अन्तमें वे अपने पूज्य पिता आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके पास गये और उनसे विनीत प्रार्थना की कि 'महाराज! मैं कुष्ठरोगसे अत्यन्त पीडित हो रहा हूँ। मेरा शरीर गलता जा रहा है, स्वर दबा जा रहा है. पीड़ासे प्राण निकले जा रहे हैं, अब क्षणभर भी जीवित रहनेकी क्षमता नहीं है। आपकी आज्ञा पाकर अब मैं प्राण त्याग करना चाहता हूँ। आप इस असह्य दुःखकी निवृत्तिके लिये मुझे प्राण त्यागनेकी अनुमति दें।'

महायोगेश्वर श्रीकृष्ण क्षणभर विचारकर बोले—'पुत्र! धैर्य धारण करो। धैर्य त्यागनेसे रोग अधिक सताता है। मैं उपाय बताता हूँ, सुनो! तुम श्रद्धापूर्वक श्रीसूर्यनारायणकी आराधना करो। पुरुष यदि विशिष्ट देवताकी आराधना विशिष्ट ढंगसे करे, तो अवश्य ही विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। देवाराधन विफल नहीं होता।

साम्बके संदेह करनेपर श्रीकृष्ण पुनः बोले—शास्त्र और अनुमानसे हजारों देवताओंका होना सिद्ध होता है, किंतु प्रत्यक्षमें सूर्यनारायणसे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं है। सारा जगत् इन्हींसे उत्पन्न हुआ है और इन्हींमें लीन हो जायगा। ग्रह, नक्षत्र, राशि, आदित्य, वसु, इन्द्र, वायु, अग्नि, रुद्र, अश्विनीकुमार, ब्रह्मा, दिशा, भूः, भुवः, स्वः आदि सब लोक, पर्वत, नदी-नद, सागर-सरिता, नाग-नग एवं समस्त भूतग्रामकी उत्पत्तिके हेतु सूर्यनारायण ही हैं। वेद, पुराण, इतिहास—सभीमें इनको परमात्मा, अन्तरात्मा आदि शब्दोंसे प्रतिपादित किया गया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभावका वर्णन सौ वर्षोंमें भी कोई नहीं कर सकता। तुम यदि अपना कुष्ठ मिटाकर संसारमें सुख भोगना चाहते हो और मुक्ति-भुक्तिकी इच्छा रखते हो तो विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी आराधना करो, जिससे आध्यात्मिक, आधिभौतिक दुःख तुमको कभी नहीं होंगे।'

पिता श्रीकृष्णकी आज्ञा शिरोधार्यकर साम्ब चन्द्रभागा नदीके तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नामक सूर्यक्षेत्रमें गये। वहाँ सूर्यकी 'मित्र' नामक मूर्तिकी स्थापना करके उसकी आराधना करने लगे। जिस स्थानपर इन्होंने मूर्तिकी स्थापना की थी, आगे चलकर उसीका नाम 'मित्रवन' हुआ। साम्बने चन्द्रभागा नदीके तटपर 'साम्बपुर' नामक एक नगर भी बसाया, जिसे आजकल (पंजाबका) 'मुलताननगर' कहते हैं। (साम्बरी नामकी एक जादूगरी विद्या भी है, जिसका आविष्कार साम्बने ही किया था।) मित्रवनमें साम्ब उपवासपूर्वक सूर्यके मन्त्रका अखण्ड जप करने लगे। उन्होंने ऐसा घोर तप किया कि शरीरमें अस्थिमात्र शेष रह गया। वे प्रतिदिन अत्यन्त भक्तिभावसे गद्गद होकर— '**यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं चाजरमव्ययम्**'—इस प्रथम चरणवाले स्तोत्रसे सूर्यनारायणकी स्तुति करते थे। इसके अतिरिक्त तप करते

समय वे सहस्रनामसे भी सूर्यका स्तवन करते थे[१]।

इस आराधनासे प्रसन्न होकर सूर्यभगवान्ने स्वप्नमें दर्शन देकर साम्बसे कहा—'प्रिय साम्ब! सहस्रनामसे हमारी स्तुति करनेकी आवश्यकता नहीं है। हम अपने अत्यन्त गुह्य और पवित्र इक्कीस नाम तुम्हें बताते हैं[२] जिनका पाठ करनेसे सहस्रनामके पाठ करनेका फल मिलता है। हमारा यह स्तोत्र त्रैलोक्यमें प्रसिद्ध है। जो दोनों संध्याओंमें इस स्तोत्रका पाठ करते हैं, वे सभी पापोंसे छूट जाते हैं और धन, आरोग्य, संतान आदि वाञ्छित पदार्थ प्राप्त करते हैं। साम्बने इस स्तवराजके पाठसे अभीष्ट फल प्राप्त किया। यदि कोई भी पुरुष इस स्तोत्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, तो वह निश्चय ही समस्त रोगोंसे मुक्त हो जायगा।

साम्ब भगवान् सूर्यके आदेशानुसार इक्कीस नामोंका पाठ करने लगे। तत्पश्चात् साम्बकी अटल भक्ति, कठोर तपस्या, श्रद्धायुक्त जप और स्तुतिसे प्रसन्न होकर सूर्यनारायणने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'वत्स साम्ब! तुम्हारे तपसे हम बहुत प्रसन्न हुए हैं, वर माँगो।' देवता प्रसन्न होनेपर अभीष्ट सिद्धि देते हैं।

अब साम्ब भक्तिभावमें अत्यन्त लीन हो गये थे। उन्होंने केवल यही एक वर माँगा—'परमात्मन्! आपके श्रीचरणोंमें मेरी दृढ़ भक्ति हो।'

भगवान् सूर्यने प्रसन्न होकर कहा—'यह तो होगा ही, और भी कोई वर माँगो।' तब लज्जित-से होकर साम्बने दूसरा वर माँगा—'भगवन्! यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे यह वर दीजिये कि मेरे शरीरका यह कलंक निवृत्त हो जाय।' कुष्ठको जीवनके सबसे बड़े पापका फल समझा जाता है।

सूर्यनारायणके 'एवमस्तु' कहते ही साम्बका रूप दिव्य और स्वर उत्तम हो गया। इसके अतिरिक्त सूर्यने और भी वर दिये; जैसे—'यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। हम तुमको स्वप्नमें दर्शन देते रहेंगे; अब तुम इस चन्द्रभागा नदीके तटपर मन्दिर बनवाकर उसमें हमारी प्रतिमा स्थापित करो।'

साम्बने श्रीसूर्यके आदेशानुसार चन्द्रभागा नदीके तटपर मित्रवनमें एक विशाल मन्दिर बनवाकर उसमें विधिपूर्वक सूर्यनारायणकी मूर्ति स्थापित करायी।

इसके बाद मौसल-युद्धमें साम्बने वीरगति प्राप्त की। मृत्युके पश्चात् भगवान् भास्करकी कृपासे ये विश्वेदेवोंमें प्रविष्ट हो गये।

(५)

आरोग्य-दानकी एक अन्य लीला-कथा

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अ० ८२)-में एक कथा आयी है कि मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामके एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। वे महान् तपस्वी, धर्मात्मा, न्यायशील तथा प्रजावत्सल राजा थे। प्रतिदिन देवता, अतिथि एवं ब्राह्मणोंका पूजन तथा गौओंकी सेवा करते थे। किंतु एक समयकी बात है कि उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया, परंतु वह कोढ़ बढ़ता ही गया। राजा अति चिन्तित हो गये। यह उनके लिये महान् लज्जा एवं कष्टका विषय हो गया। उनका मन अत्यन्त ग्लानिसे भर गया। 'राजा कोढ़ी हो गये' यह प्रवाद सर्वत्र फैल गया। राजाने ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक बुलाकर अपना दुःख उन्हें निवेदित किया और राज्यका परित्याग कर देनेकी बात बतलायी।

ब्राह्मणोंने क्षणभर विचार किया और फिर कहा—'राजन्! आप ऐसा खयाल छोड़ दें, राजाके अभावमें प्रजा नष्ट हो जायगी। आप भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करें, वे आरोग्यके देवता हैं।' यह कहकर ब्राह्मणोंने उन्हें सूर्योपासनाकी विधि बतला दी। तदनुसार राजा बड़ी ही निष्ठासे सूर्यकी पूजामें जुट गये। सूर्य-मन्त्रोंका जप करने लगे, सूर्यको अर्घ्य देने लगे। 'राजाका कष्ट दूर हो' इस उद्देश्यसे समस्त राजपरिवार, मन्त्रिगण, पुरोहित तथा प्रजाजन भी सूर्यार्घ्य देने लगे।

ऐसे ही एक वर्षका समय निकल गया। राजाकी श्रद्धा बढ़ती ही गयी। वर्षके अन्तमें ऐसा चमत्कार हुआ कि एक दिन सूर्यार्घ्य देते समय एकाएक राजाका कुष्ठरोग दूर हो

---

१. सूर्यसहस्रनामस्तोत्र 'गीताप्रेस' से प्रकाशित है।

२. इक्कीस नाम ये हैं—

ॐविकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमान् लोकचक्षुर्महेश्वरः॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः॥

(भविष्यपुराण)

गया। उस समय पूर्वदिशामें भगवान् सूर्य प्रकाशित हो रहे थे। यह चमत्कार देखकर राजा मुग्ध हो गये। क्षणभरमें यह समाचार सर्वत्र फैल गया। सभी भगवान् सूर्यकी कृपासे अभिभूत हो गये।

अब तो राजाने सम्पूर्ण राज्यमें घोषणा करा दी कि आजसे सभी लोग नित्यप्रति भगवान् सूर्यको सूर्यार्घ्य प्रदान करें, जल चढ़ाया करें और संयम-नियमसे रहते हुए सूर्याराधना किया करें। राजाज्ञा थी, कौन उल्लंघन कर सकता। सभी लोग सूर्यपूजक बन गये और सभीमें सूर्य-भक्तिका संचार भी हो आया।

राजाकी ऐसी दृढ़ निष्ठा देखकर भगवान् सूर्य उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये और बोले—'राजन्! तुम्हारी भक्ति अत्यन्त ही श्रेष्ठ है, तुम्हारी प्रेरणासे तुम्हारे समस्त राज्यमें सब लोग भक्त बन गये हैं। यह बड़ा ही उत्तम कार्य तुमसे बना है, मैं बहुत प्रसन्न हूँ, जो इच्छा हो वह वर माँग लो।'

राजाने कहा—'भगवन्! इन सांसारिक सुख-भोगोंमें क्या रखा है जो इनकी कामना की जाय। मैं तथा मेरी समस्त प्रजा आपमें दृढ़ निष्ठा रखती है, अतः आप कृपाकर ऐसा वर प्रदान करें जिससे हम सभीको आपकी संनिधि प्राप्त हो और हम सभी आपके प्रकाशसे प्रकाशित हो उठें।'

राजाकी बुद्धिमत्ता, उदारता तथा प्रजावत्सलताको देखकर भगवान् सूर्य प्रसन्न होकर बोले—'राजन्! यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो ऐसा ही होगा।' फिर क्या था, भगवत्कृपा हो ही चुकी थी। राजा भद्रेश्वर अपने समस्त परिजनों, पुरजनों-सहित सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित हुए। उस राज्यमें जो भी पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी राजा भद्रेश्वरकी सूर्यनिष्ठाके परिणामस्वरूप आदित्यधामके निवासी बन गये। धन्य है प्रभो! आपकी लीला, अपने भक्तके लिये आप क्या-क्या नहीं कर देते हैं। भगवन्! आपको तथा आपके भक्तोंको बार-बार प्रणाम है।

काशीके द्वादश आदित्योंकी पौराणिक कथाएँ

सर्वतीर्थमयी विश्वनाथपुरी काशी त्रैलोक्यमङ्गल भगवान् विश्वनाथ एवं कलि-कल्मषहारिणी भगवती भागीरथीके अतिरिक्त अगणित देवताओंकी आवासभूमि है। यहाँ कोटि-कोटि शिवलिङ्ग चतुष्षष्टियोगिनियाँ, षट्पञ्चाशत विनायक, नव दुर्गा, नव गौरी, अष्ट भैरव, विशालाक्षीदेवी प्रभृति सैकड़ों देव-देवियाँ काशीवासीजनोंके योग-क्षेम, संरक्षण, दुरित एवं दुर्गतिका निरसन करते हुए विराजमान हैं। इनमें द्वादश आदित्योंका स्थान और माहात्म्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उनका चरित्र-श्रवण महान् अभ्युदयका हेतु एवं दुरित और दुर्गतिका विनाशक है। यहाँ साधकोंके अभ्युदयके लिये द्वादश आदित्योंका संक्षिप्त माहात्म्य-चित्रण कथा-रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) लोलार्क—किसी समय भगवान् शिवको काशीका वृत्तान्त जाननेकी इच्छा हुई। उन्होंने सूर्यसे कहा—सप्ताश्व! तुम शीघ्र वाराणसी नगरीमें जाओ। धर्ममूर्ति दिवोदास वहाँका राजा है। उसके धर्मविरुद्ध आचरणसे जैसे वह नगरी उजड़ जाय, वैसा उपाय शीघ्र करो; किंतु राजाका अपमान न करना।

भगवान् शिवका आदेश पानेके अनन्तर सूर्यने अपना स्वरूप बदल लिया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। उन्होंने काशी पहुँचकर राजाकी धर्म-परीक्षाके लिये विविध रूप धारण किये एवं अतिथि, भिक्षु आदि बनकर उन्होंने राजासे दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तुएँ माँगीं, किंतु राजाके कर्तव्यमें त्रुटि या राजाकी धर्म-विमुखताकी गन्धतक उन्हें नहीं मिली।

उन्होंने शिवजीकी आज्ञाकी पूर्ति न कर सकनेके कारण उनकी झिड़कीके भयसे मन्दराचल लौट जानेका विचार त्यागकर काशीमें ही रहनेका निश्चय किया। काशीका दर्शन करनेके लिये उनका मन लोल (सतृष्ण) था, अतः उनका नाम 'लोलार्क' हुआ। वे गङ्गा-असि-संगमके निकट भद्रवनी (भदैनी)-में विराजमान हैं। वे काशीनिवासी लोगोंका सदा योग-क्षेम वहन करते रहते हैं। वाराणसीमें निवास करनेपर जो लोलार्कका भजन, पूजन आदि नहीं करते हैं, वे क्षुधा, पिपासा, दरिद्रता, दद्रु (दाद) तथा फोड़े-फुंसी आदि विविध व्याधियोंसे ग्रस्त रहते हैं।

काशीमें गङ्गा-असि-संगम तथा उसके निकटवर्ती लोलार्क आदि तीर्थोंका माहात्म्य स्कन्दपुराण आदिमें वर्णित है—

सर्वेषां काशितीर्थानां लोलार्कः प्रथमं शिरः।
लोलार्ककरनिष्टप्ता असिधारविखण्डिताः॥
काश्यां दक्षिणदिग्भागे न विशेयुर्महामलाः॥

(स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४६। ५९, ६७)

(२) उत्तरार्क—बलिष्ठ दैत्योंद्वारा देवता बार-बार

युद्धमें परास्त हो जाते थे। देवताओंने दैत्योंके आतंकसे सदाके लिये छुटकारा पानेके निमित्त भगवान् सूर्यकी स्तुति की। स्तुति करनेपर सम्मुख उपस्थित हुए प्रसन्नमुख भगवान् सूर्यसे देवताओंने प्रार्थना की—'हे प्रभो! बलिष्ठ दैत्य कोई-न-कोई बहाना बनाकर हमारे ऊपर आक्रमण कर देते हैं और हमें परास्त कर हमारे सब अधिकार छीन लेते हैं। निरन्तरकी यह महाव्याधि सदाके लिये जैसे समाप्त हो जाय, वैसा समाधायक उत्तर आप हमें देनेकी कृपा करें।'

भगवान् सूर्यने विचारकर अपनेसे उत्पन्न एक शिला उन्हें दी और कहा कि यह तुम्हारा समाधायक उत्तर है। इसे लेकर तुम वाराणसी जाओ और विश्वकर्माद्वारा इस शिलाकी शास्त्रोक्त विधिसे मेरी मूर्ति बनवाओ। मूर्ति बनाते समय छेनीसे इसे तराशनेपर जो प्रस्तरखण्ड निकलेंगे वे तुम्हारे दृढ़ अस्त्र-शस्त्र होंगे। उनसे तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करोगे।

देवताओंने वाराणसी जाकर विश्वकर्माद्वारा सुन्दर सूर्यमूर्तिका निर्माण कराया। मूर्ति तराशते समय उससे पत्थरके जो टुकड़े निकले, उनसे देवताओंके तेज और प्रभावी अस्त्र बने। उनसे देवताओंने दैत्योंपर विजय पायी। मूर्ति गढ़ते समय जो गड्ढा बन गया था, उसका नाम उत्तरमानस (उत्तरार्ककुण्ड) पड़ा। वही कालान्तरमें भगवान् शिवसे माता पार्वतीकी यह प्रार्थना करनेपर कि '**वर्करीकुण्डमित्याख्या त्वर्ककुण्डस्य जायताम्**।' (स्कन्दपु०, काशीखण्ड ४७। ५६) अर्थात् 'अर्ककुण्ड' (उत्तरार्ककुण्ड)-का नाम वर्करीकुण्ड हो जाय, वही कुण्ड 'वर्करीकुण्ड'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्तमानमें उसीका विकृत रूप 'बकरियाकुंड' है। यह अलईपुराके समीप है। उत्तररूपमें दी गयी शिलासे मूर्ति बननेके कारण उनका उत्तरार्क नाम पड़ा। उत्तरार्कका माहात्म्य बड़ा ही अद्भुत और विलक्षण है। पहले पौषमासके रविवारोंको वहाँ बड़ा मेला लगता था, किंतु सम्प्रति वह मूर्ति भी लुप्त है।

उत्तरार्कस्य माहात्म्यं शृणुयाच्छ्रद्धयान्वितः।
..
लभते वाञ्छितां सिद्धिमुत्तरार्कप्रसादतः।

(आदित्यपु०, रविवारव्रतकथा ३६—३८)

(३) साम्बादित्य—किसी समय देवर्षि नारदजी भगवान् कृष्णके दर्शनार्थ द्वारकापुरी पधारे। उन्हें देखकर सब यादवकुमारोंने अभ्युत्थान एवं प्रणामकर उनका सम्मान किया; किंतु साम्बने अपने अत्यन्त सौन्दर्यके गर्वसे न अभ्युत्थान किया और न प्रणाम ही; प्रत्युत उनकी वेष-भूषा और रूपपर हँस दिया। साम्बका यह अविनय देवर्षिको अच्छा नहीं लगा। उन्होंने इसका थोड़ा-सा संकेत भगवान्‌के समक्ष कर दिया।

दूसरी बार जब नारदजी आये, तब भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें गोपीमण्डलके मध्य बैठे थे। नारदने बाहर खेल रहे साम्बसे कहा—'वत्स! भगवान् कृष्णको मेरे आगमनकी सूचना दे दो।' साम्बने सोचा—एक बार मेरे प्रणाम न करनेसे ये खिन्न हुए थे। यदि आज भी इनका कहना न मानूँ तो और भी अधिक खिन्न होंगे; सम्भवतः शाप दे डालें। उधर पिताजी एकान्तमें मातृमण्डलके मध्य स्थित हैं। अनुपयुक्त स्थानपर जानेसे वे भी अप्रसन्न हो सकते हैं। क्या करूँ, जाऊँ या न जाऊँ? मुनिके क्रोधसे पिताजीका क्रोध कहीं अच्छा है—यह सोचकर वे अन्तःपुरमें चले गये। दूरसे ही पिताजीको प्रणामकर नारदके आगमनकी सूचना उन्हें दी। साम्बके पीछे-ही-पीछे नारदजी भी वहाँ चले गये। उन्हें देखकर सबने अपने वस्त्र सँभाले।

नारदजीने गोपीजनोंमें कुछ विकृति ताड़कर भगवान्‌से कहा—'भगवन्! साम्बके अतुल सौन्दर्यसे ही इनमें कुछ चाञ्चल्यका आविर्भाव हुआ प्रतीत होता है।' यद्यपि साम्ब सभी गोपीजनोंको माता जाम्बवतीके तुल्य ही देखते थे, तथापि दुर्भाग्यवश भगवान्‌ने साम्बको बुलाकर यह कहते हुए तो शाप दे दिया कि एक तो तुम अनवसरमें मेरे निकट चले आये, दूसरा यह कि ये सब तुम्हारा सौन्दर्य देखकर चञ्चल हुई हैं, इसलिये तुम कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो जाओ।'

घृणित रोगके भयसे साम्ब काँप गये और भगवान्‌के समक्ष मुक्तिके लिये बहुत अनुनय-विनय करने लगे। तब श्रीकृष्ण भगवान्‌ने भी पुत्रको निर्दोष जानकर दूर्दैववश प्राप्त रोगकी विमुक्तिके लिये उन्हें काशी जानेका आदेश दिया। तदनुसार साम्बने भी काशी जाकर विश्वनाथजीके पश्चिमकी ओर कुण्ड बनाकर उसके तटपर सूर्यमूर्तिकी स्थापना की एवं भक्तिभावसहित सूर्याराधनासे रोग-विमुक्त हुए।

तभीसे सब व्याधियोंको हरनेवाले साम्बादित्य सकल सम्पत्तियाँ भी प्रदान करते हैं। इनका मन्दिर सूर्यकुण्ड मुहल्लेमें कुण्डके तटपर है। साम्बादित्यका माहात्म्य भी बड़ा चमत्कारी है—

साम्बादित्यस्तदारभ्य सर्वव्याधिहरो रविः।
ददाति सर्वभक्तेभ्योऽनामयाः सर्वसम्पदः॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४८। ४७)

(४) द्रौपदादित्य—प्राचीन कालमें जगत्-कल्याणकारी

भगवान् पञ्चवक्त्र शिवजी ही पाँच पाण्डवोंके रूपमें प्रादुर्भूत हुए एवं जगज्जननी उमा द्रौपदीके रूपमें यज्ञकुण्डसे उद्भूत हुईं। भगवान् नारायण उनके सहायतार्थ श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण हुए।

महाबलशाली पाण्डव किसी समय अपने चचेरे भाई दुर्योधनकी दुष्टतासे बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। उन्हें राज्य त्यागकर वनोंकी धूलि फाँकनी पड़ी। अपने पतियोंके इस दारुण क्लेशसे दुःखी द्रौपदीने भगवान् सूर्यकी मनोयोगसे आराधना की। द्रौपदीकी इस आराधनासे सूर्यने उसे कलछुल तथा ढक्कनके साथ एक बटलोई दी और कहा कि जबतक तुम भोजन नहीं करोगी, तबतक जितने भी भोजनार्थी आयँगे वे सब-के-सब इस बटलोईके अन्नसे तृप्त हो जायँगे। यह सरस व्यञ्जनोंकी निधान है एवं इच्छानुसारी खाद्योंकी भण्डार है। तुम्हारे भोजन कर चुकनेके बाद यह खाली हो जायगी।

इस प्रकारका वरदान काशीमें सूर्यसे द्रौपदीको प्राप्त हुआ। दूसरा वरदान द्रौपदीको सूर्यने यह दिया कि विश्वनाथजीके दक्षिण भागमें तुम्हारे सम्मुख स्थित मेरी प्रतिमाकी जो लोग पूजा करेंगे उन्हें क्षुधा-पीड़ा कभी नहीं होगी। द्रौपदादित्यजी विश्वनाथजीके समीप अक्षय-वटके नीचे स्थित हैं। द्रौपदादित्यके सम्बन्धमें पुराणोंमें बहुत माहात्म्य वर्णित है—

आदित्यकथामेतां द्रौपद्याराधितस्य वै।
यः श्रोष्यति नरो भक्त्या तस्यैनः क्षयमेष्यति॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९। २४)

(५) मयूखादित्य—प्राचीन कालमें पञ्चगङ्गाके निकट **'गभस्तीश्वर'** शिवलिङ्ग एवं भक्तमङ्गलकारिणी मङ्गला गौरीकी स्थापनाकर उनकी आराधना करते हुए सूर्यने हजारों वर्षतक कठोर तपस्या की। सूर्य स्वरूपतः त्रैलोक्यको तप्त करनेमें समर्थ हैं। तीव्रतम तपस्यासे वे और भी अत्यन्त प्रदीप्त हो उठे। त्रैलोक्यको जलानेमें समर्थ सूर्य-किरणोंसे आकाश और पृथ्वीका अन्तराल भभक उठा। वैमानिकोंने तीव्रतम सूर्य-तेजमें फतिंगा बननेके भयसे आकाशमें गमनागमन त्याग दिया। सूर्यके ऊपर, नीचे, तिरछे—सब ओर किरणें ही दिखायी देती थीं। उनके प्रखरतम तेजसे सारा संसार काँप उठा। सूर्य इस जगत्की आत्मा हैं, ऐसा भगवती श्रुतिका उद्घोष है। वे ही यदि इसे जला डालनेको प्रस्तुत हो गये तो कौन इसकी रक्षा कर सकता है? सूर्य जगदात्मा हैं, जगच्चक्षु हैं। रात्रिमें मृतप्राय जगत्को वे ही नित्य प्रातः-कालमें प्रबुद्ध करते हैं। वे जगत्के सकल व्यापारोंके संचालक हैं। वे ही यदि सर्वविनाशक बन गये तो किसकी शरण ली जाय? इस प्रकार जगत्को व्याकुल देखकर जगत्के परित्राता भगवान् विश्वेश्वर वर देनेके लिये सूर्यके निकट गये। सूर्यभगवान् अत्यन्त निश्चल एवं समाधिमें इस प्रकार निमग्न थे कि उन्हें अपनी आत्माकी भी सुधि नहीं थी। उनकी ऐसी स्थिति देखकर भगवान् शिवको उनकी तपस्याके प्रति महान् आश्चर्य हुआ। तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्होंने सूर्यको पुकारा, पर वे काष्ठवत् निश्चेष्ट रहे। जब भगवान्ने अपने अमृत-वर्षी हाथोंसे सूर्यका स्पर्श किया तब उस दिव्य स्पर्शसे सूर्यने अपनी आँखें खोलीं और उन्हें दण्डवत्-प्रणामकर उनकी स्तुति की।

भगवान् शिवने प्रसन्न होकर कहा—'सूर्य! उठो, सब भक्तोंके क्लेशको दूर करो। तुम मेरे स्वरूप ही हो। तुमने मेरा और गौरीका जो स्तवन किया है, इन दोनों स्तवनोंका पाठ करनेवालोंको सब प्रकारकी सुख-सम्पदा, पुत्र-पौत्रादिकी वृद्धि, शरीरारोग्य आदि प्राप्त होंगे एवं प्रिय-वियोगजनित दुःख कदापि नहीं होंगे। तुम्हारे तपस्या करते समय तुम्हारे मयूख (किरणें) ही दृष्टिगोचर हुए, शरीर नहीं, इसलिये तुम्हारा नाम 'मयूखादित्य' होगा। तुम्हारा पूजन करनेसे मनुष्योंको कोई व्याधि नहीं होगी। रविवारके दिन तुम्हारा दर्शन करनेसे दारिद्र्य सर्वथा मिट जायगा—

त्वदर्चनान्नृणां कश्चिन्न व्याधिः प्रभविष्यति।
भविष्यति न दारिद्र्यं रविवारे त्वदीक्षणात्॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ४९। ९४)

मयूखादित्यका मन्दिर मङ्गलागौरीमें है।

(६) खखोल्कादित्य—दक्ष प्रजापतिकी पुत्रियाँ कद्रू और विनता मुनिवर कश्यपकी पत्नियाँ थीं। एक समय खेल-खेलमें कद्रूने आग्रहपूर्वक विनतासे कहा—'बहन! आकाशमें तुम्हारी अकुण्ठ गति है, इसलिये पराजित होनेपर एक-दूसरेकी दासी बननेका शर्त लगाकर यह बतलाओ कि सूर्यके रथका उच्चैःश्रवा नामक अश्वका रंग सफेद है या चितकबरा? शर्त लगाकर तुम्हें जो रुचे उसे कहो?' विनताने उत्तर दिया—'सफेद है।'

कद्रूने अपने पुत्रोंसे कहा—'बच्चो! तुम सब बालके समान महीन रूप बनाकर उच्चैःश्रवाकी पूँछमें लिपट जाओ, जिससे उसके रोएँ तुम्हारी विषैली साँसोंसे श्याम

रंगके हो जायँ।' माता शाप न दे—इस भयसे बचनेके लिये कुछने उसकी यह खोटी बात मान ली। शुक्ल उच्चैःश्रवाको कर्बुरित (चितकबरा) कर दिया।

विनताकी पीठपर बैठकर कद्रूने आकाशमार्गको लाँघकर सूर्य-मण्डलको देखा। तेज किरणोंके तापके कारण वह व्याकुल हो गयी। आकाशमार्गमें आगे उड़ रही विनतासे कद्रूने कहा—'बहन विनते! मेरी रक्षा करो। सखि! यह अग्निपिण्ड गिरता है'—'**सखि उल्का पतेदेषा**' कहनेकी जगह घबराहटमें उसने '**खखोल्का निपतेदेषा**' कह डाला। विनताने खखोल्क नामके अर्कको स्तुति की। उससे सूर्यताप कुछ कम होनेपर आकाशमार्गसे सूर्यके गुजरनेपर उन्होंने उच्चैःश्रवाको कुछ चितकबरा देखा। कद्रूकी सूर्यतापके प्रभावसे नेत्रज्योति बेकार हो गयी थी। सत्यवादिनी विनताने क्रूरा कद्रूसे कहा—'बहन! तुम्हारी जीत हुई। चन्द्र-किरणोंके तुल्य प्रभावाला यह कर्बुरित (चितकबरा)-सा मालूम पड़ता है।' यथार्थ बात कहती हुई विनता कद्रूके घर गयी। शर्तके अनुसार उसने कद्रूकी दासता स्वीकार कर ली। कद्रू दुष्ट स्वभावकी थी। वह विनताको बहुत परेशान करती थी। स्वयं उसपर सवार होकर इधर-उधर सैर करती और अपने बच्चोंको भी उसपर सवार कराकर दूर-दूरतक सैर कराती थी।

एक दिन गरुडने दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई मलिनमुख और अत्यन्त उदास विनताकी आँखोंमें आँसू देखे। गरुडने कहा—'माँ ! तुम प्रतिदिन सबेरे-सबेरे कहाँ जाती हो और शामको थकी-माँदी कहाँसे आती हो? आँखोंमें आँसू भरकर क्यों सिसकती हो? माँ! जल्दी कहो। कालको भी भयभीत करनेवाले मुझ-जैसे अपने बच्चेके जीवित रहते तुम क्यों दुःखी हो?'

पुत्रकी ऐसी मार्मिक वाणी सुनकर विनताने कद्रूद्वारा की जाती हुई परेशानी और उसकी दासी होनेका अपना सारा वृत्तान्त गरुडको सुना दिया। उक्त वृत्तान्तको सुनकर गरुडने कहा—'माँ! तुम उन दुष्टोंके पास जाकर कहो—जो अत्यन्त दुर्लभ हो और जिसमें तुम्हें अत्यन्त अभिरुचि हो वह वस्तु दासीत्वसे छुटकारेके लिये माँगो, वह मैं तुम्हें देती हूँ।' विनताने जाकर सर्पोंसे उक्त बात कही। सर्प उसे सुनकर बड़े खुश हुए। उन्होंने आपसमें विचारकर विनतासे कहा—'माताके शापसे विमुक्तिके लिये यदि हमें अमृत दोगी तो तुम्हारी इच्छा पूरी होगी, अन्यथा तुम दासी हो ही।' विनताने सर्पोंकी माँग स्वीकार कर ली और कद्रूके पास गयी; उससे विदा लेकर वह शीघ्र गरुडके निकट आयी। गरुडको प्रसन्नचित्त देखकर उससे सारा हाल कहा। गरुडने कहा—'माँ! चिन्ता मत करो, अमृतको लाया हुआ ही जानो।'

अमृत स्वर्गमें बड़े कड़े पहरेमें रखा हुआ था। गरुडने पहरेदारोंको अपने परोंकी वायुसे सूखे पत्तोंकी तरह अत्यन्त दूर फेंक दिया। फिर शिवजीकी स्तुतिसे प्राप्त हुई अपनी सूझ-बूझसे कठिनाईके साथ अमृत प्राप्त कर लिया। अमृतकलश लेकर वे वहाँसे निकले। शोर मचाते हुए देवताओंने भगवान् विष्णुसे निवेदन किया। भगवान्ने त्वराके साथ गरुडका पीछा किया। दोनोंमें खूब युद्ध हुआ। गरुडकी बलवत्तासे भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'वीर! सर्पोंको अमृत दिखाकर माताको दासतासे छुड़ा लो। सर्पोंके साथ ऐसा कौशल करो जिससे वे शीघ्र सुधा-पान न कर सकें एवं अमृत देवताओंको मिल जाय।' 'तथास्तु' कहकर गरुड वहाँसे निकले। उन्होंने माँको दासतासे मुक्तकर सर्पोंके सामने अमृत महान् कमण्डलुमें रख दिया। वे जब अमृत-पानके लिये प्रस्तुत हुए तब गरुडने कहा—'सर्पवृन्द! इस पवित्र सुधाका पान पवित्र होकर करना चाहिये। यदि स्नान किये बिना इसका स्पर्श करोगे तो देवताओंद्वारा सुरक्षित यह सुधा गायब हो जायगी।'

वे सब सर्प अपनी माताके साथ स्नान करनेके लिये गये और इधर भगवान् विष्णुने अमृत-कलश देवताओंको दे दिया।

दासतासे मुक्त हुई विनताने गरुडसे कहा—'वत्स! मैं दासतारूपी पापकी निवृत्तिके लिये पापराशि-विनाशिनी काशी जाऊँगी; इसलिये कि प्राणियोंमें तभीतक नाना जन्मोंके अर्जित पाप बलिष्ठ रहते हैं, जबतक काशीका स्मरण और दर्शन नहीं किया जाता।' माँका कथन सुनकर गरुडने भी नमस्कारपूर्वक माँसे कहा—'माँ! मैं भी शिवार्चित काशीके दर्शनार्थ तुम्हारे साथ चलूँगा।'

दोनों क्षणभरमें मोक्षदायिनी काशी पहुँचे। दोनोंने कठोर तपस्या की। विनताने 'खखोल्क' नामक आदित्यकी स्थापना की और गरुडने शाम्भवलिङ्गकी स्थापना की। उन दोनोंकी उग्र तथा श्रद्धाभक्तियुक्त तपस्यासे शंकर और भास्कर दोनों प्रसन्न हो गये।

शिवजीकी ही अन्य मूर्ति-रूप खखोल्क नामक भास्करकी तपस्या करती हुई विनताको देखकर शिवने ज्ञानपूर्ण पापसंहारी वर प्रदान किया। काशीवासीजनोंके अनेक

जन्मोंके पापोंका क्षय करनेवाले 'विनतादित्य', 'खखोल्क' नामसे काशीमें विराजमान हैं। वे काशीवासीजनोंके विघ्नान्धकारको दूर करनेवाले हैं। उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य सकल पापोंसे मुक्त हो जाता है। खखोल्कादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लेमें कामेश्वर मन्दिरके द्वारपर है। खखोल्कादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्योंके मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं एवं रोगी नीरोग हो जाता है—

काश्यां पैशिङ्गिले तीर्थे खखोल्कस्य विलोकनात्।
नरश्चिन्तितमाप्नोति नीरोगो जायते क्षणात्॥

(७) अरुणादित्य—विनता अपनी सपत्नी (सौत)-को गोदमें बच्चे खेलाते देख स्वयं भी बच्चेको गोदमें खेलानेकी अभिलाषा न त्याग सकी; अतः जो अंडा अभी सेवा जा रहा था—जिसकी अवधि पूरी नहीं हुई थी, उसे उसने फोड़ दिया। विकलाङ्ग शिशु ऊरु (जंघा)-रहित होनेसे 'अनूरु' एवं अवधिसे पूर्व ही अंडा फोड़ देनेसे माँके प्रति क्रोधवश अरुण (लाल) होनेसे 'अरुण' कहलाया। अरुणने काशीमें तपस्या करते हुए सूर्यकी आराधना की। सूर्यने उसपर प्रसन्न हो उसे अनेक वर दिये एवं उसके नामसे स्वयं सूर्य 'अरुणादित्य' हुए।

सूर्यने कहा—'हे अनूरो! तुम त्रैलोक्यके हितार्थ मेरे रथपर सदा स्थित रहो एवं मुझसे पहले अन्धकारका विनाश करो। जो मनुष्य वाराणसीमें विश्वेश्वरके उत्तर तुम्हारे द्वारा स्थापित अरुणादित्य नामक मेरी मूर्तिका अर्चन-पूजन करेंगे, उन्हें न तो दुःख होगा, न दरिद्रता होगी और न पातक लगेगा। वे न विविध प्रकारकी व्याधियोंसे आक्रान्त होंगे और न नाना प्रकारके उपद्रवोंसे पीडित होंगे। अरुणादित्य पाटन दरवाजा मुहल्लेमें त्रिलोचन-मन्दिरमें स्थित हैं। अरुणादित्यके सेवकोंको शोकाग्निजनित दाह भी कदापि नहीं होगा'—

येऽर्चयिष्यन्ति सततमरुणादित्यसंज्ञकम्।
मामत्र तेषां नो दुःखं न दारिद्र्यं न पातकम्॥

(८) वृद्धादित्य—काशीमें प्राचीन कालमें वृद्धहारीत नामके एक महातपस्वी रहते थे। उन्होंने विशालाक्षीदेवीके दक्षिण ओर मीरघाटपर महातपकी समृद्धिके लिये सूर्यनारायणकी एक सुन्दर मूर्ति स्थापित की और उनकी आराधना की। उन्होंने अपनी अतुल भक्तिपूर्ण आराधनासे प्रसन्न हुए सूर्यसे वर माँगा—'भगवन्! वृद्ध पुरुषमें तप करनेकी शक्ति नहीं रहती। यदि मुझे आपके अनुग्रहसे फिर तारुण्य प्राप्त हो जाय तो मैं उत्तम तप कर सकूँगा।' मनुष्यकी सर्वविध अभ्युन्नतिके लिये तप ही परम साधन है। वृद्धहारीतके तपसे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने वृद्ध तपस्वीकी वृद्धावस्था तत्क्षण मिटाकर उन्हें यौवन प्रदान कर दिया। यौवन प्राप्तकर हारीतने महान् उग्र तप किया। वृद्धादित्यके भक्तिभावपूर्ण अर्चन-पूजनसे वार्धक्य, दरिद्रता एवं विविध रोगोंसे मुक्ति पाकर बहुतोंने सिद्धि पायी है—

वृद्धादित्यं समाराध्य वाराणस्यां घटोद्भव।
जरादुर्गतिरोगघ्नं बहवः सिद्धिमागताः॥

(९) केशवादित्य—किसी समय आकाशमें संचरण कर रहे सूर्यनारायणने भगवान् आदिकेशवको बड़े श्रद्धाभावसे शिवलिङ्गका पूजन करते देखा। वे महान् आश्चर्यसे चकित हो आकाशसे उतरकर भगवान् केशवके निकट अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए चुपचाप बैठ गये। भगवान् केशवद्वारा की जा रही शिवपूजा समाप्त होनेपर सूर्यने उन्हें सभक्ति प्रणाम किया। भगवान्ने भी उनका उचित स्वागत-सत्कार कर पासमें बैठा लिया। अवसर पाकर सूर्यने पूछा—'भगवन्! आपसे ही यह जगत् उत्पन्न होता है और आपमें ही लीन हो जाता है। आपका भी कोई पूज्य है—यह जानकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।'

भगवान् केशवने कहा—'भास्कर! सब कारणोंके भी कारण देवाधिदेव महादेव उमापति ही एकमात्र पूज्य हैं। जो त्रिलोचनके सिवा अन्यकी पूजा करता है, वह आँखवाला होनेपर भी अन्धा है। जिन लोगोंने एक बार भी पार्वतीपतिके लिङ्गकी पूजा की, उन्हें विविध दुःखोंसे भरे संसारमें भी दुःख नहीं होगा।'

न लिङ्गाराधनात् पुण्यं त्रिषु लोकेषु चापरम्।
सर्वतीर्थाभिषेकः स्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात्॥

अर्थात् 'शिवलिङ्गकी आराधनासे बढ़कर तीनों लोकोंमें दूसरा पुण्य नहीं है एवं शिवलिङ्गके स्नानके जलके सेवनसे सब तीर्थोंमें स्नानका पुण्य प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णुके मुखसे शिवजीका ऐसा अद्भुत माहात्म्य सुनकर कि हे सूर्य! तुम भी विपुल तेजको बढ़ानेवाली परम लक्ष्मीको प्राप्त करनेके लिये शिवलिङ्गकी पूजा करो—भगवान् सूर्य स्फटिकका लिङ्ग बनाकर उसकी पूजा करने लगे। तभीसे सूर्य आदिकेशवको अपना गुरु मानकर

आदिकेशवके उत्तरमें आज भी स्थित हैं।

काशीमें भक्तजनोंके अज्ञानान्धकारका विनाश करनेवाले वे 'केशवादित्य' पूजा-अर्चा करनेवालोंको सदा मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं—

केशवादित्यमाराध्य वाराणस्यां नरोत्तमः।
परमं ज्ञानमाप्नोति येन निर्वाणभाग्भवेत्॥

मतिमान् श्रेष्ठ पुरुष वाराणसीमें 'केशवादित्य' की आराधनापूर्वक परम ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिससे उन्हें निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त होता है तथा श्रद्धा-भक्तिपूर्वक इनके माहात्म्यके श्रवणसे मनुष्यको पाप स्पर्श नहीं करते और शिवभक्ति प्राप्त होती है।

(१०) विमलादित्य—विमल नामका एक क्षत्रिय था। वह बड़ा सत्कार्यकारी होनेपर भी प्राक्तन कर्मवश कुष्ठरोगसे आक्रान्त हो गया। वह घर-द्वार, पुत्र-कलत्र, धन-दौलत सबका परित्याग कर काशी आया। उसने हरिकेशवन (जङ्गमवाड़ी)-में हरिकेशेश्वरके निकट सूर्यमूर्ति स्थापितकर परम भक्ति-श्रद्धापूर्वक सूर्यकी आराधना की। वह कनैर, अड़हुल, सुन्दर किंशुक, लाल कमल, सुगन्धपूर्ण गुलाब और चम्पाके पुष्पों, चित्र-विचित्र मालाओं, कुंकुम, अगुरु और कर्पूरमिश्रित लाल चन्दन, सुगन्धित धूपों, कपूर और बत्तियोंकी आरार्ति, विविध प्रकारके सुमिष्ट नैवेद्यों, भाँति-भाँतिके फलों, अर्घ्यप्रदान एवं सूर्य-स्तोत्रोंद्वारा सूर्यकी पूजा करता था। इस प्रकार निरन्तर आराधना करनेसे उसपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हुए। उन्होंने वर माँगनेको कहा एवं यह भी कहा कि तुम्हारा कुष्ठरोग तो मिटेगा ही, उसके अतिरिक्त और भी वर माँगो। दण्डवत्-प्रणाम करते हुए विमलने कहा—'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो जो लोग आपके भक्तिनिष्ठ हों, उनके कुलमें कुष्ठ तथा अन्यान्य रोग भी न हों; उन्हें दरिद्रता भी न सतावे; आपके भक्तोंको किसी प्रकारका दुःख न हो, यही वर दें।'

विमलके उक्त वरोंको सुनते हुए सूर्यने 'तथास्तु' कहकर आगे कहा—'विमल! तुमने काशीमें जो यह मेरी मूर्ति स्थापित की है, इसकी संनिधिका मैं कभी त्याग नहीं करूँगा एवं यह मूर्ति तुम्हारे नामसे प्रख्यात होगी। सब व्याधियोंको दूर करनेवाली तथा सकल पापोंका विध्वंस करनेवाली 'विमलादित्य' नामक यह प्रतिमा भक्तोंको सदा वर प्रदान करेगी।'

इत्थं स विमलादित्यो वाराणस्यां शुभप्रदः।
तस्य दर्शनमात्रेण कुष्ठरोगः प्रणश्यति॥

इस प्रकार शुभप्रद (मङ्गलकारी) विमलादित्य काशीमें विराजमान हैं। उनके दर्शनमात्रसे कुष्ठरोग मिट जाता है।

(११) गङ्गादित्य—गङ्गादित्य वाराणसीमें ललिताघाटपर विराजते हैं। केवल उनके दर्शनोंसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। भगीरथके रथका अनुसरण करती हुई भागीरथी जब यहाँ (काशीमें) पधारीं, तो रविने वहींपर स्थित होकर गङ्गाकी स्तुति की। आज भी वह गङ्गाको सम्मुखकर रात-दिन उनकी स्तुति करते हैं। 'गङ्गादित्य'की आराधना करनेवाले नरश्रेष्ठोंकी न दुर्गति होती है और न वे रोगाक्रान्त ही होते हैं। इनका दर्शन पुण्यप्रद है।

(१२) यमादित्य—यमेश्वरसे पश्चिम और आत्मवीरेश्वरसे पूर्व संकटाघाटपर स्थित यमादित्यके दर्शन करनेसे मनुष्योंको यमलोक नहीं देखना पड़ता। भौमवारी चतुर्दशीको यमतीर्थमें स्नानकर यमेश्वर और यमादित्यके दर्शनकर मानव सब पापोंसे छुटकारा पा जाते हैं। प्राचीन कालमें यमराजने यमतीर्थमें कठोर तपस्या करके भक्तोंको सिद्धि प्रदान करनेवाले यमेश्वर और यमादित्यकी स्थापना की थी। यमराजद्वारा स्थापित यमेश्वर और यमादित्यको प्रणाम करनेवाले एवं यमतीर्थमें स्नान करनेवाले पुरुषोंको यामी (नारकीय) यातनाओंका भोगना तो दूर, यमलोकको देखना तक नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त यमतीर्थमें श्राद्ध करके, यमेश्वरका पूजनकर एवं यमादित्यको प्रणामकर मनुष्य पितृऋणसे भी उऋण हो जाता है—

श्राद्धं कृत्वा यमे तीर्थे पूजयित्वा यमेश्वरम्।
यमादित्यं नमस्कृत्य पितृणामनृणो भवेत्॥

ये बारह आदित्य पाप-राशि-विनाशी हैं। इनके दर्शन-पूजन आदिसे मनुष्योंके यामी यातनाएँ नहीं होती हैं। इनके अतिरिक्त काशीमें गुह्यकार्क आदि और भी अनेक आदित्य हैं। सबकी पूजा-अर्चा लाभप्रद है। इनकी पूजा-अर्चा प्रत्येक नर-नारीको करनी चाहिये।

बारह आदित्योंके आविर्भावकी संसूचक कथाको सुनने अथवा दूसरोंको सुनानेवाले मनुष्योंके पास दुर्गति कदापि नहीं आ सकती। **—राधेश्याम खेमका**

भक्त-वत्सल भगवान् विष्णुकी दिव्य लीलाएँ

सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही ब्रह्मवाचक सभी नामोंके वाच्य हैं। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण-निराकाररूपमें है, उसी प्रकार सगुण-साकाररूपमें भी है। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मप्रभुकी ही शक्तिसे व्याप्त है। उन्हींके उन्मेष और निमेषमात्रसे संसारकी उत्पत्ति तथा प्रलय होते हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी तथा निर्गुण-सगुण दोनोंसे विलक्षण भी हैं। वे चराचर जगत्के सर्जक, पालक-पोषक, संहारक, षडैश्वर्य-सम्पन्न, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं-समर्थ होते हुए भी भक्तोंकी पुकार सुनते आये हैं। व्यापक होनेपर भी वे एकदेशमें अवतरित होते हैं। इस प्रकार विचार-दृष्टिसे जो निर्गुण है, भावदृष्टिसे वही सगुण बन जाता है; जो अव्यक्त है, वही साधकों-भक्तोंके लिये व्यक्त भी हो जाता है। **'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्'** उनके सगुण-साकार सौम्य चतुर्भुज-स्वरूपका भक्तजनोंको प्रत्यक्ष दर्शन होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ प्रदान करनेके लिये वे अपने चारों हाथोंमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किये रहते हैं। राम-कृष्णादि उन्हींके अवतार हैं।

भगवान् नारायण श्रीविष्णु अत्यन्त दयालु हैं। वे अकारण ही जीवोंपर करुणा-दृष्टि करते रहते हैं। उनकी शरणमें जानेपर तो परम कल्याण हो ही जाता है। जो भक्त भगवान्के नामोंका कीर्तन, स्मरण, उनका दर्शन, वन्दन, गुणोंका श्रवण और उनका पूजन करता है, वे भगवान् उस भक्तके सभी पाप-तापोंको विनष्ट कर देते हैं।

भगवान् विष्णु अपरिमित गुणोंके आकर हैं तथा मूर्तिमान् सद्गुण हैं, तथापि उनके अनन्त गुणोंमें भक्तवत्सलता-गुण सर्वोपरि है। चतुर्विध भक्त जिस भावनासे उनकी शरण ग्रहण करते हैं, जिस कामनासे उनका भजन करते हैं वे उनकी उस-उस कामना-भावनाको अवश्य पूर्ण करते हैं। ध्रुव, गजराज, द्रौपदी आदि अनेक भक्तोंकी रक्षा उन्होंने की।

भक्तवत्सल भगवान्को भक्तोंका कल्याण करनेमें यदि विलम्ब हो जाय तो भगवान् उसे अपनी भूल मानते हैं और उसके लिये उससे क्षमा-याचना करते हैं। उसकी रक्षा करते हैं; क्योंकि उनका नाम लेनेपर भी भक्तको यातनाएँ सहनी पड़ी थीं। धन्य है प्रभुकी भक्तवत्सलता।

भक्त प्रह्लादका चरित्र भगवान् विष्णुकी भक्तवत्सलताका अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता है। उनके मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, श्रीराम, कृष्णादि अवतारोंमें अनेक आख्यान आये हैं। जिनसे स्पष्ट होता है कि भगवान् जीवोंके कल्याणके लिये ही अनेक रूप धारण करते हैं।

वेदोंमें अनेक प्रकारसे इन्हीं भगवान् विष्णुकी अनन्त महिमाका गान किया गया है—

'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।'

(ऋक्० ७। ९९। २)

'हे विष्णुदेव! कोई ऐसा प्राणी न तो उत्पन्न हुआ है और न होनेवाला है, जिसने आपकी महिमाका अन्त पाया हो।'

वैदिक पुरुष-सूक्तमें जिस परमात्मतत्त्वका निरूपण किया गया है, वह विष्णुतत्त्व ही है। श्रुतिसार-सर्वस्व, भक्तवाञ्छाकल्पद्रुम भगवान् श्रीहरिकी महिमाका सभी शास्त्रोंमें गान हुआ है—

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥

(हरिवंशपु० ३। १३२। ९५)

इसीलिये भगवान् नारायण ही परम ध्येय हैं, परम

उपास्य हैं और ये ही समस्त शास्त्रोंके सारतत्त्व भी हैं।

भगवान् विष्णुके स्वरूप-ध्यानकी विलक्षणता

जो शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी तथा किरीट और कुण्डलोंसे विभूषित, पीताम्बरसे सुशोभित, सुन्दर कमलोंके समान नेत्रोंवाले, वनमाला तथा कौस्तुभमणिको धारण करनेवाले, श्री एवं भूदेवियोंके साथ नित्य रहनेवाले शेषशायी नारायणका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।

यस्तं विश्वमनाद्यन्तमाद्यं स्वात्मनि संस्थितम्।
सर्वज्ञममलं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते॥

(नरसिंहपु० १६। १७)

'जो सदा उन विश्वरूप, आदि-अन्तसे रहित, सबके आदिकारण, स्वरूपनिष्ठ, अमल एवं सर्वज्ञ भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह मुक्त हो जाता है।'

यद्यपि भगवान्‌की रूप-माधुरी और उनका वैभव अपार है—वर्णनातीत है, तथापि वाल्मीकि, व्यासादि महर्षियोंने जो उनकी रूप-माधुरीका आस्वाद कराया है, वह अत्यन्त विलक्षण है। श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदद्वारा ध्रुवके लिये निरूपित भगवत्स्वरूप बड़ा ही सुन्दर है—

विष्णुभगवान्‌के मुखारविन्दपर प्रसन्नता झलक रही है। उनके वदन और नयनोंसे आनन्द छलक रहा है। उनकी नासिका मनोरम है, भ्रू-युगल कमनीय हैं, कपोलयुगल रुचिर हैं। वे तो कामदेवादिसे भी अधिक सुन्दर हैं। वयमें वे तरुण हैं, नित्यकिशोर जो ठहरे। उनके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग रमणीय हैं। होंठ उनके गुलाबी हैं और अपाङ्गों (नेत्रोंके कोनों)-में किंचित् अरुण आभा दृष्टिगत हो रही है। प्रपन्नजनके लिये परम आश्रय हैं। वे 'नृम्ण' अर्थात् स्वजनोंके परमोत्तम धन हैं, चिन्तामणिके समान समस्त अभिलाषाओंके पूरक हैं। शरणागतोंके रक्षक एवं करुणा-वरुणालय हैं। उनके वक्ष:स्थलके दक्षिण भागमें श्रीवत्स अर्थात् भृगु-पदका चिह्न सुशोभित है। वे घनश्याम हैं तथा समस्त प्रपञ्चमें अपनी अतर्क्य-शक्तिके प्रभावसे व्याप्त हैं। गलेमें वे आजानुलम्बिनी वनमाला धारण किये हुए हैं, जिसमें समस्त ऋतुओंके सुन्दर सुगन्धित पुष्प ग्रथित हैं और मध्यमें कदम्ब-कुसुम भी लगा हुआ है। उनकी चार भुजाएँ हैं और वे अपने चारों कर-कमलोंमें क्रमश: पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा और एक लीला-पद्म धारण किये हुए हैं। उनके मस्तकके ऊपर किरीट-मुकुटके रत्नोंकी किरणावली छिटक रही है और कानोंमें मकराकृत कुण्डल चमक रहे हैं। बाहुओंमें केयूर और मणिबन्धों (कलाइयों)-में रत्न-खचित कङ्कण विराज रहे हैं। ग्रीवा पद्मराग-मणिमय कौस्तुभ नामक रत्नकी भी शोभाको बढ़ा रही है। कोमल-मञ्जुल पीताम्बर धारण किये हुए हैं उत्तरीय भी पीताम्बरका ही है। कटितटपर कलित काञ्चीकी छटा अतिशय कमनीय है। चरण-कमलोंमें सुवर्णमय मणिजटित नूपुर मुखरित हो रहे हैं। कहाँतक कहें, त्रिलोकीमें जितने भी दर्शनीय हैं, उन सबसे अधिक आकर्षक हैं वे। इतने आकर्षक होनेपर भी उनमें बड़ी शान्ति है। अतएव उन्हें एक बार देख लेनेपर दर्शकके मन और नयनोंमें पुन:-पुन: उनका दर्शन करते रहनेकी प्यास-सी बनी रहती है। जो उनका आराधन करते हैं, उनके हृदयकमलकी कर्णिकापर वे (विष्णुभगवान्) अपनी नखमणियोंसे सुशोभित चरण-कमलोंकी स्थापना करके स्वयं भी उनके अन्त:करणमें निवास करने लगते हैं। वे जब कृपा करके भक्तकी ओर निहारते हैं, तब उनके अधरपर स्मित और नयनोंमें अनुराग भरा रहता है।

इसी प्रकार भगवान्‌की एक मनोरम झाँकीके दिव्य दर्शन उस समय अर्जुनको होते हैं, जब श्रीकृष्ण उन्हें एक मृत ब्राह्मणके उद्धार करनेके लिये ले चलते हैं—

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं
महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम्।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम्॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डल-
प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम्।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८९। ५५-५६)

'उन्होंने सजल जलदकी-सी नील-कान्ति, सुन्दर पीत-वसन, प्रसन्न-वदन, मनमोहक विशाल नेत्र, विशिष्ट मणियोंसे जटित किरीट-कुण्डलोंकी प्रभासे सुशोभित सहस्रों घुँघराली अलकें, सुदीर्घ सुन्दर आठ भुजाएँ, शुभ्र कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्सकी शोभासे युक्त, वनमाला-विभूषित, महाप्रभावशाली, विभुस्वरूप पुरुषोत्तमोत्तम श्रीमन्नारायणको शेषनागकी शय्यापर सुखपूर्वक आसीन देखा।'

ऐसे करुणावरुणालय श्रीहरिकी अपने भक्तों-आराधकोंपर परम अनुकम्पा रहती है। भगवान्‌का नाम-स्मरणमात्र ही सब प्रकारके पापोंका नाश कर देता है। इतिहास-पुराणोंमें इस विषयमें अनेक आख्यान प्राप्त होते हैं। यहाँपर दो-एक आख्यान उदाहरणके लिये संक्षेपमें दिये जा रहे हैं—

भगवान्‌द्वारा हरि-रूपमें गजेन्द्रका उद्धार

क्षीरोदधिके मध्यमें विशाल द्वीप है। उसपर भगवान् वरुणका 'ऋतुमत्' नामक क्रीडाकानन है। काननमें यूथपति गजेन्द्र अपनी हथिनियों, कलभों तथा दूसरे गजोंके साथ स्वेच्छापूर्वक घूमते रहते थे। महर्षि अगस्त्यको अभ्युत्थान न देनेसे राजा सुद्युम्न शप्त होकर इस कुञ्जर-योनिमें आये थे। उनके अमित पराक्रमके सम्मुख सिंहादि तुच्छ थे। वे उनके गण्डमण्डलकी मदधाराकी गन्धसे ही दूर भागते।

ग्रीष्म ऋतु, मध्याह्नकाल, गजेन्द्रको प्यास लगी। सूँड़ उठाकर सूँघा। जलकी गन्ध मिली। मार्गके कदली-काननको कुचलते अपने यूथके साथ वे सरोवरतक पहुँचे। कमल-पुष्पोंसे भरा स्वच्छ सरोवर गजोंकी क्रीडासे क्षुब्ध हो गया। कलभ सूँड़ोंसे जल उछाल रहे थे। गजेन्द्र उन्हें स्नान कराते, अपनी सूँड़से जल पिलाते और स्वयं उनके द्वारा स्नात होते। सारा परिवार स्नेहसे उनका सत्कार कर रहा था।

पता नहीं कहाँसे एक मगरने गजेन्द्रका चरण पकड़ लिया। उन्होंने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। बल लगाया। दूसरे हाथियोंने उन्हें अपनी सूँड़से सहायता दी, हथिनियाँ कभी जलमें, कभी बाहर दौड़ने लगीं। कोई सफल न हुआ। गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। उनका भी पराक्रम कम नहीं था। गजेन्द्र बाहर खींचना चाहते और ग्राह भीतर। जल कीचड़ होने लगा। कमल दल-कीचड़से मलिन हो गये। जलजीव व्याकुल हो गये। सहस्र वर्षोंतक यह संघर्ष चलता रहा।

गजेन्द्रका बल थकित हो गया। जलमें जलजीवसे कबतक वे युद्ध करें। अब डूब जायँगे—अब और नहीं टिका जा सकता। शिथिल शरीर खिंचा जा रहा था। सूँड़से एक कमल तोड़कर ऊपर उठाया और पुकारकी 'विश्वेश्वर! जनार्दन!! नारायण!!!'

भगवान्‌ने हरिमेधस ऋषिकी पत्नी हरिणीमें अवतार धारण किया था। वे गरुडारूढ प्रभु दौड़े। गजेन्द्र उन्हें पुकार रहे थे, ब्रह्मादि देव गजेन्द्रके साथ उनका स्तवन कर रहे थे। चक्र चमका और ग्राह अपने शरीरसे छूटकर पुनः गन्धर्वपद पा गया। गजेन्द्रको प्रभुने अपने हाथों उठाया। वे प्रभुका स्पर्श प्राप्तकर उनके दिव्य नित्य पार्षद हो गये।

भक्तश्रेष्ठ ध्रुवके लिये भगवान्‌का अवतार

वह ध्रुव जो समस्त मार्ग-निर्देशकोंका मार्गदर्शक है, वह ध्रुव जो चल-नक्षत्रोंमें स्थिर है, वह ध्रुव जो शुभ कार्योंमें स्मरण किया जाता है, वह ध्रुव जिसकी समस्त नक्षत्रमण्डल परिक्रमा करता है, भगवान्‌के उसी अविचल धामके अधिष्ठाताकी बात है—

मनुके पुत्र महाराज उत्तानपाद अपनी छोटी रानी सुरुचिपर अधिक आकृष्ट थे। बड़ी रानी सुनीतिके पुत्र ध्रुव पिताकी गोदमें बैठ गये थे। पतिप्रेम-गर्विता सुरुचिने बालकको गोदसे बलात् उतार दिया। 'तुझे पिताकी गोद या पिताका सिंहासन चाहिये तो भगवान्‌की आराधना करके मेरे उदरसे उत्पन्न हो। इनपर मेरे पुत्र उत्तमका अधिकार है।'

'तुम्हारी विमाताने ठीक ही कहा है। भगवान् ही तुम्हें पिताका सिंहासन या उससे भी श्रेष्ठ पद देनेमें समर्थ हैं!' सुनीतिके नेत्र स्वयं क्षोभसे भर आये थे। उनका प्राणप्रिय पुत्र तिरस्कारके कारण हिचकियाँ ले रहा था। वे ठसे और कैसे आश्वस्त करें।

'मैं वह पद चाहता हूँ, जिसे मेरे पिता, पितामह या और किसीने भी न पाया हो!' पाँच वर्षका बालक ध्रुव घरसे माताके वचनोंपर विश्वास करके वनको चल पड़ा था। मार्गमें देवर्षि नारदने उसे समझाया। लौटानेका प्रयत्न किया। संतोषकी शिक्षा दी। जब कोई बात ध्रुवके हृदयपर न बैठ

सकी, तब वे द्रवित हुए। द्वादशाक्षरकी दीक्षा देकर मधुवन (मथुरा)-में यमुनातटपर जानेका आदेश दे दिया।

ध्रुव बालक सही, पर वह आदियुगकी निष्ठा और विश्वास था। पहले महीने कपित्थ (कैथ) और बेर, दूसरे महीने सूखे पत्ते, तीसरे महीने जल, चौथे महीने केवल वायु—ये सब भी नित्य नहीं, इनको ग्रहण करनेकी अवधि भी बड़ी होती गयी। पाँचवें महीने तो वह बालक एक चरणसे खड़ा हो गया। श्वास लेना बंद कर दिया। मन्त्रके अधिष्ठाता भगवान् वासुदेवमें उसका चित्त एकाग्र हो गया।

देवता विघ्न पहुँचाते हैं उसे, जो बाहर देखता है। वर्षा, ग्रीष्म, वायु, शीत, सर्प, व्याघ्र या वसन्त और काम उसका क्या करें, जो श्वासतक नहीं लेता। जिसे शरीरका पता ही नहीं। देवताओंकी कठिनाई बढ़ती जा रही थी। ध्रुव जगदाधारमें एकाग्र होकर श्वासरोध किये हुए थे। देवताओंका श्वासरोध स्वत: हो रहा था। वे बहुत पीड़ा पा रहे थे। उन्होंने प्रभुसे प्रार्थना की उस बच्चेको तपसे निवृत्त करनेकी।

हृदयकी वह ज्योति अन्तर्हित हो गयी। व्याकुल ध्रुवने नेत्र खोले और चकित देखते रहे। वही सुनील, सुमधुर, चतुर्भुज, वनमाली, कमललोचन, रत्नकिरीटी बाहर प्रत्यक्ष खड़े थे। ध्रुव अज्ञान बालक—उसने हाथ जोड़े। सुना था कि भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये। क्या कहे? क्या करे? वह तो कुछ जानता नहीं। उन सर्वज्ञने मन्दस्मितके साथ अपना हाथ बढ़ाया। करस्थ श्रुतिरूप शंखसे बालकके कपोलका स्पर्श कर दिया। बालकके मानसमें हंसवाहिनी जाग्रत् हो गयीं।

ध्रुवको अविचल पदका वरदान मिला था; पर वे प्रसन्न नहीं थे। सर्वेश्वरको प्राप्तकर फिर याचना क्या? उनको ही सदाके लिये प्राप्त किया जा सकता था। महाराज उत्तानपाद तो जबसे ध्रुव वन गये, निरन्तर उन्हींका चिन्तन करते थे। अपनी भूल उनके हृदयका शूल बन गयी थी। उन्होंने ध्रुवका स्वागत किया। विमाता इस प्रकार मिलीं, जैसे ध्रुव उनके ही पुत्र हों। जिसपर विश्वेश प्रसन्न हों, उसपर सभी प्रसन्न रहते हैं। पिताने ध्रुवको सिंहासनपर अभिषिक्त किया और स्वयं वानप्रस्थ स्वीकार करके तप करने चले गये।

ध्रुव नरेश हुए। उनके छोटे भाई उत्तम आखेट-हेतु वनमें गये थे। कुबेरके किसी अनुचरने उनको मार डाला। उत्तमकी माता पुत्रशोकसे वनमें गयीं और दावाग्निमें जल गयीं। ध्रुवने कुबेरपर भ्रातृवधसे क्रुद्ध होकर चढ़ाई की। बहुत-से यक्ष मारे गये। पितामह मनुने ध्रुवको शान्त किया। क्रोध शान्त होनेपर कुबेरने दर्शन देकर आश्वस्त किया, वरदान दिया।

संसारमें प्रारब्ध शेष हो गया। दिव्य विमान आया ध्रुवको लेने। विप्रोंके मङ्गलपाठके मध्य ध्रुव विमानारोहण करने जा रहे थे। 'मर्त्यलोकके प्रत्येक प्राणीका मैं स्पर्श करता हूँ।' मृत्युने प्रार्थना की। प्रार्थनासे अधिककी शक्ति थी नहीं। ध्रुव हँसे, 'तुम्हें मेरा स्पर्श प्राप्त हो!' मृत्युके मस्तकपर पैर रखकर विमानमें बैठ गये वे। मार्गमें अपनी माताका उन्हें स्मरण हुआ। भला, कहीं ऐसे पुत्रकी माता मर्त्यलोकमें रहेंगी। वे ध्रुवसे आगे जा रही थीं।

वह अविचल धाम ध्रुवको प्राप्त हुआ। ध्रुव वहाँ अब भी भगवान्‌की उपासना करते हैं। उत्तर दिशामें एक ही स्थानपर स्थित वही ज्योतिर्मय ध्रुव-धाम है, जो रात्रिमें निर्मल गगनमें दीख पड़ता है।

अजामिलपर कृपा

अजामिल एक श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुआ था। वह अनेक अलौकिक गुणोंसे सम्पन्न था। शील, सदाचार, विनम्रता, सत्यता, पवित्रता—ये सभी गुण उसमें सहज ही विद्यमान थे। उसने शास्त्रोंका साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया था। गुरुजन एवं अतिथियोंकी सेवामें वह कभी त्रुटि नहीं करता था। उसकी वाणीमें संयम था। गुणज्ञ होकर भी अहंकाररहित होना बहुत कठिन है, परंतु उसे तो अहंकार छू भी नहीं पाया था।

उसके पिता नित्य यज्ञ किया करते थे। उनके लिये वनसे फल-फूल, समिधा, कुश आदि हवन-पूजनकी समग्र सामग्री वही लाता था। एक दिन वह यज्ञ-सामग्री लेकर वनसे लौट रहा था। संयोगवश उसकी दृष्टि एक युवकपर पड़ी जो शृङ्गारचेष्टाओंके द्वारा एक वेश्याके साथ आनन्दित हो रहा था। उन दोनोंको इस उन्मत्तावस्थामें देखकर अजामिलने अपने मनको बहुत रोकना चाहा, परंतु कुसंग उसपर अपना प्रबल प्रभाव डाल चुका था। वह बार-बार उस दृश्यको देख-देखकर आनन्दित होने लगा। सच है,

कुसंगने किसका विनाश नहीं किया!

अजामिल मोहाच्छन्न हो चुका था, उसका विवेक कुण्ठित हो गया। वह उस वेश्याके पास जा पहुँचा। अब तो वेश्याकी प्रसन्नता ही अजामिलकी प्रसन्नता थी। वह प्रसन्न रहे, इसके लिये अजामिल अपना घर-बार लुटाने लगा। उस कुलटाकी कुचेष्टाओंसे प्रभावित हो वह अपनी विवाहिता पत्नीको भी भूल गया एवं उसका परित्याग करके उस वेश्याके घर ही रहने लगा। अब वेश्याके पूरे कुटुम्बके भरण-पोषणका सारा भार अजामिलपर ही था। कुसंगके दुष्परिणामस्वरूप सदाचारी एवं शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मपालक अजामिल आज एक कुलटाके कुटुम्ब-पालनके लिये न्यायसे-अन्यायसे जिस किसी प्रकार भी धन अर्जित करके लाता। बहुत दिनोंतक अपवित्र अन्न खाने तथा उस कुलटाका संसर्ग करनेसे अजामिलकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अब वह धन संचित करनेके लिये कभी यात्रियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जुएमें छलसे हरा देता, कभी किसीका धन चुरा लेता। दूसरे प्राणियोंको सतानेमें अब उसे तनिक भी हिचक नहीं थी। इसी प्रकार पाप कमाते-कमाते अजामिल बूढ़ा हो गया। उस वेश्यासे उसकी दस संतानें हुईं। उसके सबसे छोटे पुत्रका नाम था 'नारायण'। वृद्ध अजामिल उसे बहुत प्यार करता था। अब वह अधिक समय उस बच्चेको खिलानेमें ही लगाता था। उसके प्रति उसका प्रगाढ़ ममत्व था।

मृत्यु किसको छोड़ती है? अजामिलकी मृत्युका समय भी आया। हाथोंमें फंदे लिये डरावने यमदूत उसे लेने पहुँच गये। उन भयंकर यमदूतोंको देखकर उसने उच्च स्वरसे अपने प्रिय पुत्र नारायणको पुकारा—'नारायण! नारायण!!' उसके प्राण प्रयाण कर रहे थे।

'नारायण' नामका उच्चारण सुनते ही भगवान् विष्णुके पार्षद तत्काल अजामिलके पास पहुँच गये और उन्होंने बलपूर्वक अजामिलको उन यमदूतोंके पाशसे मुक्त करा दिया। यमदूतोंने बहुत कुछ कहा, परंतु कृपासिन्धुकी कृपा अजामिलपर मानो बरस गयी थी। विष्णुपार्षदोंने कहा—

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम्॥

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः॥

(श्रीमद्भा० ६। २। ८, १८)

'जिस समय इसने 'ना-रा-य-ण'— इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय (केवल उतनेसे ही) इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। यमदूतो! जैसे जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानेमें भगवान्के नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं।'

भगवत्कृपा-प्राप्तिके लिये भगवन्नाम एक अमोघ साधन है। पापी दुरात्मा अजामिलने 'नारायण' नामके उच्चारणमात्रसे भगवत्कृपाका अनुभवकर कालान्तरमें विष्णुलोक प्राप्त किया।

भक्त भद्रतनु और उनके गुरु दान्त

प्राचीन समयमें पुरुषोत्तमपुरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था भद्रतनु। वह देखनेमें सुन्दर था और पवित्र कुलमें उत्पन्न हुआ था। माता-पिता उसे बचपनमें ही अनाथ करके परलोक चल बसे थे। कोई संरक्षक न होनेसे भद्रतनु युवावस्थामें कुसंगमें पड़ गया। भद्रतनु कुसंगके प्रभावसे स्वाध्याय, संयम, नित्यकर्म आदिसे विमुख हो गया। सत्य, अतिथि-सत्कार एवं उपासनादि सब उसके छूट गये। वह धर्मका निन्दक हो गया, सदा परधन तथा परस्त्रीको पानेकी घातमें रहने लगा। भोगासक्त और काम-क्रोध-परायण हो गया। जुआ, चोरी, मदिरापान प्रभृति दोष उसमें आ गये।

नगरके पास ही सुमध्या नामकी एक सुन्दरी वेश्या रहती थी। बुरे संगमें पड़कर उसका भी पतन हो गया था, किंतु इस वृत्तिसे उसे बहुत घृणा थी। वह अपनी दशापर सदा दुखी रहती, पछताती। उसके हृदयमें धर्मका भय था, परलोकपर विश्वास था, ईश्वरपर आस्था थी। अपने उद्धारके लिये वह भगवान्से सदा प्रार्थना करती रहती थी।

भद्रतनुका सुमध्यापर वासनामय प्रेम था; पर सुमध्या उससे सचमुच प्रेम करती थी। उसने भद्रतनुको अनेक बार समझाना चाहा। जुआ-शराब आदिके भयंकर परिणाम बतलाकर उसे दोषमुक्त करनेके प्रयत्नमें वह लगी रहती थी।

इस ब्राह्मण-युवकके पतनसे उसे बड़ा दुःख होता था।

एक दिन भद्रतनुके पिताका श्राद्ध-दिवस आया। श्रद्धा न होनेपर भी लोक-निन्दाके भयसे उसने श्राद्धकर्म किया, किंतु उसका चित्त सुमध्यामें लगा रहा। श्राद्धकर्मसे छुटकारा पाकर वह वेश्याके यहाँ पहुँच गया। सुमध्या ब्राह्मण-कुमारकी मूर्खतापर हँसने लगी। उसे भद्रतनुपर क्रोध आ गया। उसने कहा—'अरे ब्राह्मण! धिक्कार है तुझे। तेरे-जैसे

पुत्रके होनेसे अच्छा था कि तेरे पिता पुत्रहीन ही रहते। **आज तेरे पिताका श्राद्ध-दिन है और तू निर्लज्ज होकर एक वेश्याके यहाँ आया है। मेरे इस शरीरमें हड्डी, मांस, रक्त, मज्जा, मेद, मल, मूत्र आदिके अतिरिक्त और क्या है? ऐसे घृणित शरीरमें तूने क्यों सौन्दर्य मान लिया है? मैं तो वेश्या हूँ, अधम हूँ, मुझपर आसक्त होनेमें तो तेरी अधोगति ही होनी है। यही आसक्ति यदि तेरी भगवान्‌में होती तो पता नहीं अबतक तू कितनी ऊँची स्थितिको पा लेता। जीवनका क्या ठिकाना है, मृत्यु तो सिरपर ही खड़ी है। कच्चे घड़ेके समान काल कभी भी जीवनको नष्ट कर देगा। तू ऐसे अल्पजीवनमें क्यों पापमें लगा है? विचार कर। मनको मुझसे हटाकर** भगवान्‌में लगा। भगवान् बड़े दयालु हैं, वे तुझे **अवश्य अपना लेंगे।'**

सुमध्याके वचनोंका भद्रतनुपर बहुत प्रभाव पड़ा। वह **सोचने लगा—'सचमुच मैं कितना मूर्ख हूँ, एक वेश्यामें जितना ज्ञान है, उतना भी मुझ दुरात्मामें नहीं है।** ब्राह्मणकुलमें जन्म लेकर भी मैं पाप करनेमें ही लगा रहा। जब मृत्यु निश्चित है और मृत्युके पश्चात् पापका दण्ड भोगनेके लिये यमराजके पास जाना भी निश्चित ही है, तब क्यों मैं और पाप करूँ? मैंने तो जप-तप, अध्ययन, पूजन, हवन-तर्पण आदि कोई सत्कर्म किये नहीं। मुझसे भगवान्‌की उपासना भी नहीं हुई, अब मेरी क्या गति होगी? कैसे मेरा पापोंसे छुटकारा होगा।' इस प्रकार पश्चात्ताप करता हुआ वह सुमध्याको पूज्यभावसे प्रणाम करके लौट आया। सुमध्याने भी उसी समयसे वेश्यावृत्ति छोड़ दी और वह भगवान्‌के भजनमें लग गयी।

भद्रतनु पश्चात्ताप करता हुआ मार्कण्डेय मुनिके समीप गया। वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। मार्कण्डेयजीने भद्रतनुकी बात सुनकर उससे बड़े स्नेहसे कहा—'तुम्हारी बुद्धि पापसे अलग हुई, यह तुमपर भगवान्‌की कृपा है। जो पहले पापी रहा हो, पर पापप्रवृत्ति छोड़कर भगवान्‌के भजनका निश्चय कर ले, तो वह भगवान्‌का प्रिय पात्र है, भगवान् ही उसे पापसे दूर होनेकी सद्बुद्धि देते हैं। तुमने अनेक जन्मोंमें भगवान्‌की पूजा की है, अतः तुम्हारा कल्याण शीघ्र होगा। मैं इस समय एक अनुष्ठानमें लगा हूँ, अतः तुम दान्तमुनिके पास जाओ। वे सर्वज्ञ महात्मा तुम्हें उपदेश करेंगे।'

भद्रतनु वहाँसे दान्तमुनिके आश्रमपर गया। वहाँ उसने मुनिके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रार्थना की—'महात्मन्! मैं जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी महापापी हूँ। मैंने सदा पाप ही किये हैं। आप सर्वज्ञ हैं, दयालु हैं। कृपया मुझ पापीके लिये संसार-बन्धनसे छूटनेका उपदेश कीजिये।'

दान्तमुनिने कृपापूर्ण स्वरमें कहा—'भाई! भगवान्‌की कृपासे ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हुई है। मैं तुम्हें वह उपाय बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य सहज ही भव-बन्धनसे छूट जाता है।' तुम पाखण्ड तथा काम, क्रोध, लोभादिका पूर्णतः परित्यागकर निरन्तर स्थिरचित्त हो '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करो। इसके फलस्वरूप तुम्हें शीघ्र ही भगवद्दर्शन होगे।

दान्तमुनिसे उपदिष्ट होकर भद्रतनु एकान्तमें जाकर मन लगाकर श्रद्धापूर्वक निष्ठासे भगवान्‌का भजन तथा मन्त्र-जप करने लगा। भगवान्‌की अनन्य भक्तिसे भद्रतनुका हृदय शुद्ध

हो गया। अतः उसपर कृपा करनेके लिये उसके सम्मुख दयामय प्रभु श्रीविष्णु प्रकट हो गये।

भगवान्‌का दर्शन करके भद्रतनुको बड़ा आनन्द हुआ, वह गद्गदस्वरसे विविध भावापन्नरूपमें स्तुति करने लगा तथा भगवान्‌की महिमाका बहुत देरतक गुणानुवाद करता रहा और अन्ततक भगवान्‌की कृपाका अनुभव करके भद्रतनु विह्वल होकर उनके चरणोंमें पड़ा रहा। भगवान्‌ने उसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। भगवान्‌का दर्शन करते ही भद्रतनुकी मुक्तिकी इच्छा दूर हो गयी थी। वह तो भक्तिका भूखा हो उठा था। उसने भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया, फिर भी मैं आपसे एक वरदान माँगता हूँ। आपके चरणोंमें जन्म-जन्म मेरा अनुराग अविचल रहे।'

जन्मजन्मनि मे भक्तिस्त्वय्यस्तु सुदृढा प्रभो।

(पद्मपुराण, क्रियायोग० १७। ९१)

भगवान्‌ने उसे 'सख्य-भक्ति' प्रदान की। उसके अनुरोधपर उसके गुरु दान्तमुनिको भी भगवान्‌ने दर्शन दिये। दान्तमुनिने भी भगवान्‌से भक्तिका ही वरदान माँगा। गुरु-शिष्य दोनोंको कृतार्थ करके भगवान् अन्तर्धान हो गये। भक्तिमय जीवन बिताकर अन्तमें गुरु दान्तमुनि और शिष्य भद्रतनु दोनों ही भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हुए।

भगवान्‌के सगुण स्वरूप और अवतार-लीलाएँ

जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयका अहेतु-हेतु वह परमात्मा विश्व-ब्रह्माण्डके कल्याणार्थ लीलापूर्वक अनेक भावमय नित्य आनन्दघन रूपोंको धारणकर नित्य लीला करता है। उसके इन सगुण, साकार, चिन्मय रूपोंके ध्यान-स्मरण, नाम-जप, लीला-चिन्तनसे मानव-हृदय शुद्ध हो जाता है। मनुष्य इन रूपोंमेंसे किसीको नैष्ठिकरूपसे हृदयमें विराजमान करके संसार-सागरसे पार हो जाता है।

सगुण-साकार प्रभुके ये रूप नित्य सर्वेश्वर तथा अवताररूप दोनों प्रकारके हैं। सृष्टि, स्थिति, प्रलयके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपसे वे उपासित होते हैं। उनके साथ उनकी अभिन्न शक्तियाँ होती ही हैं। वे ही सूर्य और गणेश-रूपसे भक्तोंद्वारा सेवित होते हैं। पञ्चदेवोपासनामें गणेश, शिव, शक्ति, सूर्य और विष्णु उन्हींके रूप हैं।

जगत्‌में धर्मकी स्थापना, ज्ञानके संरक्षण, भक्तोंके परित्राण तथा आततायी असुरोंके दलनके लिये एवं प्रेमी भक्तोंकी प्रेमोत्कण्ठा पूर्ण करनेके लिये वे प्रभु बार-बार अवतीर्ण होते हैं। उनके ये अवताररूप दिव्य, सच्चिदानन्दघन हैं और उनकी ये अवतार-लीलाएँ परम मङ्गलमयी हैं।

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।

सत्त्वमूर्ति भगवान्‌के अवतारोंकी कोई संख्या नहीं। १-मत्स्य, २-कच्छप, ३-वाराह, ४-नृसिंह, ५-वामन, ६-परशुराम, ७-श्रीराम, ८-बलराम, ९-बुद्ध और १०-कल्कि—इन दशावतारोंको शास्त्रोंने युगावतारोंके रूप माना है। इनके अतिरिक्त ११-श्रीकृष्णका अवतार पूर्णावतार कहा जाता है। उसका कोई निश्चित समय नहीं। पिछले अट्ठाईसवें द्वापरमें यह अवतार हुआ था। १२-नर-नारायण, १३-सनकादि, १४-कपिल, १५-दत्तात्रेय, १६-यज्ञ, १७-ऋषभ, १८-हंस, १९-धन्वन्तरि, २०-हयग्रीव, २१-व्यास—भगवान्‌के ये अवतार विश्वमें ज्ञान-परम्पराकी रक्षा, प्रसार तथा उसके आदर्श-स्थापनके लिये हुए। २२-पृथुरूपमें भगवान् लोक-व्यवस्थाके सञ्चालनके लिये पधारे। २३-ध्रुवके लिये और २४-गजेन्द्रके लिये भगवान्‌का अवतार हुआ। इनके अतिरिक्त असुरोंको मोहित करनेके लिये भगवान्‌ने मोहिनीरूप धारण किया था।

हिंदू-शास्त्रोंने ही इस सगुण तत्त्वके रहस्यको समझा और स्वीकार किया। मूर्तिपूजा विश्वके प्रत्येक भागमें, प्रत्येक प्राचीन जातिमें प्रचलित थी और मानव-स्वभाव मूर्तिपूजक होनेसे किसी-न-किसी रूपमें मनुष्यमात्रमें उसकी मान्यता रहेगी ही; परंतु मनुष्यको यह स्वभाव उस दयामयने क्यों प्रदान किया? इसका उत्तर श्रुति एवं महर्षि ही दे सके। वह स्वयं सगुण-साकार है। उसके दिव्यरूपमें हमारी अनुरक्ति हो तो हम समस्त कष्टोंसे परित्राण पा जायँ। अवतार-रहस्य तो पुराणोंमें भरे पड़े हैं। यहाँ केवल भगवान्‌के नित्य दिव्य रूपों एवं चरितोंका अत्यन्त संक्षिप्त

स्मरण मात्र करना है।

[१]

श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनियोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एवं नित्य-विरक्त थे। इन नित्य ब्रह्मचारियोंसे ब्रह्माजीके सृष्टि-विस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओंके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानस-पुत्र सनकादिके मनमें कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्राय: आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्‌के श्रेष्ठ वैकुण्ठधाममें पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुजरूपमें रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओंकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढ़ीके आगे बढ़ ही रहे थे कि भगवान्‌के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोंकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमें व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हें दैत्यकुलमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एवं अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका संवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्‌की अद्भुत, अलौकिक एवं दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शनकर सर्वथा विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। वे अपलक नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होंने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं
तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम
योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः॥

(श्रीमद्भा० ३। १५। ५०)

'विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है; विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणोंकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्‌ने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आप लोगोंका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हें दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एवं करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोंने श्रीभगवान्‌की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—

'सर्वेश्वर! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें, वैसा दण्ड दें, अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमें ही उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' श्रीभगवान्‌ने उन्हें संतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्गसुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा करके उनका गुणगान करते हुए वे चारों कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्त्र हुए।

उस समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परम तेजस्वी सनकादि आकाश-मार्गसे भगवान्‌के अंशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्होंने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की। उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिड़का और उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः।
यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः॥
नैव लक्षयते लोको लोकान् पर्यटतोऽपि यान्।
यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। ७,९)

'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोंको भी

दुर्लभ हैं; मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ।.....इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते; इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम्।
सम्पृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत्॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। १५)

'आप संसारानलसे संतप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं; इसलिये आपमें विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है।'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशंसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम्।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम्॥
न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम्॥
कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमप्लवेशां
षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति।
तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं
कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम्॥

(श्रीमद्भा० ४। २२। ३३-३४, ४०)

'धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बड़ी बाधक है।'

'जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे संकुल इस संसार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम तो भगवान्‌के आराधनीय चरणकमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दुःख-समुद्रको पार कर लो।'

भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुनः उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्‌ने अपने इस अवतारमें उन्हें यथोचित उपदेश दिया, जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृदयमें उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया।

सनकादि अपने योगबलसे अथवा '**हरिः शरणम्**' मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः।
नास्ति रागसमं दुःखं नास्ति त्यागसमं सुखम्॥
निवृत्तिः कर्मणः पापात् सततं पुण्यशीलता।
सद्वृत्तिः समुदाचारः श्रेय एतदनुत्तमम्॥

(महाभारत, शान्ति० ३२९। ६-७)

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोंके-से बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण)-का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकांक्षी लीला-वपुधारी इन कुमार-चतुष्टयके पावन पद-पद्मोंमें अनन्त प्रणाम!

[२]

भगवान् वाराह

'भगवन्! हमारे लिये स्थान निर्देश करें!' स्वायम्भुव मनुने स्रष्टासे प्रार्थना की। चारों ओर महाप्रलयका समुद्र

तरंगें ले रहा था। लोकमूल कमलपर ब्रह्माजीने मानसिक सृष्टि व्यक्त कर ली। मनुको सृष्टिकी आज्ञा हुई। मानव-सृष्टिके लिये स्थूल स्थान चाहिये। पृथ्वी तो जलमें डूब गयी थी।

'वे सर्वेश्वर ही इसका उद्धार करें।' भगवान् ब्रह्माने देखा कि रसा (पृथ्वी) तो रसातलमें है। वे ध्यानस्थ हो गये। सहसा छींक आयी। अङ्गुष्ठके बराबर एक उज्ज्वल वाराह शिशु नासिकासे निकलकर आकाशमें स्थित हो गया।

'यह क्या है?' ऋषियोंके साथ ब्रह्माजी साश्चर्य देख रहे थे। वाराह क्षणभरमें हाथीके बराबर हो गया। वह बढ़ता जा रहा था। एक घनगर्जन-सी घुरघुराहट हुई। वाराहने सटाएँ हिलायीं और समुद्रमें प्रविष्ट हो गये।

× × ×

'आपको विष्णुका कुछ पता है?' जैसे काला पर्वत हो। सोनेकी भारी गदा लिये वह दितिका पीली आँखोंवाला छोटा पुत्र हिरण्याक्ष देवर्षि नारदसे पूछ रहा था। उसने वरुणदेवको युद्धके लिये ललकारा था। देवता उसकी हुँकार सुनकर स्वर्गसे भाग गये थे। समुद्र उसकी क्रीडासे चीत्कार कर उठा था। उसे कोई चाहिये, जिससे वह लड़े। उसका बल किसी योद्धाको चाहता था। युद्ध किये बिना उसे शान्ति नहीं थी। वरुणने भी कह दिया था कि वे वृद्ध हो गये हैं। उन्होंने ही उसे विष्णुभगवान्‌के पास भेजा था।

'वे अभी श्वेत वाराहरूप धारण करके इसी समुद्रमें सीधे नीचे जा रहे हैं। तुम शीघ्रता करो तो पकड़ लोगे।' देवर्षिने दैत्यको देखा। भगवान्‌के पार्षद जय और विजयने सनकादिकुमारोंको वैकुण्ठ-प्रवेशके समय रोक दिया था। ऋषियोंने शाप दे दिया उन्हें असुर होनेका। अब वे दितिके गर्भसे प्रकट हुए हैं। उनमें एक तो यही है। देवर्षिको दया आयी। भगवान्‌के हाथसे मरकर यह दूसरा जन्म ले। तीन ही जन्ममें तो फिर अपने रूपको पा लेगा। इन जन्मोंसे जितनी जल्दी छूटे, उतना अच्छा।

'अरे, इसे कहाँ ले जाता है? यह तो स्रष्टाने हम रसातलवासियोंके लिये भेजी है।' दैत्य पाताल पहुँचा। भगवान् वाराहने पृथ्वीको अपने दाँतोंपर उठा लिया था। दैत्यको तो विवाद करना था, पर भगवान्‌ने जैसे कुछ सुना ही नहीं। वे पृथ्वीको लेकर चले। दैत्य पीछे-पीछे दौड़ा। 'तू इसे छोड़ दे, नहीं तो मारा जायगा।'

'अच्छा, अब तू अपने मनकी कर ले!' दैत्य पीछे दौड़ आया। भगवान्‌ने पृथ्वीको ऊपर स्थापित करके उसे ललकारा। दोनोंमें घोर संग्राम हुआ। अन्तमें दैत्य मारा गया। यह श्वेतवाराह-कल्पकी सृष्टि पृथ्वीकी उसी पुनः प्रतिष्ठाके समयसे प्रारम्भ हुई है।

[३]

देवर्षि नारद

मङ्गलमूर्ति नारदजी श्रीभगवान्‌के मनके अवतार हैं। कृपामय प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी वीणापाणि नारदजीके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है।

श्रीमद्भागवत (१। ३। ८)-में कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥

'ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे 'नारद-पञ्चरात्र' कहते हैं) उपदेश किया; उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।'

परम तपस्वी और ब्राह्मतेजसे सम्पन्न नारदजी अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका वर्ण गौर है। उनके मस्तकपर शिखा सुशोभित है। अत्यन्त कान्तिमान् नारदजी देवराज इन्द्रके दिये हुए दो उज्ज्वल, महीन, दिव्य, शुभ और बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं। वेद और उपनिषदोंके ज्ञाता, देवताओंद्वारा पूजित, पूर्वकल्पोंकी बातोंके जानकार, महाबुद्धिमान् और असंख्य सद्गुणोंसे सम्पन्न महातेजस्वी नारदजी भगवान् पद्मयोनिसे प्राप्त वीणाकी मनोहर झंकृतिके साथ दयामय भगवान्‌के मधुर, मनोहर एवं मङ्गलमय नाम और गुणोंका गान करते हुए लोक लोकान्तरोंमें विचरण किया करते हैं। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले साधु पुरुषोंके हितके लिये नारदजी सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वे सचल कल्पवृक्ष हैं।

वे स्वयं अपने मुखारविन्दसे कहते हैं—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि॥

(श्रीमद्भा० १। ६। ३४)

'जब मैं उनकी लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरण-कमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तुरंत मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं।'

कृपाकी मूर्ति नारदजी वेदान्त, योग, ज्यौतिष, आयुर्वेद एवं संगीत आदि अनेक शास्त्रोंके आचार्य हैं और भक्तिके तो वे मुख्याचार्य हैं। उनका पाञ्चरात्र भागवत-मार्गका प्रधान ग्रन्थरत्न है। प्राणिमात्रकी कल्याण-कामना करनेवाले नारदजी श्रीहरिके मार्गपर अग्रसर होनेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंको सहयोग देते रहते हैं। मुमुक्षुओंका मार्ग-दर्शन उनका प्रमुख कर्तव्य है। उन्होंने त्रैलोक्यमें कितने प्राणियोंको किस प्रकार परम प्रभुके पावन पद-पद्मोंमें पहुँचा दिया, इसकी गणना सम्भव नहीं।

बालक प्रह्लादकी दृढ़ भक्तिसे भगवान् नृसिंह अवतरित हुए। प्रह्लादके इस भगवद्विश्वास एवं प्रगाढ़ निष्ठामें भगवान् नारद ही मुख्य हेतु थे। उन्होंने गर्भस्थ प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको भक्ति और ज्ञानका उपदेश दिया। प्रह्लादजीका वही ज्ञान उनके जीवन और जन्मको सफल करनेमें हेतु बना। इसी प्रकार पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वन-गमनके समय नारदजीने उन्हें भगवान् वासुदेवका मन्त्र दिया तथा उन्हें उपासनाकी पद्धति भी विस्तारपूर्वक बतायी। जब दक्ष प्रजापतिने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे 'हर्यश्व' नामक दस सहस्र पुत्र उत्पन्नकर उन्हें सृष्टि-विस्तारका आदेश दिया और एतदर्थ वे पश्चिम दिशामें सिन्धु नदी और समुद्रके संगमपर स्थित पवित्र नारायण-सरपर तपश्चरण करने पहुँचे, तब नारदजीने अपने अमृतमय उपदेशसे उन सबको विरक्त बना दिया। दक्ष प्रजापति बड़े दुःखी हुए। उन्होंने फिर 'शबलाश्व' नामक एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। नारदजीने कृपापूर्वक उन्हें भी श्रीभगवच्चरणारविन्दोंकी ओर उन्मुख कर दिया। फिर तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर प्रजापति दक्षने अजातशत्रु नारदजीको शाप दे दिया—'तुम लोक-लोकान्तरोंमें भटकते रहोगे और तुम्हें कहीं भी दो घंटेसे अधिक ठहरनेके लिये ठौर नहीं मिलेगी।' साधुशिरोमणि नारदजीने इसे प्रभुकी मङ्गलमयी इच्छा समझकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया।

जब वेदोंका विभाग तथा पञ्चम वेद महाभारतकी रचना कर लेनेपर भी श्रीव्यासजी अपनेको अपूर्णकाम अनुभव करते हुए खिन्न हो रहे थे, तब दयापरवश श्रीनारदजी उनके समीप पहुँच गये और व्यासजीके पूछनेपर उन्होंने बताया—'व्यासजी! आपने भगवान्‌के निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया। मेरी ऐसी मान्यता है कि वह शास्त्र या ज्ञान सर्वथा अपूर्ण है, जिससे जगदाधार स्वामी संतुष्ट न हों। वह वाणी आदरके योग्य नहीं, जिसमें श्रीहरिकी परमपावनी कीर्ति वर्णित न हो। वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र है। उसके द्वारा तो मूर्ख कामुक व्यक्तियोंका ही मनोरञ्जन हो सकता है। मानस-सरके कमलवनमें विहार करनेवाले राजहंसोंके समान ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्तोंका मन उसमें कैसे रम सकता है? विद्वान् पुरुषोंने निर्णय किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान एवं समस्त धर्म-कर्मोंकी सफलता इसीमें है कि पुण्यकीर्ति श्रीप्रभुकी कल्याणमयी लीलाओंका गान किया जाय। अतएव—

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥

(श्रीमद्भा० १। ५। ४०)

'व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका—उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा बार-बार रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है। इसके सिवा उसका और कोई उपाय नहीं है।'
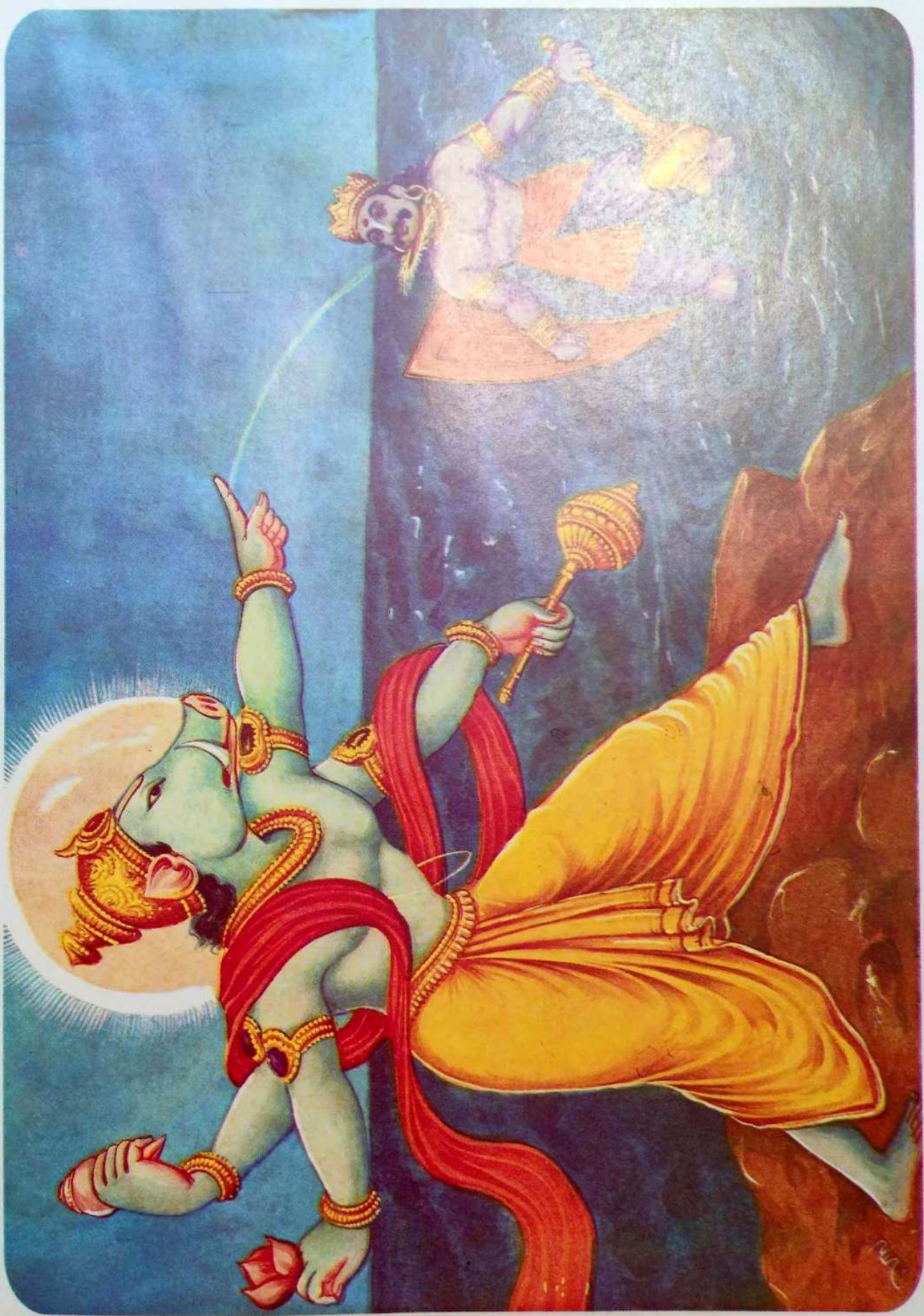
वराह-रूप भगवान् श्रीहरिद्वारा हिरण्याक्षका उद्धार

भगवान् वामन-रूपमें

भगवान्‌की मोहिनी लीला
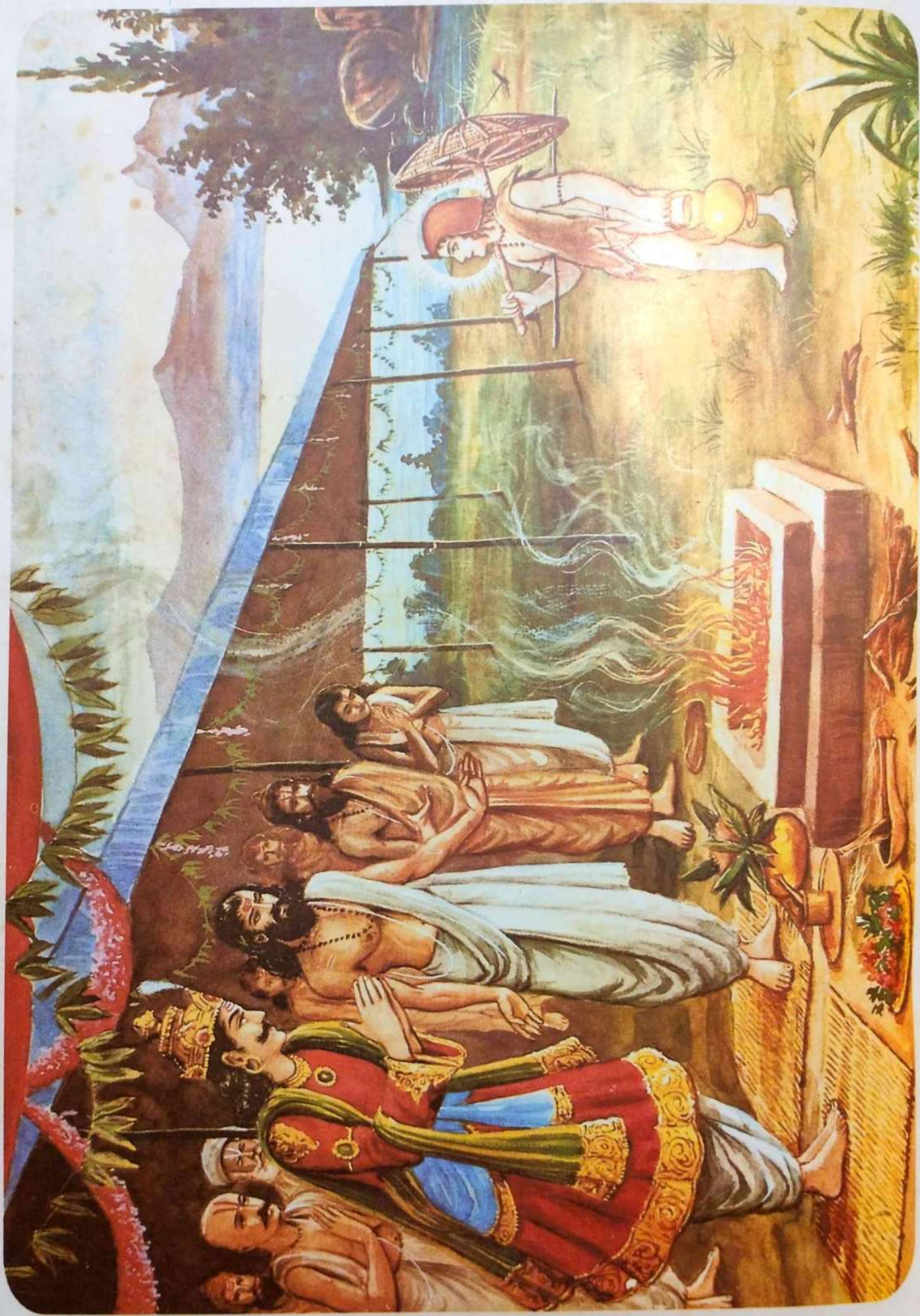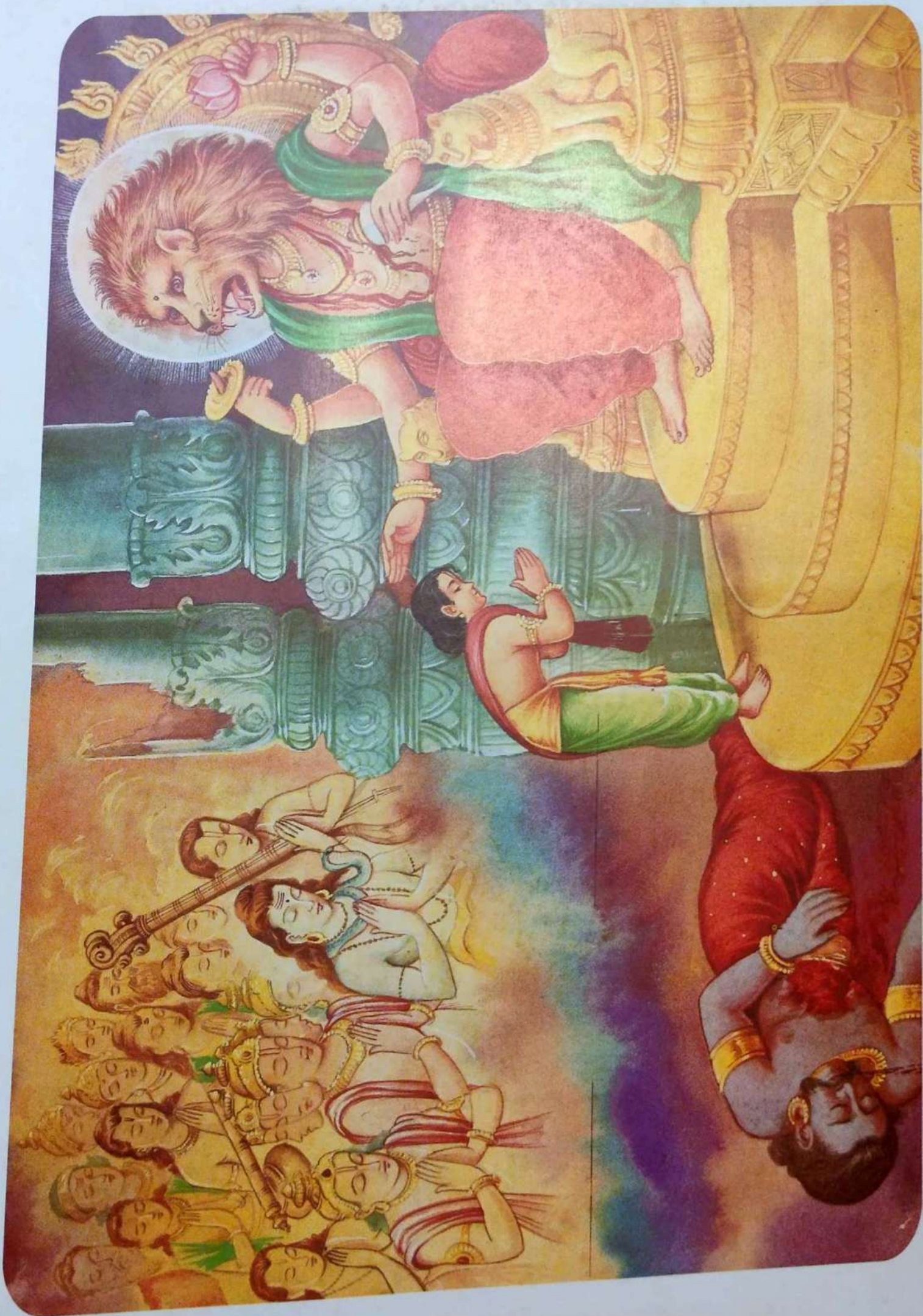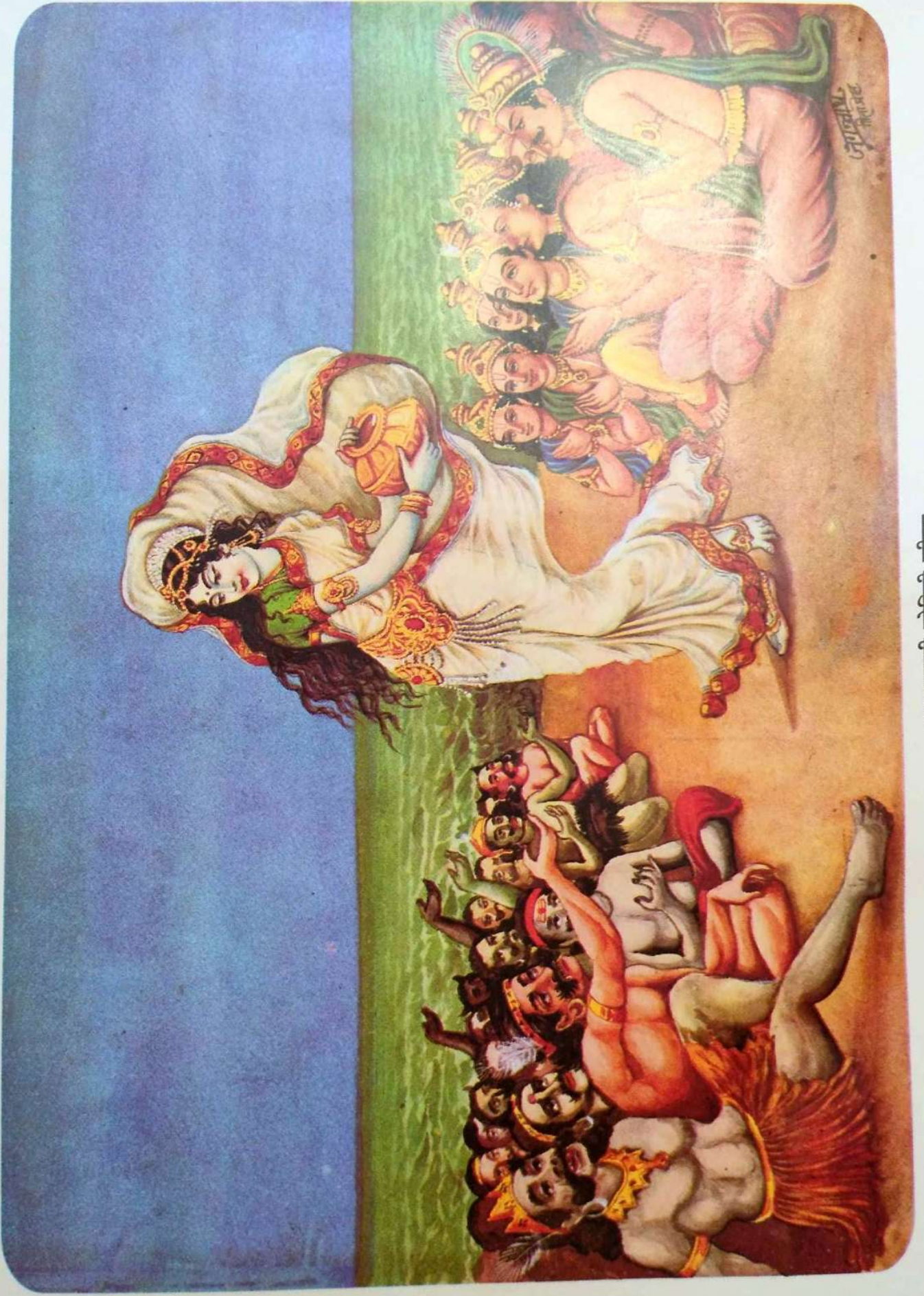
जब दुर्योधनके छल और कुटिल नीतिसे सहृदय पाण्डवोंने अरण्यके लिये प्रस्थान किया, उस समय भरतवंशियोंके विनाशसूचक अनेक प्रकारके भयानक अपशकुन होने लगे। चिन्तित होकर इस सम्बन्धमें धृतराष्ट्र और विदुर परस्पर बातचीत कर ही रहे थे कि उसी समय महर्षियोंसे घिरे भगवान् नारद कौरवोंके सामने आकर खड़े हो गये और सुस्पष्ट शब्दोंमें उन्होंने भविष्यवाणी करते हुए कहा—

इतश्चतुर्दशे वर्षे विनक्ष्यन्तीह कौरवा:।
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च॥

(महाभारत, सभा० ८०। ३४)

'आजसे चौदहवें वर्षमें दुर्योधनके अपराधसे भीम और अर्जुनके पराक्रमद्वारा कौरवकुलका नाश हो जायगा।'

इतना कहकर महान् ब्रह्मतेजधारी नारदजी आकाशमें जाकर सहसा अन्तर्धान हो गये।

सर्वोच्च ज्ञानके परम पावन विग्रह श्रीशुकदेवजीको उपदेश देते हुए महामुनि नारदजीने कहा था—

सर्वे क्षयान्ता निचया: पतनान्ता: समुच्छ्रया:।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिष:।
आत्मनैव सहायेन यश्चरेत् स सुखी भवेत्॥

(महाभारत, शान्ति० ३३०। २०, ३०)

'संग्रहका अन्त है विनाश। ऊँचे चढ़नेका अन्त है नीचे गिरना। संयोगका अन्त है वियोग और जीवनका अन्त है मरण।'

'जो अध्यात्मविद्यामें अनुरक्त, कामनाशून्य तथा भोगासक्तिसे दूर है, जो अकेला ही विचरण करता है, वही सुखी होता है।'

जब अविनाशी नारायण और नर बदरिकाश्रममें घोर तप करते हुए अत्यन्त दुर्बल हो गये थे और उन परम तेजस्वी प्रभुका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ था, उस समय नारदजी महामेरु पर्वतसे गन्धमादन पर्वतपर उतर गये और जब भगवान् नर और नारायणके समीप पहुँचे, तब उन्होंने शास्त्रीय विधिसे नारदजीकी पूजा की। नारदजीने उनसे अनेक भगवत्-सम्बन्धी प्रश्नोंका तृप्तिकर उत्तर प्राप्त किया और फिर उनकी अनुमतिसे श्वेतद्वीपमें पहुँचकर श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका दर्शन-लाभ प्राप्त करके पुन: गन्धमादन पर्वतपर श्रीनर-नारायणके समीप चले आये। नारदजीने भगवान् नर-नारायणको सारा वृत्तान्त सुनाया और उनके समीप दस सहस्र दिव्य वर्षोंतक रहकर वे भजन एवं मन्त्रानुष्ठान करते रहे।

स्कन्दपुराणमें इन्द्रकृत श्रीनारदजीकी एक अत्यन्त सुन्दर स्तुति है। उसके सम्बन्धमें एक बार भगवान् श्रीकृष्णने नारदजीके गुणोंकी प्रशंसा करते हुए राजा उग्रसेनसे कहा था कि 'मैं देवराज इन्द्रद्वारा किये गये स्तोत्रसे दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजीकी सदा स्तुति किया करता हूँ।'

सर्वसुहृद् श्रीनारदजी ही एकमात्र ऐसे हैं, जिनका सभी देवता और दैत्यगण समानरूपसे सम्मान एवं विश्वास करते हैं, उन्हें अपना शुभैषी समझते हैं और निश्चय ही वे दयामय सबके यथार्थ हित-साधनके लिये सचिन्त और प्रयत्नशील रहते हैं। अब भी करुणामय प्रभुके सच्चे प्रेमी भक्तोंको उनके दर्शन हो जाते हैं।

[४]

भगवान् नर-नारायण

तपसे ही लोककी सृष्टि है। तप ही लोकका धारण एवं रक्षण करता है। विनाशके अधिष्ठाता भगवान् शिव तो तपोमूर्ति हैं ही। आज युग शारीरिक तामस तपका है। वैसे बिना तप—कष्टके आज भी कोई कार्य नहीं होता। तप भगवान्‌का स्वरूप है। ऋषियोंने तपका महत्त्व जाना और कहा है। आज भी सृष्टि तपकी अज्ञात शक्तिपर ही प्रतिष्ठित है। बिना शुद्ध अन्तर्मुख चित्तके उस शक्तिका अनुभव नहीं होता। स्वयं श्रीहरिने सृष्टिके आदिमें धर्मकी पत्नी मूर्तिसे दो रूपोंमें अवतार धारण किया। शुक्ल-वर्ण, तापस-वेश वे नर-नारायण दो शरीर होकर भी रूप-रंग तथा स्वभावमें एक-से हैं। प्रकट होते ही वे उत्तराखण्डमें तपस्या करने चले आये। तपस्वियोंके वे वरदाता, परमाराध्य प्रभु तप करते हैं—अब भी तपोलीन हैं। उन्हींकी तप:शक्ति संसारको धारण करती है।

भगवान् नर-नारायण बदरीनाथमें अविचल तप कर रहे हैं। द्वापरमें भी अधिकारी ही उनके दर्शन पाते थे और जो अधिकारी हों, वे आज भी पा सकते हैं। भगवान्‌का यह अवतार कल्पतक तप करनेको हुआ। हमारी संस्कृति त्याग

एवं तपकी संस्कृति है। भगवान् स्वयं उसका आदर्श उपस्थित कर रहे हैं। जहाँ पृथ्वीमें देश-भेदसे आराध्यरूपके भेदका विधान शास्त्रोंने किया है, वहाँ तपोभूमि भारतके आराध्य भगवान् नर-नारायण ही कहे गये हैं।

[५]

भगवान् कपिल

'पुत्र! सृष्टिका अभिवर्द्धन करो। यही मेरी और श्रीहरिकी सेवा है।' भगवान् ब्रह्माको एक ही धुन है। वे स्रष्टा हैं। अपने सभी पुत्रोंको उनका एक ही आदेश है। कुमारोंकी भाँति महर्षि कर्दमने पिताकी आज्ञा अस्वीकार नहीं की। वे उसे स्वीकार करके बिन्दुसर तीर्थके समीप तप करने लगे। उस समय तप ही समस्त उद्देश्योंका दाता था। आजकी भाँति कीटप्राय प्राणी उत्पन्न करना किसीको अभीष्ट नहीं था। भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होंने वरदान दिया। आदिराज मनु स्वयं आश्रममें पधारे और अपनी पुत्री देवहूतिका महर्षिसे परिणय कर गये।

'कल्याणि! तुमने मेरी सेवामें अपनेको सुखा दिया! अब तुम्हें जो अभीष्ट हो, माँग लो।' महर्षि कर्दमने भोग-बुद्धिसे विवाह किया ही न था। विवाहके पश्चात् वे अपने तपमें लग गये। राजकुमारी देवहूति उनकी परिचर्यामें लगीं। समिधाएँ, कुश, फल तथा जल वनसे संग्रह करना, आश्रम स्वच्छ रखना—ये सब उनके कार्य हो गये। एक दिन महर्षिका ध्यान पत्नीकी सेवापर गया। श्रम और कष्टसे वे दुर्बल हो गयी थीं। मस्तकके सुगन्ध-सिंचित केश कहाँ थे, वे तो अब जटा बन चुके थे। केवल वल्कलधारिणी तापसी थीं वे। महर्षि प्रसन्न हुए।

देवहूतिको संततिकी कामना थी। महर्षि कर्दमका योग-प्रभाव प्रकट हुआ। दिव्य विमान, सहस्रों दास-दासियाँ, रत्नोपकरण—सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य थे विमानमें। महर्षिने देवहूतिके साथ विमानारोहण किया। गार्हस्थ्यमें वर्षों व्यतीत हो गये। नौ पुत्रियाँ हुईं। उनमें कलाका मरीचि ऋषिसे, अनसूयाका अत्रिसे, श्रद्धाका अङ्गिरासे, हविर्भूका पुलस्त्यसे, गतिका पुलहसे, युक्तिका क्रतुसे, ख्यातिका भृगुसे, अरुन्धतीका वसिष्ठसे और शान्तिका अथर्वासे महर्षि कर्दमने विवाह कर दिया।

'देव! मैं इन्द्रियोंके विषयमें मूढ बनी रही। मैंने आपके परम प्रभावको नहीं जाना; फिर भी आप-जैसे महापुरुषका संग कल्याणकारी होना चाहिये।' देवहूति अत्यन्त व्याकुल हो रही थीं। उनके पति पुनः विरक्त होकर वनमें जा रहे थे। इस बार वे अकेले जायँगे। विषयोंमें लगकर तो यह जीवन व्यर्थ चला गया। उनमें वैराग्यका पूर्णोदय हुआ। उस देवदुर्लभ विमान तथा उसके ऐश्वर्यमें उनका कोई आकर्षण नहीं था।

'भद्रे! व्याकुल मत हो। तुम्हारे गर्भसे परम पुरुष प्रकट होनेवाले हैं। वे तुम्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे। मैं उनके दर्शन करके ही यहाँसे जाऊँगा!' महर्षिको उन सर्वेशके दर्शन हुए। वे आदेश लेकर तप करने गये। भगवान् कपिलने माताको तत्त्वज्ञानका उपदेश किया और उनकी जिज्ञासाका समाधान करके वे उनकी आज्ञासे समुद्र-तटपर गये। समुद्रने उन्हें अपने भीतर स्थान दिया। माता देवहूति उन परात्पर प्रभुको पुत्ररूपमें प्राप्तकर धन्य हो गयीं। उन्होंने उस उपदिष्ट ज्ञानमें चित्तको एकाग्र कर दिया। कुछ दिन दूसरोंके द्वारा उनका शरीर सेवित, रक्षित होता रहा और कब वह वेणीकुसुमके समान गिर गया—इसका पता देवहूतिजीको लगा ही नहीं।

साठ सहस्र सगर-पुत्र अश्वान्वेषणके लिये पृथ्वी खोदते समय कपिलाश्रम पहुँचे और महर्षि कपिलकी नेत्राग्निमें भस्म हो गये। गङ्गासागर-संगमपर पर्वोत्सवोंमें कपिलाश्रमके दर्शन तो हो जाते हैं; किंतु महर्षि कपिलका दर्शन तो उसे ही हो सकता है, जिस अधिकारीपर वे कृपा करें। वे सांख्य-दर्शनके प्रवर्तक, ज्ञान-मार्गके परमाचार्य प्रभु जगत्के कल्याणके लिये वहाँ तपमें स्थित हैं।

[६]

भगवान् दत्तात्रेय

'जगत्के अधिष्ठाता प्रभु प्रसन्न हों! मुझे वे अपने समान संतति प्रदान करें।' महर्षि अत्रि तप कर रहे थे। उनके मनमें केवल पितामहकी सृष्टि वर्द्धित करनेका आदेश था।

'मैंने एक ही जगदाधारकी आराधना की है।' महर्षिको आश्चर्य हुआ। उनके सम्मुख वृषभारूढ कर्पूर-गौर भगवान् शशाङ्कशेखर, हंसपर विराजमान सिन्दूरारुण भगवान् चतुरानन

और गरुडकी पीठपर शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी मेघसुन्दर श्रीरमानाथ एक साथ प्रकट हुए थे। जगत्‌के तो तीनों ही अधिष्ठाता हैं। प्रभु त्रिमूर्तिमें ही जगत्‌का विनाश, सृष्टि और पालन करते हैं। महर्षिने तीनोंकी पूजा की। तीनोंकी स्तुति की। तीनोंके अंशसे संतान-प्राप्तिका उन्हें वरदान मिला।

महासती अनसूयाकी गोद तीन कुमारोंसे भूषित हुई। भगवान् शंकरके अंशसे तपोमूर्ति महर्षि दुर्वासा, भगवान् ब्रह्माके अंशसे सचराचरपोषक चन्द्रमा और भगवान् विष्णुके अंशसे त्रिमुख, गौरवर्ण, ज्ञानमूर्ति श्रीदत्तात्रेय प्रभु।

भगवान् दत्तात्रेय आदियुगमें प्रह्लादके उपदेष्टा हैं। अजगर मुनिके वेशमें प्रह्लादजीको उन्होंने अवधूतकी स्थितिका उपदेश किया है। महाराज अलर्कको उन्होंने तत्त्वज्ञानका उपदेश किया। कुत्तोंसे घिरे, उन्मत्त-सा वेश बनाये, उन सिद्धोंके परमाचार्यको पहचानना बहुत उच्च कोटिके अधिकारीका ही काम है।

गिरिनार प्रभुका सिद्धपीठ है। दक्षिणमें दत्तात्रेयकी उपासनाका व्यापक प्रचार है। सिद्धोंकी एक परम्परा ही भगवान् दत्तात्रेयको उपास्य मानती आयी है। इनमें 'रस-सिद्धि'का बहुत प्रचार था। ये सिद्धियाँ भले लोगोंको प्रलुब्ध करें और कुतूहल या कामनावश सामान्य साधक इन्हींको लक्ष्य बनाते हों; परंतु भगवान् दत्तात्रेयके उपदेश मनुष्यको इन प्रलोभनोंसे सावधान करते हैं। साधनके द्वारा परम पुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति ही मनुष्यका सच्चा लक्ष्य है। योग-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ भगवान् दत्तात्रेयके कहे जाते हैं। दक्षिणमें भगवान् दत्तकी उपासनाका बहुत प्रचार है।

[७]

भगवान् यज्ञ

स्वायम्भुव मन्वन्तर—इस कल्पके प्रथम मन्वन्तरमें देवता अनाहारसे क्षीण हो रहे थे। देवताओंके दुर्बल होनेसे व्यक्त जगत् नष्ट होता जा रहा था। वर्षा, अन्न, अग्नि, वायु और पृथ्वी—सब नि:सत्त्वप्राय हो चले। यमराज क्या करें? उनके यहाँ प्राणियोंका एक ही अपराध था कि वे अशक्त थे। उनमें प्रमाद था। उनके सम्मुख कोई व्यवस्थित कृत्य भी तो नहीं था। तीनों लोक इस अवस्थासे त्रस्त हो रहे थे।

प्रभु तो सदासे आर्त-पुकार सुननेवाले हैं। उन्होंने प्राणियोंकी पुकार सुनी। महर्षि रुचिकी पत्नी आकूतिसे वे प्रकट हुए। उन्होंने अग्निहोत्रकी स्थापना की। उन्हींके नामसे अग्निहोत्र यज्ञ कहा जाने लगा। हवनसे देवता पुष्ट हुए। देवताओंकी शक्तिसे जगत् शक्तिसम्पन्न हुआ। देव-पूजा छोड़कर अपनी और पदार्थोंकी शक्तिका नाश करनेवाले वर्तमान युगके प्राणी इसे कैसे समझेंगे। पदार्थ आज चाहिये और देव-जगत्‌को छोड़ दिया गया। इस आसुर-वृत्तिमें संघर्ष, उत्पीडन और क्लेश ही तो मिलता है। वे यज्ञ-पुरुष प्रभु दया करें।

[८]

भगवान् ऋषभदेव

महाराज नाभिने संतान-प्राप्तिके लिये यज्ञ किया। तप:-पूत ऋत्विजोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे यज्ञ-पुरुषकी स्तुति की। श्रीनारायण प्रकट हुए। विप्रोंने उन सौन्दर्य, ऐश्वर्य, शक्तिघनके समान ही नरेशको पुत्र हो, यह प्रार्थना की। उस अद्वयके समान दूसरा कहाँसे आये? महाराज नाभिकी महारानीकी गोदमें स्वयं वही परम तत्त्व प्रकट हुआ।

महाराज नाभि कुमार ऋषभदेवको राज्य देकर वनके लिये विदा हो गये। देवराज इन्द्रको धराका वह सौभाग्य ईर्ष्याकी वस्तु जान पड़ा। अखिलेशकी उपस्थितिसे पृथ्वीने स्वर्गको अपनी सम्पदासे लज्जित कर दिया था। महेन्द्र वृष्टिके अधिष्ठाता हैं। वर्षा ही न हो तो पृथ्वीका सौन्दर्य रहे कहाँ? शस्य ही तो यहाँकी सम्पत्ति है। देवराजको लज्जित होना पड़ा। वर्षा बंद न हो सकी। भगवान् ऋषभने अपनी शक्तिसे वृष्टि की। अन्तत: देवराजने अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह कर दिया उन धरानाथसे। पृथ्वी और स्वर्गमें सम्बन्ध स्थापित हुआ।

पूरे सौ पुत्र हुए ऋषभदेवजीको। इनमें सबसे ज्येष्ठ चक्रवर्ती भरत हुए। इन्हीं आर्षभ भरतके नामपर यह देश 'भारतवर्ष' कहा जाता है। शेष पुत्रोंमें नौ ब्रह्मर्षि, नौ पुत्र नौ द्वीपोंके अधिपति हो गये और इक्यासी महातपस्वी हुए। भरतका राज्याभिषेक करके भगवान्‌ने वानप्रस्थ स्वीकार किया।

काक, गौ, मृग, कपि आदिके समान आचरण, आहार-ग्रहण, निवासादि जडयोग हैं। ये सिद्धिदायक हैं और संयमके साधक भी। भगवान् ऋषभने इनको क्रमश: अपनाया, पूर्ण

किया; किंतु इनकी सिद्धियोंको स्वीकार नहीं किया। उनकी तपश्चर्याका अनुकरण जो सिद्धियोंके लिये करते हैं, वे उन प्रभुके परमादर्शको छोड़कर पृथक् होते हैं।

आत्मानन्दकी वह उन्मद अवधूत-अवस्था—बिखरे केश, मलावच्छन्न शरीर, न भोजनकी सुध और न प्यासकी चिन्ता। किसीने मुखमें अन्न दे दिया तो स्वीकार हो गया। जहाँ शरीरको आवश्यकता हुई, मलोत्सर्ग हो गया। उस दिव्य-देहका मल अपने सौरभसे योजनोंतक देशको सुरभित कर देता। जहाँ शरीरका ध्यान नहीं, वहाँ शौचाचारका पालन कौन करे? यह आचरणीय नहीं—यह तो अवस्था है। शरीरकी स्मृति न रहनेपर कौन किसे सचेत करेगा; शास्त्रसे परे है यह दशा!

मुखमें कंकड़ी रखे, निराहार, मौन, उन्मत्तकी भाँति भारतके पश्चिमीय प्रदेश—कोंक, वेंक, कुटकादिके वनोंमें भगवान् ऋषभदेव भ्रमण कर रहे थे। उनका शरीर तेजोमय, किंतु अनाहारसे कृश हो गया था। वनमें दावाग्नि लगी। देह आहुति बन गया।

जैनधर्म भगवान् ऋषभको प्रथम तीर्थङ्कर मानता है। उन्हींके आचारकी व्याख्या पीछेके जैनाचार्योंने की है।

[९]

भगवान् आदिराज पृथुके रूपमें

'कुपुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना ही भला था।' महाराज अङ्गने देवताओंका यजन करके पुत्र प्राप्त किया और वह पुत्र घोरकर्मा हो गया। प्रजा उसके उपद्रवोंसे त्राहि-त्राहि करने लगी। ताडनादिसे भी उसका शासन हो नहीं पाता। महाराजको वैराग्य हो गया। रात्रिमें ही वे चुपचाप अज्ञात वनमें चले गये।

'कोई यज्ञ न करे! कोई किसी देवताका पूजन न करे। एकमात्र राजा ही प्रजाके आराध्य हैं! आज्ञा भंग करनेवाला कठोर दण्ड पायेगा।' भेरीनादके साथ ग्राम-ग्राममें घोषणा हो रही थी। महाराज अङ्गका कोई पता न लगा। ऋषियोंने उनके पुत्र वेनको सिंहासनपर बैठाया। राज्य पाते ही उसने यह घोषणा करायी।

'राजन्! यज्ञसे यज्ञपति भगवान् विष्णु तुष्ट होंगे! उनके प्रसन्न होनेपर आपका और प्रजाका भी कल्याण होगा!' ऋषिगण वेनको समझाने एकत्र होकर आये थे। उस दर्पमत्तने उनकी अवज्ञा की। ऋषियोंका रोष हुंकारके साथ कुशोंमें ही ब्रह्मास्त्रकी शक्ति बन गया। वेन मारा गया। वेनकी माता सुनीथाने पुत्रका शरीर स्नेहवश सुरक्षित रखा।

'ये साक्षात् जगदीश्वरके अवतार हैं!' उन दूर्वादलश्याम, प्रलम्बबाहु, कमलाक्ष पुरुषको देखकर ऋषिगण प्रसन्न हुए। अराजकता होनेपर प्रजामें दस्यु बढ़ गये थे। चोरी, बलप्रयोग, मर्यादानाश, परस्वहरणादि बढ़ रहे थे। शासक आवश्यक था। ऋषियोंने एकत्र होकर वेनके शरीरका मन्थन प्रारम्भ किया। उसके ऊरुसे प्रथम ह्रस्वकाय, कृष्ण-वर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ। उसकी संतानें निषाद कही गयीं। मन्थन चलता रहा। दक्षिण हस्तसे पृथु और वाम बाहुसे उनकी नित्य-सहचरी लक्ष्मीस्वरूपा आदि-सती अर्चि प्रकट हुईं।

'महाराज हम सब क्षुधासे मरणासन्न हैं। हमारी रक्षा करें!' विश्वमें प्रथम राजाके सम्मुख प्रजा पुकार कर रही थी। धरामें पहला अकाल पड़ा था। न फल थे, न अन्न। वन सूखते जा रहे थे। वेनके अत्याचारसे देवशक्ति क्षुभित हो गयी थी। देवताओंका रोष मानवके अभ्युदयका घातक होगा ही। समाज आचारहीन, कुकर्म-रत हो गया। त्रेताके आदिमें पदार्थ उपभोगके लिये नहीं थे। सम्पूर्ण पदार्थ यज्ञार्थ थे। मनुष्य केवल यज्ञावशेषभोजी था। जब मनुष्यने पदार्थोंको अपने लिये समझना प्रारम्भ किया, धराने उनका उत्पादन बंद कर दिया।

'यह मेदिनी—यह मेरी अवज्ञा करती है!' पृथुने प्रजाकी पुकार सुनी। धरा अन्न देती क्यों नहीं? नेत्रोंमें बंकिमा आयी। आजगव धनुषपर बाण चढ़ाया उन्होंने! 'मैं इसके मेदसे सबको तृप्त करूँगा! लोकका धारण मेरी योगशक्ति करेगी!' उन्हींकी योगमाया तो लोक-धारण करती है।

'देव, मुझे क्षमा करें। काँपती, भीता गोरूपधारिणी पृथ्वी शरणापन्न हुई। मुझे समान (समतल) करें, जिसमें वर्षाका जल टिक सके। योग्य वत्स हो तो मैं कामदुहा (अभीष्ट फल देनेवाली) हूँ।'

पृथुने पृथ्वीका दोहन किया। भूमि समान की गयी। कृषिका प्रारम्भ हुआ। मनुष्यने तरु एवं गुफाओंका स्वेच्छा-निवास छोड़ दिया। समाज बना। नगर, ग्राम, खेट, खर्वट आदि

बसाये गये। इस प्रकार पृथुने प्रजाकी व्यवस्था की।

पृथुने धराको पुत्री माना। तबसे यह भूमि 'पृथ्वी' कही जाती है। वे ही प्रथम नरेश थे। मनुष्यको नगर, ग्रामादिमें बसाकर वर्तमान संस्कृति एवं सभ्यताको उन्होंने ही जन्म दिया था। जीवन भोगके लिये नहीं, आराधनाके लिये है। उन आदि शासकका मानवके लिये यही आदेश है। जबतक मानव उनके आदेशपर चला, सुख एवं शान्ति उसे नित्य प्राप्त रही; आदेश भंग करके वह पीडा, संघर्ष एवं चिन्तामें उलझ गया।

[१०]

भगवान् मत्स्य

पूर्व कल्पकी बात है—भगवान् ब्रह्मा अपने दिनके कार्यसे श्रान्त होकर योगनिद्राका आश्रय ले रहे थे। श्रुतियाँ सहज अलस-भावसे उनके मुखसे निकलीं। उन श्रुतिस्वरूपके मुखसे निद्रामें और प्रकट भी क्या होता। दितिपुत्र हयग्रीवने उन्हें स्मरण कर लिया। एक असुर श्रुतिका न शुद्धोच्चारण कर सकता और न उसका अर्थ-दर्शन। वह अपनी मलिन बुद्धिसे श्रुतियोंका अनर्थ करेगा। श्रुतियोंके उद्धारके लिये, उनकी परम्परा विशुद्ध बनाये रखनेके लिये भगवान् विष्णुने मत्स्यरूप धारण किया।

भुवन-भास्कर विवस्वान्‌के पुत्र राजर्षि सत्यव्रत जल पीकर घोर तपमें लीन थे। प्रात:स्नान करके कृतमाला नदीमें तर्पणके लिये उन्होंने अंजलि उठायी। हिलसा जातिकी स्वर्ण-वर्ण एक शफरी (छोटी मछली) उसमें आ गयी थी। राजर्षिने अंजलि विसर्जित कर दी।

'यहाँ हम छोटी मछलियोंको आहार बना लेनेवाले बहुत जन्तु हैं। उनसे डरकर मैं आपकी शरण आयी हूँ।' शफरी भागी नहीं। वह बोल रही थी। राजर्षिने उसे उठाकर कमण्डलुके जलमें रख लिया।

'मैं आपकी शरण हूँ। मेरी सुविधाका आपको प्रबन्ध करना चाहिये। यहाँ तो मैं हिल भी नहीं सकती।' आश्रममें पहुँचते ही मछलीने पुन: प्रार्थना की। वह इतनी बढ़ गयी थी कि कमण्डलुमें उसका हिलना कठिन था। क्रमश: उसे बड़े पात्र, कुण्ड, सरोवर और सरितामें रखना पड़ा। सब कहीं कुछ मुहूर्तोंमें वह स्थान उसकी वृद्धिसे पूर्ण हो जाता था। अन्तमें समुद्रमें छोड़ना पड़ा उसे।

'निश्चय ही आप सर्वेश हैं। जब आपने मुझपर कृपा की है, तब अपने इस शरीर-धारणका प्रयोजन बतायें।' राजर्षिने तब प्रार्थना की, जब समुद्रमें मत्स्यने अपने लिये मगर आदिका भय बताया। भला, कोई जलजीव इतनी शीघ्र यह आकार-वृद्धि कहाँ पा सकता था। भगवान् मत्स्यने बताया कि प्रलय सातवें दिन ही होनी है। भगवान्‌के आदेशानुसार राजर्षिने बहुत बड़ी नौका बनवायी। उसमें सम्पूर्ण वनस्पतियोंके बीज और प्राणियोंके जोड़े सुरक्षित किये। सातवें दिन चारों ओरसे बढ़कर समुद्रने पृथ्वीको प्लावित कर दिया। नौकामें इसी समय सप्तर्षि भी आकर बैठ गये। प्रबल पवनसे नौका चंचल हो उठी। उसी समय एक-शृंगधारी अयुत योजन विशाल स्वर्णोज्ज्वल भगवान् मत्स्य प्रलय-सागरमें प्रकट हुए। नागराज वासुकी पहलेसे नौकामें विराजमान थे। नौका उन महासर्पकी रज्जुसे मत्स्यके सींगमें बाँध दी गयी।

भू:-भुव: आदि सम्पूर्ण लोक जलमग्न हो गये थे। अन्धकारमें सागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गोंके बीच महामत्स्य प्रभु विचरण कर रहे थे। नौकामें ऋषियोंका तेज प्रकाश किये था। राजर्षिने प्रश्न किया और भगवान्‌ने उत्तर दिया। भगवान् मत्स्यका वही दिव्य उपदेश भगवान् व्यासने मत्स्य-पुराणमें संकलित किया है। प्रलयकाल व्यतीत हुआ। समुद्र उतरा। भगवान्‌के आदेशसे हिमालयके एक शृंगमें राजर्षि सत्यव्रतने अपनी नौका बाँध दी। वह शृंग अब भी 'नौका-बन्धन शृंग' कहा जाता है। राजर्षि सत्यव्रत इस मन्वन्तरके वैवस्वत मनु हैं। भगवान् मत्स्यने हयग्रीवका वध किया; क्योंकि सृष्टिकालमें असुरके समीप श्रुतिका रहना अभीष्ट नहीं था।

यहूदियोंके धर्मग्रन्थमें, बाइबिलमें और कुरानमें भी मनुकी इस जल-प्रलय और नौकारोहणका प्रकारान्तरसे वर्णन है। चीनमें तथा प्राचीन आस्ट्रेलिया एवं अमेरिका-निवासियोंमें भी यह चरित प्रसिद्ध है। कथामें बहुत थोड़ा अन्तर इन स्थानोंमें हुआ है। कथाका सब कहीं मिलना यह स्पष्ट करता है कि सब जातियाँ भारतसे गयी हैं और मनुकी संतति हैं। देश, कालके प्रभावसे कथामें परिवर्तन स्वाभाविक है। इस प्रकार भगवान् मत्स्य पूरे विश्व-संस्कृतिके ही रक्षक

एवं प्रतिष्ठापक हैं।

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः
श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां
तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भा० ८। २४। ६१)

[११]

भगवान् कच्छप

अहंकार और महज्जनोंकी उपेक्षा अनर्थोंके कारण होते ही हैं। महर्षि दुर्वासा प्रसन्न थे। उन्होंने ऐरावतपर जाते हुए इन्द्रको अपने कण्ठकी पुष्पमाला दी। महेन्द्रने उसे गजराजके मस्तकपर डाल दिया। ऐरावतने सूँड़से उठाकर नीचे डाला और पैरसे कुचल दिया। 'तेरी श्री नष्ट हो जाय।' अपने प्रसादका अपमान देख महर्षिने शाप दिया और चले गये।

कहाँ ऋषिके अपमानसे श्रीहीन देवता और कहाँ आचार्य शुक्रके श्रद्धालु सेवक दैत्यराज बलि। दोनोंके युद्धमें देवता हार गये। स्वर्ग असुरोंका क्रीडोद्यान हो गया। बलिने तीनों लोकोंपर अधिकार कर लिया। देवता और क्या करते, वे ब्रह्माजीकी शरण गये। सबने मिलकर शेषशायी प्रभुसे प्रार्थना की।

'आप सब दैत्योंसे सन्धि कर लें। समस्त ओषधियाँ क्षीरसागरमें डालकर उसका मन्थन करें। मन्दराचलको मथानी बनावें और वासुकी नागको रस्सी। यह काम अकेले देवताओंसे न होगा। पहले महाविष निकलेगा, उससे भय मत करना। वस्तुओंमें लोभ करके लड़ना मत। अन्तमें जरा-मृत्यु-हारिणी सुधा प्रकट होगी।' भगवान्ने प्रकट होकर युक्ति बतायी।

इन्द्र गये दैत्यराजके समीप। कुशलतापूर्वक उन्होंने बन्धुत्वका स्मरण कराया। अमृतके लोभसे सन्धि हो गयी। देव-दैत्य दोनोंने मिलकर मन्दराचलको उखाड़ा। पर्वत अधिक दूर न जा सका। वह गिरा, बहुतसे लोग पिस उठे। अन्तमें वही भक्त-भयहारी स्मरण करनेपर पधारे। एक हाथसे उठाकर उन्होंने गरुडपर मन्दराचलको रख लिया।

पर्वत क्षीराब्धि-तटपर आया। समुद्रमें डालनेपर वह डूबने लगा। समस्त देवता और दैत्य मिलकर उसे सँभालनेमें असमर्थ थे। अन्ततः भगवान्ने नियुत योजन विशाल कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलको पीठपर धारण किया। उनकी पीठपर स्थित पर्वतसे मन्थन सम्पन्न हुआ।

एक कथा और—प्रलयमें भगवान् शेषशय्यापर योग-निद्राका आश्रय किये हुए थे। उनके शरीरसे आद्याशक्ति प्रकट हुईं। उसीसे इस ब्रह्माण्डके ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट हुए। शक्ति शवरूपमें ब्रह्माके पास गयी। उसे उन्होंने चारों ओरसे देखा, फलतः वे चतुर्मुख हो गये। विष्णुने उसे दूरसे लौटा दिया। सौ बार शरीर बदलनेपर शिवने उसे स्वीकार कर लिया।

शक्ति स्थिर हो गयी; किंतु ब्रह्मा सृष्टि न कर सके—पृथ्वी जो नहीं थी। भगवान् विष्णुने कर्णमलसे दो दैत्य उत्पन्न किये। वे दोनों रुष्ट होकर ब्रह्माजीको मारने दौड़े। भगवान् विष्णुने उन्हें मार डाला। उन दैत्योंके मेदसे मेदिनी—पृथ्वी बनी। उनकी अस्थियाँ पर्वत बनीं। पृथ्वीको स्थिर करनेके लिये भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया।

भगवान्के अवतार नित्य हैं। वही प्रभु पृथ्वीको धारण करते हैं, वही मन्दर धारण करके अमृत-मन्थनके हेतु बनते हैं। वही मनुष्यकी धृति बनते हैं और तभी मानव अक्षयधामके पथमें स्थिर होता है। सबके वही आधार हैं।

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिलेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति॥

(श्रीमद्भा० १२। १३। २)

[१२]

भगवान् धन्वन्तरि

बात समझमें आये या न आये; पर सत्य यही है कि सम्पूर्ण जड-चेतन जगत् दैवी जगत्से प्रकट हुआ है। वह परस्पर विकसित नहीं है। देवता एवं दैत्योंके सम्मिलित प्रयासके श्रान्त हो जानेपर क्षीरोदधिका मन्थन स्वयं क्षीरसागरशायी कर रहे थे। हलाहल, गौ, ऐरावत, उच्चैः-श्रवा अश्व, अप्सराएँ, कौस्तुभमणि, वारुणी, महाशंख,

कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, लक्ष्मीजी और कदलीवृक्ष उससे प्रकट हो चुके थे। अन्तमें हाथमें अमृतपूर्ण स्वर्णकलश लिये श्यामवर्ण, चतुर्भुज भगवान् धन्वन्तरि प्रकट हुए।

अमृत-वितरणके पश्चात् देवराज इन्द्रकी प्रार्थनापर भगवान् धन्वन्तरिने देव-वैद्यका पद स्वीकार कर लिया। अमरावती उनका निवास बनी। कालक्रमसे पृथ्वीपर मनुष्य रोगोंसे अत्यन्त पीड़ित हो गये। प्रजापति इन्द्रने धन्वन्तरिजीसे प्रार्थना की। भगवान्‌ने काशिराज दिवोदासके रूपमें पृथ्वीपर अवतार धारण किया। इनकी 'धन्वन्तरि-संहिता' आयुर्वेदका मूल ग्रन्थ है। आयुर्वेदके आदि आचार्य सुश्रुत मुनिने धन्वन्तरिजीसे ही इस शास्त्रका उपदेश प्राप्त किया।

[१३]

भगवान् मोहिनीरूपमें

क्षीरोदधिका मन्थन हुआ; जैसे ही धन्वन्तरि प्रकट हुए, प्रत्येक वस्तुके लिये झगड़नेवाले दैत्य उनके हाथसे अमृत-कलश छीनकर भागे। उनमेंसे प्रत्येक प्रथम अमृतपान करना चाहता था। किसीको किसीपर विश्वास नहीं था। 'यदि एक ही सब पी जाय तो?' कलशपर छीना-झपटी चल रही थी। देवता निराश खड़े थे। असुर भी समझ रहे थे कि यदि यह द्वन्द्व न मिटा तो अमृत व्यर्थ गिरकर नष्ट हो जायगा। कोई समाधान ज्ञात नहीं होता था।

'सुन्दरि! हम सब महर्षि कश्यपके पुत्र हैं। हममें इस कलशस्थ द्रवके लिये विवाद हो रहा है। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी—हममें इसका उचित विभाजन कर दो। हमने इसके लिये समान श्रम किया है।' एक अद्वितीय लावण्यवती नारी वहाँ प्रत्यक्ष हुई। सब उसके रूपसे मुग्ध थे। सब उसे आकृष्ट करना चाहते थे। असुरोंने उसीको मध्यस्थ बनाना चाहा। सब परस्पर इस निर्णयसे सहमत थे।

'तुम्हें मेरे कुल, शील आदिका पता नहीं, तुम मुझपर कैसे विश्वास कर रहे हो?' नारीने अपने कोकिल-कण्ठकी मधुरिमा भ्रूविलास, मन्दहास्यादिसे पूर्ण कर दी। असुर इस प्रत्याख्यानसे अधिक विश्वस्त हुए।

'मैं उचित विभाजन करूँ या अनुचित—तुम लोग बीचमें बाधा न दो, तभी इस कार्यको करूँगी।' बात ठीक ही है। मध्यस्थके निर्णयमें अपनी सम्मति बाधा दे तो निर्णय कैसे होगा।

देव-दैत्य दोनों वर्गोंने स्नान किया, नूतन अनाहत वस्त्र धारण किये, अग्निको आहुतियाँ दीं, विप्रोंसे स्वस्तिपाठ कराया और तब पूर्वाग्र कुशोंके आसनोंपर पंक्तिमें बैठ गये। उस नारीके आदेशसे देवता पृथक् और दैत्य पृथक् पंक्तिमें बैठे।

'यह असुर है!' सूर्य एवं चन्द्रने नेत्रोंसे संकेत किया। नारी असुरोंके समीपसे चल रही थी और दूरस्थ सुरोंको अमृत-पान करा रही थी। असुरोंको उससे प्रेम पानेकी सम्भावना थी। वे उसकी भाव-भंगीसे मुग्ध थे। एक स्त्रीसे विवाद न करनेकी प्रतिज्ञा करके फिर झगड़ना उचित नहीं था। वे मौन बैठे थे। छायापुत्र स्वर्भानु (राहु) धैर्य न रख सका। वह देवताओंका रूप धारण करके चन्द्रमा और सूर्यके समीप जा बैठा। जैसे ही उसे अमृत-घूँट मिला, दोनों देवताओंने संकेत कर दिया।

'यह तो विष्णु हैं!' असुर चौंके। नारी सहसा चतुर्भुज घनश्याम, पीताम्बरधारी पुरुष हो गयी। उन परम प्रभुके चक्रसे राहुका मस्तक कटा पड़ा था। असुरोंने शस्त्र उठाये। देवासुर-संग्राम होने लगा।

भगवान्‌की यह नित्य लीला है। जगत् भी उसीका एक रूप है। **'कामिनां बहु मन्तव्यं संकल्पप्रभवोदयम्'** कामनाके वश पुरुषके लिये अभीष्ट-सिद्धि ही सब कुछ है। यह दृश्य जगत्, इसके पदार्थ, यह आकर्षण—सब उसी मायापतिकी मोहिनी है। सब कामके वश उसे भूलकर इस मायारूपमें मुग्ध हैं। यह आसुर भाव अमृतसे वंचित कर रहा है। वे प्रभु दया करें, तभी उनका वास्तविक रूप बुद्धिमें प्रतिष्ठित हो।

असदविषयमंघ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत् सिन्धुमध्यम्।
कपटयुवतिवेषो मोहयन् यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि॥

(श्रीमद्भा० ८। १२। ४७)

[१४]

भगवान् नृसिंह

धराके उद्धारके समय भगवान्‌ने वाराहरूप धारण करके हिरण्याक्षका वध किया। उसका बड़ा भाई हिरण्यकशिपु

बड़ा रुष्ट हुआ। उसने अजेय होनेका संकल्प किया। सहस्रों वर्ष बिना जलके वह सर्वथा स्थिर तप करता रहा। ब्रह्माजी संतुष्ट हुए। दैत्यको वरदान मिला। उसने स्वर्गपर अधिकार कर लिया। लोकपालोंको मार भगा दिया। स्वतः सम्पूर्ण लोकोंका अधिपति हो गया। देवता निरुपाय थे। असुरको किसी प्रकार वे पराजित नहीं कर सकते थे।

'बेटा, तुझे क्या अच्छा लगता है?' दैत्यराजने एक दिन सहज ही अपने चारों पुत्रोंमें सबसे छोटे प्रह्लादसे पूछा।

'इन मिथ्या भोगोंको छोड़कर वनमें श्रीहरिका भजन करना!' बालक प्रह्लादका उत्तर स्पष्ट था। दैत्यराज जब तप कर रहे थे, देवताओंने असुरोंपर आक्रमण किया। असुर उस समय भाग गये थे। यदि देवर्षि न छुड़ाते तो दैत्यराजकी पत्नी कयाधूको इन्द्र पकड़े ही लिये जाते थे। देवर्षिने कयाधूको अपने आश्रममें शरण दी। उस समय प्रह्लाद गर्भमें थे। वहींसे देवर्षिके उपदेशोंका उनपर प्रभाव पड़ चुका था।

'इसे आप लोग ठीक-ठीक शिक्षा दें!' दैत्यराजने पुत्रको आचार्य शुक्रके पुत्र शण्ड तथा अमर्कके पास भेज दिया। दोनों गुरुओंने प्रयत्न किया। प्रतिभाशाली बालकने अर्थ, धर्म और कामकी शिक्षा सम्यक् रूपसे प्राप्त की; परंतु जब पुनः पिताने उससे पूछा तो उसने श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—इन नौ भक्तियोंको ही श्रेष्ठ बताया।

'इसे मार डालो। यह मेरे शत्रुका पक्षपाती है।' रुष्ट दैत्यराजने आज्ञा दी। असुरोंने आघात किया। भल्ल-फलक मुड़ गये, खड्ग टूट गया, त्रिशूल टेढ़े हो गये; पर वह कोमल शिशु अक्षत रहा। दैत्य चौंका। प्रह्लादको विष दिया गया; पर वह जैसे अमृत हो। सर्प छोड़े गये उनके पास और वे फण उठाकर झूमने लगे। मत्त गजराजने उठाकर उन्हें मस्तकपर रख लिया। पर्वतसे नीचे फेंकनेपर वे ऐसे उठ खड़े हुए, जैसे शय्यासे उठे हों। समुद्रमें पाषाण बाँधकर डुबानेपर दो क्षण पश्चात् ऊपर आ गये। घोर चितामें उनके लिये अग्निकी लपटें शीतल प्रतीत हुईं। गुरुपुत्रोंने उन्हें मारनेके लिये मन्त्र-बलसे कृत्या (राक्षसी) उत्पन्न की तो वह गुरुपुत्रोंको ही प्राणहीन कर गयी। प्रह्लादने ही प्रभुकी प्रार्थना करके उन्हें जीवित किया। अन्तमें वरुणपाशसे बाँधकर गुरुपुत्र पुनः उन्हें पढ़ाने ले गये। वहाँ प्रह्लाद समस्त बालकोंको भगवद्भक्तिकी शिक्षा देने लगे। भयभीत गुरुपुत्रोंने दैत्येन्द्रसे प्रार्थना की—'यह बालक सब बच्चोंको अपना ही पाठ पढ़ा रहा है!'

'तू किसके बलसे मेरे अनादरपर तुला है?' हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बाँध दिया और स्वयं खड्ग उठाया।

'जिसका बल आपमें तथा समस्त चराचरमें है!' प्रह्लाद निर्भय थे।

'कहाँ है वह?'

'मुझमें, आपमें, खड्गमें, सर्वत्र!'

'सर्वत्र? इस स्तम्भमें भी?'

'निश्चय!' प्रह्लादके वाक्यके साथ दैत्यने खम्भेपर घूसा मारा; फिर तो केवल वही नहीं, अपितु समस्त लोक चौंक गये। स्तम्भसे बड़ी भयंकर गर्जनाका शब्द हुआ। एक ही क्षण पश्चात् दैत्यने देखा—समस्त शरीर मनुष्यका और मुख सिंहका, बड़े-बड़े नख एवं दाँत, प्रज्वलित नेत्र, स्वर्णिम सटाएँ, बड़ी भीषण आकृति खम्भेसे प्रकट हुई। जब दैत्यके अनुचर झपटे तो वे मारे गये अथवा भाग गये। हिरण्यकशिपुको भगवान्‌ने पकड़ लिया।

'मुझे ब्रह्माजीने वरदान दिया है!' छटपटाते हुए दैत्य चिल्लाया। 'दिनमें या रातमें न मरूँगा; कोई देव, दैत्य, मानव, पशु मुझे न मार सकेगा। भवनमें या बाहर मेरी मृत्यु न होगी। समस्त शस्त्र मुझपर व्यर्थ सिद्ध होंगे। भूमि, जल, गगन—सर्वत्र मैं अवध्य हूँ।'

'यह सन्ध्याकाल है। मुझे देख कि मैं कौन हूँ। यह द्वारकी देहली, ये मेरे नख और यह मेरी जंघापर पड़ा तू।' अट्टहास करके भगवान्‌ने नखोंसे उसके वक्षको विदीर्ण कर डाला।

वह उग्ररूप—देवता डर गये, ब्रह्माजी अवसन्न हो गये, महालक्ष्मी दूरसे लौट आयीं; पर प्रह्लाद—वे तो प्रभुके वरप्राप्त पुत्र थे। उन्होंने स्तुति की। भगवान् नृसिंहने गोदमें उठाकर उन्हें बैठा लिया। स्नेहसे चाटने लगे। प्रह्लाद दैत्यपति हुए।

[१५]

भगवान् वामन

श्रीहरि जिसपर कृपा करें, वही सबल है। उन्हींकी कृपासे देवताओंने अमृत-पान किया। उन्हींकी कृपासे असुरोंपर युद्धमें वे विजयी हुए। पराजित असुर मृत एवं आहतोंको लेकर अस्ताचल चले गये। असुरेश बलि इन्द्रके वज्रसे मृत हो चुके थे। आचार्य शुक्रने अपनी संजीवनी विद्यासे बलि तथा दूसरे असुरोंको भी जीवित एवं स्वस्थ कर दिया। बलिने आचार्यकी कृपासे जीवन प्राप्त किया था। वे सच्चे हृदयसे आचार्यकी सेवामें लग गये। शुक्राचार्य प्रसन्न हुए। उन्होंने यज्ञ कराया। अग्निसे दिव्य रथ, अक्षय त्रोण तथा अभेद्य कवच आदि प्रकट हुए।

आसुरी सेना अमरावतीपर चढ़ दौड़ी। इन्द्रने देखते ही समझ लिया कि इस बार देवता इस सेनाका सामना नहीं कर सकेंगे। बलि ब्रह्मतेजसे पोषित थे। देवगुरुके आदेशसे देवता स्वर्ग छोड़कर भाग गये। अमर-धाम असुर-राजधानी बना। शुक्राचार्यने बलिका इन्द्रत्व स्थिर करनेके लिये अश्वमेध-यज्ञ कराना प्रारम्भ किया। सौ अश्वमेध करके बलि नियमसम्मत इन्द्र बन जायँगे; फिर उन्हें कौन हटा सकता है?

'स्वामी, मेरे पुत्र मारे-मारे फिरते हैं!' देवमाता अदिति अत्यन्त दुःखी थीं। अपने पति महर्षि कश्यपसे उन्होंने प्रार्थना की। महर्षि तो एक ही उपाय जानते हैं—भगवान्‌की शरण, उन सर्वात्माकी आराधना। अदितिने फाल्गुनके शुक्ल पक्षमें बारह दिन पयोव्रत करके भगवान्‌की आराधना की। प्रभु प्रकट हुए। अदितिको वरदान मिला। उन्हींके गर्भसे भगवान् प्रकट हुए। शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज पुरुष अदितिके गर्भसे जब प्रकट हुए, तत्काल वामन ब्रह्मचारी बन गये। महर्षि कश्यपने ऋषियोंके साथ उनका उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया। भगवान् वामन पितासे आज्ञा लेकर बलिके यहाँ चले।

नर्मदाके उत्तर-तटपर असुरेन्द्र बलि अश्वमेध-यज्ञमें दीक्षित थे। यह उनका अन्तिम अश्वमेध था। छत्र, पलाश, दण्ड तथा कमण्डलु लिये, जटाधारी, अग्निके समान तेजस्वी वामन ब्रह्मचारी वहाँ पधारे। बलि, शुक्राचार्य, ऋषिगण—सभी उस तेजसे अभिभूत अपनी अग्नियोंके साथ उठ खड़े हुए। बलिने उनके चरण धोये, पूजन किया और प्रार्थना की कि जो भी इच्छा हो, वे माँग लें।

'मुझे अपने पैरोंसे तीन पद भूमि चाहिये!' बलिके कुलकी शूरता, उदारतादिकी प्रशंसा करके वामनने माँगा। बलिने बहुत आग्रह किया कि और कुछ माँगा जाय; पर जो माँगना था, वामनने वही माँगा था।

'ये साक्षात् विष्णु हैं!' आचार्य शुक्रने सावधान किया। समझाया कि इनके छलमें आनेसे सर्वस्व चला जायगा।

'ये कोई हों, प्रह्लादका पौत्र देनेको कहकर अस्वीकार नहीं करेगा!' बलि स्थिर रहे। आचार्यने ऐश्वर्य-नाशका शाप दे दिया। बलिने भूमिदानका संकल्प किया और वामन विराट् हो गये। एक पदमें पृथ्वी, एकमें स्वर्गादि लोक तथा शरीरसे समस्त नभ व्याप्त कर लिया उन्होंने। उनका वाम पद ब्रह्मलोकसे ऊपरतक गया। उसके अङ्गुष्ठ-नखसे ब्रह्माण्डका आवरण तनिक टूट गया। ब्रह्मद्रव वहाँसे ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट हुआ। ब्रह्माजीने भगवान्‌का चरण धोया और चरणोदकके साथ उस ब्रह्मद्रवको अपने कमण्डलुमें ले लिया। वही ब्रह्मद्रव गङ्गाजी बना।

'तीसरा पद रखनेका स्थान कहाँ है?' भगवान्‌ने बलिको नरकका भय दिखाया। संकल्प करके दान न करनेपर तो नरक होगा ही।

'इसे मेरे मस्तकपर रख लें!' बलिने मस्तक झुकाया। प्रभुने वहाँ चरण रखा। बलि गरुडद्वारा बाँध लिये गये।

'तुम अगले मन्वन्तरमें इन्द्र बनोगे! तबतक सुतलमें निवास करो। मैं नित्य तुम्हारे द्वारपर गदापाणि-समन्वित उपस्थित रहूँगा।' दयामय द्रवित हुए। प्रह्लादके साथ बलि सब असुरोंको लेकर स्वर्गाधिक-ऐश्वर्यसम्पन्न सुतल लोकमें पधारे। शुक्राचार्यने भगवान्‌के आदेशसे यज्ञ पूरा किया।

महेन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हुआ। ब्रह्माजीने भगवान् वामनको उपेन्द्र-पद प्रदान किया। वे इन्द्रके रक्षक होकर अमरावतीमें अधिष्ठित हुए। बलिके द्वारपर गदापाणि प्रभु द्वारपाल तो बन ही चुके थे। त्रेतामें दिग्विजयके लिये रावणने सुतल-प्रवेशकी

धृष्टता की। बेचारा असुरेश्वरके दर्शनतक न कर सका। बलिके द्वारपालने पैरके अँगूठेसे उसे फेंक दिया। पृथ्वीपर सौ योजन दूर लङ्कामें आकर गिरा था वह।

[१६]

भगवान् परशुराम

'यह गौ आप मुझे दे दें।' हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन ससैन्य महर्षि जमदग्निके आश्रमके पाससे निकले थे। महर्षिने उनको आतिथ्यके लिये निमन्त्रित किया। आश्रमकी कामधेनुकी कृपासे सबका सत्कार हुआ। राजाके मनमें लोभ आया। जब महर्षिने गौ माँगनेपर भी न दी तो बलपूर्वक उसने छीन ली। वह अपने बलके गर्वसे उन्मत्त हो रहा था।

'राम, तुमने अधर्म किया। हम ब्राह्मण हैं। हमें क्षमा करना चाहिये।' परशुराम वनसे लौटकर राजाका अन्याय सह न सके थे। अकेले ही परशु लेकर ससैन्य सहस्रार्जुनका युद्धमें वध करके वे कामधेनु लौटा लाये थे। महर्षि जमदग्नि संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने पुत्रको वर्षभर समस्त तीर्थोंमें प्रायश्चित्त-हेतु घूमनेका आदेश दिया।

'राम, हा राम!' भगवान् परशुराम यात्रासे लौटे। दूरसे माता रेणुकाका करुणस्वर उन्होंने सुना। अग्निशालामें ध्यानस्थ महर्षि जमदग्निको सहस्रार्जुनके पुत्रोंने मार दिया था और उनका मस्तक लेकर भाग गये थे। भगवान् परशुरामके नेत्रोंने अग्निवर्ण धारण किया। उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे हीन कर दिया। स्यमन्त पञ्चक स्थानमें राजाओंके रक्तसे नौ सरोवर बन गये। परशुरामजीने यज्ञ किया। पिताके मस्तकको लाकर शरीरपर स्थापित करके मन्त्रपाठ किया। महर्षि जमदग्नि जीवित हुए। उन्हें सप्तर्षियोंमें पञ्चम स्थान प्राप्त हुआ।

'राम! तुम अब मेरी भूमिसे चले जाओ!' ऋषिगण बार-बार क्षत्रियोंके गर्भस्थ बालकोंकी रक्षा करते। उनको राजा बनाते। परशुरामजी उनका वध कर डालते। अन्तिम बार जब कश्यपजीको उन्होंने समस्त पृथ्वी दान कर दी, तब महर्षि कश्यपने उन्हें आदेश दिया कि 'अब मेरी भूमिपर कभी रात्रिवास न करना।' तबसे परशुरामजी महेन्द्र-पर्वतपर निवास करते हैं। वे कल्पान्त अमर हैं। अनेक बार योग्य अधिकारी उनके दर्शन पाते हैं।

[१७]

भगवान् व्यास

महर्षि पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास हैं। उत्पन्न होते ही वे मातासे आज्ञा लेकर तपस्या करने चले गये। द्वीपमें जन्म होनेसे व्यासजी 'द्वैपायन' कहे गये। उनका वर्ण घननील है, अतः उन्हें 'कृष्णद्वैपायन' कहा जाता है।

आदियुगमें वेद एक ही था। महर्षि अङ्गिराने उसमेंसे सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछे संगृहीत किया। यह संग्रह छान्दस, आङ्गिरस या अथर्ववेद कहलाया। शेष भाग एक ही रूपमें था। भगवान् व्यासने उसमेंसे ऋचाओं, गायनयोग्य मन्त्रों और गद्यभागको पृथक्-पृथक् संकलित किया। इस प्रकार ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका वर्तमान स्वरूप निश्चित हुआ। इस कार्यसे वे वेदव्यास कहलाये।

स्त्री, शूद्र तथा पतित द्विज (द्विजबन्धु) वेदपाठके अधिकारी नहीं थे। उत्तरोत्तर द्विजबन्धुओंकी संख्या बढ़ती जा रही थी। उनका उद्धार भी होना ही चाहिये। वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराण भी लुप्त हो रहे थे। भगवान् व्यासने पुराणोंका संकलन किया। निष्ठाके अनुकूल उनमें आराध्यके रूपकी प्रतिष्ठा हुई। वेदार्थ सबके लिये सहज-सुलभ हो गया। अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी उन्हींके हैं।

पुराण बहुत विस्तृत हैं। उनमें कल्पभेदसे चरितोंमें भेद आया है। समस्त चरित इस कल्पके अनुरूप और समस्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्षसम्बन्धी सिद्धान्त एकत्र करनेके विचारसे उन्होंने महाभारतकी रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वेद' कहा गया। श्रुतिमें जो कुछ है, महाभारतमें भगवान् व्यासने उसको एकत्र कर दिया है। भगवान् व्यास बोलते जाते थे और साक्षात् गणेशजी लिख रहे थे। इस प्रकार यह पञ्चम वेद लिपिबद्ध हुआ।

उपासना तथा साधनकी प्रतिष्ठा दर्शनशास्त्रके द्वारा होती है। श्रुतियोंमें भगवान्‌के जिस निर्विशेष रूपका प्रतिपादन हुआ है, कोई दर्शन उसे व्यक्त नहीं करता था। भगवान् व्यासने उन सिद्धान्तोंको सूत्ररूपमें ग्रथित किया। वही सूत्रग्रन्थ वेदान्त-दर्शन या उत्तरपूर्वमीमांसा कहा जाता है।

भारतके सम्प्रदायोंमें उसीको मानकर चलनेकी प्राचीन प्रणाली है।

भगवान् व्यास कल्पान्ततक रहेंगे। श्रीआद्यशंकराचार्यने उनके दर्शन पाये थे और भी अनेक महापुरुषोंको उनका साक्षात् लाभ हुआ, यह वर्णन मिलता है। उनका आश्रम बदरीनाथ धाम है, पर वे लोकमें पर्यटन करते रहते हैं। उच्च कोटिके अधिकारी उन्हें देख पाते हैं।

हिन्दू-संस्कृतिका वर्तमान स्वरूप भगवान् व्यासद्वारा सँवारा एवं सजाया गया है। यह अनादि सनातन संस्कृति आज भगवान् व्यासके पुराणों, महाभारत तथा दूसरे ग्रन्थोंपर अवलम्बित है। भगवान्‌ने स्वयं इस रूपमें अवतार धारण करके कलिके मानवोंके लिये श्रुतिका तात्पर्य सरल कर दिया है।

[१८]

भगवान् श्रीराम

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

(श्रीमद्भा० ९। १०। ४)

अयोध्याका सिंहासन शून्य होने जा रहा था। रघुकी संतति-परम्पराका इस प्रकार कहीं उच्छेद हो सकता है। महाराज दशरथने तीन विवाह किये, अवस्था अधिक हो गयी; किंतु उस चक्रवर्ती साम्राज्यका उत्तराधिकारी किसी रानीकी गोदमें न आया। रघुवंशके परम रक्षक तो महर्षि वसिष्ठ हैं। महाराजने अपने उन कुलगुरुकी शरण ली। गुरुदेवके आदेशसे शृंगी ऋषि आमन्त्रित हुए। पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान हुआ। साक्षात् अग्निदेवने प्रकट होकर चरु प्रदान किया। उस दिव्य चरुको ग्रहणकर रानियाँ गर्भवती हुईं।

देवता लङ्काधिप पुलस्त्यके पौत्र राक्षसराज रावणसे संत्रस्त हो गये थे। अपने ऐश्वर्यमें मत्त वह कुबेरका छोटा भाई वेदज्ञ होनेपर भी राक्षस हो गया। दानवेन्द्र मयने अपनी पुत्री मन्दोदरीका उससे विवाह कर दिया। श्वशुरकुलसे ही उसकी प्रकृति एक हो गयी। ऋषियों, ब्राह्मणों, देवताओं तथा धर्मका वह शत्रु हो गया। यज्ञ बलपूर्वक रोक दिये गये, पूजन-स्थल ध्वस्त किये गये। तपोवन राक्षसोंने जला दिये। ऋषि-मुनि राक्षसोंके भक्ष्य हो गये। देवराज इन्द्र पराजित हो चुके थे। लोकपालगण रावणकी आज्ञा माननेपर विवश थे। अन्ततः धरा यह अधर्म-भार कहाँतक सहे! पृथ्वीकी आर्त पुकार, देवताओंकी प्रार्थना, स्रष्टाकी चिन्ता—सबने उन परात्पर प्रभुको आकृष्ट किया। अयोध्यानरेश चक्रवर्ती महाराज दशरथकी बड़ी रानी कौसल्याकी गोदमें चैत्रकी रामनवमीके मध्याह्नमें वे साकेताधीश शिशु बनकर आ गये। उनके अंश भी आये—माता सुमित्राकी गोद दो स्वर्ण-गौर कुमारोंसे भूषित हुई और कैकेयीजीने भावमूर्ति नवजलधर वर्ण रूपराशि भरतको प्राप्त किया।

चारों कुमार बड़े हुए। कुलगुरुसे शास्त्र एवं शस्त्रकी शिक्षा मिली। सहसा एक दिन महर्षि विश्वामित्र आ पहुँचे। उनके आश्रममें प्रत्येक पर्वपर राक्षस उपद्रव करते थे। महर्षिको राम-लक्ष्मणकी आवश्यकता थी। केवल दो कुमार—अवधकी चतुरङ्गिणी सेनाको तपोवनमें ले जाना इष्ट नहीं था। चक्रवर्ती महाराजकी चाहे जितनी अनिच्छा हो, सृष्टि-समर्थ विश्वामित्रजीका आग्रह कैसे टले? श्रीरामने भाईके साथ प्रस्थान किया। राक्षसी ताड़का मार्गमें ही एक बाणकी भेंट हो गयी। मुनिवरका यज्ञ रक्षित हुआ। सदल सुबाहु मारा जा चुका था और उसका भाई मारीच रामके 'फल'-हीन बाणके आघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर जा गिरा था।

महर्षिको तपोवनमें ही विदेहराज जनकका आमन्त्रण मिला। उनकी अयोनिजा कन्या सीताका स्वयंवर हो रहा था। महर्षिके साथ दोनों अवध-कुमार मिथिलाको धन्य करने पधारे। गौतमाश्रममें पाषाणभूता अहल्या श्रीरामकी चरण-रजका स्पर्श पाकर पतिके शापसे मुक्त हो गयी और अपने पति-धामको चली गयी। 'जनकपुत्री भूमिसुता उसे वरण करेंगी, जो शंकरके महाधनुष पिनाकको तोड़ेगा।' मिथिलानरेशकी यह प्रतिज्ञा श्रीरामने पूर्ण की। श्रीपरशुरामजी अपने आराध्यदेवके धनुर्भंगसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए; परंतु श्रीरामके शील, शक्ति एवं तेजसे गर्वरहित होकर लौट गये। अयोध्यानरेशको आमन्त्रण मिला। उनके चारों कुमार जनकपुरमें विवाहित हुए।

महाराज चाहते हैं, प्रजा चाहती है, गुरुदेव चाहते हैं

कि श्रीरामका राज्याभिषेक हो; परंतु राम राज्य करें तो धराका भार कौन दूर करे? देवताओंने प्रेरणा की। माता कैकेयीको मोह हुआ। 'भरत-शत्रुघ्न ननिहाल हैं और चुपचाप रामको राज्य दिया जा रहा है!' संदेह स्वयं पापका मूल है। 'भरतको राज्य और रामको चतुर्दश वर्ष वनवास!' छोटी रानीने महाराजको वचनबद्ध करके वरदान माँगा। पिताके सत्यके रक्षार्थ रघुवंशविभूषण वल्कलधारी होकर प्रातः वनको विदा हुए। लक्ष्मण और श्रीजानकी उनसे पृथक् कैसे रह सकते हैं!

श्रीराम भाई एवं पत्नीके साथ वन गये। महाराजने प्रिय पुत्रके वियोगमें शरीर छोड़ दिया। भरत—उनकी दशा, दुःख, वेदना कौन कैसे कहे? गुरुका आदेश ननिहालमें चरने सुनाया था। अयोध्या आकर पिताकी अन्त्येष्टि करनी पड़ी। समस्त समाज लेकर श्रीरामको चित्रकूट लौटाने गये, पर वहाँसे भी चरण-पादुका लेकर लौटना पड़ा। भरत बड़े भाईकी चरण-पादुका लेकर लौटे। अयोध्याका चक्रवर्ती सिंहासन उन पादुकाओंसे भूषित हुआ। रामहीन अयोध्यामें भरत रहेंगे? उन्होंने नन्दिग्राममें ***'महि खनि कुस साथरी सँवारी।'*** और 'गोमूत्र-यावक' (गोबरसे निकले जौको गोमूत्रमें पकाकर) उसके आहारपर तप करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत करना स्थिर किया।

श्रीराम चित्रकूटसे आगे चले। अयोध्यासे ही महर्षियोंके दर्शनकी सुलालसा थी। प्रयागमें भरद्वाजजी, आगे महामुनि वाल्मीकिके दर्शन हुए ही थे। चित्रकूटके तो महर्षि अत्रि ही कुलपति थे। आगे शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्यादिके दर्शन करके दण्डकारण्यको पवित्र किया उन्होंने। असुर विराध चित्रकूटसे निकलते ही मिला और मारा गया। पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनी। कुछ वर्ष वहाँ शान्तिसे व्यतीत हुए। गृध्रराज जटायुसे परिचय हुआ।

उस दिन रावणकी बहन कुलटा शूर्पणखा कहींसे घूमती-घामती आ पहुँची। मर्यादापुरुषोत्तम वासना एवं दुष्टोंका निग्रह तो करते ही। नाक-कान कटनेपर उसने खर-दूषणसे पुकार की। वे असुर चौदह सहस्र सेनाके साथ आये और अकेले श्रीराघवेन्द्रके शरोंके भोग हो गये। शूर्पणखा रावणके पास पहुँची। रावणने मारीचको साथ लिया। स्वर्ण-मृगके पीछे श्रीजानकीकी इच्छासे श्रीराम दौड़े। मारीचका छल सफल हुआ। वह शराघातसे मरा, किंतु रावण एकाकिनी जानकीको हरण करनेमें सफल हो गया। लङ्काके अशोकवनमें वह विश्वधातृ बंदिनी बनीं।

श्रीराम लौटे मृगकी वञ्चनाका दण्ड देकर। आश्रम शून्य था। अन्वेषण प्रारम्भ हुआ। आहत जटायु मिले। वे दशाननको रोकनेके प्रयत्नमें छिन्नपक्ष हुए थे। श्रीरामके चरणोंमें उनका शरीर छूटा। राघवने अपने कर-कमलोंसे उनकी अन्त्येष्टि की। कबन्ध असुरका वध और शबरीके बेरोंका आस्वादन करते वे पम्पासर पहुँचे। वालीसे निर्वासित सुग्रीवको शरण मिली और दूसरे ही दिन जब वाली श्रीरामके बाणसे परधाम पधारे, सुग्रीव किष्किन्धाधीश हो गये। ऋष्यमूकपर राघवने वर्षा-ऋतु व्यतीत की। शरदागममें वानर-भालु सीतान्वेषणके लिये निकले।

श्रीपवनकुमार शतयोजन सागर पार लङ्कामें विदेह नन्दिनीका दर्शन कर आये। स्वर्णपुरी उनकी पूँछकी लपटोंमें जल चुकी थी। श्रीरामने ससैन्य प्रस्थान किया। मदान्ध रावणसे पादताडित विभीषण उन विश्व-शरणदकी शरण आ गये। सागरपर सेतु बना और वह सुरासुर-अगम्य पुरी वानर-भालुओंसे धर्षित होने लगी। राक्षस-सेनानी मारे जाने लगे। रणभूमिने रावणपुत्र इन्द्रजित् तथा कुम्भकर्णकी आहुति ले ली। अन्तमें दशाननका वध करके श्रीरामने सुर-कार्य पूर्ण कर दिया।

भरत चौदह वर्षसे एक दिन अधिक प्रतीक्षा न करेंगे। उनके प्राण इस अवधिमें आबद्ध हैं। पुष्पक सज्जित हुआ। श्रीराम भाई तथा श्रीजानकी एवं सुग्रीव, विभीषण, हनुमान्, अङ्गदादि प्रधान नायकोंके साथ उस दिव्य विमानसे अयोध्या पधारे। पुरवासियोंकी, माताओंकी, भरतकी चिरप्रतीक्षा सफल हुई। श्रीराम कोसलके चक्रवर्ति-सिंहासनपर वैदेहीके साथ विराजमान हुए।

'राम-राज्य'—सुशासन, सुव्यवस्था, धर्म, शान्ति, सदाचारादिकी पूर्णताके द्योतनके लिये आज भी मनुष्यके पास इससे सुन्दर शब्द नहीं। ग्यारह सहस्र वर्ष वह दिव्य शासन धराको कृतार्थ करता रहा। श्रीवाल्मीकीय रामायण और गोस्वामी तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानस श्रीरामके

मङ्गलमय चरितसे लोकमें कल्याणका प्रसार करते हैं। भगवान् व्यासके अतिरिक्त अनेक संस्कृत, हिंदी तथा अन्य भाषाओंके कवियों, विद्वानोंने अपनी वाणी राम-गुणगानसे पवित्र की है।

श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। हिंदू-संस्कृतिकी पूर्ण प्रतिष्ठा उनके चरितमें हुई है। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रके लिये उसमें आदर्श हैं। हिंदू-संस्कृतिका स्वरूप 'श्रीरामचरित' के दर्पणमें ही पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुआ है। भारतका वह आदर्श आज विश्व-मानवका गेय-ध्येय बने, तभी मानव सुसंस्कृत बन सकेगा।

[१९]

भगवान् बलराम

श्रीकृष्णावतार तो पिछले द्वापरमें सत्ताईस कलियुगोंके पश्चात् हुआ था। द्वापरमें पृथ्वीका भार हरण करने तो भगवान् बलराम ही प्रायः पधारते हैं। उन्हींको श्रुतियाँ द्वापरका युगावतार कहती हैं। माता देवकीके सप्तम गर्भमें वे पधारे। योगमायाने गोकुलमें नन्दबाबाके यहाँ स्थित रोहिणीजीमें उन्हें पहुँचा दिया। इस प्रकार वे सङ्कर्षण कहलाये। इनकी गोकुल, मथुरा और द्वारकाकी कई लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत और आनन्ददायिनी हैं।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर नित्य अभिन्न हैं। उनकी चरित-चर्चा एक दूसरेसे पृथक्-जैसे कुछ है ही नहीं। गोकुलमें दोनोंकी संग-संग बालक्रीडा और वहाँसे वृन्दावन-प्रस्थान। बहुत थोड़े चरित हैं, जब श्यामसुन्दरके साथ उनके अग्रज नहीं थे। ऐसे ही बलरामजी अपने अनुजसे पृथक् बहुत कम रहे हैं।

वहाँ कंस-प्रेरित असुर प्रलम्ब आया था। श्रीकृष्णको तो कोई साथी चाहिये खेलनेके लिये। एक नवीन गोप-बालकको देखा और मिला लिया अपने दलमें। असुरने श्यामके दैत्य-दलन-चरित सुने थे। उसे उनसे भय लगा। अपने छद्मवेशमें वह दाऊको पीठपर बैठानेमें सफल हुआ और भागा। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका धारक है, उसे कौन ले जा सकता है। दैत्यको अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ा। एक घूसा पड़ा तत्क्षण उसके मस्तकपर और फिर क्या सिर बच रहना था? उस दिन सखा कह रहे थे कि उन्हें पक्व ताल-फलोंकी सुरभि लुब्ध कर रही है। सखा कुछ चाहें तो वह अप्राप्य कैसे रहे! असुर-गर्दभ धेनुक और उसका गर्दभ-परिवार—सब क्रीडामें ही नष्ट हो गये। प्रकृतिका उन्मुक्त दान कानन है। इन दुष्ट गर्दभोंने उसे पशुओं तकके लिये अगम्य बना दिया था। भगवान् बलरामने सखाओंको ताल-फल प्रदान करनेके बहाने सबके लिये निर्बाध कर दिया उसे।

कन्हैया तो महाचंचल है; किंतु दाऊ भैया गम्भीर परमोदार, शान्त हैं। श्याम उन्हींका संकोच भी करता है। वे भी अपने अनुजकी इच्छाको ही जैसे देखते रहते हैं। व्रज-लीलामें जब श्यामने शङ्खचूड़को मारा, तब उसने समस्त गोप-नारियोंके सम्मुख उस यक्षका शिरोरत्न अपने अग्रजको उपहाररूपमें दिया। कुवलयापीड—कंसका उन्मत्त गजराज दोनों भाइयोंकी थप्पड़ों और घूसोंकी भेंट हुआ और मल्लशालामें चाणूरको श्यामने पछाड़ा तो मुष्टिक बलरामजीकी मुष्टिकाकी भेंट हो गया।

दोनों भाइयोंने गुरुगृहमें साथ-साथ निवास किया। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पड़े और यदि श्रीकृष्णचन्द्रने अग्रजसे उसे छोड़ देनेकी प्रार्थना न की होती तो वह पकड़ लिया गया था तथा बलरामजी उसे मारने ही जा रहे थे। जिसे सत्रह युद्धोंमें पकड़कर छोड़ दिया, उसीके सामनेसे अठारहवीं बार भागना कोई अच्छी बात नहीं थी। किया क्या जाय? श्रीकृष्णने प्रातःसे वह दिन पलायनके लिये स्थिर कर लिया था। कालयवनके सम्मुख वे अकेले भागे। जरासन्धके सम्मुख भागनेमें इतना आग्रह किया कि अग्रजको साथ भागना ही पड़ा।

'यह भी कोई बात है कि केवल हँसा जाय! जो बना-बिगाड़ न सकता हो, वह हँसे या पश्चात्ताप करे?' बलरामजीका विवाह हुआ। रेवतीजी सत्ययुगकी कन्या ठहरीं। स्वभावतः बहुत लंबी थीं। श्यामसुन्दर तो सदाके परिहासप्रिय हैं। बलरामजीने पत्नीको अपने अनुरूप ऊँचाईमें पहुँचा दिया।

'श्याम अकेला गया है?' कुण्डिनपुरके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीके विवाहमें शिशुपालके साथ जरासन्धादि ससैन्य आ रहे हैं, यह समाचार तो मिल ही चुका था। वहाँ अकेले श्रीकृष्ण कन्या-हरण करने गये, यह तो अच्छा नहीं

हुआ। बलरामजीने यादवी सेना सज्जित की। वे इतनी शीघ्रतासे चले कि श्रीकृष्ण मार्गमें ही मिल गये। श्यामसुन्दरको केवल रुक्मिणीजीको लेकर चल देना था। शिशुपाल और उसके साथी तो बलरामके सैन्यसमूहसे ही पराजित हुए।

'कृष्ण! सम्बन्धियोंके साथ तुम्हें ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये।' बलरामजी राजाओंकी सेनाको परास्त करके आगे बढ़े तो रुक्मीकी सेना आ गयी। उसके साथ उलझनेमें कुछ विलम्ब हुआ। आगे आकर देखा तो छोटे भाईने अपने ही साले रुक्मीको पराजित करके रथमें बाँध रखा है। उसके केश, श्मश्रु आदि मुण्डित कर दिये हैं। बड़ी दया आयी। छुड़ा दिया उसको; परंतु आगे चलकर रुक्मीने अपने स्वभाववश बलरामजीका अपमान किया, तब वह उन्हींके हाथों मारा गया।

दुर्योधन भी मदमत्त हो उठा था। क्या हुआ जो श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने उसकी पुत्री लक्ष्मणाका हरण किया? क्षत्रियके लिये स्वयंवरमें कन्या-हरण अपराध तो है नहीं। अकेले लड़केको छः महारथियोंने मिलकर बंदी किया, यह तो अन्याय ही था। श्रीकृष्णचन्द्र कितने रुष्ट हुए थे समाचार पाकर। यदि वे नारायणी सेनाके साथ आ जाते—बलरामजीने छोटे भाईको शान्त किया। दुर्योधन उनका शिष्य था। सत्राजित्का वध करके शतधन्वा जब स्यमन्तकमणि लेकर भागा, श्यामसुन्दरके साथ बलभद्रजीने उसका पीछा किया। वह मिथिलाके समीप पहुँचकर मारा जा सका। मणि उसके वस्त्रोंमें मिली नहीं। बलरामजी इतने समीप आकर मिथिला-नरेशसे मिले बिना लौट न सके। दो मासतक वहीं दुर्योधनने उनसे गदा-युद्धकी शिक्षा ली। वही दुर्योधन यदुवंशियोंको अपना कृपाजीवी, क्षुद्र कहकर चला गया था और भगवान् बलरामके सम्मुख ही यादव महाराज उग्रसेनके प्रति उसने अपशब्द भी कहे। क्रुद्ध हलधरने हल उठाया। हस्तिनापुर नगर घूमने लगा। वे धराधार नगरको यमुनाजीमें फेंकने जा रहे थे। '**पशूनां लगुडो यथा।**' 'पशु डंडेसे मानते हैं।' दण्डसे भीत कौरव शरणापन्न हुए। वे क्षमामय दण्डका तो केवल नाट्य करते हैं। उन्हें भी क्या रोष आता है?

महाभारतमें वे किस ओर होते? एक ओर प्रिय शिष्य दुर्योधन और दूसरी ओर श्रीकृष्ण। वे तीर्थयात्रा करने चले गये। नैमिष-क्षेत्रमें इल्वल राक्षसका पुत्र बल्वल अपने उत्पातसे ऋषियोंको आकुल किये था। उस विपत्तिसे उन तपस्वियोंको त्राण मिला। जब वे तीर्थयात्रासे लौटे, तब महाभारत-युद्ध समाप्त हो चुका था। भीम-दुर्योधनका अन्तिम संग्राम चल रहा था। दोनोंमेंसे कोई समझानेसे माननेको उद्यत नहीं था।

यदुवंशका उपसंहार होना ही था। भगवान्की इच्छासे अभिशप्त यादव परस्पर संग्राम कर रहे थे। भगवान् बलराम उन्हें समझाने—शान्त करने गये, पर मृत्युके वश हुए उन्होंने इनकी बात नहीं सुनी और नष्ट हो गये। अब लीला-संवरण करना था। समुद्र-तटपर उन्होंने आसन लगाया और अपने 'सहस्रशीर्षा' स्वरूपसे जलमें प्रविष्ट हो गये।

[२०]

भगवान् श्रीकृष्ण

'तू जिसे इतने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा है, उसीका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा!' आकाशवाणीसे कंस चौंका। सचमुच वह अपने चाचाकी छोटी लड़की देवकीको विवाह होनेपर कितने उत्साहसे पहुँचाने जा रहा था। दिग्विजयी कंस—मृत्युका भय शरीरासक्तको कायर बना देता है। वह अपनी बहनका वध करनेको ही उद्यत हो गया। वसुदेवजीने सद्योजात शिशु उसे देनेका वचन दिया। इतनेपर भी कंसने दम्पतिको रखा कारागारमें ही। विरोध करनेपर अपने ही पिता उग्रसेनको भी उसने बन्दी बनाया और वह स्वयं मथुराका नरेश बन गया।

बच्चे होते, सत्यभीरु वसुदेवजी कंसके सम्मुख लाकर रख देते। वह उठाकर शिलापर पटक देता। हत्यासे शिलातल कलुषित होता गया। छः शिशु मरे। सातवें गर्भमें भगवान् शेष पधारे। योगमायाने उन्हें आकर्षित करके गोकुलमें रोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया। अष्टम गर्भमें वह अखिलेश आया। धरा असुर-नरेशोंके अशुभ कर्मोंसे आकुल है, उसके आराधक उसीकी प्रतीक्षामें पीडित हो रहे हैं, तो वह आयेगा ही।

कंसका कारागार, भाद्रकृष्ण अष्टमीकी मेघाच्छन्न अर्धनिशा—जैसे प्रकृतिने सम्पूर्ण कलुषको मूर्ति दे दी हो। चन्द्रोदयके साथ श्रीकृष्णचन्द्र-प्राकट्य हुआ। बन्दियोंके

नेत्र धन्य हो गये। वह चतुर्भुज देखते-देखते शिशु बना, शृंखलाएँ स्वतः शिथिल हुईं, द्वार उन्मुक्त हुआ, वसुदेवजी उस हृदय-धनको गोकुल जाकर नन्दभवन रख आये। कंसको मिली यशोदाकी योगमाया-रूपी कन्या और जब कंस उन्हें शिलातलपर पटक रहा था तब वे योगमाया, गगनमें सायुधाभरण अष्टभुजा हो गयीं।

गोकुलकी गलियोंमें आनन्द उमगा। आनन्दघन नन्दरानीकी गोदमें जो उतर आया था। कंसके क्रूर प्रयास उस प्रवाहमें प्रवाहित हो गये। पूतना, शकटासुर, वात्याचक्र—सब विफल होकर भी कन्हैयाके करोंसे सद्गति पा गये। मोहन चलने लगा, बड़ा हुआ और घर-घर धूम मच गयी—वह हृदयचोर नवनीत-चोर जो हो गया था। गोपियोंके उल्लसित भाव सार्थक करने थे उसे। यह लीला समाप्त हुई अपने घरका ही नवनीत लुटाकर। मैयाने ऊखलमें बाँधकर दामोदर बना दिया। यमलार्जुनका उद्धार तो हुआ, किंतु उन महावृक्षोंके गिरनेसे गोप शंकित हो गये। वे गोकुल छोड़कर वृन्दावन जा बसे।

वृन्दावन, गोवर्धन, यमुना-पुलिन, व्रज-युवराजकी मधुरिम क्रीडाके चलनेमें सबने और सहायता दी। श्रीकृष्ण वत्स-चारक बने। कंसका प्रयत्न भी चलता रहा। बकासुर, वत्सासुर, प्रलम्ब, धेनुक, अघासुर, मयपुत्र, व्योमासुर आदि आते रहे। श्यामसुन्दर तो सबके लिये मोक्षका अनावृत द्वार है। कालियके फणोंपर उस व्रजविहारीने रासका पूर्वाभ्यास कर लिया। ब्रह्माजी भी बछड़े चुराकर अन्तमें उस नटखटकी स्तुति ही कर गये। इन्द्रके स्थानपर गोवर्धन-पूजन किया गोपोंने और गोपालने। देव-कोपकी महावर्षासे गिरिराजको सात दिन अँगुलीपर उठाकर व्रजको बचा लिया। देवेन्द्र उस गिरिधारीको गोविन्द स्वीकार कर गये। कंसके प्रेषित वृषासुर, केशी आदि जब गोपालके करोंसे कर्मबन्धन-मुक्त हो गये, तब उसने अक्रूरको भेजकर उन्हें मथुरा बुलवाया। नन्दबाबा राम-श्याम तथा गोपोंके साथ मथुरापुरी पहुँचे।

राजाको सन्देश मिला धोबीकी मृत्युसे श्यामके पधारनेका। उस दिनका उनका अङ्गराग मार्गमें ही उस चिर-चंचलने स्वीकार करके कुब्जाका कूबर दूर कर दिया। कंसका आराधित धनुष उसके गर्वकी भाँति तोड़ डाला गया। दूसरे दिन महोत्सव था कंसकी कूटनीतिका। रंगमण्डपके द्वारपर श्रीकृष्णचन्द्रने महागज कुवलयापीडको मारकर उसका श्रीगणेश किया। अखाड़ेमें उन सुकुमार-श्याम-गौर अङ्गोंसे चाणूर, मुष्टिक, शल, तोशल-जैसे मल्ल चूर्ण हो गये। कंसके जीवनकी पूर्णाहुतिसे उत्सव पूर्ण हुआ। महाराज उग्रसेन बन्दीगृहसे पुनः राज्यसिंहासनपर शुभासीन हुए।

श्रीकृष्ण व्रजमें कुल ग्यारह वर्ष, तीन मास रहे थे। इस अवस्थामें उन्होंने जो दिव्य लीलाएँ कीं, वे भावुकोंका जीवनपथ तो प्रशस्त करती हैं, पर आलोचककी कलुषित बुद्धि उनका स्पर्श नहीं कर सकती। वह इस वयके बालकमें या तो उन लीलाओंको समझ न पायेगा, या अपने अन्तरके कलुषमें डूबेगा। अस्तु, फिर तो श्याम व्रज पधारे ही नहीं। उद्धवको भेज दिया एक बार आश्वासन देने। अवश्य ही बलरामजी द्वारकासे आकर एक मास रह गये एक बार।

अवन्ती जाकर श्यामसुन्दरने अग्रजके साथ शिक्षा प्राप्त की। गुरुदक्षिणामें गुरुका मृतपुत्र पुनः प्रदान कर आये। मथुरा लौटते ही कंसके श्वशुर जरासन्धकी चढ़ाइयोंमें उलझना पड़ा। वह सत्रह बार ससैन्य आया और पराजित होकर लौटा। अठारहवीं बार उसके आनेकी सूचनाके साथ कालयवन भी आ धमका। कहाँतक इस प्रकार युद्धमय जीवन सहा जाय? समुद्रके मध्यमें दुर्गम दुर्ग द्वारका नगर बना। यादवकुलको वहाँ पहुँचाकर श्रीकृष्ण पैदल यवनके सम्मुखसे भागे। पीछा करता हुआ यवन गुफामें जाकर चिर-सुप्त मुचुकुन्दकी नेत्राग्निसे भस्म हो गया। उधरसे लौटते ही जरासन्ध सेना लेकर आ पहुँचा। श्रीकृष्ण आज 'रणछोड़' हो रहे थे। बलरामजीको भी साथ भागना पड़ा। दोनों भाई प्रवर्षणपर चढ़कर भाग चले।

श्रीकृष्णके विवाह तो लोकप्रसिद्ध हैं। रुक्मिणीजीका उन्होंने हरण किया था। स्यमन्तकमणिकी खोजमें जाम्बवन्तसे युद्ध करके उपहारस्वरूप जाम्बवतीजीको ले आये। 'मणि'-के कारण कलंक लगानेके दोषसे लज्जित सत्राजित्‌ने अपनी पुत्री सत्यभामाको स्वयं उन्हें प्रदान की। कालिन्दीजी उनके लिये तप ही कर रही थीं। लक्ष्मणाजीके स्वयंवरका मत्स्यभेद करनेमें दूसरा कोई समर्थ ही न हो सका और नग्नजित् नरेशके सातों साँड़ एक साथ नाथकर उनकी पुत्री सत्यासे दूसरा कौन विवाह कर पाता। मित्रविन्दाजीको उन्होंने स्वयं हरण किया और भद्राजीको उनके पिताने सादर प्रदान किया। यह तो आठ पटनारियोंकी बात है। पृथ्वीपुत्र

भौमासुरने वरुणका छत्र, अदितिका कुण्डल हरण किया था। उसका वध आवश्यक था। सत्यभामाजीके साथ गरुडारूढ होकर जब उसे निजधाम दे चुके, तब जो सोलह सहस्र नरेन्द्र-कन्याएँ उसने बन्दी बना रखी थीं, उनका उद्धार भी आवश्यक था। उनको अपनाये बिना उद्धार-कार्य कैसे पूर्ण होता। इस यात्रामें अमरावतीसे बलात् कल्पतरु द्वारका ले आये। इन्द्रने युद्धकी धृष्टता की और वे पराजित हुए।

बाणासुरसे विवश होकर युद्ध करना पड़ा। अपनी सहस्र भुजाओंके मदमें वह अपने आराध्य भगवान् शंकरका अपमान करने लगा था। अनिरुद्धको बन्दी बना लिया था उसने। भक्तवत्सल आशुतोषने फिर भी युद्धमें उसका पक्ष ग्रहण किया। चक्रने असुरके सभी हाथ काट डाले। केवल उसकी चार भुजाएँ शेष रहीं। पौण्ड्रक, दन्तवक्त्र और शाल्व—ये सब मारे गये अपने ही अपराधसे। पौण्ड्रक वासुदेव ही बननेपर तुला था। युद्ध माँगा था उसने। दन्तवक्त्रने आक्रमण किया और शाल्व तो मय-निर्मित विमानसे द्वारका ही नष्ट करने आया था। शिशुपाल भरी सभामें गालियाँ देने लगा तो कहाँतक क्षमा की जाय? सौ गालियोंके पश्चात् चक्रकी भेंट हो गया वह।

पाण्डवोंका परित्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। राजसूय यज्ञ युधिष्ठिरका होता नहीं, यदि जरासन्ध मारा न जाता। राजसूयका वह सभास्थल—उसे वनमालीके आदेशसे मयने बनाया। द्यूतमें हारे पाण्डवोंकी पत्नी राजसूयकी साम्राज्ञी द्रौपदी जब भरी सभामें दुःशासनद्वारा नग्न की जाने लगी, वस्त्रावतार धारण किया प्रभुने। दुर्योधनने दुर्वासाजीको वनमें भेजा ही था पाण्डवोंके विनाशके लिये, पर शाकका एक पत्र खाकर त्रिलोकीको तुष्ट करनेवाला वह पार्थ-प्रिय उपस्थित जो हो गया।

वह मयूरमुकुटी पाण्डवोंके लिये सन्धिदूत बनकर आया। विदुरपत्नीके केलेके छिलकोंका रसास्वाद कर गया। सुदामाके तन्दुलोंने प्रेमका स्वाद सिखा दिया था। युद्धारम्भ हुआ और वह राजसूयका अग्रपूज्य पार्थ-सारथि बना। संग्रामभूमिमें उस गीता-गायकने अर्जुनको अपनी दिव्य अमर वाणीसे प्रबुद्ध किया। भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामाके दिव्यास्त्रोंसे रक्षा की पाण्डवोंकी। युद्धका अन्त हुआ। युधिष्ठिरको सिंहासन प्राप्त हुआ। पाण्डवोंका एकमात्र वंशधर उत्तरापुत्र परीक्षित् मृत उत्पन्न हुआ। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रने उसे प्राणहीन कर दिया था। श्रीकृष्णने उसे पुनर्जीवन दिया।

'यादवकुल पृथ्वीपर रहे तो वही बलोन्मत्त होकर अधर्म करेगा।' श्रीकृष्णको यह अभीष्ट नहीं था। ऋषियोंका शाप तो निमित्त बना। समस्त यादव परस्पर कलहसे कट मरे और आप देखते रहे। व्याधने पादतलमें बाण मारा तो उसे सशरीर स्वर्ग भेजनेका पुरस्कार दिया गया। इस प्रकार लीला-संवरण की द्वारकेशने।

श्रीकृष्णचन्द्र पूर्णपुरुष लीलावतार कहे गये हैं। भगवान् व्यासकी वाणीने श्रीमद्भागवतमें उनकी दिव्य लीलाओंका वर्णन किया है। शुकदेवजी-से विरक्त उस रसाम्बुधिमें मग्न रहा करते थे। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका अमृतपयोनिधि है। श्रीकृष्णका चरित पूर्णताका ज्वलन्त प्रतीक है। भगवत्ताके छः गुण—ऐश्वर्य, धर्म, यश, शोभा, ज्ञान और वैराग्य—सब उसमें पूर्ण हैं। त्याग, प्रेम, भोग और नीति—सब उन पूर्ण पुरुषमें पूर्ण ही हैं। हिंदू-संस्कृति निष्ठाकी पूर्णताको आदर्श मानती है। श्रीकृष्णमें समस्त निष्ठाओंकी पूर्णता होती है।

[२१]

भगवान् बुद्ध

यह विवादास्पद विषय है कि पुराणोंमें जिस बुद्धावतारका वर्णन है, वह महाराज शुद्धोदनके पुत्र अमिताभ गौतम बुद्ध ही हैं। पुराणोंका बुद्धावतार कीकट देशमें (गयाके पास) ही हुआ था, यह तो ठीक; किंतु उनके पिताको वहाँ 'अजिन' कहा गया है। जो भी हो, यहाँ तात्पर्य भगवान्के उस बुद्धावतारसे है, जिसका वर्णन पुराणोंमें है।

दैत्य प्रबल हो गये थे। स्वर्गपर उनका अधिकार था। दैत्येन्द्रने इन्द्रका पता लगाया और पूछा, 'हमारा राज्य स्थिर कैसे रहे?' इन्द्रने शुद्धभावसे उन्हें यज्ञ एवं वैदिक आचरणका उपदेश दिया। दैत्य यज्ञपरायण हो गये। वे यज्ञके प्रभावसे अजेय थे। संसारमें उनका उपद्रव बना था। विश्वमें आसुर-भाव बढ़ रहा था।

'राम-राम! तुम लोग यह क्या पाप करते हो! यज्ञमें कितनी हिंसा होती है। अग्निमें ही पता नहीं कितने कीट जलते हैं।' भगवान् विष्णुने बुद्धरूप धारण किया। वे एक हाथमें झाड़ू लिये मार्ग स्वच्छ करके पादक्षेप करते पहुँचे असुरोंके पास। उनके वस्त्र मलिन थे। स्नान वे करते न थे।

दन्तधावनके बिना दाँत स्वच्छ न थे, सबमें हिंसा जो थी। दैत्योंको उनका वह तत्त्वबोध ठीक जान पड़ा। यज्ञ छूट गया। देवताओंने उन यज्ञहीन, मलिन, अल्पप्राण, प्रतिरोधहीन असुरोंको पराजित करके स्वर्गसे मार भगाया।

[२२]

भगवान् कल्कि

कलिके अन्तमें सम्भल-ग्राममें विष्णुयश ब्राह्मणके यहाँ भगवान् कल्किका प्रादुर्भाव होगा। अभी कलिके पाँच सहस्रसे कुछ ही अधिक वर्ष बीते हैं। इस अवतारके होनेमें लाखों वर्ष अभी शेष हैं। उस समय श्रुतियोंका लोप हो चुकेगा। मानव सदाचारहीन, अल्पकाय, अल्पसत्त्व एवं अत्यन्त अल्पायु होंगे।

भगवान् परशुराम स्वयं कल्कि भगवान्‌को वेदोंका उपदेश करेंगे। भगवान् शिव उन्हें शस्त्रास्त्रकी शिक्षा देंगे। शंकरजीसे अश्व एवं खड्ग प्राप्तकर भगवान् पृथ्वीके समस्त आसुरी वृत्तिके प्राणियोंका वध कर डालेंगे। भगवान्‌के पृथ्वीपर होनेके कारण नूतन संतति शुद्ध भावापन्न तथा सबल होगी। इस प्रकार सत्ययुग प्रतिष्ठित होगा।

[२३]

भगवान् हंस

'चित्त स्वयं त्रिगुणात्मक है और तीनों गुण चित्तमें ही रहते हैं। इनका सम्बन्ध स्थायी है। ऐसी दशामें निस्त्रैगुण्यकी प्रतिष्ठा कैसे होगी?' सनकादि कुमारोंने लोकस्रष्टासे प्रश्न किया। यदि चित्त गुणहीन नहीं हो सकता तो मोक्ष किस प्रकार सम्भव है? हिंदू-धर्मका परम लक्ष्य तो मोक्ष है। यदि वही सिद्ध न हो तो सम्पूर्ण धर्म ही व्यर्थ हो जायगा। ब्रह्माजीने बहुत सोचा; परंतु प्रश्नमें कहाँ संदेहका बीज है, पता न लगा। वे आदिपुरुषका ध्यान करने लगे।

'आप कौन हैं?' वहाँ एक महाहंस प्रकट हो गया, जैसे सहस्र-सहस्र चन्द्रज्योत्स्ना घनीभूत हो गयी हो। कुमारोंके साथ लोकस्रष्टाने अर्घ्य निवेदित करके परिचय जानना चाहा।

'मैं क्या कहूँ—यह आप लोग स्वयं निर्णय करें!' हंसकी वाणीमें विचित्र भंगी थी। 'आत्मामें कोई भेद नहीं, कोई परिचय नहीं और शरीरकी दृष्टिसे भी सबमें वही पञ्चतत्त्व हैं। उनमें भी कोई विलक्षणता नहीं। आप सब ब्रह्मज्ञानी हैं। आप स्वयं सोचें कि गुणोंमें चित्त स्थित है और चित्तमें गुण हैं; पर मुझमें तो चित्त और गुण दोनों हैं तथा दोनों नहीं हैं। स्वप्नमें देखनेवाला, देखनेकी क्रिया और दृश्य—सब क्या भिन्न-भिन्न होते हैं?' भगवान्‌की वाणीने संदेहका निराकरण कर दिया। ब्रह्माजीके साथ कुमारोंने उनकी विधिवत् पूजा की।

[२४]

भगवान् हयग्रीव

कलपभेद हरिचरित सुहाए।

क्षीरोदधिमें अनन्तशायी प्रभुकी नाभिसे पद्म प्रकट हुआ। पद्मकी कर्णिकासे सिन्दूरारुण चतुर्मुख लोकस्रष्टा व्यक्त हुए। क्षीरोदधिसे दो विन्दु कमलपर पहुँच गये। वह चेतनात्मक नाभिपद्म—दोनों विन्दु सजीव हो गये। वे ही आदिदैत्य मधु-कैटभ थे। दैत्योंने कमल-कर्णिकापर बैठे ब्रह्माजीको देखा। वे एकाग्र मनसे भगवान्‌के निःश्वाससे निकली श्रुतियोंको ग्रहण कर रहे थे। दैत्योंने श्रुतिका हरण किया और वहाँसे नीचे भाग गये। आदिमें ही अनधिकारियोंको श्रुतिकी प्राप्ति हो जानेसे ब्रह्माजी चंचल हुए। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति प्रारम्भ की। प्रभु प्रसन्न हुए, उन्होंने हयग्रीवरूप धारण किया। दैत्योंको मारकर उन्होंने श्रुतिका उद्धार किया।

× × ×

दूसरे कल्पकी बात—

दितिपुत्र हयग्रीव सरस्वतीके तटपर उग्रतपमें संलग्न था। महामाया प्रसन्न हुईं। उन्होंने वरदान माँगनेको कहा। दैत्यको अमरत्व अभीष्ट था; किंतु कोई भी आसुरभावापन्न होकर अमर कैसे हो सकता है। 'मुझे हयग्रीवके अतिरिक्त कोई न मारे!' दैत्यने समझा कि मैं स्वयं अपना वध क्यों करूँगा। देवीने 'तथास्तु' कह दिया। असुरको लगा, उसका छल सफल हो गया। वह अमर ही तो हो गया।

सात्त्विकता न हो तो अमरत्व जगत्‌के लिये अभिशाप बनेगा। दैत्य हयग्रीव निःसंकोच अपनी असुरता चरितार्थ कर रहा था। देवता उससे विजय नहीं पा सकते थे। धर्म एवं मर्यादाका विनाश हो रहा था। सर्वेश्वर कबतक यह अधर्म चलने देते। हयग्रीवने देखा कि अङ्गारतप्त सटाओं-जैसा, मुखसे ज्वाला निकालता हयग्रीव पुरुष प्रकट हो गया है। दैत्य-समुदाय उस ज्वालामें पतिंगेकी भाँति नष्ट हो गया।

भगवान् शिवकी अवतार-लीलाएँ

भगवान् शिव तथा भगवान् शिवके नाम और उनकी लीलाएँ समस्त संसारके मङ्गलोंके मूल हैं। वे कल्याणमय हैं, मङ्गलमय हैं और परम शान्तमय हैं। समस्त विद्याओंके मूलस्थान भगवान् शिव ही हैं। वे विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, सबके मूलकारण, मूलाधार, रक्षक, पालक, नियन्ता एवं ईश्वरके भी ईश्वर होनेके कारण महामहेश्वर कहे जाते हैं। वे सभी देवताओंके भी परम दैवत या आराध्यदेव, सभी स्वामियोंके भी स्वामी, नित्य, अनादि, अजन्मा और परब्रह्म पूर्णप्रकाशयुक्त परमात्मा हैं। वे दिग्वसन होते हुए भी भक्तोंको अतुल ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, अनन्त राशियोंके अधिपति होते हुए भी भस्मविभूषित, श्मशानवासी कहे जानेपर भी अर्धनारीश्वर, सदा कान्तासे आलिङ्गित रहते हुए भी मदनजित्, अज होते हुए भी अनेक रूपमें आविर्भूत, गुणहीन होते हुए भी गुणाध्यक्ष, अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त तथा सबके कारण होते हुए भी अकारण हैं। यह उनकी लीला-विभूतिका ही वैशिष्ट्य है।

आशुतोष एवं औढरदानी होनेके कारण वे शीघ्र ही प्रसन्न होकर भक्तोंको सर्वस्व—यहाँ तक कि स्वयंको भी प्रदान कर देते हैं। केवल देवता ही नहीं, अपितु ऋषि-मुनि, ज्ञानी-ध्यानी, योगी-सिद्ध-महात्मा, विद्याधर, असुर, नाग, किन्नर, चारण, मनुष्य आदि सभी भगवान् शिवके लीला-चरित्रोंका ध्यान, संस्तवन, स्मरण, चिन्तन करके आनन्दित होते रहते हैं और उनकी कृपा-लीलाकी अनुभूति करते हुए सदाके लिये उन्हींके हो जाते हैं।

भगवान् शंकरकी समस्त जीवोंपर परम अनुकम्पा है। अशेष ब्रह्माण्ड उन्हींका स्वरूप है, शिवमय ही है। अन्तर्यामी-रूपसे सर्वत्र वे ही व्याप्त हैं। यह सम्पूर्ण संसार भगवान् शिव और उनकी शक्ति शिवाका ही लीला-विलास है। उनकी व्यक्त एवं अव्यक्त सभी लीलाओंमें अनन्त कल्याण एवं अनन्त मङ्गल परिव्याप्त है। उनकी संहारलीला भी जीवोंके हितके लिये ही होती है। यद्यपि उनका न कोई नाम है न कोई रूप है, तथापि जितने नाम हैं और जितने भी रूप हैं वे सब भगवान् शिवके ही हैं। जितनी भी क्रियाएँ हैं वे सब शिवलीलापरक ही हैं। इसीलिये उनके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त गुण हैं, अनन्त कल्याणकारिणी चेष्टाएँ और अनन्त आनन्ददायिनी लीलाएँ हैं। इसीलिये वे लीलानट भी कहलाते हैं। प्रकृति-नटीके सूत्रधार, सर्वाधार, लीलावपुधारी भगवान् शंकर ही हैं। उनकी लीलाएँ बड़ी ही विलक्षण और मनोरम हैं। उनका स्वरूप ही लीलामय है।

परिवार, पार्षद, निवास, आयुध एवं वाहन

भगवान् शिवका परिवार बहुत बड़ा है। वहाँ सभी द्वैतोंका अन्त दीखता है। एकादश रुद्र, रुद्राणियाँ, चौंसठ योगिनियाँ, मातृकाएँ तथा भैरवादि इनके सहचर और सहचरी हैं। जिनके अध्यक्ष वीरभद्र हैं, ऐसे अनेक रुद्रगण इनके साथ रहते हैं। माता पार्वतीकी सखियोंमें विजया आदि प्रसिद्ध हैं। गणपति-परिवारमें उनकी पत्नी सिद्धि, बुद्धि तथा क्षेम और लाभ दो पुत्र हैं, उनका वाहन मूषक है। भगवान् कार्तिकेयकी पत्नी देवसेना तथा वाहन मयूर है। भगवती पार्वतीका वाहन सिंह कहा गया है तथा स्वयं भगवान् शिव धर्मावतार नन्दीपर आरूढ होते हैं।

बाण, रावण, चण्डी, रिटि तथा भृङ्गी आदि उनके मुख्य पार्षदोंमें परिगणित हैं। इनके द्वाररक्षकके रूपमें कीर्तिमुख प्रसिद्ध हैं, उनकी पूजाके बाद ही मन्दिर आदिमें प्रवेश तथा भगवान् शिवकी पूजा करनेका विधान है, इससे

भगवान् शंकर अति प्रसन्न होते हैं।

यद्यपि भगवान् शिव सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि काशी एवं कैलास—ये दो उनके मुख्य निवास-स्थान कहे गये हैं। भक्तोंके हृदय-प्रदेशमें तो वे सर्वदा निवास करते ही हैं।

उनके अनेक आयुध हैं जैसे—त्रिशूल, टंक (छेनी), कृपाण, वज्र, अग्नियुक्त कपाल, सर्प, घण्टा, अंकुश, पाश तथा पिनाक धनुष। इन सबमें भी त्रिशूल और पिनाक—ये उनके दो मुख्य आयुध हैं।

स्कन्दपुराणके अनुसार यह प्रसिद्ध है कि एक बार भगवान् धर्मकी यह इच्छा हुई कि मैं देवाधिदेव शंकरका वाहन बनूँ और तब दीर्घकालतक उन्होंने इसके लिये तपस्या की। अन्तमें भगवान्‌ने उनपर अनुग्रह किया और उन्हें अपने वाहनके रूपमें स्वीकार किया तथा वे भगवान् धर्म ही नन्दी वृषभके रूपमें उनके सदाके लिये वाहन बन गये—'**वृषो हि भगवान् धर्मः।**'

सुर और असुर दोनोंके उपास्य

भगवान् शिव देवताओंके उपास्य तो हैं ही, साथ ही उन्होंने अनेक असुरों—अन्धक, दुन्दुभी, महिष, त्रिपुर, रावण, निवातकवच आदिको भी अतुल ऐश्वर्य प्रदान किया। इसके साथ ही ऐश्वर्य-मदसे दुराचारको प्राप्त अन्धकासुर, गजासुर, भस्मासुर, त्रिपुरासुर आदिका संहारकर उनका भी उद्धार कर दिया। गजासुरका गजाजिन ही भगवान् शिवके अजिन-वस्त्रके रूपमें सुशोभित होता है। कुबेरादि लोकपालोंको आपकी ही कृपासे उत्तर दिशाका स्वामित्व, निधिपतित्व, यक्षोंका स्वामित्व, राजाधिराज तथा राजराजका महनीय पद प्राप्त हुआ। भगवान् शिवकी महिमा अनन्त है, वे सबके परम उपास्य देव हैं।

भगवान् शिवकी विविध लीला-मूर्तियाँ एवं उनके ध्यान-स्वरूप

भगवान् शंकरके चरित्र बड़े ही उदात्त एवं अनुकम्पापूर्ण हैं। वे ज्ञान, वैराग्य तथा साधुताके परम आदर्श हैं। समुद्र-मन्थनके समय वासुकिनागके मुखसे भयंकर विषकी ज्वालाएँ उठीं और समुद्रके जलमें मिश्रित होकर वे कालकूट विषके रूपमें प्रकट हो गयीं। वे ज्वालाएँ आकाशमें व्याप्त होने लगीं, जिससे समस्त देवता, ऋषि, मुनि और चराचर जगत् जलने लगा। सभी देवगणों तथा ऋषि-मुनियोंको दुःखित देखकर भगवान् विष्णुके अनुरोधपर उन्होंने तत्काल उस विषको अपनी योगशक्तिसे आकृष्टकर कण्ठमें धारणकर लिया। इसीसे वे 'नीलकण्ठ' कहलाये। उसी समय समुद्रसे अमृतकिरणोंसे युक्त चन्द्रमा भी प्रकट हुए, जिन्हें देवताओंके अनुरोधपर भगवान् शंकरने उस उद्दीप्त गरलकी शान्तिके लिये अपने ललाटपर धारण कर लिया और 'चन्द्रशेखर'-'शशिशेखर' यह नाम पड़ गया। अपनी जटाओंमें गङ्गा धारण करनेसे वे 'गङ्गाधर' कहलाते हैं।

शास्त्रोंमें उनकी उपासना भी निर्गुण, सगुण, लिङ्ग-विग्रह तथा प्रतिमा-विग्रहमें परिकरसहित अनेक प्रकारसे निर्दिष्ट है। उनके अनेक रूपोंमें उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युञ्जय, पञ्चवक्त्र, एकवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति तथा योगीश्वर आदि अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शिवका एक विशिष्ट रूप लिङ्गरूपमें भी है, जिसमें ज्योतिर्लिङ्ग, स्वयम्भूलिङ्ग, नर्मदेश्वर तथा अन्य रत्नादि-धात्वादि एवं पार्थिवादि-लिङ्ग हैं। इन सभी तथा अन्य रूपोंकी भी उपासना भक्तजन बड़ी श्रद्धाके साथ करते हैं।

पञ्चमूर्ति

ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—ये भगवान् शिवकी पाँच विशिष्ट मूर्तियाँ हैं। ये ही उनके पाँच मुख भी कहे जाते हैं। शिवपुराणके अनुसार शिवकी प्रथम मूर्ति क्रीडा, दूसरी तपस्या, तीसरी लोकसंहार, चौथी अहंकारकी अधिष्ठात्री और पाँचवीं ज्ञानप्रधान होनेके कारण सद्वस्तुयुक्त सम्पूर्ण संसारको आच्छन्न कर रखती है।

भगवान् शिवके पञ्चकृत्य

सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्चकृत्य उपर्युक्त पञ्चमूर्तियोंद्वारा सम्पादित किये जाते हैं।

अष्टमूर्ति

भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियाँ—शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमशः पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य और चन्द्रमें अधिष्ठित रहती हैं। पञ्चतत्त्वात्मक पञ्चलिङ्गोंकी दक्षिण भारतमें विशेष उपासना होती है। क्षेत्रज्ञमूर्तिकी पशुपतिनाथके रूपमें आराधना की जाती है।

ज्योतिर्लिङ्ग

सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, महाकालेश्वर, परमेश्वर (ओंकारेश्वर), केदारेश्वर, भीमशंकर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बक,

वैद्यनाथ, नागेश, रामेश्वर तथा घुश्मेश्वर—ये प्रसिद्ध बारह ज्योतिर्लिङ्ग हैं।

भगवान् शिवके तत्तत्स्वरूपपरक यद्यपि अनेक ध्यान-स्वरूप शास्त्रोंमें निर्दिष्ट हैं, उन नाम-रूपोंसे उनकी उपासना भी होती है, उनमेंसे कुछ ध्यान-स्वरूपोंका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ किया जा रहा है—

१-सदाशिव

भगवान्के सदाशिवकी मूर्तिमें ऊपरकी ओर गजमुक्ताके समान किंचित् श्वेत-पीत-वर्ण, पूर्वकी ओर सुवर्णके समान पीतवर्ण, दक्षिणकी ओर सजल मेघके समान सघन नीलवर्ण, पश्चिमकी ओर स्फटिकके समान शुभ्र उज्ज्वलवर्ण तथा उत्तरकी ओर जपापुष्प या प्रवालवर्णके समान रक्तवर्ण है। इस प्रकार उनके पाँच मुख हैं, तीन नेत्र हैं, मुकुट बालचन्द्रसे सुशोभित है, शरीरकी प्रभा करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाके समान है और दस हाथोंमें क्रमशः त्रिशूल, टंक (छेनी), तलवार, वज्र, अग्नि, नागराज, घण्टा, अंकुश, पाश तथा अभयमुद्रा विराजमान हैं।

२-महामृत्युञ्जय

भगवान्का यह स्वरूप मृत्युको भी जीतनेवाला है। इस स्वरूपमें वे अपने ऊपरके दो हाथोंमें स्थित दो कलशोंके द्वारा आर्त व्यक्तिके सिरको अमृतजलसे आप्लावित कर रहे हैं और दो हाथोंमें क्रमशः मृगमुद्रा तथा वलयाकार रुद्राक्षमाला लपेटे हुए हैं, दो हाथोंको गोदमें रखकर उसपर अमृत-कलश लिये हुए हैं तथा अन्य दो हाथोंसे उसे ऊपरसे ढके हुए हैं। इस प्रकार आठ हाथोंसे युक्त सुन्दर कैलासपर्वतपर स्थित, स्वच्छ कमलपर विराजमान और ललाटपर बालचन्द्रमाको मुकुटके रूपमें धारण किये हुए त्रिनेत्रोंसे सुशोभित हैं।

३-महेश

भगवान् शिवके इस स्वरूपकी कान्ति चाँदीके पर्वतके समान श्वेत है। ये सदैव सुन्दर चन्द्रमाको आभूषणरूपसे धारण करते हैं तथा रत्नमय अलंकारोंसे यह विग्रह उज्ज्वल हो गया है। ये हाथोंमें परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा धारण करते हैं। प्रसन्न-मुद्रामें पद्म-आसनपर विराजमान हैं, देवतागण इनके चारों ओर खड़े होकर स्तुति करते हैं, ये बाघकी खाल पहनते हैं तथा विश्वके आदि, जगत्की उत्पत्तिके बीज और समस्त भयोंको हरनेवाले हैं। इन महेश्वरका स्वरूप भी पाँच मुखों और तीन नेत्रोंसे देदीप्यमान होता रहता है।

४-अर्धनारीश्वर

भगवान् अर्धनारीश्वर शिवके शरीरका दाहिना भाग नीलवर्णका और बायाँ भाग प्रवाल अर्थात् मूँगेकी कान्तिके समान लालवर्णका है। उनके तीन नेत्र सुशोभित हो रहे हैं, उनके वामभागके हाथोंमें पाश और लाल कमल विराजमान है तथा दाहिनी ओरके दो हाथोंमें त्रिशूल और कपाल स्थित है। इस प्रकार बायीं ओर भगवती पार्वती और दाहिनी ओर भगवान् शंकरके सम्मिलित स्वरूपमें अलग-अलग आभूषण सुशोभित हो रहे हैं और मस्तकके ऊपर बालचन्द्रमा तथा मुकुटकी विलक्षण समुज्ज्वल शोभा झलक रही है।

ये सभी ध्यानस्वरूप भगवान् शिवके लीलारूप ही हैं जो सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। इसलिये सबको अभय दान देना, सबपर अनुग्रह करना—यह विश्वरूप शिवका आराधन ही माना गया है।

भगवान् शिवके कतिपय नाम-विग्रहोंके आख्यान

भगवान् शंकरके अनेक नाम-विग्रह हैं। उनमें एक भी निरर्थक नहीं, सब सार्थक हैं। प्रत्येक नाममें नामके गुण, प्रयोजन और तथ्य भरे हैं। यदि उसका अर्थ सोचा जाय, या उसके प्रचार होनेका मूल देखा जाय तो अधिकांश नामोंसे भ्रम-निवृत्ति, मोह-नाश और सौभाग्य-लाभादि हो सकते हैं। भक्तोंके हित-साधनार्थ यहाँ शिवके कुछ नाम-विग्रहोंका उल्लेख मात्र किया जा रहा है—

'शिव'—जो समस्त कल्याणोंके निधान हैं और भक्तोंके समस्त पाप और त्रितापके नाश करनेमें सदैव समर्थ हैं, उनको 'शिव' कहते हैं।

'पशुपति'—ज्ञानशून्य-अवस्थामें सभी पशु माने गये हैं (**ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः**)। दूसरे जो सबको अविशेषरूपमें देखते हों, वे भी 'पशु' कहलाते हैं। अतः ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी पशु माने जा सकते हैं और शिव सबको ज्ञान देनेवाले तथा उनको अज्ञानसे बचानेवाले हैं, इसलिये वे 'पशुपति' कहलाते हैं।

'मृत्युञ्जय'—यह सुप्रसिद्ध बात है कि मृत्युको कोई जीत नहीं सकता। स्वयं ब्रह्मा भी युगान्तमें मृत्युकन्याके

द्वारा ब्रह्ममें लीन होते हैं। परंतु उनके अनेक बार लीन होनेपर शिवका एक बार निर्गुणमें लय होता है, अन्यथा अनेक बार मृत्युकी ही पराजय होती है। इसीलिये वे 'मृत्युञ्जय' कहलाते हैं।

'त्रिनेत्र'—एक बार भगवान् शिव शान्तरूपसे बैठे हुए थे। उसी समय हिमाद्रितनया भगवती पार्वतीने विनोदवश पीछेसे आकर भगवान् शिवके दोनों नेत्र मूँद लिये। नेत्र क्या थे, शिवरूप त्रैलोक्यके चन्द्र और सूर्य थे। ऐसे नेत्रोंके बंद होते ही विश्वभरमें अन्धकार छा गया और संसार अकुलाने लगा। तब शिवजीके ललाटसे युगान्तकालीन अग्निस्वरूप तीसरा नेत्र प्रकट हुआ। उसके प्रकट होते ही दसों दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं, अन्धकार हट गया और हिमालय-जैसे पर्वत भी जलने लग गये। यह देखकर पार्वती घबरा गयीं और हाथ जोड़कर स्तुति करने लगीं। तब शिवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने संसारकी परिस्थिति यथापूर्व बना दी; तभीसे वे 'चन्द्रार्काग्निविलोचन' अर्थात् 'त्रिनेत्र' कहलाने लगे।

'कृत्तिवासा'—कृत्तिवासा वे हैं जिनके गजचर्मका वस्त्र हो। ऐसे वस्त्रवाले शिव हैं। उनको इस प्रकारका वस्त्र रखनेकी क्या आवश्यकता हुई थी, इसकी स्कन्दपुराणमें एक कथा है; उसमें लिखा है—जिस समय महादेव पार्वतीको रत्नेश्वरका माहात्म्य सुना रहे थे, उस समय महिषासुरका पुत्र गजासुर अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर शिवके गणोंको दु:ख देता हुआ शिवके समीप चला गया। ब्रह्माके वरसे वह इस बातसे निडर था कि 'कन्दर्पके वश होनेवाले किसीसे भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती।' किंतु जब वह कन्दर्पके दर्पका नाश करनेवाले भगवान् शिवके सामने गया तो उन्होंने उसके शरीरको त्रिशूलमें टाँगकर आकाशमें लटका दिया। तब उसने वहींसे शिवकी बड़ी भक्तिसे स्तुति की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने वर देना चाहा। इसपर गजासुरने अति नम्र होकर प्रार्थना की—'हे दिगम्बर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मेरे चर्मको धारण कीजिये और अपना 'कृत्तिवासा' नाम रखिये, इसपर शिवजीने 'एवमस्तु' कहा और वैसा ही किया।

'पञ्चवक्त्र'—एक बार भगवान् विष्णुने किशोर-अवस्थाका अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया। उसको देखनेके लिये ब्रह्मा-जैसे चतुर्मुख तथा अनन्त-जैसे बहुमुख अनेक देवता आये और उन्होंने एक मुखवालोंकी अपेक्षा अधिक आनन्द प्राप्त किया। यह देखकर एक मुखवाले शिवजीको बहुत क्षोभ हुआ। वह सोचने लगे कि यदि मेरे भी अनेक मुख और अनेक नेत्र होते तो भगवान्‌के इस किशोर-रूपका सबसे अधिक दर्शन करता। बस, फिर क्या था; इस वासनाके उदय होते ही वे पञ्चमुख हो गये और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र बन गये। तभीसे इनको 'पञ्चवक्त्र' कहते हैं।

'शितिकण्ठ'—किसी समय बदरिकाश्रममें नर और नारायण तप कर रहे थे। उसी समय दक्षयज्ञको ध्वंस करनेके लिये शिवने त्रिशूल छोड़ा था। दैवयोगसे वह त्रिशूल यज्ञ विध्वंस करके नारायणकी छातीको भी भेद गया और शिवके पास आ गया। इससे शिव क्रोधित हुए और आकाश-मार्गसे नारायणके समीप गये, तब उन्होंने शिवका गला घोंट दिया। तभीसे ये 'शिति (नील)-कण्ठ' कहलाने लगे।

'खण्डपरशु'—एक बार नरने परशुके आकारके एक तृणखण्डको ईषिकास्त्रसे अभिमन्त्रितकर शिवपर छोड़ा था और शिवने उसका अपने महत्-प्रभावसे खण्ड कर दिया था। तबसे यह 'खण्डपरशु' भी कहलाते हैं।

'प्रमथाधिप'—कालिकापुराणमें लिखा है कि ३६ कोटि प्रमथगण शिवकी सदा सेवा किया करते हैं। उनमें १३ हजार तो भोगविमुख तथा योगी और ईर्ष्यादिसे रहित हैं। शेष कामुक तथा क्रीडा-विषयमें शिवकी सहायता करते हैं। उनके द्वारा प्रकटमें किसीका कुछ अनिष्ट न होनेपर भी उनकी विकटतासे लोग भयकम्पित रहते हैं।

'गङ्गाधर'—संसारके हित और सगर-पुत्रोंके उपकारके लिये भगीरथने त्रिभुवनव्यापिनी गङ्गाका आवाहन किया, तब यह संदेह हुआ कि आकाशसे अकस्मात् पृथिवीपर प्रपात होनेसे अनेक अनिष्ट हो सकते हैं। अत: भगीरथकी प्रार्थनासे गौरीशंकरने उसे अपने जटामण्डलमें धारण कर लिया। इसीसे इनको 'गङ्गाधर' कहते हैं।

'महेश्वर'—जो वेदोंके आदिमें ओंकाररूपसे माने गये हैं और वेदान्तमें निर्गुणरूपसे स्थित रहते हैं, वे महेश्वर कहलाते

हैं। अथवा सम्पूर्ण देवताओंमें प्रधान होनेसे भी 'महेश्वर' नामसे विख्यात हैं।

'रुद्र'—दुःख और उसके समस्त कारणोंके नाश करनेसे तथा संहारादिमें क्रूर रूप धारण करनेसे शिवको 'रुद्र' कहते हैं।

'विष्णु'—पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच महाभूतोंमें तथा जड-चैतन्यादि सम्पूर्ण सृष्टिमें जो सदैव व्याप्त रहते हैं, उन्हींको विष्णु कहते हैं। यह गुण भगवान् शिवमें सर्वदा विद्यमान रहता है। अतः शिवको 'विष्णु' कहते हैं।

'पितामह'—अर्यमा आदि पितरोंके तथा इन्द्रादि देवोंके पिता होने और ब्रह्माके भी पूज्य होनेसे शिवजी 'पितामह' नामसे विख्यात हैं।

'संसारवैद्य'—जिस प्रकार निदान और चिकित्साके जाननेवाले सद्वैद्य उत्तम प्रकारकी महौषधियों और अनुभूत प्रयोगोंसे संसारियोंके समस्त शारीरिक रोगोंको दूर करते हैं, उसी प्रकार शिव अपनी स्वाभाविक दयालुतासे संसारियोंको भवरोगसे छुड़ाते हैं। अन्य वेदादि शास्त्रोंमें यह भी सिद्ध किया गया है कि भगवान् शिव अनेक प्रकारकी अद्भुत, अलौकिक और चमत्कृत ओषधियोंके ज्ञाता हैं। उनके पाससे अनेक प्रकारकी महौषधियाँ प्राप्त हो सकती हैं और वे मनुष्योंके अतिरिक्त पशु-पक्षी और कीट-पतङ्गादि ही नहीं, स्थावर-जङ्गमात्मक सम्पूर्ण सृष्टिके प्राणिमात्रकी प्रत्येक व्याधिके ज्ञाता और उसको दूर करनेवाले भी हैं। इसीलिये वे 'संसारवैद्य' सिद्ध हुए हैं।

'सर्वज्ञ'—तीनों लोक और तीनों कालकी सम्पूर्ण बातोंको (जिनको अन्य लोग नहीं जान सकते) सदाशिव अनायास ही जान लेते हैं। इसीसे उनको 'सर्वज्ञ' कहते हैं।

'परमात्मा'—उपर्युक्त सम्पूर्ण गुणोंसे संयुक्त होने और समस्त जीवोंके आत्मा होनेसे श्रीशिव 'परमात्मा' कहलाते हैं।

'कपाली'—ब्रह्माके मस्तकको काटकर उसके कपालको कई दिनोंतक करमें धारण करनेसे आप 'कपाली' कहे जाते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे ऐसे नामोंका तथा उनके तथ्य और कथाओंके अन्यान्य प्रयोजन सिद्ध हैं। अतः ऐसे कल्याणकारक नामोंवाले विश्वव्यापी, विश्वरक्षक और विश्वेश्वर महादेवका प्राणिमात्रको स्मरण करना चाहिये।

भगवान् शिवकी विविध लीला-कथाएँ

'रुद्र' भगवान् शिवका ही नाम है। वेदोंमें उनके अनेक नामोंमें रुद्र नाम ही विशेष है। वहाँ बताया गया है कि रुद्र एक हैं और असंख्य भी हैं। यथा—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः। असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्। (निरुक्त १। ५। १५)

—यह वचन भगवान् शिवके अनन्त माङ्गलिक लीलावतारोंका ही परिचायक है। कभी-कभी भगवान् शिव भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये और उनकी इच्छापूर्तिके लिये स्वयं ही उसके घरमें पुत्र आदि बनकर रहने लगते हैं। यहाँ भगवान्की इसी प्रकारकी कुछ लीलाओंका दर्शन कराया जा रहा है—

भगवान् शिवके नन्दीश्वर-अवतारकी लीला

पूर्व समयकी बात है, शिलाद नामके एक धर्मात्मा मुनि थे। वे भगवान् शिवके परम भक्त थे। एक बार उनके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि एक ऐसा पुत्र मुझे प्राप्त हो, जो अयोनिज हो और अमर भी हो। वे महान् तपस्वी तो थे ही, ऐसा कर भी सकते थे, पर उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान् शंकरके सामने अपना निवेदन प्रस्तुत किया और कहा—'प्रभो! मैं आपके समान ही अयोनिज पुत्र चाहता हूँ।' शिव बोले—'वत्स! ऐसा होना तो कठिन है, किंतु मैं स्वयं ही आपके पुत्रके रूपमें अवतार धारण करूँगा।' ऐसा कहकर शंकरजी अन्तर्धान हो गये।

शिलादमुनिकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे अपने आश्रममें आकर पूर्ववत् यज्ञ-यागादि तथा तपोऽनुष्ठानमें लग गये। एक दिन यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महामुनि शिलाद यज्ञ करनेके लिये यज्ञक्षेत्रको जोत रहे थे, उसी समय उनके शरीरसे भगवान् शिव प्रकट हो गये। उस समय सारी दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी। ब्रह्मादि देवता, ऋषि-मुनि सभी साक्षात् शंकरके ही अवतार शिलाद-पुत्रके दर्शनके लिये वहाँ आ पहुँचे। उस समय वे सूर्यके समान प्रभाशाली

दीख रहे थे। उनके तीन नेत्र थे, चार भुजाएँ थीं। जटा-मुकुट धारण किये थे। त्रिशूल आदि आयुधोंको धारण किये हुए थे। ऐसे बालकको देखकर शिलाद आनन्दमें निमग्न हो गये और उससे कहने लगे—'सुरेश्वर! चूँकि तुमने नन्दी नामसे प्रकट होकर मुझे आनन्दित किया है, इसलिये मैं तुम आनन्दमय जगदीश्वरको नमस्कार करता हूँ'—

त्वयाऽहं नन्दितो यस्मान्नन्दीनाम्ना सुरेश्वर।
तस्मात् त्वां देवमानन्दं नमामि जगदीश्वरम्॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० ६। ४५)

सबको आनन्दित करनेके कारण उस बालकका नाम नन्दी पड़ गया। शिलादमुनि अपने दिव्य बालक नन्दीको लेकर अपनी पर्णशालामें आये, वहाँ पहुँचते ही लीलाधारी शिव (नन्दी)-ने अपना चतुर्भुज एवं त्रिनेत्रवाला लीला-रूप छोड़ दिया और वे एक सामान्य मनुष्यके बालकके समान हो गये। तब महामुनिने बालकके जातकर्म आदि सभी संस्कार किये और फिर बादमें साङ्गोपाङ्ग सभी वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन कराया। जब नन्दी सात वर्षके हो गये तो एक दिन मित्र और वरुण देवता महामुनि शिलादके पास आये और मुनिको आश्वस्त करते हुए बोले—'महामुने! यह बालक सर्वगुणसम्पन्न है, किंतु इसकी आयु अत्यन्त ही अल्प है।' यह सुनकर शिलाद अपने पुत्रका आलिङ्गन कर रोने लगे। पिताकी ऐसी पुत्रवत्सलता देखकर नन्दी (जो स्वयं शिवरूप ही थे, लीलासे पुत्र बने थे) बोले—'पिताजी! किस कारणसे आप रो रहे हैं?' तब पिताने उसके अल्पायु होनेकी बात उसे बतायी। नन्दीने कहा—'पिताजी, आप चिन्तित न होइये। देवता-दानव तथा काल आदि कोई मुझे मार नहीं सकता, अतः आप दुःखी न हों।' पिताको आश्चर्य हुआ, बोले—'मेरे प्यारे लाल! तुमने ऐसा कौन-सा तप किया है अथवा तुम्हें कौन-सा ऐसा ज्ञान, योग या ऐश्वर्य प्राप्त है, जिसके बलपर तुम ऐसा कह रहे हो।'

इसपर नन्दीने कहा—'तात! मैं न तो तपसे मृत्युको हटाऊँगा और न विद्यासे। मैं महादेवजीके भजनसे मृत्युको जीत लूँगा, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है—

महादेवस्य भजनान्मृत्युं जेष्यामि नान्यथा॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० ६। ६१)

—ऐसा कहकर पिताको प्रणाम तथा उनकी परिक्रमा करके नन्दी तपस्याके लिये वनमें चले गये और एकान्त स्थानमें समाधियोगके द्वारा भगवान् शंकरका ध्यान करने लगे। भगवान् शंकरने दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया। अनेक वर प्रदान किये और उन्हें अपने गणोंका अधिपति बना दिया। भगवान् शंकरकी कृपासे नन्दीश्वरके दस हाथ और तीन नेत्र हो गये; वह दूसरे शिवके समान ही प्रतीत होने लगा। अब नन्दी नन्दीश्वर हो गये। मरुतोंकी कन्या सुयशासे नन्दीश्वरका विवाह हुआ।

भगवान् शंकर तथा माता पार्वतीने नन्दीश्वरको अजेय, अमर तथा सदा पूज्य होनेका वर प्रदान किया और अपनी संनिधि भी प्रदान की। उन्हींके वरदानसे नन्दीके पिता शिलाद आदिको भी भगवान् शिवका सायुज्य प्राप्त हुआ। तभीसे नन्दीश्वर शिवके पुत्ररूपमें जाने गये। यह भगवान् शंकरकी लीला ही थी।

कालभैरव नामक अवतारकी लीला

परमेश्वर शिव उत्तमोत्तम लीलाएँ करनेवाले हैं। उन्हींकी मायासे मोहित ब्रह्मा एवं विष्णुमें एक बार विवाद उत्पन्न हो गया, उसी विवादको शान्त करनेके लिये भगवान् शिवने क्रोध-रूपमें कालभैरव नामसे अवतार धारण किया। भगवान्का यह अवतार विश्वका भरण-पोषण करनेवाला है। भीषण होनेके कारण 'भैरव' कहलाता है। इन्हींसे कालका आविर्भाव हुआ है। ये साक्षात् काल-रूप हैं, इसलिये 'आमर्दक' भी इनका एक नाम है। ये भक्तोंके समस्त पापोंका तत्क्षण ही भक्षण कर देते हैं। इसलिये 'पापभक्षण' इनका यह नाम पड़ा। इन्हें काशीपुरीका आधिपत्य प्राप्त है। भगवान् शिवने मार्गशीर्षमासमें कृष्णपक्षकी अष्टमीको 'कालभैरव' नामसे अवतार लिया था—

कृष्णाष्टम्यां तु मार्गस्य मासस्य परमेश्वरः।
आविर्बभूव सल्लीलो भैरवात्मा सतां प्रियः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० ९। ६३)

इसलिये इस दिन कालभैरवके संनिकट उपवासपूर्वक रात्रि-जागरण करनेसे भगवान् भैरवकी कृपासे समस्त पाप दूर हो जाते हैं और समस्त विघ्नोंसे मुक्ति मिलती है तथा सद्गति प्राप्त होती है। काशीमें प्रत्येक भौमवारकी अष्टमीको इनके दर्शन करनेका विशेष माहात्म्य है।

यक्षावतार-लीला

भगवान्ने यक्षरूपसे अवतार धारण किया था। भगवान्का यह यक्षावतार अभिमानियोंके अभिमानको दूर करनेवाला तथा साधु पुरुषोंके लिये भक्तिको बढ़ानेवाला है। एक बारकी बात है, समुद्र-मन्थनके बाद जब अमृत निकला तो उसका पानकर देवताओंने असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली और इस खुशीमें वे उन्मत्त हो उठे तथा शिवाराधनाको भूल बैठे। उन्हें यह अभिमान हो आया कि हम ही सर्वशक्तिमान् हैं। भक्तको अपनी भक्तिका—साधनाका मिथ्याभिमान हो जाय तो भगवान्को भला कैसे सहन हो! यह तो पतनका ही मार्ग ठहरा, अतः उन्होंने देवताओंके मिथ्या गर्वको दूर करनेके लिये 'यक्ष' नामक अवतार धारण किया और वे लीला करनेके लिये इसी यक्षरूपसे देवताओंके समीप जा पहुँचे। वहाँ भगवान्ने पूछा कि आप सब लोग एकत्र होकर यहाँ क्या कर रहे हैं, तो सभी देवता समुद्र-मन्थनके संदर्भमें अपना-अपना पराक्रम बढ़-चढ़कर सुनाने लगे और कहने लगे कि हमारी ही शक्तिसे असुर पराजित होकर भाग गये।

देवताओंके उन अभिमान-भरे वचनोंको सुनकर यक्षरूपी महादेवने कहा—'देवताओ! आपको गर्व करना ठीक नहीं; कर्ता-हर्ता तो कोई दूसरा ही देव है, आप लोग उन महेश्वरको भूलकर व्यर्थ ही अपने बलका अभिमान कर रहे हैं। यदि आप अपनेको महान् बली समझते हों तो यह एक 'तृण' है, इसे आप तोड़कर दिखायें, ऐसा कहकर यक्षावतारी शिवने लीला करते हुए अपने तेजसे सम्पन्न एक तृण (तिनका) उनके पास फेंका और उसे तोड़नेके लिये कहा।

इन्द्रादि सभी देवताओंने प्रथम तो पृथक्-पृथक् और फिर मिलकर अनेक अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, अपनी पूरी शक्ति लगा दी, पर उस रुद्रतेज-सम्पन्न तृणको तोड़नेमें वे समर्थ न हो सके। भला जब स्वयं शिव ही लीला कर रहें थे तो उस लीलाको उनकी कृपाके बिना कौन समझ सके? देवता हतप्रभ हो गये।

उसी समय आकाशवाणी हुई, जिसे सुनकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। आकाशवाणीमें कहा गया—'अरे देवो! भगवान् शंकर ही परम शक्तिमान् हैं, वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनके बलसे ही सभी बलवान् हैं, उनकी लीला अपरम्पार है, उनकी लीलासे ही आप लोग मोहित हैं, आप सभी उन्हींकी शरण ग्रहण करें।' यह सुनकर देवता लोग यक्षावतारी शिवको पहचान सके और अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् शिवने अपने यक्षरूपका परित्याग करके शिव-रूप धारण किया, जिसका दर्शनकर देवताओंको बड़ा आनन्द हुआ।

दुर्वासा-अवतार-लीला

महातपस्वी तथा धर्मात्मा महर्षि दुर्वासा भगवान् शंकरके ही अवतार-रूप हैं। श्रेष्ठ धर्मका प्रवर्तन करने, भक्तोंकी धर्मपरीक्षा करने तथा भक्तिकी अभिवृद्धि करनेके लिये साक्षात् भगवान् शंकरने ही दुर्वासा मुनिके रूपमें अवतार धारणकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। इस अवतारकी संक्षिप्त कथा इस प्रकार है—

ब्रह्मज्ञानी अत्रि ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलाते हैं। इनकी अनसूया नामकी सती-साध्वी धर्मपत्नी थीं। अनसूयाका पातिव्रत-धर्म विश्व-विश्रुत ही है। पुत्रकी आकांक्षासे महर्षि अत्रि तथा देवी अनसूयाने ऋक्षमान नामक पर्वतपर जाकर निर्विन्ध्या नदीके पावन तटपर सौ वर्षतक दुष्कर तप किया। उनके तपका ऐसा प्रभाव हुआ कि एक उज्ज्वल अग्निमयी ज्वाला प्रकट हुई, जिसने तीनों लोकोंको व्याप्त कर लिया। देवता, ऋषि, मुनि सभी चिन्तित हो उठे। तब ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर—ये तीनों देव उस स्थानपर गये, जहाँ महामहर्षि अत्रि तथा देवी अनसूया तप कर रहे थे। तदनन्तर प्रसन्न होकर तीनों देवोंने उन्हें अपने-अपने अंशसे एक-एक पुत्र (इस प्रकार तीन पुत्र) प्राप्त करनेका वर प्रदान किया।

वरदानके प्रभावसे ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय तथा भगवान् शंकरके अंशसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाका आविर्भाव हुआ। ये तीनों अत्रि और अनसूयाके पुत्र कहलाये। दुर्वासाके रूपमें अवतार लेकर भगवान् शंकरने अनेक लीलाएँ की हैं, जो अति प्रसिद्ध हैं। भगवान् शंकरके रुद्ररूपसे महर्षि दुर्वासा प्रकट हुए थे, इसीलिये उनका रूप अति रौद्र था; इसी कारण वे अतिक्रोधी भी थे। किंतु वस्तुतः महर्षि दुर्वासा दयालुताकी मूर्ति हैं, अत्यन्त करुणासम्पन्न हैं। भक्तोंका दुःख दूर करना तथा रौद्ररूप धारणकर दुष्टोंका दमन करना ही उनका स्वभाव रहा है। शिवपुराणमें कथा आयी है कि एक बार नदीमें स्नान करते समय महर्षि दुर्वासाका वस्त्र नदीके प्रवाहमें प्रवाहित हो

गया। कुछ दूरीपर देवी द्रौपदी भी स्नान कर रही थीं, उस समय द्रौपदीने अपने अंचलका एक टुकड़ा फाड़कर उन्हें प्रदान किया, इससे प्रसन्न होकर शंकरावतार महर्षि दुर्वासाने उन्हें वर दिया कि यह वस्त्रखण्ड वृद्धिको प्राप्तकर तुम्हारी लज्जाका निवारण करेगा और तुम सदा पाण्डवोंको प्रसन्न रखोगी। इसी वरका प्रभाव था कि जब कौरवसभामें दुःशासनके द्वारा द्रौपदीकी साड़ी खींची जाने लगी तो वह बढ़ती ही गयी। वरके प्रभावसे द्रौपदीकी लाज बच गयी। इसी प्रकारसे इनके द्वारा अनेक भक्तोंकी रक्षा हुई। [शतरुद्र० अ० १९]

भगवान् शंकरकी हनुमदवतार-लीला-कथा

रामसेवक हनुमान्‌जी भगवान् शंकरके ही अवतार हैं। हनुमद्रूपसे शिवजीने बड़ी ही उत्तम लीलाएँ की हैं। एक समयकी बात है, जब अत्यन्त अद्भुत लीला करनेवाले गुणशाली भगवान् शम्भुको विष्णुके मोहिनीरूपका दर्शन प्राप्त हुआ; उस समय राम-कार्यकी सिद्धिके लिये भगवान् शंकरने अपना तेजःपात किया। उस च्युततेजको सप्तर्षियोंने भगवान्‌की प्रेरणासे कानके माध्यमसे गौतम-कन्या देवी अञ्जनाके उदरमें प्रविष्ट करा दिया। कालान्तरमें अञ्जनाके गर्भसे साक्षात् शिव अवतरित हुए, जो हनुमान् तथा कपीश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। वे महान् बल और पराक्रमकी मूर्ति हैं। उन्होंने अनेक प्रकारकी लीलाएँ की हैं। जब कपीश्वर हनुमान् शिशुरूपमें थे, उसी समय उन्होंने उदय होते हुए रक्तिम सूर्यविम्बको कोई छोटा-सा फल समझकर निगल लिया, जब देवताओंने उनकी प्रार्थना की, तब उन्होंने सूर्यको उगल दिया। देवर्षियोंने हनुमान्‌जीको शिवका अवतार जानकर अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति-प्रार्थना की। माताकी आज्ञासे हनुमान्‌जीने नित्य सूर्यके पास जाकर सम्पूर्ण विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया।

गुरुदक्षिणा-स्वरूप हनुमान्‌जीने गुरु सूर्यभगवान्‌को यह वचन दिया कि वह उनके अंशसे उत्पन्न सुग्रीवकी सदा रक्षा करेगा। हनुमान्‌जी रामके परम भक्त एवं सेवक हैं और सर्वदा राम-कार्यमें तत्पर रहते हैं। वे सभी प्रकारके अमङ्गलोंको दूरकर कल्याणराशि प्रदान करनेवाले हैं तथा भगवान्‌की तरह साधु-संत, देवता-भक्त एवं धर्मकी रक्षा करनेवाले हैं। उनके हृदयमें भगवान् सीता-राम सदा ही निवास करते हैं। रुद्रावतार हनुमान्‌जीने श्रीरामकी लीलामें पूर्ण सहयोग किया और उनके सभी कार्य पूर्ण किये तथा भूतलपर सीताराम-भक्तिकी स्थापना की।

शंकरजीने वानररूप क्यों धारण किया? इसके सम्बन्धमें यह लीला-कथा भी प्रसिद्ध है कि भगवान् श्रीराम बाल्यकालसे ही सदाशिवकी आराधना करते हैं और भगवान् शिव भी श्रीरामको अपना परम उपास्य तथा इष्ट देवता मानते हैं—

सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥

किंतु साक्षात् नारायणने जब नर-रूप धारणकर श्रीरामके नामसे अवतार ग्रहण किया तो शंकरजी शिवरूपमें नररूपकी कैसे आराधना कर सकते थे, अतः उन्होंने नरावतार भगवान् श्रीरामकी उपासनाकी तीव्र लालसाको सफल बनानेके लिये वानर-रूप धारण किया और वे हनुमान् कहलाये। तुलसीदासजी महाराजने दोहावली (१४३)-में इसीका वर्णन किया है—

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

शिवजीके पिप्पलादावतारकी कथा

जहाँ महान् त्याग, तपस्या, दान, परोपकार एवं लोक-कल्याणके लिये आत्मदानकी बात आयेगी, वहाँ महर्षि दधीचिका नाम बड़े ही आदरसे लिया जायगा। महर्षि दधीचि भृगुवंशमें उत्पन्न हैं। वेदोंमें दध्यङ्ङाथर्वण भी इनका नाम आया है। भगवान् शिवमें इनकी अनन्य निष्ठा रही है। इसीलिये ये महाशैव भी कहलाते हैं। शिवजीके आशीर्वादसे ही इनकी अस्थियाँ वज्रके समान कठोर हुई थीं। इनकी पत्नीका नाम सुवर्चा था, ये सदाचार-सम्पन्न, महान् साध्वी, पतिव्रता तथा भगवान् शिवमें विशेष भक्तिसम्पन्न थीं। इन दोनोंकी शिवभक्तिसे ही प्रसन्न होकर भगवान् शिवने महासाध्वी सुवर्चाके गर्भसे 'पिप्पलाद' नामसे अवतार धारणकर जगत्‌का कल्याण किया और अनेक लीलाएँ कीं—

तस्मात् तस्यां महादेवो नानालीलाविशारदः।
प्रादुर्बभूव तेजस्वी पिप्पलादेति नामतः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ५)

भगवान् शिवके पिप्पलादावतार धारण करनेकी बड़ी ही रोचक कथा पुराणोंमें मिलती है, जिसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—

देवकार्यकी सिद्धि तथा वृत्रासुर आदि दैत्योंसे जगत्‌की रक्षाके लिये महर्षि दधीचिद्वारा अपनी अस्थियोंके दान तथा शिवकृपासे उनके लोकको प्राप्तिकी बात सर्वविश्रुत ही है। हुआ यों कि जब इन्द्र, बृहस्पति आदि देवता दधीचिसे उनकी अस्थियोंकी याचना करनेके लिये उनके आश्रमपर पहुँचे तो वहाँ देवोंको महर्षि दधीचि और सुवर्चाके दर्शन हुए। देवताओंने अत्यन्त विनम्रतासे उन्हें प्रणाम किया। महर्षि दधीचि सर्वज्ञ थे। वे अपने पास आये हुए देवताओंका अभिप्राय समझ गये। तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी देवी सुवर्चाको किसी कार्यके बहाने दूसरे आश्रममें भेज दिया। देवी सुवर्चा उस समय गर्भवती थीं।

देवताओंने देखा कि देवी सुवर्चा चली गयी हैं तो उन्होंने प्रार्थना करते हुए महर्षिसे कहा—'महामुने! आप सब कुछ जानते ही हैं कि हम क्यों आये हैं, तथापि प्रभो! आप महान् शिवभक्त हैं, दाता हैं तथा शरणागतरक्षक हैं, वृत्र आदि दैत्योंने महान् उपद्रव मचा रखा है, सारी सृष्टि पीडित है, हम लोग भी अपने स्थानोंसे च्युत हो गये हैं। इस समय आप ही रक्षा करनेमें समर्थ हैं, आपकी अस्थियोंमें शिव-तेज तथा हमारे अस्त्र-शस्त्रोंकी दिव्य शक्ति समाहित है, अतः आप अपनी अस्थियोंको हमें दान कर दें, इनसे वज्रका निर्माण करके वृत्रासुर आदि दैत्योंका नाश करनेमें हम सक्षम हो पायेंगे। अन्य किसी अस्त्र-शस्त्रमें ऐसी शक्ति नहीं है कि वह दैत्योंका नाश कर सके; क्योंकि वरदानके प्रभावसे वृत्रासुर इस समय अजेय हो गया है।' ऐसा कहकर देवता कातर-दृष्टिसे मुनिकी ओर देखने लगे।

महर्षि दधीचि देवताओंके आगमनको समझ ही रहे थे। दानका मौका आये, फिर महात्मा दधीचि कैसे चूक सकते थे। आज तो सारे ब्रह्माण्डकी रक्षा करनी है, फिर इसके लिये एक शरीर तो क्या कई जन्मोंतक शरीर त्याग करना पड़ता तब भी महर्षिके लिये कम ही बात थी। संत तो थे ही, परहितके लिये उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गको कम ही समझा। देवताओंकी याचनाको वे सहर्ष स्वीकार कर लिये।

दधीचि मुनिने अपने आराध्य भगवान् शंकरका ध्यान किया और ध्यान-समाधिसे अपने प्राणोंको खींचते हुए शिवतेजमें समाहित कर लिया। महर्षिका प्राणहीन शरीर पार्थिवकी तरह स्थित हो गया। आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। उसी समय इन्द्रने सुरभि गौको बुलाया और महर्षिके शरीरको चटवाया। तब उनकी अस्थियोंसे विश्वकर्माने वज्रादि अन्यान्य अस्त्र-शस्त्रोंको बनाया। देवराज इन्द्रद्वारा वज्रके प्रयोगसे वृत्रासुर मारा गया और देवता विजयी हुए। संसारमें सुख-शान्तिका साम्राज्य छा गया।

देवताओंके आश्रम-प्रदेशसे जानेपर जब महर्षिपत्नी सुवर्चा आश्रममें वापस आयीं तो देवताओंकी नीति उन्हें समझमें आ गयी। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके परोक्षमें देवताओंने उनके प्राणाराध्यसे अस्थियोंकी याचना की और महामतिने अपनी अस्थियोंका दानकर अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। वे कुपित हो उठीं और उन्होंने देवताओंको पुत्रहीन होनेका शाप दे डाला तथा उसी समय अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो उन्होंने पतिलोकमें जानेका निश्चय किया। फिर उन्होंने लकड़ियाँ एकत्रकर एक चिताका निर्माण किया और पतिका ध्यान करते हुए वे ज्यों ही चितापर आरूढ होनेको उद्यत हुईं; उसी समय लीलाधारी भगवान् शंकरकी प्रेरणासे आकाशवाणी हुई—

'हे देवि! तुम इस प्रकारका साहस न करो, क्योंकि तुम्हारे गर्भमें महर्षि दधीचका ब्रह्मतेज है, जो भगवान् शंकरका अवतार-रूप है। उसकी रक्षा आवश्यक है। सगर्भाके लिये देह-त्याग करना शास्त्रविरुद्ध है'—

सगर्भा न दहेद् गात्रमिति ब्रह्मनिदेशनम्॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ४३)

आकाशवाणी सुनकर सुवर्चाको अत्यन्त विस्मय हुआ और वे पास ही स्थित एक पीपलके वृक्षके नीचे बैठ गयीं। वहीं उन्होंने एक दिव्य बालकको जन्म दिया, जो साक्षात् शिवका अवतार ही था। उस समय उसके दिव्य तेजसे दसों दिशाएँ आलोकित हो उठीं। देवी सुवर्चाने उसे साक्षात् रुद्रावतार समझकर प्रणाम किया और रुद्रस्तवसे उसकी स्तुति की और कहा—'हे परमेशान! तुम इस पीपल (अश्वत्थ)-वृक्षके निकट चिरकालतक स्थित रहो। महाभाग! तुम समस्त प्राणियोंके लिये सुखदाता और अनेक प्रकारकी लीला करनेमें समर्थ होओ। अब इस समय पतिलोकमें जानेकी मुझे आज्ञा प्रदान करो।' ऐसा कहकर अपने पुत्रको वहीं पीपलके समीप छोड़कर पतिका ध्यान करती हुई सुवर्चा सती हो गयीं और उन्होंने पतिके साथ शिवलोक प्राप्त किया।

इसी समय सभी देवता तथा ऋषि-महर्षि वहाँ आये

और दधीचि एवं सुवर्चाके उस पुत्रको साक्षात् रुद्रावतार जानकर अनेक स्तुतियोंसे उनकी प्रार्थना करने लगे तथा इसे भगवान् शिवकी ही कोई लीला समझकर आनन्दित हो गये। वहाँपर देवताओंने महान् उत्सव किया। आकाशसे पुष्पवृष्टि भी होने लगी। विष्णु आदि देवताओंने उस दिव्य बालकके सभी संस्कार कराये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर उस बालकका 'पिप्पलाद' यह नाम रखा—

पिप्पलादेति तन्नाम चक्रे ब्रह्मा प्रसन्नधीः।

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २४। ६१)

चूँकि शिवावतार वह बालक पीपलके वृक्षके नीचे आविर्भूत हुआ था और माताकी आज्ञासे पीपल-वृक्षके समीप रहा तथा पीपलके मुलायम पत्तोंका भक्षण भी किया, इसलिये उसका पिप्पलाद यह नाम सार्थक ही हुआ। कुछ समय बाद देवता तथा ऋषि-महर्षि सब अपने स्थानोंको चले गये। पिप्पलाद उसी पीपल-वृक्षके मूलमें स्थित रहकर तपस्यामें स्थित हो गये। ऐसे ही तप करते हुए उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया।

एक दिन पिप्पलादमुनि पुष्पभद्रा नामक नदीमें स्नान करनेके लिये गये। वहाँ उन्हें राजा अनरण्यकी कन्या राजकुमारी पद्मा दिखलायी दी। वह पार्वतीके अंशसे प्रादुर्भूत हुई थी तथा दिव्य रूप एवं गुणोंसे सम्पन्न थी। उसे प्राप्त करनेकी आकांक्षासे महात्मा पिप्पलाद उसके पिता अनरण्यके पास गये और विवाहके लिये कन्याकी याचना की। प्रथम तो राजा अनरण्य महर्षिकी वृद्धावस्था और जर्जर शरीरको देखकर चिन्तित हुए, किंतु फिर उन्होंने उनके अलौकिक तेज और प्रभावको समझते हुए अपनी कन्या उन्हें सौंप दी।

वृद्ध होते हुए भी अपने पति महात्मा पिप्पलादकी पद्मा अनन्य मनसे सेवा करने लगी। वह महान् पातिव्रत्य-गुणसे सम्पन्न थी।

एक बार पद्मा नदीमें स्नान करने गयी हुई थी, उसी समय उसके पातिव्रत-धर्मकी परीक्षा करनेके लिये साक्षात् धर्म देवता दिव्य रूप एवं रमणीय दिव्याभरणोंको धारणकर पद्माके पास आये और वृद्ध दधीचिकी जरावस्थाका ध्यान दिलाते हुए अपनेको वरण करनेके लिये बार-बार आग्रह करने लगे; परंतु पद्मा तनिक भी डिगी नहीं। महात्मा पिप्पलाद उसके प्राणाधार थे। मन-वाणी तथा कर्मसे उसकी पतिमें अनन्य भक्ति थी। उसने धर्मदेवकी बड़ी भर्त्सना की और उसे क्षीण हो जानेका शाप दे दिया। धर्मदेव भयभीत हो अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले—'देवि! मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम्हारी पतिभक्ति देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ; किंतु तुम्हारे शापसे मैं भयभीत हूँ।' देवी पद्मा बोली—'धर्मदेव! मैंने अज्ञानमें ही यह सब किया है, किंतु शाप तो मिथ्या हो नहीं सकता, इसलिये तीनों युगोंमें चतुष्पाद धर्मके एक-एक पाद क्षीण रहेंगे। सत्ययुगमें तुम चारों पादोंसे स्थित रहोगे, त्रेतामें तीन पादोंसे रहोगे, द्वापरमें दो पादोंसे तथा कलियुगमें केवल एक पादसे स्थित रहोगे। इस तरह प्रत्येक चतुर्युगीमें ऐसी ही व्यवस्था रहेगी। इसके साथ ही शापका परिहार बताकर पद्मा पुनः पतिसेवामें जानेको उद्यत हुई। तब प्रसन्न हुए धर्मदेवने वृद्ध महात्मा पिप्पलादको रूपवान्-गुणवान्, स्थिर यौवनसे युक्त पूर्ण युवा हो जानेका वर प्रदान किया और पद्माको भी चिरयौवना होकर अखण्ड सुख-सौभाग्य होनेका वर दिया।

वरदानके प्रभावसे पिप्पलाद तथा देवी पद्माने बहुत समयतक धर्माचरणपूर्वक गृहस्थ-जीवनका आचरण किया। इस प्रकार महाप्रभु शंकरके लीलावतार पिप्पलादने अनेक प्रकारकी लीलाएँ कीं—

एवं लीलावतारो हि शंकरस्य महाप्रभोः।
पिप्पलादो मुनिवरो नानालीलाकरः प्रभुः॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २५। १४)

जब महात्मा पिप्पलादका अवतार हुआ था, उस समय उन्होंने देवताओंसे प्रश्न किया था कि 'हे देवगणो! क्या कारण है कि मेरे जन्मसे पूर्व ही पिता (दधीचि) मुझे छोड़कर चले गये और जन्म होते ही माता भी सती हो गयीं? तब देवताओंने बताया कि शनिग्रहकी दृष्टिके कारण ही ऐसा कुयोग बना। इसपर क्रुद्ध हो पिप्पलादने शनिको नक्षत्र-मण्डलसे गिरनेका शाप दिया। तत्क्षण ही शनि आकाशसे गिर पड़े। पुनः देवताओंकी प्रार्थनापर पिप्पलादने उन्हें पूर्ववत् स्थिर हो जानेकी आज्ञा दे दी। इसीलिये महर्षि

पिप्पलादके नाम-स्मरण तथा पीपल (जो भगवान् शंकरका ही रूप है)-के पूजनसे शनिकी पीडा दूर हो जाती है। महामुनि गाधि, कौशिक तथा पिप्पलाद—इन तीनोंका नाम-स्मरण करनेसे शनिग्रहकृत पीडा नष्ट हो जाती है। शंकरावतार महामुनि पिप्पलाद तथा देवी पद्माके चरित्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पाठ अथवा श्रवण शनिग्रहद्वारा किये गये अनिष्ट—पीडा आदिको दूर करनेके लिये श्रेष्ठतम उपाय है—

गाधिश्च कौशिकश्चैव पिप्पलादो महामुनिः।
शनैश्चरकृतां पीडां नाशयन्ति स्मृतास्त्रयः॥
पिप्पलादस्य चरितं पद्माचरितसंयुतम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि सुभक्त्या भुवि मानवः॥
शनिपीडाविनाशार्थमेतच्चरितमुत्तमम् ।

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २५। २०—२२)

भगवान् शिवके द्विजेश्वरावतारकी कथा

प्राचीन कालमें भद्रायु नामक एक महाप्रतापी राजा थे, वे शिवके परम भक्त थे। देवी कीर्तिमालिनी भद्रायुकी साध्वी पत्नी थीं। अपने स्वामीके समान ही कीर्तिमालिनीकी भी शिवमें परम श्रद्धा एवं निष्ठा थी। एक बार वसन्तकालमें राजा-रानी दोनों वन-विहारके लिये वनमें गये। भगवान् शिवने उनकी भक्ति तथा धर्मकी परीक्षा करनेके लिये द्विज-दम्पति-रूप धारणकर लीला करनेकी इच्छा प्रकट की और वे स्वयं द्विज-रूपमें हो गये तथा माँ पार्वती ब्राह्मणी बन गयीं। द्विज-दम्पति उस वनमें उसी स्थानपर आये जहाँ राजा भद्रायु और रानी कीर्तिमालिनी सुखपूर्वक बैठे हुए थे। भगवान् शंकरने अपनी लीलासे वहाँ एक मायामय व्याघ्रकी भी रचना कर ली—

अथ तद्धर्मदृढतां परीक्षन् परमेश्वरः।
लीलां चकार तत्रैव शिवया सह शंकरः॥
शिवा शिवश्च भूत्वोभौ तद्वने द्विजदम्पती।
व्याघ्रं मायामयं कृत्वाविर्भूतौ निजलीलया॥

(शिवपु०, शतरुद्रसं० २७। ८-९)

अब भगवान् शंकरने लीला दिखानी प्रारम्भ की। भगवान् शंकर तथा पार्वती द्विज-दम्पतिके रूपमें व्याघ्रके भयसे भाग रहे थे और उनके पीछे व्याघ्र भयंकर गर्जना करते हुए आ रहा था। वे दोनों 'अरे कोई है, बचाओ, बचाओ—' इस प्रकार चिल्लाते-चिल्लाते रोते-रोते वहाँ पहुँचे जहाँ राजा भद्रायु स्थित थे। वे दोनों राजासे अपने प्राणोंकी रक्षा की प्रार्थना करने लगे। उनके आर्त स्वरको सुनकर तथा भयंकर व्याघ्रको उनके पीछे आते देखकर जबतक राजा धनुषपर बाण चढ़ाते उतने ही समयमें उस तीक्ष्ण दाँतोंवाले व्याघ्रने ब्राह्मणी (पार्वती)-को दबोच लिया। ब्राह्मणी रोती-चिल्लाती रह गयी। राजाने अनेक अस्त्रोंसे व्याघ्रपर प्रहार किया, किंतु उसे कुछ भी असर नहीं हुआ। होता भी कैसे, उसे तो लीलाधारी भगवान् शंकरने अपनी मायासे लीलाके लिये ही बनाया था। वह व्याघ्र ब्राह्मणीको दूरतक घसीटता चला गया। राजाके सभी अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ साबित हुए।

ब्राह्मण राजाके क्षत्रियत्वको बहुत प्रकारसे धिक्कारने लगा कि उनके रहते उनकी पत्नीको व्याघ्र हर ले गया। 'जो शरणागतकी रक्षा न कर सके उसका जीना व्यर्थ है।' यह सुनकर राजाके मनमें अत्यन्त ग्लानि हुई। उन्हें अपना जीवन व्यर्थ लगने लगा। अतः उन्होंने प्राणोंके उत्सर्गका निश्चय किया और वृद्ध ब्राह्मणके चरणोंमें गिरकर वे क्षमा-याचना करते हुए कहने लगे—'ब्रह्मन्! अब मेरा जीवन बेकार ही है। मेरा बल, पराक्रम सब व्यर्थ गया। मैं देवी ब्राह्मणीको छुड़ा नहीं सका, अतः अब मुझे राज्य तथा समस्त वैभव आदिसे कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिये उसे आप स्वीकारकर मुझे क्षमा करें।

इसपर लीलारूप वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'अरे राजन्! मेरी प्रिया ब्राह्मणी नहीं रही, इसलिये मेरे लिये सारा सुखोपभोग व्यर्थ ही है, यह तो वैसा ही है जैसे अंधेके लिये दर्पण निष्प्रयोजन ही होता है। यदि आपको देना ही है तो मेरी स्त्री नहीं रही, इसलिये आप अपनी स्त्री मुझे प्रदान करें। अन्यथा मेरे प्राण शरीरमें नहीं रह सकते।

वृद्ध ब्राह्मणकी बात सुनकर पहले तो राजा भद्रायु बड़े ही संकटमें पड़ गये। उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। वे कुछ निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुए; किंतु दूसरे ही क्षण उन्होंने निश्चय किया कि ब्राह्मणके प्राणोंकी रक्षा न करनेसे महान् पाप होगा। अतः उन्होंने पत्नीका दान करके अग्निमें प्रवेश कर जानेका निर्णय लिया। ऐसा निश्चय करके उन्होंने

लकड़ी एकत्र की तथा अग्नि प्रज्वलितकर ब्राह्मणको बुलाकर अपनी पत्नी उन्हें दे दी और फिर भगवान् शिवका स्मरण-ध्यान करके ज्यों ही राजा भद्रायु अग्निमें प्रविष्ट होनेके लिये उद्यत हुए, त्यों ही लीलाधारी भगवान् शंकर जो द्विजरूपमें थे, वे साक्षात् शिवरूपमें सामने प्रकट हो गये। उनके पाँच मुख थे। मस्तकपर चन्द्रकला सुशोभित थी, जटाएँ लटकी हुई थीं। हाथोंमें त्रिशूल, खट्वाङ्ग, ढाल, कुठार, पिनाक तथा वरद और अभय-मुद्रा धारण किये थे। वे वृषभपर आरूढ थे। उनका मुखमण्डल अद्भुत दिव्य प्रकाशकी आभासे प्रकाशित हो रहा था। उनका वह रूप अत्यन्त मनोरम तथा सुखदायी था।

अपने आराध्य लीलाधारी भगवान् शिवको अपने सामने पाकर राजा भद्रायुके आनन्दकी सीमा न रही। वे बार-बार प्रणाम करते हुए अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करने लगे। उस समय आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। देवी उमा भी वहाँ प्रकट हो गयीं।

राजाके महान् त्याग और दृढ़भक्तिसे प्रसन्न होकर शिवने भद्रायुको लीलाका रहस्य समझाते हुए कहा—'राजन्! मैं ही तुम्हारे शिव-भावकी परीक्षा लेनेके लिये द्विजरूपमें अवतरित हुआ था और वह वृद्ध ब्राह्मणी भी और कोई नहीं मेरी प्रिया देवी ये पार्वती ही थीं। वह व्याघ्र भी मैंने लीलासे ही रचा था। तुम्हारे धैर्यको देखनेके लिये ही मैंने तुम्हारी पत्नीको माँगा था। तुम्हारी पत्नी कीर्तिमालिनी और तुम्हारी भक्तिसे हम प्रसन्न हैं, कोई वर माँगो!' फिर शिवभक्तिका वरदान प्राप्तकर अन्तमें राजा भद्रायु तथा कीर्तिमालिनीने शिव-सायुज्य प्राप्त किया। भद्रायुने अपने माता-पिता तथा कुल-परम्परा और कीर्तिमालिनीने भी अपने माता-पिता एवं कुल-परम्पराको शिव-भक्त होनेका वरदान प्राप्त किया।

इस प्रकार भगवान् शिवने अपने भक्तके कल्याणके लिये द्विजरूप होकर लीला की और वे द्विजेश्वर कहलाये।

यतिनाथ एवं हंसावतारकी लीला

अर्बुदाचल नामक पर्वतपर एक भील निवास करता था, जिसका नाम था आहुक। उसकी पत्नीका नाम आहुकी था। वे दोनों पति-पत्नी महान् शिवभक्त थे तथा शिवकी आराधना-पूजामें लगे रहते थे। एक दिन वह भील आहारकी खोज करनेके निमित्त वनमें बहुत दूरतक चला गया। संध्याकाल होनेको आया। इसी समय भीलकी परीक्षा लेनेके लिये भगवान् शिवने एक यति (संन्यासी)-का रूप धारण किया और वे लीला करनेके लिये भीलके घरपर चले आये। उस समय घरपर केवल भीलनी ही थी। शंकरकी प्रेरणासे उसी समय वह भील भी जंगलसे घर लौट आया। तब अतिथिको घर आया जानकर भील-भीलनीने उनका स्वागत-सत्कार तथा पूजन किया।

उसके मनोभावकी परीक्षा करनेके लिये महान् लीला करनेवाले यतिरूप भगवान् शंकरने दीन वाणीमें भीलसे कहा—'भील! रात होनेवाली है। यह भयंकर जंगल है, यहाँ अनेक प्रकारके हिंसक प्राणी रहते हैं, इस समय रातमें अन्यत्र जाना मेरे लिये सम्भव नहीं है, अतः आज यहीं रहनेके लिये मुझे स्थान दे दो। सबेरा होते ही मैं चला जाऊँगा।'

भीलने कहा—'स्वामीजी! आप ठीक कहते हैं, तथापि मेरे घरमें स्थान तो बहुत थोड़ा है। यह एक कुटिया है, इसीमें हम दोनों पति-पत्नी रहते हैं, फिर आपका रहना कैसे सम्भव हो सकता है? यहाँ कोई दूसरा कमरा भी नहीं है।'

भीलकी बात सुनकर लीला-वपुधारी यति (शिव) जानेको उद्यत हुए; किंतु उसी समय भीलनीने भीलसे कहा—'प्राणनाथ! घरमें आये अतिथिका इस प्रकार अनादर करना ठीक नहीं। अतिथिके घरसे निराश चले जानेसे गृहस्थधर्मकी महान् हानि होती है, अतः स्वामीजीके साथ आप घरमें भीतर रहिये, मैं अस्त्र-शस्त्रोंको लेकर बाहर द्वारकी रक्षा करूँगी।'

पत्नीकी बात सुनकर भीलने सोचा—स्त्रीको रात्रिमें घरसे बाहर पहरेमें खड़ा करके मैं घरके अंदर कैसे रह सकता हूँ, यह तो अनीति होगी और संन्यासीका अन्यत्र चला जाना भी मेरे लिये अधर्मकारक ही होगा। ये दोनों ही कार्य गृहस्थके लिये सर्वथा अनुचित हैं। अतः मुझे ही घरके बाहर रहना चाहिये। 'जो होनहार होगी वह होकर ही रहेगी।' ऐसा निर्णयकर भीलने संन्यासी तथा अपनी स्त्रीको घरमें रहनेके लिये कहा और स्वयं शस्त्रोंको लेकर द्वारपर हिंसक पशुओंसे रक्षा करनेके लिये खड़ा हो गया।

रातमें जंगली क्रूर एवं हिंसक पशु उसे पीडा देने लगे। उसने यथाशक्ति उनपर शस्त्रोंका प्रहार किया, किंतु जब स्वयं भगवान् शंकर ही लीला कर रहे थे तो भीलकी क्या चलती! भील हिंसक जानवरोंका आहार बन गया। प्रातः-काल हुआ। यतिने देखा कि भीलको हिंसक पशुओंने खा डाला है तो उन्होंने अनेक प्रकारसे दुःख प्रकट करनेकी लीला की। भीलनी इस लीलाको समझ न सकी, वह दुःखसे व्याकुल थी अवश्य, पर सदाचारसम्पन्न थी। अतिथिसेवा-धर्मको समझती थी, शिवभक्त थी, अतः वह बोली—'स्वामीजी! आप दुःखी न हों, मेरे स्वामी तो अतिथि-धर्मका पालन करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए हैं, अब मैं भी चिताकी आगमें जलकर इनका अनुसरण करूँगी। आप प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिये एक चिता तैयार कर दें, क्योंकि स्वामीका अनुसरण करना स्त्रियोंके लिये सनातन धर्म है।'

उसकी धर्ममय बातें सुनकर संन्यासीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने अपने हाथोंसे चिता तैयार की और भीलनीने अपने धर्मके अनुसार उसमें प्रवेश किया। उसी समय भगवान् शंकर अपने साक्षात् स्वरूपसे उसके सामने प्रकट हो गये। अब उनका वह संन्यासीका लीलारूप विलुप्त हो गया। वे उसकी प्रशंसा करते हुए बोले—

'देवि! तुम धन्य हो, धन्य हो, मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम यथेच्छ वर माँगो!'

साक्षात् भगवान् शंकरका दर्शन पाकर भीलनी परम आनन्दित हो गयी। हाथ जोड़े-जोड़े वह मुग्ध हो गयी। वह कुछ भी न माँग सकी। इसपर भक्तवत्सल लीलाधारी भगवान् शंकरने कहा—'देवि! मैंने ही संन्यासीका रूप धारण करके तुम दोनोंकी परीक्षा ली थी। तुम दोनों परीक्षामें सफल हुए हो, अतः अगले जन्ममें मैं ही 'हंस'-रूपसे अवतार धारणकर लीला करूँगा और तुम दोनोंका संयोग कराऊँगा। तुम्हारा पति भील आहुक निषधदेशकी राजधानीमें राजा वीरसेनका श्रेष्ठ पुत्र होगा। उस समय 'नल' नामसे इसकी ख्याति होगी और तुम विदर्भ-नगरमें भीमराजकी पुत्री दमयन्ती होओगी। तुम दोनों मिलकर राज-भोग करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् शिव उस समय लिङ्गरूपमें प्रतिष्ठित हो गये और 'अचलेश्वर' नामसे विख्यात हुए।

दूसरे जन्ममें वरदानके प्रभावसे आहुक तथा आहुकी राजा नल-दमयन्ती हुए। वहाँ हंसरूपसे प्रकट होकर भगवान् शिवने उन दोनोंका विवाह कराया। वे सबके लिये परम आनन्ददायक हुए।

भगवान् शिवकी अर्धनारीश्वर-लीला

सृष्टिके आदिमें जब सृष्टिकर्ता ब्रह्माद्वारा रची हुई सारी प्रजाएँ विस्तारको नहीं प्राप्त हुईं तब ब्रह्मा उस दुःखसे दुखी हो चिन्ताकुल हो गये। उसी समय आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! अब मैथुनी सृष्टिकी रचना करो, इससे सृष्टिका विस्तार होता जायगा।' इस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्मा विचारमें पड़ गये, क्योंकि मैथुनी सृष्टि बिना स्त्री-पुरुषके सम्भव है नहीं, और तबतक स्त्रीकी सृष्टि हुई ही नहीं थी, केवल पुरुष-तत्त्व ही था। बिना स्त्री-पुरुषके मैथुनी सृष्टि कैसे हो सकती है? ब्रह्माजी आद्याशक्ति शिवा तथा भगवान् शंकरकी शरणमें गये और उन्हें आकाशवाणीकी बात बतलायी। यह सुनकर भगवान् शिव हँस पड़े और प्रसन्न होकर क्षणभरमें ही लीलाधारी भगवान् शिव आधे शरीरसे नारी और आधे शरीरसे पुरुषरूप होकर ब्रह्माजीके समक्ष प्रकट हो गये। उनका वाम-भाग स्त्रीका था और दक्षिण-भाग पुरुषका। वह अद्भुत लीलारूप देखकर ब्रह्माजीको बड़ा ही आनन्द हुआ और वे हाथ जोड़कर महादेव तथा महादेवीकी स्तुति करने लगे।

स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने अपने अर्धनारीश्वररूपसे अपने वाम-भागमें प्रतिष्ठित शिवारूप (नारीरूप)-को अपनेसे पृथक् कर लिया, वे ही देवी परमात्मा शिवकी पराशक्ति हैं, भवानी हैं, रुद्राणी हैं, मृडानी हैं, जगदम्बा हैं, जगज्जननी हैं। उन सर्वलोक-महेश्वरी परमेश्वरीका पृथक् दर्शनकर ब्रह्माजीको महान् विस्मय हुआ और वे उनकी प्रार्थना करने लगे।

ब्रह्माजीने कहा—'देवि! महादेवजीने सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया और प्रजाकी सृष्टिके कार्यमें लगाया। इनकी आज्ञासे मैं समस्त जगत्की सृष्टि करता हूँ, किंतु देवि! मेरे मानसिक संकल्पसे रचे गये देवता, प्रजापति आदि समस्त प्राणी बारम्बार सृष्टि करनेपर भी बढ़ नहीं रहे हैं, अत: अब मैं मैथुनी सृष्टिसे अपनी सारी प्रजाको बढ़ाना चाहता हूँ। माँ! आपके पहले नारी-कुलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, इसलिये आप ही सृष्टिकी प्रथम नारी-रूप हैं। प्रथम मातृरूप हैं, प्रथम शक्तिरूप हैं; अत: हे देवि! आप अपने एक दूसरे रूपमें इस चराचर जगत्की वृद्धिके लिये मेरे पुत्र दक्षप्रजापतिकी पुत्रीके रूपमें प्रतिष्ठित हो जायँ। ऐसा वर देनेकी कृपा करें।'

तब प्रसन्न होकर देवी रुद्राणीने अपने भौंहोंके मध्य-भागसे अपने ही समान प्रभावाली एक दिव्य नारी-शक्तिको प्रादुर्भूत किया, जो प्रजापति दक्षकी 'सती' नामकी पुत्रीके रूपमें प्रतिष्ठित हुई। तब ब्रह्माजीने भी अपने ही शरीरसे मनु-शतरूपाको प्रकट किया और फिर सृष्टिका विस्तार होता गया।

इस प्रकार ब्रह्माजीका मनोरथ पूर्ण करके आदिशक्ति भवानी भगवान् शिवमें प्रविष्ट हो गयीं और भगवान् शिवने उस शक्तिरूपको अपनेमें अन्तर्हित कर लिया। उनका वह अर्धनारीश्वर-रूप सदाके लिये भक्तोंके हेतु आराध्य बन गया। लीलाविहारीका लीला-वैचित्र्य सचमुच विलक्षण ही है। द्रोणाचार्यकी शिवभक्तिसे प्रसन्न होकर वे अश्वत्थामाके रूपमें उनके पुत्र बने। ऐसे ही व्याघ्रपादके पुत्र उपमन्युकी तपस्याको सिद्ध करनेके लिये वे सुरेश्वरावतारके रूपमें अवतरित हुए। लिङ्ग-रूपमें तो वे सर्वत्र व्याप्त ही हैं। द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंके रूपमें वे ही प्रतिष्ठित हैं। एकादश रुद्र भगवान् शिवके ही विविध लीलारूप हैं। विभिन्न युगोंमें प्रादुर्भूत होकर योगका उपदेश देनेवाले योगाचार्योंके रूपमें भगवान् शिव ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करके शिव-मार्गको प्रशस्त करते हैं।

पराम्बा भगवतीके लीला-चरित

पराशक्ति भगवती श्रीदुर्गा

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चकी अधिष्ठानभूता सच्चिदानन्दरूपा भगवती श्रीदुर्गा ही सम्पूर्ण विश्वको सत्ता, स्फूर्ति तथा सरसता प्रदान करती हैं। विश्व-प्रपञ्च उन्हींसे उत्पन्न होता है और अन्तमें उन्हींमें लीन हो जाता है। जैसे दर्पणमें आकाशमण्डलं, भूधर, सागरादि-प्रपञ्च प्रतीत होता है, किंतु दर्पणको स्पर्श कर देखा जाय तो वहाँ वास्तवमें कुछ भी उपलब्ध नहीं होता, वैसे ही सच्चिदानन्दरूपा महाचिति भगवतीमें सम्पूर्ण विश्व भासित होता है। जैसे दर्पणके बिना प्रतिबिम्बका भान नहीं होता, दर्पणके उपलम्भमें ही प्रतिबिम्बका उपलम्भ होता है, वैसे ही अखण्ड, नित्य, निर्विकार महाचितिमें ही—उसके अस्तित्वमें ही प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयादि विश्व उपलब्ध होता है। अधिष्ठान न होनेपर भास्यके उपलम्भकी आशा नहीं की जा सकती।

यद्यपि शुद्ध ब्रह्म स्त्री, पुमान् या नपुंसकमेंसे कुछ नहीं है; तथापि वह चिति, भगवती, दुर्गा आदि स्त्री-वाचक शब्दोंसे, आत्मा, पुरुष आदि पुम्बोधक शब्दोंसे और ब्रह्म, ज्ञान आदि नपुंसक—शब्दोंसे भी व्यवहृत होता है। वस्तुतः स्त्री, पुमान्, नपुंसक—इन सबसे पृथक् होनेपर भी उस-उस शरीरके सम्बन्धसे या वस्तुके सम्बन्धसे वही अचिन्त्य, अव्यक्त, स्वप्रकाश, सच्चिदानन्दस्वरूपा महाचिति भगवती दुर्गा, आत्मा, पुरुष, ब्रह्म आदि शब्दोंसे व्यवहृत होती है। मायाशक्तिका आश्रयणकर वे ही अनेक रूपोंमें व्यक्त होती हैं।

कोई इस परमात्मरूपा महाशक्तिको निर्गुण कहते हैं और कोई सगुण। ये दोनों बातें भी ठीक हैं; क्योंकि उन एकके ही तो ये दो नाम हैं। जब मायाशक्ति क्रियाशील रहती है, तब उसका अधिष्ठान महाशक्ति सगुण कहलाती है और जब वह महाशक्तिमें मिली रहती है, तब वह महाशक्ति निर्गुण कहलाती है। इन अनिर्वचनीया परमात्मरूपा महाशक्तिमें परस्पर विरोधी गुणोंका नित्य सामञ्जस्य है। वे जिस समय निर्गुण हैं, उस समय भी उनमें गुणमयी मायाशक्ति छिपी हुई वर्तमान है और जब वे सगुण कहलाती हैं, उस समय भी वे गुणमयी मायाशक्तिकी अधीश्वरी और सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होनेसे वस्तुतः निर्गुण ही हैं। उनमें निर्गुण और सगुण दोनों लक्षण सभी समय वर्तमान हैं। जो जिस भावसे उन्हें देखता है, उसे उनके वैसे ही रूपका भान होता है। वास्तवमें वे कैसी हैं, क्या हैं—इस बातको वे ही जानती हैं। इन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मादि देवता बनते हैं, जिनसे विश्वकी उत्पत्ति होती है। इन्हींकी शक्तिसे विष्णु और शिव प्रकट होकर विश्वका पालन और संहार करते हैं। दया, क्षमा, निद्रा, स्मृति, क्षुधा, तृष्णा, तृप्ति, श्रद्धा, भक्ति, धृति, मति, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, कान्ति एवं लज्जा आदि इन्हीं महाशक्तिकी शक्तियाँ हैं। ये ही गोलोकमें श्रीराधा, साकेतमें श्रीसीता, क्षीरोदसागरमें लक्ष्मी, दक्षकन्या सती तथा दुर्गतिनाशिनी मेनाकी पुत्री दुर्गा हैं। ये ही वाणी, विद्या, सरस्वती, सावित्री और गायत्री हैं।

ये महाशक्ति ही सर्वकारणरूपा प्रकृतिकी आधारभूता होनेसे महाकारण हैं, ये ही मायाधीश्वरी हैं, ये ही सर्जन-पालन-संहारकारिणी आद्या नारायणी शक्ति हैं तथा ये ही प्रकृतिके विस्तारके समय भर्ता, भोक्ता और महेश्वर होती हैं। परा एवं अपरा दोनों प्रकृतियाँ इन्हींकी हैं अथवा ये ही दो प्रकृतियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं। इनमें द्वैत, अद्वैत दोनोंका समावेश है। ये ही वैष्णवोंकी श्रीनारायण और महालक्ष्मी, श्रीराम और सीता, श्रीकृष्ण और राधा हैं, शैवोंकी श्रीशंकर और उमा, गाणपत्योंकी श्रीगणेश और ऋद्धि-सिद्धि, सौरोंकी श्रीसूर्य और उषा, ब्रह्मवादियोंकी शुद्धब्रह्म और ब्रह्मविद्या तथा शास्त्रोंकी महादेवी हैं। ये ही पञ्चमहाशक्ति, दशमहाविद्या तथा नवदुर्गा हैं। ये ही अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी एवं ललिताम्बा हैं। ये ही शक्तिमान्

और शक्ति हैं। ये ही नर और नारी हैं। ये ही माता, धाता, पितामह हैं; सब कुछ ये ही हैं।

यद्यपि श्रीभगवती नित्य ही हैं और उन्हींसे चराचर प्रपञ्च व्याप्त है; तथापि देवताओंके कार्यके लिये वे समय-समयपर अनेक रूपोंमें जब प्रकट होती हैं, तब वे नित्य होनेपर भी 'देवी उत्पन्न हुईं—प्रकट हो गयीं,' इस प्रकारसे कही जाती हैं—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ६४—६६)

दुर्गादेवीका आविर्भाव

भगवती दुर्गा शिवस्वरूपा हैं, गणेशजननी हैं। ये नारायणी, विष्णुमाया और पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी नामसे प्रसिद्ध हैं। सभी देवता इनकी पूजा करते हैं। ये भगवान् शंकरकी परम प्रेयसी हैं। इनका लीला-चरित्र अति पावन है।

दुर्गादेवीके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—प्राचीन कालमें दुर्गम नामक एक महाबली असुर उत्पन्न हुआ था। उसने ब्रह्मासे एक अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया था। उसके प्रभावसे उसने चारों वेदोंको विश्वसे लुप्त कर लिया था। बलके घमण्डमें आकर उसने विश्वको अपमानित और पीडित कर रखा था। उसके उत्पातोंको सुनकर देवता भी भयभीत हो गये। वेदोंके अदृश्य हो जानेसे सम्पूर्ण धर्म-क्रियाएँ नष्ट हो गयीं और अवर्षण होनेसे घोर अकाल पड़ गया, नदी और नद तो सूख ही गये, समुद्र भी सूखने लगे थे। भोजन और पानीके अभावमें लोग चेतनाहीन हो रहे थे। तीनों लोकोंमें त्राहि-त्राहि मची थी। तब देवताओंने भगवतीकी शरण ली। उन्होंने प्रार्थनापूर्वक कहा—'माँ! जैसे आपने शुम्भ-निशुम्भ, धूम्राक्ष, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज, मधु-कैटभ तथा महिष आदि असुरोंका वधकर हमारी रक्षा की है, उसी तरह दुर्गमासुरसे भी हमें बचाइये और इसके द्वारा लाये गये अकालसे प्राणियोंकी रक्षा कीजिये।'

देवताओंकी करुणापूर्ण वाणीसे कृपामयी देवी प्रकट हो गयीं और अपने अनन्त नेत्रोंसे युक्त रूपका उन्हें दर्शन कराया। अन्न और जलके लिये छटपटाते जीवोंको देखकर उन्हें बड़ी दया आयी तथा उनके अनन्त नेत्रोंसे अश्रुजलकी सहस्रों धाराएँ प्रवाहित हो उठीं। उन धाराओंसे सब लोग तृप्त हो गये। सरिताओं और समुद्रोंमें अगाध जल भर गया। देवीने गौओंके लिये सुन्दर घास और दूसरे प्राणियोंके लिये यथायोग्य भोजन सामग्री प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने शुद्ध महात्मा पुरुषोंको अपने हाथसे दिव्य फल बाँटे। देवता, ब्राह्मण और मनुष्योंसहित सभी प्राणी संतुष्ट हो गये।

तब देवीसे देवताओंने कहा—'माँ! जैसे आपने समस्त विश्वको मरनेसे बचाकर हम लोगोंको तृप्त किया, वैसे ही अब इस दुष्ट दुर्गमासुरसे हमारी रक्षा कीजिये। उसने वेदोंका अपहरण कर लिया है, जिससे सारी धर्मक्रिया ही लुप्त हो गयी है।'

देवीने कहा—'देवगण! मैं आपकी इच्छाएँ पूर्ण करूँगी। अब आप लोग निश्चिन्त होकर यथास्थान लौट जायँ।' देवता उन्हें प्रणामकर यथास्थान लौट गये। देवीकी कृपासे तीनों लोकोंमें आनन्द छा गया।

दुर्गमासुर यह जानकर अत्यन्त विस्मित हुआ, सोचने लगा—मैंने तो तीनों लोकोंको रुला डाला था, सब भूख-प्याससे मर रहे थे, देवता भी भयभीत थे, किंतु यह क्या हो गया, कैसे हो गया? वस्तुस्थितिसे अवगत होते ही दुर्गमासुरने अपनी आसुरी सेना लेकर देवलोकको घेर लिया। करुणामयी माँने देवताओंको बचाने तथा विश्वकी रक्षा करनेके लिये देवलोकके चारों ओर अपने तेजोमण्डलकी चहारदीवारी खड़ी कर दी और स्वयं घेरेसे बाहर आ डटीं।

देवीको देखते ही दैत्योंने उनपर आक्रमण कर दिया। इसी बीच देवीके दिव्य शरीरसे सुन्दर रूपवाली—**काली, तारा, छिन्नमस्ता, श्रीविद्या, भुवनेश्वरी, भैरवी, वगला, धूम्रा, त्रिपुरसुन्दरी** और **मातङ्गी**—ये दस महाविद्याएँ अस्त्र-शस्त्र लिये निकलीं। साथ ही असंख्य मातृकाएँ भी प्रकट हो गयीं। उन सबने अपने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था और वे सभी विद्युत्के समान दीप्तिमती दिखायी देती थीं। इन शक्तियोंने देखते-देखते दुर्गमासुरकी सौ अक्षौहिणी सेनाको काट डाला। इसके पश्चात् देवीने अपने तीखे त्रिशूलसे दुर्गमासुरका वध कर डाला और वेदोंका उद्धारकर उन्हें देवताओंको दे दिया। (शिवपु०, उमासं०, अ० ५०)

इस प्रकार देवीने दुर्गमासुरका वधकर विश्वकी रक्षा की। उन्होंने दुर्गम असुरको मारा था, इसीलिये उनका नाम 'दुर्गा' प्रसिद्ध हुआ। शताक्षी एवं शाकम्भरी भी उन्हींका नाम है। वे दुर्गतिनाशिनी हैं, इसलिये भी वे 'दुर्गा' कहलाती हैं।

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती

महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—ये तीनों नाम जगन्नियन्ता परमात्माकी चितिशक्तिके हैं। शास्त्रकारोंका दृढ़ विश्वास है कि परमात्माको स्वरचित सृष्टिकी मर्यादा-रक्षार्थ युग-युगमें अपनी अलौकिकी योगमायाका आश्रयकर पुरुष या स्त्रीरूपसे अवतीर्ण होना पड़ता है। जब वे पुरुषवेषमें अवतार लेते हैं, तब जगत् उनकी ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नामोंसे स्तुति करता है और जब वे स्त्रीरूपसे जगत्में अवतीर्ण होते हैं, तब उन्हें महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती कहते हैं। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश—रज, सत्त्व और तमःप्रधान हैं, उसी प्रकार चितिशक्तिके ये तीनों रूप भी तम, सत्त्व, रज आदि गुणोंकी अधिकताके अनुसार वेष धारण करते हुए तत्तद्गुणानुरूप कार्य करते हैं। चितिशक्तिके तमःप्रधान रौद्ररूपको महाकाली कहते हैं, जो प्रधानतया दुष्टोंका संहार करती है। सत्त्वप्रधान वैष्णवरूपको महालक्ष्मी कहते हैं, जो जगत्का पालन करती है। रजःप्रधान ब्राह्मीशक्तिको सरस्वती कहते हैं, जो प्रधानतया जगत्की उत्पत्ति और उसमें ज्ञानका संचार करती है। दुर्गासप्तशतीमें चितिशक्तिके इन तीनों स्वरूपोंकी उत्पत्ति-कथा इस प्रकार है—

स्वारोचिष-मन्वन्तरमें चक्रवर्ती राजा सुरथ राज्य करता था। एक समय शत्रुओंद्वारा पराजित होकर वह अपने राज्यमें आकर शासन करने लगा, परंतु वहाँपर भी उसके शत्रुओंने आक्रमण कर दिया, जिससे दुःखी होकर वह शिकारके बहानेसे वनमें जाकर मेधामुनिके आश्रममें रहने लगा। परंतु वहाँ भी उसे रात-दिन अपने राज्य-कोष आदिकी ही चिन्ता घेरे रहती थी। एक समय राजा आश्रमके निकट घूम रहा था कि उसकी दृष्टि एक वैश्यपर पड़ी। उसे उदास देखकर राजाने पूछा कि 'तुम कौन हो और यहाँ किसलिये आये हो? तुम्हारा मुख उदास और चिन्तित क्यों प्रतीत होता है?' राजाके वचन सुनकर विनीतभावसे वैश्य कहने लगा—'महाराज! मेरा नाम समाधि है। मैं उच्च कुलमें उत्पन्न वैश्य हूँ, परंतु दुर्भाग्यवश मेरे दुष्ट पुत्रोंने मेरा धन छीनकर मुझे निकाल दिया, जिससे मैं इस वनमें भटकता फिरता हूँ और अपने उन्हीं स्वजनोंके कुशल-समाचार नहीं प्राप्त होनेसे मैं सर्वदा चिन्तित रहता हूँ। यद्यपि अर्थलोलुप पुत्रोंने मुझे निकाल दिया, फिर भी मेरा चित्त उनके मोहको नहीं छोड़ता। इस प्रकार परस्पर बातें करते वे दोनों आश्रममें गये और राजाने ऋषिसे बड़े ही विनीतभावसे कहा—'क्या कारण है कि मेरा सम्पूर्ण राज्य छिन जानेपर भी अभीतक उसमें मेरी आसक्ति बनी हुई है और यही दशा इस वैश्यकी भी हो रही है? आप हमें उपदेश देकर चिन्तासे छुड़ाइये।'

मुनिने कहा—'राजन्! महामायाकी विचित्र लीलासे समस्त प्राणी ममता और मोहके गर्तमें पड़े हुए हैं—

महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ५५-५६)

जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है, वह भगवान् विष्णुकी महामाया है। वह महामाया देवी भगवती ज्ञानियोंके चित्तको भी बलपूर्वक आकृष्टकर मोहमें डाल देती है। उसीके द्वारा यह सम्पूर्ण चराचर जगत् रचा गया है। वह जिसपर प्रसन्न होती है, उसे मुक्ति प्रदान करती है और वही संसारके बन्धनका हेतु है। मुक्तिकी हेतुभूता सनातनी पराविद्या वही है।'

राजाने पूछा—महाराज! जिसका आपने वर्णन किया, वह महामाया देवी कौन है और कैसे उत्पन्न हुई है? उसके गुण, कर्म, प्रभाव और स्वरूप कैसे हैं?

ऋषिने कहा—वह नित्या है, समस्त जगत् उसकी मूर्ति है, उसके द्वारा यह चराचर जगत् व्याप्त है। फिर भी देवकार्य करनेके लिये जब वह प्रकट होती है, तब उसे उत्पन्न हुई कहते हैं।

महाकालीकी उत्पत्ति

प्रलयकालमें सम्पूर्ण संसारके जलमग्न होनेपर भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें सो रहे थे। उस समय

भगवान्‌के कर्णमलसे उत्पन्न मधु और कैटभ नामक दो घोर राक्षस ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हो गये। भगवान्‌के नाभिकमलमें स्थित प्रजापति ब्रह्माने असुरोंको देखकर भगवान्‌को जगानेके लिये एकाग्रहृदयसे भगवान्‌के नेत्रकमलस्थित योगनिद्राकी स्तुति की—

'हे देवि! तू ही इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेवाली है, तू ही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहस्वरूपा है, दारुण कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तू ही है। तूने जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुको भी योगनिद्राके वशीभूत कर दिया है और विष्णु, शंकर एवं मैं (ब्रह्मा) तुम्हारे ही द्वारा शरीर ग्रहण करनेको बाधित किये गये हैं। ऐसी महामायाशक्तिकी स्तुति कौन कर सकता है? हे देवि! अपने प्रभावसे इन असुरोंको मोहित करके मारनेके लिये भगवान्‌को जगा।'

इस प्रकार स्तुति करनेपर वह महामाया भगवती भगवान्‌के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु तथा हृदयसे बाहर निकलकर प्रत्यक्ष खड़ी हो गयी। भगवान् भी उठे और देखा कि दो भयंकर राक्षस ब्रह्माको खानेके लिये उद्यत हो रहे हैं। ब्रह्माकी रक्षाके लिये स्वयं भगवान् उनसे युद्ध करने लगे। युद्ध करते-करते पाँच हजार वर्ष बीत गये, परंतु वे राक्षस नहीं मरे। तब महामायाने उन राक्षसोंकी बुद्धि मोहित कर दी, जिससे वे अभिमानपूर्वक विष्णुभगवान्‌से कहने लगे कि 'हम तुम्हारे युद्धसे अति संतुष्ट हुए हैं, तुम ईप्सित वर माँगो।' भगवान् कहने लगे—'यदि आप मुझे वर ही देना चाहते हैं तो यही वर दीजिये कि आप दोनों मेरे द्वारा मारे जायँ।' मधु-कैटभने 'तथास्तु' कहा और बोले कि 'जहाँ पृथ्वी जलसे ढकी हुई हो वहाँ हमको नहीं मारना।' अन्तमें भगवान्‌ने उनके सिरोंको अपनी जंघाओंपर रखकर चक्रसे काट डाला। इस प्रकार देवकार्य सिद्ध करनेके लिये उस सच्चिदानन्दरूपिणी चितिशक्तिने महाकालीका रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥

अपने हाथोंमें 'खड्ग, चक्र, गदा, धनुष, बाण, परिघ, शूल, भुशुण्डी, कपाल और शंखको धारण करनेवाली, तीन नेत्रोंवाली सम्पूर्ण अङ्गोंमें दिव्य आभूषणोंसे सुसज्जित, नीलमणिके समान कान्तियुक्त, दस मुख और दस पादवाली महाकालीका मैं ध्यान करता हूँ, जिसकी स्तुति विष्णुभगवान्‌की योगनिद्रास्थितिमें ब्रह्माजीने मधु और कैटभको मारनेके लिये की थी।'

महालक्ष्मीकी उत्पत्ति

एक समय देवता और दानवोंमें सौ वर्षतक घोर युद्ध हुआ। देवताओंका राजा इन्द्र था और दानवोंका महिषासुर। पराक्रमी दानवोंद्वारा देवताओंको पराजितकर महिषासुर जब स्वयं इन्द्र बन बैठा, तब सम्पूर्ण देवगण पद्मयोनि ब्रह्माजीको आगेकर भगवान् विष्णु और शंकरके पास गये और उन्हें अपनी सम्पूर्ण विपत्ति-गाथा सुनायी। देवताओंकी आर्तवाणी सुनकर भगवान् विष्णु तथा शंकर कुपित हो गये, उनकी भृकुटी चढ़ गयी। उस समय समस्त देवताओंके शरीरसे पृथक्-पृथक् महान् तेजःपुञ्ज निकला और वह एकत्रित होकर प्रज्वलित पर्वतकी तरह सम्पूर्ण दिशाओंको देदीप्यमान करता हुआ नारी-शरीर बन गया। उस भगवतीको देखकर सब देवता प्रसन्न हुए और उसे अपने-अपने शस्त्र समर्पित किये। तब प्रसन्न होकर देवीने अट्टहास किया, जिससे समस्त दिशाएँ गूँज उठीं, समुद्र उछलने लगे, पृथिवी काँप उठी और पर्वत भी डगमगाने लगे तथा देवताओंने जयध्वनि की और मुनिगण स्तुति करने लगे। उस भयंकर गर्जनाको सुनकर महिषासुर क्रोधित होकर अस्त्र-शस्त्र-सुसज्जित दानव-सेनाको लेकर वहाँ आया और तेजःपुञ्ज महालक्ष्मीको उसने देखा। तदनन्तर असुरोंका देवीके साथ अति भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें सम्पूर्ण दानव मारे गये। महिषासुर भी अनेक प्रकारकी माया करके थक गया और अन्तमें महालक्ष्मीके द्वारा मारा गया। देवताओंने भगवतीकी विविध प्रकारसे स्तुति की। इस प्रकार महालक्ष्मीने रूप धारण किया, जिसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'अपने हाथोंमें अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, चर्म, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाली, कमलस्थित, महिषासुरमर्दिनी महालक्ष्मीका हम ध्यान करते हैं।'

महासरस्वतीकी उत्पत्ति

पूर्वकालमें जब शुम्भ और निशुम्भने इन्द्रादि देवताओंके सम्पूर्ण अधिकार छीन लिये तथा वे स्वयं ही यज्ञभोक्ता बन

बैठे, तब अपने अधिकारोंको पुनः प्राप्त करनेके लिये देवताओंने हिमालयपर जाकर देवी भगवतीकी अनेक प्रकारसे स्तुति की। उस समय पतितपावनी भगवती पार्वती आयीं और उनके शरीरमेंसे शिवा प्रकट हुईं। सरस्वतीदेवी पार्वतीके शरीरकोषसे निकली थीं, इसलिये उनका 'कौशिकी' नाम प्रसिद्ध हुआ। कौशिकीके निकल जानेके बाद पार्वतीका शरीर काला पड़ गया, इसलिये उन्हें 'कालिका' कहते हैं। तदनन्तर भगवती कौशिकी परम सुन्दर रूप धारणकर बैठी हुई थीं कि उन्हें चण्ड-मुण्ड नामक शुम्भ-निशुम्भके दूतोंने देखा। उन्होंने जाकर शुम्भ-निशुम्भसे कहा कि 'हे दानवपति! हिमालयपर एक अति लावण्यमयी परम मनोहरा रमणी बैठी है। वैसा मनोज्ञ रूप आजतक किसीने नहीं देखा। आपके पास ऐरावत हाथी, पारिजात तरु, उच्चैःश्रवा अश्व, ब्रह्माका विमान, कुबेरका खजाना, वरुणका सुवर्णवर्षी छत्र तथा अन्य विविध रत्न विद्यमान हैं, पर ऐसा स्त्री-रत्न नहीं है, अतः आप उसे ग्रहण कीजिये।' दूतोंकी वाणी सुनकर शुम्भ-निशुम्भने अपने सुग्रीव नामक दूतको उस देवीको प्रसन्न करके अपने पास लानेको कहा। दूतने जाकर देवीको शुम्भ-निशुम्भका आदेश सुनाया और उनके ऐश्वर्यकी बहुत प्रशंसा की। देवीने कहा कि तुम जो कुछ कहते हो वह सब सत्य है, परंतु मैंने पहले एक प्रतिज्ञा कर ली थी, वह यह है कि—

यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५। १२०)

'जो मुझे संग्राममें जीतकर मेरे दर्पको चूर्ण करेगा, वही मेरा पति होगा।' अतः तुम अपने स्वामीको जाकर मेरी प्रतिज्ञा सुना दो कि मुझे युद्धमें जीतकर मेरा पाणिग्रहण कर ले। दूतने देवीको बहुत समझाया, परंतु देवीने नहीं माना। तब कुपित होकर दूतने सम्पूर्ण वृत्तान्त शुम्भ-निशुम्भको जाकर सुनाया, जिससे कुपित होकर उन्होंने अपने सेनापति धूम्रलोचनको देवीके साथ युद्ध करनेके लिये भेजा; परंतु देवीने थोड़े ही समयमें उसे सेनासहित मार डाला। इसी प्रकार चण्ड और मुण्डको भी देवीने मार डाला। तब क्रुद्ध होकर उन्होंने अपनी समस्त सेना लेकर देवीको चारों ओरसे घेर लिया। भगवतीने घण्टाध्वनि की, जिससे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। इसी समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश, कार्तिकेय और इन्द्रादिके शरीरोंसे शक्तियाँ निकलकर चण्डिकाके पास आयीं। वे देवियाँ जिसकी शक्ति थीं, तत्-तत् शक्तिके अनुरूप स्वरूप, भूषण और वाहनसे युक्त थीं। उन शक्तियोंके मध्यमें स्वयं महादेवजी आये और देवीसे बोले कि 'मुझे प्रसन्न करनेके लिये सम्पूर्ण दानवोंका संहार कीजिये।' उसी समय देवीके शरीरसे अति भीषण चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई और शिवजीसे बोली—'हे भगवन्! आप हमारे दूत बनकर दानवोंके पास जाइये और उन्हें कह दीजिये कि यदि तुम जीना चाहते हो तो त्रैलोक्यका राज्य इन्द्रको समर्पित करके पाताललोकको चले जाओ।' शिवजीने शुम्भ-निशुम्भको देवीकी आज्ञा सुनायी, पर वे बलगर्वित दानव कब माननेवाले थे। आखिर भयंकर युद्ध छिड़ गया और अस्त्र-शस्त्र-प्रहार होने लगे। शक्तियोंद्वारा आहत होकर दानव-सेना गिरने लगी। तब क्रुद्ध होकर रक्तबीज युद्ध-भूमिमें आया। इस दानवके रक्तसे उत्पन्न दानव-समूहसे सम्पूर्ण युद्ध-स्थल भर गया, जिससे देवगण काँप उठे। तब चण्डिकाने कालीसे कहा कि 'तुम अपना मुख फैलाकर इसके शरीरसे निकले हुए रक्तका पान करो, जब यह क्षीणरक्त होगा तब मारा जायगा।' फिर देवीने रक्तबीजपर शूलप्रहार किया। उससे जो रक्त निकला, उसे काली देवी पीती गयीं। क्षीणरक्त होते ही देवीके प्रहारसे वह धराशायी हो गया। तत्पश्चात् शुम्भ और निशुम्भ भी युद्ध-भूमिमें मारे गये। देवगण हर्षित होकर जयध्वनि करने लगे। महासरस्वतीने जो रूप धारण किया, उसका स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

'स्वहस्तकमलमें घण्टा, त्रिशूल, हल, शंख, मूसल, चक्र, धनुष और बाणको धारण करनेवाली, गौरी-देहसे उत्पन्न, शरद् ऋतुके शोभा-सम्पन्न चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, तीनों लोकोंकी आधारभूता, शुम्भादि दैत्यमर्दिनी महासरस्वतीको हम नमस्कार करते हैं।'

देवतागण महासरस्वतीकी स्तुति करने लगे—'हे देवि! आप अनन्त पराक्रमशाली वैष्णवी शक्ति हैं, संसारकी आदिकारण महामाया आप ही हैं। आपके द्वारा समस्त संसार मोहित हो रहा है। आप ही प्रसन्न होनेपर मुक्ति

प्रदान करती हैं। हे देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ आपके ही भेद हैं, सम्पूर्ण स्त्रियाँ आपका ही स्वरूप हैं। आपके द्वारा समस्त संसार व्याप्त है। कौन ऐसी विशेषता है कि जिससे हम आपकी स्तुति करें! हे देवि! आप प्रसन्न हों और शत्रुओंके भयसे सर्वदा हमारी रक्षा करें। आप समस्त संसारके पापोंका और उत्पातके परिणामस्वरूप उपसर्गोंका नाश कर दीजिये।' देवताओंकी स्तुति सुनकर भगवती प्रसन्न होकर कहने लगीं—'हे देवगण! तुम्हारी की हुई स्तुतिके द्वारा एकाग्रचित्त होकर जो मेरा स्तवन करेगा, उसकी समस्त बाधाएँ मैं अवश्य नष्ट कर दूँगी।' यह कहकर देवगणके देखते-देखते ही भगवती अन्तर्धान हो गयीं।

मेधा ऋषिने देवीकी उत्पत्ति और देवादिकृत स्तुति सुनाकर कहा कि 'हे राजन्! तुम और यह वैश्य तथा अन्य विवेकीजन इन महामाया भगवतीकी मायासे मोहित हो रहे हैं, अतः तुम इन्हीं परमेश्वरीकी शरण ग्रहण करो। आराधना करनेसे वे मनुष्योंको शीघ्र ही भोग, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान कर देती हैं।' ऋषिके वचन सुनकर वे दोनों नदीके किनारे जाकर देवीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करने लगे। देवीको प्रसन्न करनेके लिये उन्होंने अनेक संयम-नियमोंका पालन करते हुए तीन वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके तपको देखकर भगवती प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष आ खड़ी हुईं और बोलीं—'मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हूँ। इच्छित वर माँग लो।' तब राजाने अपने राज्य और वैश्यने ज्ञान-प्राप्तिकी याचना की। देवीने 'तथास्तु' कहा। दोनोंके मनोरथ पूर्ण हुए, वैश्य मुक्त हो गया और राजाने अपना राज्य प्राप्त किया तथा वह दूसरे जन्ममें सूर्यपुत्र होकर सावर्णि नामक मनु हुआ।

दस महाविद्याओंके लीला-आख्यान

भगवती आद्याशक्ति जगन्माता पराम्बाके अनन्त नामोंमें एक नाम 'महाविद्या' भी है। ये ही सती, शिवा, पार्वती, दुर्गा, चामुण्डा तथा विष्णुप्रिया आदि नामोंसे अभिहित हैं। मूलतः एक ही शक्ति विविध रूपोंमें अवतरित होकर अनेक प्रकारकी लीलाएँ करती रहती हैं और लीलानुरूप उनका वैसा ही नाम भी प्रख्यात हो जाता है, जैसे भगवती आद्याशक्तिने दुर्गम नामक दैत्यसे देवताओंको त्राण दिया तो वे 'दुर्गा' कहलायीं तथा शाक-मूल-फलके रूपमें त्रिलोकीको अकालसे मुक्ति दिलायी और सबका भरण-पोषण किया, इसलिये 'शाकम्भरी' कहलायीं। तत्त्वतः वे एक ही हैं—'**एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।**' आगमोंकी उपासना-पद्धतिमें विशेष रूपसे भगवतीका 'महाविद्या' यह नाम अधिक प्रतिष्ठित है—

साक्षाद् विद्यैव सा न ततो भिन्ना जगन्माता।

(वरिवस्या रहस्य २। १०७)

'अथर्वशीर्ष' में कहा गया है—'**एषा श्रीमहाविद्या**'। इसी प्रकार 'तन्त्रोक्त रात्रिसूक्त' में कहा गया है—

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥

इन्हीं महादेवीसे समस्त जगत् व्याप्त है, समस्त विद्याएँ और समस्त स्त्रियाँ देवी भगवतीकी ही लीलाके रूप हैं—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

वास्तवमें महाविद्यारूप वे देवी नित्य हैं, सनातनी हैं, यह जगत् उन्हींका रूप है; तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है—

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।

महाभागवतपुराण (श्रीदेवीपुराण)-में महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी एक रोचक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार शिवसे द्वेष रखनेके कारण दक्ष प्रजापतिने सभी देवताओं तथा महर्षियोंको अपने यज्ञमें सादर आमन्त्रित किया, किंतु शिवकी उपेक्षाकर उन्हें नहीं बुलाया। सतीने पिताके उस यज्ञमें जानेकी अनुमति माँगी। शिवने वहाँ जाना अनुचित बताकर उन्हें जानेसे रोका, परंतु सती अपने निश्चयपर अटल रहीं। उन्होंने कहा—'मैं प्रजापतिके यज्ञमें अवश्य जाऊँगी और वहाँ या तो अपने प्राणेश्वर देवाधिदेवके लिये यज्ञभाग प्राप्त करूँगी या यज्ञको ही नष्ट कर दूँगी।'[1] यह कहते हुए सतीके नेत्र लाल हो गये। वे शिवको उग्र दृष्टिसे देखने लगीं। उनके अधर फड़कने लगे, वर्ण कृष्ण हो गया।

१-ततोऽहं तत्र यास्यामि तदाज्ञापय वा न वा। प्राप्स्यामि यज्ञभागं वा नाशयिष्यामि वा मखम्॥
(महाभागवत० ८। २)

क्रोधाग्निसे दग्ध शरीर महाभयानक एवं उग्र दीखने लगा। उस समय महामायाका विग्रह प्रचण्ड तेजसे तमतमा रहा था। कालाग्निके समान महाभयानक रूपमें देवी मुण्डमाला पहनी हुई थीं और उनकी भयानक जिह्वा बाहर निकली हुई थी, शीशपर अर्धचन्द्र सुशोभित था और उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकराल लग रहा था। वे बार-बार विकट हुंकार कर रही थीं। देवीका यह स्वरूप साक्षात् महादेवके लिये भी भयप्रद और प्रचण्ड था। उस समय उनका श्रीविग्रह करोड़ों मध्याह्नके सूर्योंके समान तेज:सम्पन्न था और वे बारम्बार अट्टहास कर रही थीं। देवीके इस विकराल महाभयानक रूपको देखकर शिव भाग चले। भागते हुए उनको दसों दिशाओंमें रोकनेके लिये देवीने अपनी अङ्गभूता दस देवियोंको प्रकट किया। देवीकी ये स्वरूपा शक्तियाँ ही दस महाविद्याएँ हैं, जिनके नाम हैं—**१-काली, २-तारा, ३-छिन्नमस्ता, ४-षोडशी, ५-भुवनेश्वरी, ६-त्रिपुरभैरवी, ७-धूमावती, ८-वगलामुखी, ९-मातङ्गी** और **१०-कमला।**

इन दस महाविद्याओंमें मूलरूपा महाकाली ही मुख्य हैं और उन्हींके उग्र और सौम्य दो रूपोंसे अनेक रूप धारण करनेवाली ये दस महाविद्याएँ ही हैं। महाकालीके दशधा प्रधान रूपोंको ही दस महाविद्या कहा जाता है। सर्वविद्यापति शिवकी शक्तिरूपा ये दस महाविद्याएँ लोक और शास्त्रमें यद्यपि अनेक रूपोंमें पूजित हुईं, पर इनके दस रूप प्रमुख हो गये। ये रूप अपनी उपासना, मन्त्र और दीक्षाओंके भेदसे अनेक होते हुए भी मूलत: एक ही हैं। अधिकारिभेदसे अलग-अलग रूप और उपासना-स्वरूप प्रचलित हैं। काली, तारा, छिन्नमस्ता, वगला और धूमावती विद्यास्वरूप भगवतीके प्रकट कठोर किंतु अप्रकट करुण-रूप हैं तो भुवनेश्वरी, षोडशी (ललिता), त्रिपुरभैरवी, मातङ्गी और कमला विद्याओंके सौम्यरूप हैं। ये ही महाविद्याएँ साधकोंकी परम धन हैं, जो सिद्ध होकर अनन्त सिद्धियाँ और अनन्तका साक्षात्कार करानेमें समर्थ हैं।

यद्यपि दस महाविद्याओंका स्वरूप अचिन्त्य है, तथापि शाखाचन्द्रन्यायसे उपासक, स्मृतियाँ और पराम्बाके चरणानुगामी इस विषयमें कुछ निर्वचन अवश्य कर लेते हैं। इस दृष्टिसे काली-तत्त्व प्राथमिक शक्ति है। निर्गुण ब्रह्मकी पर्याय इस महाशक्तिको तान्त्रिक ग्रन्थोंमें विशेष प्रधानता दी गयी है। वास्तवमें इन्हींके दो रूपोंका विस्तार ही दस महाविद्याओंके स्वरूप हैं। महानिर्गुणकी अधिष्ठात्री शक्ति होनेके कारण ही इनकी उपमा अन्धकारसे दी जाती है। महासगुण होकर वे 'सुन्दरी' कहलाती हैं तो महानिर्गुण होकर 'काली'। तत्त्वत: सब एक है, भेद केवल प्रतीतिमात्रका है। 'कादि' और 'हादि' विद्याओंके रूपमें भी एक ही श्रीविद्या क्रमश: कालीसे प्रारम्भ होकर उपास्या होती हैं। एकको 'संहार-क्रम' तो दूसरेको 'सृष्टि-क्रम' नाम दिया जाता है। देवीभागवत आदि शक्ति-ग्रन्थोंमें महालक्ष्मी या शक्तिबीजको मुख्य प्राधानिक बतानेका रहस्य यह है कि इसमें 'हादि' विद्याकी क्रम-योजना स्वीकार की गयी है और तन्त्रों (विशेषकर अत्यन्त गोपनीय तन्त्रों)-में कालीको प्रधान माना गया है। तात्त्विक दृष्टिसे यहाँ भी भेदबुद्धिकी सम्भावना नहीं है। *'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा'* का तर्क दोनोंको दोनोंसे अभिन्न सिद्ध करता है।

'बृहन्नीलतन्त्र'में कहा गया है कि रक्त और कृष्णभेदसे काली ही दो रूपोंमें अधिष्ठित हैं। कृष्णाका नाम 'दक्षिणा' है तो रक्तवर्णाका नाम 'सुन्दरी'—

विद्या हि द्विविधा प्रोक्ता कृष्णा रक्ताप्रभेदत:।
कृष्णा तु दक्षिणा प्रोक्ता रक्ता तु सुन्दरी मता॥

उपासनाके भेदसे दोनोंमें द्वैत है, पर तत्त्वदृष्टिसे अद्वैत है। वास्तवमें काली और भुवनेश्वरी दोनों मूल-प्रकृतिके अव्यक्त और व्यक्त रूप हैं। कालीसे कमलातककी यात्रा दस सोपानोंमें अथवा दस स्तरोंमें पूर्ण होती है। दस महाविद्याओंका स्वरूप इसी रहस्यका परिणाम है।

दस महाविद्याओंकी उपासनामें सृष्टिक्रमकी उपासना लोकग्राह्य है। इसमें भुवनेश्वरीको प्रधान माना गया है। वही समस्त विकृतियोंकी प्रधान प्रकृति है। देवीभागवतके अनुसार सदाशिव फलक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और ईश्वर उस फलक या श्रीमञ्चके पाये हैं। इस श्रीमञ्चपर भुवनेश्वरी भुवनेश्वरके साथ विद्यमान हैं। सात करोड़ मन्त्र इनकी आराधनामें लगे हुए हैं। विद्वानोंका कथन है कि निर्विशेष ब्रह्म ही स्वशक्ति-विलासके द्वारा ब्रह्मा, विष्णु आदि पञ्च आख्याओंको प्राप्त होकर अपनी शक्तियोंके सांनिध्यसे सृष्टि, स्थिति, लय, संग्रह तथा अनुग्रहरूप पञ्च-कृत्योंको सम्पादित करते हैं। वह निर्विशेष तत्त्व 'परमपुरुष' पद-वाच्य है और उसकी स्वरूपभूत अभिन्न शक्ति ही है भुवनेश्वरी।

महाविद्याओंके प्रादुर्भावकी अन्यान्य कथाएँ

१-काली—दस महाविद्याओंमें काली प्रथम हैं। कालिकापुराणमें कथा आती है कि एक बार देवताओंने हिमालयपर जाकर महामायाका स्तवन किया। पुराणकारके अनुसार यह स्थान मतङ्गमुनिका आश्रम था। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवतीने मतङ्ग-वनिता बनकर देवताओंको दर्शन दिया और पूछा कि 'तुम लोग किसकी स्तुति कर रहे हो।' तत्काल उनके श्रीविग्रहसे काले पहाड़के समान वर्णवाली एक दिव्य नारीका प्राकट्य हुआ। उस महातेजस्विनीने स्वयं ही देवताओंकी ओरसे उत्तर दिया कि 'ये लोग मेरा ही स्तवन कर रहे हैं।' वे गाढ़े काजलके समान कृष्णा थीं, इसीलिये उनका नाम 'काली' पड़ा।

लगभग इसीसे मिलती-जुलती कथा 'श्रीदुर्गासप्तशती'-में भी है। शुम्भ-निशुम्भके उपद्रवसे व्यथित देवताओंने हिमालयपर देवीसूक्तसे देवीको जब बार-बार प्रणाम निवेदित किया, तब गौरी-देहसे कौशिकीका प्राकट्य हुआ और उनके अलग होते ही अम्बा पार्वतीका स्वरूप कृष्ण हो गया, वे ही 'काली' नामसे विख्यात हुईं—

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥

(श्रीदुर्गासप्तशती ५। ८८)

वास्तवमें कालीको ही नीलरूपा होनेसे 'तारा' भी कहा गया है। वचनान्तरसे 'तारा' नामका रहस्य यह भी है कि वे सर्वदा मोक्ष देनेवाली—तारनेवाली हैं, इसलिये तारा हैं। अनायास ही वे वाक् प्रदान करनेमें समर्थ हैं, इसलिये 'नीलसरस्वती' भी हैं। भयंकर विपत्तियोंसे रक्षणकी कृपा प्रदान करती हैं, इसलिये वे 'उग्रतारिणी' या 'उग्रतारा' हैं।

नारद-पाञ्चरात्रके अनुसार—एक बार कालीके मनमें आया कि वे पुनः गौरी हो जायँ, यह सोचकर वे अन्तर्धान हो गयीं। उसी समय नारदजी प्रकट हो गये। शिवजीने नारदजीसे कालीका पता पूछा। नारदजीने उनसे सुमेरुके उत्तरमें देवीके प्रत्यक्ष उपस्थित होनेकी बात कही। शिवकी प्रेरणापर नारदजी वहाँ गये और उन्होंने शिवजीसे विवाह करनेके लिये कालीके समक्ष प्रस्ताव रखा। देवी क्रुद्ध हो गयीं और उनकी देहसे एक अन्य विग्रह—षोडशी प्रकट हुईं; जिससे छायाविग्रह त्रिपुरभैरवीका प्राकट्य हो गया।

मार्कण्डेयपुराणमें देवीके लिये 'विद्या' और 'महाविद्या' दोनों शब्दोंका प्रयोग हुआ है। ब्रह्माकी स्तुतिमें 'महाविद्या' तथा देवताओंकी स्तुतिमें '**लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये**' सम्बोधन आये हैं। 'अ' से लेकर 'क्ष' तक पचास मातृकाएँ आधारपीठ हैं, इनके भीतर स्थित शक्तियोंका साक्षात्कार शक्ति-उपासना है। शक्तिसे शक्तिमान्का अभेद-दर्शन, जीवभावका लोप और शिवभावका उदय; किंवा पूर्ण शिवत्व-बोध शक्ति-उपासनाकी चरम उपलब्धि है। कालीकी साधना यद्यपि दीक्षागम्य है, तथापि अनन्य-शरणागतिके द्वारा उनकी कृपा किसीको भी प्राप्त हो सकती है। मूर्ति, यन्त्र अथवा गुरुद्वारा उपदिष्ट किसी आधारपर भक्तिभावसे मन्त्र, जप, पूजा, होम और पुरश्चरण करनेसे काली प्रसन्न हो जाती हैं। कालीकी प्रसन्नता सम्पूर्ण अभीष्टोंकी प्राप्ति है।

२-तारा—तारा और काली यद्यपि एक ही हैं, बृहन्नीलतन्त्रादि ग्रन्थोंमें उनके विशेष रूपकी चर्चा है। हयग्रीवका वध करनेके लिये देवीको नीलविग्रह प्राप्त हुआ है। शव-रूप शिवपर प्रत्यालीढ मुद्रामें भगवती आरूढ हैं। उनकी आकृति नीले रंगकी और नीलकमलोंकी भाँति तीन नेत्र हैं तथा हाथोंमें कैंची, कपाल, कमल और खड्ग हैं। व्याघ्रचर्मसे विभूषिता उन देवीके कण्ठमें मुण्डमाला है। वे उग्रतारा हैं, पर भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी तत्परता अमोघ है। इस कारण वे महाकरुणामयी हैं।

शत्रुनाश, वाक्-शक्तिकी प्राप्ति तथा भोग-मोक्षकी प्राप्तिके लिये तारा अथवा उग्रताराकी साधना की जाती है। रात्रिदेवी-स्वरूपा शक्ति तारा महाविद्याओंमें अद्भुत प्रभाव और सिद्धिकी अधिष्ठात्री देवी कही गयी हैं।

३-छिन्नमस्ता—'छिन्नमस्ता'के प्रादुर्भावकी कथा इस प्रकार है—एक बार भगवती भवानी अपनी सहचरियों—जया और विजयाके साथ मन्दाकिनीमें स्नान करनेके लिये गयीं। वहाँ स्नान करनेपर क्षुधाग्निसे पीडित होकर वे कृष्णवर्णकी हो गयीं। उस समय उनकी सहचरियोंने उनसे कुछ भोजन करनेके लिये माँगा। देवीने उनसे प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। कुछ समय प्रतीक्षा करनेके बाद पुनः याचना करनेपर देवीने पुनः प्रतीक्षा करनेके लिये कहा। बादमें उन देवियोंने विनम्र स्वरमें कहा कि 'माँ तो शिशुओंको तुरंत भूख लगनेपर भोजन प्रदान करती है।' इस प्रकार उनके मधुर वचन सुनकर कृपामयीने अपने कराग्रसे अपना सिर काट दिया। कटा हुआ सिर देवीके बायें हाथमें आ गिरा और

कबन्धसे तीन धाराएँ निकलीं। वे दो धाराओंको अपनी दोनों सहेलियोंकी ओर प्रवाहित करने लगीं, जिसे पीती हुई वे दोनों प्रसन्न होने लगीं और तीसरी धारा जो ऊपरकी ओर प्रवाहित थी, उसे वे स्वयं पान करने लगीं। तभीसे ये 'छिन्नमस्ता' कही जाने लगीं।

छिन्नमस्ता नितान्त गुह्य तत्त्वबोधकी प्रतीक हैं। छिन्न यज्ञ-शीर्षकी प्रतीक ये देवी श्वेतकमल-पीठपर खड़ी हैं। इनकी नाभिमें योनिचक्र है। दिशाएँ ही उनके वस्त्र हैं। कृष्ण (तम) और रक्त (रज) गुणोंकी देवियाँ उनकी सहचरियाँ हैं। वे अपना शीश स्वयं काटकर भी जीवित हैं, जिससे उनमें अपनेमें पूर्ण अन्तर्मुखी साधनाका संकेत मिलता है।

४-षोडशी—इनमें षोडश कलाएँ पूर्णरूपेण विकसित हैं, अतएव वे 'षोडशी' कहलाती हैं। षोडशी माहेश्वरी शक्तिकी सबसे मनोहर श्रीविग्रहवाली सिद्ध विद्यादेवी हैं। सोलह अक्षरोंके मन्त्रवाली उन देवीकी अङ्गकान्ति उदीयमान सूर्यमण्डलकी आभाकी भाँति है। उनकी चार भुजाएँ एवं तीन नेत्र हैं। शान्त मुद्रामें लेटे हुए सदाशिवपर स्थित कमलके आसनपर विराजिता षोडशी देवीके चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण सुशोभित हैं। वर देनेके लिये सदा-सर्वदा उद्यत उन भगवतीका श्रीविग्रह सौम्य और हृदय दयासे आपूरित है। जो उनका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं, उनमें और ईश्वरमें कोई भेद नहीं रह जाता। वस्तुतः उनकी महिमा अवर्णनीय है। संसारके समस्त मन्त्र-तन्त्र उनकी आराधना करते हैं। वेद भी उनका वर्णन नहीं कर पाते। भक्तोंको वे प्रसन्न होकर क्या नहीं दे देतीं। 'अभीष्ट' तो सीमित अर्थवाच्य शब्द है, वस्तुतः उनकी कृपाका एक कण भी अभीष्टसे अधिक प्रदान करनेमें समर्थ है।

५-भुवनेश्वरी—देवीभागवतमें वर्णित मणिद्वीपकी अधिष्ठात्री देवी हल्लेखा (ह्रीं)-मन्त्रकी स्वरूपा शक्ति और सृष्टिक्रममें महालक्ष्मीस्वरूपा—आदिशक्ति भगवती भुवनेश्वरी शिवके समस्त लीला-विलासकी सहचरी और निखिल प्रपञ्चोंकी आदि कारण, सबकी शक्ति और सबको नाना प्रकारसे पोषण प्रदान करनेवाली हैं। जगदम्बा भुवनेश्वरीका स्वरूप सौम्य और अङ्गकान्ति अरुण है। भक्तोंको अभय एवं समस्त सिद्धियाँ प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। शास्त्रोंमें इनकी अपार महिमा बतायी गयी है।

देवीका स्वरूप 'ह्रीं' इस बीजमन्त्रमें सर्वदा विद्यमान है, जिसे देवीभागवतमें देवीका 'प्रणव' कहा गया है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि इस बीजमन्त्रके जपका पुरश्चरण करनेवाला और यथाविधि होम, ब्राह्मण-भोजन करानेवाला भक्तिमान् साधक साक्षात् प्रभुके समान हो जाता है।

वृद्धिंगत विश्वके अधिष्ठान त्र्यम्बक सदाशिव हैं, उनकी शक्ति 'भुवनेश्वरी' है। सोमात्मक अमृतसे विश्वका आप्यायन (पोषण) हुआ करता है, इसीलिये भगवतीने अपने किरीटमें चन्द्रमा धारण कर रखा है। ये ही भगवती त्रिभुवनका भरण-पोषण करती रहती हैं, जिसका संकेत उनके हाथकी मुद्रा करती है। ये उदीयमान सूर्यवत् कान्तिमती, त्रिनेत्रा एवं उन्नत कुचयुगला देवी हैं। कृपादृष्टिकी सूचना उनके मृदुहास्य (स्मेर)-से मिलती है। शासनशक्तिके सूचक अंकुश-पाश आदिको भी वे धारण करती हैं।

६-त्रिपुरभैरवी—इन्द्रियोंपर विजय और सर्वत्र उत्कर्षकी प्राप्ति-हेतु त्रिपुरभैरवीकी उपासनाका विधान शास्त्रोंमें कहा गया है। क्षीयमान विश्वके अधिष्ठान दक्षिणामूर्ति कालभैरव हैं। उनकी शक्ति ही 'त्रिपुरभैरवी' हैं। उनके ध्यानमें बताया गया है कि वे उदित हो रहे सहस्रों सूर्योंके समान अरुण कान्तिवाली और क्षौमाम्बरधारिणी होती हुई मुण्डमाला पहने हैं। रक्तसे उनके पयोधर लिप्त हैं। वे तीन नेत्र एवं हिमांशु-मुकुट, हाथमें जपवटी, विद्या, वर एवं अभय-मुद्रा धारण किये हुए हैं। ये भगवती मन्द-मन्द हास्य करती रहती हैं।

७-धूमावती—धूमावती देवीके विषयमें कथा आती है कि एक बार पार्वतीने महादेवजीसे अपनी क्षुधा-निवारणके लिये निवेदन किया। महादेवजी चुप रह गये। कई बार निवेदन करनेपर भी जब देवाधिदेवने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया, तब उन्होंने महादेवजीको ही निगल लिया। उनके शरीरसे धूमराशि निकली। तब शिवजीने शिवासे कहा कि 'आपकी मनोहर मूर्ति वगला अब 'धूमावती' या 'धूम्रा' कही जायगी।' यह धूमावती वृद्धास्वरूपा, डरावनी और भूख-प्याससे व्याकुल स्त्री-विग्रहवत् अत्यन्त शक्तिमयी हैं।

८-वगलामुखी—पीताम्बरा विद्याके नामसे विख्यात वगलामुखीकी साधना प्रायः शत्रुभयसे मुक्त होने और वाक्सिद्धिके लिये की जाती है। इनकी उपासनामें पीतवस्त्र, हरिद्रामाला, पीत आसन और पीत पुष्पोंका विधान है। व्यष्टिरूपमें शत्रुओंको नष्ट करनेकी इच्छा रखनेवाली और समष्टिरूपमें परमेश्वरकी संहारेच्छाकी अधिष्ठात्री शक्ति वगला

या वगलामुखी हैं। ये देवी सुधा-समुद्रके मध्य स्थित मणिमय मण्डपमें रत्नवेदीपर, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। स्वयं पीतवर्ण होती हुई पीतवर्णके ही वस्त्र, आभूषण एवं माला धारण किये हुए हैं। इनके एक हाथमें शत्रुकी जिह्वा और दूसरे हाथमें मुद्गर है। इनके आविर्भावके विषयमें इस प्रकारकी कथा आती है—

सत्ययुगमें सम्पूर्ण जगत्को नष्ट करनेवाला तूफान आया। प्राणियोंके जीवनपर मँडराते हुए संकटके घनघोर बादलको देखकर महाविष्णु चिन्तित हो गये और वे सौराष्ट्र देशमें हरिद्रा सरोवरके समीप जाकर भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये तप करने लगे। श्रीविद्याने उस सरोवरसे निकलकर पीताम्बराके रूपमें उन्हें दर्शन दिया और बढ़ते हुए जल-वेग तथा विध्वंसकारी उत्पातका स्तम्भन किया। वास्तवमें दुष्ट वही है, जो जगत्के या धर्मके छन्दका अतिक्रमण करता है। वगला उसका स्तम्भन किंवा नियन्त्रण करनेवाली महाशक्ति हैं। वे परमेश्वरकी सहायिका हैं और वाणी, विद्या तथा गतिको अनुशासित करती हैं। ब्रह्मास्त्र होनेका यही रहस्य है। '**ब्रह्मद्विषे शरवे हन्त वा उ**' आदि श्रुति वाक्योंमें वगला-शक्ति ही पर्यायरूपमें संकेतित हैं। वे सर्वसिद्धि देनेमें समर्थ और उपासकोंकी वाञ्छाकल्पतरु हैं।

९-मातङ्गी—'मतङ्ग' शिवका नाम है, उनकी शक्ति '**मातङ्गी**' है। उनके ध्यानमें बताया गया है कि ये श्यामवर्णा हैं। चन्द्रमाको मस्तकपर धारण किये हुए हैं। त्रिनेत्रा, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, नीलकमलके समान कान्तिवाली और राक्षस-समूहरूप अरण्यको भस्मसात् करनेमें दावानलके समान हैं। ये देवी चार भुजाओंमें पाश, खड्ग, खेटक और अंकुश धारण किये हुए हैं तथा असुरोंको मोहित करनेवाली एवं भक्तोंको अभीष्ट फल देनेवाली हैं। गृहस्थ-जीवनको सुखी बनाने, पुरुषार्थ-सिद्धि और वाग्विलासमें पारंगत होनेके लिये मातङ्गी-साधना श्रेयस्कर है।

१०-कमला—कमला वैष्णवी शक्ति हैं। महाविष्णुकी लीला-विलास-सहचरी कमलाकी उपासना वास्तवमें जगदाधार-शक्तिकी उपासना है। इनकी कृपाके अभावमें जीवमें सम्पत्-शक्तिका अभाव हो जाता है। मानव, दानव और देव—सभी इनकी कृपाके बिना पंगु हैं। विश्वभरकी इन आदिशक्तिकी उपासना आगम-निगम दोनोंमें समान रूपसे प्रचलित है। भगवती कमला दस महाविद्याओंमें एक हैं। जो क्रम-परम्परा मिलती है, उसमें इनका स्थान दसवाँ है। (अर्थात् इनमें—इनकी महिमामें प्रवेशकर जीव पूर्ण और कृतार्थ हो जाता है।) सभी देवता, राक्षस, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व इनकी कृपाके प्रसादके लिये लालायित रहते हैं। ये परम वैष्णवी, सात्त्विक और शुद्धाचारा, विचार-धर्मचेतना और भक्त्यैकगम्या हैं। इनका आसन कमलपर है। इनके ध्यानमें बताया गया है कि ये सुवर्णतुल्य कान्तिमती हैं। हिमालय-सदृश श्वेतवर्णके चार गजोंद्वारा शुण्डाओंसे गृहीत सुवर्ण-कलशोंसे स्नापित हो रही हैं। ये देवी चार भुजाओंमें वर, अभय और कमलद्वय धारण की हुई हैं तथा किरीट और क्षौम-वस्त्रके परिधानोंसे सुसज्जित हैं।

महाविद्याओंका स्वरूप वास्तवमें एक ही आद्याशक्तिके विभिन्न स्वरूपोंका विस्तार है। इनकी उपासनासे विजय, ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र और अन्यान्य कीर्ति आदि अवाप्त होती है। पारमार्थिक स्तरपर इन विद्याओंकी उपासनाका आशय अन्ततः मोक्षकी साधना है, भगवत्प्राप्तिकी साधना है।

भगवतीके विविध नामरूपोंकी लीला

पराम्बाके जैसे अनन्त विग्रह हैं, वैसे ही उनके नाम भी अनन्त हैं और वैसे ही उनकी लीलाएँ भी अनन्त हैं। और वे हैं सभी अचिन्त्य एवं नित्य चिन्मय। भक्तोंके लिये तो विशेष कल्याणकारी और आनन्दप्रद। जिस प्रकार लीला-चिन्तन, लीला-दर्शनसे परम हित सध जाता है, वैसे ही लीला-विग्रहोंके नामोच्चारण, नाम-स्मरण आदिसे भी महान् कल्याण हो जाता है। जो कृपामय विग्रह है, वही नाम भी है और उसीके अनुरूप लीला भी होती है, इसलिये तत्त्वतः इनमें सर्वथा अभेद है, यहाँ देवीके कुछ लीलामय श्रीविग्रहोंका नाम-स्मरण किया जा रहा है, जिनकी विविध लीलाओंने जगत्का महान् कल्याण किया है—

श्रीदुर्गासप्तशतीमें भगवतीके त्रिविध विग्रहोंकी ऐश्वर्यमयी एवं कृपामयी लीलाओंका गान हुआ है—उन त्रिविध लीला-विग्रहोंके नाम हैं—

(१) महाकाली, (२) महालक्ष्मी तथा (३) महासरस्वती।

भगवतीका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम दुर्गा या चण्डी है।

श्रीदुर्गाके नौ लीला-विग्रह विख्यात ही हैं, जिनका स्मरण इस प्रकार किया जाता है—

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥
नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।

ऐसे ही देवीके कुछ लीला-विग्रह इस प्रकार परिगणित हैं—

(१) जयन्ती, (२) मङ्गला, (३) काली, (४) भद्रकाली, (५) कपालिनी, (६) दुर्गा, (७) क्षमा, (८) शिवा, (९) धात्री, (१०) स्वाहा और **(११) स्वधा।**

देवी 'जयन्ती' सबसे उत्कृष्ट और विजयशालिनी हैं। देवी 'मङ्गला' भक्तोंके जन्म-मरणादि संसार-बन्धनको दूर कर मोक्ष-प्रदान करनेवाली हैं। प्रलयकालमें सृष्टिको अपना ग्रास बना लेनेवाली देवी 'काली' हैं। जो भद्र, सुख अथवा मङ्गल-ही-मङ्गल करनेवाली हैं, वे 'भद्रकाली' हैं। हाथमें कपाल तथा मुण्डमाला रूप अशिव वेष धारणकर भी जो शिवरूपा हैं, वे 'कपालिनी' हैं। जो दुर्गति दूर करनेवाली हैं, दुर्गम दैत्यसे मुक्ति दिलानेवाली हैं और जो दुःसाध्य साधनसे प्राप्त होती हैं, वे 'दुर्गा' हैं। सम्पूर्ण जगत्की जननी होनेसे देवीमें करुणाकी पराकाष्ठा है। इसी कारण वे भक्तोंके अथवा दूसरोंके भी सभी अपराध क्षमा कर देती हैं, इसीलिये 'क्षमा' कहलाती हैं। सबका शिव—कल्याण करनेवाली हैं, इसलिये वे 'शिवा' हैं। सम्पूर्ण प्रपञ्चको धारण करनेके कारण वे 'धात्री' कही गयी हैं। 'स्वाहा'-भागसे वे देवी हवि ग्रहणकर देवताओंको हव्य तथा 'स्वधा'कारसे पितरोंको कव्य पहुँचाती हैं। ऐसी इन देवी रूपोंको नमस्कार है।

श्रीविद्याके लीला-विग्रह—एक कथानक

यों तो श्रीविद्याके लीला-विग्रह अनन्त हैं, फिर भी त्रिपुराहस्य, माहात्म्यखण्ड तथा ब्रह्माण्ड-पुराणोत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासोंमें कुछ मुख्य विग्रहोंका ही परिगणन किया गया है। उन्हीं दस विग्रहोंकी सेतिहास झाँकी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

(१) कुमारी—सर्वप्रथम इन्द्रादि देवोंके गर्व-परिहारके लिये माता श्रीविद्या कुमारीरूपसे 'बालाम्बा'के रूपमें प्रकट हुईं।

(२) त्रिरूपा—कारणपुरुष ब्रह्मा, विष्णु और शिवको उनके अधिकृत सृष्टि, स्थिति और संहारात्मक कार्योंमें सहायता करनेके लिये श्रीविद्या माताने वाणी, रमा तथा रुद्राणी शक्तियोंको अपने शरीरसे उत्पन्न किया और तीनों देवियोंका तीनों देवोंसे विवाह करा दिया।

(३) गौरी और **(४) रमा**—मर्त्यलोकमें मानवोंद्वारा यज्ञ-यागादि कर्मोंके न होनेसे इन्द्रादि देव चिन्तित हुए। फिर ब्रह्मदेवके आदेशानुसार उन लोगोंने श्रीमहालक्ष्मीकी आराधना की। श्रीमहालक्ष्मीने अपने पुत्र कामदेवको देवकार्यमें सहायता करनेके लिये भेजा। कामदेवका भूलोकाधिपति राजा वीरव्रतके सैनिकोंसे घोर युद्ध हुआ, जिसमें कामदेवने सबको भगा दिया। राजा वीरव्रतने इस आपत्तिके निवारणार्थ भगवान् शंकरकी आराधना की। शंकरसे विजय-प्राप्तिका वरदान पाकर राजाने कामदेवसे पुनः युद्ध छेड़ दिया। उसने शंकरप्रेषित त्रिशूलात्मक बाण कामदेवपर चलाकर उसे धराशायी कर दिया।

लक्ष्मीजीके दूतोंने जब कामदेवका निश्चेष्ट शरीर लक्ष्मीजीके पास पहुँचाया, तब उन्होंने त्रिपुराम्बा-प्रसादसे अमृतद्वारा उसे पुनरुज्जीवित कर दिया। शंकरके प्रभावसे अपनी पराजय तथा मृत्युका वृत्तान्त सुननेके साथ ही कामदेवके मनमें शंकरके प्रति घोर द्वेषकी गाँठ पड़ गयी। उसने त्रिपुराम्बाकी आराधनाद्वारा बल-संचयकर शंकरको हरानेकी अपने मनमें प्रतिज्ञा की।

इतनेमें ही श्रीमहालक्ष्मीने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना की। तदनुसार त्रिपुराम्बाद्वारा प्रेषिता गौरी वहाँ प्रकट हुईं। श्रीमहालक्ष्मीने कामदेवकी पराजय तथा उसकी प्रतिज्ञा आदिका वृत्तान्त गौरीको सुनाकर इस आपत्तिके निवारणका उपाय पूछा।

गौरीने लक्ष्मी तथा कामदेव दोनोंको समझाते हुए कहा कि 'शंकरजी सर्वश्रेष्ठ हैं, उनसे स्पर्धा करना उचित नहीं। उन्हींकी आराधना करके अपना अभीष्ट प्राप्त करना उचित होगा।' गौरीकी उक्ति सुनकर कामदेव रुष्ट हो गया और

उसने शंकरको जीतनेकी अपनी प्रतिज्ञासे टस-से-मस न होनेकी बात कही। यह सुनकर गौरी भी क्रुद्ध हो उठीं और उन्होंने कामदेवको शाप दे डाला—'तुम शिवजीके द्वारा दग्ध हो जाओगे।'

प्रिय पुत्रको गौरीद्वारा शापित सुनकर महालक्ष्मीने भी गौरीको शाप दे डाला कि 'तुम भी पतिनिन्दा सुनकर दग्ध हो जाओगी।' महालक्ष्मीका यह शाप सुनकर गौरीने भी लक्ष्मीको शाप दिया—'तुम पति-विरहका दुःख तथा सपत्नियोंसे क्लेश पाओगी।' परिणामस्वरूप लक्ष्मी और गौरीमें युद्ध आरम्भ हो गया। परस्परके प्रहारसे दोनों मूर्च्छित होने लगीं। किसी तरह ब्रह्मा और सरस्वतीके बीच-बचावसे वह युद्ध शान्त हुआ।

शिवजीको जीतनेकी अभिलाषासे कामदेवने अपनी माता महालक्ष्मीसे त्रिपुराम्बाके 'सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्र' का उपदेश ग्रहणकर मन्दराचलकी गुफामें बैठ आराधना आरम्भ कर दी। कुछ दिन बाद त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर स्वप्नमें कामदेवको अत्यन्त गुप्त 'पञ्चदशी विद्या' का उपदेश दिया। दिव्य वर्षत्रयतक कामदेवने एकाग्रभावसे श्रीमाताकी आराधना की। भगवतीने प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया और 'काम! आजसे तुम अजेय हुए'—यह कहते हुए अपने धनुष और शरोंसे धनुष तथा शर उत्पन्नकर उन्होंने कामदेवको सौंप दिये।

दक्षयज्ञमें पतिनिन्दा सुनकर भस्मीभूत सतीरूपा गौरी नभोरूपमें स्थित हो गयीं और कुछ समय बाद हिमाचलकी कठोर आराधनासे प्रसन्न होकर उन्होंने उसकी कन्या बनना स्वीकार कर लिया। कालान्तरमें वे पर्वतराजपुत्री उमारूपमें प्रकट हुईं।

इधर तारकासुर-वधमें शिवपुत्रको सेनापति बनाना आवश्यक समझकर इन्द्रने शिवका तपोभंग करनेके लिये कामको आज्ञा दी; किंतु गौरीके समक्ष ही शिवजीने अपने तृतीय नेत्रसे कामको दग्ध कर डाला।

(५) भारती—एक बार ब्रह्मदेवकी सभामें देवर्षिद्वारा सावित्रीकी स्तुति सुनकर ब्रह्मदेवने उसका उपहास किया। सावित्रीने इसे अपना अपमान समझकर ब्रह्मदेवको खूब फटकार सुनायी; तब ब्रह्माजी बिगड़कर बोले—'पतिका अपमान करनेवाली तुम पत्नीत्वके योग्य नहीं रही। आजसे यज्ञोंमें मेरे साथ न बैठ सकोगी।' सावित्रीने भी बिगड़कर कहा—'यदि मैं तुम्हारी पत्नी होने योग्य नहीं तो शूद्रकन्या तुम्हारी पत्नी होगी।'

दोनोंके क्रोधसे जगत्में व्याकुलता देखकर हरि और हरने दोनोंको आश्वस्त करते हुए कहा कि 'देहान्तरमें सावित्री ही शूद्रकन्या होगी।' फिर भी ब्रह्मा और सावित्री पूर्णतः शान्त नहीं हुए। ब्रह्माने सावित्रीको 'शूद्रकन्या-जन्ममें पूर्व-वृत्तान्तका स्मरण न रहनेका शाप दिया तो प्रत्युत्तरमें सावित्रीने भी ब्रह्माजीको निन्द्य-स्त्रीमें कामुक होनेका शाप दिया।'

एक बार ब्रह्माजीने यज्ञ करनेका विचार किया और सावित्रीको बुलाया, किंतु वह न आयीं। मुहूर्तका अतिक्रमण होनेके भयसे विष्णुने भूतलसे एक गोपकन्या लाकर उससे ब्रह्माका विवाह कर दिया और यज्ञ यथाविधि पूरा हो गया। इससे सावित्री अत्यन्त क्रुद्ध हुईं, उनके क्रोधसे त्रैलोक्य जलने लगा। तब पार्वतीकी प्रार्थनापर त्रिपुराम्बाने आविर्भूत होकर सावित्रीको शान्त किया। यही 'भारती' हुईं।

(६) काली—एक बार आदिदैत्य मधु और कैटभके कुलमें उत्पन्न शुम्भ-निशुम्भ नामके दो दैत्योंने उग्र तपस्या करके ब्रह्माजीसे पुरुषमात्रसे अजेय होनेका वर प्राप्त कर लिया। फिर क्या था? तीनों लोकोंपर उन दोनों असुर-बन्धुओंने आक्रमण किया। सारे देवता स्वर्गसे निर्वासित कर दिये गये। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवसहित इन्द्रादि देवोंने जाह्नवी-तटपर '**नमो देव्यै**' इस स्तोत्रसे त्रिपुराम्बाकी स्तुति की। त्रिपुराम्बाने प्रसन्न होकर गौरीको भेजा। गौरीने देवोंका वृत्तान्त सुनकर कालीका रूप धारण किया और शुम्भ-निशुम्भद्वारा प्रेषित असुर-सेनापति चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंका वध किया।

(७) चण्डिका और **(८) कात्यायनी**—भगवती श्रीविद्याके छठे, सातवें, आठवें अवतारोंकी कथाएँ 'श्रीदुर्गा-सप्तशतीस्तोत्र' में प्रसिद्ध तथा सर्वविदित हैं। अतएव यहाँ स्थानाभावके कारण उसका विशेष उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

(९) दुर्गा—महिषासुरको मारनेके लिये महालक्ष्मी दुर्गारूपमें माँ श्रीविद्याने अवतार ग्रहण किया। यह कथा भी 'श्रीदुर्गासप्तशती' के मध्यमचरित्रमें प्रसिद्ध है।

(१०) ललिता—पूर्वकालमें भण्ड नामक एक असुरने श्रीशिवजीकी आराधना की और उनसे अभयरूप वर प्राप्तकर वह त्रिलोकीका अधिपति बन बैठा। उसने देवताओंके हविर्भागका भी स्वयं ही भोग आरम्भ कर दिया। इन्द्राणीको भी वह हरनेकी बात सोचने लगा तो वे भयसे गौरीके

निकट आश्रयार्थ पहुँचीं। इधर भण्डने 'विशुक्र' को पृथिवीका और 'विषङ्ग'को पातालका आधिपत्य सौंप दिया और स्वयं इन्द्रासनपर आरूढ होकर इन्द्रादि देवताओंको अपनी पालकी ढोनेमें नियुक्त किया। दयावश शुक्राचार्यजीने इन्द्रादिकोंको इस दुर्गतिसे मुक्त किया। भण्ड दैत्यने असुरोंकी मूल राजधानी 'शोणितपुर'को मयासुरद्वारा स्वर्गसे भी सुन्दर बनवाकर उसका नया नाम 'शून्यकपुर' रखा और वहीं वह राज्य करने लगा।

स्वर्गको तो दैत्यराज भण्डने नष्ट कर ही डाला, दिक्पालोंके स्थानोंपर भी अपने दैत्योंको बैठा दिया। इस प्रकार एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंपर भण्डने आक्रमण किये और उन सबको अपने अधिकारमें कर लिया।

इसके पश्चात् पुनः भण्ड दैत्यने घोर तपस्या करके शिवजीसे अमरत्वका वरदान प्राप्त कर लिया। 'इन्द्राणीने गौरीका आश्रय लिया है', यह जानकर वह कैलास पहुँचा और गणेशजीकी भर्त्सनाकर उनसे इन्द्राणीको अपने लिये माँगने लगा।

गणेशजी बिगड़कर प्रमथादि गणोंको साथ लेकर उससे युद्ध करने लगे। पुत्रको युद्धमें प्रवृत्त देखकर उसकी सहायताके लिये गौरी अपनी कोटि-कोटि शक्तियोंके साथ युद्धस्थलमें उतरीं और दैत्योंसे युद्ध करने लगीं। इधर गणेशजीकी गदाके प्रहारसे मूर्च्छित होकर पुनः प्रकृतिस्थ होते ही भण्डासुरने उन्हें अंकुशके आघातसे मार गिराया। गौरी यह देखकर बहुत क्रुद्ध हुईं और हुंकारसे भण्डको बाँधकर ज्यों ही मारनेके लिये उद्यत हुईं, त्यों ही ब्रह्माजीने गौरीको शंकरजीके अमरत्व-वरका स्मरण दिलाया। विवश होकर गौरीने उसे छोड़ दिया।

इस प्रकार भण्ड दैत्यसे त्रस्त हो उठनेपर इन्द्रादि देवोंने गुरुके आज्ञानुसार हिमाचलमें त्रिपुरादेवीके उद्देश्यसे 'तान्त्रिक महायाग' आरम्भ कर दिया। अन्तिम दिन याग समाप्तकर जब देवगण माता श्रीविद्याकी स्तुति कर रहे थे, तब उसी क्षण यज्ञकुण्डकी ज्वालाके बीचसे महाशब्दपूर्वक अत्यन्त तेजस्विनी 'त्रिपुराम्बा' प्रादुर्भूत हुईं। उस महाशब्दको सुनकर तथा लोकोत्तर प्रकाशपुञ्जको देखकर गुरु बृहस्पतिको छोड़ सभी देव अन्धे-बहरे होकर मूर्च्छित हो गये।

गुरु बृहस्पति तथा ब्रह्माने हर्षपूर्वक गद्गद-स्वरसे श्रीविद्यामाताकी स्तुति की। श्रीमाताने प्रसन्न होकर उनका अभीष्ट पूछा। उन्होंने भी भण्डासुरकी कथा सुनाकर उसके नाशकी प्रार्थना की। माताने उसे मारना स्वीकार किया और मूर्च्छित इन्द्रादि देवोंको अपनी अमृतमय कृपा-दृष्टिसे चैतन्य प्रदान किया तथा अपने दर्शनकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये उन्हें विशेषरूपसे तपस्या करनेकी आवश्यकता बतलायी। देवता लोग भी माताके आज्ञानुसार तपस्यामें जुट गये।

इधर भण्डासुरने देवोंपर धावा बोल दिया। कोटि-कोटि सैनिकोंके साथ आते हुए भण्ड दैत्यको देखकर देवोंने त्रिपुराम्बाकी प्रार्थना करते हुए अग्नि-कुण्डमें अपने शरीरोंका होम देना शुरू कर दिया। त्रिपुराम्बाके आज्ञानुसार 'ज्वालामालिनी' शक्तिने देवगणोंके चारों ओर ज्वालामण्डल प्रकट कर दिया। देवोंको ज्वालामें भस्मीभूत समझकर भण्ड दैत्य सैन्यके साथ वापस चला गया।

दैत्यके जानेके बाद देवतागण अपने अवशिष्टाङ्गोंकी पूर्णाहुति करनेके लिये ज्यों ही उद्यत हुए, त्यों ही ज्वालाके मध्यसे तडित्पुञ्जनिभा 'त्रिपुराम्बा' आविर्भूत हुईं। देवोंने जयघोषपूर्वक पूजनादिद्वारा उन्हें संतुष्ट किया। देवोंको अपना दर्शन सुलभ हो, इसलिये श्रीमाताने विश्वकर्माके द्वारा सुमेरु-शृंगपर निर्मित श्रीनगरमें सर्वदा निवास करना स्वीकार कर लिया।

इसके बाद श्रीमाताने देवोंकी प्रार्थनाके अनुसार श्रीचक्रात्मक रथपर आरूढ होकर भण्ड दैत्यको मारनेके लिये प्रस्थान किया। दोनोंके बीच महाभयानक युद्ध हुआ। श्रीमाताके कुमार श्रीमहागणपति तथा कुमारी बालाम्बाने भी युद्धमें अत्यधिक पराक्रम दिखाया। श्रीमाताकी मुख्य दो शक्तियों—१-मन्त्रिणी 'राज मातङ्गीश्वरी' और २—दण्डिनी 'वाराही'-सहित अन्य अनेक शक्तियोंने अपने प्रबल पराक्रमद्वारा दैत्य-सैन्यमें खलबली मचा दी।

अन्तमें बड़ी कठिनाईसे जब श्रीमाताने महाकामेश्वरास्त्र चलाया, तब सपरिवार भण्ड दैत्य कथाशेष हो गया। देवोंका भय दूर हो गया और वे स्वर्गमें अपने-अपने पदोंपर पूर्ववत् अधिष्ठित हो गये। दैत्यद्वारा आक्रान्त एक सौ पाँच ब्रह्माण्डोंमें भी चैनकी वंशी बजने लगी।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाकी एक झाँकी

(मानसमर्मज्ञ, आचार्यप्रवर पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी महाराज)

हिन्दी विश्वकोशके अनुसार 'लीला' शब्दके कई पर्यायवाची शब्द हैं—केलि, क्रीडा, खेल, रहस्यमय व्यापार और मनुष्योंके हितके लिये ईश्वरावतारोंका अभिनय, चरित्र तथा लीलादि।

श्रीरामभक्ति-साहित्यमें परमात्मा श्रीरामकी लीलाओंके प्रमुखतः तीन प्रकार बताये गये हैं—(१) नित्य, (२) अवतरित एवं (३) अनुकरणात्मक। इन्हीं तीनों लीलाओंको कहीं-कहीं 'अक्षर', 'वास्तविक' तथा 'व्यावहारिक' लीला भी कहा गया है।

[१] परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जो लीलाएँ दिव्यधाम साकेतमें अनवरत चलती रहती हैं, उन दिव्य लीलाओंको 'नित्य-लीला' कहा गया है।

[२] जीवोंके उद्धारकी इच्छासे जो लीलाएँ धराधामपर होती रहती हैं, उन्हें 'अवतरित-लीला'के नामसे जाना जाता है।

[३] जिन परम दिव्य लीलाओंको प्रेमी भक्तोंद्वारा यत्र-तत्र लीलाभिनय (श्रीरामलीला)-के रूपमें किया जाता है, उन्हें 'अनुकरणात्मक-लीला' कहा गया है।

प्रकट और अप्रकटके भेदसे भूमण्डलपर 'अवतरित' अवतारकालीन लीलाओंके भी दो प्रकार हैं—'**सा लीला प्रकटाप्रकटभेदेन द्विविधा।**' पद्मपुराणमें भी कहा गया है—'**प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते।**' जब प्रभु श्रीरामकी इच्छासे उनकी लीलाएँ विविध ब्रह्माण्डोंमें गोचरीभूत होती हैं, तब उन्हीं लीलाओंको 'प्रकटलीला' कहते हैं और जो लीलामें गोचरीभूत नहीं हो पातीं, उन्हें 'अप्रकटलीला' कहते हैं। जैसे भास्कर प्रभामय, वारि द्रवमय तथा वायु प्रवाहमय है, उसी प्रकार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक परब्रह्म परमात्मा श्रीराम भी लीलामय हैं।

भूतलपर भी मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामकी प्रकट लीलाएँ अनन्त हैं। उन्हीं अवतरित-प्रकट लीलाओंसे मानवोंके लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद एक आदर्श-लीलाकी झाँकी प्रस्तुत है—

'**एकपत्नीव्रती रामो मर्यादापुरुषोत्तमः।**' यह शास्त्रवाक्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्वयं भगवान् श्रीरामने भी मिथिलाकी फुलवारी-लीलामें अत्यन्त विश्वासपूर्वक अपनी मानसिक प्रवृत्तिका उद्घोष किया है। यथा—

अत्यन्तमस्ति विश्वासो मह्यं तु मम चेतसः।
कदाप्यनेन स्वप्नेऽपि परस्त्री नावलोकिता॥

तात्पर्य मुझे अपने मनपर पूरा-पूरा विश्वास है कि वह स्वप्नकालमें भी परायी नारीकी ओर नहीं देख सकता।

और-तो-और महर्षि प्राचेतसने भी श्रीरामायणके एक प्रसंगमें वर्णन किया है—

कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
कस्मात् स दण्डकारण्ये भ्राता रामो विवासितः॥

(वा०रा० २। ७२। ४५)

ननिहालसे लौटनेके पश्चात् धर्मज्ञ राजकुमार भरतने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके निर्वासित होनेका कारण पूछते हुए कहते हैं—'राजकुमार श्रीरामका मन किसी परायी स्त्रीकी ओर तो नहीं चला गया था? किस अपराधके कारण भैया श्रीरामको दण्डकारण्यमें जानेके लिये निर्वासित कर दिया गया है?'

तब श्रीभरतसे वनवासदायिनी कैकेयीने भी इस प्रकार उत्तर दिया था—'वे तो परायी स्त्रीको आँखसे भी नहीं देखते।' यथा—

न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति॥

(वा०रा० २। ७२। ४८)

गोस्वामीजीने लिखा है—*'बैरिउ राम बड़ाई करहीं।'* ऐसे थे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम। श्रीरामचरितमानसमें भी प्रभु श्रीरामने स्वयं अपना मन्तव्य दिया है—

मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी॥

(रा०च०मा० १। २३१। ६)

श्रीभगवान्ने अपने इस आदर्श कथनको श्रीरामावतारकी लीलाओंमें पूर्णतः चरितार्थ करते हुए श्रीजानकीजीके अतिरिक्त संसारकी सम्पूर्ण नारियोंके प्रति मातृभाव रखकर जगत्में एक उच्चतम आदर्शकी स्थापना की है।

आनन्दरामायणमें भी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको 'एकपत्नीव्रती' और 'पवित्र राजर्षि' कहा गया है—

एकपत्नीव्रतो रामो राजर्षिः सर्वदा शुचिः॥

(आनन्द०रा० सार० १३। २०५)

आगे चलकर स्वयं भगवान् श्रीराघवेन्द्रने अपने इस श्रेष्ठतम व्रतपर जोर देते हुए श्रीसीताजीसे कहा—'मैं एकपत्नीव्रती हूँ, मेरे लिये तुम्हें छोड़कर अन्य सारी नारियाँ माता कौसल्याजीके समान हैं। तुम मुझसे इस प्रकार अन्यथा बात क्यों कह रही हो?' यथा—

एकपत्नीव्रतं मेऽस्ति कौसल्यासदृशी मम।
अन्या स्त्रीति मृषा वाक्यं कत्थसे त्वं पुनः पुनः॥

(आनन्द०रा० विलास० ८। ६३)

इसके अतिरिक्त भी यह पंक्ति प्रसिद्ध है—'**रामचन्द्रः परान् दारान् नाभिवीक्षते।**' '**मातृवत् परदारेषु**……।' एवं *'जननी सम जानहिं परनारी।'* इत्यादि पंक्तियाँ निम्नलिखित लीला-झाँकीसे पूर्ण चरितार्थ होती हैं।

लंकेश दशाननके मरणोपरान्त महारानी मन्दोदरी अन्य बहुत-सी रानियोंसहित रणाङ्गणमें रुदन एवं विलाप कर रही थीं। श्रीरामानुज वीर लक्ष्मणजीके समझानेपर विभीषणने शोकमुक्त होकर महारानी मन्दोदरीको जैसे-तैसे समझा-बुझाकर राजमहलमें भेज दिया। परम विदुषी माननीया महारानी शोकनिवृत्त होकर रनिवासमें तो आ गयी, परंतु अपने पराक्रमी प्रियतमकी मृत्युपर उसके हृदयमें एक जिज्ञासा उभरने लगी और वह धीरे-धीरे बलवती होती गयी। यद्यपि यशस्विनी मयनन्दिनी भगवान् श्रीरामकी भगवत्तासे परिचित थी, फिर भी पतिकी मृत्युसे वह व्याकुल हो उठी। उसने अपने-आपको समझानेका बहुत प्रयास किया—'श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं, वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके स्वामी हैं। जगन्नियन्ता, जगन्नाथ-रघुनाथके समक्ष भला उसके स्वामी दशग्रीवकी बिसात ही क्या!

उन अतुल बलशाली विश्वविजेता महाराज रावणका, दो मानवकुमारों एवं ऋक्ष-वानरोंकी सेनाद्वारा इस प्रकार असहायावस्थामें मारा जाना सर्वथा अस्वाभाविक है। निश्चय ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराममें कुछ ऐसे मानवोचित विशिष्ट गुण अवस्थित हैं, जो मेरे प्राणवल्लभ लंकेश्वरमें नहीं थे।

'मैं मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी मर्यादा-परीक्षण करूँगी और परीक्षा-हेतु उनका दर्शन करने जाऊँगी।' महारानी लंकेश्वरीने दृढ़ निर्णय करके अपनेको षोडशोचित शृंगारसे सुसज्जित कर लिया और वे श्रीरामके दर्शनार्थ चल पड़ीं।

सोलहों शृंगारसे सज्जित महारानीका लोकोत्तर सौन्दर्य अद्भुत दिखायी देने लगा। महारानी लंकेश्वरीने अपनी एक परिचारिका भेजकर विभीषणको बुलवाया। उनके आनेपर राजेश्वरीने अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहा—'सुव्रत! मैं मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करना चाहती हूँ। आप इसके लिये शीघ्र ही समुचित व्यवस्था करानेकी कृपा कर दें।'

लंकेश्वरीके संकेतमात्रसे महाराज विभीषणने राजकीय साज-सज्जासे सुसज्जित स्वर्णभूषिता एक सुन्दर शिविकाकी व्यवस्था कर दी।

महारानी राजकीय सवारीपर बैठ गयीं और वाहक प्रसन्नतापूर्वक उठाकर ले चले। उस समय लंकेश्वरीके आगे-पीछे, दायें-बाँयें सैकड़ों अङ्गरक्षक सैनिक चल रहे थे। महाराज विभीषणने आगे बढ़कर वानरेश सुग्रीवजीसे मिलकर सूचना देते हुए कहा—'महारानी मन्दोदरी शिविकारूढ होकर प्रभु-दर्शनार्थ आ रही हैं।'

कपीश्वर सुग्रीवजीके संकेतानुसार ऋक्षों-वानरोंकी सेना दो पंक्तियोंमें सुव्यवस्थित होकर खड़ी हो गयी। इसके पश्चात् वानरेशने श्रीरघुनाथजीसे महारानी मन्दोदरीके आनेकी सूचना दी। सुनते ही मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और श्रीलक्ष्मण

दोनों बन्धुओंके नेत्र धरतीकी ओर उन्मुख हो गये। उसी समय महारानी मन्दोदरीने शिविकासे नीचे उतरकर आगे बढ़कर दोनों भाइयोंको दोनों हाथ जोड़कर शीश झुकाकर नमन किया। महाराज सुग्रीवने श्रीरघुनाथजीसे निवेदन करते हुए कहा—

इयमियं त्वयि दानवनंदिनी त्रिदशनाथजित: प्रसवस्थली।
किमपरं दशकन्धरगेहिनी त्वयि करोति करद्वययोजनम्॥

(हनुमन्नाटक १४। ५८)

अर्थात् हे प्रभो! ये असुरोंके विश्वकर्मा मयदानवकी पुत्री, महाराज दशग्रीव रावणकी महारानी, सर्वदा तीसरी दशा (अवस्था)-से युक्त, देवों और उनके स्वामी इन्द्रको भी परास्त करनेवाले, वीरवर इन्द्रजित्‌को उत्पन्न करनेवाली, मेघनादकी माताजी आपको करबद्ध हो प्रणाम कर रही हैं।

महाराज सुग्रीवकी बात सुनकर सूर्यकुल-भूषण श्रीरामने नीचे मुख किये हुए ही कहा—'महारानी मन्दोदरीकी क्या आज्ञा है?'

मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामका मर्यादित व्यवहार तथा उनकी अमृतमयी विनम्र वाणी श्रवण करते ही महारानीकी समस्त जिज्ञासाओंका तत्काल समाधान हो गया। उसका हृदय शीतल होकर आनन्दसे रोम-रोम पुलकित हो उठा और वह भुवनमोहन श्रीराघवेन्द्रका जयघोष करती हुई बोल पड़ी—'मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मणकी सदा जय हो, सदा जय हो!'

श्रीराम! आपकी जन्मदायिनी माता कौसल्या धन्य हैं, जिन्होंने आप-जैसे सदाचारी, धर्मव्रती, शीलवान्, मर्यादापालक पुत्रको जन्म देनेका सौभाग्य प्राप्त किया। आपके जन्मदाता धर्मात्मा पिताश्री धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने आप-जैसे कीर्तिमान्, गुणवान्, बलवान् पुत्रको उत्पन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त किया। आपका श्रेष्ठतम सूर्यवंश-कुल धन्य है, जिसमें आप-जैसे मर्यादापालक, पुरुषोत्तम, महावीर पैदा हुए हैं, जो कभी भी परायी स्त्रियोंकी ओर आँख उठाकर देखते तक नहीं—

धन्या राम त्वया माता धन्यो राम त्वया पिता।
धन्यो राम त्वया वंश: परदारान्न पश्यसि॥

(हनुमन्नाटक १४। ५९)

'हनुमन्नाटक'में महारानी मन्दोदरीका कथन स्पष्टत: प्रमाणित करता है कि श्रीरामजीके लिये गोस्वामीजीने सत्य ही लिखा है—'*बैरिउ राम बड़ाई करहीं।*'

महारानीके ज्ञान-नेत्र खुल चुके थे, वह मन-ही-मन विचारोंमें खो गयी—'मेरे परम प्रतापी प्रियतम महाराज रावणमें यह चरित्रबल नहीं था, इसीके कारण वे भ्राता, पुत्र तथा पौत्रोंसहित रणाङ्गणमें मारे गये। सदाचार-परायण धर्मज्ञ श्रीविभीषणजीने यही सुझाव तो भरी राजसभामें उस समय दिया था—

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

(रा०च०मा० ५। ३८। ५-६)

'पर हा हन्त! महाराज रावणने उनके कथनकी अवहेलना करके उसपर ध्यान नहीं दिया, बल्कि अपने प्रिय सदाचारी भ्राताको लंकासे निकाल दिया। उसी आचारहीनता-चारित्रिक दोषके परिणाम-स्वरूप आज वे रणभूमिमें सदाके लिये सो रहे हैं।'

अन्तमें महारानी मन्दोदरीने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके परम पावन चरणारविन्दमें नमन किया और प्रभुका आशीर्वाद लेकर राजमहल लौट गयीं। महाराज सुग्रीवने उसे ससम्मान श्रीविभीषणजीके साथ लंकामें विदा कर दिया।

इस प्रकार उपर्युक्त लीला-झाँकीमें श्रीरघुनाथजीने '**मातृवत् परदारेषु**' को पूर्णत: चरितार्थ किया। गोस्वामीजीके कथनानुसार भगवान् श्रीरामके भक्तोंको भी—'***जननी सम जानहिं परनारी***'-के अनुसार अपनेको चरित्रवान् बनाना चाहिये। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके लिये यह प्रसिद्ध श्लोक है—

एकपत्नीव्रती रामो श्रुतिमर्यादापालक:।
जनकजां तु परित्यज्य सर्वा: कौसल्यासमा:॥

सेतुबन्ध भगवान् रामकी अद्भुत लीला

(डॉ० श्रीओमप्रकाशजी द्विवेदी)

भगवान्‌का सगुण-साकार अवतार भक्तोंको दिव्यता प्रदान करने-हेतु तथा धर्मसंस्थापनार्थ एवं दुष्टोंके विनाशके लिये होता है। भगवान् अपने हर अवतारमें नरलीला करते हैं, जिसके यशको गाकर-सुनकर भक्त अनायास संसार-सागरसे पार उतर जाते हैं।

भगवान् अपनी सेनासहित समुद्रतटपर खड़े हैं। समुद्र शरणागत हो गया है। शरणागतकी रक्षा भगवान् करते हैं। अतः समुद्रकी बात ध्यानसे सुनकर उसकी पीडा हरण करते हैं। समुद्रने अपने बन्धनका उपाय नल-नीलको प्राप्त वरदान बताया और पूर्ण सहयोगका वचन देकर चला गया। जिसमें भगवान् रामकी आश्चर्यमय लीला ही प्रधानरूपसे कारण थी। जिससे ४०० कोस लंबा और ४० कोस चौड़ा पुल बनकर तैयार हो सका। समुद्रका जल पुल बननेतक स्थिर रहा। उसमें ज्वारभाटा भी नहीं आया, किसी प्रकारकी हलचल तक न हुई। जब रामने जाम्बवान्‌को सेतु-रचनाकी आज्ञा दी तो जाम्बवान्‌ने कहा—'प्रभु! आपका नाम ही सेतु है, जिसपर चढ़कर भक्तजन अत्यन्त दुर्गम संसार-सागरको पार करनेमें सफल हो जाते हैं। इस लघु समुद्रकी बात ही क्या है?'—

सुनहु भानुकुल केतु जामवंत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भव सागर तरहिं॥

(रा०च०मा० ६। सो० २)

यहाँ संसार एवं समुद्रपर विचार करना आवश्यक है। विनय-पत्रिकामें कहा गया है कि संसारमें देहाभिमान अत्यन्त भयंकर, अथाह, अपार, दुस्तर समुद्र है, जिसमें राग-द्वेष और कामनारूपी अनेक घड़ियाल हैं। आसक्ति एवं संकल्पोंकी लहरें उठ रही हैं। परम वैराग्यवान् हनुमान्‌जीकी सहायता एवं मोक्षके साधन-स्वरूप बंदर-भालुओंके सहयोगसे संसार-सागरको वीर, धीर एवं गम्भीर जन ही पार करते हैं।

सेतु-बन्धन-लीला भगवान्‌के अतुलित बल, पराक्रम एवं सौन्दर्यका ही द्योतक है। आनन्दरामायण (१।१०।६५)-में आया है कि नल-नील अपने चंचल-स्वभावके कारण ऋषियोंके शालग्रामको जलमें फेंक देते थे। एक बार ऋषियोंने शाप दिया कि तुम्हारे द्वारा फेंके गये पत्थर जलमें नहीं डूबेंगे वरन् तैरेंगे। आज वही शाप भगवान्‌के पुल बाँधते समय वरदान बन गया। यही बात समुद्रने भी बतायी थी। आज्ञा पाते ही बंदर-भालु अपने पुल बनानेके कार्यमें जुट गये—

अति उतंग गिरि पादप लीलहिं लेहिं उठाइ।
आनि देहिं नल नीलहि रचहिं ते सेतु बनाइ॥

(रा०च०मा०६। १)

अर्थात् बंदर-भालु बहुत ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और वृक्षोंको खेलकी तरह आसानीसे उठा लेते हैं और ला-लाकर नल-नीलको देते हैं। वे उन वृक्षों एवं पर्वतखण्डोंको सुव्यवस्थित करके सुन्दर सेतुका निर्माण करते हैं।

संतोंके मुखसे सुना है कि नल-नीलके स्पर्शसे पर्वत जलमें तैरते हुए दूर-दूरतक फैलने लगे। इस अवस्थामें हनुमान्‌जीने एक पर्वत-खण्डपर 'रा' और दूसरेपर 'म' लिख दिया, जिससे ***'ब्रह्म जीव इव सहज सँघाती'*** के रूपमें पत्थर एक दूसरेसे जुड़ने लगे, वे जलपर स्थिर हो गये और सेतुका कार्य आगे बढ़ने लगा। विनय-पत्रिकामें कहा भी गया है—

जयति पाथोधि-पाषाण-जलयानकर।

(वि०-प०२६। ५)

अर्थात् (हे हनुमान्‌जी!) आप समुद्रपर पत्थरका पुल बाँधनेवाले हैं। आपकी जय हो!

—इस प्रसंगमें एक और सुन्दर लीला-कथा सुननेको मिलती है। भगवान् श्रीरामने हनुमान्‌जीसे कहा कि इस महायज्ञमें मैं भी एक-दो पत्थर आहुति-स्वरूप डालना चाहता हूँ। भगवान्‌ने एक पत्थर डाला, वह डूब गया। आश्चर्यचकित होकर हनुमान्‌जीसे श्रीरामने डूबनेका कारण पूछा। हनुमान्‌जीने कहा—'भगवन्! आप जिसे छोड़ देंगे वह तो डूब ही जायगा।'

इस सेतु-बन्धन-लीलाको देखनेके लिये समुद्रके जलचर अपना स्वाभाविक वैर त्यागकर जलके ऊपर आ गये और मन्त्र-मुग्ध हो अपने अपलक नेत्रोंसे भगवान्‌की छवि निहारने लगे। अपनी कुटिलता भूल गये और एक

समानान्तर पुलके रूपमें बंदर-भालुओंकी सहायता-हेतु तैयार हो गये—

सेतु बंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं॥

(रा०च०मा० ६। ४)

अर्थात् सेतुबन्धपर बड़ी भीड़ हो गयी, इससे कुछ वानर आकाश-मार्गसे उड़ने लगे और दूसरे कितने ही जलचर-जीवोंपर चढ़-चढ़कर पार जाने लगे। सच है, जब कुटिल जीव अपनी कुटिलता छोड़कर भगवान्‌के सम्मुख होता है तो वह पवित्र एवं परोपकारी बन जाता है। स्वयं तरता है और दूसरोंको भी संसार-सागर पार करानेमें समर्थ हो जाता है।

पुल बन जानेपर वह स्थल भगवान्‌को अत्यन्त रमणीय लगा। उस उत्तम धरणीपर भगवान्‌ने शिवलिङ्गकी विधिवत् स्थापना की। भगवान्‌ने रामेश्वर-दर्शनकी महिमाका सप्रेम वर्णन किया, जिसे भक्त स्मरणकर आज भी हर्षित, पुलकित एवं आनन्दित होते हैं।

रावणने जल, थल, नभ सर्वत्र ऐसी व्यवस्था की थी कि लंकामें कोई प्रवेश न कर सके। लंकामें प्रवेश करनेवाली परछाईं तक भी पकड़में आ जाय—ऐसी सशक्त सुरक्षा-व्यवस्था थी। सिंहिका जो जलमें परछाईंको पकड़कर जीवोंको खाती थी, वह भी रुद्रावतार हनुमान्‌जीके हाथों सद्गतिको प्राप्त हुई। लंकिनी लंकाके द्वारपर रक्षिका थी। रोकनेपर हनुमान्‌जीने उसपर भी मुष्टिका-प्रहार किया, जिससे मुखसे रक्त वमन करती हुई वह भूमिपर गिरी और उसे ब्रह्माके वचनकी स्मृति हो आयी तथा हनुमान्‌जीसे सत्संगकी महिमाका वर्णन करने लगी—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५। ४)

अर्थात् हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेपर रखा जाय तो भी वे सब मिलकर उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो लवमात्रके सत्संगसे होता है।

भगवान्‌के न्याय-मार्गपर चलनेमें जड-चेतन सभीने पूर्ण सहायता की। जड समुद्रने भी चेतन-स्वरूप होकर व्यवहार किया। राक्षसियाँ हनुमान्‌जीके लिये अनुकूल हो गयीं। इस प्रकार भगवान्‌की लीला-कृपाके फलस्वरूप लंका जानेका मार्ग प्रशस्त हो गया। सेतुसे सारी सेना पार उतर गयी। सेतुबन्धकी आश्चर्यमयी घटना सुनकर रावणका चित्त भ्रमित हो गया। व्याकुलतामें अपने दसों मुखसे बोल उठा—

बाँध्यो बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥

(रा०च०मा० ६। ५)

अर्थात् वननिधि, नीरनिधि, जलधि, सिन्धु, वारीश, तोयनिधि, कंपति, उदधि, पयोनिधि, नदीशको क्या सचमुच ही बाँध लिया है?

मन्दोदरीने सेतु बननेपर रावणको समझाया कि वे दोनों तापस-बन्धु अवतारी हैं, भूभार-हरण-हेतु अवतरित हुए हैं। इनसे वैर न कीजिये। सीताजीको लौटा दीजिये। पुत्र प्रहस्तने भी जब श्रीरामके विषयमें ऐसा सुना, तब उसने भी रावणको समझाया—

जेहिं बारीस बँधायउ हेला। उतरेउ सेन समेत सुबेला॥
सो भनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहिं सब गाल फुलाई॥

(रा०च०मा० ६। ९। ५-६)

'हे तात! जिन्होंने खेलमें समुद्र बाँध लिया। सेनासहित इस पार लंकामें आ गये, वे कोई साधारण मनुष्य नहीं हो सकते हैं। इनके इस अद्भुत प्रभावको समझते हुए शीघ्र ही सीताजीको लौटाकर मैत्री कीजिये; परंतु हठी रावणने किसीकी बात नहीं मानी, जिसका कुफल उसे आगे भोगना पड़ा।

आज इसी रावणवृत्तिपरक हठवादिताके कारण कुण्ठा, संत्रास और तनावके युगमें हमारी सामाजिक व्यवस्था बिखर रही है। मानव-सम्बन्ध टूट-से रहे हैं। इस विखण्डनको रोकनेकी शक्ति भारतीय संस्कृतिमें है। राम-कृष्णके लीला-चरित्र टूटे एवं बिखरे समाजको जोड़नेके लिये सेतु हैं। भगवान्‌की लीला-कथाएँ उत्ससे युक्त हैं। ऐसे उनकी लीला-चरित्रकी श्रेष्ठताका प्रभाव जब हमारे जीवनपर पड़ता है तब हमारे कर्न, भाव तथा आचरण दिव्य बन जाते हैं।

काकभुशुण्डिजीने मानसके उत्तरकाण्डमें कथाकी पूर्णाहुतिके

अवसरपर गरुडजीको मधुर अमृतमय वाणीमें समझाते हुए कहते हैं कि भगवान् लीलावपुधारी हैं, लीला-विहारी हैं, नटवरनागर हैं—

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥

(रा०च०मा० ७। ७२ (ख))

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥

(रा०च०मा० ७। ३१। १)

अर्थात् जैसे नट अनेक प्रकारकी नृत्यभाव-लीलाएँ करता है, जिसका असर भिन्न-भिन्न लोगोंपर भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है, पर नट स्वयं अप्रभावित रहता है। उसी प्रकार भगवान् नर-तन धारण करके लीलाएँ करते हैं। दनुज उन लीलाओंसे विमोहित हो जाते हैं, पर भक्तजन—जिनकी स्वार्थबुद्धि कामनाएँ एवं अहंभाव नष्ट हो गये हैं, उन्हें ये लीलाएँ अत्यन्त सुखद प्रतीत होती हैं।

इस प्रकार भगवान्की सेतुबन्ध-लीला अद्भुत एवं प्रेरणाप्रद है। इसके स्मरण-मननसे भगवत्कृपाकी सात्त्विक अनुभूति होती है। हमारा जीवन दिव्य एवं धन्य बन जाता है।

कुमार कार्तिकेयकी लीला-कथा

प्रातःस्मरणीया भगवती सती अपने प्राणाधार महादेवजीका अपमान नहीं सह सकीं। अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अपने पिता दक्षके यज्ञमें ही योगाग्निके द्वारा अपना शरीर भस्म कर दिया। फिर वे हिमगिरि-पत्नी मेनाकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं। उन्होंने अपने जीवन-सर्वस्व शिवकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त कठोर तप किया। फलतः समयपर जगद्वन्द्य शिवके साथ उनका मङ्गल-परिणय हुआ। विवाहोपरान्त भगवान् शंकर पार्वतीके साथ कैलास पर्वतपर लौट आये और वहाँ वे पार्वतीके साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

एक बारकी बात है, माता पार्वती एक सरोवरके तटपर गयीं। सरोवरका जल अत्यन्त निर्मल और स्वच्छ था। उसमें स्वर्ण-वर्णके कमल खिले थे। भगवती उमाने पहले तो जल-विहार किया, फिर उसके रमणीय तटपर उन्होंने स्वच्छ एवं सुमिष्ट जल पीनेकी इच्छा की। उसी समय उन्होंने देखा कि पद्मपत्रमें जल लेकर छः कृत्तिकाएँ अपने घर जानेवाली ही हैं।

'देवियो! पद्मपत्रमें रखा हुआ जल मैं भी पीना चाहती हूँ।' गिरिजाने कृत्तिकाओंसे अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा।

'भुवनपावनी देवि! हम तुम्हें एक शर्तपर यह जल दे सकती हैं।'

कृत्तिकाओंने स्नेहसिक्त स्वरमें माता पार्वतीसे निवेदन किया—'तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र हममें भी मातृभाव रखे और हमारा भी पुत्र माना जाय। वह त्रैलोक्यविख्यात पुत्र हमारा रक्षक हो।'

'अच्छा, ऐसा ही हो।' शिवाने तत्क्षण वचन दे दिया।

कृत्तिकाएँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने कमल-पत्रमें रखा हुआ स्वच्छ सलिल थोड़ा उमाको भी दिया। भगवती पार्वतीने कृत्तिकाओंके साथ उस मधुर जलका पान किया।

त्रिनेत्रकी प्राणवल्लभा पार्वतीके जल पीते ही तत्क्षण उनकी दाहिनी कोखसे एक रोग-शोक-निवारक परम तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। तिमिरारिके तुल्य उसके शरीरसे प्रभापुञ्जका प्रसार हो रहा था। वह अग्नितुल्य तेजस्वी बालक स्वर्णके समान गौरवर्णका था। उसके मनोहर कर-कमलोंमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश सुशोभित थे।

वह बालक कुत्सित दैत्योंके संहारके लिये प्रकट हुआ था, इस कारण 'कुमार' उसकी संज्ञा हुई। वह कृत्तिका-प्रदत्त जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था, वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं, इन्हीं कारणोंसे वह विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे प्रख्यात हुआ।

स गर्भो दिव्यसंस्थानो दीप्तिमान् पावकप्रभः।
दिव्यं शरवणं प्राप्य ववृधे प्रियदर्शनः॥
ददृशुः कृत्तिकास्तं तु बालमर्कसमद्युतिम्।
जातस्नेहाच्च सौहार्दात् पुपुषुः स्तन्यविस्रवैः॥

अभवत् कार्तिकेयः स त्रैलोक्ये सचराचरे।
स्कन्नत्वात् स्कन्दतां प्राप्तो गुहावासाद् गुहोऽभवत्॥

(महा०, अनु० ८६। १२—१४)

'वह कान्तिमान् शिशु अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। उसके शरीरकी आकृति दिव्य थी। वह देखनेमें बहुत ही प्रिय जान पड़ता था। वह दिव्य सरकंडेके वनमें जन्म ग्रहण करके दिनोंदिन बढ़ने लगा। कृत्तिकाओंने देखा कि वह बालक अपनी कान्तिसे सूर्यके समान प्रकाशित हो रहा है। इससे उनके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वे सौहार्दवश अपने स्तनोंका दूध पिलाकर उसका पोषण करने लगीं। इसीसे चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीमें वह 'कार्तिकेय'के नामसे प्रसिद्ध हुआ। स्कन्दन (स्खलन)-के कारण वह 'स्कन्द' कहलाया और गुहामें वास करनेसे 'गुह' नामसे विख्यात हुआ।'

लोकपितामह ब्रह्मा, क्षीरोदधिशायी विष्णु, शचीपति इन्द्र और भगवान् भुवनभास्कर आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमार षड्वदनका सेनापतिके पदपर अभिषेक किया। भगवान् श्रीविष्णुने उन्हें सब प्रकारके आयुध प्रदान किये। धनाधिपति कुबेर, अग्नि और वायुने उन्हें क्रमशः दस लाख यक्षोंकी सेना और वाहन अर्पित किये। सुर-समुदायने कुमार कार्तिकेयको अनन्त पदार्थ समर्पित किये। तदनन्तर देवताओंने घुटने टेककर स्कन्दकी स्तुति-प्रार्थना की।[१]

'देवताओ! आप लोग शान्त होकर बताइये कि मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ?' देवताओंकी स्तुतिसे संतुष्ट होकर कुमारने उनसे कहा—'यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य भी करनेकी इच्छा हो तो कहिये।'

'कुमार! तारक नामक प्रख्यात असुरराज सुर-समुदायका सर्वनाश कर रहा है।' देवताओंने अत्यन्त मधुर वाणीमें निवेदन किया—'वह अत्यन्त बलवान्, अजेय, क्रूर, दुराचारी एवं क्रोधी भी है। हम लोग उस असुरसे भयभीत और त्रस्त हैं। अतएव आप उस दुर्दमनीय तारकासुरका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है।'

'तथास्तु!' दुःखी देवताओंके वचन सुनते ही षडाननने कह दिया और भू-कण्टक तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चल पड़े।

कार्तिकेयका आश्रय प्राप्त हो जानेपर सुरेन्द्रने अपना एक दूत भयानक आकृतिवाले अजेय तारक असुरके पास भेजा।

'असुरराज! देवराज इन्द्रने संदेश दिया है।' दूतने तारकासुरके पास जाकर कहा—'वे देवगण तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये जो भी प्रयत्न करना चाहो, कर लो।'

'निश्चय ही सुरेन्द्रको कोई आश्रय प्राप्त हो गया है।' दूतके चले जानेपर असुरराजने विचार किया—'अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।'

'ऐसा कौन वीर पुरुष है, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर पुनः विचार कर ही रहा था कि उसे वन्दियोंके द्वारा बालक विशाखका स्तवन सुनायी पड़ा।

'तुम्हारा वध बालकके द्वारा होगा।' दैत्यराज तारकको पितामहका वर स्मरण हो आया। वह भयभीत हो गया, तथापि उसने शस्त्र धारण किया और अपने दुर्दमनीय सेनाके साथ कुमारके सम्मुख डट गया।

'बालक! तू युद्ध क्यों चाहता है?' तारकासुरने अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न सुकोमल कुमारको देखकर कहा—'जा, कन्दुक खेल। तू निरा बच्चा है। युद्ध बलात् तेरे सिरपर लाद दिया गया है। यह तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। अभी तुझे समझ नहीं है। जा, घर चला जा।'

'तारक! यहाँ शास्त्रार्थ नहीं करना है।' कुमारने स्पष्ट शब्दोंमें तारकासुरसे कहा—'भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। विषधरका नन्हा बच्चा भी मार डालनेमें समर्थ होता है, बालसूर्यकी ओर भी दृष्टिपात करना कठिन होता है, अत्यन्त छोटे मन्त्रमें भी अद्भुत शक्ति होती है, इसी प्रकार मैं भी दुर्जय हूँ। तुम मुझे पराजित नहीं कर सकोगे।'

कार्तिकेयका कथन पूर्ण भी नहीं हो पाया था कि धर्मविध्वंसी असुरने उनके ऊपर वज्रतुल्य मुद्गरका प्रहार किया; किंतु कुमारने उसे अपने अमोघ तेजवाले चक्रसे बीचमें ही नष्ट कर दिया। असुरने अपने जिन-जिन भयंकर

१. कुमार कार्तिकेयके प्राकट्यकी पावन कथा महाभारत, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, पद्मपुराण एवं ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणोंमें विस्तारपूर्वक वर्णित है। कल्पभेदसे सभी कथाएँ सत्य हैं। यह अत्यन्त संक्षिप्त कथा पद्मपुराणके आधारपर लिखी गयी है।

अस्त्रोंका प्रहार किया, वे सभी कुमारके द्वारा नष्ट हो गये। फिर पार्वतीकुमारने दैत्यपर अपनी भयानक गदा फेंकी। उसकी चोटसे पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा।

'निश्चय ही यह बालक असाधारण एवं दुर्जय शूरवीर है।' गदाघातसे व्याकुल तारकने मन-ही-मन सोचा—'अब निस्संदेह मेरी मृत्यु समीप आ गयी है।'

मृत्यु-भयसे भीत अजेय तारक काँप उठा। उसके ललाटपर स्वेद-कण झलकने लगे। उसकी यह दशा देखकर कालनेमि आदि दैत्यपतियोंने अत्यन्त वेगसे कुमारपर आक्रमण कर दिया, किंतु अमित तेजस्वी एवं परम पराक्रमी कार्तिकेय तनिक भी विचलित नहीं हुए। दैत्योंके भयानक प्रहार और विभीषिकाएँ उन्हें स्पर्शतक नहीं कर सकीं। उन्होंने दैत्यपतियोंके समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको विदीर्ण कर दिया, किंतु दैत्य उनके भयानक प्रहारका निवारण करनेमें सर्वथा असमर्थ थे। कार्तिकेयके अस्त्रोंकी निरन्तर वर्षासे दैत्य-सेना क्षत-विक्षत हो गयी, धरतीपर जैसे रक्तकी सरिता प्रवाहित हो गयी और सर्वत्र दैत्य-वीरोंके रुण्ड-मुण्ड दीखने लगे। बड़ा भयानक दृश्य था।

रुद्रपुत्र कार्तिकेयके अस्त्रोंकी अनवरत वर्षासे दैत्य-दल विचलित ही नहीं, व्याकुल हो गया। अधीर होकर कालनेमि आदि भयानक देवशत्रु युद्ध छोड़कर पलायित हुए।

दैत्य-वाहिनी चतुर्दिक् भागी जा रही थी और किन्नरगण परम पराक्रमी कुमारके विजय-गीत गाने लगे। यह देखकर महाशूर तारक क्रोधसे उन्मत्त हो गया। उसने स्वर्णकान्तिसे सुशोभित अद्भुत गदासे कुमारपर भीषण प्रहार किया और इतने तीक्ष्ण शरोंकी वर्षा की कि कार्तिकेयवाहन मयूर रक्तसे लथपथ हो भाग खड़ा हुआ।

'दुष्ट दैत्य, खड़ा रह' कुमारने अत्यन्त कुपित होकर तारकसे कहा। 'अब मैं तेरी जीवन-लीला समाप्त कर रहा हूँ। तू कुछ देर और अपने नेत्रोंसे इस संसारको देख ले।'

कुमारने क्रुद्ध होकर महान् तारकासुरपर अपनी शक्तिका प्रहार किया। शक्तिमूर्ति पार्वतीपुत्र कार्तिकेयकी वह अमोघ शक्ति केयूरकी खनखनाहटके साथ चली और सुर-शत्रु तारकके वज्र-तुल्य वक्षमें बड़े वेगसे प्रविष्ट हो गयी। तारकका हृदय विदीर्ण हो गया। उस अमित बलशाली अजेय दैत्यका विशाल निर्जीव शरीर धरतीपर गिर पड़ा।

तारक-वधसे धरतीका पातक कट गया। सभी सुखी हुए। देवगण विपत्तिनिवारक परमोपकारी महेश्वर-पुत्र कार्तिकेयका स्तवन करने लगे। उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे आनन्द-मग्न होकर हँसते हुए उछलने-कूदने तथा नृत्य करने लगे। उन्होंने अमित तेजस्वी कुमारकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उन्हें अनेक वर प्रदान किये।

इस प्रकार हर्षित और पुलकित देवगण सर्वथा निश्चिन्त होकर अपने-अपने लोकोंके लिये प्रस्थित हुए।

लीलावतार अवधूतश्रेष्ठ भगवान् 'श्रीदत्तात्रेय'

(प० पू० दण्डी स्वामी श्रीमद्दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

दत्तात्रेयो महायोगी भगवान् भूतभावनः।
चतुर्भुजो महाविष्णुर्योगसाम्राज्यदीक्षितः॥

(जाबालदर्शन-उपनिषद् १।१)

दत्तपुराणमें स्पष्ट उल्लेख है कि '**दत्तस्तु भगवान् स्वयम्।**' अभिप्राय यह है कि श्रीविष्णुका चौथा अवतार (मत्स्यपुराणके अनुसार) होनेसे दत्तात्रेयकी 'भगवान्' संज्ञा है। जाबालदर्शनोपनिषद्में दत्तात्रेयको महाविष्णु और भगवान्की संज्ञासे अभिहित किया गया है। अथर्ववेदके दत्तात्रेय-उपनिषद्में श्रीविष्णु ब्रह्माजीको तारक-मन्त्रका उपदेश करते समय अपनेको 'दत्तात्रेयस्वरूप' बतलाकर कहते हैं कि 'आप मेरे सत्यानन्द-चिदात्मक सात्त्विक दत्तस्वरूपकी उपासना कीजिये, दत्त-मन्त्र ही तारक-मन्त्र है।' इससे स्पष्ट होता है कि विष्णु एवं दत्तात्रेय अभिन्न हैं। शाण्डिल्य-उपनिषद्में तो दत्तात्रेयको निर्गुण ब्रह्मका साकारस्वरूप कहा गया है। वहाँपर भी उनको भगवान्, प्रभु, देव इत्यादि कहा गया है।

'श्रीदत्तकल्पद्रुम' नामक ग्रन्थके विद्वान् कवि दत्तात्रेयके विषयमें लिखते हैं कि—

अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्मैव केवलम्।
श्रीदत्तात्रेयरूपेण ब्रह्माण्डेषु विराजते॥

अर्थात् अखण्ड सच्चिदानन्दरूप केवल परब्रह्म ही श्रीदत्तात्रेय भगवान्‌के रूपमें इस ब्रह्माण्डमें विराजते हैं।

संत-महात्मा कहते हैं कि अज्ञानी बालक जो खेल करते हैं, उसे क्रीडा कहते हैं; किंतु भगवान् अवतीर्ण होकर जो अद्भुत, अलौकिक खेल करते हैं, उन्हें 'लीला' कहते हैं। विश्ववन्द्य जगद्गुरु श्रीमद् आद्यशंकराचार्य महाराजने 'ब्रह्मसूत्र' के अपने भाष्यमें '**लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्**' में भगवान्‌के अवतार और लीलाके विषयमें ऐसा ही लिखा है कि जैसे लोकमें बालक स्वभावसे क्रीडा किया करते हैं, वैसे ही ईश्वर अवतीर्ण होकर अनेक अद्भुत लीला रचा करते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (४। ६)-में स्वयं भगवान्‌ने अपने अवतारके विषयमें स्पष्ट कहा है कि—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

अर्थात् मैं अजन्मा हूँ, अविनाशी हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सभी प्राणियोंका ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृतिको अधीन—वश करके योगमायाद्वारा प्रकट होता हूँ।

तात्पर्य यह है कि भगवान् वस्तुतः अज (अजन्मा) होनेपर भी जन्म लेता-सा प्रतीत होता है, अव्यय (अविनाशी) होनेपर भी 'मरता-सा' प्रतीत होता है, 'आत्मा' होनेपर भी किसी एक विशेष स्थानमें प्रादुर्भूत होता-सा दिखायी पड़ता है तथा सभी प्राणियोंके ईश्वर होनेपर भी किसी योग्य माता-पिताका छोटा बच्चा-सा मालूम पड़ता है। यही तो ईश्वरकी लीला है। उनकी कृपावर्षाके बिना उनकी इस लीलाको कौन समझ सकता है? भगवान्‌के इन अलौकिक जन्म एवं कर्मको अर्थात् भगवान्‌की इन लीलाओंको जो पुरुष तत्त्वतः जानता है, वह अपना देह छूट जानेके बाद पुनः जन्मको प्राप्त नहीं होता, अपितु भगवान्‌को ही प्राप्त होता है।

महाविष्णुस्वरूप भगवान् दत्तात्रेयके प्राकट्य (अवतार)-के विषयमें 'श्रीदत्तकल्पद्रुम' में कहा गया है कि—

अज्ञानतिमिराद् घोराज्जीवानुद्धर्तुमेव यः।
अवतीर्णः कृपासिन्धुर्दययास्मिन् महीतले॥

अर्थात् अज्ञानरूपी घोर अन्धकारसे जीवोंका उद्धार करने-हेतु कृपासागर भगवान् श्रीदत्तात्रेय दयासे इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं।

बादमें कहते हैं कि—

त्रिगुणात्मा त्रिमूर्तिश्च दत्त एवंविधोऽपि सन्।
त्रिगुणातीततां तद्वदैकरूप्यं प्रयच्छति॥

अर्थात् भगवान् श्रीदत्तात्रेय स्वतः त्रिगुणात्मक एवं त्रिमूर्तिस्वरूप होनेसे अपने भक्तजनोंको गुणत्रयके उस पार करते हैं, अपनी असीम अनुकम्पासे भक्तोंको 'निस्त्रैगुण्य' बनाते हैं। वे अपने भक्तजनोंको एकरूपता (समरसमग्रता) या परब्रह्मस्वरूपता भी प्राप्त करवा देते हैं।

श्रीदत्तकल्पद्रुम, दत्तात्रेय-सर्वस्व इत्यादि ग्रन्थोंमें वर्णित है कि भगवान् श्रीदत्तात्रेयका आविर्भाव स्वयम्भू मन्वन्तरके पूर्व सत्ययुगमें हुआ। जगत्‌के जीवोंके दुःख एवं ताप नष्ट करने-हेतु वे स्वेच्छासे जगत्‌में प्रकट हुए, अतः जबतक जगत्‌में दुःख और ताप विद्यमान रहेंगे, तबतक वे (दत्तात्रेय) अपने देहका विसर्जन नहीं करेंगे, उसी 'देह' और उसी 'महाभाव' से (सिद्ध अवस्थामें) सदाके लिये रहेंगे। उनका अस्तित्व महाप्रलयपर्यन्त माना गया है। इसीलिये तो धर्मग्रन्थोंने उन्हें सिद्धावतार कहा है। कविकुलगुरु कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' (२।४)-में त्रिमूर्तिस्वरूप, लीलाविश्वम्भर दत्तात्रेयको नमस्कार करते हुए परमात्माकी लीलाका रहस्योद्घाटन किया है—

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं प्राक्सृष्टेः केवलात्मने।
गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे॥

सारांश यह है कि परमात्मा एक है, फिर भी कार्यभेदसे त्रिविधरूपमें प्रकट हुआ है। यह तो त्रिगुणी (दत्तात्रेयकी) सगुण-लीला-विग्रह है।

'लीला-विग्रह' अर्थात् लीलासे भक्तोंके सकल मनोरथ पूर्ण करनेके लिये धारण किया हुआ दिव्य मानव-देह। ऐसे लीला-विग्रह 'दत्तात्रेय' को गुरु-अवतार भी कहा गया है। शिवपुराण नकुलीश्वर-माहात्म्यमें उनको त्रेतायुगका सद्गुरु माना गया है—

कृते ज्ञानप्रदः सत्यः त्रेतायां दत्त एव च।
द्वापरे व्यासनामा तु कलौ शंकर उच्यते॥

अर्थात् सत्ययुगमें सद्गुरु सत्य था (**सत्यं परं धीमहि**), त्रेतायुगमें दत्तात्रेय थे, द्वापरयुगमें वेदव्यास थे और कलियुगमें आद्यशंकराचार्य हैं।

जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यने लिखा है कि—'**त्रेतायां**

विश्वगुरू ऋषिसत्तमः' अर्थात् त्रेतायुगके विश्वगुरु दत्तात्रेय माने गये हैं।

महर्षि अत्रि—लीलावतार भगवान् दत्तात्रेयके पिता महर्षि अत्रि थे और माता महासती अनसूया थीं। महर्षि अत्रि विश्वस्त्रष्टा ब्रह्माके सात मानस-पुत्रोंमें एक थे।

एक बार उनके पिता ब्रह्माजीने उनको गङ्गा-यमुना प्रदेशका प्रजापति नियुक्त करना चाहा, किंतु अत्रिने तपोमय जीवन व्यतीत करनेका निश्चय किया। जब पिताने इसका कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि 'मैं तो तपद्वारा ही विश्वके एक ईश्वरको प्रसन्न करके उनको अपने पुत्ररूपमें अवतीर्ण करवाना चाहता हूँ।' पुत्र अत्रिकी विचारधारा जानकर पिता ब्रह्मा उनपर प्रसन्न हुए और अभीष्ट सिद्धिहेतु आशीर्वाद प्रदान किये।

इस प्रसंगसे स्पष्ट होता है कि अत्रिने स्वपत्नी अनसूयाके देहके माध्यमसे पुत्र पैदा करना नहीं चाहा था। वे तो 'ईश्वर'को अयोनिज पुत्रके रूपमें ही देखना चाहते थे। धर्मग्रन्थोंमें भगवान् दत्तात्रेयको अयोनिज (माताके उदरसे नहीं जन्मा है वैसा) कहा गया है।

अयोनिजा भविष्यन्ति तव पुत्रा वरानने॥

(श्रीदत्तकल्पद्रुम)

ऐसे महान् माता-पिताके वहाँ लीला-विश्वम्भर भगवान् दत्तात्रेय कैसे आविर्भूत हुए इस विषयमें अब हम विश्वसनीय धर्मग्रन्थोंके प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत करते हैं।

श्रीमद्भागवत (४। १)-में ऐसी कथा वर्णित है कि पिता ब्रह्माकी आज्ञा एवं आशीर्वाद प्राप्त करके अत्रि और अनसूया पुत्र-कामनार्थ तपस्या करनेके लिये 'त्र्यक्षकुल-पर्वत' पर गये। वहाँपर निर्विन्ध्या नदीके तटपर अत्रिने तपस्या प्रारम्भ की। अनसूया पतिकी सेवा करने लगीं।

कुछ वर्ष बाद अत्रिके उत्कट तपसे प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु, और महेश (त्रिदेव) अत्रिके सम्मुख प्रकट हुए। त्रिदेवने अवतार ग्रहण करनेसे पूर्व ही इस प्रकारकी लीला की। यह देखकर अत्रिने अपनी शंका व्यक्त की कि 'मैंने तो एक अविकारी निराकार ईश्वरके लिये ही तपस्या की थी, किंतु आप तीन साकार देव किसलिये आये हैं?' अपनी लीलाका रहस्योद्घाटन करते हुए त्रिदेवोंने अत्रिसे कहा कि 'जगत्की सृष्टि, स्थिति और लयके कारण हम तीनों देव वस्तुतः एक ही निर्गुण ब्रह्मके स्वरूप हैं।' इस प्रकार त्रेतामें ऐक्यका बोध स्वयं त्रिदेवोंसे प्राप्त करके अत्रि प्रसन्न हुए—'**एको देवस्त्रिधा स्मृतः॥**'

श्रीमद्भागवत (२। ७। ४)-में कहा है कि—

अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्टो
दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः।

सारांश यह है कि अत्रि एवं अनसूयाके तप और भक्तिसे प्रसन्न होकर त्रिदेवोंने अपनेको उनके पुत्ररूपमें दान कर दिया—'**अहं तुभ्यं मया दत्तः।**' दानवाचक शब्द 'दत्त' तथा 'अत्रि'के पुत्र होनेसे आत्रेय—ये दोनों शब्द मिलकर दत्त+आत्रेय ='दत्तात्रेय' नाम 'लीलावतार'का रखा गया। इस विषयमें 'श्रीदत्तकल्पद्रुम' ग्रन्थमें लिखा गया है—

अथ ब्रह्मा हरिः शम्भुरवतेरुः स्त्रियां ततः।
पुत्ररूपैः प्रसन्नास्ते नानालीलाप्रकाशकाः॥

अर्थात् इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु और महेशने प्रसन्न होकर [अत्रि-अनसूयाके] पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए, उनका चरित्र प्रसिद्ध ही है, उनमेंसे दत्तात्रेयका लीला-चरित्र तो अगाध एवं लोकोत्तर है।

'श्रीदत्तात्रेय-पूजाविधि' ग्रन्थमें कहा गया है—

लीलाविग्रहरूपायानसूयानन्दनाय च।
संसारश्रमनाशाय कर्मणार्घ्यं ददाम्यहम्॥

अर्थात्'हे दत्तात्रेय! आपने भक्तजनोंके कल्याण-हेतु लीलासे मूर्तस्वरूप धारण किया है। हे अनसूयादेवीके सुपुत्र दत्तात्रेय! आप भक्तजनोंके सांसारिक कष्टोंका नाश कर देते हैं। हे दयालु परमेश्वर! मैं इस पूजा-प्रसंगमें अर्घ्य समर्पण करता हूँ।'

शैवग्रन्थोंमें दत्तात्रेयको '**दिव्यसम्भूति**' एवं '**महेश्वरावतार**' कहा गया है। उन ग्रन्थोंमें कथित पूर्णावतार, विभवावतार, कलावतार, अंशांशावतार, आवेशावतार, अर्चावतार, हार्दावतार इत्यादिमें दत्तात्रेयको पूर्णावतार या षोडशकलावतार भी कहा गया है।

ब्रह्मपुराण (२१३। १०६—११२)-में उत्तम कथन है कि सर्वभूतोंके अन्तरात्मा, विश्वव्यापक भगवान् श्रीविष्णु विश्वकल्याण-हेतु पुनः अवतीर्ण हुए और दत्तात्रेय नामसे विख्यात हुए। श्रीमद्भागवतमें उनको ज्ञान-वैराग्यका अवतार

कहा गया है। 'दत्तात्रेय-उपनिषद्‌में उनको पिशाच-ज्ञान-सागर बताते हुए लीलावतार होनेका संकेत किया गया है। मत्स्यपुराणमें वर्णित भगवान् विष्णुकी बारह विभूतियोंमें लीला-विग्रह दत्तात्रेय समाविष्ट हैं।

दत्तात्रेयका लीलावतार रेवा-सागर-संगमके समीप सुवर्णशिला-तीर्थ (गुजरात प्रदेशमें भडौचके पास)-में होनेका स्कन्दपुराण (अवन्तीखण्ड, अध्याय १०)-में वर्णन है। इस स्थानको लोग 'अनसूया-क्षेत्र' कहते हैं। रेवा (नर्मदा) तटपर इस तीर्थ-क्षेत्रमें सत्ययुगके प्रारम्भमें स्वयम्भू मन्वन्तरके मार्गशीर्ष पूर्णिमा, सोमवारको संध्याकाल, शुभ मुहूर्तमें लीलावतार भगवान् श्रीदत्तात्रेयका आविर्भाव हुआ था। वे अयोनिज संतान थे। [क्रमशः]

श्रीजगन्नाथदेवका प्राकट्य-रहस्य

(व्रजके एक महात्मा)

श्रीमन्माध्वगौडेश्वराचार्यवर्य श्रीजीवगोस्वामिचरणके मतमें एक अद्वय ज्ञान-तत्त्व ही ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्-संज्ञामें संज्ञित हुआ है और भगवत्-तत्त्वने ही ब्रह्म एवं परमात्मा—इन दोनों तत्त्वोंको क्रोडीकृत कर रखा है। इस अति विशाल भगवत्ताको समझनेके लिये सम्पूर्ण अपारगता प्रयुक्त अल्पबुद्धि जीव विशेष चेष्टा करते हुए भी कुछ भी धारण नहीं कर सकता। इसीलिये महाकरुणापारावार श्रीभगवान् स्वकरुणावश होकर स्वयं जीव-समुदायके समक्ष लीलामनुज-विग्रह-धारणपूर्वक अवतीर्ण होते हैं। श्रीभगवान् जब-जब जैसी-जैसी लीला प्रकट करनेकी इच्छा करते हैं, तब-तब तदनुयायी देश-काल-पात्रावलेपनपूर्वक सांगोपांगास्त्र-पार्षद स्वयं अवतीर्ण होते हैं। सर्वशास्त्र-प्रसिद्ध है कि यद्यपि श्रीभगवान्‌के असंख्य अवतार हैं तथा प्रत्येक अवतार असमोर्ध्व रूप-गुण-माधुर्यसम्पन्न हैं, तथापि भगवान् श्रीकृष्ण-चन्द्रस्वरूपमें ही यह रूपगुणलीलामाधुरी महाप्रेमरसमाधुरी महाभावसारसम्पुट-सम्पुटित महामहारसराजत्व चरम अवधिको प्राप्त हुआ है। इसीसे तो श्रीमद्भागवत (१। ३। २८)-में **'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** कहा गया है। श्रीभगवदवतारके सम्बन्धमें कहा गया है कि यद्यपि श्रीभगवान् असंख्य-रूपमें अपनेको प्रकाशित करते हैं, तथापि उन रूपोंमें श्रीनामी, नाम एवं अर्चाविग्रहरूप ही प्रधान हैं। श्रीभगवान्‌की मङ्गलविहारभूमि भारतवर्षमें अनेक मङ्गल-स्थान श्रीअर्चाविग्रह-रूपी प्रभुके मङ्गलमय प्रकाशसे प्रकाशित हो रहे हैं। उन सबमें श्रीलीलापुरुषोत्तम-स्वरूप श्रीजगन्नाथदेव विशेष प्रसिद्ध हैं। निविड निगूढता एवं सुमहान् भावगाम्भीर्यप्रयुक्त अति चमत्कार रहस्यातिरहस्य श्रीजगन्नाथदेवके प्राकट्यकी कथा जनसाधारणको सुविदित नहीं है। अतएव सेवाकाम यह महापतित आज उसी सुमहान्, अति गोपनीय रहस्यको कल्याणकल्पद्रुमाश्रित 'कल्याण' पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करता है।

एक समय श्रीधाम—द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी रात्रिकालमें श्रीरुक्मिणी, सत्यभामा-प्रभृति प्रधान षोडश राजमहिषियोंके मध्यवर्ती शयन कर रहे थे। स्वप्नावस्थामें आप अकस्मात् 'हा राधे! हा राधे!' उच्चारण करते हुए क्रन्दन करने लगे। जब अन्य किसी प्रकार प्रभुका क्रन्दन नहीं रुका तो बाध्य होकर महारानी श्रीरुक्मिणीदेवीने अपने प्राणवल्लभको चरणसंवाहनपूर्वक जागृत किया। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र निद्राभंग होनेपर किंचित् लज्जित हुए और उन्होंने अति संतर्पणपूर्वक अपना भाव-गोपन कर लिया। महारानियोंके द्वारा इस प्रकारके विषादका कारण पूछे जानेपर श्रीकृष्णचन्द्र यह कहते हुए कि 'मुझे तो कुछ स्मरण नहीं' पुनः निद्रित हो गये। परंतु इसका रहस्य जाननेके लिये महारानियोंके हृदयमें अत्यन्त व्यग्रता उत्पन्न हुई। सब परस्पर कहने लगीं—'देखो, हम सब सोलह सहस्र महिषी हैं और कुल, शील, रूप एवं गुणमें कोई भी अन्य किसी रमणीसे न्यून नहीं है, तथापि हमारे प्राणवल्लभ किसी अन्य रमणीके लिये इतने व्याकुल हैं, यह तो बड़े ही विस्मयकी बात है। रात्रिमें स्वप्नावस्थामें भी जिस रमणीके लिये प्रभु इतने व्याकुल होते हैं, वह रमणी भी न मालूम कितनी रूप-गुणवती होगी।' इसपर श्रीरुक्मिणीदेवी

कहने लगीं—'हमने सुना है कि वृन्दावनमें राधानाम्नी एक गोपकुमारी है, उसके प्रति हमारे प्राणेश्वर अत्यन्त आकृष्ट हैं, इसीलिये रूपलावण्यवैदग्धपुंज नयनाभिराम श्रीप्राणनाथ हम सबके द्वारा परिसेवित होकर भी उस सर्वचित्ताकर्षक-चित्ताकर्षिणीके अलौकिक गुण-ग्राम भूल नहीं सके हैं।' श्रीसत्यभामादेवी कहने लगीं—'सब ठीक ही है, तो भी वह एक गोपकन्याके सिवा और कुछ तो नहीं, फिर उसके प्रति हमारे प्राणकान्त इतने आसक्त क्यों हैं? अस्तु! जो कुछ भी हो, हमारी सम्मतिमें तो इस सम्बन्धमें श्रीरोहिणीमातासे पूछनेपर ही इसका ठीक-ठीक पता लग सकेगा, क्योंकि उन्होंने स्वयं वृन्दावनमें वास किया है और उस समयकी सम्पूर्ण घटनाओंको वे भलीभाँति जानती हैं।' यह प्रस्ताव सबको रुचा। रात्रि बीती, प्रातःकाल हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र प्रातःकृत्य समापन करके राज-सभाको पधारे और यथासमय पुनः अन्तःपुर पधारकर स्नानादि-समाधानपूर्वक भोजन करने बैठे। राजभोग सम्मुख आकर उपस्थित हुए, उद्धवादि सखावृन्दसहित प्रभुने भोजन किया और आचमन करके किंचित् विश्रामपूर्वक पुनः राजसभाकी ओर प्रस्थान किया।

इस अवसरको पाकर महारानियोंने श्रीरोहिणीदेवीको पूर्वरात्रिकी घटना सुनाकर उनसे व्रज-वृत्तान्त पूछा। माताजी कहने लगीं—'प्यारी पुत्रियो! यद्यपि मैं व्रजलीलाकी सम्पूर्ण घटनाएँ जानती हूँ, किंतु माता होकर पुत्रकी गुप्त लीलाओंका रहस्य किस प्रकार कह सकती हूँ? यदि राम-कृष्ण यह कथा सुन लें तो फिर लज्जाकी सीमा न रहेगी।' इसपर महिषीगण कहने लगीं—'माताजी! जिस-किसी प्रकारसे भी हो सके, हमें व्रजलीलाकी कथा तो आपको अवश्य ही सुनानी होगी।' माताजीने कहा—'तब एक उपाय करो, सुभद्राको द्वारपर पहरेके लिये बैठा दो, कह दो, किसीको अंदर न आने दे, फिर मैं निःसंकोच तुम्हारे निकट व्रजलीलाका वर्णन करूँगी। माताजीने यह कहकर सुभद्राकी ओर देखा और कहा—'सुभद्रे! यदि राम-कृष्ण आवें तो उन्हें भी कदापि भीतर मत आने देना।' माताजीका आदेश पालन किया गया। सुभद्रा 'जो आज्ञा' कहकर द्वार-रक्षा करने लगीं। महिषी-वृन्द माताजीको चारों ओरसे घेरकर बैठ गयीं और माताजीने सुमधुर व्रजलीलाका वर्णन करना आरम्भ किया।

इधर राजसभामें राम-कृष्ण दोनों भाई चंचल हो उठे। जब किसी प्रकार भी राजसभामें नहीं ठहर सके तो उत्कण्ठित-चित्त होकर अन्तःपुरकी ओर चल पड़े। आकर देखते हैं कि सुभद्रादेवी द्वारपर खड़ी हैं। उन्होंने सुभद्रादेवीसे पूछा—'तुम आज यहाँ क्यों खड़ी हो? द्वार छोड़ दो, हम लोग भीतर जायँ।' श्रीमती सुभद्रादेवीने कहा—'रोहिणी माँने इस समय तुम्हारा अन्तःपुरमें प्रवेश करना निषेध कर रखा है, अतः तुम लोग भी भीतर नहीं जा सकोगे।'

यह सुनकर जब दोनों भाई आश्चर्यान्वित होकर इस निषेधका कारण ढूँढ़ने लगे तो माताजीकी वह रहस्यपूर्ण व्रजलीलात्मक वार्ता उन्हें सुनायी दी। वह वार्ता श्रीवृन्दावनचन्द्रकी परम कल्याणमय, परम पावन, अद्भुत, मङ्गलरासविहारात्मक थी। सुनते-सुनते दोनों भाइयोंके मङ्गल श्रीअङ्गमें अद्भुत प्रेमविकारके लक्षण दिखायी देने लगे। क्रमशः दोनों ही प्रेमानन्दमें विह्वल हो गये। अविश्रान्त प्रेमाश्रुकी मन्दाकिनी-धारा प्रवाहित होकर दोनोंके गण्डस्थल एवं वक्षःस्थलको प्लावित करने लगी। यह देखकर श्रीमती सुभद्रादेवी भी एक अनिर्वचनीय महाभावावस्थाको प्राप्त हो गयीं। जिस समय माताजी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजीकी अद्भुत प्रेम-वैचित्त्यावस्थाका वर्णन करने लगीं, उस समय श्रीबलरामजी किसी प्रकार भी धैर्य धारण न कर सके। उनके धैर्यका बाँध टूट गया, श्रीअङ्गमें इस प्रकार महाभावका प्रकाश हुआ कि उनके श्रीहस्त-पद संकुचित होने लगे और जब माताजी निभृत निगूढ-विलासका वर्णन करने लगीं तब तो श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भी यही अवस्था हुई। दोनों भाइयोंकी यह अद्भुत अवस्था देखकर श्रीमती सुभद्रादेवीकी भी यही दशा हो गयी। तीनों मङ्गलस्वरूप ही महाभावस्वरूपिणी स्वामिनी श्रीवृन्दावनेश्वरीजीके अवारपार महाभावसिन्धुमें निमज्जित होकर ऐसी स्वसंवेद्यावस्थाको प्राप्त हो गये कि वे लोगोंके देखनेमें निश्चल-स्थावर प्रतिमूर्ति-स्वरूप परिलक्षित होने लगे। निश्चल, निर्वाक्, स्पन्दरहित महाभावावस्था! अतिशय मनोऽभिनिवेशपूर्वक दर्शन करनेपर भी श्रीहस्तपदावयव किंचित् भी परिलक्षित नहीं हो सकते थे। आयुधराज श्रीसुदर्शनजीने भी विगलित होकर लम्बिताकार धारण कर लिया।

इसी समय स्वच्छन्दगति देवर्षि नारदजी भगवद्दर्शनके अभिप्रायसे श्रीधाम-द्वारकामें आ उपस्थित हुए। उन्होंने

राजसभामें जाकर सुना कि राम-कृष्ण दोनों भाई अन्तःपुर पधारे हैं। देवर्षिजीकी सर्वत्र अबाधगति तो है ही, अन्तः-पुरके द्वारपर जाकर उन्हें जो अद्भुत दर्शन हुए, उससे देवर्षिजी स्तम्भित हो गये। इस प्रकारका दर्शन उन्होंने पूर्वमें कभी नहीं किया था। निज प्राणनाथकी ऐसी अद्भुत अवस्थाके कारणका विचार करते हुए प्रेमविवश स्तम्भ-भावको प्राप्त होकर देवर्षिजी भी वहीं चुपचाप खड़े रह गये। कुछ ही क्षण पश्चात् जब माताजीने पुनः कोई एक रसान्तरका प्रसंग उठाया तब उन सबको पूर्ववत् स्वास्थ्य-लाभ हुआ। सिद्धान्ततः रसान्तरद्वारा रसापत्तिका विदूरित होना संगत ही है। इसी अवसरपर महाभावविस्मित देवर्षि नारदजीने बहुविध स्तुति करना आरम्भ कर दिया। करुणावरुणालय श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रने देवर्षिद्वारा स्तुत होकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'देवर्षे! आज बड़े ही आनन्दका अवसर है, कहिये मैं आपका क्या प्रीति-सम्पादन करूँ?' देवर्षिजीने कर जोड़कर प्रार्थना की—'हे प्रभो! इस समय यहाँ उपस्थित होकर आप सबका जो एक अदृष्टाश्रुतपूर्व महाभावावेश परिलक्षित हुआ है, स्वरूपतः वह क्या पदार्थ है और किस प्रकार उस महावस्थाका प्राकट्य हुआ? कृपया सविशेष उल्लेख करके दासको कृतार्थ कीजिये। सर्वप्रथम तो सेवामें यही एकान्त निवेदन है।'

भक्तवत्सल सर्वात्मा श्रीभगवान् अमन्दहास्यचन्द्रिका-परिशोभित सुन्दर श्रीवदनचन्द्रमासे देवर्षि नारदजीको आप्यायित करते हुए इस प्रकार वचनामृत-वर्षण करने लगे—'देवर्षे! प्रातः तथा मध्याह्न-कृत्यसमापनपूर्वक जिस समय हम दोनों भाई राजसभामें समासीन थे, उसी समय महिषीगणद्वारा पूछे जानेपर माता श्रीरोहिणीदेवीने महाचित्ताकर्षिणी अपारमाधुर्यमयी व्रजलीला-कथाकी अवतारणा की। महामाधुर्यशिखरिणी व्रजलीला-वार्ताका ऐसा प्रभाव है कि हम जहाँ और जिस अवस्थामें भी हों, हमें वहींसे और उसी अवस्थामें ही आकर्षण करके वह कथा-स्थलपर खींच लाता है। हम दोनों भाई ऐसे ही आकर्षित होकर यहाँ उपस्थित हुए और देखा कि सुभद्राजी द्वारपालिकारूपमें द्वारपर खड़ी हैं। उत्कण्ठावश अन्तः-प्रवेशकाम हम दोनों श्रीसुभद्राद्वारा रोके जानेपर प्रवेश-निषेधका कारण ढूँढ़ते रहे, उसी समय श्रीमाताजीके मुखारविन्दविगलित अत्यद्भुत व्रजलीलामाधुरीने कर्णपथगत होकर हमारे हृदय विगलित कर दिये। तत्पश्चात् जो अवस्था हुई उसका तो आपने प्रत्यक्ष दर्शन किया ही है। मेरी प्राणेश्वरी महाभावरूपिणी श्रीस्वामिनीजीके महाभावकर्तृक सम्पूर्ण भावसे ग्रसित होनेके कारण हम आपका पधारना भी नहीं जान सके।' इतना कहकर भगवान्ने जब देवर्षिजीसे पुनः वर-ग्रहणका अनुरोध किया तो देवर्षिजी प्रार्थना करने लगे—'भगवन्! मैं और किसी वरका प्रार्थी नहीं हूँ, निजजनोंके सर्वाभीष्टप्रदाता चरणयुगलमें केवल यही प्रार्थना है कि आप चारोंकी जो एक अत्यद्भुत महाभावावेश-मूर्तिका मैंने प्रत्यक्ष दर्शन किया है, वही भुवनमङ्गल चारों स्वरूप जनसाधारणके नयनगोचरीभूत होकर सर्वदा इस पृथिवीतलपर विराजमान रहें। मायासंनिपातमें ग्रस्त जीवसमूह एवं तद्दर्शन-विरहकातर भक्तजनके लिये यह महासंजीवनी-रसायन-स्वरूप चतुष्टय सर्वोत्कर्षतासहित जययुक्त होवें।' करुणायतन भक्तवाञ्छा-पूरणकारी श्रीभगवान्ने कहा—'देवर्षे! इस विषयमें मैं पूर्वसे ही अपने दो और परम भक्तोंके प्रति भी आपके प्रार्थनानुरूप ही वचनबद्ध हूँ—एक भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्न और द्वितीय परमभक्तिस्वरूपिणी श्रीविमलादेवी। निखिलप्राणि-कल्याणहित भक्तचूडामणि महाराज इन्द्रद्युम्नकी घोरतर तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं नीलाचलक्षेत्रमें दारुब्रह्मस्वरूपमें अवतीर्ण होकर जन-साधारणको दर्शन देनेका वर प्रदान कर चुका हूँ तथा महाविद्यास्वरूपिणी श्रीविमलादेवीद्वारा अनुष्ठित महातपस्यासे प्रसन्न होकर उनकी प्राणिमात्रको महाप्रसाद वितरण करनेकी प्रतिज्ञाको उक्त स्वरूपसे ही पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे चुका हूँ। अतएव इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये हम चारों इसी स्वरूपमें आगामी कलियुगमें लवणसमुद्रतटवर्ती नीलाचलक्षेत्रमें अवतीर्ण होकर प्रकाशमान रहेंगे।' सर्वजीव-कल्याणव्रत देवर्षि श्रीनारदजीने मनोवाञ्छित वर प्राप्त करके प्रभुचरणारविन्दमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और मधुर वीणासे करुणावारिधि श्रीप्रभुके अमृतमय नामगुणमाधुरीका गान करते-करते यदृच्छा गमन किया। श्रीराम-कृष्णने भी माताजीके कथंचित् संकोचकी आशंका करके उस स्थानसे प्रस्थान किया। ये ही श्रीजगन्नाथ, मूर्तिचतुष्टय—श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा एवं सुदर्शनरूपमें श्रीनीलाचलक्षेत्रको विभूषित करके अद्यापि विराजमान हैं।

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्

[पुरुषोत्तम प्रभु जगन्नाथकी लीला]

(श्रीगंगाधरजी गुरु, बी०ए०, एल्-एल्० बी०)

सनातन-धर्मके नित्य-लीलामय उत्कल प्रदेश अपनी विश्ववन्द्य पुरुषोत्तम-संस्कृतिके लिये प्रख्यात है। पार्वतीवल्लभ श्रीशंकर, गगनविलासी श्रीसूर्यनारायण और वैकुण्ठनिवासी श्रीविष्णु आदि भगवत्स्वरूप जगत्‌की रक्षाके लिये भुवनेश्वर, कोणार्क (अर्कक्षेत्र) तथा श्रीजगन्नाथपुरी (नीलाचल) इत्यादि स्थानोंमें आविर्भूत हुए हैं। उत्कलके परमाराध्य प्रभु श्रीजगन्नाथदेव हैं। जगन्नाथ अजन्मा और सर्वव्यापक होनेपर भी दारुब्रह्मके रूपमें अपनी अद्भुत लीला दर्शाते आ रहे हैं। संक्षेपमें भगवान् दारुब्रह्मकी दिव्यलीला ब्रह्मपुराणमें निम्न प्रकारसे वर्णित है—

सत्ययुगकी बात है। इन्द्रद्युम्न नामके इन्द्रसदृश पराक्रमी अर्थशास्त्रनिपुण ब्राह्मण-भक्त सत्यवादी सर्वसद्‌गुणसम्पन्न एक राजा थे। मालवा देशकी अवन्तीनगरी उनकी राजधानी थी। वे प्रजाओंका पुत्रवत् पालन करते थे। एक बार उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं किस प्रकार भोग-मोक्षदाता योगेश्वर श्रीहरिकी आराधना करूँ?

राजा सैन्य-सामन्त-पुरोहितादिके सहित दक्षिण समुद्रके तटपर पहुँचे। उस अनन्त तरङ्गाकुलरमणीय समुद्रका दर्शनकर राजा विस्मयाभिभूत हो गये और वहीं समुद्र-तटपर एक मनोहर दिव्य पवित्र स्थानमें उन्होंने निवास किया। त्रिभुवन-विख्यात पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें महाराज इन्द्रद्युम्नने विविध रमणीय स्थानोंके दर्शन किये। भगवान्‌के उस मानसतीर्थ पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें इन्द्रनीलमणिसे निर्मित प्रतिमा विराजित है, जिसे स्वयं भगवान्‌ने छिपा दिया है। राजाने दृढ संकल्प किया कि मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सत्यपराक्रमी जगदीश्वर विष्णु मुझे साक्षात् दर्शन देंगे। अनन्यभावसे भगवत्पादारविन्दोंमें सर्वस्व-समर्पणपूर्वक यज्ञ, दान, तपस्या, पूजा और उपवासादि करनेके लिये एवं दिव्य भगवन्मन्दिर-निर्माण करनेके लिये दृढसंकल्प होकर राजा अपने कर्तव्यमें लग गये। मन्दिर-निर्माण-कार्य समारम्भ हुआ। अश्वमेधयज्ञ तथा दान-पुण्य आदि कर्म कर लिये गये। पुरुषोत्तम-प्रासाद-निर्माण-कार्य विधिपूर्वक सम्पन्न हुआ। राजाको अब अहर्निश भगवत्प्रतिमाके लिये चिन्ता सताने लगी। वे सोचने लगे—'सृष्टि-स्थिति-लयकारी लोकपावन भगवान् पुरुषोत्तमका मैं कैसे दर्शन कर सकूँगा? कैसे विष्णुप्रतिमाका निर्माण किया जा सकेगा?' पाञ्चरात्रकी विधिसे राजाने पुरुषोत्तम-पूजन करके भावमयी प्रार्थनाएँ कीं (ब्रह्मपु० ४९। १—५५)।

स्तुति-प्रार्थनाके बाद राजाने सर्वकामप्रद सनातन पुरुष भगवान् जगन्नाथ वासुदेवको प्रणाम किया एवं चिन्तानिमग्न हो धरतीपर कुश और वस्त्र बिछाकर सो गये। देवाधिदेव भगवान्‌ने राजाको स्वप्नमें अपने शंख-चक्र-गदा-पद्मस्वरूपका दर्शन कराया एवं कहा—'राजन्! तुम धन्य हो, तुम्हारे दिव्य यज्ञ, भक्ति और श्रद्धासे मैं संतुष्ट हूँ। तुम चिन्ता मत करो। यहाँ जो जगत्पूज्य सनातनी प्रतिमा है, उसकी प्राप्तिका उपाय मैं बतलाता हूँ। आजकी रात बीतनेपर सूर्योदयके समय समुद्रतटपर जाना। वहाँ समुद्र-प्रान्तमें एक विशाल वृक्ष सुशोभित है, जिसका कुछ अंश तो जलमें और कुछ अंश स्थलपर है। समुद्रकी लहरोंसे आहत होनेपर भी वह वृक्ष कम्पित नहीं होता। तुम हाथमें तीक्ष्ण अस्त्र लेकर अकेले ही वहाँ जाना और उस वृक्षको काट डालना। वहींसे अद्भुत वस्तु दिखायी देगी। उससे विचार-विमर्शकर दिव्य प्रतिमाका निर्माण करना। अब मोहप्रद चिन्ता त्याग दो। तत्पश्चात् श्रीहरि अदृश्य हो गये। राजा विस्मित हुए। प्रातः उठकर वे समुद्रतटपर पहुँचे एवं स्वप्नानुसार तेजस्वी वृक्षराजको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उस वृक्षको काट गिराया और दो टुकड़े करनेका विचार किया। सहसा दो ब्राह्मणोंने आकर पूछा—'आपने किसलिये वनस्पतिको काट गिराया है?' राजाने कहा—'आद्यन्तहीन विष्णुकी आराधनाके लिये मैं प्रतिमा-निर्माण करना चाहता हूँ। एतदर्थ भगवान्‌ने मुझे स्वप्नमें प्रेरित किया है।' यह सुनकर विप्ररूपधारी भगवान् जगन्नाथने हर्षपूर्वक कहा—'राजन्! आपका विचार अत्युत्तम है। मेरे ये साथी श्रेष्ठ शिल्पी हैं। ये मेरे निर्देशानुसार प्रतिमा-निर्माण करेंगे।' तब विप्र विश्वकर्माने भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रतिमाओंका निर्माण कर दिया। जिनमें पहली मूर्ति श्रीबलभद्रजीकी, दूसरी श्रीजगन्नाथजीकी एवं तीसरी श्रीसुभद्राजीकी थी। यह

देखकर इन्द्रद्युम्नने साश्चर्य पूछा—'गुप्तरूपसे आप कौन हैं?' तब भगवान्ने कहा—'मैं देवता, यक्ष, दैत्य, इन्द्र, रुद्र, ब्रह्मा आदि कोई भी नहीं हूँ। मुझे पुरुषोत्तम समझो। सर्वपीडाहारी, अनन्त बलशाली मैं सभीका आराध्य हूँ। वेदादि धर्मशास्त्रोंमें जिसका उल्लेख हुआ है, वही मैं हूँ। संसारमें जो कुछ वाणीद्वारा वर्णनीय है, वह मेरा ही स्वरूप है। इस चराचर विश्वमें मेरे सिवा कुछ भी नहीं है।' भगवान्की वाणी सुनकर राजाके शरीरमें रोमांच हो आया। वे स्तुतिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले—'जो निर्गुण-निर्मल एवं शान्त परमपद ध्येय है, उसे मैं आपके प्रसादसे पाना चाहता हूँ।' तब भगवान् राजाको वर देते हुए अन्तर्धान हो गये। भगवद्दर्शनसे कृतकृत्य हो बुद्धिमान् नरेशने श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलभद्रजी एवं वरदात्री श्रीसुभद्राजीको मणिकाञ्चनजटित विमानाकार रथमें बिठाकर मन्त्रियोंसहित बड़ी धूमधामसे पुण्यस्थानमें प्रवेश कराया। यथासमय शुभमुहूर्तमें प्रतिष्ठा करायी। राजाने सर्वोत्तम प्रासादमें वेदोक्त-विधिसे प्रतिष्ठितकर सब विग्रहोंको स्थापित किया एवं नियमित प्रभु- पूजनद्वारा सर्वस्वत्यागी होकर अन्तमें परमपदको प्राप्त किया।

स्कन्दपुराणमें भी जगन्नाथजीकी लीला प्रकारान्तरसे वर्णित है। इसके अनुसार राजा इन्द्रद्युम्नने एक दिन अपने पुरोहितसे कहा—'आप उस उत्तम क्षेत्रका अनुसंधान करें, जहाँ हमें साक्षात् भगवान् जगन्नाथके दर्शन मिलें।' तब पुरोहितके भाई विद्यापतिको एक तीर्थयात्रीके मुखसे पुरुषोत्तम क्षेत्रका-माहात्म्य सुनकर जगन्नाथ-दर्शनपूर्वक निवासस्थलका निर्णय करके लौट आनेके लिये भेजा गया। गोविन्द-चिन्तनपूर्वक विद्यापति एक आम्रकाननमें पहुँचे। आकाशचुम्बी नीलाचलशिखर देखकर साक्षात् विग्रहवान् भगवान् विष्णुके वासस्थान खोजते हुए वे नीलाचलकी उपत्यकामें जा पहुँचे। वहाँसे आगे बढ़नेको मार्ग नहीं मिला। तब भूमिपर कुशा बिछाकर वे मौन-भावसे भगवत्-शरणाश्रित हुए। फिर भक्तोंकी लोकोत्तर वाणी सुनकर उसीका अनुसरण करते अग्रसर हुए एवं शबरदीपक नामक आश्रमपर जा पहुँचे। वहाँ विश्वावसु नामक एक शबर विष्णुका पूजन करनेके बाद आया। विद्यापति सोचने लगे—'इन श्रेष्ठ वैष्णवसे दुर्लभ समाचार प्राप्त होगा।' तब विश्वावसुने पूछा—'ब्रह्मन्! आप कहाँसे पधारे हैं? यह वनका मार्ग दुस्तर है। आप बहुत क्लान्त-श्रान्त हो गये होंगे। यहाँ विश्राम कीजिये।' ऐसा कहते हुए शबरने पाद्य, आसनार्घ्य देकर फिर पूछा—'आप फलाहार करेंगे या तैयार की हुई भोजन-सामग्री? आज मेरा जीवन सफल हुआ, क्योंकि दूसरे विष्णुकी भाँति आप मेरे घर पधारे हैं।' विद्यापतिने कहा—'मैं जिस उद्देश्यसे आया हूँ, उसे सफल करो। भोजनकी चिन्ता न करो। अवन्तिराज इन्द्रद्युम्नके आज्ञानुसार मैं भगवद्दर्शनार्थ यहाँ आया हूँ। नीलमाधव श्रीहरिका दर्शनकर उक्त समाचार जबतक राजाको नहीं दिया जायगा, तबतक वे निराहार रहेंगे। अत: मुझे शीघ्र ही प्रभुसे मिला दो।' इसके बाद दोनों गहन वनमें पहुँचे। वहाँ पहुँचकर विद्यापति भगवद्दर्शनसे कृतार्थ हुए। पुन: शबर उन्हें आश्रममें वापस लाया और उनका सविधि सत्कार किया। उसने जो अलौकिक वस्तुएँ अर्पित कीं, उन्हें देखकर विद्यापतिने विस्मित होकर कहा—'तुम्हारे घरमें ऐसी दिव्य वस्तुओंका संग्रह आश्चर्यका विषय है।' शबरने कहा—'इन्द्रादि देव नित्य ही जगन्नाथजीकी पूजा करनेके लिये आते हैं। ये सब पदार्थ भगवान्के प्रसादरूप हैं।' तत्पश्चात् ब्राह्मण विद्यापतिने कहा—'यदि मुझपर तुम्हारी कृपा हो तो मुझे हमेशा-हमेशाके लिये अपना बन्धु बना लो। तुम्हारे साथ मैत्री-स्थापन करनेका मेरा दृढ निश्चय है। मेरे लौट जानेपर राजा इन्द्रद्युम्न यहाँ आयेंगे एवं विशाल मन्दिरका निर्माण करके सहस्रोपचारोंसे जगन्नाथजीकी पूजा करेंगे।' यह सुनकर शबरने कहा—'ये सब बातें तो ठीक ही हैं; किंतु राजा यहाँ नीलमाधवका दर्शन नहीं कर सकेंगे, क्योंकि भगवान् स्वर्णमयी बालुकामें अदृश्य हो जायँगे। आप सौभाग्यशाली होनेसे भगवान्का दर्शन पा सके हैं। हाँ, जब राजा यहाँ आकर भगवान्को न देख सकनेके कारण प्राण-त्याग तकको तैयार हो जायँगे तब भगवान् गदाधर स्वप्नमें उन्हें अवश्य दर्शन देंगे। उस समय राजा उन्हींके आदेशानुसार भगवान्की काष्ठमयी चतुर्मूर्तियोंको ब्रह्माजीके द्वारा स्थापित कराकर पूजा करेंगे।' शबरसे इतना सब जाननेके बाद पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी परिक्रमाकर विद्यापति अवन्ती चले आये और उन सभी बातोंको राजासे निवेदित कर दिये।

सब बातें जानकर यथासमय राजा श्रीक्षेत्र पहुँचे तथा वहाँ उन्होंने सहस्र अश्वमेध-यज्ञानुष्ठान किया। देवर्षि नारद

भी राजाके साथ आये हुए थे। वे बोले—'राजन्! पूर्णाहुतिके बाद यज्ञ सफल होगा। तुम्हारे भाग्योदयका समय निकट आ गया है—भगवान्‌के शरीरका रोम गिरते ही वह वृक्षभावको प्राप्त हो जायगा। इस पृथ्वीपर स्थावररूपमें वह भगवान्‌का अंशावतार होगा। भक्तवत्सल प्रभु अभी उसी रूपमें अवतीर्ण होंगे। यज्ञान्त-स्नान समाप्त करके वृक्षरूपमें प्रकटित यज्ञेश विष्णुको तुम इस महावेदीपर स्थापित करो।' इसके बाद दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये। वृक्षको देखकर राजाने अपने परिश्रमको सफल माना और नीलमणि माधवके विरहजन्य संतापका परिहार करके बार-बार उस वृक्षको प्रणाम किया एवं आनन्दाश्रु-पूर्ण लोचनोंसे राजाने ब्राह्मणोंके द्वारा उस वृक्षको मँगवाया। ब्राह्मण लोग माला और चन्दनसे विभूषित विष्णुके दिव्य वृक्षको महावेदीपर ले आये। नारदजीके कथनानुसार उक्त वृक्षका पूजन करके राजाने प्रश्न किया—'मुनिवर! भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ कैसे बनेंगी और उनका निर्माण कौन करेगा? नारदजीने कहा—'भगवान्‌की लीला अलौकिक है, उसे कौन जान सकता है? इसी समय आकाशवाणी सुनायी दी—'अत्यन्त गुप्तसे रखी हुई महावेदीपर भगवान् विष्णु स्वयं अवतीर्ण होंगे। पंद्रह दिनोंतक उक्त स्थानको आवृत रखा जाय। हाथमें हथियार लेकर जो वृद्ध शिल्पी उपस्थित है, उसको भीतर प्रवेश कराकर यत्नसे दरवाजा बंद करना चाहिये। मूर्ति-रचनातक बाहर वाद्य बजते रहें, अंदर जानेकी चेष्टा कोई भी न करे, कारण कि शिल्पकारके अतिरिक्त अन्य कोई देखेगा तो वह दोनों नेत्रोंसे अन्धा हो जायगा। तत्पश्चात् आकाशवाणीके अनुसार राजाने समस्त व्यवस्था की। पंद्रहवाँ दिन आते ही भगवान् चार विग्रहों—बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शनचक्रके साथ स्वयं प्रकट हुए। तबसे विधिपूर्वक उनकी पूजा चली आ रही है। उत्कलमें दारुब्रह्मकी पूजा वैदिक युगसे अबतक होती आ रही है।

चतुर्धामोंमें अन्यतम श्रीजगदीशपुरीधाम ही है। सत्ययुगका धाम बदरीनाथ, त्रेताका रामेश्वर एवं द्वापरका धाम द्वारका है और कलियुगका पवित्र धाम श्रीजगन्नाथपुरी है। सर्वप्रथम नीलाचल-संज्ञक पर्वत इस स्थानपर था तथा सर्वदेवाराधनीय भगवान् नीलमाधवजीका श्रीविग्रह उक्त पर्वतपर था, कालक्रमसे वह पर्वत पातालमें चला गया। देवतागण भगवद्विग्रहको स्वर्गलोकमें ले गये। इस क्षेत्रको उन्हींकी पावन स्मृतिमें आज भी सश्रद्ध नीलाचल कहा जाता है। श्रीमन्दिर-शिखरपर लगे चक्र 'नीलच्छत्र' के दर्शन जहाँतक होते रहते हैं, वह सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रीजगदीशपुरी है। 'सिद्धान्तदर्पण'-में उनकी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

योऽसौ सर्वत्र पूर्णोऽप्यसितगिरिदरीकेशरी योऽप्यरूपः
पद्मप्रद्युम्नरूपोऽप्यणुरतनुतनूसम्भृताशेषलोकः ।
निस्त्रैगुण्योऽप्यगण्यामलगुणनिलयो वाङ्मनोऽतीतधामा
मादृक्चर्माक्षिलक्ष्यः स्फुरतु मनसि नः चित्रसिन्धुर्मुकुन्दः॥

(सि०द० २३। ४३)

'जो सर्वत्र परिपूर्ण होते हुए भी नीलगिरि-दरी-केशरीरूपमें स्थित हैं, अरूप होते हुए भी जो पद्मप्रद्युम्नस्वरूप हैं, अणु होनेपर भी विशाल विश्वरूपमें निःशेष लोकोंको धारणकर उनका पोषण करते हैं, गुणातीत होनेपर भी अगणनीय सद्‌गुणाकर हैं तथा जो अवाङ्मनसगोचर हैं, वे आश्चर्यसिन्धु मुकुन्द मादृक्चर्मचक्षुका भी लक्ष्य होकर हमारे मनमें स्फुरित हों।'

अत्यन्त प्राचीन कालसे अबतक दार्शनिक कवि और भक्त लेखक-वृन्द जगन्नाथकी अवर्ण्य-लीलाएँ अपने दृष्टिकोणसे वर्णन कर चुके हैं, किंतु उनकी लीलाओंका अन्त प्राप्त न कर सके। वे अवाङ्मनसगोचर, अनन्यसाधारण रहस्यशाली हैं और उनकी माया भी दुरत्यया है। निःसंदेह तदीय जगत्पावन परमोदार साम्य-मैत्री-धर्म महनीय तथा पूज्य है।

जगन्नाथ-क्षेत्रमें जगन्मैत्रीकी श्रेष्ठ भावना संनिहित है। उसका प्रमाण श्रीजगदीश-रथयात्रा है। जगन्नाथकी लीला विश्वब्रह्माण्डका सच्चा मङ्गल-विस्तार करे, यह प्रार्थना-पूर्वक मैं श्रीजगन्नाथ-दर्शन करता हुआ कल्याणकारी 'कल्याण' की शुभाशंसा कर रहा हूँ—

स्वलीलया जगत्त्रातुमाविर्भूतमजं विभुम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं किं मे मृत्युः करिष्यति॥
मैत्रीशतदलानन्दः साम्यधर्मार्क ईश्वरः।
सनातनो जगन्नाथो धर्मो रक्षतु साम्प्रतम्॥
'कल्याणस्य' जयो भूयाच्छिवदस्य जगद्गुरोः।
भगवदीयलीलाङ्को भूयात् सद्धर्मवर्धकः॥

[अनुवादक—श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु]

पुष्टि-पुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी एवं उनके विविध लीला-आख्यान

(श्रीप्रभुदासजी वैरागी, एम्० ए०, बी० एड्०, साहित्यालंकार)

प्रभु श्रीगोवर्धनधरण श्रीनाथजीका गिरि-गोवर्धनपर प्राकट्य ही जीवोद्धार-हेतु हुआ है। जीवके कल्याणार्थ आप गिरिराज गोवर्धनपर प्रकट होते ही नाना प्रकारकी लीलाएँ करने लगे। सारा व्रजमण्डल यह मानने लगा कि स्वयं गिरिराज गोवर्धन ही कन्हैयाजीके रूपमें हम व्रजभक्तोंकी रक्षा-हेतु इस गिरि-कन्दरासे प्रकट हुए हैं और भाँति-भाँतिकी लीलाएँ कर रहे हैं।

इधर भारतवर्षके पूर्वाञ्चलपर दक्षिण-यात्राके लिये निकले आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीको इन प्रभुने आज्ञा दी कि तुम अपनी यात्रा यहीं रोककर सर्वप्रथम गिरि-गोवर्धनपर आकर मुझसे मिलो। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी इस भगवदाज्ञाको सुनकर आश्चर्यचकित हो गये और अपनी यात्रा स्थगित करके तत्काल उन्होंने अपने भक्तों तथा अन्य व्रजवासियोंके साथ गिरि-गोवर्धनकी ओर प्रस्थान किया। महाप्रभु कुछ ही ऊपर चढ़े होंगे कि तत्क्षण सबके देखते-देखते प्रभु श्रीनाथजी अपनी गिरि-कन्दरासे बाहर आ गये और श्रीमद्वल्लभाचार्यजीसे गले मिलकर भेंटने लगे। उस समय समग्र व्रजवासी प्रभु और महाप्रभुके इस अद्भुत मिलनकी प्रशंसा करते हुए जय-जयकार करने लगे। आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजीने व्रजभक्तोंको बतलाया कि गर्गसंहितान्तर्गत ऋषि गर्गाचार्यकी भविष्यवाणीके अनुसार स्वयं सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्णका ही यह प्राकट्य हुआ है और कलियुगमें आप श्रीनाथजीके नामसे पुकारे जाते हुए सदा वन्दनीय रहेंगे—

श्रीनाथं देवदमनं तं वदिष्यन्ति सज्जनाः।
गोवर्धनगिरौ राजन् सदा लीलां करोति यः॥

(गर्गसंहिता ७। ३०-३१)

आचार्यचरण श्रीमद्वल्लभाचार्यजी गिरिराज गोवर्धनपर रहकर प्रभु श्रीनाथजीकी सेवाएँ करने लगे। एक दिन प्रभु श्रीनाथजीने श्रीमहाप्रभुजीको दुग्ध-पान-हेतु एक गाय खरीदनेकी आज्ञा दी। भगवदाज्ञा शिरोधार्यकर श्रीमहाप्रभुजीने एक गाय खरीदी। इसके बाद आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजीने गिरि-गोवर्धनपर अपने एक भक्तसे कहकर प्रभु श्रीनाथजीके लिये एक मन्दिर भी बनवा दिया। धूमधामसे प्रभु श्रीनाथजी उसमें विराजे, अब तो श्रीनाथजीकी लीलाएँ और बढ़ गयीं। अनेक प्रकारके शृंगार, विविध व्यंजन तथा सुमधुर गान आदि होने लगा। आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी पुष्टि-सम्प्रदायके प्रधान आचार्य थे, अतः अपने समयके चार गायक भक्त कवियोंको 'ब्रह्मसम्बन्ध' की दीक्षा देकर प्रभुकी कीर्तनमयी सेवाओंमें नियुक्त किया। धीरे-धीरे प्रभु श्रीनाथजीकी लीलाएँ इन गायक भक्त कवियोंके संग भी होने लगीं।

प्रभु श्रीनाथजीकी सब सेवा-व्यवस्थाएँ व्यवस्थित हो जानेके बाद श्रीमद्वल्लभाचार्यजी भारत-परिक्रमापर निकले। उस समय प्रभु श्रीनाथजीके मुखियाको बुलाकर उन्होंने कहा कि 'भक्त सूरदास वैसे तो जन्मान्ध हैं, परंतु यहाँ प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामें कीर्तन करते समय इन्हें प्रभुजीके साक्षात् दर्शन होते हैं, अतः तुम कभी इनकी परीक्षा मत लेना।' इतना निर्देश देनेके बाद वे तो यात्रार्थ प्रस्थान कर गये, परंतु मुखियाके मनमें संदेह उत्पन्न हो गया। उसने मनमें सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है? कैसे सूरदासजीको प्रभु श्रीनाथजीके शृंगारके साङ्गोपाङ्ग दर्शन हो सकते हैं? अतः एक दिन सूरदासकी परीक्षाके लिये उष्णकालमें मोतीका आड़बंद, श्रीमस्तकपर कुल्हे, हल्की-फुल्की मोतियोंकी माला प्रभु श्रीनाथजीको पहनायीं तथा सूरदासजीकी सेवामें आनेपर झूठ-मूठ ही भारी शृंगार होनेकी बात कही। भक्त सूरदासजीने अपना तानपूरा उठाया और उस दिन जो शृंगार नन्दनन्दन प्रभु श्रीनाथजीने अङ्गीकार किया, उसका वर्णन अपने एक पदमें गा सुनाया—

देखे री हरि नंगमनंगा।
जल-सुत भूषन अंग बिराजत, बसनहीन छबि उठत तरंगा॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधि-सुत मुख ले मन भरि 'सूर' हँसत ब्रज जुवतिन संगा॥

मुखिया इस पदको सुनकर दंग रह गये। भक्त सूरदासजीको प्रभु श्रीनाथजीके नख-शिख-शृंगारके साक्षात् दर्शन होते हैं, यह पूर्ण विश्वास हो गया। अब वे आचार्यचरण श्रीमहाप्रभुजी भारत-यात्रा करके जब गिरि गोवर्धन पधारे, तब उनसे अपने कियेकी क्षमा माँगी। आज

भी उष्णकालमें गायक भक्त कवि सूरदासजीके इस प्रसंगके संस्मरणार्थ प्रभु श्रीनाथजीको उक्त शृंगार धारण कराते हैं। अधिकांश साहित्याभिरुचि रखनेवाले यह भलीभाँति जानते हैं कि सूरसागरमें अनेक पद जो सूरदासजीने प्रारम्भ किये थे, बादमें श्रीकृष्णस्वरूप प्रभु श्रीनाथजीने उन्हें पूरे किये। उनपर 'सूरस्याम' की छाप लगी हुई है। यह भक्त-भक्ति एवं भगवान्‌की अनुपम लीलाका श्रेष्ठ निदर्शन है।

एक थे भक्त श्रीकुंभनदास। उन्हें अपने प्रथम दर्शनमें ही प्रभु श्रीनाथजीने विमोहित कर लिया था। श्रीकुंभनदासने ब्रह्मसम्बन्धकी दीक्षा लेकर श्रीमहाप्रभुजीकी शिष्यता स्वीकार कर ली। आचार्यचरणने इनके संगीतपर रीझकर इन्हें प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें नियुक्त किया। अब तो श्रीकुंभनदास प्रभु श्रीनाथजीकी युगल-लीलामें छके रहने लगे। तत्पश्चात् श्रीमहाप्रभुजीने इन्हें आशीर्वाद दिया— 'कुंभनदासको निकुंज-लीला-सम्बन्धी रसका अनुभव हुआ है। वे बड़भागी हैं आगे अब वे सदा ही हरिरसमें ही मगन रहेंगे—'

रूप देखि नैननि पलक लागे नहीं।
गोवर्द्धन-धर अंग-अंग प्रति जहाँ ही परति दृष्टि रहति तहीं-तहीं॥
कहा कहों कछु कहत न आयो, चोर्‌यौ मन मांगि वे दही।
'कुंभनदास' प्रभु के मिलवे की, सुन्दर बात सकल सखीनु सों कही॥

इसी प्रकार प्रयागमें त्रिवेणी-संगमके पावन तटपर भजन करते हुए गायक भक्त कवि श्रीपरमानन्ददासजीने देखा कि श्रीमहाप्रभुजीके अनन्य सेवक कपूरजलघरियाकी गोदमें नन्दराजकुमार प्रभु श्रीनाथजी बालक बनकर बैठे हुए हैं और तल्लीनतासे प्रभु उसका भजन सुन रहे हैं—इस अनोखी लीलाको देखकर वे आनन्दविभोर हो गये। प्रभु श्रीनाथजीकी इस एक ही लीलाने श्रीपरमानन्ददासको श्रीमहाप्रभुजीका शिष्य बनाकर प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तनसेवामें प्रवेश दिला दिया। इस व्रजभक्त गायक कविने व्रजराज प्रभु श्रीनाथजीके व्रजमण्डलकी कैसी महिमा गायी है—

कहा करों वैकुंठहि जाइ।
जहाँ नहिं नंद जसोदा गोपी जहाँ नहिं बच्छ ग्वाल और गाँइ॥
जहाँ नहिं निर्मल जल जमुना कौ जहाँ नहिं वृच्छ कदम की छाँइ।
'परमानंद' प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रज-रज तजि मेरी जाइ बलाइ॥

इसी भाँति आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके चौरासी शिष्योंको भी प्रभु श्रीनाथजीकी अनेक लीलाओंके दर्शन हुए।

प्रातःस्मरणीय आचार्यचरण महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजीके यशस्वी सुवन स्वनामधन्य गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजीके समय प्रभु श्रीनाथजीकी लीलाओंमें और भी वृद्धि हुई। इन्होंने अपने समयके चार और गायक भक्त कवियोंको प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तन-सेवामें रखकर 'अष्टछाप'की स्थापना की। श्रीगोविन्दस्वामी उस समयके अच्छे भक्त-कवि-संगीतज्ञ थे। उनकी संगीतप्रियतापर पसीजकर गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजीने उन्हें प्रभु श्रीनाथजीकी कीर्तनसेवामें स्थान दिया। धीरे-धीरे प्रभु श्रीनाथजीसे उनका तादात्म्य-सम्बन्ध हो गया। श्रीगुसाँईजी महाराजकी भी श्रीगोविन्दस्वामीपर असीम कृपा थी। प्रभु श्रीनाथजीके साथ श्रीगोविन्दस्वामीका हास्य-विनोद चलता रहता था। कभी किसी कारणवश यदि श्रीगोविन्दस्वामी सेवामें नहीं आते तो प्रभु श्रीनाथजी अवकाश पाकर उनकी कुटीपर पहुँच जाते थे। प्रभु श्रीनाथजीकी सख्यभावकी क्रीडाएँ उनके साथ चलती रहती थीं। एक बार श्रीगुसाँईजी प्रभु श्रीनाथजीका शृंगार कर रहे थे, बाहरकी ओर श्रीगोविन्दस्वामी कीर्तन करने बैठ गये। जब श्रीगुसाँईजी शृंगारकी सामग्री लाने-हेतु इधर-उधर होते, तब प्रभु श्रीनाथजी एक कंकड़ श्रीगोविन्दस्वामीपर फेंक देते, परंतु श्रीगोविन्दस्वामी प्रभु श्रीनाथजीके इस करतूतको अनदेखी कर देते। देखते-देखते प्रभु श्रीनाथजीने सात कंकड़ श्रीगोविन्दस्वामीपर फेंके। तब थोड़ेसे आक्रोशमें आकर श्रीगोविन्दस्वामीने एक बड़ा कंकड़ प्रभु श्रीनाथजीपर दे मारा। कंकड़की तीव्र चोटसे प्रभु श्रीनाथजी विचलित हो उठे और श्रीगुसाँईजीका अङ्गीकार कराया सारा-का-सारा बहुमूल्य शृंगार धड़ामसे नीचे आ गिरा। श्रीगुसाँईजी महाराजको श्रीगोविन्दस्वामीकी धृष्टतापर बड़ा क्रोध आया, परंतु प्रभु श्रीनाथजीने अपनी ही उच्छृंखलता बतलाकर श्रीगुसाँईजीके क्रोधको ठंडा कर दिया। अपने प्रिय सखा श्रीगोविन्दस्वामीकी इस स्नेह-लीलाको जीवन्त रखनेके लिये आज भी प्रभु श्रीनाथजी नित्य ग्वालके समय मिश्रीकी बनी सात कंकरिया आरोगते हैं।

एक बार प्रभु श्रीनाथजी श्रीगोविन्दस्वामीके घर पहुँच

गये और वहाँ वृक्षकी टहनीपर बैठकर वंशी बजाने लगे। इसी बीच मन्दिरमें उत्थापन-दर्शनका समय समीप आ गया तो प्रभु वृक्षके ऊपरसे ही कूदे। ऊटपटाँग कूदनेपर प्रभुका वस्त्र वृक्षकी टहनीमें उलझकर फट गया। उत्थापनमें श्रीगुसाँईजीने प्रभुका फटा वस्त्र देखकर श्रीगोविन्दस्वामीसे इसका कारण पूछा। इसपर श्रीगोविन्दस्वामीने श्रीगुसाँईजीको उस वृक्षकी टहनीमें फँसे वस्त्रके अंशको बतलाया जो प्रभुके कूदते समय फटकर वहाँ फँस गया था। श्रीगुसाँईजीको ठाकुरजीकी इस लीलापर बड़ा आश्चर्य हुआ तथा सखा श्रीगोविन्दस्वामी और नन्दनन्दन गोविन्दके मैत्री-भावपर बड़ी प्रसन्नता भी हुई।

गायक भक्त कवि श्रीचत्रभुजदास गिरि-गोवर्धन छोड़कर कहीं नहीं जाते थे। एक बार श्रीगुसाँईजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीगिरिधरजीने प्रभु श्रीनाथजीको मथुरा ले जाकर सतघरामें पधराये। उधर गिरि-गोवर्धनपर प्रभु श्रीनाथजीको नहीं देखकर श्रीचत्रभुजदास प्रभुके विरहमें व्याकुल हो गये और गाने लगे—

श्रीगोवर्धनवासी साँवरेलाल, तुम बिन रह्यो न जाय हो।

उधर मथुरा सतघरामें प्रभु श्रीनाथजी भक्तकी मनोव्यथा समझकर आकुल हो उठे और उन्होंने उन्हें तुरंत गोवर्धन पधरानेकी आज्ञा दी। प्रभु-आज्ञानुसार श्रीनाथजीको पुन: गिरि-गोवर्धन पधराया गया। इस कारण राजभोगमें विलम्ब हो गया, अत: गिरि-गोवर्धन आकर राजभोग और शयन-भोग दोनों साथ ही आरोगे। प्रभुकी लीला बड़ी विचित्र है, आज भी प्रभु श्रीनाथजी नृसिंह-चतुर्दशीको शयनभोगके साथ राजभोग आरोगकर उस भक्तगाथाको अमर किये हुए हैं। इन अष्ट-सखाओंने लीलाविहारी प्रभु श्रीनाथजीकी गोवर्धनलीला, दानलीला, मानलीला, श्यामसगाई और प्रभासरास आदि कई लीलाओंपर अपने काव्य-ग्रन्थोंका सृजन किया है।

एक दिन लीलापुरुषोत्तम प्रभु श्रीनाथजी वि० सं० १७२८ में व्रजभूमि और गिरि-गोवर्धन छोड़कर मेवाड़ पधारे। मेवाड़में जिस निरापद स्थानपर आप विराजे, वहाँ एक सुन्दर नगर बन गया। श्रीनाथजीके नामपर उसका भी नाम श्रीनाथद्वारा पड़ा। ऋद्धि-सिद्धि यहाँ अठखेलियाँ करने लगीं और जंगलमें मङ्गलके बाजे बज उठे। प्रभु श्रीनाथजीके मेवाड़ पधारते ही यहाँ भी उनकी अद्भुत-अद्भुत लीलाएँ प्रारम्भ हो गयीं।

एक बार घस्यार-ग्राममें प्रवास करते हुए जलवायु अनुकूल नहीं होनेके कारण तिलकायत महाराजके एकके बाद एक करके तीन बालक स्वर्ग सिधार गये। चौथे बालकके प्रकट होते ही उसे शुद्ध स्नान कराकर तत्कालीन तिलकायत श्रीगिरिधरजी महाराजने उसे प्रभु श्रीनाथजीके चरणारविन्दमें डाल दिया और उस बालकको चिरायु प्रदान करने-हेतु प्रभुसे करबद्ध प्रार्थना की। तत्क्षण प्रभु श्रीनाथजीने अपने दायें कर-कमलसे उस बालकके सिरको स्पर्श कर दिया, उसे दीर्घायु होनेका वरदान मिल गया। वही बालक पुष्टि-सम्प्रदायमें तिलकायत श्रीदाऊजी महाराजके नामसे विभूषित हुआ। उसी बालकने युवावस्था प्राप्त होते ही पुन: प्रभु श्रीनाथजीको नाथद्वारा पधराया तथा सम्प्रदायका महामनोरथ द्वितीय सप्तस्वरूपोत्सव किया।

इन्हीं तिलकायत श्रीदाऊजी महाराजके समयमें वि० सं० १८६० ज्येष्ठ कृष्ण २ बुधवारको प्रभु श्रीवल्लभलालजी महाराज प्रभु श्रीनाथजीके सेवा-दर्शन करने नाथद्वारा पधारे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि वे प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजीको छोड़कर अन्य किसी भी भगवद्-विग्रहकी सेवा नहीं करते। नाथद्वारा आये और प्रात: प्रभु श्रीनाथजीकी सेवामें भी गये, परंतु प्रभुके समक्ष रोते रहे, लेकिन श्रीविग्रहको स्पर्श तक नहीं किया। महाराजश्रीकी यह भक्ति-विह्वलता देखकर प्रभु श्रीनाथजी हँस पड़े और उनसे कहा कि मैं ही श्रीगोकुलचन्द्रमा हूँ। इसपर महाराजने देखा कि प्रभु श्रीनाथजीके स्थानपर प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमाजी खड़े हैं। गोस्वामी श्रीवल्लभलालजी महाराजने गद्गदकण्ठ हो प्रेमाश्रु भरकर अत्यन्त भक्तिभावसे प्रभु श्रीनाथजीका सेवा-शृंगार किया तथा अपनी हठधर्मिताके लिये प्रभुसे क्षमा-याचना की। प्रभु श्रीनाथजीकी यह भक्तानुग्रह-लीला अत्यन्त रोमांचकारी थी।

वि० सं० १८६७ में एक विधर्मी सेनापति प्रभु श्रीनाथजीके प्रति अमङ्गलभावना लिये हुए अपनी शक्तिसे मन्दिरमें प्रवेश कर गया। प्रभुके समक्ष जाते ही उसकी आँखोंकी रोशनी गायब हो गयी। उसने प्रभुका प्रत्यक्ष चमत्कार जानकर हाथ जोड़ते हुए कई मिन्नतें कीं। प्रभु श्रीनाथजीने उसकी फरियाद सुनकर उसको उसकी नेत्रज्योति पुन: प्रदान की। इसके बाद उसने अपनी दाढ़ीसे प्रभु-मन्दिरकी सीढ़ियोंको बुहारा तथा लालदरवाजेपर हिन्दू और मुसलमान कोई भी प्रभु श्रीनाथजीके प्रति बुरी भावना नहीं

रखे—ऐसी शपथ दिलाते हुए गाय तथा सूअरके चिह्नाङ्कित दो शिलालेख लगवाये, वे आज भी लगे हुए हैं।

लीलाप्रभु श्रीनाथजीकी लीलाएँ अनन्त हैं। प्रभु श्रीनाथजीकी की गयी प्रार्थनाएँ कभी निष्फल नहीं जाती हैं। भक्तगण दौड़-दौड़कर प्रभु श्रीनाथजीके दर्शनार्थ यहाँ वर्षभर आते रहते हैं। सारे विश्वमें जहाँ-जहाँ वैष्णवोंके घर इन प्रभुकी सेवा है, वहाँ-वहाँ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हुए उनके प्राङ्गणमें प्रभु श्रीनाथजी प्रेमरूपी पयोदसे प्रमोदरूपी पीयूष बरसाते रहते हैं। वैष्णवगण इन भगवल्लीलाओंपर मुग्ध होकर नाथद्वारा आते हैं तथा प्रभुमें छप्पन भोग, राजभोग, मङ्गलभोग, शयनभोग, वस्त्रालंकार, रत्नाभरण तथा चाँदी और सोनेको भेंटकर मन-ही-मन आनन्दित होते रहते हैं। यहाँकी गौमाता तथा गोपालजीकी लीलाएँ भी सर्वदा सुदर्शनीय एवं बारम्बार वन्दनीय हैं।

हरिहरेश्वरका मिलन—एक लीला-रहस्य

(डॉ० श्रीकेशवरघुनाथजी कान्हेरे, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

प्रभुकी लीला अपरम्पार है। उसकी लीलाका आदि, मध्य और अन्त खोजना मानव-शक्तिके लिये असम्भव है। प्रभु जब भी कोई लीला रचते हैं, तब वह केवल लीलामात्र नहीं होती, अपितु उसके पीछे बड़ा भारी रहस्य, महान् तत्त्व, कोई शिक्षा तथा कोई आदर्श विद्यमान रहता है। शैव, वैष्णव, शाक्त आदि देव एक ही हैं, उनमें कोई भेद नहीं है। शिव ही विष्णु हैं और विष्णु ही शिव। इस भावको जनमानसमें प्रतिष्ठापित करनेके लिये प्रभुने एक लीला रची।

प्रदोषकाल था। कैलासपर्वतपर विराजमान देवाधिदेव महादेव अपने हाथपर चिताभस्म लेकर सर्वाङ्गपर लेपन करना चाहते थे कि भस्ममें एक छोटा-सा कंकड़ आ गया। महारुद्रने जब उस कंकड़को भस्मसे निकालकर नीचे फेंका, तब एक अद्भुत चमत्कार हुआ—उस कंकड़मेंसे एक असुरका जन्म हुआ। जन्म होते ही वह असुर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और कैलासपतिकी स्तुति करने लगा। साम्ब सदाशिवसे भूतगणोंने पूछा—'हे प्रभु! यह कौन है? इसका नाम क्या है?'

भोलेनाथ मन-ही-मन मुसकराये और उन्होंने कहा—'यह हमारा पुत्र है और इसका नाम भस्मासुर है।' भस्मासुर बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर बोला—'हे परमपिता! मुझे कोई सेवा बताइये, ताकि मैं अपने-आपको धन्य समझ सकूँ, मेरा जीवन सफल हो सके।'

सदाशिवने कहा—'हे भस्मासुर! तुम प्रतिदिन सत्-शीलवान् सदाचारी एवं ईश्वरभक्त व्यक्तिकी चिताभस्म लाकर मुझे दिया करो।'

ऐसी सेवा सुनकर भस्मासुरको संतोष हुआ। वह प्रतिदिन कर्मभूमिसे चिताभस्म प्राप्तकर शिवशंकरको समर्पित करता और शिव-महिमा श्रवणकर स्वयंको धन्य समझता।

भूलोकपर आनेवाला भस्मासुर गौ-ब्राह्मण, ऋषि-मुनि, तपस्वी मनुष्योंको देखकर आश्चर्य करता—'पृथ्वीपर रहनेवाला यह मानव ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर बड़े सुखसे इस लोकमें निवास करते हैं और उधर स्वर्गमें निवास करनेवाले इन्द्रादि देवगण, गन्धर्व आदि भी सुखोपभोगमें मस्त रहते हैं! फिर भला मैं ही क्यों इस अवस्थामें रहकर केवल चिताभस्म एकत्रित करके सदाशिवको समर्पित करता रहूँ? यह क्रम कबतक चलेगा? क्यों न इन सबका संहार करके, इन्द्रादि देवोंपर विजय पाकर, असुरोंका राज्य प्रस्थापित करके सर्वाङ्ग-सुन्दर पार्वतीको अपनी पत्नी बनाकर स्वयं इन्द्र बन जाऊँ?

ऐसा मनमें संकल्प लिये वह कपटी हाथ जोड़कर भगवान् शिवके सम्मुख आकर खड़ा हो गया और कहने लगा—'हे प्रभो! सम्पूर्ण सृष्टिमें खोजकर आपके लिये चिताभस्म लाना बड़ा ही कष्टप्रद होता है। आज तीनों लोक देखा, परंतु कहीं चिताभस्म नहीं मिली। इस कारण आपकी सेवामें व्यवधान आया है। अतः हे देवाधिदेव महादेव परमपिता प्रभो! इस बालकको ऐसा वर दीजिये, जिससे आपकी सेवा निरन्तर कर सकूँ, इस प्रकार कहकर वह भोलेनाथके चरणोंको पकड़कर रोने लगा।

उसकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भोलेनाथ उसे वरदान देने-हेतु सिद्ध हो गये और कहने लगे—'अरे भस्मासुर! हम प्रसन्न हैं। वर माँगो।'

यह देखकर माता पार्वतीने कहा—'हे परमेश्वर! इसे वरदान मत दीजिये। यह असुर धरणीपर कोलाहल मचा देगा। एक तो यह पहलेसे ही मर्कट है फिर उसमें मद्यपान और वृश्चिकदंश, ऐसी दशामें यह क्या नहीं करेगा? अत: इसे वरदान देना उचित नहीं है।'

लीलावतारी देवाधिदेवकी लीलाका रहस्य माता पार्वती भी समझ नहीं सकीं, फिर क्षुद्र मानव इस रहस्यको कैसे समझे? भोलेनाथने कहा—'उमा, यह हमारा बालक परम भक्त है। यह अनाचार नहीं करेगा।' इतना कहकर वृषभनाथ भस्मासुरसे बोले—'कहो भक्त! क्या चाहते हो?'

—यह सुनकर भस्मासुर मन-ही-मन प्रसन्न होता हुआ प्रकट-रूपमें बोला—'हे प्रभो! जिस व्यक्तिके मस्तकपर मैं अपना हाथ रखूँ वह उसी क्षण भस्म हो जाय। फलस्वरूप आपके लिये चिताभस्म लानेमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी।'

आशुतोष नन्दिकेश्वरने कहा—'तथास्तु!' वरदान मिलते ही वह असुर आनन्दसे नाचने लगा।

वह प्रतिदिन भूलोकपर विहार करता और ऋषि-मुनि, तपस्वी, भक्त, गौ-ब्राह्मण आदिको खोजकर उन्हें भस्म कर देता तथा कैलासपतिको बड़ी नम्रतासे चिताभस्म अर्पण करता।

भस्मासुरके अत्याचारसे सारी सृष्टि प्रभावित होने लगी। ऋषि-मुनि, देवी-देवता भयाक्रान्त हो गये।

अनेक दिनोंतक भस्मासुरका कार्य निर्बाध-गतिसे चलते-चलते वह मदान्ध हो गया। उसे अपनी शक्तिपर गर्व होने लगा। धीरे-धीरे उसके विचारोंमें परिवर्तन आने लगा। वह सोचने लगा—पहले इन्द्रादि देवोंको भस्म करूँगा; फिर शेषशायी विष्णुको और भोलेनाथ वृद्ध हो चुके हैं तथा पार्वती अभी यौवनावस्थामें हैं एवं त्रिभुवन-सुन्दरी भी। अत: अन्तमें भोलेनाथको ही भस्म करके पार्वतीका हरण करके सारे विश्वका सम्राट् बन पार्वतीको सम्राज्ञी बनाऊँगा।

इधर पृथ्वीमाता काँप उठीं। सारी प्रजा—ऋषि-मुनि-तपस्वी, देव आदि भयभीत होकर ब्रह्माजीसे मिले और उन्हें सारी व्यथा कह सुनायी। ब्रह्माजी सभीको साथ लिये शेषशायी विष्णुभगवान्‌से मिले। नारायण स्वयं शिवशंकरके पास गये और कहने लगे—'हे देव! आपने यह क्या किया? आपके वरदानसे भस्मासुरने अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया है। भोलेनाथ! इसे सँभालिये, अन्यथा मुझे तो आपका भविष्य भी अन्धकारमय दिखायी दे रहा है। अत: स्वयंकी रक्षा कीजिये।' नारायणका वचन सुनकर त्रिलोचन शिवने हँसते हुए कहा—'आप स्वयं अन्तर्यामी हैं, फिर भी चिन्ताका विषय नहीं है। भस्मासुरका अन्त समीप समझें।'

इतनेमें भस्मासुर चिताभस्म लेकर कैलासपर आया। भस्मासुरको देख, कर्पूरगौर क्रोधित होकर बोले—'अरे दुष्ट, मैंने तुझे चिताभस्म-प्राप्ति-हेतु वरदान दिया था, लेकिन तूने उसका दुरुपयोग करते हुए पृथ्वीपर अराजकता फैला दी।'

भोलेनाथके वचन सुनकर मदहोश भस्मासुर कहने लगा—'हे वृषभनाथ, तुम अब वृद्ध हो चुके हो। पार्वती अभी तरुण है, सुन्दर है। तुम उसके लायक नहीं रहे। अत: पार्वतीको मुझे दे दो, अन्यथा मैं तुम्हें ही भस्म कर दूँगा।' इतना कहनेके साथ ही वह भस्मासुर शिवशंकरकी ओर दौड़ पड़ा। यह दृश्य देखकर माता पार्वती अपने सदनमें भाग गयीं। भूतगण इधर-उधर दौड़ने लगे और लीला-नाटकी शिवशंकर जंगलकी ओर भागे। उनके पीछे भस्मासुर भागने लगा।

वेदशास्त्रोंने जिसे 'नेति-नेति' कहा—वे देवाधिदेव महारुद्र भस्मासुरके हाथ भला कैसे आ सकते थे! क्षणमें वे उसे समीप दिखायी देते और दूसरे ही क्षण वे कोसों दूर दिखायी पड़ते।

उधर माता पार्वती शेषशायी विष्णुनारायणकी प्रार्थना करने लगीं—'हे प्रभु! इस संकटसे रक्षा करो।' क्षीरसागरमें निवास करनेवाले लक्ष्मीपति शिवशंकरकी लीला देखनेमें तल्लीन थे। माता पार्वतीकी पुकार सुनते ही उनकी समाधि टूट गयी और तुरंत मोहिनी रूप धारणकर भोलेनाथ और भस्मासुरके मध्य आकर खड़े हो गये।

लावण्यमयी मोहिनीको देखकर दौड़नेवाला भस्मासुर वहीं रुक गया। उसके पाँव वहीं थम गये और एकटक उसकी ओर देखने लगा। भस्मासुरकी आँखोंको मोहिनीने आकृष्ट कर लिया। मोहिनीको देखते ही भस्मासुर अपने कार्यको भूल गया। उसकी स्मरण-शक्ति मोहिनीने हरण कर ली।

उधर महारुद्र भगवान्‌ने नटवरधारी श्रीविष्णुका 'वह

अलौकिक रूप देखकर एक वटवृक्षके रूपमें खड़े होकर उनकी लीला देखनेमें मस्त हो गये। अद्वितीय रूप-सम्पन्ना मोहिनीको नृत्य करते देख भस्मासुरके कदम मोहिनीकी ओर बढ़ने लगे।

वह मोहिनीके समीप आकर बड़ी भावुकतासे कहने लगा—'हे सर्वाङ्ग-सुन्दरी रूपयौवना! तुम इतनी सुन्दर हो कि विश्वकी सारी सौन्दर्यसम्पन्न युवतियाँ, इन्द्रकी अप्सराएँ और लक्ष्मी तथा पार्वती-जैसी त्रिभुवन-सुन्दरी भी तुम्हारे समक्ष नगण्य हैं। हे विश्व-मोहिनी, मैं त्रैलोक्यमें शक्तिशाली हूँ। यदि तुम मुझसे विवाह करोगी तो जीवनभर तुम्हारा दास बनकर तुम्हारी सेवा करता रहूँगा। त्रैलोक्यका अधिपति बनकर तुम्हें महाराज्ञी बनाऊँगा।

भस्मासुरको अपने जालमें फँसा हुआ देखकर मोहिनीने कहा—'मैं आपसे विवाह करनेको तैयार हूँ, परंतु मेरी एक शर्त है। जो व्यक्ति मुझसे विवाह करना चाहता हो, उसे मेरे साथ नृत्य करना होगा, मेरी नृत्यकलाके अनुसार उसे भी नृत्य करना पड़ेगा।' भस्मासुरने स्वीकृति दे दी और मोहिनीके साथ भस्मासुरने भी नृत्य करना प्रारम्भ कर दिया। मोहिनी जो हाव-भाव प्रकट करती, जो मुद्राएँ धारण करती, ठीक उसी प्रकार भस्मासुर भी हाव-भाव-मुद्राएँ धारणकर नृत्य करता। सारे देवता—इन्द्र, गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ तटस्थ होकर प्रभुका नृत्य-गायन देखनेमें तल्लीन हो गये।

मोहिनीने लीलाएँ करनी प्रारम्भ कर दीं। कभी अपने हाथ पैरोंपर, कभी कमरपर, पेटपर, कंधोंपर रख नृत्य करती। भस्मासुर भी उसी प्रकार बड़ी तन्मयतासे नृत्य करता। भस्मासुर पूर्णरूपसे नृत्याधीन है। उसे वरदानका भी स्मरण नहीं है। मोहिनीने यह देखा और नृत्यभाव-मुद्रामें अपना हाथ मस्तकपर रखा। उधर भस्मासुरने भी जैसे ही अपना हाथ अपने मस्तकपर रखा, क्षणभरमें ही वह वहीं भस्म हो गया।

भस्मासुरका अन्त होते ही वटवृक्षरूपधारी शिवशंकर वहीं प्रकट हो गये और मोहिनी-रूपधारी नारायणने वह रूप त्यागकर जैसे ही चतुर्भुज-रूप धारण किया, उसी क्षण हरेश्वरने हरिको गले लगा लिया। उसी दिनसे लीला-नाटकी भगवान् 'हरिहरेश्वर'के नामसे विख्यात हुए। उन्होंने जगत्को दिखाया—'हरि-हर'में कोई भेद नहीं है। वहीं अम्बिका तथा महालक्ष्मी प्रकट हुईं और उन दोनोंने उन्हें वन्दनकर पूजा-अर्चा और आरती की। सारा ब्रह्माण्ड आनन्दसे नाच उठा।

ब्रह्माजीने कहा—

वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा।
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते॥
यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः।
इति मत्वा यजेद् देवं स याति परमां गतिम्॥

(कूर्मपुराण, पू० वि० अ० १४। ८८-८९)

'हे ईश्वरभक्तो! जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् रुद्र हैं और जो रुद्र हैं, वे ही जनार्दन विष्णु हैं। शंकरकी निन्दा करना प्रयत्नपूर्वक छोड़ दो। दोनों एक ही हैं। जो लोग साक्षात् विष्णुभगवान्को शिवशंकरसे पृथक् मानते हैं, वे मनुष्य नरकके भागीदार होते हैं। जो रुद्रदेव तथा नारायणको एकीभावसे देखते हैं, वे मुक्तिपदके भागी होते हैं।'

हे भगवन्! श्रीविष्णुरुद्र आपकी लीला अपरम्पार है, आपकी जय हो! दासका प्रणाम आप स्वीकार करें।

आशुतोष शिवकी निग्रहानुग्रह-लीला

(डॉ० श्रीरमाकान्तजी झा)

सम्पूर्ण भारतीय संस्कृतिमें भगवान् शिव देवाधिदेवरूपमें पूज्य हैं। वे महादेव हैं, क्योंकि उनके अन्तः और बाह्य दोनों पक्ष शुद्ध-सत्त्व-प्रधान हैं। वे शंकर हैं—'**शम्=कल्याणं करोति इति शंकरः।**' वे आशुतोष हैं, भक्तजनोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव अनायास ही आराधककी शुद्ध भावनाको जानकर उसे अभिलषित वर दे देते हैं। '**भावमिच्छन्ति देवताः**'—इस वचनके अनुसार भक्तके शुद्ध भावका आभास पाते ही बिना परीक्षा लिये ही वे प्रकट होकर उसकी मनःकामना पूरी करते हैं। इसीलिये वे औढरदानी भी कहे जाते हैं। विष्णु आदि अन्य देवोंकी अपेक्षा शिव सुर-असुर, दानव-मानव सबके निर्विवाद आराध्य हैं। शिवके आशुतोषत्व, महादेवत्व और सर्वकल्याणकारकत्व ही उनकी सर्वप्रियताके हेतु हैं। ऐसे सर्वप्रिय, भक्तवत्सल, सर्वसुलभ शिवकी मङ्गलमयी मूर्ति सर्वथा नमस्य है।

समस्त विश्वको रुद्ररूप कहा गया है। शिवका अर्धनारीश्वर-रूप तो अत्यन्त विलक्षण है। उनका यह यामल विग्रह सृष्टितत्त्वके सम्पूर्ण आयामको समेटे है। प्रकृति-पुरुषात्मक जगत्‌का रहस्य इस विग्रहमें अनुस्यूत है। स्त्री-पुंभावकी एकरूपताका यह प्रतीक है। परम शुभंकर शिव तथा शक्तिके अभिन्न युग्मरूपके द्योतक परम शिवकी निग्रह-अनुग्रह-लीलाका दिग्दर्शन प्रस्तुत निबन्धका प्रतिपाद्य विषय है।

'**लीला**' शब्दका अर्थ है—खेल, क्रीडा, विनोद, मनोरंजन, आनन्द। लीलाका एक अर्थ प्रीतिविषयक विनोद—केलिक्रीडा भी होता है। प्रकृत प्रसंगमें लीलाका अर्थ हम आनन्द लेते हैं। भगवान् शिव आनन्दरूप हैं। वे स्वतः आनन्दानुभूतिके लिये तथा विश्वको आनन्दित करनेके लिये क्रीडा करना चाहते हैं, किंतु '**एकाकी न रमते**', अकेले कैसे खेलें, किसके साथ खेलें?

अतः स्वाभिन्ना शिवाशक्तिको लीला-विग्रह देकर उसी आद्याशक्तिके साथ क्रीडा करते हैं। उसी अर्धनारीश्वर शिवाऽभिन्न शिवका यह समस्त प्रपञ्च खेल है। यह विश्व उसी शिव-शक्तिकी लीलामयी परिणति है। विश्व-कल्याण तथा लोकसंग्रहके लिये परम शिवकी निग्रह-अनुग्रहरूपा लीला होती है। परम शिवकी वह लीला निग्रहदृष्टिसे नियन्त्रणपरक है और अनुग्रह-दृष्टिसे मोक्षपरक। संसार-भावमें व्यवस्था एवं मर्यादारक्षणके लिये संयमन तथा प्राणियोंके परम पुरुषार्थ—मोक्षके लिये प्रसाद—कृपाकी अपेक्षा होती है। सृष्टिकर्ता शिव नियन्त्रण और प्रसाद दोनों भावोंसे अपनी संवित्-शक्तिके साथ निग्रह और अनुग्रह-लीला करते हैं।

लीलाका आध्यात्मिक पक्ष

काश्मीरी शैवोंकी आध्यात्मिक दृष्टिके अनुसार केवल परम शिव-उपनिषदोंका परब्रह्म ही एकमात्र सत्य तत्त्व है। वह सर्वशक्तिमान् है और उसमें उसकी शक्तिके रूपमें समस्त अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड विद्यमान रहते हैं। वह परम शिव अनन्त और पूर्ण चित् है। उस पारमेश्वरी चित्‌का स्वभाव आनन्द है। उस आनन्दसे प्रभावित वह चित्-शक्ति जब झूमने लगती है, तो आनन्द लीलाके रूपको धारण करता है। उस लीलारूप स्वभावकी अभिव्यक्ति ही इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और उसमें होनेवाले सर्जन-संहार आदि सब-के-सब परम शिवकी शक्तियोंके बहिर्मुखी आभास हैं, जो प्रतिबिम्ब-न्यायसे आभासित होते रहते हैं। उन पारमेश्वरी शक्तियोंके इस अद्भुत आभासके होते रहनेपर भी परम शिवमें कोई विकार नहीं आता, जैसे दर्पणमें मुख प्रतिबिम्बित होते रहनेपर भी मुख और दर्पण विकारशून्य ही बने रहते हैं।

पूर्ण शुद्ध तथा असीम चिद्रूप परम शिवका स्वभाव आनन्द है। वह सदैव स्पन्दमान होता हुआ स्व-स्वभावसे ही क्रीडनशील होता है। अतः प्रतिबिम्बात्मक सर्जन-संहार आदिकी ऐसी लीलाएँ परम शिवके असीम चिदानन्दमें चलती रहती हैं। इन लीलाओंका इस प्रकार चलते रहना ही परमेश्वरकी परमेश्वरता या परमशिवकी परशिवता है। आत्मस्वरूप संसारको अपनेसे भिन्नरूपमें और अभेदको भी भेदरूपमें परिवर्तित करनेवाली माया भी उस परमेश्वरकी ही एक शक्ति है। श्वेताश्वतरोपनिषद्‌में परमेश्वर शिवकी शक्तिको माया कहा गया है।

बन्धन और मोक्ष भी उसीकी लीलाएँ हैं। सब कुछ वही परम शिव है। शैव साधक विश्वकी प्रत्येक वस्तुको शिवरूपमें अनुभव करते हैं। परमेश्वर शिव ही स्वयंको नटके समान बद्ध जीवोंके रूपमें प्रकट करता हुआ बन्धन-लीलाका स्वयं अभिनय मात्र करता है। वह योग, ज्ञान और भक्तिके समन्वित साधना-पथपर अग्रसर होता हुआ मुक्ति-लीलाका अनुभव करता है। बन्धनका आभास परम शिवकी निग्रह-लीला है और मोक्षकी प्राप्ति उसकी अनुग्रह-लीलाका परिणाम है।

पूर्ण चेतन परम शिव तथा परा शिवताकी लीलाका जो अभिनय सतत चलता रहता है, उसके भीतर ही विज्ञजन उसका दर्शन और विमर्शन दो रूपोंमें किया करते हैं। उसके अनुसार वे साधक एक मात्र पूर्ण और असीम तथा विश्वातीत चिदानन्दघन-रूपमें उसका साक्षात्कार करते हैं, उस रूपमें उसे शिव कहते हैं, साथ ही वे समग्र विश्वके रूपमें तथा इस विश्वमयी लीलाके रूपमें भी उसीका साक्षात्कार करते हैं, इस रूपमें उसे शक्ति कहते हैं। इस प्रकार एक ही परम शिव एक ओरसे शिवतत्त्व है और दूसरी ओरसे शक्तितत्त्व है। परमेश्वर शिवकी यही स्वाभाविक पराशक्ति प्रयोजनवश दस महाविद्याओंके रूपमें प्रकट होकर भक्तोंद्वारा आराधित—पूजित होती है।

परमशिवकी वह अनादि-स्वातन्त्र्य शक्ति दो रूपोंमें अभिव्यक्त होती है—जड-शक्ति और संवित्-शक्ति। परम शिव जडशक्तिसे बन्धनकी लीला और संवित्-शक्तिसे मोक्षकी लीला करते हैं। शिवकी यह स्वातन्त्र्य-शक्तिकी लीला ही भवबन्धन और भवमुक्तिका हेतु है—

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥

(श्रीदुर्गासप्तशती १। ५७-५८)

शक्तिविशिष्ट शिवसे ही समस्त प्रपञ्चकी सृष्टि होती है, अतः प्रत्येक वस्तु यत्किंचित् शक्ति-विशिष्ट ही दृष्टिगोचर हो रही है। यथा पृथिवीमें धारण, जलमें आप्यायन, अग्निमें ज्वलन, वायुमें स्पन्दन, आकाशमें व्यापन आदि शक्तियाँ दिखायी पड़ती हैं। ये सारी शक्तियाँ शिवकी स्वतन्त्र-शक्तिकी मूर्तियाँ हैं, जो यथासमय यथास्थान अपनी लीलाएँ दिखाती हैं।

शिव और शक्तिका कभी वियोग नहीं होता। शिव इसी अवियुक्त शक्तिसे विश्वकी सृष्टि करता है। यह सृष्टि शिवशक्तिकी यामल-लीला ही है। शक्तितत्त्वके उपासक भगवती शिव-शक्तिकी सकल शब्दमयी मूर्तिकी उपासनामें ही अपने जीवनके प्रत्येक क्षणको सार्थक मानते हैं—

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके!
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।

परम शिव अपने प्रसादसे प्राणियोंके कल्याणके लिये नाना लीलाएँ करते हैं। उनकी आदिशक्ति लीलामयी है। उसी लीलात्मिका शक्तिके सहयोगसे परम शिव विश्व-रंगमंचपर नर्तनलीला करते हैं, अतएव वे 'नटराज' भी कहे जाते हैं।

व्यावहारिक पक्ष

परम शिवकी लीलाके आध्यात्मिक पक्षकी भाँति ही व्यावहारिक पक्ष भी स्पृहणीय है। यजुर्वेद, पुराणों और काव्योंमें वर्णित शिवचरितके आधारपर शिवकी लीलाके व्यावहारिक पक्षके अन्तर्गत उनका दाम्पत्य-जीवन, भगवत्प्रेम, सती-संशय, दक्षयज्ञ-विध्वंस, मदन-दहन, पार्वती-परीक्षा, विवाह-लीला, गरलपान और त्रिपुरसंहार प्रमुख हैं। इन प्रसंगोंसे सम्बद्ध लीलाओंमें दाम्पत्य-प्रेम, भगवत्प्रेम, पार्वती-परीक्षा और विवाह-कौतुक तो परम शिवकी अनुग्रह-लीला है और सती-संशय, दक्षयज्ञ-ध्वंस, मदन-दाह, गरलपान और त्रिपुरसंहार निग्रह-लीला है। शिवचरितसे सम्बन्धित व्यावहारिक लीलाका उद्देश्य लोकसंग्रह है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवनका क्या कहना! दक्षसुता सती, जो शिवकी आद्याशक्ति हैं वे अवतरित होकर पिता दक्षके विरोध करनेपर भी शिवको पतिके रूपमें सहर्ष वरण करती हैं। शिवके प्रति सतीका नैसर्गिक निर्व्याज प्रेम दाम्पत्य-जीवनकी मधुरिमामें चार चाँद लगा देता है। परंतु शिव और शक्तिको लीला अभीष्ट है। अतः दोनों मिलकर ही लीला करते हैं। यह लीला दोनों विभूतियोंकी मिली-भगत है।

भगवान् शिवके दाम्पत्य-जीवनके पूर्वचरितमें सती और उत्तर-चरितमें पार्वतीकी अहं भूमिका है। सतीके साथ दाम्पत्य-प्रेममें शिवकी निग्रह-लीलाकी प्रमुखता है और पार्वतीके साथ अनुग्रह-लीला की। शिवकी पत्नीके रूपमें जहाँ सतीने अपने शरीरकी आहुति देकर परमाराध्य शिवजीके प्रति अपनी अनन्य पतिपरायणताका उदाहरण प्रस्तुत किया है, वहीं पार्वतीने अपनी फूल-सी सुकुमार कायाको तपस्यामें लगाकर शिवके प्रति अपनी प्रेमा भक्तिका परिचय दिया है। सती और पार्वती दोनोंने ही परम शिवकी परमाशक्तिके रूपमें उनकी उभयविध लीलाओंको लोकमङ्गलकारी बनाया है। संसार-भावके व्यावहारिक पक्षमें सती-प्रसंगकी लीला विश्व-मानवको यह संदेश देती है कि दाम्पत्य-जीवनमें स्वजन—पति-पत्नीके बीच संदेह, अविश्वास, झूठ और कपटका कोई स्थान नहीं है। अतएव दाम्पत्य-प्रेममें उपर्युक्त संशय आदि नहीं करने चाहिये। आत्मीय जनमें परस्पर स्नेह, विश्वास और निष्कण्टक भावमें ही मङ्गल है। पार्वतीके साथ शिवजीका दाम्पत्य-प्रेम तो सफलतम गार्हस्थ्य जीवनका प्रशस्त उदाहरण है। इसीलिये प्रत्येक विवाहादि माङ्गलिक कार्योंके आरम्भमें गौरी-गणेशकी पूजा की जाती है। भगवान् शिवकी दक्षयज्ञ-ध्वंस-लीला भी सतीसे जुड़ी है। वे अपने ही पिताद्वारा अपने आराध्य पति शिवजीका अपमान सहन न कर योगाग्निमें अपना शरीर उत्सर्ग कर देती हैं।

दक्ष-प्रसंगमें शिवजीकी निग्रह-लीला दक्षको प्राण-दण्ड देकर समाप्त होती है। परंतु वहींपर देवताओंके हितको ध्यानमें रखकर शिवजीने दक्षको पुनर्जीवन और वरदान देकर अपनी अनुग्रह-लीला भी दिखायी है।

परम शिवकी मदन-दहन-लीला उनके निग्रह और पर्यवसानमें अनुग्रह-लीलाका उदाहरण है। मदन-दहनका यह प्रसंग परम शिवकी निग्रह-लीलाका निदर्शन है। परंतु इस प्रसंगकी परिणति तो शिवजीकी अनुग्रह-लीलामें हुई है और वह अनुग्रह-लीला है कामदेवकी पत्नी रतिपर कृपा। आशुतोष शिवकी यह लीला अद्भुत है। कामके देहको जलाकर भी—निग्रह-लीला करके भी उसके अस्तित्वकी अनंगरूपमें रक्षा तथा कृष्णपुत्र प्रद्युम्नके रूपमें अवतरण शैवी अनुग्रह-लीला ही तो है।

पार्वती-प्रेम-परीक्षा और उनके साथ विवाहोल्लासका संदर्भ तो प्रकारान्तरसे सतीके प्रति शिवजीकी अनुग्रह-लीलाका प्रतीक है। पार्वतीके साथ सफल और सुखी दाम्पत्य-जीवनका प्रसंग सतीके प्रति पुरातन प्रीतिका निर्वाह है। वस्तुतः सती ही तो पार्वतीके रूपमें पर्वतराज हिमालयके घर अवतरित हुईं, अतः सती और पार्वती दोनों ही शिवजीकी परमा शक्ति हैं। ऋग्वेद (१०। १२५। ६)-में देवीने स्वयं कहा है—

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि।

गरलपानका प्रसंग शिवजीकी अनुग्रह-लीलाकी चरम परिणति है। देवासुरके सम्मिलित समुद्रमन्थनसे जो चौदह रत्न निकले, उनमें एक हलाहल भी था। अच्छे-अच्छे रत्नोंको तो देवताओंने आपसमें बाँट लिया, परंतु विषको कौन ले? अगर कोई विष न ले तो उसके कुप्रभावसे विश्व ही विपद्ग्रस्त हो जायगा। विष फैलकर संसारको नष्ट कर देगा। देवताओंमें सबसे वृद्ध और समर्थ शिव ही थे, इसीलिये वे देवताओंके मुखिया भी थे। महादेवने विश्व-कल्याणके लिये उस हलाहलको पी लिया, किंतु उसे कण्ठगत ही रखा। शिव तो परम भक्त थे। उन्होंने सोचा कि गरल यदि उदरतक पहुँचेगा तो हृदयमें विराजमान परमात्माको कष्ट होगा, अतः उन्होंने गरलको कण्ठसे नीचे जाने ही नहीं दिया। तभीसे उनका एक नाम 'नीलकण्ठ' भी हो गया। यही है शिवजीकी विश्वमङ्गल-भावना और भगवद्भक्तिकी पराकाष्ठा। शिवजीके गरलपानसे व्यावहारिक जीवनमें यह तथ्य सामने आता है कि परिवारके मुखियाको परिवारके कलह, अशान्ति और स्वार्थ-भावनाके जहरको पीना पड़ता है। इतना उदार और समर्थ मुखिया ही परिवार चला सकता है।

ये उपर्युक्त प्रसंग शिवजीकी निग्रहानुग्रह-लीलाके बोधक तत्त्व हैं। इस शैवी लीलाको नमन है।

विश्व-नाटकका चतुर खिलाड़ी—शिव

(राष्ट्रपति-सम्मानित पण्डित श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल')

काश्मीर शैव-दर्शनके अनुसार अनुत्तर प्रकाशस्वरूप परमशिवसे अभिन्न महाशक्तिके विकासका उल्लेख करते हुए श्रीआद्यनाथ 'अनुत्तरप्रकाशपञ्चाशिका' के आरम्भमें भगवान् शिवके लीला-लावण्यकी क्रीडाका सांकेतिक विवरण देते हुए कहते हैं—

अकृत्रिमाहमामर्शप्रकाशैकघनः शिवः।
शक्त्या विमर्शवपुषा स्वात्मनोऽनन्यरूपया॥
शिवादिक्षितिपर्यन्तं विश्वं वपुरुदञ्चयन्।
पञ्चकृत्यमहानाट्यरसिकः क्रीडति प्रभुः॥

(युगलकम्)

अर्थात् केवल प्रकाश ही स्वरूप है जिसका ऐसा वह महान् तेज परप्रमाता विश्वोत्तीर्ण शिव[1] स्वाभाविक पूर्णाहन्तारूप अपनी अभिन्न विमर्शशक्तिद्वारा सदाशिवके रूपमें प्रकट होकर ईश्वर-रूपसे प्रसरोन्मुख होता है।

इस प्रकार पञ्चकृत्यरूप[2] महानाटकका रसिक प्रभु[3] शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वी-तत्त्वतक[4] विश्वमयताको ग्रहणकर स्वतन्त्र लीला अर्थात् लावण्यमय क्रीडा करता है।

भगवान् शिवकी यह विश्व-लीला अलौकिक है। केवल चिच्चमत्कारका चर्वणानन्द साधारण जनके लिये सहज बात नहीं है। शास्त्रोंने उस लीलामय शिवकी विचित्र और लावण्यमयी क्रीडाको सत्त्वगुण-सम्पन्न साधकके लिये समझानेका प्रयास किया है।

जगत् त्रिगुणमयी प्रकृतिका त्रिवर्गात्मक विकास है। ये तीन वर्ग हैं—जाग्रत्-जगत्, स्वप्न-जगत् और सुषुप्ति-जगत्। यही त्रिवर्गात्मक विश्व भगवान् शिवकी नृत्य-क्रीडाका स्थल बना है। इस नाटककी व्यवस्था भी कितनी विचित्र है, देखिये—

जगत्त्रयं शाम्भवनर्तनस्थली
नटाधिराजोऽत्र परः शिवः स्वयम्।
सभानटो रङ्ग इति व्यवस्थितिः
स्वरूपतः शक्तियुतात् प्रपञ्चितः॥

(सोमस्तवराज ४०)

अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति-रूप यह जगत् भगवान् शिवका नर्तन-स्थल है। स्वयं परम शिव इस नाटकके प्रधान नट हैं। दर्शकोंकी सभा, नट तथा नाटक करनेके लिये रंगमंच—यह सब वास्तवमें शक्तिसम्पन्न शिवसे ही प्रपञ्चित हो रहे हैं।

तात्पर्य यह है कि विश्व-सर्जनकी इस अलौकिक लीलामें कर्ता-कर्म-क्रिया, द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भोक्ता-भोग्य-भोग आदि सब प्रकारकी त्रिपुटी शिव-शक्तिकी ही विकास-मुद्रा है। इसमें भगवान्‌के सृष्टि-क्रम तथा स्थिति-क्रम—इन दोनोंका अन्तर्भाव है। इसी प्रकार विसर्ग-लीला भी शक्तियुक्त शिवकी ही संकोच-मुद्रा है।

भगवान् शिवसे अभिन्न भगवती शक्तिकी संकोच-मुद्रा तथा विकास-मुद्रा-रूप लीलाकी स्तुति भक्तोंने इस प्रकार की है—

संकोचमिच्छसि यदा गिरिजे तदानीं
वाक्तर्कयोस्त्वमसि भूमिरनामरूपा।
यद्वा विकासमुपयासि यदा तदानीं
त्वन्नामरूपगणनां सुकरीकरोषि॥

(धर्माचार्यविरचिता पञ्चस्तवी ४। १२)

१-काश्मीर शैव-दर्शनमें जो 'विश्वोत्तीर्ण' परमशिव हैं, वही वेदान्तदर्शनमें कारण-ब्रह्म परब्रह्म हैं।

२-सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह और अनुग्रह—ये शिवके पञ्चकृत्य हैं।

३-विश्वमय शिव। कार्यब्रह्म। परमात्मा।

४-शैव तथा शाक्त-प्रक्रियाके अनुसार जगत्‌का वर्णन छत्तीस तत्त्वोंमें होता है। वे हैं—(१) शिव, (२) शक्ति, (३) सदाशिव, (४) ईश्वर, (५) शुद्धविद्या, (६) माया, (७) कला, (८) विद्या, (९) राग, (१०) काल, (११) नियति, (१२) पुरुष, (१३) प्रकृति, (१४) बुद्धि, (१५) अहंकार, (१६) मन, (१७—२१) श्रोत्रादि पञ्चज्ञानेन्द्रिय, (२२—२६) वागादि पञ्चकर्मेन्द्रिय, (२७—३१) शब्दादि पञ्चतन्मात्राएँ और (३२—३६) पृथ्वीपर्यन्त पञ्चमहाभूत ('श्रीक्षेमराजरचित पराप्रवेशिका' पृष्ठ ६)। उपर्युक्त गणनामें सांख्यदर्शनके चौबीस तत्त्वोंको भी अन्तर्भूत कर लिया गया है।

अर्थात् हे गिरिजे! जब आप उस भूमा-अवस्था (विश्वोत्तीर्ण-भाव)-में प्रवेशकर स्वरूप-संकोचकी इच्छा करती हैं, तब आप शब्द-संसार तथा विकल्प-संसारसे परे अर्थात् वाणी और मनसे अगोचर भासती हैं और जब आप विश्वरूपतामें प्रसार करती हैं अर्थात् अपने स्वरूपके विकासकी क्रीडा रचाती हैं, तब आप स्वयं ही जगत्‌की नाना-रूपता—विश्वमय भावमें प्रकट होती हैं।

भगवत् शक्तिकी इस विकासमय अनुपम लीलासे भक्तजनोंका उत्तम अभिप्राय सिद्ध होता है। भगवती शक्तिके नानारूपोंमें प्रकट होनेकी लीलामें भक्तजन भगवन्नाम-कीर्तन-जप और ध्यानके सरल उपाय पाते हैं। इससे वे साधना-पथपर अडिग रहकर अपने यथार्थ स्वरूपको पहचान लेते हैं। इससे जीव-ईश्वरका अद्वैत-स्वरूप सिद्ध होता है। अत: भगवान् शिवके विश्वमय होनेकी यह लीला भक्तजनके लिये बड़ा वरदान है। यतिवर भोलेबाबाजीने ठीक ही कहा है—'**विश्वेशका यह विश्व होता भक्तपर उपकार है।**'

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ

(मानसरत्न संत श्रीसीतारामदासजी)

'राम-राज्य'-जैसी आदर्श शासन-व्यवस्थाके अधिष्ठाता मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी, मानव-जीवनको सर्वाङ्ग-सुन्दर बनानेवाली आदर्श लीलाओंका स्मरणकर मन पुलकित हो उठता है। वे आदर्श लीलाएँ चिरप्रासंगिक हैं और हमारे लिये विशेष महत्त्व रखती हैं; क्योंकि उनके साथ ही हमारा धर्म, संस्कृति, साहित्य और लोक-व्यवहार भी जुड़ा हुआ है। उनमें भारतीय संस्कृतिके अनुरूप ही पारिवारिक और सामाजिक जीवनके उच्चतम आदर्श पाये जाते हैं। आज भी हम उनसे प्रेरणा तथा शक्ति लेकर अपने अशान्त एवं अस्थिर जीवनमें '**सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्**'की त्रिवेणी प्रवाहित कर सकते हैं।

श्रीरामकी मानवताके पावन, पुनीत एवं उज्ज्वल धरातलपर प्रतिष्ठित आदर्श लीलाओंसे प्राप्त भावनाएँ, चिन्तन-धाराएँ और विचार एक ऐसे स्तरपर पहुँचे हैं, जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक हैं तथा सारी दुनियाको जाग्रत् करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। इन दिव्यातिदिव्य लीलाओंसे सारा मानव-समाज अपने दिन-प्रति-दिनके जीवनमें मार्ग-दर्शन प्राप्तकर कृतकृत्य हो सकता है।

जीवनके उच्च मूल्योंके लिये हाथमें आती हुई सत्ताका तृणवत् त्याग करनेवाले पुरुषपुङ्गव श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ मानवीय सम्बन्धोंको मर्यादाका शिखर प्रदान करनेवाली एवं मानव-जीवनकी मूल प्रेरणा-स्रोत हैं। वर्तमान समाजकी अनेक अवाञ्छित प्रवृत्तियोंके निराकरणकी आवश्यकताओंके संदर्भमें उनकी प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। आज जब हमारे मन अपने आधार और दिग्ज्ञान खो बैठे हैं, तब हमें विश्वको मार्गदर्शन करानेकी क्षमता रखनेवाली भारतीय संस्कृतिके मूर्तिमान् प्रतीक श्रीरामकी त्याग, उदारता, परोपकार, परदु:खकातरता एवं उच्च सदाशयतासे आपूरित आदर्श लीलाओंसे अपने जीवनके लिये प्रेरणा लेनी चाहिये। वे लीलाएँ सर्वथा दिग्भ्रमित जन-मनको दिशा-बोध कराती हैं और कर्तव्य-पालनका संदेश देती हैं।

अपने आदर्शोंसे मानवताको प्रेरित तथा अनुप्राणित करनेवाले, मानवीय मूल्योंके प्रतिष्ठापक श्रीरामकी, जनप्रेम तथा सामाजिक समता, लोकमतनिष्ठा, अन्याय-प्रतिकार, अत्याचार-दमन, ऊँच-नीच-भेद-भावरहित, वन्य-जाति-प्रेमसे ओत-प्रोत आदर्श लीलाएँ हमारा भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक हर प्रकारसे सम्मार्जन, प्रसादन, प्रोन्नयन करनेवाली हैं। उनके आचरणसे ही मानवताका मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

लोकधर्मकी मर्यादाओंको बाँधकर उनका पालन करने और करानेवाले लोकादर्श श्रीरामकी शौर्य आदिसे समुज्वल एवं मण्डित आदर्श लीलाएँ उत्तम चरित्रके लिये वाञ्छित सभी सद्‌गुणोंसे परिपूर्ण हैं। वे मानवके चरित्रको ऊँचा उठानेमें, पारिवारिक आदर्शोंकी स्थापना करनेमें, समाजके लिये माङ्गलिक विधानकी सृष्टि करनेमें तथा राष्ट्रिय

चरित्रके मालिन्यको दूर करके उसे आलोकित करनेमें पूर्णतः सक्षम हैं। वे भारतवर्षकी यावत् सांस्कृतिक धाराओंको मिलानेवाली, समस्त जनता, समस्त वर्णों और वर्गोंके सम्पूर्ण जीवन-यात्राके लिये प्रेरणाप्रद तथा आदर्श उपस्थित करनेवाली हैं। अतः मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वह अपना जीवन मानवता और मर्यादाके पथका अनुगमन करनेवाले समस्त मानवीय गुणोंके आदर्श श्रीराम-जैसा बनाकर स्वयं सुख-शान्ति प्राप्त करे तथा परिवार, समाज और राष्ट्रको समृद्धि, विकास एवं उन्नतिके मार्गपर ले चलनेमें सक्षम बने।

उनके शास्त्रानुकूल आचरणोंको देश-काल-परिस्थितिके अनुसार मर्यादित ढंगसे सम्पादित करनेवाली आदर्श लीलाओंसे भारतके ही नहीं, अपितु विदेशोंके भी मैक्समूलर, कामिल बुल्के, प्रो० वरान्निकोव, जोन्स, कीथ, ग्रिफिथ, नेशनल, ओमन, रेम्से, मेकडानल्ड आदि विद्वान् आकृष्ट हुए हैं। उनसे मानवता गौरवान्वित हुई है। इंडोनेशिया-जैसे मुस्लिम-देश और थाईलैंड-जैसे बौद्ध देशमें श्रीराम, रामायण और रामलीला—ये उनकी अपनी श्रेष्ठतम सांस्कृतिक धरोहर हैं। फिर भारतमें—अपने देशमें जाति-पंथ-निरपेक्ष श्रीराम सर्वमान्य आदर्श क्यों नहीं बन सकते? क्या भारतमें उनको राष्ट्रिय एकताका प्रतीक माननेके लिये हमें इंडोनेशियाके उदाहरणकी ओर देखना पड़ेगा?

स्मरण रहे! सम्पूर्ण विश्वमें भारत जिस संस्कृतिके कारण पूजनीय रहा है, उस संस्कृतिका स्वरूप राम-संस्कृतिसे ही निर्मित हुआ है। यह संस्कृति सुरक्षित रहेगी तो भारत राष्ट्र भी सुरक्षित रहेगा। यदि यह संस्कृति न बची तो भारत राष्ट्र भी नहीं बचेगा और यह संस्कृति तभी बचेगी, जब यह देश आर्यावर्तके प्रतिनिधि-पुरुष श्रीरामसे निर्विवाद-रूपसे जुड़ेगा। यहाँकी राष्ट्रियता, संस्कृति और राष्ट्रके प्रतीक श्रीराम राष्ट्रिय अखण्डताके प्रमाण-पत्र हैं। यदि यह देश उनकी संस्कृति और उनकी प्रेरणाओंसे जुड़ा रहेगा तो उसकी अखण्डता अक्षुण्ण रहेगी और सांस्कृतिक एकता भी अभंग रहेगी।

अतः प्राणिमात्रको चाहिये कि वह लीलावतारी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी आदर्श लीलाओंसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए उसे अपने जीवनमें कार्यान्वित करे तो उसके स्वयंके, देशके, विश्वके, सनातन भारतीय संस्कृतिके और प्राणिमात्रके लौकिक-पारलौकिक साधनोंकी अभिवृद्धि होगी। इसीमें आदर्श लीलाओंकी पूर्णता है।

हनुमान्के माध्यमसे सेवकोंके गर्वका दमन

(श्रीशिवनाथजी दुबे एम्० कॉम्०, एम्० ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य हुआ। भगवान् श्रीकृष्ण एवं भगवान् श्रीराम—दोनों आन्तरिक दृष्टिसे एक ही हैं। भगवान् अपने प्रिय भक्त एवं सेवक श्रीहनुमान्के बिना रह ही नहीं सकते।

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने सोचा कि अपने कहलानेवाले भक्तों एवं सेवकोंमें जो अभिमान और दुर्गुण प्रवेश कर गये हैं, उन्हें अवश्य दूर करना चाहिये, अतः प्रिय भक्त हनुमान्को अपनी लीलाके माध्यमसे अपने पास बुलानेका निश्चय किया। भगवान् श्रीकृष्णके निश्चय करनेमात्रसे ही प्रिय भक्त हनुमान् द्वारकाके संनिकट ही एक उपवनमें विराजमान हो गये और भगवन्नामका संकीर्तन करते हुए वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ने, पेड़ हिलाने और फलोंको खाने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामाके लिये पारिजात-हरण किया था, अतः सत्यभामाजीके मनमें यह गर्व रहता था कि भगवान्का सर्वाधिक स्नेह केवल मुझपर ही है; क्योंकि मैं सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हूँ। अपने सौन्दर्यके गर्वमें उन्होंने एक बार भगवान्से कह भी दिया कि क्या जानकीजी मुझसे अधिक सुन्दर थीं, जो उनके लिये आप घने वनोंमें भटकते-फिरते और विलाप करते रहे। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण मौन रहे।

सत्यभामाकी तरह चक्र भी यह गर्व किया करते थे कि मैंने ही देवराज इन्द्रके वज्रको पराजित किया था और गरुड भी इसी प्रकार मनमें यह सोचा करते थे कि मेरे ही सहयोगसे भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रपर विजय प्राप्त कर सके थे। श्रीकृष्णने विचार किया कि ये सब अपने होकर गर्व

करें—यह मुझे सह्य नहीं है। इन सेवकोंके गर्वका दमन किया जाना नितान्त अपेक्षित है।

भगवान् श्रीकृष्णने गरुडजीको आदेश दिया कि 'गरुड! द्वारकाके उपवनमें एक बंदर है, उसे पकड़कर मेरे पास शीघ्र ले आओ। उस बंदरको पकड़कर लानेका साहस यदि तुममें हो तो अकेले ही जाओ, नहीं तो अपने साथ सैनिकोंको भी लेते जाओ।' गरुड अपने मनमें यह सोचने लगे कि 'भगवान् मुझे एक साधारण बंदर पकड़कर लानेके लिये भेज रहे हैं, दूसरी ओर यह भी कह रहे हैं कि यदि उस बंदरको अकेले न पकड़ सको तो साथमें सैनिकोंको भी लेते जाओ। यह मेरे लिये बड़ी ही लज्जाकी बात है।' गरुडने उस उपवनमें अकेले ही जाकर देखा कि श्रीहनुमान्‌जी उनकी ओर पीठ करके फल खाते जा रहे हैं और राम-नामका कीर्तन भी करते जा रहे हैं। पहले तो गरुडजीने हनुमान्‌जीको डरा-धमकाकर ले जानेका प्रयास किया; परंतु जब हनुमान्‌जीपर इसका लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा, तब गरुडने उनपर आक्रमण कर दिया। पहले तो वे छोटे-छोटे पक्षियोंकी तरह उनके साथ खेलते और मुस्कराते रहे; परंतु गरुड जब न माने तब हनुमान्‌जीने उन्हें अपनी पूँछमें लपेटकर जरा-सा कस दिया। गरुड छटपटाने लगे; फिर उन्होंने अपने आनेका कारण बताते हुए कहा कि भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे मैं यहाँ आपको बुलाने आया हूँ।' तब हनुमान्‌जीने गरुडको छोड़ दिया और कहा—'यद्यपि राम एवं कृष्णमें कोई भेद नहीं है, दोनों एक ही हैं, फिर भी मैं तो सीतानाथ भगवान् श्रीरामका ही पक्षधर होनेके कारण श्रीकृष्णके पास जाना उचित नहीं समझता हूँ।' हनुमान्‌ने यह उत्तर देकर भगवान्‌की कल्याणकारी लीलामें सहयोग प्रदान किया।

अभी गरुडका गर्व समाप्त नहीं हुआ था, वे सोच रहे थे कि यदि मैं पकड़ न लिया गया होता तो हनुमान्‌को बलपूर्वक ले जा सकता था। गरुडने दूसरी बार हनुमान्‌पर आक्रमण किया। भगवान् श्रीकृष्णका दूत जानकर हनुमान्‌ने उनपर जोरसे प्रहार नहीं किया, बल्कि हलके हाथसे पकड़कर उनको समुद्रकी ओर फेंक दिया। समुद्रमें गिरनेपर गरुड बहुत देरतक कष्टसे विलखते-छटपटाते रहे। कोई और उपाय न देखकर अब वे भगवान् श्रीकृष्णका हृदयमें ध्यान करने लगे। कुछ ही क्षणमें उन्हें द्वारकाका प्रकाश दीख पड़ा, तब वे भगवान् श्रीकृष्णके पास गये। श्रीकृष्णने उनकी सभी बातें सुनीं और मुसकराये। अभीतक गरुडके मनमें तीव्र गतिसे उड़नेका गर्व शेष था। गरुडजी सदैव यह सोचा करते थे कि बलमें हनुमान् भले ही मुझसे अधिक हैं; परंतु उड़नेमें मेरी तुलना पवन भी नहीं कर सकता।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'गरुड! इस बार फिर जाकर तुम हनुमान्‌से कहो कि भगवान् श्रीरामने तुम्हें बुलाया है। अतिशीघ्र चलो। हनुमान्‌को अपने साथ ही ले आना। वे तुम्हारा आदर करेंगे और तुम्हें कुछ भी नहीं कहेंगे।' यद्यपि गरुड जानेमें मन-ही-मन भयभीत हो रहे थे, फिर भी अपनी तीव्र गतिसे उड़नेकी शक्तिका प्रदर्शन करनेके लिये वे चले गये।

भगवान् श्रीकृष्णने सत्यभामासे कहा—'सीताजीका रूप धारण करके आओ, हनुमान्‌जी आ रहे हैं।' चक्रसे कहा—'सावधानीपूर्वक पहरा दो, कोई भी द्वारकामें प्रवेश न करने पाये।' सत्यभामाजी पूर्ण शृंगारके साथ अपने सौन्दर्यके गर्वमें मत्त होकर भगवान् श्रीकृष्णके वाम-भागमें आकर बैठ गयीं तथा सुदर्शनचक्र पूर्ण सतर्कताके साथ द्वारकाके फाटकपर पहरा देने लगे। अब भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं धनुष-बाणधारी रामभद्र बनकर बैठ गये।

गरुडकी हनुमान्‌के पास जानेकी हिम्मत नहीं पड़ी। उन्होंने साहस बटोरकर दूरसे ही कहा— 'भगवान् श्रीराम आपको बहुत ही जल्द बुला रहे हैं। आप मेरे ही साथ चल सकें तो चलें, अन्यथा मेरे कंधेपर बैठ जायँ, मैं लेता चलूँ, क्योंकि आपको चलनेमें देर हो सकती है।'

हनुमान्‌ने अत्यन्त प्रसन्नतासे कहा—'मेरा परम सौभाग्य है, जो भगवान् श्रीरामने मुझे बुलाया है। तुम चलो मैं आता हूँ।' गरुडने सोचा कि ये क्या कह रहे हैं। मुझसे पीछे चलकर ये देरमें ही तो पहुँचेंगे! परंतु गरुड भयभीत थे, हनुमान्‌से फिर कुछ भी कहनेका उन्हें साहस नहीं हुआ। अत: वे चुप्पी साधे वहाँसे चल पड़े। जाते हुए मार्गमें सोच रहे थे कि भगवान्‌के पास चलकर अपनी तीव्र गतिसे उड़नेका प्रदर्शन अवश्य करूँगा।

हनुमान्‌जी गरुडसे पूर्व ही द्वारकामें पहुँच चुके थे। हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें यह द्वारका नहीं थी, बल्कि अयोध्या थी। फाटकपर सुदर्शनचक्रने जोरदार शब्दोंमें हनुमान्‌से कहा—'तुम्हें प्रवेश नहीं करने दूँगा।' हनुमान्‌जीने कहा—'तुम भगवान्‌के दर्शनमें अवरोध पैदा कर रहे हो?' इतना कहकर हनुमान्‌ने चक्रको पकड़कर अपने मुँहमें रख लिया। भगवान्‌के महलमें जाकर हनुमान्‌ने देखा कि सिंहासनपर भगवान् श्रीराम विराजमान हैं, परंतु उन्हें माता सीताके दर्शन नहीं हो सके। हनुमान्‌जीने भगवान्‌के श्रीचरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके पश्चात् कहा—'महाराज! आज माता सीताजी कहाँ हैं? उनके स्थानपर यह कौन बैठी है? आपने किस दासीको इतना सम्मान दे दिया है?' सत्यभामाजी लज्जित-सी हो गयीं। उनके सौन्दर्यका गर्व नष्ट हो गया। भगवान्‌ने कहा—'हनुमान्! तुम्हें किसीने यहाँ आनेसे रोका नहीं? तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे? ' हनुमान्‌जीने अपने मुँहमेंसे चक्रको निकालकर भगवान्‌के समक्ष रख दिया। चक्र लज्जित हो गया और अब उसका गर्व नष्ट हो चुका था। इसके बाद जब वेगपूर्वक दौड़ते हुए गरुड आये, तब उन्होंने देखा कि पवनकुमार तो पहलेसे ही यहाँ उपस्थित हैं। अब गरुडका एकमात्र अवशिष्ट तीव्र गतिसे उड़नेका गर्व भी समाप्त हो गया। इस प्रकार श्रीहनुमान्‌जीके माध्यमसे भगवान्‌ने अपने तीनों सेवकोंके गर्वको नष्ट किया। भगवान्‌के प्रत्येक कार्यमें कोई-न-कोई कल्याणकारी लीला छिपी रहती है।

श्रीहनुमान्‌जीमें अभिमानका लेशमात्र भी अंश नहीं है। हनुमान्‌जीका जीवन अभिमानसे सर्वथा मुक्त रहा है। यही कारण है कि भगवान्‌ने अपने भक्तों एवं सेवकोंके गर्वको नष्ट करनेका कार्य हनुमान्-जैसे निरभिमान भक्तको निमित्त बनाकर किया और ऐसे ही अन्य अनेक भक्तोंके माध्यमसे लीला-लीलामें ही अपने शरणागतों, भक्तों, सेवकों एवं अभिमानी सहचरोंका गर्व भंगकर उनकी मुक्तिका मार्ग प्रशस्त करते हैं—परमार्थ-सत्ताके यथार्थ शक्तिका ज्ञान प्रदानकर उन्हें निर्मल बनाते हैं।

भगवान् विष्णुकी कल्याणकारी लीला

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

भगवान् श्रीविष्णुकी महिमा अपरम्पार है। वे अपने भक्तोंकी रक्षा, सहायता तथा मोक्षके लिये समय-समयपर विभिन्न लीलाएँ किया करते हैं। इन लीलाओंसे जहाँ भक्तोंका कल्याण होता है, वहीं जगत्‌को भी भौतिक तापोंसे मुक्ति मिलती है। जब कभी उनका कोई परम भक्त सिद्ध, योगी और तपस्वी होते हुए भी सांसारिक प्रभावके कारण अपने भक्तिमार्गसे भटक जाता है, उस समय भगवान् संसारके समस्त कष्टोंको स्वयं सहन करके भी उसको मोह-मायाके जालसे मुक्त कर देते हैं। आइये, भगवान् विष्णुकी ऐसी ही एक दिव्य और निराली लीलाका दर्शन करें—

एक समयकी बात है, ऋषिवर नारद हिमालयपर भ्रमण कर रहे थे। वहाँसे कुछ ही दूरीपर उन्हें एक रमणीक स्थलपर परम पवित्र आश्रम दिखायी पड़ा। उसके समीप एक गुफा भी थी। भगवती भागीरथीकी कल-कल करती जलधारा, पर्वतोंके बीच बहते झरनोंका सुमधुर संगीत, विशाल और घने वनोंसे आच्छादित तथा बर्फसे ढकी ऊँची-ऊँची पर्वत-मालाओंके सौन्दर्यने मुनिका मन मोह लिया। नारदजीने विचार किया कि भगवान्‌के भजनके लिये इससे उपयुक्त स्थान और कहाँ मिलेगा? इसी उद्देश्यसे नारदजीने गुफामें प्रवेश किया और एक पवित्र स्थान देखकर वहीं भजनाविष्ट हो गये। निर्मल-मन और प्रभु-चरणोंमें दृढ़ अनुरागके कारण ऋषिको समाधि लग गयी। उधर देवराज इन्द्रको जब पता चला कि नारदजी हिमालयकी कन्दरामें घोर तपस्या कर रहे हैं तो अमरावतीका राज्य जानेके भयसे वे विचलित हो गये। शंकालु-स्वभावके इन्द्रने ऋषिकी तपस्याका यही मूल कारण समझा और तुरंत ही कामदेवको ऋषिके तपको भंग करनेका आदेश दे दिया। इन्द्रकी आज्ञा पाकर कामदेव उसी कन्दरामें पहुँच

गया, जहाँ ऋषिवर नारद भजनके आनन्दमें निमग्न थे। संत तुलसीदासजी श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड (१२६। १—४)-में लिखते हैं—

तेहि आश्रमहिं मदन जब गयऊ। निज मायाँ बसंत निरमयऊ॥
कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा। कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा॥
चली सुहावनि त्रिबिध बयारी। काम कृसानु बढ़ावनिहारी॥
रंभादिक सुर नारि नबीना। सकल असमसर कला प्रबीना॥

इस प्रकार कामदेवने अपनी समस्त उद्दीपक शक्तियों और मदोन्मादक कलाओंके माध्यमसे ऋषिके तपको भंग करनेका असफल प्रयास किया, परंतु नारदजी पूर्ववत् निश्चल अपने भजनमें लीन रहे। अन्तत: कामदेवकी हार हुई। अपने इस कुकृत्यसे लज्जित और कुपित कामदेवने ऋषिके चरणोंमें पड़कर क्षमा-याचना की। उसके स्पर्शसे जब मुनिका ध्यान टूटा, तब उन्होंने वस्तुस्थितिको समझकर संत-स्वभावके कारण उसको क्षमा कर दिया।

कामदेव तो चला गया, परंतु इसपर विजयका मद अहंकारके रूपमें मुनिपर सवार हो गया। इस कन्दर्प-दलनके अभिमानसे प्रभावित होकर महर्षि नारद तत्क्षण ही भजन छोड़कर शीघ्र गुफासे बाहर आ गये और कैलास पर्वतपर पहुँचकर भगवान् शंकरको अपनी विजयका वर्णन सुनाने लगे। मुनिके विजयोन्मादका अहंकार स्पष्ट झलक रहा था—यह देख भोलेनाथको ऋषिपर तरस आ गया, उन्होंने नारदको सम्मति दी कि अपनी इस उपलब्धिका प्रदर्शन विष्णुभगवान्‌के समक्ष न करें। शंकरजी इसके परिणामको जानते थे; परंतु अहंकारके प्रभावसे नारद तुरंत ही ब्रह्मलोकमें विष्णुभगवान्‌के समीप पहुँचकर अपनी गर्वोक्तिपूर्ण विजयश्रीकी सम्पूर्ण लीला उन्हें सुनाने लगे।

यह सुनकर भगवान् अनेक प्रकारसे नारदकी प्रशंसा करते हुए उनको अहंकार-मुक्त करनेके लिये अपनी मायाका स्मरण किये। अब तो ऋषि भगवान्‌के श्रीमुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर और अधिक अहंकारी हो गये। इसी अवस्थामें नारद हाथोंमें वीणा लिये श्रीहरिका गुणगान करते हुए वहाँसे प्रस्थान कर गये।

नारदजीके मार्गमें भगवान्‌ने अपनी मायाके माध्यमसे एक अत्यन्त रमणीक मनोरम और शोभायमान नगरीका निर्माण कर दिया। इसकी सुन्दरता अनायास ही सबका मन मोहनेमें सक्षम थी। उस माया-नगरीके राजाका नाम था शीलनिधि! इस तेजस्वी राजाकी विवाह-योग्य एक रूपवती कन्या थी जिसका नाम था विश्वमोहिनी। इसका रूप-लावण्य साक्षात् लक्ष्मीजीको भी मोहित करने योग्य था। राजाने अपनी कन्याके विवाहके लिये स्वयंवरकी घोषणा कर दी थी, इसी कारण अनेक राजा-महाराजा, वीर और पराक्रमी अपने वैभवपूर्ण प्रदर्शनके साथ नगरमें डेरा डाले हुए थे। इस स्वयंवरके दर्शन-हेतु नारदजी अपना मोह संवरण न कर सके और राजाके महलमें पहुँच गये। राजा शीलनिधिने ऋषिका समुचित आदर-सत्कार करके आसन ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। राजाने उपयुक्त अवसर जानकर नारदजीसे अपनी कन्याका भविष्य जाननेकी उत्सुकता प्रकट की। कन्या विश्वमोहिनी मुनिको प्रणामकर उनके समीप बैठ गयी। राजकन्याके रूप-लावण्यसे मोहित हो वे वैरागी नारद आज रागी हो गये। उस कन्याके गुण देखकर उनके मनमें स्वयं ही उसे वरण करनेका विचार बन गया। राजा शीलनिधिको सभी प्रकारसे संतुष्ट करके एक पंख-कटे पक्षीकी भाँति आहत होकर वे विष्णुलोककी ओर चल पड़े और रास्तेभर यही विचार करते रहे कि केवल भगवान् विष्णुका रूप ही इस कन्याका वरण करनेमें सहायक हो सकता है।

विश्वमोहिनीके रूप-लावण्यके आकर्षणमें बेसुध हुए मुनि विष्णुलोकमें पहुँच गये। भगवान् विष्णु क्षीरसागरमें लक्ष्मीजीके संग विश्राम कर रहे थे। नारदने विधिवत् दोनोंको प्रणामकर अपने मनकी वेदनासे अवगत कराते हुए भगवान् विष्णुसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! आप अपना रूप मुझे प्रदान करें, तभी मेरी मन:कामना पूर्ण होगी।' 'भगवान्' मन-ही-मन अपनी माया-लीलाका प्रभाव देख मुसकराते हुए नारदसे बोले—

जेहि बिधि होइहि परम हित नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार॥

(रा०च०मा० १। १३२)

नारदजी उनके वचनसे आश्वस्त हो पुनः राजमहलके स्वयंवर-कक्षमें पहुँच राजाओंके मध्यमें स्थान ग्रहण कर लिये हैं। नारदजीको पूर्ण विश्वास था कि विष्णुभगवान्की रूप-माधुरीसे युक्त मेरे मुखड़ेपर आकर्षित होकर विश्वमोहिनी मेरा ही वरण करेगी। भगवान्की मायाके प्रभावसे उनका प्रदान किया हुआ स्वरूप केवल राजकुमारीको ही दिखायी देता था। सभा-मण्डपमें विराजमान अन्य लोगोंको नारदके मूल स्वरूपके ही दर्शन हो रहे थे।

स्वयंवर प्रारम्भ हुआ। विश्वमोहिनी अपने हाथोंमें जयमाल लिये स्वयंवर-कक्षमें घूमने लगी। राजकुमारीने जब वानरका मुख धारण किये भयंकर स्वरूपधारी व्यक्तिकी ओर निहारा तो डरके मारे पुनः उस ओर देखनेका साहस नहीं किया। इधर नारद अपना मुख आगे कर-करके राजकन्याको आकर्षित करनेका असफल प्रयास करते रहे। इसी कक्षमें राजाके वेशमें भगवान् विष्णु भी बैठे थे। राजकुमारी उनके रूपपर मोहित हो गयी और उनके गलेमें जयमाला पहना दी। इस प्रकारसे भगवान्ने विश्वमोहिनीका वरण किया और अपनी दुलहनको संग ले अपने लोकको प्रस्थान कर गये।

इधर उसी स्वयंवर-प्राङ्गणमें शिवके गण भी उपस्थित थे। उन्होंने एक दर्पण लाकर नारदजीको दे दिया तथा उसमें अपना मुखड़ा देखनेकी प्रार्थना की। अपनी असफलतासे कुपित हो ऋषिने दर्पण फेंक दिया और राजमहलके मध्यमें बने सरोवरके किनारे जाकर बैठ गये। नारदने जलमें जब अपनी मुखाकृतिका प्रतिबिम्ब देखा तो बंदरका स्वरूप देखकर क्रोधित हो गये। अपने मनमें नारदने निश्चय किया कि आज भगवान्को उनके इस कृत्यके लिये या तो शाप दे दूँगा अथवा अपने प्राणोंकी आहुति दे दूँगा। ऐसा विचारकर नारद विष्णुलोककी ओर चल पड़े। मार्गमें ही भगवान् विष्णु विश्वमोहिनीके संग दिखायी दिये। भयंकर मर्मान्तक पीडा और भारी अपमानसे पीडित नारदने उनके समीप पहुँचकर भगवान्को अनेक प्रकारसे भला-बुरा कहा और अन्ततः अपने मनकी शान्तिके लिये शाप दे दिया। गोस्वामीजी लिखते हैं—

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी॥
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारि बिरहँ तुम्ह होब दुखारी॥

(रा०च०मा० १। १३७। ७-८)

भगवान् श्रीहरि अपने भक्तके हितमें ऋषिका शाप शिरोधार्य कर लिये और ऋषि-शापकी सत्य-प्रतिष्ठा-हेतु पृथ्वीपर रामके रूपमें अवतार ग्रहण किये। वनवासके समय जब जानकीजीका हरण हुआ, तब वानर-रूपधारी सुग्रीव और हनुमान्जीकी सहायतासे वे सीताजीको रावणके बन्धनसे मुक्त कराकर पुनः उन्हें प्राप्त किये। भगवान्ने जहाँ अपने भक्तके शापको सार्थक किया, वहीं अपनी विभिन्न लीलाओंके द्वारा जगत्का कल्याण भी किया। इस प्रकार लीला-वपुधारी भगवान् विष्णु अपने विभिन्न माया-लीलाओंसे जगत्का सदैव कल्याण करते रहते हैं।

श्रीमद्भागवतमें दिव्य लीला-तत्त्व

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

श्रीमद्भागवत भगवत्-लीलाका एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसे श्रीवल्लभाचार्यजीने भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् विग्रह कहा है, इसका अभिप्राय यह है कि भागवत पढ़ते या सुनते ही एक ऐसे रसका प्रवाह उमड़ पड़ता है कि उसमें सब डूब जाते हैं—देह-गेह, इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषय, मन-बुद्धि, चित्त-अहंकार, देश-काल, यहाँ तक कि अनुभव और अनुभव करनेवाला भी नहीं बचता। भागवतकी भूमिकामें कहा गया—

श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

एक शर्त जरूर है, भागवत या मानस पढ़ना हो तो केवल चोंच मारनेका भाव न हो, बल्कि डूबनेका मन हो। डूबनेका मन तभी बनता है, जब त्रिताप प्रबल हो जाते हैं, अन्धकार निगल जाता है, दिक्कालका बोध नहीं होता, कर्ता और ज्ञाताका मद झर जाता है, मनुष्य अपनेको तृणसे भी तुच्छ तथा तरुसे भी अधिक सहिष्णु बना लेता है, मान लेनेके लिये नहीं, अपितु मान देनेके लिये प्रस्तुत हो जाता है और जब अपनी क्षुद्रता विशाल भगवत्कृपासुधा-वारिधिमें बहनेके लिये अकुला जाती है।

श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ ऐसे ही भावसे होता है। व्यास महाभारत रचकर, पुराण रचकर, वेदको संहिताबद्ध करके भी मनमें खालीपनका अनुभव करने लगे, सोचने लगे—कुछ तो नहीं किया जिससे मन भरे, ज्ञानदीप दिखलाया, पर मेरा स्वयंका मन तो दीपित ही नहीं हुआ। नारद आये और बोले—'इतना सब कुछ किया, तब भी इतना पछतावा क्यों?' '**अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो?**' व्यासने कहा—'हाँ, ऐसा ही कुछ है, आप ही मेरी इस खिन्नताका निदान करें।' नारदने कहा—'आपने भगवान् वासुदेवकी लीला नहीं गायी, नैष्कर्म्यकी बात की, पर अच्युत-भावके बिना नैष्कर्म्यका क्या अर्थ, और आँखोंके अंजन बने श्रीकृष्णके भावके बिना निरंजन ज्ञान भी मल ही है—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।

आप समाहित-मनसे उस अच्युत-भावकी बात करें, जो एक बार मिल जाय तो च्युत ही नहीं होता। नारदने यह भी कहा कि मुझे भी जो इस लीलाका रस मिला, उसका इतिहास यह है कि मैं दासीका पुत्र था, मेरी माँने साधुओंकी सेवा की, मैं बचपनसे ही सत्संगमें—लीलानुवादमें रस पाने लगा, माँ चल बसी, साधु-मण्डलीके साथ विचरने लगा, मेरी प्रीति कथा-रसमें बढ़ती गयी और वह भगवान्के लिये आकुलतामें परिवर्तित हो गयी। इसी कारण मुझे कल्पान्तरमें नारद-देह मिली। भगवान् बड़े विचित्र हैं, ये निष्किंचन तो स्वयं हैं, जिसपर प्रीति करते हैं, उसे भी पहले निष्किंचन बना देते हैं। आज आप निष्किंचनताका अनुभव कर रहे हैं, आप उनकी प्रीतिके पात्र हो गये।'

ऐसे व्यासने ध्यान-योगसे भागवत-कथा रची, उसे शुकदेवको बतलाया और शुकदेवने मृत्युके शापसे पीडित राजा परीक्षित्को सुनाया। कथा सुनाते समय पहले यह संकेत किया कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने महाप्रयाणके पहले उद्धवको भागवत-तत्त्वकी दीक्षा दी, उन्हें बदरिकाश्रम भेजा। विदुरकी भेंट उद्धवसे हुई, उद्धवने कौरवों-पाण्डवोंके महाविनाशकारी युद्धकी, यादवोंके कलह और विनाशकी, श्रीकृष्णके महाप्रयाणकी कहानी सुनायी और संक्षेपमें अपनी आँखोंके सामने घटती हुई-सी लीलाका स्मरण किया। उद्धव और विदुर दोनों भाव-विह्वल हो गये, विदुर कुछ और जानना चाहते थे, उद्धवने कहा—'भगवान्ने मैत्रेय ऋषिको आदेश दिया है कि आपको भागवत-तत्त्वका उपदेश करें।' इस प्रकार सूत-शौनक-संवाद, शुक-परीक्षित्-

संवाद, मैत्रेय-विदुर-संवाद और श्रीकृष्ण-उद्धव-संवाद—इन चार संवादोंमें भगवत्कथा पूरी होती है। परंतु कथाके लिये पात्रता आती है श्रीकृष्णके उस अनुग्रहसे जिसमें सब कुछ (जिसे कुछ कहा जा सकता है) छिन जाता है, बस रिक्तता भर जाती है, उस रिक्ततामें पर्युत्कण्ठा जगती है—कब मिलेंगे वे चरण, जिनके न्याससे धरती रोमांचित हुई।

इस उत्कण्ठाके तीन स्तर हैं, जैसा कि मृत्युके समय वृत्रासुरने कहा—एक उत्कण्ठा है असहाय चिरौटेकी, उसके पंख नहीं उगे हैं, दिनभर घोंसलेमें कुलबुलाता रहता है, घोंसलेके मुँहसे झाँकता रहता है, शाम होते ही भय और अकुलाहटसे माँकी बाट जोहने लगता है—कब आयेगी माँ और चोंच खोलकर स्वयं चारा डालेगी। इस अवस्थामें निस्सहायता नरम है और केवल एक ही सहारा मालूम है, दूसरा सहारा भी नहीं मालूम। दूसरी अवस्था है बछड़ेकी, जिसमें अपनी भी कुछ उछल-कूदकी शक्ति है, पर वह शक्ति माँके स्तन्यसे मिलती है। दिन ढलते ही जैसे बछड़ेको भूख सताती है और उसकी माँ भी अकुलाती-रँभाती हुई आती है तथा बछड़ेकी भूखसे पिन्हा जाती है—उत्कण्ठा दोनों ओर उग्रतर हो जाती है। तीसरी अवस्था है प्रियतम और प्रियतमाकी, जिसमें प्रयत्न और ज्ञान—इन दोनों शक्तियोंका विकास तो रहता है, परंतु आकुलताका चरम उत्कर्ष आ जाता है। इस आकुलतामें कुछ भी अपेक्षा नहीं रहती। बस, जैसे परदेश गये प्रिय प्रियाको आनेकी अवधि दे गये, अवधि बीतने लगी, प्रिया सोचने लगी—आ क्यों नहीं रहे हैं। शायद आ रहे हैं। नहीं, अब नहीं आयेंगे। क्यों नहीं आये! ऐसे कितने संकल्प-विकल्प होते हैं और उसकी प्रतीक्षा दुःसह हो जाती है, एक-एक पल छटपटाहटका एक शिखर बनता जाता है, साँसमें अकुलाहट समा जाती है, कमलनयनको देखनेके लिये आँखें बंदनवार बन जाती हैं—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

भागवतका आरम्भ ही श्रीकृष्णकी उपस्थिति और अनुपस्थितिके दो चित्रोंसे होता है। उपस्थितिका चित्र पहले लें। श्रीकृष्ण महाभारत-विजयके बाद युधिष्ठिरको भीष्मके पास ले जाते हैं, कहते हैं—'इनसे जो सीखना हो सीख लो।' युधिष्ठिर भीष्मके पैताने खड़े हो जाते हैं। भीष्म उपदेश देकर गणना करते हैं कि अब सूर्य उत्तरायण होनेको हैं, शरीर छोड़ना है। शरीर छोड़नेके पहले श्रीकृष्णसे प्रार्थना करते हैं—'सामने आ जाओ, मैं बस तुम्हें देखना चाहता हूँ, तुम्हारी उसी अकुलाई—परेशान-मुख-छबिको अपने भीतर पाना चाहता हूँ। जब युद्धमें घोड़ोंकी टापोंसे रौंदी जाती धरतीके धूलिकणोंसे सने हुए तुम्हारे लहराते केश बार-बार तुम्हारे पसीने-पसीने होते चेहरेपर आ जायँ और पसीना पोंछने लगें, तुम्हारा कवच मेरे बाणोंसे छिद गया हो, तुम मेरी बात रखनेके लिये कि 'युद्धमें हथियार धारण करनेको विवश कर दूँगा', अपनी प्रतिज्ञा भूल गये और रथका चक्का लेकर मुझे मारने दौड़ पड़े, मैं उस अकुलाहटका ध्यान करना चाहता हूँ, मेरे वेध्य! आओ, मुझे वेध्य बनाओ'—

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्-
कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमान-
त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥

श्रीकृष्णकी यह धूलिधूसर थकान और परेशानी बड़ी मोहक है। बचपनमें भी जब वे गउओंकी धूलिसे सने वनसे गायोंको आगे करके लौटते थे तो प्रतीक्षातुर गोपियोंकी आँखोंके उत्सव बन जाते थे, विरह-व्रतकी उपासी आँखोंके पारण बन जाते थे। वह उपस्थिति एक महापर्व है, जीवनका महान् उत्सव है। ऐसे उत्सवपर हजार-हजार विपदाएँ न्योछावर हैं, जिन विपदाओंके कारण वे झाँकने आ जाते हैं, जैसे कुन्तीने श्रीकृष्णके विदा होते समय कहा था—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

'तुम जा रहे हो, तुम एक पल निहार देते थे, ये वन, पर्वत, नदियाँ उल्लसित रहते थे, इसकी सब शोभा छीने जा रहे हो तुम।' श्रीकृष्ण द्वारका चले गये, इन्द्रप्रस्थपुरी उदास हो गयी, द्वारका विहँस उठी, उनसे मिलनेको आतुर उनकी बाट जोहती पत्नियाँ उमंगमें शिथिल उठ नहीं पायीं,

बच्चोंको भेजा, इन्हें गोदमें ले लें, अपनी दृष्टि वहीं लिपटा दी और अन्तमें मिलनेकी अभिलाषा तो पूरी न होनी थी, पूरी नहीं हुई, अपनी अन्तरात्मासे कहा—'तुम मत चूको, भर लो उन्हें' और अन्तरात्मा तो भरी ही, उमगी भी, आँखें छलक आयीं, बहुत रोका कि प्रिय भीतर ही रहें, प्रियके मिलनका सुख भीतर ही रहे, पर वह सुख कहाँ समाता है, आँसू बनकर बह चला—

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना
दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम्।
निरुद्धमप्यास्त्रवदम्बु नेत्रयो-
र्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात्॥

अब अनुपस्थितिकी प्रतीति करायें—

श्रीकृष्णका समाचार नहीं मिला। अर्जुन द्वारका गये, लौटे तो हर प्रकारसे लुटकर। उनका सारा तेज चला गया, युधिष्ठिर उन्हें देखते ही घबरा उठे, प्रश्न-पर-प्रश्न करने लगे, कौन पाप तुमसे हुआ कि तुम्हारा चेहरा श्रीहीन हो गया, अन्तमें अनुमान लगाया—'हो न हो इसका यह कारण है, कि श्रीकृष्ण चले गये और तुम्हें लगता है कि प्रेष्ठतम आत्मबन्धु और हृदयरूप श्रीकृष्णके बिना सब सूना है, नहीं तो ऐसी मलिनता क्यों तुम्हारे चेहरेपर होती'—

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना।
शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक्॥

और अर्जुन कुछ देरतक चुप रहकर फूट-फूट कर रो पड़े, बोले—'महाराज, बन्धु बनकर हरिने मुझे धोखा दिया, ऐसे चले गये। मेरा वह सारा तेज लेते गये जिससे देवता भी विस्मयमें पड़ जाते थे। उनके वियोगमें सब अशुचि हो गया है। जैसे प्राण चले जायँ तो शरीर शव हो जाता है, वैसे ही यह पृथ्वी शव हो गयी है, इसे देखा नहीं जाता।'

उस विराट्की अनुपस्थितिका विराट् अनुभव ही भागवतका घनाच्छन्न आकाश है और ऐसे अनुभवकी छायामें मृत्युके बोधसे जगी हुई प्यास ही उस आकाशको पिघलाती है और ऐसा रस बरसता है कि मोक्ष भी अपार्थ (निष्प्रयोजन या अर्थहीन) हो जाता है, बड़ा-से-बड़ा सुख तुच्छ और हेय हो जाता है। मरण-पीडा ही द्वार है—द्रीक्षा है भागवतके रहस्यकी।

परीक्षित्की इस मरण-दीक्षासे प्रेरित होकर—जितनी देर गाय दूही जाय उससे अधिक कहीं न टिकनेवाले शुकदेव सात दिनोंतक गङ्गाके किनारे टिक गये एक प्रश्नका उत्तर देनेके लिये कि मृत्युके इस क्षणमें क्या करना चाहिये! इस रिक्तको कौन भरेगा? उत्तर है भागवत। जो व्यक्तिके रूपमें मर जाते हैं, विदेह हो जाते हैं, उन्हें कौन भरता है! यह भागवत। जो श्रीकृष्णके विरहमें ऐसे तड़पने लगते हैं, जैसे अपने प्राण हर रहे हों, प्रत्येक दिशामें उन्हें कहीं धरोहर रखा था, वह धरोहरी कहाँ गया, उन्हींकी तड़पनका, आत्माराम मुनियोंके मनकी अविराम लालसाका आलम्बन ही भागवतका आलम्बन है, ऐसा आलम्बन है जो साथ-ही-साथ उद्दीपन भी है, वही भाव भी है और अनुभाव भी है। श्रीकृष्ण प्यारके आलम्बन हैं, श्रीकृष्ण ही उद्दीपन भी हैं; क्योंकि जगत्की समस्त उद्दीपन-सामग्रीके वे आलम्बन हैं। मेघ उनके लिये आँसू बहाता है, चन्द्रमा उनके विरहमें पीला पड़ता है, समुद्र उनके लिये विलखता है। श्रीकृष्ण ही रोमांच हैं, अश्रुपात हैं, मूर्च्छा हैं। श्रीकृष्ण ही तरह-तरहके संचारी हैं। ईर्ष्या-असूयामें भी श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही प्यार हैं, शायद प्यार ही उनका सबसे अधिक साकार विग्रह है। श्रीकृष्णको देखना हो तो झुरमुटों-झाड़ियोंको देखो, जिनपर पर्त-की-पर्त श्रीकृष्णके विरहमें विह्वल गोपियोंकी चरण-रज पड़ी हुई है, उस रजने उन वनस्पतियोंका अर्धोन्मीलित चैतन्य उन्मीलित कर दिया है।

भागवतकार ऐसी चैतन्यलीलाके लिये पहले ज्ञानभूमि और कर्मभूमि तैयार करते हैं। तीसरे स्कन्धसे सातवेंतकमें एक तत्त्व-दर्शन देते हैं कि निर्गुण भी स्वेच्छासे कैसे और क्यों गुणवान् होता है! वे निखिल सृष्टिका विस्तार बतलाते हैं, अवतारोंके सोपानोंका वर्णन करते हैं, भगवद्भक्तोंकी लंबी परम्पराका परिदृश्य प्रस्तुत करते हैं—ध्रुव-जैसा बाल-हठी, वृत्र-जैसा पराक्रमी इन्द्रशत्रु, प्रह्लाद-जैसा असुर-पुत्र, बलि-जैसा दानाभिमानी, अजामिल-जैसा पापी कैसे नारायणकी ओर अभिमुख होते हैं, इसका वर्णन करते हैं।

इसके अनन्तर वे भागवतके हृदय श्रीकृष्ण-लीला-आख्यानके पास पहुँचते हैं। श्रीकृष्ण-लीलाका रस ज्ञान-

कर्म तथा भक्ति—इन तीनों सोपानोंको पार करके मिलता है, कच्चे घड़ेमें यह रस नहीं रखा जा सकता, बड़ी आँचमें पके घड़ेमें ही यह रस टिकता है। श्रीकृष्ण-लीलाका माधुर्य-आस्वादन करनेवाली इन्द्रियाँ पहले वन-चारणके लिये जाती हुई गौओंकी तरह श्रीकृष्णके चरणोंका अनुसरण करती हैं और जब श्रीकृष्णका रस उनमें भर जाता है तो वे आगे हो जाती हैं और श्रीकृष्ण उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं। जो आँखें श्रीकृष्णको निरखती हैं, श्रीकृष्णमय हो जाती हैं। फिर उनमें कुछ और देखना नहीं होता, श्रीकृष्ण ऐसी आँखोंको देखनेके लिये अकुला जाते हैं, श्रीकृष्ण स्वयं बछड़ा बन जाते हैं, गोप-बाल बन जाते हैं, गो-गोपियोंका वात्सल्य पानेके अभिलाषी। वृन्दावनसे श्रीकृष्ण प्रस्थान करते हैं तो अक्रूरको यमुना-जलमें और यमुना-तीरपर एक साथ दो-दो रूपोंमें श्रीकृष्ण दिखलायी पड़ते हैं—यमुना-तीरपर अर्थात् वृन्दावन मोरमुकुटधारी गोपबालरूप और यमुनामें चतुर्भुज विष्णुरूप। अक्रूरके रथपर वह विष्णुरूप ही जाता है, गोपाल वृन्दावनमें ही रह जाते हैं। इसलिये उद्धव वृन्दावन जाते हैं, बलराम जाते हैं, श्रीकृष्ण वृन्दावन नहीं लौटते, क्यों लौटें, वे तो वहाँ अभिव्याप्त हैं भूताकाशमें, चिदाकाशमें, बस कुरुक्षेत्रमें जहाँ उन्हें गीताका उपदेश देना है। सूर्य-ग्रहणके अवसरपर मथुरा-वृन्दावनसे आये बन्धुओंसे, सुहृदोंसे, सखियोंसे मिलते हैं, मानो अपनी ही बिछुड़ी हुई प्रकृतिसे मिलते हैं। गोपियाँ जब श्रीकृष्णसे मिलीं तो ऐसा लगा कि अब इतने दिनों बाद दीखे हैं, इन्हें अपलक देख लें, केवल देखें ही न, अपितु आँखोंके द्वारसे इन्हें हृदयमें रख लें और इन्हें भर लें, अब ये जाने न पायें। भागवतकार कहते हैं कि इन गोपियोंको वह भाव प्राप्त हुआ जो उनसे नित्य जुड़े लोगोंको भी कठिनतासे कभी-कभी मिलता है। मोपियोंको वह भाव सहज मिल गया, देखना ही होना हो गया।

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम्॥

श्रीकृष्णने उन्हें देखा और फिर उनके होकर उनसे मिले, कुशल-समाचार पूछा। कैसी विडम्बना है, श्रीकृष्ण क्षमायाची-स्वरमें पूछ रहे हैं—'सखियो! इस निठुर विस्मृतिशील सहचरकी याद तुम्हें आती है। कितने दिन हुए तुमसे मिला नहीं, दुष्टोंके संहारमें लगा रहा। तथा अन्य अनेक कार्योंमें मन अटका रहा। मुझे अकृतज्ञ न मानना, मैं तुम्हारा चिर ऋणी हूँ। यह संसार ही संयोग-वियोगका वितान है, दुरन्त विरह है।' इतनेमें ही श्रीकृष्णने सब कुछ कह दिया और गोपियाँ ऐसी निहाल हुईं कि उनका जीवकोश ध्वस्त हो गया, उनका देह-बन्धन नहीं रहा, वे भाव-रूप हो गयीं और उन्होंने कहा—'इस रस-बने देह-गेहमें बस तुम्हारे चरण-कमल खिलते रहें।'

जो योगेश्वरोंके अगाध हृदयमें कमल खिलता है, वह इस देह-गेहमें रहते हुए संसारी मनमें सदा-सदा खिलता रहे। भागवतकारने नारी-देहको और नारी-चित्तको जो प्रतिष्ठा दी, विशेष-रूपसे सहज-जीवन बितानेवाले देह और चित्तको; वह प्रतिष्ठा ब्रह्मा, नारद, शुक, उद्धव तककी स्पृहाका विषय है।

भागवतमें इसीसे कृष्ण जब इस धरा-धामपर लीलाका संवरण करते हैं, तब वे सबको बिदा कर देते हैं। उद्धवको ज्ञान देकर और अपनी चरणपादुका देकर कहते हैं—'जाओ बदरिकाश्रम, वहाँ जाकर भागवत-भाव जगाओ, नर-नारायणके साहचर्यका अनुभव कराओ।' उद्धव विज्ञानमय होकर भी सांनिध्य छोड़कर जाना नहीं चाहते, बार-बार जाते हैं, बार-बार लौटते हैं—

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो
न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः।
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके
बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः॥

इसके बाद द्वारकासे अलग प्रभास तीर्थ चले जाते हैं। उनके पहले बलराम योगक्रियासे शरीर त्याग करते हैं। श्रीकृष्ण अपने अधिष्ठान-रूप अनन्त मानुषभावके बिदा होनेपर निपट अकेले नदीपर एक पीपलकी जड़पर सिर टेके लेट जाते हैं और अपना दायाँ चरण मोड़कर छातीपर रख देते हैं, जैसे जोखा कर रहे हों। इस चरणमें मेरे हृदयमें बसे प्रियजनोंकी कितनी प्रीति है, मेरा हृदय भी अनुभव कर ले। लोहेके मुसलका एक टुकड़ा समुद्रमें छिटक गया था, उसे मछलीके पेटसे जरा नामक व्याधने निकाला और उसका तीर बनाया, छातीपर मुड़े पैरको दूरसे देखा, उसे मृगकी आकृतिका भ्रम हुआ, उसने तीर चलाया, पास

आया तो उसे चतुर्भुज-रूप दीखा, चरणोंमें गिरा, अज्ञानमें पाप हुआ, कैसे निष्कृति हो, मुझे मार डालो। श्रीकृष्णने कहा—'तुम तनिक भी डरो मत, तुमने मेरी निष्कृति की है, मैंने यदुवंशमें जन्म लिया, ऋषिके शापका एक टुकड़ा मुझे भी लगना-ही-लगना था, उसके पूर्व यह देह नहीं छूटती, तुम अब दिव्य शरीर धारण करके स्वर्ग जाओ। 'जरा' भी चला गया।'

प्रभुको खोजते-खोजते उनके पदचिह्नोंको देखते-देखते दारुक वहाँ पहुँच गये, पदचिह्नसे अधिक बलवान् प्रभावी थी तुलसीकी मालाकी गन्ध जो श्रीकृष्णकी छातीपर विराजमान रहती है, दारुक रथ लेकर विह्वल होकर बोले—'प्रभु, आप मुझे छोड़कर क्यों आ गये, मैं कहाँ जाऊँ, मैं सारथि हूँ, आपको रथपर पाकर।' इतना कहते-कहते गरुडध्वज-रथ घोड़ों-समेत देवलोक चला गया, उसीके साथ पाञ्चजन्य शंख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, शार्ङ्गधनुष—वे सभी वैष्णव आयुध चले गये। श्रीकृष्ण निपट मनुष्य होकर रह गये, दारुकको उन्होंने बिदा किया—'द्वारका जाओ, यदुकुलके विनाशका समाचार दो, अन्त्येष्टिकी व्यवस्था करो, बचे लोगोंसे कहो—'द्वारका छोड़ दें, इन्द्रप्रस्थ चले जायँ', अर्जुन आते होंगे। समुद्र द्वारकाको मेरे जाते ही निगल जायगा।' क्या करता, दारुक भी चला गया। श्रीकृष्णके पास कोई नर नहीं रहा, नारायणका कोई साज नहीं रहा, जिस धरतीपर वे नंगे पैर बचपनमें चले, जिसे अपने स्पर्शसे पुलकित किया, जिसकी रजसे स्वयं शोभित हुए, उसी धरतीपर उसीकी धूलिमें सने श्रीकृष्ण जाने कब चले गये। किसी मनुष्यने नहीं देखा, केवल देवताओंने, पितरोंने, सृष्टिके विधाताने, उमा-महेश्वरने देखा कि धरतीका सर्वस्व छिना जा रहा है, जिसके सौभाग्यके लिये स्वर्ग तरसता है और तरसता रहेगा, देवताओंका मन ललचता रहेगा कि हाय हमें नरलीलाके रसमें हिस्सा क्यों न मिला, कल्प-कल्प जीनेसे क्या लाभ। अल्पायु मनुष्यने जो यह सम्भावना पायी कि अपनी ही सजातीय देहमें अधिष्ठित नारायणका स्पर्श करके स्वर्ग-अपवर्गके लाभका तिरस्कार कर दिया, उसे एक क्षणमें ही सृष्टिका सर्वस्व प्रयोजन प्राप्त हो गया।

भागवतकारने श्रीकृष्ण-लीला-रससे सिक्त भारतभूमिके लिये देवताओंकी तरसका जो वर्णन किया है, वह सबसे उत्तम राष्ट्रगीत ही नहीं, मानव-गीत भी है।

क्या होगा स्वर्ग लेकर? जिसमें योगके अतिशयमें नारायणकी स्मृति चली जाय, क्षणभरकी मानव-देह पाकर यह सम्भावना तो है कि नारायणका अभय-पद मिल सकता है, केवल एक क्षणमें झटकेसे लिये गये संकल्पसे सब अर्पित कर दो नारायणको, अपना कुछ न रखो।

भागवत भारतभूमिका हृदय है। जो पूरा अर्थ नहीं समझता, पर किसी एक क्षणमें कहीं किसी प्रसंगपर विचलित हो जाता है, अश्रु बहने लगता है और रोमांच हो जाता है, तो भागवत उसका हो जाता है।

भागवत अपनी एक ही साँसकी फूँकसे जड़को चेतन कर देता है, वृक्षोंमें पुलक भर देता है, नदियोंमें लहररूपी अंजलियोंमें कमलोपहार रख देता है कि चढ़ाओ उन चरणकमलोंपर जो तुम्हारे पुलिनोंपर महक रहा है—

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीत-
मावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारे-
र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥

भागवतका काव्य शरत्-काव्य है, मेघ बरसकर उजला हो जाय, नदीका जल घटकर निखर जाय, संतृप्त पृथिवी काँस—वनराजियोंसे विहँस उठे, आकाश स्वच्छ हो जाय शुद्ध ब्रह्मकी तरह और उसमें अमृत-कलश चन्द्ररूपी अमृतसे भर जाय, भर क्या जाय, अमृत समाये न समाये, सारा रंग केवल श्यामलतामें समा जाय, सारा राग विराट् विरागमें समा जाय और वह विराग ही एकमात्र राग रह जाय, तब भागवतके रसका, समष्टिमें रासशील-नर्तनशील रसका सही मानेमें प्रादुर्भाव होता है। कैसे समझे और कैसे समझायें इसके मर्मको, भागवतकारकी दृष्टिको कैसे निरखें, जो दृष्टि शरद्-ऋतुके सरोवरमें खिले सरोजके भीतरी पटलोंकी शोभा चुराकर निहार रही है, निहार क्या रही है, समस्त रागोंकी रंगत हर रही है!

अब भागवत-कथाके किन-किन चुने प्रसंगोंपर विशद चर्चा करें, समझमें नहीं आता, कोई प्रसंग तो ऐसा नहीं है जिसे छोड़ा जा सके—'**दुस्त्यजस्तत्प्रसंगः।**'

उस बाल-लीलाकी बात करें, जिसके बारेमें कुन्तीने कहा था कि—'तुम्हारा अपराधी-भावसे बाँधा जाना मुझे बड़ा अच्छा लगता है' या गोपियोंके हाथकी कठपुतली बने

श्रीकृष्णकी बात करें—जो गोपियाँ जैसे नचातीं नाचते, गाते, कभी पीठक लाकर देते, कभी नापनेका वर्तन लाकर देते, कभी पादुका लाकर देते और कभी बाहें दबाते।

अथवा ब्रह्माने जब बछड़ों और ग्वाल-बालोंको छिपा दिया तब श्रीकृष्णने अपनेको हजार-हजार बछड़ों और ग्वाल-बालोंके रूपमें परिवर्तित करके स्वयं उनके अलंकरण, उनकी लकुटी, उनकी वेणु, उनका परिधान, उनका शृंगार बनकर जो कौतुक किया, उसकी बात करें।

और फिर उन गोपियोंकी उस आकुलताकी बात करें कि श्रीकृष्ण मानते नहीं गोचारणके लिये निकल गये हैं, उनके नलिन-सुन्दर पद जाने किन कँकरीली-पथरीली राहोंपर पड़ रहे होंगे, कितने कंटक-कुश चुभते होंगे, उनके चरण इतने कोमल कि हमें अपने अङ्गोंपर रखते डर लगता है कहीं वे कठोर अङ्गमें चुभ न जायँ, पर हाय रे, निर्मोही हमको तो सताते ही हैं, अपनेको भी सताते हैं, ऐसे चंचल, न खुद घर रहा जाता है, न किसीको घरमें चैनसे रहने देते हैं—कितना मन कदरा जाता है उनका इस तरह घूमना सोचकर—

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥

अथवा उस पराक्रमका स्मरण करें—जब उन्होंने अकेले असुरों और मदान्ध द्वेषियोंका निकन्दन किया, सात-सात दुर्दान्त बैल एक साथ नाथ दिये, आँधीके ऊपर सवारी की, कालियके फणोंपर नाचे तथा कनिष्ठिका उँगलीपर गोवर्धन धारण किया, दावानल पिया, मल्लोंको पछाड़ा, वह भी सब सहजभावसे हँसते-हँसते। उस मित्रवत्सलताका स्मरण करें कि दीन-हीन सुदामाके धूलि-धूसर चरण आँसुओंसे पखारे, मित्रसे भर अंक भेंटकर अत्यन्त आनन्दित हुए, उनके ईश्वरत्वका आवरण हट गया, वे निवृत्त हो गये, उनकी आँखें उस आँधी-पानीवाली रातकी स्मृतिसे भर आयीं। जब वे सुदामाके साथ गुरुके आश्रमके लिये वनमें लकड़ी तोड़ने गये थे, कहो मित्र, वह रात याद है, एक दूसरेका हाथ थामे, एक दूसरेको अवलम्ब देते हुए हम भटकते रहे और पानी मूसलाधार बरस रहा था, कुछ सूझ नहीं रहा था, अहा! कैसा था वह मैत्रीका हाथ—

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभि-
र्निहन्यमाना मुहुरम्बुसम्प्लवे।
दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने
गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः॥

या नित्य साथ रहनेवाली महिषियोंकी उस विरह-विह्वलताकी बात करें—जब उन्हें समस्त प्रकृति उनकी सह-दुःखभागिनी लगती थी, कुररी उनके लिये रात-रात टेरती थी, समुद्रकी चीत्कार बंद नहीं होती थी, मेघके आँसू नहीं थमते थे, क्या हो जाता है उसे; जिसे श्रीकृष्णकी विहँसती डीठ लग जाती है—

कुररि विलपसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि कच्चिद् गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ॥

चित्तको यह चीरकर रख देती है दृष्टि। ऐसे विचित्त करनेवाले श्रीकृष्णका अन्तिम रूप मुझे वेधक लगता है। 'बहुतायत' में रहनेवाले काँस ऐसे अकेले, ऐसे निस्सहाय, क्या इसलिये कि चलते-चलते नरदेह तजते-तजते नरदेशकी समूची-की-समूची असहायता और निरुपायता झेल लेना चाहते हों, नरदेहकी पूरी पीडा आत्मसात् कर लेना चाहते हैं, बिना पीर समझे पीर हरेंगे कैसे। समझमें नहीं आता निठुर हैं या कोमल, कहीं कोई ममता नहीं, मोह-छोह नहीं और ऐसा बाँधते हैं मोह-छोहमें, ऐसी चित्त-विनाशिनी लीलाके साथ कौन हो, कृष्णका अनुगमन नहीं किया जा सकता, पर विवशता ऐसी है कि कृष्णके खिंचावमें जाने क्या है? जहाँ है वहाँ रहा नहीं जाता, बस व्रजका भाव बरबस उठता है, चलो, रुकना नहीं है, व्रजविहारीके लिये। व्रजी बनो, व्रज-हठी बनो, व्रज न बन सको तो व्रजकी रेतके कण बनो, कण बनकर भी ठहरो नहीं, उनके लीलासखियोंके चरणोंमें पड़कर हवाके कंधेपर सवार हो जाओ, उनके विरहमें सँवरायी यमुनाके जलमें उतर जाओ।

तुलसी-काव्यमें श्रीराम-लीला

(डॉ० श्रीशुकदेवरायजी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, साहित्यरत्न)

सम्पूर्ण चराचर विश्व उस अव्यक्त ब्रह्मका व्यक्त रूप है। यह उसकी सृष्टि भी है और लीलाभूमि भी। यों तो उनकी लीला शाश्वत और निरन्तर है, फिर भी भगवल्लीलाके दो स्वरूप बताये गये हैं—(१) अन्तरङ्ग-लीला और (२) बहिरङ्ग-लीला। अन्तरङ्ग-लीला परम रहस्यमय है—परम गोपनीय है। यह या तो सिद्धों और साधकोंके लिये प्राप्य है या उनके लिये जो भगवत्कृपाके विशेष पात्र हैं। यह चर्म-चक्षुगोचर नहीं है—*'यह समुझि परै जब ध्यान धरै।'*

लीलाका दूसरा स्वरूप बहिरङ्ग है—जो उस निर्गुण-निराकारके सगुण-साकाररूपमें प्रकट होनेपर यथासमय हुआ करता है। प्रभुकी लीला विभिन्न अवतारों एवं रूपोंमें विविध प्रकारसे सम्पन्न होती है, जिसे वर्तमान देखता है, भूत उसे सँजोकर रखता है और भविष्य उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। भक्त अपने आराध्यके इसी लीला-रूपको विशेष पसंद करता है। भक्तप्रवर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अपने इष्ट पुरुषोत्तम श्रीरामके इसी लीलारूपकी आराधना की है और अपने काव्यमें वर्णन किया है। सम्भवत: इसीलिये इन्होंने अपने महाकाव्य 'मानस' का नाम 'श्रीरामचरितमानस' रखा। न केवल मानसमें, बल्कि अपनी समस्त छोटी-बड़ी रचनाओंमें वे इसी राम-लीलाको उद्घाटित करते रहे।

तुलसीके इष्ट श्रीराम हैं, जिन्होंने त्रेतायुगमें परब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी श्रीदशरथजीके घर अवतार धारण किया था। सर्वप्रथम वे श्रीकौसल्याजीके सामने चतुर्भुज-रूपमें प्रकट हुए। माँ प्रसन्न तो हुईं, पर उन्होंने इस रूपको पसंद नहीं किया और आग्रह किया कि *'तजहु तात यह रूपा'* और *'कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।'* भगवान्ने अनुरोध स्वीकार किया और परिणामत: —*'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।'*—यह है लीलाका महत्त्व और उसका रहस्य।

अरण्यकाण्डमें शूर्पणखा-प्रसंगके पूर्व ही श्रीरामने अपने श्रीमुखसे लीला करनेकी चर्चा श्रीसीताजीके साथ की है, जिससे यह सिद्ध होता है कि उनके मानव-शरीर धारण करनेका उद्देश्य लीला करना है, श्रीराम कहते हैं—

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥

(रा० च० मा० ३। २४। १-२)

तुलसीदासजीके काव्योंमें वर्णित भगवल्लीलाओंको निम्नलिखित खण्डोंमें बाँटा जा सकता है—(१) बाल-लीला, (२) किशोर-लीला या माधुर्य-लीला, (३) रण-लीला और (४) ऐश्वर्य-लीला। प्रथम तीन लीलाओंमें प्रकारान्तरसे ऐश्वर्य-लीलाका पुट हो जाता है और इसीलिये लीलाएँ मधुर-मनोरम होते हुए भी महिमा-मण्डित हो जाती हैं—

देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोर॥

(रा० च० मा० १। १०८)

श्रीरामचरितमानसके अतिरिक्त तुलसीके दूसरे काव्योंमें भी बाल-लीलाओंका वर्णन है। श्रीरामकी बाललीला पालनेसे प्रारम्भ होती है—

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।

(गीता० १८)

एक दिन पलनेकी बाल-क्रीडामें ऐश्वर्य-लीला अनजाने समा जाती है। इष्ट-पूजनका दिन है। माताने बच्चेको स्नान कराया और श्रृंगार करके पलनेमें सुला दिया तथा स्वयं पकवान बनाने गयीं, पूजा कीं और नैवेद्य चढ़ायीं। फिर थोड़ी देरमें जब पुन: पूजा-घरमें गयीं तो देखीं—बच्चा खा रहा है। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वे दौड़ी पलनेके निकट आयीं तो देखीं बच्चा सो रहा है, फिर पूजा-घरमें गयीं तो बच्चा खा रहा था। वे विस्मय-विभोर हो गयीं। उनकी व्याकुलता देखकर बच्चेने अपना मुख खोल दिया तो माताने देखा—

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(रा० च० मा० १। २०१)

कालक्रमसे श्रीरामकी पलना-लीला दशरथ-अजिरमें उतरती है और दशरथ-अजिर-विहारी राम आँगनमें घुटनोंके बल सरकने लगते हैं—फिर चलनेका प्रयास करते हैं—

ठुमुकि चलत रामचंद्र बाजै पैजनिया।
अति आतुर पग धरत धाय गिरत परत लड़खराय

धाय मातु गोद लेत, दसरथ को रनियाँ।

मणिमय भूमिपर श्रीराम खेल रहे हैं—

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।

× × ×

कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं॥

(कवि० १। ४)

इसी बाल-क्रीडाके बीच कागके रूपमें काकभुशुण्डिजी आ जाते हैं और बालक राम उसे पकड़नेके लिये हाथ फैलाते हैं। कौआ उड़ता है। आकाशमें दूरतक जहाँ-जहाँ वह जाता है, उसे लगता है कि बालक उसे पकड़नेके लिये दौड़ा आ ही रहा है। अन्तमें बालक मुसकरा देता है—कैसी विचित्र स्थिति है, तभी तो मानसकारको कहना पड़ता है—

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।

सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥

(रा० च० मा० ७। ८० (क))

यह है प्रभुकी बाल-लीलामें ऐश्वर्य-लीला।

प्रभुकी बाल-लीला कितना मनोरम है। श्रीराम खेलनेमें इतने मस्त हैं कि भोजनकी भी सुधि नहीं—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥

(रा० च० मा० १। २०३। ६)

माताके बुलानेपर—

ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥

(रा० च० मा० १। २०३। ७)

और भोजन भी क्या?

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।

भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

अनुज सखा सँग भोजन करहीं।

(रा० च० मा० १। २०३; १। २०५। ४)

नदी-किनारेका खेल कितना सुहावना है—

सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।

धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै॥

(कवि० १। ७)

श्रीराम कुछ बड़े होते हैं, जनेऊ लेते हैं और फिर गुरुके घर पढ़ने जाते हैं, जहाँ—***'अलप काल बिद्या सब आई॥'*** (रा० च० मा० १। २०४। ४)

श्रीरामकी अब किशोर-लीला प्रारम्भ होती है। सर्वप्रथम ये ऋषि विश्वामित्रके साथ यज्ञ-रक्षामें जाते हैं, जहाँ ताड़काका वध होता है—***'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।'*** इसके बाद ये मुनिके साथ जनकपुरमें धनुष-यज्ञ देखने चल पड़ते हैं। मार्गमें गौतम-आश्रममें शापित अहल्याका उद्धार होता है—

परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही।

(रा० च० मा० १। २११(छं० १))

जनकपुर पहुँचनेपर माधुर्य-लीलाका प्रारम्भ बड़े संयत ढंगसे होता है। परंतु भ्रमणके समय इनके रूपपर मुग्ध होकर सखियाँ झरोखेसे फूल बरसा रही हैं, जो पुष्प-वाटिकामें मिलनेका संकेत है। श्रीरामकी पुष्प-वाटिका-लीला माधुर्यका प्रारम्भ है, जहाँ श्रीसीताको वे देख पाते हैं—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि॥

मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही॥

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥

भए बिलोचन चारु अचंचल।

(रा० च० मा० १। २३०। १—४)

दोनों माधुर्य-रूपमें डूब जाते हैं। चलते समय एकने—*'लोचन मग रामहि उर आनी।'* और दूसरेने ***'सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु·······।'***

आगे चलकर यही माधुर्य परिणयमें प्रकट हुआ।

सम्पूर्ण विवाह-प्रसंगकी लीला माधुर्यपरक है। जिसमें संयम, आदर्श और प्रेमका उत्तरोत्तर विकास है—

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥

सीतहि पहिराए प्रभु सादर।

(रा० च० मा० ३। १। ३-४)

इस माधुर्यमें फिरसे ऐश्वर्य-लीला आ जाती है। जयन्तने उत्पात किया और प्रभुने सींक-धनुषका संधान किया। वह व्याकुल हो उठा। शरण कहीं नहीं मिली। तब प्रभुकी शरणमें आ गिरा। यहाँसे लीला उस ओर चलती है जहाँ प्रेमकी पराकाष्ठा प्रदर्शित होती है, जहाँ श्रीराम लता-पत्रादिकोंसे सीताका पता पूछते हैं—***'पूछत चले लता तरु पाँती।'*** इसी विरही अवस्थामें ऐश्वर्य-लीला हो जाती है। कुम्भज ऋषिके आश्रमसे लौटते हुए शिव-सतीको विरही राम दूरसे ही दिखायी पड़ते हैं। **'सच्चिदानन्द'**

कहकर शिवके प्रणाम करनेपर सती शंकाकुल हो जाती हैं और शिवके परामर्शपर वह परीक्षाके लिये सीताके वेशमें चल पड़ती हैं। मार्गमें सम्मुख सतीको देखकर रामचन्द्रजी कहते हैं—

कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू॥

(रा० च० मा० १। ५३। ८)

सतीने जहाँ दृष्टि डाली, उन्हें सीताराम और लक्ष्मण ही दिखायी पड़े। प्रेमकी पूर्णताकी उद्भावना हनुमान्-राम-संवादमें स्पष्ट है—

तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(रा० च० मा० ५। १५। ६-७)

प्रभुकी रणलीला जितनी रहस्यमयी है, उतनी ही कौतूहलपूर्ण है। ये लीलाएँ खर-दूषण-वधसे ही प्रारम्भ होती हैं और इस रण-लीलाकी पूर्णाहुति होती है लंकाके राम-रावण-युद्धमें। बालि-सुग्रीव-युद्ध भी इसी प्रसंगमें उल्लेखनीय है और परशुरामजीका वाक्-युद्ध भी। इन युद्ध-लीलाओंकी यह विशेषता है कि रामके वीर-वेशमें सौन्दर्य झलक मारता है, जिसे देखकर शत्रु भी विमुग्ध हो जाता है और संधि-प्रस्ताव भेजने लगता है। खर-दूषणने स्पष्ट ही कहा—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

(रा० च० मा० ३। १९। ५)

श्रीराममें वीरताके साथ धीरता है और शक्तिके साथ सौन्दर्य। इनका शर-संधान-लाघव एवं दृढ़ता आदि देखने योग्य है। रणभूमिमें शोणितसे लथपथ श्रीराम कितने सुन्दर लग रहे हैं—

श्रोनित-छींट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महा छबि छूटीं।
मानो मरक्कत-सैल बिसालमें फैलि चलीं बर बीरबहूटीं॥

(कवि० ६। ५१)

लड़ाईमें कभी अपने पक्षकी हानि और शत्रु-पक्षकी जय-जयकारसे श्रीराम विचलित नहीं होते। इनकी रणलीला भी तो विचित्र है—

उमा करत रघुपति नरलीला। खेलत गरुड़ जिमि अहिगन मीला॥

(रा० च० मा० ६। ६६। १)

बालि-युद्धमें तो इन्होंने—*'एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा।'* कहाँतक कहा जाय—*'हरि अनंत हरि कथा अनंता।'*

तुलसी-काव्यकी समस्त रामकथा लीलासे भरी है। इस लीलाका पार पाना सम्भव नहीं। इसका वर्णन कोई क्या करे? रचनाकारके ही शब्दोंमें—

'सागर सीप कि जाहिं उलीचे'॥

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ

(मानस-मराल डॉ० श्रीजगेशनारायणजी 'भोजपुरी')

अनन्त-ब्रह्माण्ड-नायक भगवान् श्रीरामकी समग्र लीलाओंको मुख्यत: दो भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) अन्तरङ्ग-लीला और (२) बहिरङ्ग-लीला। श्रीरामचरितमानसमें दोनों प्रकारकी लीलाओंका वर्णन पूज्यपाद गोस्वामीजी महाराजने किया है। यहाँ हम भगवान् श्रीरामकी अन्तरङ्ग-लीलाओंकी चर्चा संक्षेपमें करेंगे।

भगवान्‌की अन्तरङ्ग-लीलाका प्रथम दर्शन उनके अयोध्यामें अवतरित होते ही होता है। जब अयोध्यामें भगवान्‌का अवतार हुआ तो महाराज दशरथजीने अभूतपूर्व उत्सवका आयोजन किया, उस समय अयोध्याकी अनुपम शोभा देखने ही योग्य थी। श्रीअवधके सद्य:प्रस्फुटित निसर्ग-सौन्दर्यके समक्ष देवलोक, नागलोक, शिवलोक और वैकुण्ठलोक तक भी फीके लगने लगे। भगवान् भास्कर जब अयोध्याके प्राङ्गणसे गुजरने लगे तो नगरके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर ठगे-से रह गये। उनकी आगेकी यात्रा अनजाने स्थगित हो गयी और एक माहतक वे विमुग्धभावसे अयोध्याके सौन्दर्यका अवलोकन करते रह गये। गोस्वामीजी इस लीलाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

कौतुक देखि पतंग भुलाना। एक मास तेइँ जात न जाना॥
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥
यह रहस्य काहूँ नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना॥

(रा० च० मा० १। १९५। ८; दोहा १९५; १९६। १)

पूरे एक महीने अयोध्यामें रात्रि नहीं हुई, किंतु प्रभुके

इस चरित्रको कोई जान नहीं पाया; क्योंकि यह भगवान्‌की गुप्त लीला थी। सूर्यनारायण अपने कुलमें पूर्ण ब्रह्मके अवतारके मनोहारी छवि-दर्शन-हेतु अयोध्यामें रुक गये। यह तो स्वाभाविक है; परंतु उनके रुक जानेसे अयोध्यामें अहर्निश प्रकाश और संसारमें अन्यत्र एक माहतक रात्रि या अन्धकारकी स्थिति बनी रही, यह अस्वाभाविक थी। फिर भी भगवान्‌ने अपनी विश्वविमोहिनी मायासे सभीको ऐसा अभिभूत कर दिया कि इस रहस्यको कोई जान नहीं पाया।

अपने बाल्यकालमें भगवान्‌ने एक और विचित्र लीला की। एक बार जब वे दूध पीकर पलनेमें सोये थे, तब माता कौसल्या अपने इष्टदेवके भोगके लिये प्रसाद बनाने लगीं। भगवान्‌का पूजनकर जब वे नैवेद्य लेने पाकशालामें गयीं तो यह विचित्र दृश्य देखकर चकित रह गयीं। उन्होंने देखा कि बालक राम वहाँ बैठकर प्रसाद-भक्षण कर रहे हैं। माँको जैसे अपनी आँखोंपर विश्वास नहीं हुआ और दौड़कर वे शयन-कक्षमें गयीं, जहाँ कुछ देर पहले रामको पालनेमें सुलाकर आयी थीं। वहाँ जानेपर उनका कौतूहल और अधिक बढ़ गया। देखा, बालक राम गहरी निद्रामें सोये हैं। पुनः पाकशालामें गयीं तो देखा राम मुसकराते हुए भोजन कर रहे हैं—

एक बार जननीं अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह अस्नाना॥
करि पूजा नैबेद्य चढ़ावा। आपु गई जहँ पाक बनावा॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई। भोजन करत देख सुत जाई॥
गै जननी सिसु पहिं भयभीता। देखा बाल तहाँ पुनि सूता॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई। हृदयँ कंप मन धीर न होई॥
इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा॥

(रा० च० मा० १। २०१। १—७)

द्विधा-विभक्त अपने बालक रामकी इस अलौकिक लीलाको देखकर माँ समझ नहीं पा रही हैं कि एक ही बालक एक ही कालमें दो स्थलोंपर कैसे विराजमान है। माता कौसल्याके सुत-विषयक भ्रमका निवारण करनेके लिये भगवान्‌ने एक और लीलाकी रचना कर दी—

देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥

(रा० च० मा० १। २०१)

श्रीरामने अपने मुखारविन्दमें माता कौसल्याको अखिल ब्रह्माण्डका दर्शन कराया। अगणित रवि, शशि, शिव, चतुरानन, सरिता-सिंधु और जंगलोंको देखकर माँ चकित-सी रह गयीं। किंतु माँको भयभीत देखकर भगवान्‌ने विराट्‌रूपका संवरण कर लिया तथा पुनः शिशुरूपमें यथावत् हो गये। विस्मयवंत माता कौसल्याकी बुद्धिमें अब यह दृढ़ निश्चय हो गया कि जिसे मैं अज्ञानवश अपना पुत्र मान बैठी थी, वस्तुतः वह तो जगत्‌का पिता है—

बिसमयवंत देखि महतारी। भए बहुरि सिसुरूप खरारी॥
अस्तुति करि न जाइ भय माना। जगत पिता मैं सुत करि जाना॥

(रा० च० मा० १। २०२। ६-७)

इस लीलाकी गोपनीयता कहीं प्रकट न हो जाय, इसलिये भगवान्‌ने अन्तमें माताजीसे आग्रह किया कि इस लीलाको आप कहीं भी किसीसे कहें नहीं—

हरि जननी बहुबिधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई॥

(रा० च० मा० १। २०२। ८)

भगवान्‌की गुप्त लीलाका एक हल्का-सा संकेत धनुषभंग-प्रकरणमें भी देखनेको मिलता है। धनुषभंगके पश्चात् परशुरामजी अत्यन्त रोषावेशपूर्ण हो वहाँ पधारते हैं। लक्ष्मणसे संवादके पश्चात् उन्होंने श्रीरामके पराक्रमकी परीक्षा लेने-हेतु कहा कि 'अगर आप मेरे धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ा देंगे तो आपको मैं वीर मान लूँगा।' किंतु उस समय परशुरामको अत्यन्त विस्मय हुआ जब परशुरामका धनुष उनके हाथसे छूटकर स्वयं श्रीरामके हाथमें चला गया। अब उनको निश्चय हो गया कि पूर्ण ब्रह्मका अवतार हो गया—

देत चापु आपुहिं चलि गयऊ। परसुराम मन बिसमय भयऊ॥
जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात॥

(रा० च० मा० १। २८४। ८, दोहा १। २८४)

वनवासकालमें भगवान्‌ने अनेक लीलाएँ कीं, उनमें एक अन्तरङ्ग (गुप्त)-लीला भी है। एक दिन जब लक्ष्मणजी फल-मूल लेने जंगलमें गये तो एकान्त पाकर भगवान्‌ने सीताजीसे कहा कि तुम अपनी प्रतिमूर्ति स्थापितकर अग्निमें प्रवेश कर जाओ; क्योंकि अब मैं कुछ नरलीला करने जा रहा हूँ। रावण आकर तुम्हारी प्रतिकृतिका अपहरण कर ले जायगा तथा मैं नारदजीके शापको फलीभूत करनेके लिये विरह-लीला करूँगा। इस गोपनीय लीलाका वर्णन महाकविने

अत्यन्त भावमयरूपमें किया है—

लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद॥
सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥

(रा० च० मा० ३। २३, ३। २४। १—५)

इस गुप्त-लीलाको भगवान्‌ने इतनी बारीकीके साथ किया कि रात-दिन साथ रहनेवाले प्रिय लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान पाये। लंका-विजयके पश्चात् भगवान् लक्ष्मणके द्वारा ही सीताकी अग्नि-परीक्षा कराते हैं तथा इसी व्याजसे नकली प्रतिबिम्बको जलाकर असली सीताको प्राप्त कर लेते हैं। अरण्यकाण्डसे लेकर लंकाकाण्डतक इस गुप्त-लीलाका सूत्र फैला हुआ है; लेकिन आश्चर्य है कि सभी लीलाओंमें साथ देनेवाले श्रीलक्ष्मणजी भी इस गुप्त-लीलाको नहीं जान पाये।

वहीं भगवान्‌ने एक और गुप्त-लीला की। शूर्पणखाद्वारा प्रेरित होकर खर-दूषणके चौदह हजार सैनिकोंने श्रीरामपर चारों ओरसे आक्रमण कर दिया। शत्रुओंके मध्य घिरे हुए अकेले भगवान्‌को देखकर देवता भयभीत हो गये। उनके भय-निवारण-हेतु भगवान्‌ने एक अद्भुत लीला रच दी। उनकी बुद्धिपर मायाका ऐसा आवरण डाला कि सभी सैनिक परस्पर एक-दूसरेको राम समझने लगे; फिर क्या था! आपसमें लड़कर उन्होंने अपना विनाश कर लिया—

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो।
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपु दल लरि मर्‌यो॥

(रा० च० मा० ३। २० (छं० ४))

भगवान्‌की अन्तरङ्ग-लीलापर पटाक्षेप करते हुए गोस्वामीजी लिखते हैं कि जब लंका-विजय करके भगवान् अयोध्यामें आये तो चौदह वर्षसे प्रतीक्षारत नर-नारीके हृदयमें यह उत्कट अभिलाषा रही कि भगवान् सर्वप्रथम मुझसे मिलें। भगवान् भक्तवत्सल हैं, अतः अमित रूप धारण करके उन्होंने सबका मनोरथ पूर्ण किया—

प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥

(रा० च० मा० ७। ६। ४-५)

यद्यपि इस प्रकार उनकी अन्तरङ्ग-लीलाएँ तो उनके प्रत्येक कार्योंमें प्रतिभासित होती हैं, तथापि उसे हम जान नहीं पाते; परंतु जब हमें इसका ज्ञान होता है तो उस परब्रह्म परमात्मप्रभुकी इयत्ताका स्मरण हो आता है, तन-मन पुलकित हो जाता है और अन्ततः हृदयके आनन्द-विभोर होनेकी पराकाष्ठामें सर्वत्र उन्हीं लीलाधारीके दर्शन होने लगते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीला

(डॉ० श्रीभीष्मदत्तजी शर्मा, साहित्याचार्य, एम्० ए० (संस्कृत-हिन्दी-दर्शनशास्त्र), एम्० एड्०, पी-एच्० डी०)

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् स्वरूप है। इसमें उनका पद-पदपर दर्शन होता है। गीतामें सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका सार निहित है। गीताका सम्पूर्ण रहस्य या तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण जानते हैं या भगवान् श्रीवेदव्यास। यही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णने अनुग्रहपूर्वक अपने परम भक्त अर्जुनको अपने विराट्‌रूपका दर्शन कराकर यह अनुभव कराया कि समस्त ब्रह्माण्ड उनके अंदर ही विद्यमान है।

यह समस्त जगत् भगवान्‌की ऐसी अनादि-अनन्त लीला है, जिसका पार पाना भगवत्-कृपाके बिना असम्भव है। शास्त्रोंमें परमपिता परमेश्वरकी आनन्दमयी क्रीडाको ही लीला कहा गया है। धर्मकी रक्षा, अधर्मके विनाश, सत्पुरुषोंके संरक्षण तथा दुष्टोंके निग्रहके लिये परमात्मा युग-युगमें अपनी अवतार-लीला करते रहते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें महारानी कुन्तीका यह कथन और भी सारगर्भित है कि भगवान्‌का अवतार भक्तियोगका विधान करने तथा उनकी लीलाएँ भक्तोंको सुख प्रदान करनेके लिये होती हैं। भक्तोंका आर्तनाद सुनकर उनकी रक्षा करनेके लिये वही परमात्मा कूर्म, मत्स्य, नृसिंह, परशुराम, वामन, राम, कृष्ण गणेश, शंकर, दुर्गा तथा सूर्य आदि अनेक रूपोंमें प्रकट

होकर अपनी लीलाके दर्शनद्वारा उनके कष्टोंका निवारण करते हैं। उनकी यह लीला नित्य है।

श्रीमद्भगवद्गीताका ग्यारहवाँ अध्याय विश्व-दर्शनयोगके नामसे विख्यात है। दसवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे उनकी विभूतियोंको सुनकर अर्जुनने उनसे उनके ईश्वरीय रूपको देखनेकी इच्छा प्रकट की। अर्जुनकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपना विश्वरूप-दर्शन कराया। उनका यह विश्वरूप-दर्शन उनकी दिव्य लीला है। श्रीकृष्णने अर्जुनको जब यह बताया कि मैं सभी प्राणियोंका आत्मा हूँ—'**अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः**' तथा मैं ही समस्त प्राणियोंका आदि, मध्य और अन्त हूँ—'**अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च**' एवं आदित्योंमें मैं विष्णु, ज्योतियोंमें सूर्य, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, देवताओंमें इन्द्र हूँ और प्राणियोंमें चेतना, रुद्रोंमें शंकर, पर्वतोंमें सुमेरु पर्वत, सेनापतियोंमें स्कन्द, देवर्षियोंमें नारद, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, हाथियोंमें श्रेष्ठ ऐरावत नामक हाथी हूँ एवं मनुष्योंमें मैं राजा, दैत्योंमें प्रह्लाद, पक्षियोंमें गरुड, सर्पोंमें वासुकि, शस्त्रधारियोंमें राम, नदियोंमें भागीरथी गङ्गा, विद्याओंमें अध्यात्मविद्या तथा सृष्टिका आदि-अन्त और मध्य मैं ही हूँ और अविनाशी काल भी मैं ही हूँ। तब अर्जुनको यह दृढ़ विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण साक्षात् परमपिता परमेश्वर हैं और यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं इनका मानवरूपमें दर्शन कर रहा हूँ, किंतु उसे उनके ईश्वरीय रूपको देखे बिना पूर्ण संतुष्टि नहीं हो रही है। उचित भी यही है जब साक्षात् नारायण सम्मुख हों और उनका अनुग्रह भी भक्तपर हो तो फिर उनके परम ऐश्वर्यपूर्ण रूपका दर्शन भक्तोंको अवश्य मिलना चाहिये। अतः अर्जुनकी प्रार्थनापर परम अनुग्रहपूर्वक श्रीकृष्णने अपनी ऐश्वर्य-लीलाका दर्शन कराते हुए उससे कहा—'हे अर्जुन! तुम मेरे नाना प्रकारके एवं नाना वर्ण और आकारवाले सैकड़ों तथा हजारों रूपोंको मुझमें देखो। आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, मरुद्गणों तथा बहुत-से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय मेरे रूपोंको देखो। मेरे शरीरमें एक ही जगह स्थित समस्त चराचर जगत्को और अन्य जो कुछ भी देखना चाहते हो, उसे देखो, किंतु मेरा यह विराट् रूप तुम अपने इन प्राकृत नेत्रोंसे नहीं देख सकते; इसलिये तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान कर रहा हूँ, उनसे समस्त विभूतियों और ब्रह्माण्डको मुझमें देखो—

पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च॥
पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम्॥

(गीता ११।५—८)

वेदान्तदर्शनके अनुसार जो (आत्मा) मनुष्यके शरीरमें विद्यमान है, वही (आत्मा) ब्रह्माण्डमें व्याप्त है। इसी परम सत्यको साकार करनेके लिये श्रीकृष्णने अर्जुनको अपना वह विराट् रूप दिखाया, जो अनेक मुख-नेत्रोंवाला, अनेक अद्भुत दर्शनवाला, अनेक दिव्य आभूषणोंवाला, अनेक दिव्य शस्त्रोंको उठाये हुए, दिव्य मालाएँ धारण किये हुए, दिव्य गन्धका लेप किये हुए सब प्रकारसे आश्चर्यमय, प्रकाशमय, अनन्तरूप और सब ओर मुखवाला था। हजारों सूर्योंके प्रकाश-जैसा प्रकाश भी शायद ही उस विराट्रूपके प्रकाश-जैसा हो। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तथा अन्य सभी देवी-देवता, पितर, यक्ष, राक्षस, सिद्ध आदि सभी उस विराट्-रूपमें अर्जुनको दिखायी दिये। जिस प्रकार वेदवर्णित पुरुषसूक्तमें परमात्माके दिव्य स्वरूपके दर्शन होते हैं, उसी प्रकार अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णके विराट्रूपमें सब कुछ देखा और उस दिव्य स्वरूपको देखकर उसने भगवान्की स्तुति करते हुए उनसे प्रसन्न होनेकी प्रार्थना की। भगवान्ने उसे आशीर्वाद दिया और युद्धमें विजयी होनेका वरदान दिया; फिर अर्जुनको अपना मानव-रूप दिखाकर विराट्-रूपसे भयभीत हुए अर्जुनको उन्होंने भयमुक्त किया। वास्तवमें यह सब भगवान् श्रीकृष्णकी ऐश्वर्य-लीला है। इससे यह सिद्ध होता है कि वस्तुतः परम सत्ता एकमात्र परब्रह्म परमात्माकी ही है, अन्य सब भ्रममात्र है। इसीलिये भगवान् श्रीकृष्णका यह वचन हमें सदा स्मरण रखना चाहिये—

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७।७)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझसे उत्कृष्ट अन्य कुछ नहीं है। मालाके सूत्रमें पिरोये हुए मणियोंके समान यह समस्त ब्रह्माण्ड मुझमें पिरोया हुआ है।

वेदान्तदर्शनमें '**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**'—जगत्‌को मिथ्या और ब्रह्मको सत्य मानकर यह कहा गया है कि '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**'। अर्थात् यह सब कुछ ब्रह्म है, उससे अतिरिक्त कुछ नहीं है। भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वदर्शन कराकर अर्जुनको यह शिक्षा दी कि मैं ही सब कुछ हूँ। सब मेरा ही स्वरूप है। मेरेसे अतिरिक्त जो भी प्रतीति हो रही है, वस्तुतः वह भ्रम ही है। इस दिव्य ज्ञानको प्रदान करनेके लिये उन्होंने अर्जुनको यह दिव्य रूप दिखाया और कहा कि अनन्य भक्तिद्वारा ही मैं प्राप्य हूँ। इसलिये जो मेरे लिये कर्म करनेवाला, मेरे परायण, मेरा भक्त, अनासक्त तथा सब प्राणियोंमें वैररहित होता है, वही मुझे प्राप्त होता है। यहींसे भक्तियोगका प्रारम्भ होता है। जब व्यक्ति ईश्वरको ही सब कुछ समझने लगता है, तब वह एकमात्र उन्हींका भक्त हो जाता है। यही मानव-जातिके प्रति भगवान् श्रीकृष्णकी विश्वरूप-दर्शन-लीलाका दिव्य संदेश है।

'कुमारसम्भव' में वर्णित शिवलीला

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीरंजन सूरिदेवजी)

भारतीय चिन्तनमें 'लीला' शब्दकी परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। कोई भी विस्मयकारी कार्य 'लीला' हो जाता है। इस शब्दका अर्थ भी व्यापक है; किंतु 'लीला' शब्द प्रायः रामलीला और कृष्णलीलाके अर्थमें रूढ हो गया है। 'लीला' को सगुणोपासनाकी दृष्टिसे मानवकी भाँति व्यक्त शरीर परब्रह्मकी केलि-क्रीडाओंका वाचक शब्द माना जाता है। परंतु परब्रह्मकी यह क्रीडा निष्काम और निष्प्रयोजन होती है, अतएव अनेकान्तवादी दृष्टिसे भगवान्‌की लीला निर्गुण भी है। सगुण-रूपमें भोक्ता होकर भी निर्गुण-रूपमें अभोक्ता बना रहना भगवान्‌का लीलाविलास ही तो है।

प्रकृति और पुरुष अथवा शक्ति और शक्तिमान् लीला-निरत एक ही ब्रह्मके द्विधा-विभक्त रूप हैं और दोनोंका परस्पर नित्य सम्बन्ध है। नित्य-सम्बन्धसे उनकी लीला भी नित्य-निरन्तर चलती रहती है और उनकी लीलाकी यह निरन्तरता ही जागतिक जीवन-चक्रका मूलाधार है। लोकजीवनमें भी किसीका सामान्यसे कुछ विशिष्ट आचरण 'लीला' ही कहलाता है।

शक्ति और शक्तिमान् जिस समय परस्पर लीला करते हैं, उस समय वे दोनों आपसमें एक दूसरेके लीलाकार्योंसे पूर्वावगत रहते हैं, फिर भी लोकरञ्जनके लिये मनुष्य जैसी अनभिज्ञताकी स्थितिका प्रदर्शन करते हैं। वस्तुतः लीलाके समय शक्ति और शक्तिमान् असली रूपमें न होकर छायामूर्ति बन जाते हैं। इसलिये 'छद्मवेश' और 'अनुकृति' शब्द भी लीलाके ही पर्याय हैं।

महाकवि कालिदासने अपने 'कुमारसम्भव' महाकाव्यमें महाशक्ति पार्वती और महाशक्तिमान् परमेश्वर शिवकी अतिशय मोहक लीलाको अनभिज्ञतामूलक ललित भाव-संदर्भमें ही उपन्यस्त किया है। स्वरूप-शक्तिके साथ भगवान् शिवकी क्रीडा केवल लीला ही तो थी। चूँकि लीलामें लालित्य सहज-भावसे संनिहित रहता है, इसलिये लीला किसी प्रकारकी हो, अच्छी ही लगती है।

महादेव शिवको वरके रूपमें प्राप्त करनेके लिये महादेवी पार्वती कठोर तप कर रही थीं। उन्होंने अपने उग्र तपसे तपस्वियोंके भीषण तपको भी मात कर दिया था। परमेश्वर शिवको परमेश्वरी पार्वतीकी शिवभक्तिकी परीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। वह ब्रह्मचर्यके तेजसे दीप्त तरुण तपस्वीका लीलारूप धारणकर पार्वतीके समक्ष उपस्थित हुए। जटाधारी ब्रह्मचारी शिव साक्षात् ब्रह्मचर्यके अवतारकी तरह दिखायी पड़ते थे। वह मृगचर्म एवं पलाशका दण्ड धारण किये हुए थे, उनकी वाणीमें प्रगल्भता थी।

अतिथि-सत्कारमें कुशल पार्वतीजीने आगे बढ़कर उस तरुण ब्रह्मचारीकी अगवानी की और विधिपूर्वक उसका आतिथ्य किया। कुछ क्षण-पश्चात् बिना किसी भूमिकाके

लीला-ब्रह्मचारी शिवजीने 'सुन्दरि!' 'कमलनयने!' 'सौम्यदर्शने!' 'कृशोदरि!' आदि विभिन्न प्रकारके मधुर सम्बोधनोंके साथ पार्वतीजीके उदात्त रूप, अलौकिक गुण, उच्च कुल और कठिन तपश्चर्याकी खूब प्रशंसा की। उसके बाद उनके तपोजनित कष्टपर दुःख और सहानुभूति प्रकट करते हुए उन्होंने उनसे पूछा—

कियच्चिरं श्राम्यसि गौरि विद्यते
ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः।
तदर्धभागेन लभस्व कांक्षितं
वरं तमिच्छामि च साधु वेदितुम्॥

(कुमारसम्भव ५। ५०)

'हे पार्वति! तुम अब कितने कालतक तपस्याका कष्ट उठाती रहोगी? मेरे पास भी पूर्व-संचित बहुत सारा तप है। उसका आधा भाग लेकर तुम अपने अभीष्ट वरको प्राप्त करो। अर्थात् तुम अपने अनुकूल पति प्राप्त करो। लेकिन मैं इतना अवश्य जानना चाहूँगा कि तुम्हारा अभीष्ट वर कौन है?'

तब पार्वतीजीने अपनी सखीकी ओर देखा। उनकी सखीने उस लीलावपु ब्रह्मचारीको बताया कि मेरी सखी पार्वतीके वर भगवान् शिव हैं। उन्हें प्राप्त करनेके लिये जब कोई दूसरा उपाय नहीं सूझा, तब यह अपने पिता पर्वतराज हिमालयकी आज्ञासे तपस्या करने हिमगिरिके गौरीशंकर शिखरपर स्थित मयूरोंसे मण्डित इस तपोवनमें चली आयी—

'जगाम गौरीशिखरं शिखण्डिमत्'॥

(कुमारसम्भव ५। ७)

उस सखीने लीला-ब्रह्मचारी शिवको आगे बताया कि मेरी सखी पार्वतीने इस तपोवनमें जिन वृक्षोंको स्वयं लगाया था, वे इसके कठोर तपके साक्षी बनकर अब फलोंसे लद गये हैं, किंतु महादेव शिवको पतिके रूपमें प्राप्त करनेका इसका मनोरथ अभीतक फलीभूत होनेकी बात तो दूर अंकुरित भी नहीं हो पाया है। (कु० सं० ५। ६०)

पार्वतीजीकी कठिन तपस्याके विषयमें उनकी सखीकी बात सुनकर लीला-शिवने किसी प्रकारकी प्रसन्नता नहीं व्यक्त की। उन्होंने पार्वतीजीसे पूछा—'तुम्हारी सखीने जो कुछ कहा है, क्या वह सत्य है या परिहासमात्र है?'

ब्रह्मचारीकी बात सुनकर जप करती हुई पार्वतीजीने अपनी स्फटिकमालाको अँगुलियोंसे समेटकर मुट्ठीमें ले लिया और सोच-विचारकर थोड़ेसे नपे-तुले शब्दोंमें कहा—

यथा श्रुतं वेदविदां वर त्वया
जनोऽयमुच्चैः पदलंघनोत्सुकः।
तपः किलेदं तदवाप्तिसाधनं
मनोरथानामगतिर्न विद्यते॥

(कुमारसम्भव ५। ६४)

'हे वेदज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! आपने मेरी सखीसे जो कुछ सुना है, वह सच है। [अपनी ओर संकेत करते हुए] यह तपस्विनी महादेवजी-जैसे उच्च पदस्थ महापुरुषको ही पतिके रूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषिणी है। अवश्य ही मेरी यह तपस्या उन्हींको प्राप्त करनेके लिये है। यही मेरी आकांक्षा है।'

पार्वतीजीके अभीष्ट वरको प्राप्त करनेके दृढ निश्चयको जानकर लीलामय शिव तनिक भी विचलित नहीं हुए, वरन् अपने लीला-विलासका और भी अधिक विस्तार करते हुए उन्होंने पार्वतीजीके समक्ष शिवकी तीव्र निन्दा शुरू कर दी। उन्होंने कहा—'हे पार्वति! भगवान् शिव तो चिता-भस्मसे धूसर अपने शरीरमें सर्प लपेटे रहते हैं। शवसंकुल श्मशानमें वास करते हैं और वह बूढ़े बैलपर सवारी करते हैं। विवाहके बाद जब तुम बूढ़े बैलपर अमङ्गल देवता शिवके साथ घूमने निकलोगी, तब सारे नगरवासी हँसेंगे। तीन-तीन आँखोंवाले उस पुरुषके न तो कुल-वंशका कोई पता है, न ही घर-परिवारका। उनकी धन-सम्पदाका अनुमान तो तुम इसीसे लगा सकती हो कि वे दिगम्बर हैं, नंगे घूमते हैं। कभी-कभी वस्त्रके नामपर व्याघ्रचर्म या हस्तिचर्म लपेट लेते हैं। उस अशुभ व्यक्तिमें तुम्हारा पति बननेकी एक भी योग्यता नहीं है, फिर तुम व्यर्थ ही उनमें क्यों आसक्त हो रही हो?'

अपने अभीष्ट पतिके विषयमें लीला-ब्रह्मचारीकी विपरीत बातें सुनकर पार्वतीजी क्रोधसे काँपने लगीं। फिर भी उन्होंने अत्यन्त धीरतापूर्वक शिवके बारेमें ब्रह्मचारीद्वारा कही गयी एक-एक बातका तर्कपूर्ण ढंगसे जोरदार खण्डन किया और ब्रह्मचारीकी दृष्टिमें शिवके गुणोंके सम्बन्धमें जितनी भी असम्मति और प्रतिकूलता थी उन सबको

सम्मत और अनुकूल सिद्ध किया।

पार्वतीजीने भर्त्सनाके स्वरमें ब्रह्मचारीसे कहा कि तुम्हारे-जैसे मूर्ख लोग ही महापुरुषोंके चरित्रसे अकारण द्वेष करते हैं, क्योंकि उन्हें उनके वास्तविक रूपका ज्ञान नहीं रहता है।

पार्वतीजीने अपने लीलामय शिवकी 'अलोकसामान्यता' और 'अचिन्त्यहेतुकता' को लक्ष्य किया था, इसलिये स्वयं उन लीलामयीने सर्वथा अविचलित-भावसे लीला-ब्रह्मचारीको अपने मनोभावके अन्तिम निष्कर्षसे अवगत कराते हुए कहा—

अलं विवादेन यथा श्रुतस्त्वया
तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनः स्थितं
न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते॥

(कुमारसम्भव ५। ८२)

'अरे ब्रह्मचारी! मैं इस प्रकारके विवादकी कोई आवश्यकता नहीं समझती। शिवजीके विषयमें तुमने जैसा कहा है, वह यदि बिलकुल ठीक भी हो तो भी मेरा मन एकमात्र उनमें ही रमा हुआ है। प्रेम करनेवाला कभी निन्दासे नहीं डरता।'

पार्वतीजीने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा कि जो महापुरुषों या बड़ोंकी निन्दा करते हैं, केवल वे ही पापके भागी नहीं होते, अपितु निन्दा सुननेवाले भी पापके सहभागी होते हैं। पार्वतीजीके इस कथनपर ब्रह्मचारी भगवान् शिवके बारेमें और कुछ विरुद्ध वचन बोलता, इसके पूर्व ही पार्वतीजी वहाँसे चल पड़ीं।

पार्वतीजी ज्यों ही वहाँसे चलीं, त्यों ही लीलाधारी शंकरजीने अपना वास्तविक रूप धारण किया और मुसकराते हुए उन्हें यह कहकर जानेसे रोक दिया—

अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज
क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते॥

(कुमारसम्भव ५। ८६)

'हे नताङ्गि! मैं आजसे तुम्हारे तपद्वारा खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ।' अपने चिराकांक्षित पतिको प्रत्यक्ष देखकर और उनके आश्वस्तपूर्ण वचनोंको सुनकर पार्वतीजी अपना सारा तप:क्लेश तत्क्षण ही भूल गयीं, क्योंकि अभीष्ट फलकी प्राप्तिसे पूर्वप्राप्त क्लेश मुरझाये मनको फिरसे हरा कर देता है।'

इस कथा-प्रसंगसे लीलातत्त्वके सन्दर्भमें महाकवि कालिदासकी यह केन्द्रिय भावचेतना उद्भावित होती है कि लीलोत्सुक शक्ति और शक्तिमान्‌की लीला 'अलोकसामान्य' तथा 'अचिन्त्यहेतुक' होती है और लीला-कालमें दोनोंकी मन:स्थिति भावैकरस रहती है। वस्तुत: शक्तिसे ही शक्तिमान्‌को अपने स्वरूपकी यथार्थ उपलब्धि होती है।

कुमारसम्भवमें महाकवि कालिदासद्वारा उपन्यस्त भगवान् शिव और भगवती पार्वतीकी यह लीला-कथा परमार्थत: जागतिक सृष्टिकी उत्पत्ति, विकास और लयकी ही अकथ कथा-गाथा है।

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥

(श्रीमद्भा० १०। ४७। १८)

श्रीकृष्णकी लीलारूप कर्णामृतके एक कणका भी जो रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष, सुख-दु:ख आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। यहाँतक कि बहुत-से लोग तो अपनी दु:खमय—दु:खसे सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिंचन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियोंकी तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनियासे जाते रहते हैं; फिर भी श्रीकृष्णकी लीला-कथा छोड़ नहीं पाते। वास्तवमें उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है—यही दशा हमारी हो रही है।

निर्गुणोपासनापरक रामस्नेहि संत-साहित्यमें भगवल्लीला-दर्शन

(खेड़ापा रामस्नेहि सम्प्रदायाचार्य श्रीपुरुषोत्तमदासजी शास्त्री)

शास्त्रोंमें अनन्त नाम-धाम-रूप एवं लीलावाले परमात्माके निर्गुण तथा सगुण दो रूपोंका विशेष रूपमें उल्लेख प्राप्त होता है। रामस्नेहि-पद्धतिमें इनमेंसे निर्गुण-नामोपासना-पद्धतिके माध्यमसे निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका विशेष प्रतिपादन है। कारण कि इस सम्प्रदायके मूलप्रवर्तक श्रीजैमलदासजी महाराज (दुलचासर)-को वि० सं० १७६० के चातुर्मास्य-कालमें स्वयं भगवान्ने गूदड़ बाबाके रूपमें प्रकट होकर निर्गुण-नामोपासनाका उपदेश दिया था। गूदड़ बाबाके उपदेशको हृदयंगमकर पूर्वमें जैतराम नामवाले वे वैरागी साधु अपना सगुणोपासनापरक पूर्व-वेष छोड़कर जैमलदासजी 'रामस्नेही' बन गये।

इसके बाद उनके उपदेश-आदेशोंका प्रचार करनेवाले रामस्नेहिसम्प्रदायमें श्रीहरिरामदासजी महाराज (सिंहस्थल), श्रीरामदासजी महाराज (खेड़ापा[1]), श्रीद्यालदासजी महाराज (खेड़ापा[2]) आदि अनेक आचार्य हुए। सभी आचार्योंने अपनी वाणीमें स्पष्टरूपेण निर्गुण ब्रह्मका[3] प्रतिपादन किया है।

निर्गुण ब्रह्मपरक होते हुए भी रामस्नेहि-पद्धतिमें परमात्माके सगुणरूपका पूर्ण समादर किया गया है। आचार्योंके अनुभव-वाणीमें निर्गुण तथा सगुणकी भ्रान्ति-निवारणार्थ आचार्योंका स्पष्ट कथन है कि—

हरिया निर्गुण मूल है, सुरगुण शाखा पान।
भगति बीज फल मुगति है, और सकल ध्रम आन॥
सुरगुण निरगुण रामदास, तूं एकोकर जाण।
एक ब्रह्म सब बीचमें, सम्रथ पद निर्वाण॥
किस कूं निन्दिए वन्दिए, एक पिता अरु पूत।
निरगुण सुरगुण यूं भया, (ज्यूं) ताणै पेटे सूत॥

आचार्य-वाणीके अनेक स्थलोंमें इस तथ्यकी सत्यताके दर्शन होते हैं। समय-समयपर हुए परमात्माके विभिन्न अवतारोंमेंसे त्रेतायुगीन मयार्दापुरुषोत्तम श्रीरामावतार तथा द्वापरयुगीन लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णावतारकी भगवल्लीलाएँ रामस्नेहि-जनोंको बहुत ही अनुकरणीय लगीं।

मरजादा पुरुषोत्तम, रामचन्द्र गुरु जेम।
लीला पुरुषोत्तम महीं, जदुपति कृष्ण सुप्रेम॥

इस कारण उन्होंने रामायण, श्रीमद्भागवत एवं श्रीमद्भगवद्गीता आदि सद्ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके इन दोनों अवतारोंकी भगवल्लीलाओंका सार-तत्त्व ग्रहण कर लिया।[4]

रामस्नेहि-जन रामनामरूपी परमधन देनेवाले गुरु महाराजको परमात्माका साक्षात् अवतार मानते हैं। इस कारण उन्होंने अपनी वाणीमें बड़े ही स्पष्ट शब्दोंमें गुरु भगवान्की आध्यात्मिक भगवल्लीलाओंको तथा हृदयंगम किये गये राम-कृष्णकी भगवल्लीलाओंको समान-रूपसे दर्शाया है।

१-खेड़ापाके तृतीय आचार्य श्रीपूरणदासजी महाराजकी वाणीके ग्रन्थ 'गुरुमहिमा' में रामावतारकी भगवल्लीलाका दर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है—

अवतार कला षोडष कहाय, संजुक्त गुणां रेखा सु भाय।
इत सन्त नित्त अवतार धार, घट अनत कला गुण रेख सार॥ १॥
वैहें[5] प्रगट अजोध्यापुरी नांम, यहां भइ नग्री काया स तांम।
ता पिता निमो दशरथ कंवार, यहां ब्रह्म तात जुग जुग मुरार॥ २॥
हित मात कुशल्या कहूँ सोय, यहाँ भइ भक्ती जननी स कोय।
मांई समात[6] कैकई प्रवांन, अप्रीति यहां प्रगटी निधांन॥ ३ ॥
वैहें सीता भइ सतवन्त सुद्ध, यहां भई प्रियै पतिव्रता बुद्ध।
दिल साच वाच लछमण सु वीर, विज्ञान यहां कारण स धीर॥ ४ ॥
भये भर्थ चत्रघण[7], दोय भ्रात, वैराग्य त्याग ऐसे विख्यात।
सुत दोय भये बल बुध विशाल, इह ग्यान एक दूजे दयाल॥ ५ ॥
वड भीर धीर भृत कपीराज, इहां अग्याकारि निजमन अग्राज।
येह भयो समो आनन्द सुभाय, कोउ काल प्रगट असुरांन थाय॥ ६ ॥

१-राम राम निर्गुण कर भक्ती, सगुण छाँड़ देवो आशक्ती। (श्रीद्याल-कृत ग्रन्थ परचीजी)

२-भेष पन्थका संग तजि दीया, होय निरन्तर हरि पद लीया॥ (श्रीद्याल-कृत परचीजी)

३-नमो निर्गुण नमो नाथू, नमो देव निरंजनम्। नमो सम्रथ नमो स्वामी, नमो सकल सिरंजनम्॥
(ब्रह्मस्तुति—श्रीहरिरामदासजी म०)

४-रस रामायण सिरमौर सार, भागोत वचन भागवत उचार। भारत भगवद्गीता विशेष, सो सार सार सब लियो देख॥
(जन्मलीला—श्रीपूरणदासजी म० खेड़ापा ३)

५-उधर, ६-विमाता, ७-शत्रुघ्न।

ताको ज नांम रांवण कहाय, ले गयो सीत पुर लंक मांय।
गढ त्रिकूट दुरंग[1] खाई कहाय, चौफेर घेर सूभर[2] भराय॥ ७ ॥
इक बाग जाग तहाँ सीत ब्राज, जल सजल श्रोज कलियां पुलाज।
यहां प्रगट भयो रावण मनाज, सो बुध सीता ले गयो भाज॥ ८ ॥
पुर लंक अविद्या सिद्ध श्रूप, रंग सार द्वार कीनी अनूप।
वन किलो दुरंग भ्रम रूप नांम, खाई स कुमत ता लगी तांम॥ ९ ॥
जल मोह द्रोह ता विच रहाय, चौफेर घेर सूभर भराय।
इक रमन भवन है बाग सिद्ध, ता कुसंग नांम कहिये प्रसिद्ध॥ १० ॥
विष लहर जहर कलियां नवीन, ता वीच जाय पधरायदीन।
भल भ्रात जास कुंभकरण नांम अहंकार यहां ऐसो गुलाम॥ ११ ॥
पुनि और विभीषण भ्रात थाय, सुधर्म यहां प्रगट्य सुभाय।
ताके ज वडो सुत मेघनाद, अपजस्स यहां जेठो असाद॥ १२ ॥
लख अवर भये ताके सुतान, वीतर्क तर्क इनके कितान।
वेहें भई मन्दोदरि प्रिये प्यार, माया स नार कीनो व्योहार॥ १३ ॥
येह भयो समो ऐसें अशेष, ततकाल रामचन्द्र चढ़ वशेष।
गज बाज साज सिक्का तुरंग, सेन्या स चत्रगुंन[3] लीध संग॥ १४ ॥
वड सूरवीर जोधार सार, गिन कहा कहूं आवै न पार।
अरि मार सार अरू सीत लीध, अवतार धार येह काज कीध॥ १५ ॥

(२) खेड़ापाके द्वितीय आचार्य श्रीद्यालदासजी महाराजके ग्रन्थ 'श्रीगुरुप्रकरण' में 'भागवतसार'-प्रकरणके अन्तर्गत कृष्ण-चरित्र-वर्णनके रूपमें भगवल्लीला-दर्शन इस प्रकार वर्णित है—

जादम्म वंश तातें प्रतष्ट, श्रीकृष्ण रूप तारन्न सृष्ट।
अवतार धरण भगतां सिहाय, अरु ब्रह्मरिषी अवनी उछाय॥ १ ॥
वसुदेव भवन कृष्णं जनम्म, गोकल विचरत आनन्द परम्म।
सब बाल चिरत वय वृन्द ताम, अप्पार चरित असुरां विराम[4]॥ २ ॥
पूतना प्राण पय पान कीन, शंकटासुर मस्तक सजादीन।
पुनि तिणाव्रत्त तोडे किंवाड़, बक्कासुर वच्छासुर पछाड़॥ ३ ॥
जहै धनक भ्रात परलंब अन्त, डावानल राख्या गोप जन्त[5]।
किस भंग नाग दवनं विचार, सब गोप ग्वाल रक्षक मुरार॥ ४ ॥
पुनि नन्द वंचाए उरग अंत, व्रिजकन्या वर्त पूरण वरंत।
जहै जिगपतनी हुय प्रश्न ताम, दुज ताइ खाय वेमुख विरांम॥ ५ ॥
धर गोरधन्न उद्धार कीन, पुनि कामधेनु ले शक्र दीन।
जिह्ना विक्षेप कृष्णं वनाव, कर राम चिरत[6] गोपी उछाव॥ ६ ॥
दुरबुद्ध शंखचूड़स्स मार, अरिष्ट नाम केशी संघार।
अक्रूर दरश गवनं स्तूथ[7], प्रस्थान राम-कृष्ण ग जूथ॥ ७ ॥
व्रजनार व्रेहनी भई तांम, कटाक मुक्ख आरांम सांम।
सपलक्क-सुत्त[8] सांसो निवार, वैराट मुक्ख जमना विचार॥ ८ ॥
परवेश करत वस्तर छिनाय, सिद्धाम जास मुगतं मिलाय।
रंग फूल पैर माली किलान, दिवरूप कुबज्या गंध मान॥ ९ ॥
कवलियापीर गज मुष्ट मार, एहगत्तमत्त चाणूर छार।
भयकंप कंस हुय अन्तकाल, पुनि गुरु संदीपनि भेट बाल॥ १० ॥
मुथरा सुथान जादू प्रतष्ट, हित उग्रसेन जान्यो सिसष्ट।
बलदेव आद उद्धव मुरार, सब जुरासिंद्ध सेन्या संघार॥ ११ ॥
पुनि जमनइन्द कूं मींच दीध, तैहैं कुंशस्थली अस्थांन कीध।
जेहैं वृच्छ कलप आदान राज, प्रापत सुधर्मा सभा काज॥ १२ ॥
जुध जीत रुकमनी हरिहै ताम, शिशपाल जीत खोयन[9] छिनांम।
वेहैं अप्रमान मद मेट सोड़, सब दुष्ट रए आपै स कोड़॥ १३ ॥
षणशंक्र जुद्ध कीनो बलष्ट, बाणासुर छेदे भुजा अष्ट।
जदुनाथ जीत जहां तहां सदाय, पुनि प्राग्य[10] जीत पर मार ताय॥ १४ ॥
पुनि अग्नि नीर सस्तर पहार, सब पवन अनड़ मिट पंच वाड़।
फिर पंच सृंग काटे दयाल, षोड़स्स सहंसशत हरिहै बाल॥ १५ ॥
पुनि नृपत चनेरी सजा दीध, हत मंथ्यावाद देवस्स कीध।
नरपत्तशाल दतवक्र[11] मार, पुनि दइत समर कपि दुमन छार॥ १६ ॥
हत पंच सुरा दइतान आद, कर दगद पुरी-काशी विख्याद।
भारस उतार भूमीक सोय, पाण्डवां प्रीत आनन्द जोय॥ १७ ॥
कर राजसी जिग्ग[12] सन्तोष नृप्प, मनवंछ कर्म सिध काज अर्प।
पुनि विप्र श्राप जदुकुल संहार, सुर अज्ज इन्द वन्दन मुरार॥ १८ ॥
उलकासपात हुय पुरी मांय, परवास[13] छैत्र सब कूं ले जाय।
उद्ध संवाद दे तत्त बोध, आत्माराम आनन्द शोध॥ १९ ॥
इम लीला पुरुषोत्तमं, जदुपति कृष्ण कहाय।
रिषि मुनिजन अवतार संत, सतगुरु सबही मांय॥ २० ॥

१-दुर्गम, २-गहरा समुद्र, ३-चतुरंगिणी। ४-सफाया, ५-जन्तु=गौ आदि प्राणी, ६-रासलीला, ७-स्तुति, ८-श्वफल्क-पुत्र=अक्रूर, ९-अक्षौहिणी सेना, १०-प्राग्ज्योतिषपुर, ११-दन्तवक्त्र, १२-राजसूय यज्ञ, १३-प्रभास (पाटण)-क्षेत्र।

श्रीकृष्णकी लीलाओंसे पगे बुंदेली लोक-गीत

(डॉ० श्रीहरीमोहनजी पुरवार)

बुंदेलखण्डके जन-जीवनमें श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप जहाँ निरन्तर पूज्य है, वहीं भक्त गोपियोंके साथ उनकी तात्त्विक क्रीडा-लीला भी मननीय है। बुंदेलखण्डके गोपीभावपूर्ण लोकगीतोंमें जहाँ मन आनन्दविभोर हो जाता है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णका यह सत्य संदेश प्राप्त होता है कि यह शरीर तो केवल वस्त्र है, इसलिये इस शरीरकी आत्माको परमात्माके साथ मिलने दो। लीला-क्रममें एक बार भगवान् श्रीकृष्ण एक गोपीके घर उसकी गाय दुहने गये, परंतु गोपीने गाय दुहनेसे मना करते हुए उलाहना दी—

कान्ह तोसे अब न दुहाऊँ गैयाँ।
भोर होत खिरकनमें ठाड़े, हेरत चोरकी नैयाँ।
कछु कारे, कछु ओढ़े कमरिया, बिचकत है मोरी गैयाँ॥

—परंतु श्रीकृष्ण वहाँसे हटे नहीं और अपनी तिरछी नजरोंसे गोपीको देखते रहे, जिससे गोपी अपना सब कुछ भूल गयी और श्रीकृष्णके आत्मिक सम्मोहनसे मोहित हो गयी। इस गीतमें इसीका वर्णन किया गया है—

बंक बिलोकन तिरछी चितवन, मन बस गे वा सेन दृगन की।
जबसें कछू न सुहात सखी री, मृदु मुसक्यान वा प्रेम लगन की॥
लोक-लाज कुल-कान न भावत, सुध न रही तब असन बसन की॥

वंशीवालेके नेत्रोंसे मोहित गोपी जब अपने अन्तः-स्तलको देखती है तो अनायास ही भगवत्प्रेमके वशीभूत हो वह कहने लगती है—

कब मेरे मंदिर आय हौ प्यारे घनश्यामा प्रभू।
जैसी किरपा विदुर घर कीनी, जैसी गउअन की सुध लीनी,
जैसी खु गी द्रोपदी दीनी, जैसी कुबरी अपनी कीनी,
ऐसे हमको कभी अपनाय हो, प्यारे घनश्यामा प्रभू॥

जब गोपिकाने अपना यह वृत्तान्त व्रजभूमिसे बाहर रहनेवाली अपनी अन्य सखियोंको बतलाया, तब वे सखियाँ भी श्रीकृष्णके प्रेममें दीवानी होकर कहने लगीं—

चलौ सखी, बसिये तहँ जाइ जहाँ यदुराई॥
नीर बहै यमुना सुखदायी, पीर हटै एक बार नहायी।
बाजत ताल मृदंग सुहाई, गान करै ललितादिक आयी॥
शेष महेश आनंद बढ़ायी, आपनी आपनी सेवा जनायी।
कौन कहै उनकी प्रभुताई, सुर-नर-मुनि सब आनँद पायी॥

एक दिन सभी गोपियाँ इकट्ठी होकर श्रीकृष्णको घेर लेती हैं और हास-परिहास करतीं हुई उनसे उनके श्यामवर्णके विषयमें प्रश्न करती हुई कहती हैं—

तुम हमें नीके लाला कैसे दैये गारी॥
तुमरे भ्रात सभी हैं गोरे, गोरे पितु महतारी।
सांची कहौ न कांची अब तुम भये कहाँसे कारी॥
हास-रास सुनके अरु गुन के, लजीं सभी सुकुमारी।
चतुर बंधु सुखसिंधु मुखनको इक टक रहीं निहारी॥

नटखट नन्दलाला एक दिन दुपहरीमें एक गोपीके घरमें मक्खन खाने घुस गये। छींकेपर मक्खनकी मटकी थी। उसी छींकेसे लटके हुए श्रीकृष्ण मक्खन खा रहे थे। इस समूची लीलाको देख वह गोपी मैया यशोदासे कृष्णकी शिकायत करने गयी। मैया उन्हें डाँटने लगी, परंतु कन्हाईको तो अब मक्खनका चसका लग गया था। इसलिये अब वे गोपियोंको रास्तेमें रोककर उनसे मक्खन छीननेकी लीला प्रारम्भ कर देते हैं। मक्खन छीननेमें कुछ-न-कुछ तो बरजोरी होती ही है, उसी बरजोरीका चित्रण निम्न गीतमें है—

हटो छोड़ो तुम गैल मोरी, गागर ढुडकाई बड़े ढीट हो कन्हाई॥
फटी रेसम की सारी, जर तार की किनारी, टूटी मोतिन लड़ न्यारी।
दूधके झकोरन में बहिंया मुरकायी, बड़े ढीट हो कन्हाई॥

इसी बरजोरीमें गोपी अनमने-मनसे उलाहना देती हुई कहती है कि उसे न तो नन्दबाबासे डर है, न ही यशोदासे। यही उलाहना इस गीतमें वर्णित है—

छोड़ो न डगर हमारी कन्हैया, नांई डरत नन्द बाबासे।
छोड़ो आंचल जान देओ मोहन, फर जे सारी जरतारी कन्हैया।
ओड़े फिरत बटवारी कन्हैया।

एक बार श्यामकी मुरलीकी मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी। वे सभी गोपियाँ अपने शरीरकी सुध-बुध भूल गयीं और श्यामकी मुरलीकी सुरीली तानसे मन्त्रमुग्ध हो गयीं। इसका चित्रण इस गीतमें इस प्रकार है—

कैसी मुरलिया बजाई कन्हैया प्यारे, कैसी मुरलिया बजाई।
गोपीं सभी जहँ जैसी, खड़ी थीं तैसीं सभी उठ धाई॥
हाथ के भूषन पांव में पहिरे, सो पांवके हाथन लाई।

बंसगुपाल सदा देओ दरसन, धन्न-धन्न श्रीयदुराई॥

इन लीलाओंके बाद गोपियाँ यह महसूस करती हैं कि श्याम तो लीलाधारी हैं। यह सब उनकी लीलाओंका ही एक भाग है, क्योंकि श्यामसुन्दरका भेद तो वेदों, पुराणोंको भी नहीं मिल पाया है। इसी कारण वे स्वयं कहती हैं—

तुमरी लीला विचित्र मुरारि हो श्याम छलिया हो बड़े।
घर घर मिसरी माखन खाये, प्यारे सखन आनंद दिवाये॥
गोपिन पकर जैव जो पाये, उनके पति के रूप बनाये।
तुमरा बेदहु न पावें पार हो श्याम छलिया हो बड़े।

गोपियाँ साधारण गोपियाँ नहीं हैं। इनके विषयमें स्वयं श्रीकृष्णभगवान्ने ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखण्ड (२७। २३८। ४०)-में कहा है—

**यथाहं च तथा यूयं न हि भेदः श्रुतौ श्रुतः।
प्राणा अहं च युष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो॥
व्रतं वो लोकरक्षार्थं न हि स्वार्थमिदं प्रियाः।
सहागताश्च गोलोकाद् गमनं च मया सह॥
गच्छत स्वालयं शीघ्रं वोऽहं जन्मनि जन्मनि।
प्राणेभ्योऽपि गरीयस्यो यूयं मे नात्र संशयः॥**

अर्थात् 'जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हममें-तुममें भेद नहीं है। मैं तुम्हारा प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिये प्राणस्वरूप हो। प्यारी गोपियो! तुम लोगोंका यह व्रत लोक-रक्षाके लिये है, स्वार्थ-सिद्धिके लिये नहीं। क्योंकि तुम लोग गोलोकसे मेरे साथ आयी हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ चलना है। अब शीघ्र घर जाओ। मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हो, इसमें संशय नहीं है।'

बुंदेली जन-मानसके मानस-पटलपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंकी गहरी छाप है, जो हम सबको लोकगीतोंकी वाणीमें प्रस्फुरित होती स्पष्ट दिखलायी पड़ती है।

पुरातत्त्वमें श्रीकृष्ण-लीला-चरित्रके शिलापट्टकी प्राप्ति

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशकुमारजी उपाध्याय नार्मदेय, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, आचार्य)

प्राचीन वस्तुओंका सभ्यता-संस्कृतिजन्य निदर्शन पुरातत्त्व कहलाता है। इतिहास, सभ्यता, शिक्षा, समाज, मान्यताएँ, कला आदि सबका वर्णन पुरातत्त्वमें होता है। विभिन्न प्रकारकी प्राचीन कालकी वस्तुएँ और उनका सांस्कृतिक दिग्दर्शन पुरातत्त्वका प्रधान विषय है।

जहाँतक शहडोल जिलेके पुरातत्त्वका प्रश्न है—वहाँकी सर्वप्रथम पुरातात्त्विक खोज प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता पी० डी० बेंगलर महोदयने १८७३-७४ में की, जो कि अंग्रेज सरकारके एक प्रमुख पुरातत्त्व-अधिकरी थे। इसके बाद मेंजर जनरल कनिंघम महोदयने १८८४-८५ में इस स्थानकी पुरातात्त्विक खोजकर अपने ग्रन्थ 'भारतीय पुरातत्त्व'के सातवें खण्डमें शहडोल जिलेका वर्णन किया है। बेंगलर महोदयकी रिपोर्टके समय शहडोलका नाम 'सहजोरा' था। फिर बादमें १८९८ की रिपोर्टसे यह 'शहडोल' हुआ। शहडोलके पुरातत्त्व और इतिहासको कलचुरी-कालीन इतिहासके माध्यमसे अनेक आधुनिक पुरातत्त्वविदोंने इसके खोज एवं प्रदर्शनमें अपना बहुत बड़ा योगदान दिया है तथा समय-समयपर पुरातात्त्विक सर्वेक्षणोंको पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे जन-सम्मुख किया है।

सोहागपुरके इलाकेदार स्व० श्रीराजेन्द्रबहादुरसिंहजी एवं स्व० कुँअर मृगेन्द्रसिंहजीके द्वारा जिलेकी दुर्लभ मूर्तियोंका संग्रह करके पुरातात्त्विक निधिका संरक्षण किया गया है, जो राजाबागमें आज भी दर्शनीय है। यहाँका जिला-पुरातात्त्विक-संग्रहालय भी दर्शनीय है।

लीलाधर लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्णकी लीलासे सम्बन्धित कलचुरी-कालीन शिलापट्ट भी इस जिलेमें सारसडोल और हर्रा नामक गाँवसे प्राप्त हुए हैं। इन शिलापट्टोंका वर्णन कनिंघम और बेंगलरके शोधपत्रोंमें नहीं है। इसकी सर्वप्रथम खोज किसने की यह तो निश्चित नहीं है, पर कुँअर मृगेन्द्रसिंहजीके संग्रहालयमें श्रीकृष्ण-लीलासे सम्बन्धित तीन शिलापट्ट रखे हुए हैं। कुछ शिलापट्ट अभी भी हर्रा नामक गाँवमें हैं। श्रीकृष्ण-जन्मसे सम्बन्धित माता देवकी-द्वारा उन्हें दूध पिलाये जाने आदिका अङ्कन-शिलापट्ट स्थानीय दुर्गा-मन्दिरके शीतला-मन्दिरमें अभी भी लगा हुआ है। श्रीमद्भागवतकी श्रीकृष्ण-लीलासे सम्बन्धित यहाँ प्रमुख चार शिलापट्ट हैं। इन चारों शिलापट्टोंमें श्रीकृष्ण-लीलाका सम्पूर्ण चरित्र दिखाया गया है—

प्रथम शिलापट्टमें—भगवान्के द्वारा पृथ्वीको

आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसद्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या, भगवान्‌का गर्भ-प्रवेश, देवताओंद्वारा गर्भस्तुति, भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य, कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना, गोकुलमें भगवान्‌का जन्मोत्सव, पूतना-उद्धार, शकट-भंजन और तृणावर्त-उद्धार, नामकरण तथा बाल-लीला, श्रीकृष्णका ऊखलसे बँधा जाना और यमलार्जुन-उद्धार आदिके दृश्य हैं।

द्वितीय शिलापट्टमें—गोकुलसे वृन्दावन जाना, वत्सासुर और वकासुरका उद्धार, अघासुर-वध, ब्रह्माजीका मोह, धेनुकासुरका उद्धार, ग्वाल-बालोंको कालियनागसे बचाना, प्रलम्बासुर-उद्धार, गायों तथा गोपोंको दावानलसे बचाना, चीरहरण, वंशीवादन, गोवर्धन-धारण, श्रीकृष्णका अभिषेक, वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाकर लाना, रासलीला, महारास, अरिष्टासुरका उद्धार, अक्रूर-प्रसंग, केशी-उद्धार, श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन, कुब्जापर कृष्ण-कृपा, कुवलयापीड हाथीका उद्धार, चाणूर-मुष्टिक आदि मल्लोंके साथ कंसके उद्धार आदिका चित्राङ्कन बड़ी प्रवीणतासे किया गया है।

तृतीय शिलापट्टमें—जरासंधसे युद्ध और द्वारकापुरी-निर्माण, रुक्मिणी-हरण, प्रद्युम्न-जन्म और शम्बरासुरका वध, शिशुपाल-वध, स्यमन्तकमणि, जाम्बवन्ती-सत्यभामा-विवाह और उषा-अनिरुद्ध-मिलन आदि प्रसंगके चित्रण हुए हैं।

चतुर्थ शिलापट्टमें बाणासुर-युद्ध, राजा नृगकी कथा, बलरामजीका व्रज-आगमन, पौण्ड्रकका उद्धार, पाण्डवोंका राजसूययज्ञ, शाल्व-उद्धार, सुदामा-चरित्र, वसुदेवजीका यज्ञोत्सव, सुभद्राहरण, शिवस्तुति, भृगुजीद्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा, भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-विहारादिका चरित्राङ्कन है।

सम्भवतः इन प्रतिमाओंका निर्माण कलचुरी नरेशोंमें जो वैष्णवपंथी राजा थे, उन्होंने ही कराया होगा, क्योंकि बांधवगढ़में दशावतार विष्णुभगवान्‌के अनेकों शिलाखण्डोंमें उत्कीर्ण पट्ट मिलते हैं, जिनमें शेषशायी विष्णु, वाराह-अवतार, कच्छपावतार आदि प्रमुख हैं। इसी प्रकार मध्यप्रदेशमें अनेक स्थानोंसे श्रीकृष्णके जीवनसे सम्बन्धित शिलापट्ट प्राप्त हुए हैं।

उनमें हम देखें तो सम्पूर्ण मध्यप्रदेशके प्रमुख पुरातात्त्विक निधि-स्थलोंमें श्रीकृष्णका अङ्कन हमें दिखायी देता है। मध्यप्रदेशके सिरपुर जिला रायपुरके लक्ष्मण-मन्दिरके तोरणद्वारोंपर श्रीकृष्ण-लीला, कालियदमन, काम-पराजय, कंस-वध, केशी-वध आदिका चित्रण प्राप्त होता है। ७वीं सदीके प्रतिहार-कालीन जिला विदिशासे प्राप्त केन्द्रीय संग्रहालय गूजरी महल ग्वालियरमें कृष्ण-जन्म एवं कृष्ण-लीलाके स्तम्भ प्राप्त होते हैं। रायपुर जिलेके तुरतुरिया नामक स्थानसे केशी-वध, अरिष्टासुर-वधकी प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। ग्वालियरके चतुर्भुज-मन्दिर एवं मुरैनाके पढ़ावलीके मन्दिरके मण्डलकी दीवारोंके फलकोंपर श्रीकृष्ण-लीला-चरित्र अङ्कित है।

कलचुरी-कालीन गुर्गी जिला रीवाँसे प्राप्त भोपाल-संग्रहालयमें श्रीकृष्णजन्मकी प्रतिमा रखी है। चन्देल-कालीन श्रीकृष्ण-लीलाका अङ्कन खजुराहोमें प्राप्त होता है। कच्छपघात-कालीन थगोन जिला गुनासे प्राप्त कुवलया-पीड-वधकी प्रतिमा प्राप्त हुई है। जिला दतियासे बालाजी गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण तथा परमार-कालीन हिंगलाजगढ़से श्रीकृष्ण-जन्म एवं बाल-कृष्णकी लीलाओंका चित्रण तथा मूर्ति-अङ्कन प्राप्त होता है जो केन्द्रीय संग्रहालय इंदौरमें है। मंदसौर एवं उज्जैनसे गोवर्धनधारी श्रीकृष्णकी प्रतिमा प्राप्त हुई है। कवर्धाके नागवंशी शासकोंके कालकी गोपाल कृष्णकी प्रतिमा मोरमदवे मन्दिरसे प्राप्त हुई है। इस तरह बालकृष्ण, कालियदमन, अरिष्टासुर-वध, कुब्जानुग्रह, कुवलयापीड-वध, चाणूर-वध, शल्य-वध, केशी-वध, गोवर्धनधारी कृष्णका अङ्कन वैष्णव प्रतिमाओंके अन्तर्गत प्राप्त होता है। ग्वालियरके गूजरी महलमें राधाका आलिंगन, माखन-चोरी, रास-क्रीडा, दधि-मन्थन, कंसके मल्ल-युद्ध आदिके साथ भिंडके शिव-मन्दिरमें श्रीकृष्ण-लीला, कालिय-मर्दनके दृश्य मूर्ति-शिल्पमें है। मध्यप्रदेशके सतना जिलेमें बछरा नामक गाँवके स्तम्भपट्टपर पूतना-वध, गोवर्धन-धारण, माखन-लीला, यमलार्जुन-उद्धार, तृणावर्त-वध, केशी-वध, कालियदमनका सुन्दर अङ्कन किया गया है। मध्यप्रदेशकी वैष्णव प्रतिमाओंके अन्तर्गत लीलाधारी कन्हैयाकी लीलाओंको सजीव रूपमें उकेरनेका प्रयत्न किया गया है। चित्रकलाके अन्तर्गत भी अनेक प्राचीन चित्र प्राप्त होते हैं। जिसमें समय-समयपर राजाओं और चित्रकारोंके द्वारा इन्हें मान्यता देकर शिल्प-जगत्‌की नयन-मनोहर वृद्धि की गयी है।

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *
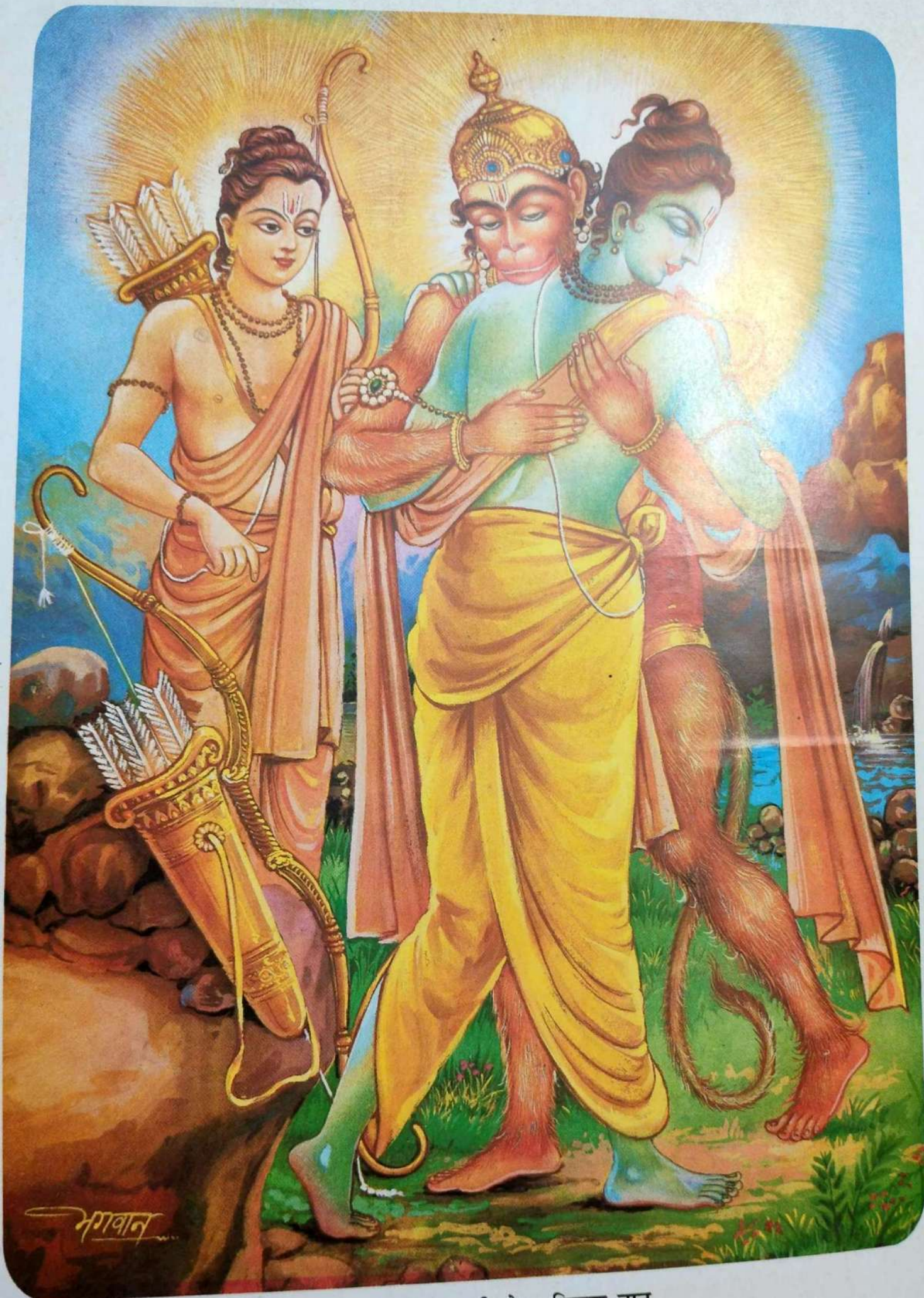
भगवान

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥

वर्ष ७२ | गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०५४, श्रीकृष्ण-सं० ५२२३, फरवरी १९९८ ई० | संख्या २ | पूर्ण संख्या ८५५

श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको आलिङ्गन-दान

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति। यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः। मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे। हनूमन्तं कृतात्मानं कृतकार्यमुपागतम्॥
(वा० रा०, युद्धका० १। १२—१४)

'मुझे जिसने यहाँ इतना प्रिय संवाद सुनाया, उसका मैं कोई उतना ही प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ, इस बातसे मेरे मनमें बड़ी कसक है। आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अभाव है, अतः इस समय इन महात्मा हनुमान्‌को मैं केवल अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ, क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है—ऐसा कहते-कहते रघुनाथजीके अङ्ग-प्रत्यङ्ग प्रेमसे पुलकित हो गये और उन्होंने अपनी आज्ञाके पालनमें सफलता पाकर लौटे हुए पवित्रात्मा हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया।'
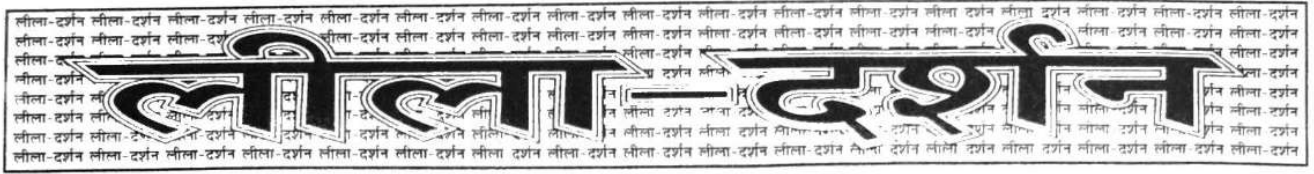
भगवल्लीला-दर्शन

[भगवत्प्राप्तिके निमित्त भगवान्‌की लीला-कथाका श्रवण, लीला-चिन्तन, मनन और निदिध्यासनके साथ-साथ भौतिकरूपसे भगवान्‌की लीलाओंका दर्शन भी साधन-कोटिमें माना गया है। इसलिये प्राचीन कालसे ही भारतवर्षके विभिन्न क्षेत्रोंमें—तीर्थस्थलोंमें रामलीला, रासलीला, नृसिंहलीला तथा दशावतार आदि लीलाओंका आयोजन होता आ रहा है; जिसका आज भी दर्शनकर भक्तजन स्वयंको कृतकृत्य मानते हैं। इस प्रकारकी परम्परागत लीलाओंका यहाँ दिग्दर्शन प्रस्तुत किया जा रहा है।—सम्पादक]

कहउँ सुनहु अब रघुपति लीला

[रामलीलाओंका दिग्दर्शन]

(डॉ० श्रीभानुशंकरजी मेहता)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने अयोध्या एवं काशीमें श्रीरामचरितमानसका प्रणयन किया। उनका यह महाकाव्य वर्तमान युगमें श्रद्धा-विश्वास तथा आस्थाका सबल आधार बन गया। महाकवि गोस्वामीजी बड़े ही प्रगतिशील दूरदर्शी कवि थे और अपने युगकी जनताके लिये राम-कथाका संदेश प्रचारित करने-हेतु उन्होंने 'रामलीला'का भी आयोजन किया। ***'हरि अनंत हरि कथा अनंता'*** कहकर उन्होंने उन सैकड़ों रामकथाओंकी ओर संकेत किया है, जो इस संसारमें प्रचलित हैं। विगत हजारों वर्षोंमें राम-कथापर आधारित नाटक खेले जाते रहे हैं। हरिवंशपुराणमें एक ऐसे ही रामकथापर आधारित नाटकके मंचनका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। कहते हैं कि त्रेतायुगमें जब रामका वनवास हुआ तो विरही अयोध्यावासी उनकी बाल-लीलाओंका स्मरण अभिनय करके विरहकी अवधि व्यतीत करते रहे। पुनः लव-कुशने राम-दरबारमें राम-कथाका गायन किया था। इनके मंचनकी शैलीके विषयमें हम कुछ भी नहीं जानते, शायद भरतके नाट्यशास्त्रसे पूर्वकी 'कुडिअट्टम' शैलीमें नाटक होते थे। तुलसी स्वयं रघुनायक-लीला, हनुमन्नाटक, पुत्तलिका-नाटक और छाया-नाटककी चर्चा करते हैं। भरतमुनि लोकधर्मी और नाट्यधर्मीकी चर्चा करते हैं। समृद्ध संस्कृत-साहित्यमें राम-कथापर आधारित अनेकमार्गीय नाटक हैं। मध्य युगमें 'ललित' और 'दशावतार' लीलाओंकी परम्परा थी, हरिकथा चलती थी। आधुनिक युगमें लोकनाट्य और रामलीलाके साथ ही यूरोपसे आयातित मंचपर रामकथा (पारसी थियेटरोंमें) अवतरित हुई और स्वतन्त्र भारतमें सिनेमा, रेडियो, टी०वी०, वीडियो और आधुनिक रंगमंचकी विविध शैलियोंमें राम-कथा देखी जा सकती है। केवल भारतमें ही नहीं, विदेशोंमें भी रामकथाके मंचन हुए हैं।

'रामलीला' को समझनेके लिये 'राम' और 'लीला'—इन दोनोंको समझना आवश्यक है। काशीमें तुलसीके समयसे ही रामलीलाके अलावा कृष्णलीला (व्रजकी रासलीलासे भिन्न), वामनलीला, नृसिंहलीला, फाग-लीला, दशावतार और ध्रुवलीला [अब विलुप्त] होती रही है। इन्हें कभी भी नौटंकी, स्वाँग, तमाशा या नाटक नहीं कहा गया [जबकि इन सभी विधाओंमें राम-कथाओंका मंचन होता रहा है], बल्कि कहा गया 'लीला'। अतः 'लीला'के स्वरूपपर विचार करना होगा।

लीला

'लीला' तो हमेशा प्रभुकी होती है, उनकी मायाका विस्तार ही लीला है। जब धर्म और भक्तपर संकट आता है तो करुणामय भगवान् अवतार धारणकर 'लीला' करते

हैं और भक्तगण इस अवतारकी स्मृति ताजा करने-हेतु तथा प्रभुके अद्भुत चरितका गुणगान करने-हेतु एवं उनके क्रियाकलापोंकी स्मृति दुहराने-हेतु जब अनुकरण करते हैं, अनुकीर्तन करते हैं तब उसे भी 'लीला' ही कहते हैं। नायिका विरहकी अवस्थामें प्रियके वेश, चाल और बोलीके अनुकरण करनेमें जो 'हाव' करती है, उस कौतुक-क्रीडाका नाम है 'लीला'। इसमें मनोरंजन भी है, साथ ही एक विशेष प्रकारसे भगवान्‌की पूजा, अर्चना, नाम-स्मरण तथा गुणानुवाद भी है। इसीसे तो रामनगरकी रामलीलाका संकल्प-वाक्य ही है—'**यत्कृत्वा चाथ दृष्ट्वा हि मुच्यते पातकैर्नरः**' अर्थात् इसे करने और देखनेसे मानव पापसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार लीला एक धार्मिक अनुष्ठान है, यज्ञ है, कर्मकाण्ड है, कीर्तन है, श्रद्धा-ज्ञापन है, विश्वासकी शोध है और आस्थाका दर्शन है। मायाके लोकमें मायापतिके मायामय दर्शन पाकर भक्त धन्य हो जाते हैं। 'लीला' बहुत कुछ है, पर 'नाटक' नहीं है।

लीलाके मुख्यतः तीन प्रकार बताये गये हैं— (१) नित्य-लीला, (२) अवतार-लीला और (३) अनुकरणात्मक लीला।

नित्य-लीला—

वैष्णव शास्त्रोंके अनुसार परम ब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा साकेतधाममें अनवरत 'नित्य-लीला' में संलग्न है। इसी लीलाके अन्तर्गत विश्वका व्यापार चल रहा है। यह नित्य-लीला चिरन्तन, शाश्वत और अविराम परम आनन्ददायिनी है।

अवतार-लीला—

जीवोंका उद्धार करनेके उद्देश्यसे अवतीर्ण हो प्रभु जब अपनी पार्थिव लीलामें विश्वोपयोगी ऐश्वर्य-गुणोंको प्रस्तुत करते हैं तो उसे 'अवतार-लीला' कहते हैं। इस लीलाकी अति पावन भूमि रामावतारमें 'अयोध्या' है। साकेतकी नित्य-लीला अन्तरङ्ग लीला है, अयोध्याकी अवतार-लीला बहिरंग लीला है। अवतार-लीला सगुण और प्रकट-लीला है।

अनुकरणात्मक लीला—

राम (या अवतार)-द्वारा किये गये सारे क्रिया-कलापोंका उनके भक्तजन जब अनुकरण करते हैं तो उसे 'अनुकरणात्मक लीला' कहते हैं और यही इन दिनों चलित 'रामलीला' या अन्य लीलाएँ हैं।

'रामलीला' एक धार्मिक अनुष्ठान है, जिसका उद्देश्य है 'लोक-कल्याण'। रामलीलामें राम-कथाके अतिरिक्त धार्मिक कर्मकाण्ड पूरी गम्भीरता और विधि-विधानसे सम्पन्न किये जाते हैं। रामलीलाका आरम्भ ही संयोजक-द्वारा सविधि संकल्प लेनेसे आरम्भ होता है, जैसा किसी भी धार्मिक कार्यारम्भके लिये जरूरी है और समापन भी विधिवत् विसर्जन करके होता है।

प्रभु रामके यशका कीर्तन—'रामलीला' अपने विशुद्ध रूपमें '**रामकथावृत्तान्तदर्शनम्**' के साथ ही '**भावानुकीर्तनम्**' भी है। हम अधम जीव अपने प्यारे प्रभुसे विछुड़े विरही लोग हैं, उनकी नरलीलाका अनुकरण करके मनको धीरज बँधाते हैं और आशा करते रहते हैं कि अनुभूतिके किसी विरल क्षणमें, बड़े भाग जागे हों तो प्रभुकी एक झलक मिल जायगी, एक क्षणके लिये साक्षात्कार भी हो जायगा और यह भी अनुभूत सत्य है कि रामलीलामें कुछ विरल क्षणोंमें भक्तोंको अनेक बार प्रियके दर्शन हुए हैं, हालाते हालमें इलहाम हुआ है।

रामलीला केवल खेली नहीं जाती, बल्कि व्यापक अर्थमें पढ़ी, सुनी और देखी जाती है। रामलीला एक जीवन्त अनुभव है, एक सांस्कृतिक पर्व है; जो '**सत्यमेव जयते नानृतम्**'-का संदेश लेकर आती है।

भारतकी प्राचीन नगरी काशीमें परम्परागत-रूपसे जो रामलीलाएँ होती आ रही हैं, उन्हें यहाँ उदाहरण-रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है।

वाराणसीमें रामलीला कबसे हो रही है, यह कहना सम्भव नहीं है। 'रामलीला' के प्रणेता मेघा भगत और तुलसीदास अवधमें 'रघुनायक-लीला' देखने जाते थे। तुलसी 'लीला', 'महानाटक' और नाट्य-शास्त्रके सूक्ष्म रहस्योंसे भलीभाँति परिचित थे। इसीलिये तो कहते हैं—

जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ॥

(रा०च०मा० ७। ७२ ख)

तुलसी हनुमन्नाटकका भी उल्लेख करते हैं। किंवा उपलब्ध प्रमाणोंके अनुसार संवत् १६०० (मानसकी रचनासे

पूर्व)-के लगभग श्रीनारायणदास उर्फ मेघा भगतने रामलीलाका आयोजन किया (वाल्मीकिरामायणपर आधारित झाँकी-लीला) और यह लीला तबसे बराबर चल रही है।

प्राचीन नगरोंमें रामलीला कैसे होती थी, यह हम नहीं जानते, क्योंकि अधिकतर रामलीलाएँ (जैसे चित्रकूट (बाँदा), अयोध्या) कालान्तरमें बंद भी हो गयीं और अब कुछ कालसे नये रूपमें पुनः आरम्भ हुई हैं। आइये ४०० से अधिक वर्षोंसे अपरिवर्तित-रूपमें चल रही काशीकी रामलीलाओंका एक विहंगमावलोकन करें।

वाराणसी और उसके उपनगर—रामनगरकी लीलाओंमें तीन-तीन मंचीय रूप देखे जा सकते हैं। पहला है—प्राचीन चित्रकूटकी राम-लीला अर्थात् झाँकी 'रामलीला'। दूसरा है—तुलसीकी रामलीला अर्थात् 'चारघाटकी रामलीला' और तीसरा है—रामनगर-शैलीकी घटित 'रामलीला'।

चित्रकूटकी रामलीला—

यह लीला आज भी वाराणसीमें होती है। वैष्णव भक्त नारायणदास मानसकी रचनासे पूर्व काशीमें रामलीला करते थे। बादमें वे तुलसीके शिष्य बने और मेघा भगत कहलाये। उनकी लीलामें 'रामचरितमानस' का पाठ होने लगा, पर शैली वही वैष्णव मन्दिरोंकी झाँकीके दर्शनकी ही रही। इस रामलीलासे बहुत कथाएँ जुड़ी हैं। एक तो यह कि अयोध्यामें सरयू-तटपर मेघा भगतको राम-लक्ष्मण अपना धनुष-बाण सौंपकर चले गये, भगत उन्हें पहचान न पाये। बहुत दुःखी हुए। तब स्वप्नमें निर्देश मिला—'काशी जाकर रामलीला करो, वहीं हम दर्शन देंगे।' मेघा भगत धनुष-बाण लेकर काशी आये और रामलीला करने लगे, जिसमें आज भी एक दिन इस धनुष-बाणकी झाँकी होती है। इसी लीलाके भरत-मिलापमें अनेक आस्थावान् लोगोंको उस अरूपकी एक झलक मिली है। चित्रकूट-रामलीला-शैलीमें चित्रकूट (बाँदा) और अयोध्यामें भी लीला होती थी, पर ये लीलाएँ अब तिरोहित प्राय हो चुकी हैं। चित्रकूट-लीलासे ही सम्बद्ध एक चमत्कारी घटना है— सन् १८११ की, जिसमें पादरी मैकफर्सनके ललकारनेपर हनुमान्‌का चरित्र निभा रहे पं० टेकराम भट्ट प्रभुकी आज्ञा लेकर वर्षा ऋतुमें बाढ़ग्रस्त ४० हाथ चौड़ी वरुणा नदी छलाँग गये। हनुमान्‌जीके मुकुटकी समाधि और विग्रह आज भी वाराणसीमें विद्यमान हैं। बारम्बार इस लीलामें चमत्कार हुए हैं, अलौकिकताके प्रमाण मिले हैं और अभी हालमें जब बी० बी० सी० दूरदर्शनने भरत-मिलापका वर्जित स्थलसे छायाङ्कन करना चाहा तो उनका कैमरा ही नहीं खुला।

चित्रकूटकी लीला बहुस्थलीय लीला है और २२ दिनोंमें सम्पन्न होती है। इस लीलामें सर्वाधिक ध्यान श्रृंगारपर होता है। राजरज, तीखा काजल, तिलक, बुलाक, नित्य नये सुनहरे मुकुट, आभूषण, अलफी और गलेमें मोटी तुलसीकी माला—सब मिलाकर एक अपूर्व दिव्य रूपकी सृष्टि करते हैं। इस लीलाके चरित्र-स्वरूप अल्पवयके बालक होते हैं। इसमें संवाद और अन्य कार्य-कलाप अत्यन्त सूक्ष्म और झाँकीके अंश होते हैं। प्रतिदिन कथाके एक अंशकी झाँकी प्रस्तुत की जाती है। कर्मकाण्डके अंश विस्तारसे होते हैं। रामचरितमानस और तुलसीके अन्य पदोंका नारद-बानीमें पाठ होता है। कार्यक्रममें रंचमात्र भी परिवर्तन करना सदा अनिष्टकारी सिद्ध हुआ है। चित्रकूटकी लीलामें अन्य रामलीलाओंकी तरह कोई भी जुलूस नहीं निकलता। जो यात्राएँ हैं भी, वे बिना तड़क-भड़कके अत्यन्त सादगीसे सम्पन्न होती हैं। इस लीलामें रामका गङ्गा पार करना, शबरी-मङ्गल, गिरि सुमेरुकी झाँकी (जिसके दर्शन करना काशीके रईस अपने लिये अनिवार्य मानते हैं), रावण-वध, अवध-प्रयाण (जिसमें भगवान्‌के विमानको काशीके सम्पन्न व्यवसायी लोग आगेसे उठाकर अवधकी ओर ले जानेका प्रयास करते हैं और लंका-स्थलके निवासी उसे पीछे खींचकर रोके रखना चाहते हैं, फलतः विमान हवामें उड़ता-सा कभी पचास कदम पीछे, कभी सौ कदम आगे बढ़ता है और अयोध्याकी यह लहराती यात्रा कई घंटोंमें पूर्ण होती है।) और भरत-मिलाप (नाटी इमलीका भरत-मिलाप, विश्वका सबसे बड़ा मेला, सबसे छोटा नाटक है—दर्शक चार-पाँच लाख, अवधि मात्र पाँच मिनट) तथा राजगद्दीकी लीला अनुष्ठानसहित होती है। उसके बाद धनुष-बाणकी झाँकी और अन्तमें दशावतारकी झाँकी सम्पन्न होती है। इस लीलामें अनेक भाग्यवान् रईसोंको

'भगवान्'की पहुनाईका गौरव प्राप्त होता है। भरत-मिलापमें प्रभुका पुष्पक विमान उठानेके लिये यादव भाइयोंमें होड़ लगती है। इस लीलामें वैष्णव (सिंगारिका), शैव (महाराज काशीनरेश—शिवके प्रतिनिधि) और रामभक्त (रामका विमान)-का अपूर्व संगम होता है, मथुरा-काशी-साकेतका मिलाप होता है। सच पूछें तो लीलामें सभी सम्प्रदायोंका अंशदान होता है। जन-साधारणकी धार्मिक निष्ठाका तो बिना देखे अंदाज करना भी मुश्किल है। यह 'लीला' कहीं अन्यत्र नहीं ले जायी जा सकती, क्योंकि यह दस-बीस कलाकारोंद्वारा मंचित नाटक नहीं है, इस लीलामें तो लाखों काशीवासी भाग लेते हैं।

'चित्रकूट-रामलीला-समिति' भाद्रपदमासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको 'वामन-लीला', आश्विनमें 'रामलीला' (कृष्ण पक्षकी नवमीसे शुक्ल पूर्णिमातक), होलीमें 'फाग-लीला' और वैशाख शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको नरसिंह-जन्म-लीला आयोजित करती है। ये सभी झाँकी लीलाएँ हैं। चित्रकूटकी रामलीला अनुसंधानकी अपेक्षा करती है; क्योंकि काशीमें एक और रामलीला 'लाटकी रामलीला' भी इतनी ही पुरानी बतायी जाती है और कहते हैं कि जब गोस्वामीजी हनुमान फाटकपर रहते थे, तब उन्होंने इसे शुरू किया था। ये लीलाएँ '**आदौ रामतपोवनादिगमनम्०**' से आरम्भ होकर '**रावणकुम्भकर्णहननम्०**' तक चलती है। क्योंकि '**एतद्धि रामायणम्**' ऐसा कहा गया है। बादमें चित्रकूट- लीलामें कोपभवनसे आरम्भ और दशावतारकी झाँकीसे समापनतक लीला होने लगी। लाटकी लीलामें धनुषयज्ञ और पुरजनोपदेशकी लीलाएँ जुड़ गयी हैं। स्वयं तुलसीदासद्वारा आरम्भ की गयी अस्सी-स्थित तुलसी-घाटकी लीलाका भी यही क्रम है। इन लीलाओंका और अयोध्याके बाबा सरयूदासरचित श्रीरामकृष्ण लीलानुकरण-सिद्धान्तका क्या सम्बन्ध है, यह भी देखना होगा। क्या वैष्णव ग्रन्थोंमें लीला आयोजित करनेके, झाँकीके अथवा शृंगारके कोई विधान हैं?

अस्सीकी रामलीला और वाराणसी शहरकी अनेकानेक रामलीलाएँ

'अखाड़ा तुलसीदास'की देख-रेखमें विगत ४०० वर्षोंसे लीला होती आयी है। तुलसीदास इस अखाड़ेके पहले महन्त थे। लीलाकी प्राचीनता अखाड़ेके महन्तोंके वसीयतानामोंसे सिद्ध होती है।

तुलसी-घाटकी लीला १८ दिन होती है। देव-चरित्र अभिनयकी परम्परामें रामायणी पाठ करते हैं, धारक अभिनय करते हैं। संवाद खींचकर ऊँची आवाजमें बोले जाते हैं, संवादकी भाषा भोजपुरी, खड़ी बोली, व्रज और अवधी होती है। यह भी बहुस्थलीय लीला है और लगभग दो मीलके परिक्षेत्रमें सम्पन्न होती है। लंकाकी लीलाएँ जहाँ सम्पन्न होती हैं, उस मुहल्लेका नाम ही लंका पड़ गया है। मानसका पाठ नारद-बानी शैलीमें होता है। 'गौतम-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थमें गोस्वामीजीद्वारा तुलसीघाटपर पूर्णिमाकी चाँदनीमें राजगद्दी-लीलाका आयोजन करनेका विशद विवरण दिया गया है, कहते हैं कि गोस्वामीजीने ध्रुव, प्रह्लाद और कृष्ण-लीलाओंका भी आयोजन किया था, जिनमें अब केवल 'कृष्णलीला' होती है, रामलीलाके बाद ही तुलसी-घाटपर 'कृष्णलीला' होती है जिसकी नागनथैया-लीला काशीकी अति प्रसिद्ध लीला है और यहाँकी लाखा-मेला भी अति प्रसिद्ध है। परम्परा वही झाँकीकी—गङ्गामें कृष्ण-कन्हैयाका कूदना और कालिय नागके फनपर खड़े होकर लाखों दर्शकोंको (जिनमें काशी-नरेश भी होते हैं) दर्शन देना। इस लीलाकी अवधि भी पाँच मिनट ही होती है, पर दर्शनका चमत्कार कालालीत होता है।

अस्सीकी रामलीला और वाराणसीकी अन्य लीलाओंकी एक विशेषता रंगकर्मकी दृष्टिसे अवलोकनीय है। यह है 'तुलसी-मंच' का विधान। काशीमें शिवपुर बाजार-स्थित रामलीला-मैदानमें भी इस मंचके दर्शन हो सकते हैं।

तुलसी-मंच है क्या? एक आयताकार मैदान (रामलीला-मैदान—पासमें एक सरोवर हो तो अति उत्तम), इसमें उत्तरकी ओर एक ऊँचा मंच (सात सीढ़ियोंका) और उसपर एक भव्य सिंहासन, जिसपर दिव्य स्वरूप (राम, लक्ष्मण और जानकी या राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र) विराज सकें। इसे मैं विष्णु-मंच कहना चाहूँगा। यह मंच सभी राम-लीलाओंमें होता है और इसपर सभी लीलाओंमें केवल स्वरूप विराजते हैं। मैदानके दूसरे छोरपर एक और सिंहासनयुक्त मंच (पाँच सीढ़ियों-जितना ऊँचा) होता है, जिसपर 'लीला' के राजपुरुष बैठते हैं—दशरथ, जनक, बालि, सुग्रीव और रावण। इसे मैं 'राज-मंच' कहना चाहूँगा। इन दोनों मंचोंको जोड़ता है—करीब एक मीटर चौड़ा गलियारा, जिसे 'जीवन-पथ' कहा जा सकता है। पूर्वकी ओर एक और

मंच (दो सोपान ऊँचा) है, जिसपर लीलाके स्त्री-पात्र विराजते हैं—दशरथका अन्त:पुर, जनकका रनिवास, कोपभवन, सुग्रीव-बालिका अन्त:पुर, अशोक-वाटिका। इसे हम 'देवी-मंच' कहना चाहेंगे और पश्चिमकी ओर एक सोपान ऊँचा एक मंच, जिसपर रामायणी बैठकर रामायण-पाठ करते हैं—इसे 'जन-मंच'की संज्ञा दी जा सकती है। आवश्यकता पड़नेपर देवी-मंचको जीवन-पथसे जोड़ा जा सकता है। जीवन-पथके दोनों ओर विराजते हैं दर्शक—रामभक्त। धनुषयज्ञके दिन 'राज-मंच' और 'जन-मंच' के बीच 'धनुष-मंच' बनता है—सार्वजनिक चुनौती-भरा राजाश्रयमें बना मंच। वनवासकी लीलाओंमें देवी-मंच और विष्णु-मंचके बीच भक्त और भगवान्‌के बीच प्रेम-पयोधि भरतके विराजने-हेतु नन्दीग्राम बनता है। लीला-स्थलके पासके सरोवरमें क्षीरसागरकी झाँकी, गङ्गापार होना तथा सेतु-बन्धन-जैसी लीलाएँ होती हैं। शेष लीलाएँ जीवन-पथपर या विष्णु-देवी अथवा राज-मंचपर होती हैं। तुलसीने बालकाण्डमें चार घाटकी स्पष्ट चर्चा की है। तुलसीके इस मंच-विधानमें चार घाट स्पष्ट बन जाते हैं। इन मंचोंके अनेक सार्थक अर्थ लगाये जा सकते हैं। यथा—

विष्णु-मंच	देवी-मंच	राज-मंच	जन-मंच
१. वैराग्य	भक्ति	ज्ञान	कर्म
२. मोक्ष	काम	अर्थ	धर्म
३. योग	तप	यज्ञ	जप
४. आत्मा	हृदय	मस्तिष्क	शरीर
५. काशी	मथुरा	अवध	हरिद्वार
६. परमार्थ	मनसा	वाचा	कर्मणा
७. योगशक्ति	उपासनाशक्ति	ज्ञान-शक्ति	क्रिया-शक्ति
८. बदरी-केदारधाम	जगन्नाथधाम	रामेश्वरधाम	द्वारकाधाम
९. शिव-पार्वती-संवाद	काक-गरुड-संवाद	याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद	तुलसी-संत-संवाद

—इन मंचोंको जोड़ते गलियारे भवसागर हैं, जिसे ज्ञान-कर्म-भक्तिके मार्गोंसे पार किया जा सकता है। सबका लक्ष्य है विष्णु-पदतक पहुँचना। भारतीय धर्म-दर्शनके सभी मार्गोंके दर्शन इस मंच-विधानमें होते हैं। प्रभुको पानेके अनेक मार्ग हैं, किसी भी मंच या मार्गसे यात्रा करें—उनतक पहुँच सकते हैं। ज्ञान और कर्म-मार्ग भक्तिके चौराहेसे सम्पूर्ण समर्पण (नन्दीग्राम) और अकाम प्रेमकी मंजिलोंसे होते हुए भक्तजन मोक्ष-प्राप्तितक करते हैं। इस प्रकार तुलसी-मंच नाटकका ही नहीं अपितु भारतीय अध्यात्मका मंच है। आप ढूँढ़ें तो अभी इसमें बहुत कुछ मिलेगा। रंगमंचकी दृष्टिसे तुलसी-मंचने दर्शक-पात्र-विभाजन-रेखा तोड़ी है और उनमें अद्भुत तादात्म्य स्थापित किया है।

वाराणसीकी रामलीलाओंमें शोभा-यात्राएँ उनका अनिवार्य अंग हैं। कम-से-कम तीन यात्राएँ अवश्य होती हैं—राम-विवाहकी बारात, नक्कटैया तथा भरत-मिलाप। नाक कटनेके बाद शूर्पणखा अपने भाई खर-दूषणको सेनासहित लेकर जब रामपर आक्रमण-हेतु चलती है तो इसे 'नक्कटैयाका जुलूस' कहते हैं। बनारसमें इन नक्कटैयाके जुलूसोंकी बड़ी ख्याति है और इनमें भी 'चेतगंज'की नक्कटैयाको 'लाखा मेला' की शोहरत प्राप्त है। राम-भरत-मिलनके बाद राम-पंचायतनकी जो शोभायात्रा निकाली जाती है, उसे भरत-मिलापका जुलूस कहते हैं। इनमें गायघाटके भरत-मिलापका जुलूस अपने विशाल वानर-मुखौटोंकी मनोरम झाँकियोंके कारण दर्शनीय बन गया है। नक्कटैयाके जुलूसमें दुर्गा, कालीके विशाल मुखौटे और उनका युद्ध-नृत्य बड़ा आकर्षक होता है, वाराणसीकी सँकरी गलियोंमें विशाल मुखौटे धारण किये पात्रोंकी अस्त्र-चालन-कुशलता रोमांचकारी होती है। दुर्गा तथा कालीके मुखौटे धारण करना भी धार्मिक कृत्य माना जाता है और पात्र-मुखौटोंकी विधिवत् पूजा करके ही मुखौटे उठाते हैं। इन जुलूसोंमें झाँकियाँ, विमान, लाग (एक प्रकारका कौशलपूर्ण स्वाँग-जिसमें छुरी-कटारीको पेट तथा गर्दनमें धँसी हुई आरपार दिखाते हैं) आदि अनेक दर्शनीय चीजें होती हैं।

रामनगरकी रामलीला—

गङ्गा-पार, विगत पौने दो सौ वर्षोंसे कविराजके संरक्षणमें चल रही यह 'घटित-रामलीला' अनेक अर्थोंमें अपूर्व होनेके कारण विश्वविख्यात भी हो गयी है। प्रतिवर्ष भारी संख्यामें देश-विदेशके विभिन्न भागोंसे पधारे विद्वान् तथा शोध-छात्र इस रामलीलाका अध्ययन करते हैं। साहित्यिक अनुशासन-परम्परा एवं पद्धतियोंका निर्वाह देखना हो तो

रामनगरकी रामलीला देखनी चाहिये।

रामनगरकी रामलीला महाराज उदितनारायणसिंहके समय राजाश्रयमें आयी, पर उसका वर्तमान स्वरूप स्थित हुआ रामकथा-मर्मज्ञ महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंहके राज्यकालमें। महाराजके गुरु और महान् संत काष्ठजिह्वा स्वामीने लीला-स्थलोंका चयन किया और व्याख्या-परिचर्या लिखी। संतने पूरे रामनगरको रामलीलाका मंच बना दिया। महाराजने परिशिष्ट जोड़ा, पं० हरिहरप्रसादने 'प्रकाश टीका' लिखी, भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने 'रामलीला चम्पू' लिखा और रीवाँ-नरेशके भ्राताने श्रीरघुराजसिंहके साथ मिलकर रामलीलाके संवादोंको साहित्यिक परिवेश प्रदान किया।

रामनगरकी रामलीला 'घटित-लीला' है। पात्र अपनी भूमिका निभाते हैं, दर्शक अपनी सुविधानुसार भौतिक आँखोंसे या मनकी दृष्टिसे लीला देख लेते हैं। कहीं कोई मंच-विधान नहीं। रामलीलाकी घटनाओंके स्थल निश्चित हैं, पात्र वहाँ अपना कार्य करते हैं। दर्शक सुविधानुसार उस कार्य-कलापमें शामिल होकर स्वयं पात्र बन जाते हैं। अवधमें वे अवधके नागरिक होते हैं, तो वनगमनमें ग्रामवासी, राम-बारातमें वे बाराती बनते हैं, तो रावणके दरबारमें दरबारी।

लीलामें काशी-नरेशकी सतत उपस्थितिके कारण लीलाकी गरिमा तो बढ़ती ही है, बराबर अनुशासन कायम रहता है। बीस-पचीस हजार दर्शकोंकी ऐसी अनुशासित भीड़ स्वयंमें एक आश्चर्यजनक लीला है। इस लीलाके दर्शनार्थ देशके कोने-कोनेसे राम-भक्त, साधु-संत (जो काशी-नरेशके एक मासतक अतिथि रहते हैं) और नियमसे रामलीलाका सेवन करनेवाले प्रतिदिन पधारते हैं। लीला एकतीस दिनतक चलती है। लीलाके साथ ही चलता है मेला और पधारते हैं असंख्य मेला-प्रेमी। सभी अर्थोंमें भव्य, विशाल और मनमोहक इस लीलामें (विद्युतीय) माइक-लाइटका प्रयोग नहीं होता। लीला शाम पाँच बजेसे आरम्भ होती है, पौने छः बजे विश्राम तथा सातसे नौ बजेतक गैस-बत्ती और मशालकी रोशनीमें लीला होती है। रामलीलाके दिनोंमें सारा रामनगर राममय हो जाता है। सामने मंचपर प्रभुके दर्शन और साथ ही भीड़के पीछे हाथीपर विराजमान महाराज काशी-नरेशके दर्शनका एक अनूठा समाँ बँध जाता है। रामनगरमें मानस-पाठ बड़ा ही जोरदार होता है। रामनगरकी रामलीला-जैसा तादात्म्य कहीं अन्यत्र देखनेको नहीं मिलता। चतुर्दिक् नाम-कीर्तन, पोथियाँ लिये असंख्य नर-नारियोंद्वारा रामायणका पाठ और 'विश्व'-सा विस्तृत मंच कहाँ देखनेको मिलेंगे? मंचकी विशालताको केवल इस उदाहरणसे स्पष्ट किया जा सकता है। आज अंगद-विस्तारकी लीला है। प्रभु सुबेल पर्वतपर विराजमान हैं। यहाँसे अंगदजी आज्ञा लेकर रावणके दरबारकी ओर चलते हैं, जो आधा मील दूर है। उधर रावण एक ऊँचे टीलेपर स्थित अपने महलमें राग-रंगमें मस्त है और वहाँसे एक फर्लांग चलकर दरबारमें आता है। सीताजी दरबारसे दो फर्लांग दूर अशोकवाटिकामें भक्त स्त्रियोंसे घिरी बैठी हैं। यहाँसे न रावण-दरबार दीखता है, न सुबेल पर्वत। आप चाहें तो पात्रोंके साथ मीलोंकी यात्रा करें या फिर लीलाको भूलकर सीता माता या प्रभुके चरणोंमें बैठे रहें। अधिकतर लोग रावण-दरबारमें बैठकर रावण-अंगद-संवादका आनन्द लेते हैं।

रामलीलासे अधिक महत्त्व आरतीका होता है। बहुतसे लोग तो रात नौ-दस बजेके बीच केवल आरतीके दर्शन करने ही आते हैं। प्रतिदिन आरतीकी निराली-अलौकिक छटा होती है। रामनगरकी रामलीलाओंमें क्षीरसागरकी झाँकी, फुलवारी, धनुषयज्ञ, लंकादहन, लक्ष्मण-शक्ति, अंगद-विस्तार, रावण-वध, भरत-मिलाप और राजगद्दी आदिकी लीलाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। भरत-मिलाप मध्य रात्रिमें होता है। राजगद्दीके दिन रामनगरमें दीपोत्सव मनाया जाता है। दशहराके दिन महाराजकी सवारीका अतिरिक्त आकर्षण होता है।

काशीकी रामलीलामें कहीं भी परदे एवं नाट्यपटी आदिका प्रयोग नहीं होता, क्योंकि ***'मायाकृत बहुजवनिका, नाट्यसाल जगभ्राज। आपु करै, आपुहिं लखै, वन्दौ ते नटराज।'***—मायाद्वारा रचित दृश्य-बन्ध, जगत् ही लीला-मंच, प्रभु स्वयं लीला करें और स्वयं हीं देखें —ऐसा यह खेल है।

अरूपकी रूपाकार झाँकी आस्तिकको कृतकृत्य कर देती है। हमने रामनगरमें प्रभुके दीवानोंके दर्शन किये हैं। हाँ, अगर आप भाव-भक्ति-विहीन कोरे नास्तिक रंगकर्मी हैं तो मेरी नेक सलाह है कि आप 'रामलीला' न देखें, इसमें आपका समय नष्ट होगा।

खुले मैदानमें जन-समुद्रके बीच उभरे हुए मंच-द्वीपों-

पर स्वर्णमुकुटधारी स्वरूपोंकी झाँकी एक अविस्मरणीय अनुभव है। रामलीलामें यद्यपि लाइट-माइक नहीं होते, पर 'सिनेमास्कोपिक' और 'स्टीरियोफोनिक साउण्ड' का नैसर्गिक आनन्द प्राप्त होता है। जहाँ स्वयं सूर्य भगवान् लाइट-मैन बनें (नाटी इमलीके भरत-मिलापमें कितने ही बादल क्यों न छाये हों; ठीक समयपर पश्चिम आकाशमें खिड़की खोलकर सूर्यदेव अपूर्व मिलनपर अपनी स्पाट लाइट फेंकते हैं), उस लीलाको क्या कहें। यहाँ समय और स्थिति टेलिस्कोपिक होती है। समयातीत विदेहकी अनुभूति इस बहुमंचीय, बहुस्तरीय विविध दृश्यावलीयुक्त रामलीलामें ही हो सकती है। नाट्यशास्त्रके सूक्ष्म सूत्रोंके ताने और लोक-कलाओंके बानेसे बुनी, धर्मके सुर्ख-रंगी आस्थाकी चादर यह रामलीला और उसका सुख उसे ओढ़नेवाला ही जान सकता है।

अन्तमें वे कहते हैं—*'जाको जहाँ अर्थ है जैसो, लीला ललित लखावती तैसो'*, अर्थात् जैसी भावना वैसा दर्शन। जो इस लीला-यज्ञका दर्शन करता है, वह भक्तिभावकी सुरसरिमें अवगाहन करता है, डूब जाता है; सुरस परम आनन्दकी उपलब्धि करता है और गूँगेके गुड़का आस्वादनकर मौन हो जाता है।

विदेशोंमें रामकी लीला

[विदेशोंमें भी भगवान् श्रीरामकी लीलाका मंचन किसी-न-किसी रूपमें होता है। विभिन्न देशोंकी विभिन्न संस्कृतियोंमें रामकथापर आधारित प्रदर्शन—नृत्य, नाटक एवं नाटिकाके रूपमें प्रस्तुत किये जाते हैं, जिसे वहाँकी जनता बड़े चावसे देखती है। ये प्रदर्शन कहीं तो श्रद्धा-भक्तिभावसे और कहीं मनोरंजनकी दृष्टिसे भी होते हैं। इस प्रकार दुनियाके दूसरे देशोंमें भी इसका प्रचार-प्रसार भगवान् श्रीरामकी शाश्वत लीलाका और इसकी व्यापकताका परिचायक है। पाठकोंकी जानकारीके लिये कुछ विदेशोंके उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।—सं०]

भगवान् श्रीरामकी कथा भारतसे बाहर विदेशके अनेक देशोंमें लोकप्रिय है। सभी देशोंकी अपनो-अपनी 'रामकथा' है, जो वाल्मीकि या तुलसीकी रामायणसे थोड़ी भिन्न है। रामकी कथापर आधारित इन देशोंमें छाया-नाट्य, पुत्तलिका-नाट्य, नृत्य-नाट्य और लोक-नाट्य होते हैं, जिन्हें रामकी कथा होनेके कारण 'रामलीला' कह सकते हैं। दक्षिण-पूर्व एशियाके देशोंमें रामकथा विशेष-रूपसे प्रचलित है। इन देशोंकी 'रामलीला' का एक संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है—

१—म्याँमार (वर्मा)

आधी सदी पूर्व वर्मा हमारे अखण्ड भारतका ही एक अंग था। यहाँ भारत, स्याम और थाईलैंडकी नाट्य-परम्पराका प्रभाव देखा जा सकता है, साथ ही इनकी अपनी अलग संस्कृति है।

वर्मामें अधिकतर प्रदर्शन धार्मिक उत्सवों और त्यौहारोंके साथ होते हैं। यहाँके प्रदर्शनोंको 'प्वे' कहते हैं। ये चार प्रकारके होते हैं-(१) योकथे प्वे, (२) नाट प्वे, (३) जाटग्यी तथा (४) यामा प्वे। इनका विवरण निम्न प्रकार है—

योकथे प्वे—यह वर्माका पुत्तलिका-नाट्य है। इसमें रामायणकी कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

नाट प्वे—यह एक तरहका अभिचार-नृत्य है।

जाटग्यी—यह मुखौटोंवाला नृत्य-नाट्य है। इसमें राम-कथा कही जाती है।

यामा प्वे—इस प्रदर्शनमें रामलीलाका मंचन इस प्रकार किया जाता है—छः दृश्योंकी एक नृत्य-नाट्य-लीलाके पहले दृश्योंमें—'मिथिलामें राजा जनक धनुष-यज्ञका आयोजन करते हैं और सीताके चित्रके साथ निमन्त्रण भेजते हैं। अथकन पर्वतपर परशुराम तप कर रहे हैं और चित्र देखकर कुपित होते हैं; चित्रको उठाकर फेंक देते हैं। उड़ता हुआ चित्र दम्भिका पर्वतपर जा गिरता है, जहाँ दसगिरि (रावण) तप कर रहा है। चित्र देखकर दसगिरि मोहित हो जाता है और मिथिलाकी ओर चल पड़ता है।' दूसरे दृश्योंमें—'बोडा तपस्वी (विश्वामित्र) राम-लखनके साथ मिथिलाकी ओर चल पड़ते हैं।' तीसरे दृश्यमें—'धनुष-यज्ञ होता हैं जहाँ दसगिरि असफल होता है। लखन धनुष उठा सकते हैं, पर वे रामको ऐसा करनेको कहते हैं।' चौथे दृश्यमें—'दसगिरि रामसे प्रतिशोध लेनेका संकल्प करता है। राम और परशुरामका युद्ध होता है। परशुराम समर्पण करते हैं।'

पाँचवें दृश्यमें—'हमॉ-योन (दंडकवन)-में रावण स्वर्णमृग भेजता है। राम मृगके पीछे जाते हैं। सीता-हरण होता है' और छठे दृश्यमें—'सीता एक शालकी आड़में रावणका प्रणय निवेदन ठुकराकर अपनी रक्षा करती है।'

वर्मामें 'रामा' ड्रामेटिक क्लब है। इसमें यहाँके लोग दीपोत्सवके समय शृंखला-नाटक करते हैं। इस नाटकमें सात दिनमें सात काण्डोंकी लीला की जाती है। पहले राजाके संरक्षणमें तीस दिनतक लीला होती थी। क्लबके पास अपनी वेश-भूषा, वाद्य-यन्त्र और मुखौटे होते हैं। भारतसे इन लीलाओंका अच्छा सादृश्य है। इस लीलामें सीता और रामकी माताओंके अलावा सभी पात्र मुखौटे धारण करते हैं।

(२) कम्बोडिया (खमेर)

किसी युगमें (८०२—१४३१) खमेरके राजा दक्षिण-पूर्व एशियाके विशाल भूभागपर शासन करते थे। इनकी राजधानी अंकोर थी, जहाँ भव्य मन्दिर है (अंकोरवाट)। अब तो ये मन्दिर, जिनपर रामायण और महाभारतकी कथाएँ अङ्कित हैं, वनवास कर रहे हैं। इस देशमें भारी राजनीतिक उथल-पुथल मची है और इसका नाम 'कम्पूचिया' हो गया है। खमेरमें अच्छी नाट्य-शालाएँ हैं, जहाँ रामायण-सम्बन्धी लीलाएँ होती हैं। इनमेंसे कुछ प्रमुख प्रचलित रामलीला-नाट्यका विवरण इस प्रकार है—

लकन खाच बोरान— यह प्राचीन, शास्त्रीय, महिला-पात्रों द्वारा प्रस्तुत नृत्य-नाट्य है। संस्कृत-शिलालेखोंसे अनुमान होता है कि सातवीं सदीमें यहाँ देवदासी-प्रथा थी। ये देवदासियाँ अंकोरके बफूओन मन्दिरमें सेवा करती थीं। इस नाटिकामें रामायणपर आधारित प्रसंग प्रस्तुत होते हैं। इसमें पुरुष ऋषियों और विदूषककी भूमिका निभानेका काम करते हैं और लड़के बंदर बनते हैं। मुख्य भूमिकाएँ स्त्रियाँ ही करती हैं। शृंगार और वेश-भूषा 'थाई' संस्कृतिसे प्रभावित है।

नांग शेक् (शेक थोम)—यह छाया-नाट्य है। इसमें विशालकाय चर्म-पुत्तलियोंद्वारा रामायणकी कथा कही जाती है। दो कथा-वाचक काव्य-पाठ तथा संवाद बोलते हैं और वाद्य-वृंदमें ये ही धुनें बजती हैं। राम और सीताकी विशेष पुत्तलियाँ होती हैं और कुछ विशाल पुत्तलियोंमें पूरा दृश्य-महल, वृक्ष और पात्र देखे जा सकते हैं।

(३) इंडोनेशिया (हिंद एशिया)

द्वीपसमूहोंका यह सुन्दर देश है। यहाँ नानाविध प्रदर्शन होते हैं, जैसे—छाया-नाट्य, पुत्तलिका-नाट्य, शास्त्रीय नृत्य और धार्मिक नाटक (लीला)। इस देशकी राजधानी जकार्ता है। यहाँ अनेक रामकथा-ग्रन्थोंकी रचना हुई है, जिनमें सबसे ज्यादा प्रसिद्ध रामायण 'ककाविन्' (कवि योगेश्वर) है, यह ग्रन्थ संस्कृतकी महाकाव्य-शैलीमें लिखा गया है। अभिनयके साथ इसका पाठ होता है।

जावा—यह इंडोनेशियाका प्रमुख द्वीप है; जो मुस्लिम-धर्म प्रधान है, पर यहाँ रामायण-परम्पराकी सबसे अधिक छाप है।

यहाँ शताब्दियोंसे चर्म और चर्म-पुत्तलियोंके माध्यमसे रामकथा कही जाती है। चर्म-पुत्तलियाँ आंध्रकी 'थालुबोमालाटा'से मिलती हैं और शायद रामकथाके साथ ही इस देशमें आयी थीं। रामलीलासे सम्बन्धित इन पुत्तलियों और नाटकोंको वायांग या वाजांग नाम देते हैं। आइये क्रमसे देखें—

वायांग कुलित—चर्म-पुत्तलियोंका यह छाया-नाट्य सबसे अधिक लोकप्रिय है, इस विधामें रामायण और महाभारतकी कथा कही जाती है। इसे 'दालांग' भी कहते हैं। इसमें एक धार्मिक व्यक्ति प्रदर्शनसे पूर्व व्रत, उपवास और प्राणायाम-साधना करता है तथा श्वेतपटके पीछेसे यह धर्म-पुत्तलियोंको चलाता है, साथ ही सभी पात्रोंके गीत और संवाद बोलता है। इस प्रदर्शनमें 'गैमलान' नामक मधुर वाद्य-वृन्द बजते हैं।

बालीका वायांग कूलित— यह ४-५ घंटोंतक चलने वाला प्रदर्शन है। इसमें राम-कथाके साथ मनोरंजनका मसाला भी होता है।

रामायन बैले—यह सबसे पुराना प्रदर्शन है। यह जोग-जकार्तांके पास प्रम्बनानके शिव-मन्दिर (लार्ड-जांग ग्रांग)-में पूर्णिमाके अवसरपर चार रात प्रस्तुत किया जाता है। इसमें जोगजाके सुलतान और उनके परिवारके लोग अभिनय करते हैं। इस नृत्य-नाट्यमें सीता-हरणसे लेकर सीताकी अग्नि-परीक्षातककी कथा प्रस्तुत होती है। इसमें सीताको 'सीता', बालीको 'सुबाली' और लंकाको 'अलंका' कहा जाता है। इसी शिव-मन्दिरमें सम्पूर्ण रामायण चित्रित है।

बेरांग—यह भाव-समाधि (ट्राँस)-नाट्य है, इस विधामें रामकथा कही जाती है। मन्त्र-मुग्ध ग्रामीण कभी-कभी भावावेशमें रंगडा (चुड़ैल)-को मार डालना चाहते हैं।

धार्मिक 'बेरांगमें' पुरोहित पात्रोंका पवित्र जलसे मार्जन करता है।

केत्जक—बाली द्वीपमें होनेवाला यह बंदरोंका अनूठा नृत्य है। इसमें नाच-गान नहीं होता । लोग घेरा बनाकर बैठते हैं और 'त्जेक', 'त्जेक' ध्वनि करते हैं, बीचमें नर्तक रामकथाका अभिनय करते हैं।

'बालीके वायांग वांगमें' सीता-हरणसे लेकर रावण-वधतककी कथा मुक्तकाशी मंचपर अभिनीत होती है। इसमें रामनगर (वाराणसी)-की तरह दो दल रामायण (ककाविन)-का पाठ करते हैं। एक दल मूल पाठ करता है और दूसरा आधुनिक बाली-भाषामें उसका उल्था (अनुवाद) करता है।

(४) लाओस

थाईलैंडसे उत्तर-पश्चिममें स्थित 'लाओस' दक्षिण-पूर्व एशियाका छोटा-सा देश है। यहाँकी राजधानी 'लुआंग प्रबांग' है। यहाँका 'थानौलित' नृत्य दर्शनीय है—

थानौलित नृत्य—यह फालाम (प्रभु राम) और स्वर्णमृगकी कथापर आधारित है। इसमें फालक (लक्ष्मण) फालाम और सीडा (राम-सीता)-के साथ वन-विहार करते हैं। थोसकन (दशकंधर) सीतापर मोहित होता है। वह स्वर्णमृग भेजता है और राम उसका पीछा करते हैं। लक्ष्मणके जानेपर थासकन सीताका हरण कर लेता है। राम रावणपर हमला करते हैं और विजय प्राप्त करते हैं।

(५) मलेशिया

मलय द्वीप प्रायः इस्लाम-प्रधान देश है। यहाँकी राजधानी क्वालालम्पुर है। मलेशियामें रामकथाका ग्रन्थ है 'हेकायत सिरीराम'। यह इस्लामी और भारतीय कथाका मिश्रण है, जैसे यहाँ दशरथको हजरत आदमका पड़पोता (परपोता) बताया है। यहाँके रामकथाका मुख्य प्रदर्शन है—

वायांग कूलित—यह छाया-पुत्तली-नाट्य हिंद एशिया-जैसा ही है। पुत्तलियाँ कर्णाटकके यक्षगानकी पुत्तलियों-जैसी हैं। इसमें जावा द्वीप और थाईलैंडके अभिनय-शैलियोंका समावेश हुआ है। यहाँ भी एकाकी कलाकार ही पुत्तलियाँ नचाता है। परदेपर पुत्तलियोंकी छाया दीखती है। इसमें रामकथाके विभिन्न प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं।

(६) श्रीलंका

श्रीलंका कभी भारतका ही अंग था, जो पहले सिंहल द्वीप कहलाता था। कुछ विद्वानोंका मत है कि वर्तमान लंका रामकथाकी लंका है ही नहीं, वह तो दूर दक्षिणमें थी। फिर भी श्रीलंकामें आज भी सीता, रावण, विभीषण आदिसे सम्बन्धित स्थल हैं। श्रीलंकाके विद्वान् डॉ० गोदकुंबरा कहते हैं कि श्रीलंकाके द्वितीय सम्राट् 'पाण्डु वसदेव'के शासन-कालमें (५वीं सदी ईसा पूर्व) प्रथम बार 'कोहोंबा याकमा'की पूजा हुई थी। इसकी कथा इस प्रकार है—एक बार विष्णु (राम)-को शनिकी दशा लगी और वे सात वर्षके लिये वनमें चले गये। इस बीच रावण सीताको अपनी राजधानी उठा ले गया। रावणका प्रस्ताव सीता ठुकरा देती हैं। राम लौटते हैं और सीता-हरणका पता चलनेपर उन्हें ढूँढ़ने पुनः वनमें चले जाते हैं। जब बालिसे उनकी भेंट होती है तब उसकी सहायतासे वे लंकाको जलाकर सीताको वापस लाते हैं। राम अवध आये, पर सीताने जब रावणका चित्र बनाया तो उन्होंने सीताको निष्कासित कर दिया। वनमें सीताको लव-कुश पैदा हुए। यह कथा दशरथ-जातकमें मिलती है। 'हकेगलाकी जारॉक' (शिलाखण्ड) क्या द्रोणाचल पर्वतका खण्ड है (जो हनुमान् उखाड़ लाये थे), सीता एलिया कोविलके पासकी भूमि काली है? (क्या यह लंका-दहनका अवशेष है? क्या रावण एल्लाही सीताका बंदीगृह है?) ऐसे ही रावणसे सम्बन्धित यहाँ अनेक स्थल हैं।

श्रीलंकामें भारतीय (तमिल) और सिंहली लोककथाके नृत्य-नाट्य होते हैं। यहाँका 'कांडयन नृत्य' लोकप्रिय है। रामकथा-नृत्योंमें मुखौटोंका प्रयोग होता है। श्रीउदयशंकरने अपने 'बैले-लंका-दहन'में लंकाके काष्ठ मुखौटोंका प्रयोग किया था और चित्र देखनेसे आश्चर्य होता है कि इन मुखौटोंका वाराणसीकी रामलीलाके मुखौटोंसे अद्भुत साम्य है।

(७) थाईलैंड—(प्राचीन नाम स्याम)

थाईलैंडकी रामायण है 'रामकीन'। यह 'रामकीर्ति' शब्दका थाई-रूप है। यहाँ राम-कथाका आधार वाल्मीकि-रामायणको माना जाता है। राम-कथा जावा और मलाया होती हुई थाई पहुँची थी। यहाँकी रामकीन रामायण बाँग्ला 'मेयिलराबन', 'भैरब्र कथा' (थाई)-से और 'कंब' रामायणसे भी प्रभावित है। रोचक कथाओंमें रावणकी कन्या 'सुवर्ण-मच्छा' द्वारा लंका जाते समय हनुमान्‌को रोकनेका प्रयास दिखाया जाता है। हनुमान् मच्छासे विवाह कर लेते हैं और उन्हें 'मच्छनु'

नामक पुत्र होता है। अन्य लीलाओंमें 'मेयिलरावन'का अभिचार, काकासुर तथा अग्नि-परीक्षा आदि हैं। हमने बैंकाकमें एक नृत्य देखा था—'मणिमेखला'। इसमें भाई हनुमान् चार हाथवाले हैं। उनके मुखमें सूर्य-चन्द्रके दर्शन होते हैं। थाईलैंडमें 'खोन' नामक मुखौटायुक्त नृत्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी शोभायात्रामें योद्धा, राक्षस और वानर युद्ध-कौशल दिखाते चलते हैं। पुराने खोनमें पात्र नहीं बोलते थे, दो वाचक पाठवाचन करते थे। आधुनिक खोनमें स्त्री-पात्रोंकी भूमिका स्त्रियाँ ही करती हैं। इसमें रामकथाके प्रसंग प्रस्तुत किये जाते हैं। खोन-नाट्यमें रामका मुखौटा हरे रंगका और लक्ष्मणका सुनहरा होता है (आजकल राम और लक्ष्मण मुखौटा नहीं लगाते बल्कि मुकुट पहनते हैं)। रावणका भी मुखौटा हरा होता है, पर अनेक सिरवाला होता है, रावणको 'तोस-कंठ' कहते हैं। हनुमान्का मुखौटा सफेद होता है। सीता तथा मंदोदरी मुकुट धारण करती हैं। खोन कुछ-कुछ भारतकी कथकलीसे मिलता है।

थाईलैंडका राष्ट्रिय नाट्य 'राम-नाट्य' है, जिसमें सम्पूर्ण रामकीन प्रस्तुत की जाती है।

(८) रूसमें रामलीला

सन् १९६० में भारतविद् श्रीमती नतालिया गुसेवाने राम-कथापर बच्चोंके लिये नाटक तैयार किया और इसका मंचन हुआ। बीस वर्षोंमें २०० प्रदर्शन हो चुके हैं। इस कम्पनीने भारतमें—दिल्ली (१९७४)-में तथा लखनऊ, पटना एवं भुवनेश्वर (१९७७)-में इस नाटकका मंचन किया है। सन् १९८० में इस कंपनीको 'जवाहरलाल नेहरू' पुरस्कार दिया गया । इस नाटककी सशक्त अभिनय-क्षमताका एक प्रभावी दृश्यका उल्लेख करना उचित होगा। जब सीता लक्ष्मण-रेखा पार करनेको उद्यत होती हैं तो दर्शक बच्चे चीख उठते हैं—'मत जाओ-मत जाओ'।

(९) बर्लिनमें (जर्मनी) राम-कथा नाट्य

यहाँ बच्चोंके थियेटर 'थेयाटर देयर फ्रि एण्ड शाफ्ट' (मैत्री थियेटर)-में सन् १९७६ में 'रामायण' खेला गया। यह प्रायोगिक नाटक था। दो घंटेमें सम्पूर्ण नाटक प्रस्तुत किया गया था। इसकी विशेषता यह थी कि राम और रावण या सीता और शूर्पणखा जैसे (अच्छे और बुरे) पात्रोंका अभिनय एक ही पात्र करता है। उसमें राम और रावण बने पात्रोंने जो कहा, उन दोनों रूपोंमें अनुराग-भावनाएँ ही सबसे महत्त्वपूर्ण हैं, जो सचमुच मानवीय किस्मकी हैं। 'रावणके अभिनय-आसनपर रामकी भूमिका अत्यन्त मुश्किल काम है।'

सीताने कहा—'सीताके रूपमें मैं बिलकुल पाक-साफ आचरणके लिये मजबूर कर दी गयी थी। मैंने बिना प्रणय-लीलाके ही प्रेम और स्नेह दिखानेकी कोशिश की थी।' लक्ष्मण बने पात्रने कहा—'उस लड़केको कुछ भी तो नहीं मिलता। मेरे लिये यह कहनेका कोई कारण खोज पाना कि 'मैं भी आपके (रामके) साथ चलता हूँ, बड़ा मुश्किल था।

इस रामलीलाके सम्बन्धमें अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए निदेशिका श्रीमती एर्सेगने कहा—'जो अपने रूपमें बाहरकी ओर ले जाता है, कहीं शून्यमें नहीं बल्कि प्रेम, मैत्री और वचन-पालन-जैसे अत्यन्त उदात्त मूल्योंकी ओर।

महासंचालिका श्रीमती एर्बने कहा—'मैं इस महाकाव्यसे चकित हूँ। मैं उसके इस रूपसे यानी बौद्धिक,धार्मिक एवं दार्शनिक स्तरपर घटनाओंको वर्णित करनेकी इस कलासे मुग्ध हूँ। इसमें ऐसा रूप उभरा है, जो किसी-न-किसी तरह भारतीय है—भले ही बाहरसे भारतीय न लगे।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक देशोंमें भी रामलीलाकी झाँकीके दर्शन होते हैं। जैसे—मारीशस और सूरीनाममें भारतकी तरह ही रामलीला होती है। यहाँ 'नीग्रो', 'क्रियोल' और 'हिन्द एशिया' के लोग भी मूल भारतीय लोगोंके साथ उत्साहसे भाग लेते हैं। मंगोलियामें भी राम-जीवन-विषयक कथा और 'क्रिस्टल मिरर' अवलोकनीय हैं।

तुर्कीमें खोतानी 'राम-काव्य' प्रसिद्ध है और इसी तरह जापानमें 'होबुत्शुसू रामायण' तथा फिलीपीन्समें 'महार दिया लवना' प्रसिद्ध है। ये सभी देश अपने-अपने ढंगसे रामलीलाओंका मनमोहक, प्रेरक एवं शिक्षाप्रद भव्य आयोजन करते रहते हैं, जो निश्चित रूपसे रामलीलाके विश्वव्यापी प्रभावका द्योतक है।

[काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिंहजीके सौजन्यसे]

भगवान्‌के लीला-सहचर तथा उनके रोचक आख्यान

भगवान्‌के लीला-सहचर तथा भक्तोंके लीला-चरित्र और उनके रोचक आख्यान

(आचार्य श्रीसियारामदासजी नैयायिक, न्यायवेदान्ताचार्य, पी-एच० डी०)

अनन्तानन्त ब्रह्माण्डसर्जक करुणावरुणालय प्रभुकी अनन्त लीलाओंको मुख्यतया तीन भागोंमें बाँटा जा सकता है— (१) प्रकृतिपार दिव्यधामकी लीला, (२) बाह्यजगत्‌में अनुभूयमान श्रीराम-कृष्णादि अवतारोंकी लीला और (३) भगवदुपासनारत साधकके विमल मनमें प्रकट-लीला। इनमें प्रथम लीलाके आनन्दका अनुभव प्रायः मुक्त जीव ही करते हैं जो दिव्यधामवासी हैं। वे ही इसमें भगवान्‌के सहचर बनते हैं। द्वितीय एवं तृतीय लीलाका अनुभव बद्ध जीव भी करते हैं और प्रायः ये ही लोग लीला-सहचर भी हैं, जैसे—श्रीराघवकी रणलीलाके सहचर वानरराज सुग्रीवादि। पर तृतीय कोटिकी लीलाका अनुभव साधकोंको छोड़कर अन्य कोई सामान्य प्राणी नहीं कर सकता। हाँ, महापुरुषोंकी अनुकम्पासे तो सब कुछ सम्भव हो जाता है।

भक्तिमती शबरी इन दोनों प्रकारकी लीलाओंमें भगवान्‌की सहचरी हैं, इसकी पुष्टि 'भुशुण्डिरामायण'से होती है। पम्पासरोवरके पश्चिमी तटपर दुर्धर्ष तपस्वी महर्षि मतंग अपने शिष्योंके साथ साधनारत थे। गुरु-सेवार्थ शिष्योंद्वारा वन्य-पुष्पादि लाते समय श्रमातिरेकके कारण जो उनके शरीरसे स्वेदविन्दु गिरते थे; वे ही उनके तपःप्रभावसे तत्काल पुष्पवृक्ष बनकर पुष्परूपमें प्रकट हो जाते थे, जो न तो कभी मुरझाते थे और न ही डालसे झरते थे। मतंग-शिष्योंसे व्याप्त यह वनस्थली 'मतंगवन'के नामसे प्रसिद्ध हो चुकी थी। यह ऋषिकी तपश्चर्या या भगवद्भजनका प्रभाव ही था कि यहाँ महाकाय हाथी-जैसे प्राणी भी कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे। यहींपर महर्षि मतंग और उनके शिष्योंकी सेवा करनेवाली एक भील-महिला निवास करती थी। जिसकी प्रसिद्धि 'शबरी' नामसे ऋषियोंतक ही नहीं, अपितु दुर्दान्त दैत्योंतक हो चुकी थी; क्योंकि कबन्ध-जैसे क्रूर राक्षसने ही श्रीरामको 'शबरी'का परिचय दिया था।

शबरी जिन महर्षियोंकी सेवा करती थी, उन्होंने अपने परमधाम-गमनके समय उससे कहा था—'तुम्हारे इस पवित्र आश्रमपर परमात्मा श्रीराम पधारकर तुम्हें अपने दर्शनसे कृतकृत्य कर देंगे'—

आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम्॥

(वा० रा० ३। ७४। १५)

शबरी मतंगवनमें दिन-रात प्रभुके पधारनेकी प्रतीक्षा करने लगी। अहा! कैसी प्रतीक्षा है—कभी तो कुटीके बाहर आकर मार्गपर बड़ी दूरतक सतृष्ण दृष्टिपात करती कि प्रभु आ रहे हैं या नहीं! और कभी शीघ्रतासे अंदर जाती कि प्रभुके लिये बिछाया गया आसन अस्त-व्यस्त तो नहीं हो गया! उसे पुनः बिछाकर व्यवस्थित करके बाहर आ जाती है।

यह भीलांगना श्रीराम-प्रेममें मतवाली है। प्रतीक्षा करते-करते पल नहीं; अपितु यौवन भी ढल गया, पर गुरुवचनोंसे विश्वास न डिगा। अब शबरीकी दृष्टि युवावस्थावाली नहीं है कि मात्र दृष्टिपातसे मधुर फलोंको पहचान ले और आराध्यके सत्कार-हेतु संचित कर ले। अतः वह रसनेन्द्रियकी सहायता लेने लगी अर्थात् चख-चखकर फलोंको एकत्र करने लगी। अब तो जलपात्रको ढोनेकी सामर्थ्य भी वृद्धा शबरीके हाथोंमें नहीं है कि चखनेके पश्चात् हस्त-प्रक्षालन करके फल चयन करे। इधर श्रीरामका वनमें पदार्पण हो चुका है और उधर मतंगवनके आस-पासके योगी, सांख्यतत्त्ववेत्ता, यागादि धर्मोंके अनुष्ठाता, वेदपाठी, तपस्वी और त्यागी ऋषियोंके लिये शबरीकी अधम जाति तथा उसका उक्त आचरण असह्य हो उठा। वे कहते हैं कि ऐसी अधम नारीको श्रीरामका दर्शन नहीं हो सकता। परंतु

शबरीका श्रीराम-प्रेम तो निरन्तर बढ़ता जा रहा है। सतत श्रीराम-स्मरणने उसे प्रेमकी पराकाष्ठापर अधिष्ठित कर दिया। अब फलोंको चखनेके पश्चात् भी 'ये फल अमुक वृक्षके हैं'—ऐसा ज्ञान शबरीके हृदयमें नहीं टिक पाता है। अतः 'राम! राम! राम!' ऐसा सुमधुर नामोच्चारण करके जो फल चखनेसे सुमधुर प्रतीत होता है, उसे ही प्रभु-सेवार्थ ले लेती है।

इधर प्रभु श्रीराम ऋषियोंको कृतार्थ करते हुए विचरण कर रहे हैं। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'मैं प्रेमकी मूर्तिमयी देवी शबरीका दर्शन करना चाहता हूँ। वे मेरी परम भक्ता हैं।' प्रभुसे मिलनेके लिये योगी, सांख्यतत्त्ववेत्ता, यागादि-धर्मानुष्ठाता, स्वाध्याय-परायण तपस्वी और त्यागी अर्घ्य लेकर खड़े हैं। परंतु प्रभु सर्वप्रथम शबरीकी कुटीपर ही

पधारते हैं। शबरीके द्वारपर पहुँचकर प्रभुने कहा—'प्रिय सौमित्रि! देखो, शबरी किस प्रकार उत्सुकतासे मेरे आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है। भैया! मेरे दर्शनकी उत्कट लालसावाले इसके नेत्रोंको देखो। आज मैं निश्चित ही इसे सुखी बना दूँगा।'—ऐसा कहकर श्रीराघवने शबरीकी कुटीमें पहुँचकर यह दिखला दिया कि मैं भक्तिसे मिलता हूँ—'**भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया**'।

शबरीकी चिराभिलाषा पूर्ण हुई। प्रेमोन्मत्त शबरीने आतिथ्य-सत्कार किया। अनेक प्रकारके पदार्थोंके साथ अपनी भक्ता शबरीके उच्छिष्ट फलोंका भक्षण भी श्रीरघुनन्दनने कर लिया। स्वयं पितामह ब्रह्मा कह रहे हैं—

शबरीवदनोच्छिष्टैः प्रेमपूतैः फलै रसौ।
आत्मानं तर्पयामास सर्वाभ्यधिकसारवित्॥

(भुशुण्डिरामायण, दक्षिण खण्ड १६७। २३)

शबरीके मुखसे उच्छिष्ट फल उसके श्रीरामप्रेमके कारण पवित्र हो चुके थे। उन्हींसे दशरथनन्दन श्रीरामने अपनेको तृप्त किया, क्योंकि वे सर्वापेक्षया अधिक ही सारतत्त्वके ज्ञाता हैं। प्रभुने कहा—'शबरी! आज मैं तुम्हारे घर आकर तृप्त हो गया'—

अद्याहं खलु तृप्तोऽस्मि शबरि त्वद्गृहागतः।

(भुशुण्डिरामायण, द० ख० १६७। २७)

वस्तुतः अवाप्त-समस्तकाम प्रभु सर्वदा तृप्त हैं, पर भक्तोंसे सम्बद्ध वस्तुकी प्राप्तिके लिये अतृप्त-जैसे बने रहते हैं अर्थात् भक्तोंकी वस्तु प्राप्त करनेके लिये उतावले हो उठते हैं। अतः जिन्हें प्रभु-प्राप्तिकी इच्छा हो, उन्हें साधक या सिद्ध बननेकी अपेक्षा अधिक उचित यह है कि वे प्रभुके भक्तोंके बन जायँ। इसीलिये प्रभुने मात्र शबरीको ही नहीं, अपितु उसके सांनिध्यमें निवास करनेवाले पशु, पक्षी एवं ओषधियों तकको वरदान दे डाला।

शबरीको महान् पश्चात्ताप हुआ कि मुझ-जैसी अधम नारीने प्रेम-प्रवाहमें बहकर जगन्नियन्ता श्रीरामको अपना उच्छिष्ट खिला दिया। हा! मैंने महान् अनर्थ कर डाला। प्रभुने शबरीको समझाते हुए कहा—'शबरी! प्रेमरूपी वनमें निवास करनेवाली अतिशय धन्या शुकीने इन फलोंका आस्वादन किया था, जिससे ये मधुर हो गये थे—

जाने प्रेमवनीवास्तुः कापि धन्यतमाशुकी।
आस्वादयत् फलान्येतान्यतिमाधुर्यभाञ्जि यत्॥

(भुशुण्डिरामायण, द० ख० १६८। ९)

अतः तुम पश्चात्ताप न करो तात्पर्य यह कि इन मधुर फलोंसे मैं तृप्त हुआ हूँ। अतः माधुर्यका आधान करनेवाली

शुकीको अपने उच्छिष्ट कर्मको अनर्थकारक कर्म समझकर पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये, क्योंकि स्वरूपतः कोई कर्म अच्छा या बुरा नहीं हो सकता, अपितु जिससे प्रभुकी प्रसन्नता हो, वही कर्म है अर्थात् अच्छा कर्म है—**'तत्कर्म हरितोषं यत्'** (श्रीमद्भा० ४। २९। ४९)। श्रीराघवेन्द्रने कहा कि मैं प्रेमके वशीभूत हूँ।'

शबरी चूँकि युगलोपासिका है। अतः श्रीविदेहनन्दिनी-रहित श्रीरामके साक्षात्कारसे लब्ध परमानन्दको अपूर्ण मानने लगी। तब प्रभुने कहा कि तुम्हें आगामी कल्पमें मेरे विहारस्थल प्रमोदवन (अयोध्याका एक प्रसिद्ध वन)-में जन्म प्राप्त होगा। उस समय तुम श्रीजूके सहित मेरा लीलामय साक्षात्कार करोगी। प्रमोदवन प्रभुकी विहारस्थली है। वहाँ निवास करनेवाले पशु-पक्षी तक प्रभुके लीला-सहचर हैं, फिर वहाँ जन्म लेनेवाली प्रेमोन्मत्ता शबरी यदि लीला-सहचरी हो जाय तो क्या आश्चर्य! श्रीराघवका शबरीके यहाँ पदार्पण देखकर ऋषियोंने भक्ता शबरी और भगवान् श्रीराघवकी भरपेट निन्दा की। भगवान्‌की निन्दासे परलोक बिगड़ता है, पर भक्तकी निन्दासे तो इहलोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं—

हीयेतामुत्रिकं श्रेयो भगवन्मात्रनिन्दया।
ऐहिकं चामुत्रिकं च श्रेयस्तद्भक्तनिन्दया॥

(भुशुण्डिरामायण, द० ख० १६९। १६)

फलतः ऋषियोंके आश्रमके समीप प्रवहमान सरिता रक्तमयी हो गयी। हवन-सामग्रीमें कीड़ोंके प्रकोपके साथ ही अग्निहोत्रोपयोगी अग्नि भी बुझ गयी। अब न तो इहलोकका कोई कार्य कर सकते हैं और न ही परलोकका।

कर्मलोपके भयसे चारों ओर हाहाकार मच गया। इसी समय महर्षि अगस्त्य उन सबके बीच प्रकट हो गये। विचार-विमर्शके पश्चात् महर्षि कुम्भजने इन उपद्रवोंका कारण महापुरुषोंकी निन्दाको बतलाते हुए कहा कि बड़ोंकी निन्दा निन्दककी विद्या, वीर्य, यश और सम्पत्तिको नष्ट कर देती है—**'निन्दा हि महतां हन्ति विद्यां वीर्यं यशः श्रियम्'** (भुशुण्डिरा०, द० ख० १७०। १०)। अतः आप लोग परम पुरुष श्रीरामको प्रसन्न करें, वे अभी दूर नहीं गये हैं। तदनन्तर ऋषिगण अगस्त्यजीको आगे करके परमात्मा श्रीरामके समीप आये और क्षमा-याचना करने लगे। प्रभुने कहा कि मैं तो आप लोगोंका भक्त हूँ, आप लोगोंके लिये वनमें विचरण कर रहा हूँ। आपका अनिष्ट मेरी निन्दासे नहीं, अपितु महाभागा शबरीकी निन्दासे हुआ है। उन्हें भीलनी समझकर अपमानित मत कीजिये। वे तो समस्त देवताओंकी भी प्रणम्या हैं। मानवोंकी क्या बात है? उनके चरणोंकी रजसे अतीर्थ भी तीर्थ हो जायँगे। अतः आप उन्हें ही प्रसन्न करें—

तस्याः पादरजःस्पर्शादतीर्थं तीर्थतामियात्।
अतो भूयः समाराध्या भवद्भिः सा किरातिनी॥

(भुशुण्डिरा०, द० ख० १७१। २३)

तात्पर्य यह कि उनकी चरणरज धोकर नदीमें छोड़ दो तो वह तीर्थ बन जायगी। ऋषियोंने आकर शबरीको प्रणाम करके चरण-रजकी याचना की। शबरी बड़ी लज्जित हुई। उसने स्वयं उठकर समस्त ऋषियोंको प्रणाम करके कहा कि यदि छोटोंको बड़े लोग प्रणाम करें तो इससे अपकृष्ट प्राणीकी आयु, सम्पत्ति और यश नष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है—

अपकृष्टतमे जन्तौ महद्भिर्विहिता नतिः।
आयुः श्रियं यशो हन्ति तस्य नास्तीह संशयः॥

(भुशुण्डिरा०, द० ख० १७२। २३)

शबरी बड़े विनीत-भावसे महर्षि अगस्त्यको प्रणाम की और अन्ततः उन्हींकी प्रबल प्रेरणासे तत्तत् ऋषियोंके आश्रमपर गयी। उसके चरण-रज-मिश्रित जलसे नदी पवित्र हो गयी। अग्निशालामें अग्नि प्रज्वलित हो उठी। सभी उपद्रव शान्त हो गये। महर्षि अगस्त्यने सभी ऋषियोंके साथ उसकी बड़ी प्रशंसा की। तदनन्तर वह अपने आश्रममें लौट आयी। प्रभुकी भक्तमहिमा-प्रदर्शनरूप लीलाकी मुख्य सहचरी श्रीशबरी हैं। आगामी कल्पमें प्रमोदवनमें लीला-सहचरी होनेका सौभाग्य भी इन्हें प्राप्त है।

श्रीहनुमंत-लीला

(स्वामी श्रीविद्यानन्दजी)

रामायण श्रीरामके कारण चरितार्थ हुई—यह सत्य है, परंतु उतना ही निर्विवाद सत्य यह भी है कि रामायण श्रीहनुमंतके कारण भी चरितार्थ हुई। स्वतन्त्र नाट्य-विद्याके अन्तर्गत रामायणके नायक श्रीरामके स्थानपर हनुमंत ही दीखते हैं, कारण सीता-खोजसे रावण-वधतकका घटना-क्रम तथा श्रीरामके अयोध्या लौटनेका संदेश पहुँचनेतकका समग्र लीला-नाट्य हनुमंतके ही चारों ओर घूमता है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भी श्रीरामने परमधाम पधारनेके समय हनुमंतको ही अयोध्याका नेतृत्व सौंपा था। अत: कहा जा सकता है कि जैसे बिना श्रीरामके रामायणकी कथा नहीं, वैसे ही हनुमंतके बिना भी रामायण-कथाकी पूर्णता नहीं हो सकती।

श्रीहनुमंतका अग्रणीत्व—

श्रीहनुमंतका अग्रणीत्व उनकी जन्म-कथासे ही प्रारम्भ हो जाता है, जो तीन प्रकारसे विकसित होता है—(१) देह, (२) बुद्धि और (३) प्रताप।

हनुमंतकी माता अंजनी और पिता केसरी थे। अंजनी पूर्वजन्ममें पुंजिकस्थला नामकी श्रेष्ठ अप्सरा थीं। ऋषिके शापवश वानरी हुईं, तथापि उनका अप्रतिम लावण्य वरदानके कारण था। उनका लावण्य देखकर वायुदेव काम-मोहित हो गये और उन्होंने केसरीकी देहमें प्रवेश किया। अंजनीके पति होनेके साथ ही वे केसरी '**तेज प्रताप महा जग बंदन**' थे। वायुशक्तिसे विलक्षण गतिमान्, चपल तथा शक्तिसम्पन्न केसरी पिताके रूपमें श्रीहनुमंतको मिले थे। माताको अनुपम लावण्य प्राप्त हुआ था तथा महत्तेजके परिपूर्ण चरुपिण्डसे मानो ब्रह्मगोलक ही हनुमंतके रूपमें उत्पन्न हुआ था।

बलाढ्य-पितृत्व, सौन्दर्यशाली मातृत्व और ब्रह्मतेजका अवतरण—इन तीन सुवर्ण-सरिताओंसे युक्त मन:पिण्डयुक्त देह-प्रभा ओतप्रोत हुई थी। जहाँ समर्थ रामदासजीद्वारा '**ईश्वरी तनु**' कहकर सार्थक वर्णन किया गया, वहीं '**अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं०**' उनका ऐसा यथार्थ स्वरूप कहा गया।

हनुमंतके श्रेष्ठत्वका यथार्थ वर्णन करते हुए '**जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्**' कहा जाता है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी '**बल बुधि बिद्या देहु मोहिं**' यह प्रार्थना हनुमंतसे की है।

अध्यात्मक्षेत्रमें बुद्धिमान् मनुष्य ही भक्तिका आदर्श उपस्थापित कर सकता है और जीवके उद्धारका मार्ग स्वत:के अनुसंधानसे प्राप्तकर दूसरोंको भी प्रेरित कर सकता है। हनुमंतकी लीलाओंसे प्रकट विराट् एवं कुशल- बुद्धिका परिचय मानवीय जीवोंको स्तम्भित कर देता है। समर्थ रामदास स्वामीने हनुमंतकी आरतीमें '**शक्तिबुद्ध जये ठायी। तेथे श्रीमंत धावती**' ऐसा भाव दिया है।

निर्भीक वक्तृत्व, शुद्ध स्मरण-शक्ति, वाक्-चातुर्य, युद्ध-कौशल, शास्त्र-पारंगतता तथा अनुभव-कौशल्य आदि राजदूत होनेमें आवश्यक गुण हनुमंतमें विद्यमान थे। रावणकी राजसभामें निर्भीक वक्तृत्वका परिचय उनके भाषणमें स्पष्ट परिलक्षित होता है। रावणको उन्होंने सशक्त शब्दोंमें नम्रतापूर्वक संदेश दिया, मार्मिक शब्दोंसे रावणकी त्रुटियाँ भी बतला दीं तथा अत्यन्त कुशलतासे सम्भाषणद्वारा नीति और सदाचारका पाठ भी पढ़ाया। उत्तम वक्तृत्व-शैली तथा वाक्-चातुर्य भी हनुमंतके पास थे। श्रीरामको हनुमंतके इन अगाध गुणोंकी पहचान ऋष्यमूक पर्वतपर प्रथम भेंटके समय ही हो गयी थी। श्रीराम लक्ष्मणसे कहते हैं—'सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका इन्होंने अध्ययन किया है, ये अत्यन्त ज्ञानी हैं—ऐसा इनके बोलनेपर ही विदित हो जाता है कि इनके समान वाक्पटु संसारमें दूसरा कोई नहीं है।' हनुमंतकी स्मरण-शक्तिकी भी तुलना नहीं थी, श्रीराम इस बातको अच्छी तरह जान गये थे, तभी तो सीताको खोजनेका कार्य उन्होंने हनुमंतको ही सौंपा था। हनुमंतने सीताकी खोज तो की ही, साथ ही लंका नगरीका अत्यन्त सूक्ष्मतासे निरीक्षण भी किया। छोटी-छोटी बातोंको भी भलीभाँति स्मरण रखकर श्रीरामसे विस्तारपूर्वक बतला दिया, जिसमें सैन्य, संरक्षण-व्यवस्था, राज्यकी संरचना, संरक्षण-योजना और गुप्तमार्ग आदिका भी विषय सम्मिलित था। सीताकी खोजके अनन्तर युद्ध-कौशल भी दिखाया। लंकाकी कार्यसिद्धिमें युद्ध-कौशल, शास्त्र-पारंगतता, अनुभव-सम्पन्नता आदि इसीके द्योतक हैं। हनुमंतका अतुलनीय बुद्धि-वैभव तथा कार्यकुशलता अनेक प्रसंगोंमें द्रष्टव्य है—

जब द्रोणगिरि लानेके लिये जाते समय कपटसे मगरीने इन्हें निगला, जब अहिरावण तथा महिरावण एकसे सौ कैसे हो जाते हैं? इसका कारण ढूँढ़कर उन्होंने अमृतकुण्ड फोड़ा, जब चन्द्रसेनासे श्रीरामको घर लानेका वचन दिया, इन्द्रजित्की यज्ञाहुतिका ध्वंस किया और द्वापरयुगमें भीमका गर्व

चूरकर उसको श्रीकृष्णके व्यक्तित्वका रहस्य योगोपदेशद्वारा बतलाया इत्यादि।

जितना हनुमंतके देहका और बुद्धिका अग्रणीत्व है, उतना ही प्रतापका भी है। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीके कथनानुसार हनुमंतका प्रताप केवल त्रेतायुगतक ही सीमित नहीं है—*'चारों जुग परताप तुम्हारा। है परसिद्ध जगत उजियारा॥'*—ऐसा कहते हुए आगे यह भी बताते हैं कि *'साधु संत के तुम रखवारे। असुर निकंदन राम दुलारे॥'* इसमें प्रतापकी व्याप्ति भी बतायी और प्रतापकी सामर्थ्य किस उपयोगके लिये है, यह भी दर्शाया। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि—इन चारों युगोंमें दैवी शक्ति-सम्पन्न प्रभावी प्रतापी एकमेव हनुमंत ही हैं। इन्होंने अपनी सामर्थ्यका उपयोग केवल ऐसे साधु-संतोंके लिये ही किया, जिनकी अध्यात्म-सम्पदा केवल दीन-दुर्बलोंके उद्धारके लिये ही थी। हनुमंत दीनोंके तारणहार तथा अध्यात्म-प्रवणजनोंके पालनहार हैं अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णके वचनों—'**योगक्षेमं वहाम्यहम्**'-की पूर्ति करनेवाले प्रत्यक्ष हनुमंत ही हैं।

हनुमंतके साथ घटित अद्भुत घटनाओंसे यह सिद्ध होता है कि मात्र ईश्वर ही अपने भक्तको इतना सौभाग्य देकर गौरवान्वित कर सकता है। स्वयं प्रभु श्रीराम भक्त हनुमंतसे कहते हैं—'हे पुत्र, मैं तुझसे उऋण नहीं हो सकता'—*'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।'*

तुलसीदासजीने इस अनुपम घटनाका कितने आर्त शब्दोंमें वर्णन किया है। हनुमंतने अपने सारे कर्तृत्व श्रीराम प्रभुको समर्पित कर दिया। श्रीराम प्रभु हनुमंतके आराध्य हैं। हनुमंतका अपने आराध्यके प्रति समर्पित-भाव इतना प्रचण्ड था कि आराध्यकी दीप्ति स्वतःमें समाहितकर आराध्यको भी दीप्तिमान् करनेका प्रभाव उन्होंने स्वतःमें निर्मित कर लिया था, जिसके साक्षी स्वयं जाम्बवंत हुए थे। कथा-प्रसंग अद्भुत होनेपर भी हनुमंतके प्रभावपूर्ण लीलाका यथार्थ वर्णन करनेवाला है। इन्द्रजित्से घनघोर युद्धमें सुग्रीव, नल, मयंद, द्विविद इत्यादि रथी-महारथी मृतवत् हो गये, केवल विभीषण तथा हनुमंत हाथमें मशालें लिये अँधेरी युद्ध-भूमिपर भ्रमण कर रहे थे। चारों ओर दुःखसे व्याप्त विह्वल करनेवाले आर्त-स्वर कानोंमें पड़ रहे थे, परंतु बोलनेकी स्थितिमें केवल जाम्बवंत ही थे। विभीषणने जाम्बवंतकी आवाज पहचानी और उनके पास जाकर पूछा—'हे आर्य! तीक्ष्ण बाणोंसे आपके प्राणोंका नाश तो नहीं हो रहा?' जाम्बवंत बोले—'मैंने तुम्हें स्वरके कारण पहचाना, परंतु तुम मुझे दिखायी नहीं दे रहे हो। अस्तु, हनुमंत कहाँ हैं? जीवित तो हैं न?' विभीषण बोले—'राम, लक्ष्मण अथवा सुग्रीव, अंगदकी पूछताछ छोड़कर आप हनुमंतकी ही पूछताछ क्यों कर रहे हैं? मारुतिके अतिरिक्त आप किसी और से प्रेम नहीं करते क्या?' इस प्रश्नके उत्तरमें जाम्बवंतके कहे गये वचन लक्षणीय तथा चिन्तनीय हैं—'मैं मारुतिकी पूछताछ इसलिये करता हूँ कि यदि वे जीवित हैं तो बाकी सभीके प्राण बचनेकी सम्भावना है, किंतु यदि हनुमंत जीवित नहीं रहे, तो हम सब मरेंगे यह निश्चित है।' इतनेमें हनुमंत आगे आ गये। जाम्बवंत बोले—'हनुमान्, तुम हिमालयपर जाओ, वहाँ सुवर्ण और कैलास—इन दो शिखरोंमें एक ओषधि-शिखर है, वहाँसे ये चार महौषधियाँ—मृत-संजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी तथा संधानी ले आओ। ये निरन्तर चमकती रहती हैं, यही इनकी पहचान है। उन्हें लाकर तुम सबके प्राण बचा सकोगे।' इसी कारण लक्ष्मणके भी प्राण बचे, यह सर्वविदित सत्य है। ऐसे अलौकिक प्रतापके कारण ही हनुमंतको 'चिरंजीवी' पद प्राप्त हुआ था।

लीला-लाघवी व्यक्तित्व—

पुत्रकामेष्टि-यज्ञमें अग्निदेवतासे पायस-दानके रूपमें तीन पिण्ड दशरथको प्राप्त हुए थे, जिनका तीनों रानियोंमें वितरण हुआ था। कैकेयीके क्रोधित होनेके कारण उसको दिया गया पिण्ड पड़ा रह गया, जिसे संयोगसे चीलने झपट लिया और बादमें वह अंजनीके हाथ लग गया। बाकी बचे दो पिण्ड तीनों रानियोंके हिस्सेमें आये। अतः राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नको अर्धपिण्डसे जन्म मिला, परंतु हनुमंत पूर्ण पिण्डसे ब्रह्मगोलकके रूपमें जन्मे थे।

हनुमंतके पास जहाँ प्रगाढ़ बुद्धिमत्ता और चपलता थी, वहीं वाक्-पटुता और रण-कुशलता भी थी। साथ ही उनमें अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा निष्काम कर्तव्यका योग था, परंतु सारे उत्कृष्ट गुण उनकी भक्तिके अंग मात्र ही थे। इसी कारण उनकी असामान्य शक्ति सेवा-तत्पर बन पायी। बालकपनमें ऋषि-मुनियोंके साथ चंचलता प्रकट करनेवाला हनुमंत बड़ा होकर उनका दुष्टोंसे संरक्षण करने लगा। हनुमंतकी शक्ति इतनी प्रबल थी कि भूख लगनेपर फल समझकर सूर्य-बिम्बपर ही उड़ान भर ली। जहाँ युद्धमें वे अतुलनीय योद्धा थे, वहाँ अशोक-वनमें असहाय एकाकी सीताके मनका हाल बड़ी सहृदयतासे जान पाये, कारण ऐसी मृदुता उनके मनमें भरी थी। सीता-खोजके उपरान्त श्रीरामसे वृत्तान्त-कथनमें

इनके द्वारा कहे गये केवल 'दृष्टा सीता' इन काव्यमय दो शब्दोंमें ही सीताकी खोज, उनकी सुरक्षा तथा उन्हें प्रत्यक्ष देखनेकी साक्षी—इन सारी बातोंका अनुबोध श्रीरामको हो गया तथा श्रीरामके लिये अब चिन्ता करनेकी बात नहीं है, यह अभिवचन भी मिल गया। अयोध्या लौटनेके समय भरतको समाचार देनेका काम भी श्रीरामने हनुमंतको ही सौंपा। हनुमंत उस कसौटीपर खरे उतरे तथा उन्होंने भगवान्‌को मन-ही-मन संतुष्ट कर दिया। हनुमंतने अलौकिक योगबलके आधारपर सुरसा राक्षसीको आश्चर्यचकित कर दिया। लंका नगरीमें प्रवेश करनेपर सूक्ष्म रूप धारण करके राक्षस-प्रासादोंके गवाक्षोंसे सीताको भी खोज निकाला, परंतु उस समय अनेक स्त्रियोंके वस्त्रहीन शरीरोंको देखनेपर भी हनुमंतके मनमें यत्किंचित् काम-विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने इतना मनोजय साधा था।

भक्ति, शक्ति, बुद्धि तथा युक्ति—इन चारों सम्मिलित गुणरूपी गुच्छोंको समाहित करनेका लाभ हनुमंतको प्राप्त था। स्वत: अथक कर्तव्य-सम्पन्न होनेके साथ चिरंजीवी होनेके संयोगने उनकी भक्तिके लिये काल भी कोई सीमा निर्धारित नहीं कर पाया। कलियुगमें भक्तिका किंबहुना ज्ञान-भक्तिके एकमेव आदर्श हनुमंत ही ठहरते हैं।

हनुमंतकी पारलौकिकता—

जहाँ लौकिक आचरणोंमें ही हनुमंतका व्यक्तित्व अलौकिक था, वहाँ अध्यात्मक्षेत्रमें तो वे विविधाङ्गी एवं सर्वोन्नत व्यक्तित्वके द्वारा सुवर्ण-शिखरपर पहुँच ही गये हैं। 'रामरहस्योपनिषद्'के अनुसार उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, शाण्डिल्य, मुद्गल आदि ऋषियोंके समक्ष राम-तत्त्वका प्रतिपादन किया था। इस उपनिषद्में दैवी अंशसे परिपूर्ण उनके प्रकट दिव्य शरीरका वर्णन मिलता है। हनुमंतके विविध उद्धार-लीलाओंसे उनकी पारलौकिक श्रेष्ठताके विषयमें कोई शंका बाकी नहीं रहती। उनके उद्गार हैं—

'नैव योज्यो राममन्त्रः केवलं मोक्षसाधकः।
ऐहिके समनुप्राप्ते मां स्मरेत् रामसेवकम्॥'

'राममन्त्र केवल मोक्ष-साधक है। जब आपत्ति-संकटकाल आये तो इन ऐहिक बातोंके लिये रामसेवक मानकर मेरा ही स्मरण करना।' जैसे सूर्य इतनी ऊँचाईपर होते हुए भी सामान्य घास-पत्तियोंको भी अपना प्रकाश प्रदान करता है, उसी प्रकार हनुमंत स्वत: ब्रह्माण्डके समान होते हुए भी सामान्य जनोंको ऐहिक दु:खोंसे छुटकारा दिला देता है। हनुमंतके कार्योंका आध्यात्मिक स्तर उच्च होते हुए भी वटवृक्षकी भाँति इतना व्यापक होता है कि उसमें लोक-जीवनके आधिभौतिक दु:ख भी समाविष्ट हो जाते हैं तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शनद्वारा आत्मज्योतिकी ओर प्रवास भी निर्विघ्न हो जाता है। हनुमंतने श्रीरामसे अपने तीन भावोंको प्रकट किया—(१) देह-भाव, (२) जीव-भाव तथा (३) आत्मभाव—

'देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहमिति मे निश्चया मतिः॥'

'देहभावसे मैं तेरा दास हूँ, जीव-भावसे मैं तेरा अंश हूँ और आत्मभावसे तू और मैं एक ही हूँ।' ऐसा अपना नि:शंक मत हनुमंतने स्पष्ट किया है। युगों-युगोंसे चलनेवाला हनुमंतका जीवन इन तीनों भावोंका महान् आदर्श प्रस्तुत करता है। देहभावसे दीनोंका दुर्बलत्व हरण करते-करते आत्मभावसे सबका उद्धार करते जाना यही महान् दैवत है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामको विष्णुका अवतार माना जाता है। श्रीराम और हनुमंतका जन्म एक ही ब्रह्मपिण्डसे हुआ है। ब्रह्मपिण्डके प्रभावके कारण ही बाल्यावस्थामें श्रीरामके द्वारा चमत्कारिक लीलाएँ घटित हुईं। ऐसा ही हनुमान्‌के साथ भी हुआ। अत: एक-से-एक वरदान प्राप्त हुए तथा विलक्षण सामर्थ्य तथा तेज हनुमंतके पास एकत्र हो गये, जैसे—इन्द्रसे वज्रदेह तथा सूर्यसे सभी शास्त्रोंका ज्ञान, आरोग्य और तेज प्राप्त हुआ। वरुणने अमरता प्रदान की, यमने अजरत्व दिया, कुबेरने अपनी विजयी गदाके साथ अजेयत्वका आशीर्वाद दिया, शंकरने सर्वशस्त्रोंसे अभय प्रदान किया, विश्वकर्माने चिरंजीवी रहनेका वरदान दिया, ब्रह्मदेवने अवध्यत्व, अमरत्व, महागतिमत्त्व तथा इच्छित रूप धारण कर सकनेकी सामर्थ्य प्रदान की। शक्ति, बल, बुद्धि एवं सामर्थ्यादि दैवी शक्तियोंका उपयोग हनुमंतने केवल लोक-कल्याणार्थ किया तथा कर रहे हैं। कभी उन्माद न करते हुए, नम्रताका स्थायीभाव रखते हुए सज्जनोंकी रक्षा और दुर्जनोंकी ताडना करते हुए उन्हें शिक्षा दी और आज भी हम सभीको दे रहे हैं।

सूर्यकी ओर की गयी उछाल भी साक्षात् भूलोकसे सत्यलोककी ओर की गयी उड़ान थी। ठोडीपर हुआ आघात सहन करनेपर उड़ान सफल हुई। ब्रह्मगोलक लोक-कल्याणार्थ अवतीर्ण करके आत्म-चैतन्यकी विश्व-चैतन्यके साथ गाँठ बाँध दी। मन और बुद्धिसे अतीत आत्मचैतन्य

मानवी जीवका मूलतः स्थायी रूप होता है। वह ब्रह्मचैतन्य ही साक्षी भावका प्रकट रूप धारण कर लिया। सत्यलोकमें निहित ब्रह्मतेजकी अवतरण-प्रक्रिया परिपूर्ण हुई। श्रीराम हनुमंतके लिये अवतीर्ण होते गये। हनुमंत उड़ानके संकेतसे ब्रह्मत्वके निकट पहुँचे। श्रीराम तथा हनुमान्‌ने परस्पर आलिंगन किया। अवतरण तथा उद्धरण-प्रक्रिया पूर्णदशाको प्राप्त हुई। चैतन्य जीव ब्रह्मचैतन्यमें लीन हो गया। गङ्गा-यमुनाके संगमके बाद फिर दोनों सरिताएँ गङ्गाके नामसे जैसे बहती हैं, उसी तरह जीव चैतन्य और ब्रह्मचैतन्य एकरूप होकर हनुमंतके नामसे भक्तिकी बाढ़को समृद्धि देते हुए निरन्तर गतिमान् है और रहेगा। हनुमंत-लीला अपार एवं अगाध है। इसमें किंचित् अवगाहन होनेपर भी मानव-जीवनकी सार्थकता निस्संदेह सध जाती है।

[अनुवादक—श्रीप्रभाकरजी पौण्डरीक]

श्रीहनुमान्‌जीकी विविध लीलाएँ

(मानसमणि पं० श्रीरामनारायणजी शुक्ल, शास्त्री, व्यास)

सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अवतार स्वामी-धर्मके आदर्शकी स्थापनाके लिये होता है। राजाको किस प्रकार प्रजाको धर्मकी शिक्षा देकर, उसे सन्मार्गपर चलाकर उसका लोक-परलोक बना देना चाहिये—अपने धर्म-मर्यादित लोक-ललित-लीलाओंमें मर्यादापुरुषोत्तम प्रभु श्रीरामने यही किया। श्रीमारुतनन्दनजी श्रीमद्भागवत (५। १९। ५)-में कहते हैं—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

भगवान् प्राणिमात्रको मानवताकी शिक्षा देनेके लिये ही मनुज-अवतार लेकर लीला करते हैं, साथ ही अपने चरितसे वे धर्ममार्गका विस्तार करते हैं, जैसा कि इस श्रुतिवाक्यसे स्पष्ट भी है—

धर्ममार्गं चरित्रेण ....।

(रामपूर्वतापनीयोपनिषद्)

—इन वचनोंकी प्रामाणिकता मर्यादावतारी प्रभुके स्वयंके वचनोंसे सिद्ध हो जाती है। वे कहते हैं—

भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला
नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

'हे भावी राजाओ! आप लोगोंको बारम्बार प्रणामकर श्रीराम याचना कर रहे हैं—यह जो सामान्य धर्मसेतु है, आप सभी लोग समय-समयसे इसका पालन—प्रचार-प्रसार करते रहेंगे [जिससे प्रजा इसका अनुसरणकर जीवनका लाभ प्राप्त कर ले]।' इस प्रकार जैसे श्रीराम स्वामी-धर्मका विजयध्वज फहराते हैं, ठीक इसी भाँति श्रीहनुमान्‌जी सेवा-धर्मका आदर्श पूरे विश्वमें स्थापित करते हैं।

भगवान् शंकर ही हनुमान्‌के रूपमें अवतरित होते हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस संकर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

अवतार-लीला

श्रीमन्नारायणके मोहिनी-रूपको देखकर शिवजीका तेज विशीर्ण हो गया था, जिसे ऋषियोंने पत्रपुटकमें रख दिया था। समयसे भगवान् शिवकी अष्टमूर्तियोंमें विराजित दिव्य-विभूति वायुदेवने उस शिव-तेजको केसरी वानरकी धर्मपत्नी अञ्जनादेवीके कानोंके रास्ते उनके देहमें प्रविष्ट करा दिया। अञ्जनादेवीद्वारा महान् तप करनेपर परम संतुष्ट शिवजीने उन्हें वरदान दिया था कि हमारे तेजसे तुम्हें सर्वगुणसम्पन्न दिव्य पुत्रकी प्राप्ति होगी।

अवतरण-प्रसंगमें मारुतिजीका जन्म दो बार [कल्पभेदसे] माना जाता है—

(१) कार्तिक कृष्ण चतुर्दशिवारा। शनिके दिन भा पवन कुमारा॥

अगस्त्यसंहितामें लिखा है—

उर्जे कृष्णाचतुर्दश्यां भौमे स्वात्यां कपीश्वरः।
मेषलग्नेऽञ्जनागर्भात् प्रादुर्भूतः स्वयं शिवः॥

(२) चैत्रे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां कुजेऽहनि।

× × ×

एवं वानररूपेण प्रकटोऽभूत् क्षुधातुरः॥

अर्थात् चैत्र शुक्ल-पूर्णिमा, दिन भौमवारको मूँजकी मेखला, कौपीन (दिव्य लँगोट कसे हुए), कानोंमें चमकता स्वर्णकुण्डल एवं पीला यज्ञोपवीत धारण किये हुए, महाछवियुक्त, स्वर्णवर्णके तुल्य देदीप्यमान देहकी कान्तिसे युक्त, मूँगेके समान रक्तिम आभायुक्त मुखवाले हनुमान्‌जी वानर-रूपमें भूखसे व्याकुल हुए ही प्रकट हुए—

जनमते जगी जठर की ज्वाल
गगन में मारी एक उछाल
बाल रवि लियो जानि फल लाल
तुम्हारी जय हो जय!!

बाल-लीला

छोटी गदा वपु छोटी लँगूर है शीश किरीट सुकाननवाला।
लाल लँगोट कसे पटपीत सुकण्ठ हियेपर मोतिन माला॥
खेलत खात फिरे गिरि कानन आनन पै रवि कोटि उजाला।
केशरि गोद लिये पुचकारत मातु दुलारि रही कहि लाला॥

माता अञ्जना अपने दूधके साथ श्रीरामकथामृत भी वत्सको पिलाती रहती थीं—

सेज पै पौढ़ि लिये सुत गोदमें रामकथा कहि दूध पिलावै।
पान करैं पय आतुर ह्वै मुख देखत और सुने सचुपावै॥
देर भये जननी गइ सोइ तो हाथन सों झकझोरि जगावै।
जागि परी तो कहैं हनुमान तूँ रामकथा मोहि क्यूँ न सुनावै॥

अहा! उनकी बाल-लीला भी कितनी दिव्य है, जिसमें वे रामकथामृत-रस-पानके लिये ही हठ करते हैं। यह हठ सर्वथा अलौकिक है, अप्राकृतिक है। इतना ही नहीं, निश्चित-रूपसे यह भक्त-हृदयकी पराकाष्ठा है, अपने आराध्यनिष्ठाकी चरम सीमा है। इस चरम और परमको लीलाके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

आञ्जनेय कुछ बड़े हुए। बालसुलभ चपलताके कारण वे गुफाके समीप प्रशान्त तपस्वी मुनियोंके पास जाकर कहते—'श्रीभगवन्नाम-कीर्तन करो बाबा! जिससे नामध्वनि सुनकर कीट-पतंग भी तर जायँ—उनका कल्याण हो जाय। समाधि लगानेसे तो केवल स्वयं मुक्त हो जाओगे। परोपकार करो महात्मन्!' इसी '**सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय**'की भावनासे भावान्वित हो भक्तराज प्रह्लादजीने भगवान् नृसिंहकी प्रार्थना करते हुए कहा था—

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान् विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥
(श्रीमद्भा० ७। ९। ४४)

फिर तो जो संत नाम-कीर्तन करते, उनपर प्रसन्न होकर हनुमान्‌जी सुन्दर कन्द-मूल-फल भेंट करते। ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे सुन्दर सुस्वादु फल तोड़कर उन्हें फलाहार कराते। अन्य साधकोंकी पोथी, लँगोटी, धोती, अँचला पेड़पर टाँग देते, इतस्ततः बिखेर देते। अत्यन्त त्रस्त महात्माओंने सोच-विचारकर केसरी-किशोरको शाप दे दिया—'तुम जिस बलसे चंचल होकर ऊधम मचा रहे हो, उसे भूल जाओगे, जब कोई स्मरण करायेगा तभी कार्यमें प्रवृत्त हो सकोगे।' मारुतनन्दन प्रेम-विभोर हो नाचने लगे। यह देख मुनिगण आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने पूछा—'अरे बालक, हम लोगोंने तुम्हें शाप दिया है और तुम इतने प्रसन्न हो गये, क्या बात है?' अञ्जनीकुमार बोले—'मुझे शाप नहीं वरदान मिला है, जब मैं अपने बलको भूल जाऊँगा तभी तो प्रभुके बलका स्मरण रहेगा। अपने बलसे तो पस्त होनेका डर है, परंतु प्रभु बलसे मस्त हो जाऊँगा।' इसका एक दृष्टान्त श्रीरामचरितमानसके लंकाकाण्डमें प्राप्त होता है—'हनुमान्‌जी एवं लंकेश रावणके मध्य घोर युद्ध चल रहा था। हनुमंत शत्रुको पराजित न कर पा रहे थे। दशशीश रावण ही वहाँ शक्तिशाली पड़ रहा था, फिर तो प्रभुने सँभाल ही लिया'—

बुधि बल निसिचर परइ न पार्‌यो। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‌यो॥
संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यो।

बजरंगी विजयी हो गये। अस्तु, अब बाल हनुमान् शान्त हो गये। चंचलता बहुत कम हो गयी। एक दिन माता अञ्जनाने कहा—'बेटा! पढ़ने जाओ, क्या खेलमें ही दिन-रात लगे रहोगे?' मारुति बोले—माँ! तुम तो कथा सुनाती हुई मुझे बतलाती हो कि सब वेद, शास्त्र, पुराणका सार श्रीराम-नाम है, उसे तो मैं दिन-रात जपता हूँ, देखो मेरे रोम-रोममें रमणीय राम रम (चमक) रहा है—

किमि बरनों हनुमंत की कायकान्ति कमनीय।
रोम रोम में रमि रहा रामनाम रमनीय॥

माताने कहा—'हाँ ठीक है बेटा! पर ये तपस्वी संत लोग तुम्हारी जन्मपत्री देखकर कहते हैं कि ये हनुमान् शिवके अवतार हैं, तो बेटा! वैदिक सनातनधर्म-मार्ग तो शिवका ही है, उन्होंने तो स्वयं पूर्व-जन्ममें गुरु-अपमानके नाते काकभुशुण्डिजीको शाप देते हुए कहा है—*'जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा॥'* अस्तु, तुम्हें सनातन-परम्पराकी रक्षाके लिये गुरुकुलमें वेदाध्ययन तो करना ही होगा। तुम्हारे स्वामी श्रीराम जब-जब अवतार लेते हैं, सविधि गुरुकुलमें निवास करके ही अध्ययन करते हैं'—

गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी॥

× × ×

हनुमान्‌जीने आकाशमें जाकर सूर्यदेवसे समस्त शास्त्रोंका अध्ययन किया—

असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन्
सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्‌गिरेरस्तगिरिं जगाम
ग्रन्थं महद्धारयन्नप्रमेयः॥

श्रीसूर्यनारायणने गुरुदक्षिणा-प्राप्तिके रूपमें मारुतिसे कहा—'जाओ ऋष्यमूक पर्वतपर मेरे अंशसे उत्पन्न सुग्रीवकी, उसके भाई बालिसे रक्षा करना। गुरु-आज्ञा-पालनसे तुम्हें अपने इष्टदेव श्रीरामका दर्शन भी वहीं हो जायगा, क्योंकि गुरुकृपापात्र ही भगवत्तत्त्वका ज्ञान साक्षात्कार कर सकता है'—**'आचार्यवान् पुरुषो वेद'**।

× × ×

हनुमान्‌जी ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवको सँभालते हुए अपने प्रभु श्रीरामका दर्शन पानेके लिये साधना करने लगे। भगवत्प्राप्ति नाम-जप और कथा-श्रवणसे सुलभ है। नाम-जपके विषयमें मानसमें लिखा है—

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥

× × ×

सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखें। आवत हृदयँ सनेह बिसेषें॥

मारुति तो श्रीराम-नामके स्वरूप ही हैं। कथा-श्रवणसे पाप कट जाते हैं और प्रभु सुलभ हो जाते हैं—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥
धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति।

(श्रीमद्भा० २। ८। ५-६)

अर्थात् नियमित कथा-श्रवणसे भगवान् अपने भक्तोंके हृदयमें विराजते हैं एवं उसके अन्तःकरणके समस्त दोषोंको धुन-धुन करके वैसे ही स्वच्छ कर देते हैं, जैसे शरद् ऋतुके आगमनसे समस्त जलाशयोंका जल स्वच्छ हो जाता है। इस प्रकार निर्मल-चित्त भक्त भगवान्‌के श्रीचरणोंके अपने हृदयमें प्रेम-रज्जुसे बाँध लेता है। तुलसीदासजी कहते हैं कि हनुमान्‌जीके हृदय-मन्दिरमें प्रभुके श्रीचरणदेव विराजमान हैं—

युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं,
चिह्न कुलिशादि शोभाति भारी।
हनुमंत-हृदि विमल कृत परमंदिर,
सदा दासतुलसी-शरण शोकहारी॥

(विनय-पत्रिका ५१)

आञ्जनेय कथा-रसिक प्रसिद्ध ही हैं—

'जयति रामायण-श्रवण-संजात-रोमांच,
लोचन सजल, शिथिल वाणी।'

(विनय-पत्रिका २९)

महान् संत परमाचार्य श्रीदेवर्षि नारदजी नित्य हनुमान्‌जीको ऋष्यमूक पर्वतपर कथा सुनाते थे—

राम जनम सुभ काज सब कहत देवरिषि आइ।
सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ॥

(रामाज्ञा-प्रश्न ४। ४। १)

श्रीहनुमान्‌जी नित्य नियमसे प्रभु-चरित-श्रवणकर विह्वल हो जाते थे। एक दिन मारुतिने नारदजीसे पूछा—'आपको किस गुरुने व्यास—कथा-वाचक बनाया है। आपके श्रीमुखसे निकली हुई कथा-रसकी अमृतमयी धारा प्रवाहित होकर मुझे तो परमानन्दमें डुबो देती है।' नारदजीने कहा—'मेरे पिता ब्रह्माजीने ही मुझे भगवत्तत्त्वका ज्ञान कराया है'—

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।

(श्रीमद्भा० १२। १३। १९)

देवर्षि कहते हैं—'मारुते! मेरे पिता विधिने कहा है कि व्यास-आसनपर बैठकर यही संकल्प करना कि 'संसारके समस्त जीव (मनुष्य) अखिल ब्रह्माण्डनायक (आधार) सर्वात्मा हरि भगवान्‌के भक्त हो जायँ।' भक्तराज महावीर वज्राङ्गने पूछा—'यह सत्य है?' नारदजी बोले—'हाँ सत्य है—परम सत्य है।'

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय॥

(श्रीमद्भा० २। ७। ५२)

मारुतनन्दन! मेरे पूज्य पिताजीने निर्मल-चित्तसे तीन बार समस्त वेदोंका अनुशीलन किया। उन्हें भगवत्प्रेम ही सार-रूपमें प्राप्त हुआ। भगवान्‌में प्रेम होना ही महापुरुषार्थ है—

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० २। २। ३४)

विश्व-ब्रह्माण्डको अपने लीला-वैचित्र्यसे सराबोर करनेवाले भगवच्चरणानुरागी लीलाधारी श्रीहनुमान्‌जी नारदजीके कथा-रसरूपी परम प्रेमके लीला-समुद्रमें निमग्न हो गये।

जनकललीजीकी रुदन-लीला

(डॉ० श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, 'रत्नमालीय')

यस्याः कलांशकलया किल माययेदं
संचाल्यते प्रबलसंसृतिचक्रमञ्जः।
यन्नामसाररसिका भुवि भूरिभागा
गच्छन्त्यनामयपदं प्रणता वयं ताम्॥
यस्या विना करुणया करुणाब्धिमूर्तेः
प्राप्तिः कथंचिदिह दाशरथेर्न हि स्यात्।
सा सर्वदाऽनुपमनित्यपवित्रकेलिः
सच्चिन्मयी सुखनिधिः शरणं ममास्तु॥

(जानकीचरितामृतम् ५१। २७-२८)

'जिनकी कलाकी अंशमात्र शक्तिरूपिणी माया इस संसाररूपी प्रबलचक्रको अनायास चलाया करती है तथा जिनके नामरूपी सारका रसास्वादन करनेवाले बड़भागी लोग सर्वव्याधिरहित भगवद्धामको प्राप्त होते हैं, उन सर्वेश्वरी, रामवल्लभाको हम प्रणाम करते हैं। जिनकी कृपाके बिना करुणामूर्ति दाशरथिकी प्राप्ति किसी प्रकार भी नहीं होती, जिनकी क्रीडाएँ उपमारहित, एकरस रहनेवाली एवं पवित्र हैं, वे सत्-चित्-सुखमयी सर्वेश्वरी रामवल्लभा मेरी रक्षा करें।'

आज मिथिलेशके महलमें बड़ी बेचैनी छायी हुई है। जिसको देखो, उसीका चेहरा उतरा हुआ दिखायी पड़ता है। स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, दास-दासी, पशु-पक्षी—सब-के-सब उद्विग्न हैं। चारों तरफसे लोग दौड़ते-उमड़ते चले आ रहे हैं। जो जहाँ सुनता है वहींसे व्यग्रतासे चला आ रहा है। कोई स्त्री पलनेमें अपने बच्चेको अकेला छोड़ दौड़ी चली आ रही है, तो कोई अपनी गोदमें बालक उठाये दौड़ी आ रही है। कोई दही मथना छोड़कर चली आ रही है, तो कोई घर-बुहारना अधूरा छोड़कर। कोई खूँटेपर बँधी गायको चारा-पानी देना भूल गया है, तो कोई कपड़ा बदलना। कोई नंगे पैर चली आ रही है, तो कोई एक ही पैरमें चप्पल लगाये। कोई ओखलमें चिउड़ा कूटना बाकी छोड़कर आ रही है, तो कोई दरवाजेकी सीकड़ लगाना भूल गयी है। कोई एक आँखमें ही काजल लगाये चली आ रही है, तो कोई पानी भरनेके लिये उबहन लिये ही दौड़ी चली आ रही है। सारे नगरमें खबर बिच्छूके डंककी तरह फैल गयी है कि आज मिथिलेशललीकी तबीयत खराब है। सारा रनिवास सुनयनाजी, कान्तिमतीजी, सुभद्राजी, सुदर्शनाजी, सुचित्राजी, सुखवर्धिनीजी, सहजासुन्दरिकाजी, मोहिनीजी, सुवृत्ताजी, क्षेमवर्द्धिनीजी, शशिकलाजी, शशिकान्ताजी, विदग्धाजी, विशालाक्षीजी, अशोकाजी, विनीताजी, शोभनाङ्गीजी और चन्द्रप्रभा आदि राजरानियोंकी उपस्थितिसे ठसाठस भरा है। सब-की-सब सुनयनाजीको धीरज बँधा रही हैं, किंतु हृदय तो सबका बैठा जा रहा है।

आज तो जानकीजीका रोना-चीखना ही नहीं बंद हो रहा है। कभी वे आँखें बंद कर लेती हैं, कभी थोड़ा खोलती हैं, कभी निःस्पन्द-सी पड़ जाती हैं, तो कभी हाथ-पैर पटकने लगती हैं, कान्तिमती और सुनयनाजी बार-बार उन्हें छातीसे सटाती हैं, दूध पिलानेका प्रयास करती हैं; किंतु जनकललीकी पीड़ा तो मानो शान्त होनेका नाम ही नहीं लेती। कोई कहता है कि बिटियाको कोई असाध्य बीमारी हो गयी है, तो कोई कहता है कि क्रूर ग्रह-बाधा है। तरह-तरहकी आशंकाओंसे सभीका मन अत्यन्त व्यथित है। सेवक वैद्यराजको बुलानेके लिये दौड़ाये जाते हैं। कोलाहल मचा हुआ है। कोई कहता है कि 'दृष्टि-दोषके कारण ही यह व्याधि उत्पन्न हुई जान पड़ती है। अतः किसी सुविज्ञ तान्त्रिकको ही व्याधि-शान्तिके लिये बुलाया जाय'—

दृष्टिदोषोद्भवो व्याधिर्हेतुरत्रावगम्यते।
तत आनीयतां कोऽपि तान्त्रिको व्याधिशान्तये॥

(जा० च० ३९। ६)

जब जनकपुरीकी यह विह्वलता पुरवासियोंके परमाराध्य, भक्तसहाय भगवान् शंकरके कानोंमें गूँजती है, तब वह सत्वर चल पड़ते हैं—एक वृद्ध, सिद्ध तान्त्रिकका वेश बनाये हुए। उनके मनमें जनकललीके दर्शनकी तीव्र लालसा है—

दर्शनार्थं ततो देवः सुताया मिथिलेशितुः।
विग्रहं वेष्टितं चक्रे कन्थया वार्द्धकेन च॥

(जा० च० ३९। १०)

गुदड़ी लपेटे, काँपता हुआ शरीर धारण किये हुए वे गलियोंमें पहुँचकर विज्ञापित करते हैं—'मिथिलापुरीके निवासियो! देश-देशका परिभ्रमण करता हुआ मैं तुम्हारे नगरमें आ गया हूँ। व्याधि-निवारण मेरा जीवन-व्रत है। किसी नगरमें मैं रातभरसे अधिक ठहरता नहीं और एक भी रोगी ठीक किये बिना अन्न-जल भी ग्रहण नहीं करता हूँ। किसीको यदि दुस्सह कष्ट हो तो आये और आरोग्य लाभ करे।'

जिस समय तान्त्रिकके आगमनकी खबर रनिवासमें पहुँचती है, उस समय लोगोंकी खुशीका ठिकाना नहीं रहता। सूखते धानमें जैसे पानी पड़ जाय, मरीचिकाग्रस्त म्रियमाण मृगको जैसे जल प्राप्त हो जाय, वैसे ही सब लोग उत्कण्ठित हो कह उठते हैं कि विधाताने बड़ी कृपा की।

शीघ्र ही राजमहलसे दक्षिका नामकी दासीको उस तान्त्रिकके पास भेजा जाता है। तान्त्रिकके पास पहुँचकर चरणोंमें गिरकर वह राजभवनमें चलनेकी प्रार्थना करती है—

तान्त्रिकोऽसि यदि ब्रह्मञ्छिशूनां सर्वकष्टहा।
महाराजसुतां पश्य प्रयायान्तःपुरं मया॥
समाह्वयति राजा त्वां तदर्थं प्रेषिताऽस्म्यहम्।
विलम्बो नात्र कर्तव्यस्त्वया लोकहितैषिणा॥

(जा० च० ३९। १७-१८)

'हे ब्रह्मन्! यदि आप शिशुओंके सभी कष्टोंको दूर करनेमें समर्थ तान्त्रिक हैं, तो मेरे साथ शीघ्र चलिये और महाराजकी पुत्रीको देखिये। महाराज जनकने आपको बुला लानेके लिये ही मुझे भेजा है। आप तो सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी ठहरे, अतः अब विलम्ब नहीं करना चाहिये।'

प्रसन्न-मन तान्त्रिक कहते हैं—'भद्रे! यदि ऐसी कोई बात है तो मैं अवश्य चलूँगा। किसी प्रकार व्यग्र होनेकी आवश्यकता नहीं है।'

ऐसा कहकर वे दासीके साथ अन्तःपुरमें जा पहुँचते हैं। उन्हें देखते ही मिथिलेश आसनसे उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम करके सुनयनाजीके पास अन्तःप्रकोष्ठमें ले जाते हैं। वे भी आदरपूर्वक खड़ी होकर, स्वागत-प्रणाम-पुरस्सर उन्हें किशोरीजीके पास ले जाती हैं। रुग्ण शिशुको देखकर वृद्ध तान्त्रिक भावविह्वलतावश मूर्च्छित हो जाते हैं। प्रेममूर्ति भगवान् शंकर जो ठहरे—

तत्क्षणं शंकरो देवः प्रेममूर्च्छामुपागमत्॥

(जा० च० ३९। २४)

सुनयनाजीकी तो 'काटो तो खून नहीं' वाली स्थिति हो जाती है। वे विलखती हैं—

'हे विधि! यह कौन-सी विकट बीमारी प्रकट हुई है कि रोग दूर होना तो दूर चिकित्साके लिये आये हुए तान्त्रिकशिरोमणि भी मूर्च्छित हो गये। ब्राह्मण-मृत्युका दुर्दृश्य भी देखना पड़ेगा क्या?'—

को व्याधिरत्र संजातः मद्देहे सुमहान् बली।
येन युक्ताऽस्ति मे पुत्री प्राणैरपि गरीयसी॥
तां चिकित्सितुमायातो योऽधुना तान्त्रिको महान्।
सोऽपि नूनं तदाक्रान्तो नष्टसंज्ञ इवेक्ष्यते॥

(जा० च० ३९। २६-२७)

सुनयनाजीद्वारा इस प्रकारका व्यग्र विलाप करते देख भोलेनाथकी भाव-समाधि भंग होती है। वे 'हरि! हरि!' कहते हुए आँखें खोलते हैं। हर्षित सुनयनाजी अपने भाग्यकी सराहना करती हैं—

'विप्रशिरोमणि! बड़े सौभाग्यकी बात है जो आपको व्याधिने छोड़ दिया और आप सचेत हो गये।' उनकी व्याकुलता लक्षितकर तन्त्राचार्य सान्त्वना देते हैं—'मेरी चिन्ता मत करो मइया। गुरुदेवकी कृपासे और तन्त्र-मन्त्र-नैपुण्यवश मैं किसी भी व्याधिकी पकड़से परे हूँ। कोई भी आधि-व्याधि मेरे पास फटक नहीं सकती। हे करुणामयी! आपके कारुण्यकी बलिहारी है कि आप मेरे ध्यानयोगको भी व्याधि मान बैठीं। मैंने गुरुदेवका ध्यानकर समस्त व्याधि जान ली है और इसका निदान मेरे सिरमें है'—

दृष्ट्वा त्वत्पुत्रिकाव्याधिं गुरुदेवः स्मृतो मया।
तेन यद्दर्शितं तन्त्रं तत्तु मे शिरसि स्थितम्॥

(जा० च० ३९। ३५)

अब आप देखती रहें। कुछ ही पलोंमें मैं इसे निर्मूल किये दे रहा हूँ। वे तीन बार पालनेकी परिक्रमा करते हैं और अपना सिर जनकतनयाके तलवोंमें सटा देते हैं। उनकी इस क्रियासे चकित सुनयनाजी कह उठती हैं—

'अहो योगिराज! आप यह कैसा अनुचित कर हम लोगोंको नरकमें ढकेल रहे हैं। आप वृद्ध हैं, ब्राह्मण हैं,

तन्त्रज्ञ हैं और परम योगी हैं। इस कन्याको आप आशीर्वाद ही प्रदान करें। हमारे-जैसे क्षत्रियकुलोत्पन्न लोगोंका स्थान तो आपके चरणोंमें ही है। चरणसे आपका शिर-स्पर्श हमारी कुलमर्यादाके विरुद्ध है।'

सुनयनाजीकी हिचकिचाहट देख तान्त्रिकाचार्य उन्हें थोड़ा डाँटते हुए कहते हैं—

'अरी माता! यह तान्त्रिक उपचार-प्रक्रिया है। इसमें टोकाटाकी नहीं करनी चाहिये। आप चुपचाप देखती रहें। आपकी कन्या कुछ ही पलोंमें नीरोग हो जायगी और मुसकराती हुई दुग्धपानद्वारा आपको हर्षित करेगी'—

इदानीमेव संहृष्टा स्मयमानमुखाम्बुजा।
कुलोद्योतकरीयं ते पयःपानं विधास्यति॥

(जा० च० ३९। ४३)

सब प्रकारसे सान्त्वना प्रदानकर तन्त्राचार्य मन-ही-मन ज़ानकीजीकी स्तुति करने लगे—

जय जय शिशुरूपे तप्तचामीकराभे
विमलकमलनेत्रे पूर्णशीतांशुवक्त्रे।
निखिलभुवनजीवानन्दनिःश्रेयसे
श्रीजनकनृपतिगेहे क्रीडमाने प्रसीद॥

(जा० च० ३९। ४५)

'हे शिशुरूप धारण करनेवाली, तपाये हुए सोनेके समान निर्मल कान्तिवाली तथा उज्ज्वल कमलके समान नेत्रोंवाली और पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली किशोरी! आपकी जय हो! जय हो! समस्त भुवनके जीवोंको आनन्द और परम मङ्गल प्रदान करनेवाली जनकजीके महलमें खेलती हुई आप प्रसन्न होवें।'

जनकनृपतिकन्ये भावगम्ये शरण्ये
विरचितशिशुरूपे सच्चिदानन्दमूर्ते।
उरसि मम सदैवानेनरूपेण कामं
विहर ससुखमम्बोत्सङ्गसिंहासनस्थे॥

(जा० च० ३९। ५०)

'हे भावसे प्राप्त होनेमें सुलभ श्रीमिथिलेशकुमारीजी! प्राणिमात्रकी रक्षा करनेमें समर्थ, शिशुरूप धारण की हुई, सुनयनाजीके उत्संगरूपी सिंहासनपर विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी! स्वेच्छानुसार आप इसी शिशुस्वरूपसे मेरे हृदयमें सुखपूर्वक विहार करती रहें।'

तान्त्रिकाचार्य (शंकरजी)-की भावभरी प्रार्थनासे संतुष्ट जानकीजी प्रकृतिस्थ हो जाती हैं, आरामसे आँखें खोल देती हैं और समूचे रनिवासमें आनन्दकी लहर दौड़ जाती है।

प्रसन्नमना जानकीजीको सुनयनाजी दूध पिलाती हैं और वे प्रेमपूर्वक, चिर-पिपासित-मुद्रामें—दुग्ध-पान करने लगती हैं। सारा वातावरण हर्ष-विभोर हो उठता है। राजा-रानी तन्त्राचार्यकी प्रशंसा करते हैं। वे उनके ऊपर स्वर्ण, कोष, पुर, राज्य न्योछावर करने लगते हैं, जिन्हें अस्वीकार करते हुए वे कह पड़ते हैं—

हरि! हरि! यह सब तो मेरे ऊपर बरसायी गयी हरि-कृपा एवं गुरुकृपाका प्रभाव है। मुझे स्वर्ण, कोष, राज्य आदिसे क्या लेना-देना? यदि आपकी कुछ देनेकी ही अभिलाषा है तो मुझे इस कुमारीद्वारा पहना हुआ कोई कपड़ा दे दीजिये। जबतक वह मेरे पास रहेगा, तबतक आपकी पुत्रीके पास कोई बीमारी नहीं फटक पायेगी। सुनयनाजी तत्काल वस्त्र देकर उनके चरणोंमें लोट जाती हैं। आशीर्वाद देकर मिथिलेशललीकी तीन बार पुनः परिक्रमा करके अपने सिरसे उनका पाद-स्पर्शकर आचार्यप्रवर विदा होते हैं।

ऐसी जगज्जननी जनकनन्दिनीजीको जी-भर प्रणाम—

तस्यै नमः सततमस्तु सहस्रकृत्वः
सीतेति नाम भुवनप्रथितं यदीयम्।
या सानुकम्पहृदयेन निजेन रामं
सर्वेश्वरं कृतवती परितो विमुग्धम्॥

(जा० च० १। २)

'जिन्होंने अपनें सहज दयापरिपूर्ण हृदयद्वारा सब प्रकारसे सर्वेश्वर प्रभु श्रीरामजीको मुग्ध कर रखा है, जिनका 'श्रीसीताजी' ऐसा सुन्दर मनोहर मङ्गलकारी नाम आज तीनों लोकोंकी जिह्वापर विराजमान है, उन श्रीकिशोरीजीके लिये सहस्रों बार सर्वदा प्रणाम है।'

बालचरित बिलोकि हरषाऊँ

(श्रीआनन्दीलालजी यादव)

सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥

(रा० च० मा० ७। ७५ ख)

भगवान् श्रीरामकी बाल-लीलाओंके स्मरणसे काकभुशुण्डिजीका तन-मन पुलकित हो गया, और उन्होंने श्रीरामकी लीलाकथाकी महिमाका गुणगान करते हुए कहा—'हे पक्षिराज गरुडजी! जब-जब श्रीराम मनुष्य-शरीर धारण करते हैं, तब-तब मैं अयोध्यापुरीमें जाकर उनका जन्म-महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्षतक वहीं रहकर प्रभुकी बाल-लीलाएँ देखकर हर्षित होता हूँ'—

जन्म महोत्सव देखउँ जाई। बरष पाँच तहँ रहउँ लोभाई॥

(रा० च० मा० ७। ७५। ४)

अपने इष्टदेव बालरूप श्रीरामकी एक अलौकिक बाल-लीलाको सुनाते हुए काकभुशुण्डिजी बोले—हे गरुडजी! एक दिन अयोध्याके राजमहलके आँगनमें बालक राम अपने भाइयोंके साथ खेलते हुए विचरण कर रहे थे। उनका कोटिकाम-कमनीय श्याम-शरीर वस्त्राभूषणोंसे शोभायमान था। जब वह किलकारी मारकर मुझे पकड़ने दौड़ते, तब मैं दूर चला जाता था। इसपर वह मुझे रिझाने-हेतु पूआ दिखाते थे। जब मैं उनके चरणस्पर्श-हेतु उनके पास जाता, तब वह दूर भागते हुए मुड़-मुड़कर मेरी ओर देखते थे। साधारण बच्चों-जैसी इस लीलाको देखकर मुझे भ्रम हो गया कि प्रभु कौन-सी विचित्र लीला कर रहे हैं।

हे पक्षिराज! इतनी-सी शंका करनेसे मैं प्रभुकी मायासे मोहित हो गया। बालक राम मुझे चकित देखकर मुसकराकर मुझे पकड़ने दौड़े और मैं तुरंत आकाशमें उड़ गया। आकाशमें उड़ते हुए मैने पीछे मुड़कर देखा कि मुझे पकड़ने-हेतु फैली हुई प्रभुकी भुजा मेरे बिलकुल पास थी।

मैं भयभीत होकर जैसे-जैसे आकाशमें दूरतक उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्रीहरिकी भुजाको अपने पास देखता था—

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥

(रा० च० मा० ७। ७९। ७-८)

'हे गरुडजी! मैं ब्रह्मलोकतक उड़कर गया। वहाँ भी मैंने प्रभुकी भुजाको अपने पास देखा। श्रीरामकी भुजा और मेरे बीच केवल दो अंगुलका फासला था। मैं अपनी गतिके अनुसार सातों आवरणोंको भेदकर आगे बढ़ा। वहाँ भी उनकी भुजा देखकर मैं व्याकुल हो गया'—

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥
सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

(रा० च० मा० ७। ७९ (क-ख))

मैंने भयभीत होकर आँखें बंद कर लीं। आँखें खोलनेपर मैंने अपनेको अयोध्यामें पाया और मुझे देखकर प्रभु मुसकराने लगे। ज्यों ही उन्होंने हँसनेके लिये मुँह खोला, त्यों ही मैं उनके मुखमें चला गया।

हे पक्षिराज! मैंने उनके उदरमें अनेक ब्रह्माण्डोंके समूह देखे, जिनकी विचित्र रचनाएँ एक-से-एक बढ़कर थीं। ब्रह्माजी, शिवजी, सूर्य एवं चन्द्रमा, यम, लोकपाल, पर्वत, भूमि, नदी, तालाब, वन, देवता, मनुष्य, किंनर, सिद्ध तथा विभिन्न प्रकारके जड-चेतन जीव देखे; जिन्हें कभी न देखा था और न ही कभी उनके बारेमें सुना था।

मैं प्रत्येक ब्रह्माण्डमें सौ वर्षतक रहा। प्रत्येक ब्रह्माण्डकी रचना भिन्न थी। वहाँ अवधपुरी तथा सरयूजी भी भिन्न ही थीं। दशरथजी, कौसल्याजी तथा भरतजी आदि भाई भी भिन्न थे। इस प्रकार मैंने प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रामावतारकी अपार बाल-लीलाएँ देखीं। मैंने असंख्य ब्रह्माण्डोंमें एक ही राम देखे। इसके बाद मैंने अपने आश्रमपर कुछ समय व्यतीत किया। राम-जन्मका समाचार सुनकर मैं अवधपुरी पहुँचा और वहाँ कृपालु श्रीरामको देखा। दो घड़ीमें ही अनेक ब्रह्माण्डोंके लीला-दृश्य मेरे मानस-पटलपर एक ही साथ द्रुतगतिसे घूम गये। अब मैं मोहरूपी बुद्धिसे थककर व्याकुल हो गया। मेरी व्याकुलता देखकर प्रभु हँसने लगे और मैं तुरंत मुँहसे बाहर आ गया। पुनः श्रीराम वही लड़कपनकी लीलाएँ करने लगे। मेरे मनमें शान्ति नहीं थी—'मैं प्रभुकी प्रभुताका स्मरण करके सुध-बुध खो बैठा और 'हे आर्तजनोंके रक्षक!

रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—पुकारता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। प्रभुने अपनी मायाका विस्तार रोककर मेरे सिरपर हाथ रखा, जिससे मेरा सम्पूर्ण दुःख मिट गया'—

देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥
प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥

(रा० च० मा० ७। ८३। १—४)

मैंने अनेक प्रकारसे प्रभुकी विनती की और कृपालु श्रीरामने मुझे सब गुणोंकी खान भक्ति प्रदान की। तबसे मुझे माया नहीं व्यापती है।

हे गरुडजी! श्रीराम और लक्ष्मणजीको नागपाशसे मुक्त करते समय आप मेरे समान ही प्रभुकी मायासे मोहित हो गये हैं। प्रभुकी कृपासे ही इससे छुटकारा सम्भव होगा। यह भी श्रीरामकी कृपा है कि आपने यहाँ आकर मुझे पवित्र किया है, जिससे प्रभुका गुणगान हुआ है। अस्तु; 'जब-जब श्रीराम मनुष्य-शरीर धारण करते हैं और भक्तोंके लिये बहुत-सी लीलाएँ करते हैं, तब-तब मैं अवधपुरीमें उनकी बाल-लीलाएँ देखकर हर्षित होता हूँ'—

जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥
तब तब अवधपुरी मैं जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥

(रा० च० मा० ७। ७५। २-३)

भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला

(आचार्य श्रीगंगारामजी शास्त्री)

भगवान् शिवका एक नाम 'नटराज' भी है। नटोंका काम होता है अनेक प्रकारके चमत्कारपूर्ण करतब दिखाना, जिसे हम नटोंके खेल कहा करते हैं। भगवान् शिव ठहरे नटराज, इसलिये उनके कृत्य तो और भी अधिक रहस्यमय और चमत्कारोंसे भरे होंगे ही। उनकी त्रिपुरदहन-लीलाके सम्बन्धमें 'श्रीशिव महिम्नःस्तोत्र' श्लोक-संख्या १८ में कहा गया है—

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः॥

हे ईश! आपने त्रिपुरका ध्वंस करनेके लिये पृथ्वीको रथ, ब्रह्माको सारथि, सुमेरुको धनुष, सूर्य और चन्द्रको रथके पहिये और विष्णुको बाण बनाया। त्रिपुर तो आपके लिये तृणके समान था, परंतु उसे जलानेके लिये आपने इतना बड़ा आडम्बर (लीला) किया, यह किसलिये? जो ब्रह्मा तथा विष्णुसे अपराजेय कामदेवको दृष्टिविक्षेप-मात्रसे भस्म कर डालता है, उसके लिये त्रिपुरको जला देना तो मात्र तिनकेके समान है, फिर उसके लिये इतना और इस प्रकारका अभियान तो आडम्बर ही प्रतीत होता है। इच्छामात्रसे ही सृष्टिका संहरण करनेवाले शंकरके लिये किसी तन्त्रकी—साधनकी अपेक्षा ही नहीं। यह तो उक्त वस्तुओंको उन्होंने अपनी क्रीडाका साधन मात्र बनाया है।

शिवकी इस क्रीडाका—लीलाका वर्णन शिवपुराण, लिङ्गपुराण और महाभारतमें विस्तारके साथ किया गया है। भगवान्की छोटी-बड़ी प्रायः सभी लीलाओंमें कुछ-न-कुछ गूढ़ रहस्य छिपा रहता है, अतः उसीके सम्बन्धमें यहाँ कुछ विचार किया जा रहा है—

अन्तरिक्षमें बलवान् असुरोंके तीन पुर थे, जो सोने-चाँदी और लोहेके बने हुए थे। इन्द्र जब उन पुरोंको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भी पराजित न कर सका, तब सभी देवता ब्रह्माको आगे करके शिवजीके पास गये और उनसे उन तीनों पुरोंको नष्ट करनेकी प्रार्थना की। शिवजीने सभी देवताओं और विश्वकी समस्त उपलब्ध देश और कालके अन्तर्गत आनेवाली सामग्रीके सहयोगसे उन पुरोंको नष्ट करनेका बीड़ा उठाया। शिवजीके शताङ्ग-रथका निर्माण पृथ्वीसे हुआ। दिन-रात कला-काष्ठा और ऋतुएँ उस रथका अनुकर्ष—धुरेका लट्ठा हुईं। धर्म, अर्थ और काम—इन

तीनोंको संयुक्त करके रथकी बैठक बनायी गयी। सूर्य और चन्द्रमा रथके पहिये हुए। इन्द्र, वरुण, यम और कुबेर—ये चारों उस रथको खींचनेवाले अश्व बने। धर्म, सत्य, तप और अर्थ उसकी लगाम हुए। वषट्कार चाबुक हुआ, गायत्री छन्द आगे बाँधनेकी रस्सी हुई, संवत्सर धनुष हुआ, सावित्री प्रत्यञ्चा हुई और ब्रह्मा सारथि बने।

कहीं इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है—अस्ताचल और उदयाचल ही इस रथके कूबर हैं। जुआ बाँधनेके लिये लट्ठे हैं। संवत्सर ही इसका वेग है। अयन ही चक्रका घूमना है अथवा उत्तरायण और दक्षिणायन ही रथकी धुरीके पट्टे हैं। मुहूर्त बन्धुर-आवरण और कला ही शम्या-शैल हैं। अन्तरिक्ष इस रथका रक्षावरण है। स्वर्ग और मोक्ष दो ध्वजाएँ हैं। श्रद्धा ही इस रथकी गति है। वर्ण और पदके स्वरसे युक्त मन्त्र ही इसका घंटा है। सहस्त्र फणसे भूषित शेषनाग इसके बन्ध हैं। दिशा और उपदिशा इस रथके पाद हैं। आवह, प्रवह आदि पवनके सात मार्ग ही इस रथके सप्त सोपान हैं। लगाम थामकर रथ चलानेवाले ब्रह्मा इसके सारथि हैं। प्रणव ही उनका चाबुक है। मेरु धनुष है, प्रत्यञ्चा वासुकि हैं। मन्दराचल बगलका दण्ड है। वेदरूपा सरस्वती इस धनुषका घंटा हैं। महातेजस्वी विष्णु इस धनुषके बाण हैं, अग्नि ही बाणकी नोकके शल्य हैं। यम इस बाणके पुंख हैं।

इस प्रकार पुराणोंमें जो शताङ्ग-रथका वर्णन किया गया है, उसमें देश और काल—इन दोनोंका एक साथ समावेश किया गया है। सूर्य और चन्द्रको रथके पहिये बतानेका आशय यही है कि सूर्य और चन्द्र तथा ग्रह, तारा, नक्षत्र आदिके भ्रमणसे ही यह विश्वरूपी रथ गतिमान् है।

इस प्रकार रथपर बैठकर महादेव शंकरने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर शरका संधान करते हुए पाशुपतास्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिपुरका चिन्तन किया तो वे तीनों पुर मिलकर एक हो गये। उन तीनों पुरोंके एक होते ही भगवान् शंकरने उस त्रैलोक्यसार धनुषको खींचते हुए बाण छोड़ा। उस बाणके छोड़ते ही महान् आर्तनाद होने लगा और वे तीनों पुर, उनमें निवास करनेवाले राक्षसोंसहित जलकर पश्चिमी समुद्रमें गिर गये।

वास्तवमें त्रिपुरजयका यह कथानक एक रूपक है। विश्वके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा इस रथके चलानेवाले हैं तथा काल ही इसकी गति है—

कालो हि भगवान् रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः।
तस्माद् रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा॥

(महाभारत, कर्णपर्व ३४। ४८)

'काल ही भगवान् रुद्र हैं, जिनका संवत्सर धनुष है—रुद्रकी शक्ति रौद्रीका ही नाम कालरात्रि है, जो कभी न टूटनेवाली इसकी प्रत्यञ्चा है।'

विष्णुके द्वारा पालित यह अग्नीषोमात्मक जगत् गतिशील है, इसलिये इन तीनोंको मिलाकर उनका बाण कहा गया है।

इषुश्चाप्यभवद् विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च।
अग्नीषोमौ जगत् कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत्॥

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जिस रथको चलानेवाले हों, वह शिवका रथ यह विराट् विश्व ही है। इसे शिवपुराणके युद्धखण्ड (८। ५)में विस्तारके साथ बताया गया है—

अथ देवस्य रुद्रस्य निर्मितो विश्वकर्मणा।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम्॥

'भगवान् रुद्रका यह सर्वलोकमय दिव्य रथ विश्वकर्माके द्वारा यत्नपूर्वक आदरसहित बनाया गया है।' '**विश्वकर्मणा**' इस शब्दका अर्थ जहाँ विश्वकर्माद्वारा प्राप्त होता है, वहीं यह संकेत भी स्पष्ट है कि संसारके प्राणियोंके कर्मों (तेज)-से ही यह रथ निर्मित हुआ है। महाभारतमें और भी स्पष्ट-रूपसे संकेत है। जैसे—

तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम्।
ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन्॥

(महाभारत, कर्णपर्व ३४। १७)

'बुद्धिसे विहित और संसारभरके कर्मोंसे कृत इस रथको उन देवश्रेष्ठोंने संकल्पसे बनाया।' हमारे मनके संकल्प-विकल्प और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंके द्वारा मनोराज्यका यह रथ संकल्प-निर्मित है।'

'सर्वभूतमय यह रथ सुवर्णका है और सर्वसम्मत है। इसका दाहिना चक्र सूर्य और बायाँ चन्द्रमा है'—

सर्वभूतमयश्चैव सौवर्णः सर्वसम्मतः।
रथाङ्गं दक्षिणं सूर्यः तद्वामः सोम एव च॥

(शिवपुराण, युद्धखण्ड ८। ६)

'**पुरं शरीरमित्याहुः**' इसके अनुसार यह शरीर ही पुर है। अध्यात्मपक्षमें इडा और पिंगला नामक नाडियाँ ही चन्द्र और सूर्य हैं। शिवसंहितामें कहा गया है—

एषा सूर्यपरामूर्तिर्निर्वाणं दक्षिणे पथि।
वहते लग्नयोगेन सृष्टिसंहारकारकः॥

इसीके लिये शिवपुराणमें सूर्यको रथका दाहिना चक्र कहा गया है और वामभागमें सोमवाहिनी इडा—'**तद्वामः सोम एव च**'। सूर्यकी द्वादश कला होती है और चन्द्रमाकी षोडश कला। इसलिये इन चक्रोंमें बारह और सोलह अरे बताये गये हैं—

दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम्।
अरेषु तेषु विप्रेन्द्र आदित्या द्वादशैव तु॥
शशिनः षोडशारास्तु कला वामस्य सुव्रत।
ऋक्षाणि तु तथा तस्य वामस्यैव विभूषणम्॥

(शिवपुराण, युद्धखण्ड ८। ७-८)

सत्ताईस नक्षत्र भी बारह अरोंके मध्य कहे गये हैं, क्योंकि बारह राशियोंमें नवचरणात्मक भागोंमें सत्ताईस नक्षत्रोंका विभाजन किया गया है। त्रिपुरार्णवमें कहा गया है—

मनो बुद्धिस्तथा चित्तं पुरत्रयमुदाहृतम्।

मन, बुद्धि और चित्तको 'त्रिपुर' कहा गया है। तीन गुणोंसे युक्त इस शरीरमें तमोगुण ही लौह, सत्त्वगुण रजत और रजोगुण स्वर्ण है, जिनसे निर्मित यह त्रिपुर क्रियाशील है। गुण रस्सीको भी कहते हैं, जो बाँधनेके काम आती है। श्रीमद्भगवद्गीता (७। १३)-के अनुसार इन तीन गुणोंसे आबद्ध होकर ही संसार चल रहा है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओंसे परे होकर ही तुरीया अवस्था प्राप्त होती है। इसी प्रकार इच्छा, ज्ञान और क्रियाका त्रित्व है और इसमें सामंजस्य होना ही त्रिपुरजय है। भाव यह है कि सत्त्व, रजस् और तमोगुणसे परे होना ही त्रिपुरजय है।

इस त्रिपुरके त्रिकोणरूपमें घूमनेसे जो वृत्त बनता है, उसे 'छान्दोग्योपनिषद्'में लोहित, शुक्ल और कृष्णका त्रिवृत्त कहा है। इसीको श्रुति—'**अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्**' कहती है। जिसके निरन्तर गतिमान् रहनेसे '**बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाम्**' की संकल्प-विकल्पात्मिका सृष्टि चलती है।

इस शरीरमें मूलाधारसे सहस्रार-पर्यन्त तीन ग्रन्थियाँ हैं—ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि—इन तीन ग्रन्थियोंका त्रिपुर है। यह शरीर ही रथ है, जिसके लिये ऋग्वेद (८। ५८। ३)-में कहा गया है—

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।

'यह शरीररूपी रथ प्रकाशयुक्त है तथा पताकायुक्त है। इसके स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीर ही तीन चक्र हैं, जिनसे यह घूमता है, अथवा सत्, रज और तम—ये तीन चक्र हैं, अथवा इच्छा, ज्ञान और क्रिया ही तीन चक्र हैं, अथवा संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण—ये तीन प्रकारके कर्म ही तीन चक्र हैं। इसमें कामना और वासनारूपी अनेक अरे हैं, ये भलीभाँति स्थित हैं।'

प्रारम्भमें '**श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्र**' को उद्धृत करते हुए '**रथाङ्गे चन्द्रार्कौ**'—कहा गया था, उसका तात्पर्य यह हुआ कि इस शरीररूपी रथके सूर्य और चन्द्रनाडीमें सदैव प्राणवायुका संचार होनेसे ही यह रथ गतिमान् है, वे ही इसके दो पहिये हैं—दाहिनी ओर पिंगला नामक सूर्यनाडीमें आदित्यकी बारह कला-रूप बारह अरे हैं, वामभागमें इडा नामक चन्द्रनाडीमें चन्द्रकी सोलह कला-रूप सोलह अरे हैं। ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि और रुद्रग्रन्थि भेदनके लिये सुमेरु-मेरुदण्ड ही धनुष है, जिसमें सुषुम्नाकी प्रत्यञ्चा और प्रणवके शर-संधानसे इस त्रिपुरका भेदन होता है, जिसके लिये कहा गया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे॥

(मुण्डकोपनिषद् २। २। ८)

यही त्रिपुरजय—परम कल्याणकारी भगवान् शिवकी त्रिपुरदहन-लीला है।

भगवान्‌की वामन-लीला

(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी शर्मा, एम्० ए० (हिन्दी, संस्कृत), पी-एच्० डी०)

भगवान्‌की लीलाएँ भक्तोंके हृदयको आनन्दकी रसधारामें निमग्न कर देती हैं। भगवान्‌के जन्म और कर्म दिव्य होते हैं। उनकी पूरी समझ तो भगवत्कृपापर निर्भर करती है। फिर भी अपनी-अपनी सूझ और शक्तिके आधारपर उनका वर्णन—व्याख्यान किया जाता है। आकाश अनन्त है। उसका पार पाना तो अति कठिन है, फिर भी जैसे प्रत्येक पक्षी अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार उड़ान भरते हैं, उसी तरह भगवान्‌की लीलाओंका सुनना-सुनाना अपनी सीमित मेधाके साथ सब करते हैं। अनन्त भगवान्‌की अनन्त लीलाएँ हैं। व्यक्ति जो कुछ करता है—वह कर्म है, परंतु भगवान् जो करते हैं; वे उनकी लीलाएँ हैं। ये लीलाएँ भारतीय संस्कृतिकी चेतनाके रसमय विस्तार हैं। वामन-अवतारकी लीला उनमेंसे एक है। भगवान्‌के चौबीस अवतारोंमें वामन-अवतारका अपना अलग महत्त्व है। जयदेवने अपने गीतगोविन्दमें दस अवतारोंमें उनकी गणना की है।

वामन-लीलाका महत्त्व इसलिये और रोचक एवं जिज्ञास्य बन जाता है, क्योंकि उनकी लीलाके आरम्भके बीज वैदिक वाङ्मयमें मिल जाते हैं। वामन-लीलासे सम्बन्ध रखनेवाले ऋग्वेदमें कई मन्त्र मिलते हैं। उनमें विष्णुसूक्तका निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः॥

(ऋग्वेद १। १५४। १)

अर्थात् विष्णुकी शक्तिका वर्णन करते हैं, जिन्होंने पृथ्वीके प्रदेशोंको नापा और अपने तीन बड़े डगोंसे आकाशको स्थापित किया।

वामन-लीलामें भगवान्‌के तीन बड़े डगोंका अद्भुत वन्दनीय वर्णन है। वामनभगवान्‌की लीला कई पुराणोंमें आयी है, परंतु श्रीमद्भागवतपुराणमें उसका भाव-भरित और भक्तजन-रंजक विस्तार है।

वामनभगवान्‌का जन्म अदितिके गर्भसे होता है। बलिद्वारा देवोंके पराभवके बाद कश्यपजीके कहनेसे माता अदिति पयोव्रतका[1] अनुष्ठान करती हैं। भगवान् देवोंका इष्ट सम्पादन करनेके लिये और अपनी लीला करनेके लिये भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन अवतरित होते हैं। पहले वे शंख, चक्र, गदा-पद्मधारी चतुर्भुज-रूपमें प्रकट होते हैं। अत्यन्त आनन्दमयी वेला हो जाती है। देव-मुनि-पितर स्तुतियाँ करते हैं, अदिति प्रसन्न होती हैं और कश्यप जय-जयकार करते हैं। बादमें भगवान् ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लेते हैं। कश्यपको आगे करके उनका जन्म-संस्कार और यज्ञोपवीत-संस्कार ऋषि लोग कराते हैं।

(ब्राह्मणके लिये यज्ञोपवीतका विधान सात वर्ष अथवा ग्यारह वर्षकी अवस्थामें किया गया है। ऐसा माना जाता है कि जनेऊके निर्माता ब्रह्मा हैं, उसे त्रिगुणात्मक करनेवाले विष्णु हैं और उसका ग्रन्थिवन्धन करनेवाले शिव हैं तथा गायत्रीदेवी इसे अभिमन्त्रित करती हैं। जनेऊके एक-एक धागेमें एक-एक देवी-देवताकी प्रतिष्ठा होती है। इसका लोहेसे स्पर्श नहीं होना चाहिये। इसमें चाबी नहीं बाँधनी चाहिये। ऐसा करनेसे देवी-देवता उस जनेऊको छोड़कर भाग जाते हैं। ब्रह्मोपनिषद्‌में कहा है—**'यदक्षरं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत्'**। अर्थात् जो अविनाशी ब्रह्म है, वही इस सूत्रमें हैं—यह समझकर जनेऊको धारण करना चाहिये।)

भगवान् वामनदेवके यज्ञोपवीत-संस्कारके समय बृहस्पतिने जनेऊ प्रदान किया, कश्यपने मूँजकी मेखला दी, सूर्यने गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। अदितिने कौपीन, ब्रह्माने कमण्डलु, सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला और कुबेरने भिक्षापात्र दिया। ऐसे दिव्य ब्राह्मण वटुकके रूपमें भगवान् सौन्दर्य और तेजको विकीर्ण करते हुए सुशोभित हुए।

राजा बलि नर्मदा नदीके तटपर 'भृगुकच्छ' नामक स्थलपर भृगुवंशी ब्राह्मणोंके संरक्षणमें अश्वमेध-यज्ञ कर रहे थे। देवोंका हित-साधन करने और बलिपर कृपा करनेके लिये भगवान् वामनदेव उस यज्ञमें पधारे।

वे अपने उज्ज्वल तेजसे प्रभा विकीर्ण कर रहे थे। रूप छोटे वटुकका था, पर उस रूपमें वे अतीव सुन्दर प्रतीत हो रहे थे। दण्ड-कमण्डलु, छत्र, मेखला, यज्ञोपवीत-युक्त उनके बाल-ब्रह्मचारी-रूपकी दिव्य छटा अत्यन्त मनोहारी थी। पुराणोंमें भगवान्‌के इस अद्भुत रूपका चित्रण इस प्रकार किया गया है—

१-'पयोव्रत-अनुष्ठान' पुत्र-प्राप्तिके निमित्त किया जाता है। श्रीमद्भागवतपुराणके अष्टम स्कन्धके सोलहवें अध्यायमें उसका विस्तृत वर्णन है।

मौंजीयुक् छत्रको दण्डो कृष्णाजिनधरो वटुः।
अधीतवेदो वेदान्तोद्धारको ब्रह्मनैष्ठिकः॥

अर्थात् उनकी मेखला और जनेऊ दोनों मूँजके थे। वे छत्र और दण्डको धारण किये हुए थे। उन्होंने काले मृगका चर्म धारण कर रखा था। ब्राह्मण-ब्रह्मचारीका रूप था। वेद पढ़े हुए थे। वेदान्तका उद्धार करनेवाले और ब्रह्मनिष्ठ लग रहे थे।

वामनरूपधारी भगवान् वासुदेव बलिके यज्ञकी ओर आये तो पृथ्वी काँपने लगी। पर्वत डिग गये। समुद्र क्षुब्ध हो उठे। आकाशमें तारा-मण्डल अव्यवस्थित हो गया।

बलिकी यज्ञशालामें अमित तेजस्वी बाल-वटुक वामनके पहुँचते ही सभी सभासद् हतप्रभ हो गये। सारे पुरोहित और उनके शिष्योंका तेज सिमट-सा गया। सब अपने-अपने आसनसे उठकर उनके स्वागतके लिये खड़े हो गये। सबने उन्हें प्रणाम किया। बलिने अपने भाग्यको सराहा और माना कि उनका यज्ञ सफल हो गया। उन्होंने भगवान् बाल-वटुकका स्वागत किया।

बलिने अपने यज्ञको सफल करनेकी भावनासे याचक-रूपमें आये ब्राह्मण-वटुकको अपना सब कुछ अर्पित करके उन्हें प्रसन्न करनेकी अभिलाषा प्रकट की—

गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं
तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा
रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ॥

(श्रीमद्भा० ८। १८। ३२)

अर्थात् हे महाराज! आपकी जो इच्छा हो उसे आप मुझसे ले सकते हैं। आपको गाय चाहिये, सोना चाहिये, सुसज्जित घर चाहिये, स्वादिष्ट भोजन, पेय पदार्थ या ब्राह्मण-कन्या चाहिये, सम्पत्तिसे युक्त गाँव चाहिये, घोड़े, हाथी और रथ—जो भी इच्छा हो कहिये।

लीलाविहारी भगवान् वामन बलिके वंशकी प्रशंसा करते हैं—'महाराज, आपके कुलमें अनेक महापुरुष हुए हैं। हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु-जैसे वीर हुए हैं, प्रह्लाद-जैसे भगवान्‌के भक्त हुए हैं, आपके पिता विरोचन-जैसे ब्राह्मण-वत्सल हुए हैं। आप भी उसी परम्पराका पालन कर रहे हैं।' बाल-ब्रह्मचारी—लीला-वेशधारी भगवान् वामन बलिके समर्पण और वचनपर दृढ़ रहनेकी अच्छी भूमिका तैयार कर रहे हैं। महाराज बलि अपने भाग्यकी सराहना कर रहे हैं। अपनेको सफल-मनोरथ मान रहे हैं, कृतार्थ मान रहे हैं, गद्गद हो रहे हैं और वामनभगवान्‌को अपने महलमें ले जाकर उनके चरण पखार रहे हैं। विविध रत्नाभरणोंसे सुसज्जित बलिकी पत्नी विन्ध्यावली स्वर्ण-कलशसे जल डाल रही हैं। ब्राह्मण पुरुषसूक्तसे स्तुति कर रहे हैं। उत्साह और आनन्दका समुद्र लहरा रहा है। बलि कह रहे हैं—'महाराज, मन करता है सभी कुछ आपके चरणोंमें अर्पित कर दूँ।'

(बलिकी पुत्री रत्नमालामें वामन वटुकको देखकर वात्सल्यभाव उमड़ पड़ता है। सोचती है कौन ऐसी भाग्यवती माँ होगी, जिसने इसे अपना दूध पिलाया होगा। मेरी भी यही कामना है, ऐसे बच्चेको अपना दूध पिलाऊँ। पर जब वामनके विराट्‌रूप और पराक्रमको देखा तो उसे मारनेकी इच्छा हुई। इन्हीं भावनाओंसे वह कृष्णवतारमें पूतना बनी। दूध पिलाना और मारनेकी इच्छा पूतनाके चरित्रमें है।)

वामनभगवान्‌ने बलिको वचनसे मजबूत बना लिया तो उन्होंने अपने पैरोंके मापकी तीन पग भूमि माँगी। बलि समझाते हैं, मेरे यहाँसे याचक इतना समृद्ध होकर जाता है कि उसे फिर माँगना ही नहीं पड़ता। इतनी भूमिसे क्या होगा? ब्राह्मण-वटुकने इतनेमें ही अपनी पूर्ण संतुष्टि दिखायी तो बलि सोचने लगे—'बेचारा बालक है, माँगना जानता ही नहीं, इसे माँगना आता ही नहीं। मुझ-जैसे राजासे कितना तुच्छ, नगण्य वस्तु माँग रहा है।' वे ब्राह्मण-वटुकसे कहते हैं—

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसम्मताः।
त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। १९। १८)

अर्थात् 'हे ब्राह्मणपुत्र! तुम्हारे वचन तो वृद्धों-जैसे हैं, पर तुम अभी बालक हो। तुम्हारी बुद्धि भी बालकों-जैसी है और तुम अपने स्वार्थके प्रति भी अनभिज्ञ-जैसे ही हो।'

वामन कहते हैं—'मैं संतोषी ब्राह्मण हूँ। इतनेसे ही संतुष्ट हूँ। जो संतुष्ट नहीं है, वह तीनों लोकोंको प्राप्त करके भी संतुष्ट नहीं होगा।' वामनके तर्कोंसे संतुष्ट होकर बलि महाराज हँसते हुए बोले—'माँग लो।' उन्होंने संकल्पके लिये जल उठाया। बलिके गुरु शुक्राचार्य उन्हें रोकते हुए बोले—'ये साक्षात् विष्णु हैं। देवताओंका हित साधने आये हैं। ये माया-माणवक (मायासे ब्रह्मचारी बने हुए) हरि हैं। तुम्हारी सारी सम्पत्ति छीन कर इन्द्रको दे देंगे।' बलि महाराज कहते हैं कि 'अब तो मैं वचन दे चुका। दूसरे मेरा स्वभाव भी मुझे ऐसा ही करनेके लिये प्रेरित कर रहा है, फिर दान, तप आदि कार्य तो मनुष्य अपने पूर्व-अभ्यासके अनुसार ही करता है'—

दानं तपो वाध्ययनं महर्षे
स्तेयं महापातकमग्निदाहम्।

ज्ञानानि चैवाभ्यसतां हि पूर्वं
भवन्ति धर्मार्थयशांसि नाथ॥

(वामनपुराण ९०। ११४)

अर्थात् 'हे महर्षे! दान, तप, अध्ययन, चोरी, महापातक, अग्निदाह, ज्ञान, धर्म, अर्थ और यश—ये पूर्वजन्मके अभ्याससे उत्पन्न होते हैं। मेरा अन्तर्मन मुझे प्रेरित कर रहा है।'

आज्ञा न माननेपर शुक्राचार्य बलिको शाप देते हैं—

मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद् भ्रश्यसे श्रियः॥

(श्रीमद्भा० ८। २०। १५)

—'मेरे शासनकी सीमाको पार करनेवाले तुम ऐश्वर्यसे नष्ट हो जाओगे।' शापग्रस्त होनेपर भी बलि अपने वचनसे नहीं डिगे। चरण धोये। चरणोदक सिरपर चढ़ाया, वामन-भगवान्‌की पूजा की और दानका संकल्प कर दिया।

भगवान् वामनका आकार बढ़ने लगा। सारा ब्रह्माण्ड, आकाश, दिशाएँ, पृथ्वी, समुद्र, वन तथा वनस्पति उसमें समा गये। बलिके साथ ही वहाँ उपस्थित सभी सभासदोंने भगवान्‌के उस विराट्-रूपका दर्शन किया। भगवान्‌ने एक पगसे समस्त पृथ्वी तथा आकाश और दिशाओंको ढक लिया। दूसरे पगमें सारा स्वर्गलोक आ गया। तीसरे पगके लिये रंचमात्र भी स्थान नहीं बचा। इस स्थितिको देख अत्यन्त विकल राक्षसोंने उपद्रव प्रारम्भ कर दिया, पर विष्णुके सैनिकोंने उन्हें खदेड़ दिया। भगवान्‌की इच्छासे गरुडने बलि महाराजको वरुणपाशमें बाँध लिया। भगवान्‌ने बलिसे कहा कि वचन पूरा न होनेसे तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा। बलि इससे विचलित नहीं हुए। बोले, महाराज—

पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। २)

—तीसरा पग मेरे सिरपर रखें। मैं अपने वचनको झूठा नहीं होने दूँगा। उस समय राजा बलि बड़ी ही प्रशंसा-योग्य वचन बोलते हैं—

बिभेमि नाहं निरयात् पदच्युतो
न पाशबन्धाद् व्यसनाद् दुरत्ययात्।
नैवार्थकृच्छ्राद् भवतो विनिग्रहा-
दसाधुवादाद् भृशमुद्विजे यथा॥

(श्रीमद्भा० ८। २२। ३)

अर्थात् 'महाराज, मैं नरकमें जानेसे नहीं डरता। अपने पदसे हटनेसे नहीं डरता, वरुणपाशमें बँधनेसे नहीं डरता, असह्य कष्टसे नहीं डरता, परंतु मैं अपने असाधुवाद यानी अपयशसे डरता हूँ।'

पुनः वे कहते हैं कि घर, परिवार, देश तथा जातिकी आसक्तिसे क्या लाभ है? मेरी आपके प्रति प्रेमनिष्ठा बनी, इस कारण मैं अपनेको परम सौभाग्यशाली समझता हूँ। बलि वरुणपाशमें बँधे हुए हैं। प्रह्लादजी वहाँ आ जाते हैं। बलि उन्हें नेत्रोंसे प्रणाम करते हैं। वे भगवान्‌को प्रणाम करके कहते हैं—'प्रभु! आपका देना और लेना दोनों ही सुन्दर हैं।' ब्रह्माजी भगवान्‌से प्रार्थना करते हैं—'आपने बलिका सर्वस्व ले लिया, अब आप इसे छोड़ दीजिये। यह दण्डके योग्य नहीं है। आप तो पत्र, पुष्प, फल तथा जलसे ही संतुष्ट हो जाते हैं, इसने तो अपना सब कुछ दे दिया। तब वामनकी लीला करनेवाले भगवान् कहते हैं'—

'ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।

(श्रीमद्भा० ८। २२। २४)

हे ब्रह्मन्! जिसपर मैं दया करता हूँ, उसकी सारी सम्पत्ति छीन लेता हूँ।

बलिने धनविहीन, पीडित, बन्धनग्रस्त, गुरु-शापित होकर भी अपना धर्म नहीं छोड़ा, सत्य नहीं छोड़ा। बलिपर मेरी कृपा है। मैं इन्हें वह स्थान देता हूँ, जो देवताओंको भी सुलभ नहीं है। ये सावर्णि मनुकालमें स्वर्गके राजा बनेंगे। तबतक ये सुतललोकमें रहेंगे और मैं सभी प्रकारसे इनके लिये संरक्षण प्रदान करूँगा।

इस प्रकार भगवान्‌की वामन-लीला भक्तोंके हृदयको अपनी सर्वव्यापी कृपाकी रसनीय धारामें सराबोर कर देनेवाली है। भगवान् जब कृपा करते हैं—तब तीन कदम यानी तीन चीजें माँगते हैं—तन, मन और धन। जो बलिकी तरह अपना तन, मन और धन भगवान्‌को समर्पित कर देता है, उसकी रक्षा भगवान् स्वयं करते हैं। ब्रह्मलीन प्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीके विनय-भरे शब्दोंसे इस लीलाको विराम दिया जाता है—

जा कारन वामन बने जिन नारायन नाम है।
तिनके पद-पाथोजमें पुनि-पुनि पुन्य प्रनाम है॥

शक्तिपीठ 'हिंगलाजदेवी'की लीला-कथा

(सुश्री धीरजबेन दिनकरभाई पटेल)

कई वर्ष-पूर्वकी यह एक अद्भुत सत्य घटना है। उस समय मैं विद्यालयकी छात्रा थी। मेरे पिता व्यापारी कृषक थे। माताजी बड़ी धार्मिक स्वभावकी थीं। एक दिन पिताजी अपने साथ एक विचित्र वेष-भूषाधारी 'फकीर' को लेकर घरपर आये। शिष्टाचारके अनुसार घरके सभी लोगोंने फकीरका अभिवादन किया। मैंने झटसे उनसे पूछा कि 'फकीर माने क्या?' उतना ही शीघ्र प्रत्युत्तर मुझे मिला—'फिकरकी फाकी करे, वह फकीर।' पिताजीने समझाया कि 'जिसने अपने मस्तकपर लदी हुई चिन्ता-रूपी गठरीको प्रभुके चरणोंमें समर्पित कर चिन्तामुक्त हो गया है, वह ईश्वरका नेकबंदा (भला दास) ही 'फक्कड़ साधु' या 'फकीर' है।' पिताजीकी बात मुझे समझमें आ गयी।

उन फकीरने जोगिया (गेरुआ) वस्त्र धारण कर रखा था। उनके ललाटमें सिंदूरका तिलक था और गलेमें चूना-पत्थरकी छोटी-बड़ी मालाएँ थीं। उनके कंधेपर झोली थी और हाथमें देवीका त्रिशूल था। मैंने उनके गलेकी सुन्दर मालाओंके बारेमें पूछा कि आपने इन्हें कहाँसे खरीदी है?' फकीरने कहा—'इनके बारेमें तो लंबा इतिहास है, क्या सुनना चाहती हो?' मैंने कह दिया—'अवश्य, कहिये क्या बात है?' फकीर स्वानुभव कहने लगे—

'मुझे यौवनकालमें सम्पूर्ण शरीरपर श्वेत कुष्ठ हो गया था। कई डॉक्टर, वैद्य-हकीमसे औषधोपचार करवाये, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ—'रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की।' आखिर एक जोगी बाबासे रोग-निर्मूलनका उपाय पूछा। उन्होंने अपनी योगशक्तिसे कहा कि 'तुम पैदल ही 'हिंगलाजदेवी' के तीर्थस्थलकी यात्रा करो और देवीके दर्शन करके उनसे अपने किये हुए पापोंकी क्षमा-याचना करो, उस पवित्र स्थानमें दो वर्षतक मौनव्रतका पालन और तपस्या करो। तुम अवश्य रोगमुक्त हो जाओगे।'

डूबते हुएको तिनकेका सहारा चाहिये। सबको जीवित रहना अच्छा लगता है न! मैंने जोगी बाबाकी बात मान ली और पैदल ही 'हिंगलाजदेवी' के दर्शनोंके लिये चल पड़ा। वहाँ दो वर्ष मौन-धारण-पूर्वक देवीके मन्त्रका जप किया। महाशक्तिशाली 'हिंगलाजदेवी' की कृपासे मैं एकदम अच्छा—रोग-मुक्त हो गया। मेरे लिये तो 'हिंगलाजदेवी' ही मेरी माँ, मेरे पिता, मेरे सब कुछ हैं। उन महाशक्तिकी जियारत (यात्रा) एवं मिन्नत (प्रार्थना) हिंदुओंके साथ मुसलमान लोग भी करते हैं और अपनी मन:कामनाएँ सिद्ध करते हैं।'

फकीरका स्वानुभव सुनकर मैं तो आश्चर्यमें पड़ गयी। स्वभावसे ही शक्ति-उपासक होनेसे मेरी इच्छा 'हिंगलाजमाता-तीर्थ-क्षेत्र' की यात्रा एवं दर्शन करनेकी हुई। मैंने फकीरसे उस तीर्थ-क्षेत्रका पता तथा देवीकी महिमा और वहाँके इतिहास आदिके बारेमें पूछा।

मेरी उत्सुकता देखकर फकीर कहने लगे कि धर्मशास्त्रोंमें ५१ शक्तिपीठोंका वर्णन है। जहाँ-जहाँपर शिवपत्नी सतीके देहके खण्ड (टुकड़े) गिरे थे, वे ही शक्तिपीठ कहलाये। 'हिंगलाज'में सतीका 'कपाल' (या किरीट) गिरा था, इसीलिये ५१ शक्तिपीठोंमें 'हिंगलाज-पीठ' को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'हिंगलाजदेवी'का मन्दिर अग्निदेवीके नामसे समर्पण किया हुआ है। वहाँके लोग 'हिंगलाज' को 'हिंगुदा' भी कहते हैं। शक्तिके उपासकोंके लिये 'हिंगलाजदेवी'के क्षेत्रकी तीर्थयात्रा और देवीके दर्शन करना अति शुभ माना गया है।'

आतुरतावश मैंने फकीरसे पूछा—'हिंगलाजमाता'के मन्दिरतक पहुँचनेका कौन-सा सुगम मार्ग है?'

फकीरने कहा—'जब अखण्ड हिन्दुस्तान था (ई० स० १९४७ से पहले) तब लोग पश्चिम हिन्दुस्तानके 'कच्छ-प्रदेश' के 'नारायण-सरोवर' में स्नान और आदिनारायणमूर्तिके दर्शन करके 'कोटेश्वर' जाते थे, वहाँपर समुद्रस्नान करके 'कोटेश्वर-महादेव' के दर्शन करके जहाजमें बैठकर 'कराँची' पहुँचते थे। कराँचीसे 'मियानी-हिंगलाज रोडपर आगे ७० मील तय करके 'नागर ठांटा' पहुँचते थे और वहाँसे 'हिंगलाज पर्वत'की कंदरामें 'हिंगलाजदेवी'के दर्शन करते थे। मैं भी इसी मार्गसे तीर्थयात्रा करता हुआ 'हिंगलाज-क्षेत्र'में पहुँचा था।'

मैंने फकीरसे पूछा—'आपके गलेमें मालाएँ हैं, उनका नाम क्या है और वे कहाँ मिलती हैं?'

फकीरने कहा—'ये मालाएँ चूना-पत्थरके मणिसे बनती हैं। ऐसे पत्थर हिंगलाज-क्षेत्रमें ही मिलते हैं, अन्यत्र नहीं। ऐसी छोटी मालाके दानोंको 'ठुमरा' कहते हैं और बड़ी

मालाके दानोंको 'आशापुरी' कहते हैं। ऐसी मालाएँ खरीद करके यात्री हिंगलाजमाताके चरणोंमें अर्पण करते हैं। हिन्दूयात्री देवीको 'हिंगलाज' कहते हैं, मुसलमान यात्री देवीको 'बीबी नानी' कहते हैं।

मैंने उत्सुकतावश फकीरसे पूछा कि 'ठुमरा' और 'आशापुरी' दानोंके विषयमें क्या कोई चमत्कारिक कथा है?

फकीरने कहा—'हाँ, उस कथाको हिंगलाजदेवीकी 'लीला-कथा' कहते हैं। मैं तुम्हें 'लीला-कथा' संक्षेपमें सुनाता हूँ— एक बार कैलासपति शिव और देवी पार्वती आशापुरी जंगलमार्गसे 'हिंगलाजपीठ' जा रहे थे। शिवजीने पार्वतीसे कहा—'मैं थक गया हूँ और भूखा भी हूँ। तुम यहाँ 'खिचड़ी' पकाओ, तबतक मैं जंगलसे बाहर निकलनेका मार्ग ढूँढ़ता हूँ।'

शिवजीने पार्वतीकी रक्षाके लिये मन्त्रयुक्त भस्मकी रेखा भी खींच दी, इसलिये कि यदि कोई इस रेखाका उल्लंघन करे तो भस्म हो जाय। इसके बाद शिवजी सुरक्षाकी दृष्टिसे अपना अमोघ त्रिशूल भी पार्वतीको देकर वहाँसे निकल गये। पार्वती खिचड़ी बनाने लगीं। उसी समय एक भयंकर असुर वहाँपर आ धमका। घने जंगलमें अतीव सुन्दर पार्वतीको अकेली देखकर वह काम-पीड़ित हो गया और उन्हें पकड़नेके लिये दौड़ा। यह देख क्रुद्ध पार्वतीने शक्तिशाली शिव-त्रिशूल असुरके पेटमें भोंक दी। असुरके देहसे रक्तका फुहारा फूटा और रक्तबिन्दु खिचड़ीमें पड़ गये। अन्न अपवित्र हो गया।

कुछ ही समयमें शिवजी वापस लौटे और वहाँ अमङ्गल-दृश्य देखकर उन्होंने पार्वतीको शान्त किया। मृत्युमुखमें जा रहे असुरने शिवजीके चरणकमलोंमें अपना मस्तक रखकर प्रार्थना की कि जगदम्बा पार्वतीने ही अपने हाथसे त्रिशूल मेरे पेटमें घोंप दी है, अतः आपको मुझे मुक्ति देनी ही पड़ेगी।

भगवान् आशुतोष शिवने असुरको 'तथास्तु' कह दिया। असुरका शरीर छूट गया और शरीर भस्मका पहाड़ बन गया। असुरकी आत्मा 'शिवलोक' को प्राप्त हो गयी।

महादेवकी आज्ञासे महादेवी पार्वतीने सब अपवित्र हुआ खाद्यान्न वनमें फेंक दिया। खाद्यान्न—खिचड़ीके दाने तुरंत ही चूना-पत्थर हो गये और उन चूना-पत्थरोंको पवित्र 'ठुमरा' तथा 'आशापुरी' दाने (मणि) होनेका पार्वतीने वरदान दिया।

माता हिंगलाजकी लीला-कथा अद्भुत है।

परब्रह्मकी नित्यलीला

(श्रीरामपदारथसिंहजी)

ब्रह्मकी सत्ता स्वीकार करनेसे हृदयमें संतत्वका उदय होता है और 'ब्रह्म नहीं है'—ऐसा माननेसे असदाचारका आरम्भ होता है। श्रुतिकी उक्ति है—

असन्नेव स भवति। असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति॥ (तैत्तिरीयोप० २। ६)

अर्थात् यदि कोई यह समझता है कि ब्रह्म नहीं है तो वह असत् (सदाचार-भ्रष्ट) ही हो जाता है। यदि कोई यह समझता है कि ब्रह्म है तो इसे ज्ञानीजन संत—सत्पुरुष समझते हैं।

ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप ब्रह्मसे ही प्राणियोंका जन्म और जीवन है तथा प्रयाणके पश्चात् उसीमें प्रवेश भी होता है, यथा—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। (तैत्तिरीयोप० ३। ६)

ब्रह्म आनन्दस्वरूप होनेसे आप्तकाम है। उसे न कोई कमी है और न कुछ प्रयोजन। इस स्थितिमें उसे सृष्टि-रचनादिमें प्रवृत्त होनेकी क्या आवश्यकता हुई? इस जिज्ञासाकी सम्भावना समझकर ब्रह्मसूत्रकार व्यासजीने उत्तर दिया है—

लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्।

(ब्रह्मसूत्र २। १। ३३)

अभिप्राय है कि परब्रह्मका विश्व-रचनादिमें प्रवृत्त होना, लोकमें जीवन्मुक्त आप्तकाम पुरुषोंद्वारा बिना स्वप्रयोजन ही लोकहितमें प्रवृत्त होनेके समान लीलामात्र है। श्रीपराशरजीका श्रीविष्णुपुराणमें कथन है कि—

व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च।
क्रीडतो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय॥

(१। २। १८)

अर्थात् परब्रह्म विष्णु जो व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष और कालके रूपसे स्थित हैं, उनकी जगत्-रचनादि लीलाको बालकवत् क्रीडा ही समझे। जिस प्रकार खेलता हुआ बालक स्वभाववश किसी वस्तुको बनाता है और पुन: उसे बिगाड़ देता है, उस वस्तुके बनाने-बिगाड़नेमें उसका कोई अन्य प्रयोजन नहीं रहता है, उसी प्रकार जगत्के सृजन-संहारमें परब्रह्मका कोई अन्य प्रयोजन नहीं होता। सृजन-संहार लीलामात्र है। प्रयोजनानन्तर कृति ही लीला कहलाती है। क्रीडनशीलता आनन्दका स्वभाव है। इसीलिये आनन्दस्वरूप ब्रह्म पूर्णकाम होनेपर भी लीला-संलग्न रहता है। यह कहा नहीं जा सकता कि अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके सृजन-संहारकी लीलाका आरम्भ कब हुआ और अन्त कब होगा? यह अनादि-अनन्त और नित्य-प्रवर्ती होनेसे नित्य-लीला है।

आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी लीला आनन्दस्वरूपा है। वस्तुत: स्वयं परब्रह्म ही नाना रूपोंमें प्रकट है। तैत्तिरीयोपनिषद्में उल्लिखित है कि परब्रह्मने विचार किया कि 'मैं प्रकट होऊँ और अनेक नाम-रूप धारण करके बहुत हो जाऊँ।' उसने तप किया, अपने संकल्पका विस्तार किया और जो कुछ देखने-समझनेमें आता है, उस समस्त जगत्की रचनाकर उसीमें वह प्रविष्ट हो गया, यथा—

स तपस्तप्त्वा इद्ꣳसर्वमसृजत यदिदं किं च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। (तैत्तिरीयोप० २। ६)

अत: सब लीला होते हुए भी आनन्दकी लीला होनेसे आनन्दमयी है। इसे समझनेपर आनन्द-ही-आनन्द है, पर भावदृष्टिके बिना इस लीलाको देखकर भी वास्तविक रूपमें नहीं देखा जा सकता।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड परब्रह्मकी लीलाविभूतिमें है। लीलाविभूति एकपाद विभूति है। इसके परे असीम अनन्त त्रिपाद विभूति है। वह विशुद्ध सच्चिदानन्दमयी है। वहाँका सब कुछ सच्चिदानन्दमय है। वही परब्रह्मका नित्य-धाम है, जिसे परव्योम, परमपद, वैकुण्ठ, साकेत एवं गोलोकादि कहते हैं। अनेक नाम भावके भेदसे हैं। वहाँ उभय विभूतिनाथ परब्रह्म परिकरों-सहित सच्चिदानन्दमयी लीलामें रत है। वहींसे अखिल ब्रह्माण्डोंकी बहुरंगी लीलाओंका भी संचालन होता है।

परब्रह्म परम स्वतन्त्र होता हुआ भी प्रेमीके प्रेमाधीन है। इसलिये कभी-कभी स्वयं लीलाविभूतिमें भक्तोंके प्रेमाधीन हो उनके कल्याणके लिये ही लीला-विग्रह धारण करके मनोहारिणी लीलाएँ करता है—

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥

(रा० च० मा० १। १४४। ७)

लीलाविभूतिकी लीलाएँ प्रेमियोंकी लालसाके अनुसार होती हैं; तथापि अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावनादिमें जो दिव्य लीलाएँ हुई थीं, वे भक्तोंकी लालसाके ही परिणाम हैं। लीलाविभूतिकी लीलाएँ यद्यपि त्रिपादविभूतिके लीला-सुधा-सिन्धुके सीकरांश हैं, तथापि उनमें लोकचित्ताकर्षण एवं लोक-पावनकी असीम शक्ति संयुक्त है।

लीलाविभूतिकी लीलाएँ सीमित देश-कालमें होती हैं। इसलिये वे अनित्य प्रतीत होती हैं, किंतु बात ऐसी नहीं है। परब्रह्मके नाम-रूप, लीला-धाम—ये चारों परात्पर ब्रह्म ही हैं, सच्चिदानन्द-विग्रह और नित्य हैं—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

(वसिष्ठसंहिता)

अत: परम प्रभुकी अवतारकालीन लीलाएँ भी नित्य ही हैं। उन लीलाओंके दर्शन आज भी उन भाग्यवान् भक्तोंको होते हैं, जिन्हें वह लीलाधन निज जनके रूपमें कृपापूर्वक वरण करता है। गोस्वामीजीकी तो मान्यता है कि प्रभु राम सीताजी और लक्ष्मणजी-सहित सब दिन चित्रकूटमें बसते हैं और राम-नामके प्रेमी जापकोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं—

चित्रकूट सब दिन बसत प्रभु सिय लखन समेत।
राम नाम जप जापकहि तुलसी अभिमत देत॥

(दोहावली ४)

त्रिपादविभूतिसे दूर होते हुए भी प्रेमीजन विभूतिनाथ परब्रह्मसे दूर नहीं होते, क्योंकि लीलाविभूतिमें रहते हुए भी जिनके चारु चित्तरूपी चित्रकूटमें लीलाकथारूपी मन्दाकिनीके सलिल-सुधासे सिंचित स्नेहके सुभग वन होते हैं, उनमें श्रीसीतारामजीका विहार आज भी होने लगता है—

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥

(रा० च० मा० १। ३१)

इस प्रकार परब्रह्मकी परव्योममें होनेवाली नित्य-लीलाओंका प्रकाश भी प्रेमी भक्तोंके भावपूर्ण हृदयाकाशमें होने लगता है।

संत और सुधारक महात्मा कबीरकी सेवा-साधनासे भगवल्लीलाकी अनुभूति

ये कबीर अवश्य कोई जादूगर हैं!

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

'क्या कबीरका घर यही है?' सर्वजित नामक एक आगन्तुकने आवाज दी।

कबीर घरमें नहीं थे। उसने पुनः आवाज दी। 'अरे घरमें कोई है? हमें कबीरसे मिलना है। कहीं गलत मकानपर तो नहीं आ गये?'

कई बार द्वार खटखटाने तथा आवाज लगानेके बाद घरमेंसे कबीरजीकी पुत्री कमाली निकली और पुस्तकोंसे लदे बैलको देख मुसकराते हुए बोली—'घर तो यही है, पर वे अभी बाहर गये हैं। आप बैलपर इतनी पुस्तकें लादे हमारे यहाँ क्यों आये हैं? कृपया आप अपना परिचय तो दीजिये?'

'लड़की, तू मुझे नहीं जानती। जानेगी भी कैसे? एक पिछड़े हुए परिवारकी कन्या है न?'

'जिज्ञासाके कारण की गयी धृष्टताके लिये क्षमा करें, लेकिन आप कृपापूर्वक अपने विषयमें कुछ तो बतलाइये! आप यह पुस्तकोंसे लदा बैल क्यों लाये हैं? क्या पुस्तक बेचनेवाले हैं? मेरे बापू तो पढ़ना नहीं जानते! फिर हम जुलाहे गरीबीसे भरे अभावग्रस्त जीवनमें अपनी रोजी-रोटी ही बड़ी कठिनतासे जुटा पाते हैं, हम आपकी कोई पुस्तक नहीं खरीद सकेंगे। कमालीने अत्यन्त सहजतासे ये सारी बातें कह दीं।'

मूर्ख लड़की, तू पुस्तक बेचनेवाला समझकर मेरा अपमान कर रही है? अरे, मैं सर्वानन्द नामक प्रकाण्ड विद्वान् हूँ। इस क्षेत्रके अनेक विद्वानोंको शास्त्रार्थमें हरा चुका हूँ।

'सुना है, आपने अपना नाम बदल लिया है!'

'हाँ, यह तो तुमने सच ही कहा है और ठीक ही सुना भी है। चूँकि मैं विद्वत्तामें यहाँके सब पण्डितोंको पराजित कर चुका हूँ। मेरे बराबर कोई बड़ा पण्डित—विद्वान् नहीं है, अतः मैंने पाण्डित्यकी सार्थकता सिद्ध करनेके लिये अपना नाम सर्वानन्दसे बदलकर सर्वजित कर लिया है।'

'फिर हमारे यहाँ पधारना कैसे हुआ महाशय?'

'मेरी माताजी अपनी काशी-यात्रामें एक बार तुम्हारे पिताजीके सत्संगमें आयी थीं और उनसे मन्त्रदीक्षा ले गयी थीं।'

'यह तो अच्छा किया माताजीने!' अवश्य ही वे उस मन्त्रदीक्षासे लाभान्वित हुई होंगी! है न?

यह सुनकर सर्वजित क्रोधमें आ गये। परशुरामकी तरह भृकुटि चढ़ाकर बोले—'मेरे पाण्डित्यकी व्यर्थता समझते हुए मेरी माताजीने एक दिन मुझसे कहा था—'मैं तुझे सर्वजित तभी मानूँगी, जब तुम कबीरजीको शास्त्रार्थमें पराजित कर दोगे।' यह ताना मेरे मनमें काँटेकी तरह चुभा हुआ है। बार-बार मैं उस शूलकी चुभनको महसूस करता हूँ। ईर्ष्यासे जल रहा हूँ। इस असह्य पीडासे अपने मन-मस्तिष्कको उबार सकूँ, इसीलिये इस बैलपर अपने शास्त्रोंको लादकर मैं काशीमें कबीर साहबका घर ढूँढ़ता हुआ यहाँतक आया हूँ, उनसे शास्त्रार्थकर उन्हें हरानेके लिये।'

संसारमें जितने भी प्रतिभाशाली महापुरुष हुए हैं, उनके प्रारम्भिक जीवनके अध्ययनसे पता चलता है कि उनके जन्म, परिस्थिति, वातावरण या शरीरके किसी-न-किसी भागमें कोई जन्मजात कमी रही है, जिसकी क्षतिपूर्ति उग्र किंतु समुन्नत-रूपमें करके उन्होंने समाज तथा संसारका विशेष कल्याण किया है। प्रतिभाको पागलपनका एक रूप कह सकते हैं। जिन जन्मजात कमियोंको पूरा करनेकी चेष्टामें एक व्यक्ति बादमें पागल हो उठता है, उन्हीं कमियोंकी पूर्तिके प्रयासमें दूसरा व्यक्ति प्रतिभाशाली बन जाता है। माताके वचन सर्वजितको काँटेकी तरह चुभ गये। उनका अहंकार-रूपी सर्प फुंकार उठा! वे कबीरको नीचा दिखानेके लिये अपने शास्त्रोंको बैलपर लादकर काशी आये और कबीरके घरके सामने

पहुँचकर उन्होंने पुकारा था, 'क्या कबीरका घर यही है?'

कबीरकी पुत्री कमाली तो धीरेसे बोली थी कि 'उनका घर तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी तकको नहीं मिला।' परंतु सर्वजितको यह बात सुनायी पड़ गयी।

इस उत्तरका मर्म न समझकर सर्वजित चकरा रहे थे कि इतनेमें कबीर साहब आ गये।

'महाशय, आप कौन हैं? आपने बड़ी कृपा की जो यह घर पवित्र किया! कहिये, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?'

महान् आश्चर्य! आप सर्वजित नामक प्रकाण्ड विद्वान्को नहीं पहचानते। इस क्षेत्रके सभी लोग कहते हैं कि सर्वजितके समान विद्वान् अन्य कोई नहीं है। मैंने सभी विद्वानोंको पराजित किया है। मैं किसी भी विद्वान्से शास्त्रोंके सम्बन्धमें शास्त्रार्थ करनेको तैयार हूँ।

'यह तो मेरे लिए बड़े सौभाग्यका विषय है कि आप-जैसे महान् विद्वान्के दर्शन हुए। मुझे आपसे बहुत कुछ सीखनेको मिलेगा। मैं धन्य हुआ। पधारिये।'

'पहले यहाँ मेरे आनेका उद्देश्य सुन लीजिये।'

'कहिये, क्या सेवा करूँ?'

'मुझसे शास्त्रार्थ कीजिये। मैं आपको चुनौती देता हूँ कि ब्रह्म, ज्ञान, आत्मा, परमात्मा एवं वेद आदि किसी भी विषयपर आप मुझसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं। प्रमाणके लिये और अपने तर्कोंकी पुष्टि-हेतु मैं सभी धर्मग्रन्थोंको अपने साथ बैलपर लादकर लाया हूँ। मेरे तर्क प्रमाणयुक्त होंगे। मैंने इनका गम्भीर अध्ययन किया है। मैं आपको हराकर ही साँस लूँगा।'

'आप कबीरके घर पहुँचे हैं'—यह बात गलत है। मेरी समझसे परे है। पता नहीं, आप क्या कहना चाहते हैं?'

'आपका घर कहाँ है?'

'विद्वन्! कबीरका कोई घर नहीं है'—

कबीरका घर सिखरपर जहाँ सिलहली गैल।
पाँव न टिके पिपीलिका पंडित लादे बैल॥

'तात्पर्य यह कि कबीरका घर शिखरपर अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डोंसे भी ऊपर है, जिसका मार्ग इतना फिसलन-भरा है कि चींटी तकके पैर उसपर जम नहीं सकते, जबकि पंडित तो लदे हुए बैलके साथ शिखरपर पहुँचना चाहता है।'

'आप व्यर्थकी बातें छोड़ मुझसे शास्त्रोंमें वर्णित विषयोंपर शास्त्रार्थ कीजिये।'

'भई! मैं तो एक साधारण अनपढ़ जुलाहा हूँ। शास्त्रोंकी इतनी धार्मिक पुस्तकें तो मैंने जीवनमें कभी देखी तक नहीं। इनमें कितना अथाह ज्ञान भरा है, मुझे तो इसका भी कुछ पता नहीं।'

'आप व्यर्थकी बातें करके हमें गुमराह कर रहे हैं।'

'नहीं, यह बात नहीं। सचमुच मुझे शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका कुछ भी ज्ञान नहीं है।'

'याद कीजिये! मेरी माताजी एक बार अपनी काशी-यात्रामें आपके सत्संगमें गयी थीं। उन्होंने मेरे पाण्डित्यकी व्यर्थता बतायी और मुझे चिढ़ाते हुए कहा था कि वे मुझे तभी सर्वजित मानेंगी, जब मैं कबीरजीको शास्त्रार्थमें पराजित कर दूँगा। इसलिये मैं आपको हरा देनेके लिये पूरी तरह तैयार होकर आपके सामने खड़ा हूँ। आपको पराजित करके ही शान्त होऊँगा।' इतना कहनेके साथ ही सर्वजितने प्रश्न पूछना शुरू कर दिया—'यह बतलाइये कि यह जमाना कैसा है? दुनियाकी कैसी चलन है?'

कबीरदासने अत्यन्त सरल वाणीमें कहा—'आप मेरी उलटी-पलटी बातोंका मजाक न करें। मेरी राय तो यह है'—

डर लागै औ हाँसी आवै अजब जमाना आया रे॥
धन दौलत ले माल खजाना, बेस्या नाच नचाया रे।
मुट्ठी अन्न साधु कोई माँगे, कहैं नाज नहिं आया रे॥
कथा होय तहँ स्त्रोता सोवैं वक्ता मूँड़ पचाया रे।
होय जहाँ कहिं स्वाँग, तमासा, तनिक न नींद सताया रे॥
भंग तमाखू सुलफा गाँजा सूखा खूब उड़ाया रे।
गुरु चरनामृत नेम न धारै, मधुवा चाखन आया रे॥
उलटी चलन चली दुनियामें ताते जिय घबराया रे।
कहत कबीर सुनो भई साधो का पाछे पछताया रे॥

आपने तो युगका दर्शन ही दिखा दिया। खूब गहराईसे दुनियाको देखा-परखा है। भला बतलाइये तो 'इस युगका व्यवहार कैसा है? प्रजातन्त्रकी क्या अवस्था है? राज्यके

सिंहासनपर कैसे व्यक्ति जमे हुए हैं?'

कबीर—'प्रजातन्त्रका तो यह हाल है'—

बाबू ऐसो है संसार तिहारो, है यह कलि ब्यवहारा।
को अब अनख सहै प्रतिदिनको नाहिन रहन हमारा॥
सुमति सुभाव सबै कोई जानै, हृदया तत्त न बूझै।
निरजीव आगे सरजीव थापे, लोचन कछुव न सूझै॥
तजि अमरत बिष काहै अँचवूँ गाँठी बाँधू खोटा।
चोरनको दिय पाट सिंहासन साहुहिं कीन्हों ओटा॥
कह कबीर झूठो मिली झूठा ठग ही ठग ब्यवहारा।
तीन लोक भरपूर रह्यो है, नाहीं है पतियारा॥

सर्वजित—'यह संसार कैसा है?'

कबीर—

रहना नहिं देस बिराना है॥
यह संसार कागदकी पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँटकी बाड़ी उलझ-पुलझ मरि जाना है॥
यह संसार झाड़ और झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! सतगुरु नाम ठिकाना है॥

अन्तमें कबीरने कहा—'आपने मेरी बातें सुनीं—उसके लिये धन्यवाद। पर भाई, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि शास्त्रार्थमें मैं आपसे नहीं जीत सकता। आपका पुस्तकीय अध्ययन गम्भीर है।'

सर्वजित—'फिर भी आप अपने सिद्धान्त तो स्पष्ट कीजिये। आखिर आप क्या कहना चाहते हैं? आपका मार्ग कौन-सा है?'

कबीर—'मैं जिस मार्गपर अग्रसर हो रहा हूँ, वह मार्ग इतना विशाल और कठोर है कि उसे सर्वसाधारण समझ नहीं पाते हैं।'

'आप उसे निर्गुण-उपासनाका नाम देते हैं न?'

इससे ज्यादा अच्छा तो उसे समन्वयवादका मार्ग कहना पसंद करूँगा! मैंने सभी सम्प्रदायों, शास्त्रों, धर्मग्रन्थों और रहस्यवादी विचारोंको इकट्ठाकर उनको एक बनाया है। उसमें योग-तत्त्व, वैष्णव-सम्प्रदाय तथा बुद्ध-धर्मके भी कुछ सिद्धान्त शामिल हैं। भारतमें इस समय अनेक धर्मोंका प्रभाव है। बिना इनके एकीकरणके मेरा निर्गुण-पंथ सफल नहीं हो सकता। मेरे सिद्धान्त गीताके सिद्धान्तोंसे भी मिलते हैं।

कुछ उदाहरण तो दीजिये?

कबीर—

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्॥

'भाई, मैं तो योगमें ही आनन्द मानता हूँ और शरीररूप नवद्वारोंवाले घरसे सब कर्मोंको मनसे त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्द परमात्माके स्वरूपमें स्थिर रहना चाहता हूँ।'

'लोग कहते हैं कि आपके पंथमें फूल भी हैं, पर काँटे अधिक हैं।'

यह कहना उचित है। इसमें लोगोंको उनकी जीर्ण-शीर्ण रूढियों एवं दूषित बातोंके लिये फटकारना भी पड़ता है। बुरा-भला कहनेकी वृत्तिके लिये मैं लज्जित हूँ। क्षमा चाहता हूँ। मेरा निर्गुण-पंथ जनताके हितका साधन है। मैंने धर्मके क्षेत्रमें महान् समानता लानेका प्रमाण दिया है। संत-साहित्यका यह एक मध्यम मार्ग है। मैं जानता हूँ कि·······।

'कहिये, कहिये, कहते-कहते रुक क्यों गये?'

मैं अपढ़ जुलाहा हूँ, लिखना-पढ़ना जानता नहीं हूँ। मैं यह अनुभव करता हूँ कि शास्त्रार्थमें आप-जैसे सुशिक्षित महान् विद्वान्से नहीं जीत सकता। मैं अपनी हार मानता हूँ। मेरी हिम्मत आपसे शास्त्रार्थ करनेकी नहीं है।

सर्वजित—(संतुष्ट होकर) 'अगर आप अपनी हार मानते हैं तो यह बात लिखकर दे दीजिये।'

'क्षमा करें महोदय, मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानता। जो कुछ कविता कहता हूँ, लोग उन्हें लिख लेते हैं। मैं सिर्फ अपने हस्ताक्षर करना जानता हूँ। वे अक्षर भी टेढ़े-मेढ़े बनते हैं। देखकर स्वयंको लज्जा आती है। आप स्वयं लिख लें। मैं अपने हस्ताक्षर कर दूँगा।'

लीजिये मैं लिखता हूँ।

क्या लिखा आपने?

सर्वजितने कबीरको हरा दिया!

'लाइये मैं हस्ताक्षर कर देता हूँ।' (यह कहकर कबीरजीने उस पर्चेपर बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर दिया।)

सर्वजित खुशी-खुशी उन्हें लेकर अपनी माताजीके

पास पहुँचे। माताजीको दिखाया तो वे आश्चर्यसे उछल उठीं। उनका चेहरा काले बादलोंकी तरह निराश हो गया।

'माताजी, आप पर्ची पढ़कर क्यों नाराज हो गयीं?'

'अरे मूर्ख, तूने ध्यानसे पढ़ा है कि उसमें क्या लिखा है?'

आप ही बतलाइये क्या लिखा है!

उसमें लिखा है कि 'कबीरने सर्वजितको शास्त्रार्थमें हरा दिया है।'

.......मैं फिर काशी जाकर गलतीको दुरुस्त कराऊँगा।

दुविधामें फँसे सर्वजित उलटे पाँव कबीरके पास पहुँच गये। 'अपने लिखनेमें ही गलती हो गयी। मेरा ध्यान कहीं भटक गया'—यह कहकर उन्होंने कबीर साहबसे नयी पर्चीपर हस्ताक्षर करनेकी प्रार्थना की। वे तैयार हो गये। सर्वजितने फिर लिखा और माताजीको पर्ची दिखायी।

अरे मूर्ख! इसमें तो फिर वही लिखा है—'कबीरने सर्वजितको शास्त्रार्थमें हरा दिया।'—ऐसा तीन बार हुआ। हैरान होकर सर्वजितने अपनी मातासे कहा—'माँ! ये कबीर अवश्य कोई जादूगर हैं। न जाने क्या जादू कर देते हैं, कि मैं कुछ-का-कुछ लिख जाता हूँ।'

सर्वजित अन्धकारमें हैं, उनकी माताजी कबीरकी महानतासे परिचित थीं। वे सर्वजितको सम्बोधित करते हुए कहने लगीं—'तेरे गुप्त मनमें, तेरी अन्तरात्मामें कबीरकी विद्वत्ता बैठी है। ऊपरी मनसे तू कबीरको हरानेकी बात करता है, जबकि तू प्रारम्भसे ही उनसे हारा हुआ है।' अब सर्वजित अपने मिथ्याभिमानपर लज्जित थे। उन्होंने कबीर साहबसे क्षमा माँगी और उनके शिष्य बन गये। उनका शास्त्राभिमान दूर हो गया।

अभिमानग्रस्त रोगीके भीतर जो नैतिक दुर्बलताएँ होती हैं, उन्हें उसका मन दूसरोंपर आरोपित करता है। उसके मनमें गलत विश्वास जम जाता है कि वे अवगुण उसमें नहीं हैं, बल्कि दूसरे व्यक्तियोंमें हैं। कबीर साहबने अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टिसे सर्वजितके मनोविकारका मर्म जान लिया था।

अब सर्वजितका ज्ञान-गर्व टूट चुका था। महात्मा कबीरकी सेवा-साधनाने उन्हें परमार्थ-पथपर ला खड़ा कर दिया था। वे कबीरके समस्त ज्ञान-व्यवहार एवं क्रियाओंमें भगवत्-लीलाके चमत्कारका दर्शन कर रहे थे और शनैः-शनैः शान्तमना सर्वजित तत्त्वज्ञानकी ओर अग्रसर होते हुए यथार्थ तत्त्वज्ञानके उन्मुक्त द्वारसे साक्षात् भगवत्-लीलाकी अनुभूति कर रहे थे। उनको समस्त दृश्य-प्रपञ्च लीलामय ही दृष्टिगत हो रहा था।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाएँ

(श्रीरामकृष्ण रामानुजदासजी 'श्रीसंतजी महाराज')

परब्रह्म परमात्मप्रभुकी दिव्यतम लीलाएँ तो इतनी गूढ़ और अगाध हैं कि सामान्य मनुष्य उन्हें समझ ही नहीं पाता, जबकि लीलामय प्रभुके समस्त लीलावतरण प्राणिमात्रके कल्याणके लिये ही हुआ करते हैं। इन लीलावतरणोंमें जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ लीला-प्रधान होनेके कारण मानव-समुदायके लिये अनुकरणीय नहीं हैं, वहीं भगवान् श्रीरामकी लीलाएँ चरित-प्रधान होनेसे सभी मनुष्योंके लिये आदर्शमय होनेके कारण सर्वथा अनुकरणीय हैं। स्वामी श्रीवल्लभाचार्यजीने लीलाकी व्याख्या करते हुए लिखा है—

'लीला नाम विलासेच्छा'

अर्थात् लीला भगवान्‌की मौज-मस्ती है, क्रीडा है, यद्यपि उसका कोई उद्देश्य नहीं होता, परंतु यह लीला या क्रीडा किसी साधारण मनुष्यकी निरर्थक क्रीडा नहीं, बल्कि सोद्देश्यजनित है। भगवान्‌की प्रत्येक लीलाका कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य होता है। जैसे गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

'भगत हेतु अवतरहिं गोसाईं।'

भगवान् भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेके लिये तथा उनके जीवनमें सुधार लानेके लिये एवं उन्हें शिक्षोपदेश देनेके लिये ही लीला करते हैं।

इसके अनुसार सगुण-साकार भगवान् लोकके कल्याणके लिये अपनी इच्छासे लीला करते हैं। परात्पर ब्रह्मके सगुण-

साकाररूपमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका अवतरण भी लोक-कल्याणार्थ एवं जन-जनके अनुकरणीय आदर्शके प्रतीक-रूपमें हुआ है।

भगवान् श्रीरामकी सारी लीलाएँ लोकको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे हुई हैं, इसीलिये ईश्वर होनेपर भी वह अपने ऐश्वर्यको छिपाकर एक साधारण मनुष्य-जैसी लीला करते हैं। पग-पगपर लोक-व्यवहारके लीला-कार्योंमें आदर्श-मर्यादा-स्थापनहेतु सचेष्ट एवं तत्पर रहते हैं। उन्हें सदैव इस बातका ध्यान रहता है कि किसी भी कार्यमें लोक-शास्त्र-मर्यादाका कहीं उल्लंघन तो नहीं हो रहा है! प्रभुका सांसारिक अवतरण ही जब लीला है तो उनकी क्रियाएँ नाटक या लीला हैं, इसमें कहना ही क्या! भगवान् स्वयं कहते हैं—'**मनुष्यभावमापन्नः किंचित्कालं वसाम्यहम्**'—'मनुष्यभावको प्राप्तकर कुछ कालतक मैं यहीं निवास करता हूँ।' भगवान्‌के कार्योंमें अहं तथा स्वार्थ-भावना नहीं होती, इसीलिये उनकी क्रियाएँ लीला कहलाती हैं, जबकि मनुष्यमें अहं तथा स्वार्थभावना होती है, इसलिये उसकी क्रिया लीला नहीं कही जाती। आप्तकाम तथा वीतराग महापुरुषोंकी क्रियाएँ भी लीला कहलाती हैं।

भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाओंके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने कहा है कि 'हर मनुष्यका कल्याण भगवान् श्रीरामकी आदर्श लीलाओंका अनुकरण करनेसे हो सकता है। शास्त्र-मर्यादाके अनुसार आचरित होनेपर ही मनुष्यका सच्चा कल्याण होता है। जीवनमें संयम हो, सदाचार हो, सेवा हो तथा मर्यादाका पालन हो, यही भक्तिकी साधना है।' श्रीरामकी सारी लीलाएँ धर्मस्वरूप हैं। वे चरित-प्रधान मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उनके दिव्य चरितमें अपार करुणाके मङ्गलमय स्रोत सर्वत्र लहराते नजर आते हैं। शील-शक्ति और सौन्दर्यकी त्रिवेणीका संगम उनके चरितमें सर्वत्र दीखता है। अहल्या-उद्धार-लीला-प्रसंगमें गोस्वामी तुलसीदासजीने विनय-पत्रिका (१००। ४)-में भगवान् श्रीरामका अनाविल शील दर्शाया है। जैसे—

सिला पाप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय चरन छुएको पछिताउ॥

भगवान् श्रीरामके चरणरजसे अहल्याका उद्धार हो जाता है, शिला दिव्य नारी-रूपमें परिणत हो जाती है। चेतना और आनन्दकी मङ्गलमयी दृष्टिमें सृष्टिका ओर-छोर भीग जाता है। चारों तरफ हर्षका वातावरण दिखायी पड़ता है, परंतु शीलसिन्धु श्रीरामके हृदयमें शिलारूपमें नारीका चरण-स्पर्शजन्य पश्चात्ताप है। यह उनके शील एवं पावन चरितकी बहुत ऊँची भूमिका है। यहाँ उपकारजन्य आनन्दके साथ चरण-स्पर्शजन्य पश्चात्तापका सितासित-संगम है। यह उनके शीलसागरकी अनुपम झाँकी है।

गृध्रराज जटायुकी सेवासे द्रवित होकर उनको गोदमें लेना, अपनी जटासे उनके शरीरके रजको झाड़ना तथा उनके दुःखको देखकर सीता-वियोग-जैसे असह्य संतापको भी स्वयं भूल जाना और अपने हाथोंसे उनका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न करना शीलसागर श्रीरामके शीलका अन्यतम उदाहरण है। आदर्श लीलाके अधिनायक भगवान् श्रीरामने गृध्रराज जटायुके प्रति जो पितृवत् आदरभाव उपस्थापित किया है, वह लोक-व्यवहारादर्शका चूडान्त निदर्शन है, जन-जनके लिये लोकोत्तम शिक्षण है। वनगमनद्वारा उन्होंने मानवमात्रको तपस्या करनेकी, सत्कर्म करनेकी, सत्संग करनेकी शिक्षा दी है। भगवान् श्रीराम जिस समय वनमें पधारे, उस समय उनकी युवावस्था थी, जगत्-जननी माँ सीता भी युवावस्थामें प्रवेश कर चुकी थीं। भरे यौवनमें उनका वनवास हुआ था। यौवनमें ही वनवासकी आवश्यकता होती है, क्योंकि वृद्धावस्थामें इन्द्रियाँ जब स्वतः दुर्बल हो जाती हैं, तब संयम-साधना, भगवच्चिन्तन आदिमें बाधाएँ पड़ती हैं। अतः युवावस्थामें इन्द्रियोंका संयम ही सच्चा संयम कहा जाता है। शक्ति हो, सब प्रकारके भोग प्राप्त हों—फिर भी मन विषयोंमें न जाय, यही सच्चा संयम है। सेवा-साधनाद्वारा स्वयंको मुक्त करते हुए सर्वसाधारणको भी मुक्त करनेका—परमार्थ-पथमें अग्रसर करनेका युवावस्था सबसे अच्छा समय है। इसी लोक-कल्याणकी दृष्टिसे प्रभु राम लक्ष्मण एवं जनकनन्दिनीके साथ युवावस्थामें ही भोग-विरक्त होकर योगासक्त हो गये; जिसमें सुर, नर, मुनि, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व—सभीका निःश्रेयसप्रद कल्याण निहित था, सुनिश्चित था।

दशरथनन्दन सीतापति आदर्श लीलावतारी प्रभु श्रीरामकी

चाहे गुरु विश्वामित्रके साथ जानेकी अविचलित-भावसे मर्यादा-पालनकी आदर्श लीला हो, सीता-स्वयंवरमें परशुरामके समक्ष आदर्श शिष्टाचारका प्रदर्शन हो, पिताकी आज्ञाके पालनमें वनगमन-प्रसंगका आदर्श हो अथवा लोक-मर्यादाके आदर्श-संरक्षण-हेतु सीता-परित्यागकी लीला हो—ये सभी अपने-आपमें दिव्यतम लीलाएँ हैं, मानवीय मूल्योंकी स्थापनाके चूडान्त दृष्टान्त हैं। ये लीलाएँ अनुपम लोकोत्तर व्यवहारादर्शके साक्षात् अनुकरणीय सत्य-तथ्य, चिन्त्य-तत्त्व एवं महान् परमोपयोगी विश्वकल्याणकारक अलौकिक कार्य हैं, जो सदैव अनुकरणीय हैं—वरणीय हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी थोड़ी आदर्श लीलाओंद्वारा सभी साधकों तथा भक्तोंको सदाचार-साधन करनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है। सदाचारकी स्थापना प्राणिमात्रके लिये कल्याणप्रद है और इसीसे विश्वमें शान्तिकी स्थापना हो सकती है। इसी उद्देश्यसे भगवान्ने गीतामें कहा है—

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ८)

साधारणत: हमारी चेतना बहिर्मुखी होती है और यह बाहरके विषयोंमें मनमाना अनियन्त्रित-रूपसे दौड़ती रहती है। जिस प्रकार समुद्रमें गोते लगानेपर ही रत्नकी प्राप्ति की जाती है, उसी प्रकार भगवान् श्रीरामकी आदर्श-लीलाओंका विचारद्वारा मन्थन करनेपर ही सदाचारका मूल्य सुविदित होता है। सब कोई सदाचारी बनें, यही मूल प्रेरणा उनकी लीलाओंद्वारा प्राप्त होती है।

सदाचार सच्ची मानवता और भगवद्भक्तिकी आधारशिला है। भगवान् श्रीरामकी लीलामें इसीकी सच्ची शिक्षा दी गयी है। इसे समझनेके लिये शुद्ध हृदयकी आवश्यकता है। शुद्ध हृदयके निर्माणमें ईश्वर-नामके जप तथा कीर्तनका अधिक महत्त्व है, अत: सब कोई प्रेमसे प्रभुका नाम लें—

श्रीराम जय राम जय जय राम।
श्रीराम जय राम जय जय राम॥

श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी पारिजात-हरण-लीला

(श्रीजयन्तीलालजी जोशी 'शास्त्री')

श्रीद्वारकानाथ प्रभुकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। भक्तगण बाललीला, कैशोरलीला, मथुरालीला एवं द्वारकालीलाके रूपमें इन लीलाओंका विभाजन करते हैं। ये लीलाएँ हैं तो एक ही परात्पर परब्रह्मकी, किंतु अवस्था एवं स्थानभेदसे विद्वानोंने इनका विविध रूपसे वर्णन किया है।

द्वारकाधीश श्रीकृष्णने माथुरमण्डलसे सौराष्ट्र प्रदेशमें निवास करनेका संकल्प किया। एतदर्थ देवशिल्पी विश्वकर्माद्वारा समुद्रतटपर द्वारका नगरीका निर्माण करवाया और समग्र यादवों-समेत वहाँपर निवास किया। प्रभुने द्वारकापुरीमें स्वर्गसे भी श्रेष्ठ राज-वैभव प्रस्थापित किया। तबसे उनका नाम द्वारकाधीश और द्वारकानाथ हुआ। द्वारकामें पधारनेके पश्चात् प्रभुने श्रीरुक्मिणी प्रभृति आठ पटरानियों एवं भौमासुरद्वारा अपहृत सोलह हजार एक सौ राजकुमारियोंके साथ विवाह सम्पन्न करनेकी लीला की।

भगवान् श्रीकृष्ण लीला-गृहस्थ बनकर गृहस्थधर्मका यथोचित पालन करते हैं। प्रभुकी इसी गार्हस्थ्यलीलाके अन्तर्गत 'पारिजात-हरण-लीला' का भी समावेश होता है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (१०। ५९। ३८—४१)-में इस लीलाका संक्षेपमें संकेत प्राप्त होता है। किंतु श्रीहरिवंशपुराणके विष्णुपर्वमें इस लीलाका ६५ से ७६वें अध्यायतक विस्तारसे वर्णन प्राप्त होता है।

आइये, उन श्रीद्वारकाधीश प्रभुकी उस दिव्यलीलाका आस्वादन करें।

एक समय द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण मुख्य महिषी श्रीरुक्मिणीजीके व्रतोद्यापन-हेतु सपरिवार रैवतक पर्वतपर पधारे—

प्राप्तदारो महातेजा वासुदेवः प्रतापवान्।
रुक्मिण्या सहितो देव्या ययौ रैवतकं नृप॥
उपवासावसानं हि रुक्मिण्याः प्रतिपूजयन्।
तर्पयिष्यन् स्वयं विप्राञ्जगाम मधुसूदनः॥

(हरि० विष्णु० ६५। ४-५)

वहाँ द्वारकाके सभी यदुकुमार, पटरानियाँ, दास-दासियाँ एवं अन्य लोग भी सम्मिलित हुए। व्रतकी समाप्ति होनेपर प्रभुने पवित्र ब्राह्मणोंका पूजन-अर्चन, भोजन एवं

मनोवाञ्छित दानसे सत्कार किया। राज्ञी रुक्मिणीका भी विशेष आदर किया। सभी स्वजनोंसे समन्वित प्रभु श्रीकृष्ण वहाँ विराजमान थे। उस समय उनसे मिलनेके लिये देवर्षि नारदजी वहाँ पधारे। भगवान्ने नारदजीका स्वागत किया एवं शास्त्रोक्त-विधिसे पूजन किया। प्रसन्न होकर देवर्षि नारदने स्वर्गके पारिजात वृक्षका एक पुष्प दिया। प्रभुने वह पुष्प अपने समीप विराजमान देवी रुक्मिणीजीको दे दिया—

सोऽर्चितो वासुदेवेन मुनिरर्च्यतमः सताम्।
पारिजाततरोः पुष्पं ददौ कृष्णाय भारत॥
तद्वृक्षराजकुसुमं रुक्मिण्याः प्रददौ हरिः।
पार्श्वस्था सा हि कृष्णस्य भोज्या नरवराभवत्॥

(हरि० विष्णु० ६५। १४-१५)

प्रभुका संकेत पाकर देवी रुक्मिणीने वह पारिजात-पुष्प अपने केशपाशमें लगा लिया। उस देवपुष्पको धारण करनेसे देवी रुक्मिणीकी शोभा द्विगुणित हो गयी। तदनन्तर देवी रुक्मिणीजीसे श्रीनारदजी बोले—'देवि ! यह पुष्प सर्वथा तुम्हारे योग्य है। तुम्हारे सम्पर्कसे यह पुष्प भी सफल हुआ है।' इतना कहनेके पश्चात् पुष्पकी महिमाका बखान करते हुए कहने लगे—'देवि ! यह पुष्प एक वर्षतक म्लान नहीं होता और मनोवाञ्छित सुगन्ध प्रदान करता है, इच्छानुसार सर्दी और गर्मी देता है तथा मनमें जिन श्रेष्ठ रसोंको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, उन्हें भी यह पुष्प स्वयं ही झरता (प्रदान करता) रहता है, इसके सेवनसे सौभाग्य, ऐश्वर्य एवं पुत्रकी प्राप्ति होती है, धारण करनेवालेके मनपसंद रंग बदलता है, कामनानुसार स्थूल और सूक्ष्म होता है तथा रात्रिके समय दीपककी भाँति प्रकाश देता है। पुष्पके प्रभावसे क्षुधा, पिपासा, ग्लानि एवं जरावस्था भी इच्छानुसार होती है। इस पुष्पसे गीत-संगीतका आनन्द भी प्राप्त होता है। स्वर्गकी सभी देवियाँ इस पारिजात-पुष्पको धारण करती हैं। एक वर्षके पश्चात् यह पुष्प स्वयं पारिजात वृक्षके समीप चला जायगा। इस पुष्पको धारण करनेसे तुम प्रभुकी सभी रानियोंमें सुन्दर एवं श्रेष्ठ बनी रहोगी।'

नारदजीके इन वचनोंको सुनकर द्वारकाधीश प्रभुकी अन्य रानियाँ रुक्मिणीका अभिनन्दन करती हैं एवं अपना आनन्द प्रकट करती हैं।

रानी सत्यभामा इस समय अपने शिविरमें विश्राम कर रही थीं। जब उनकी दासी आकर रुक्मिणीजीको प्राप्त इस महिमायुक्त विशिष्ट पारिजात-पुष्पका वृत्तान्त उन्हें सुनाती है तो वे ईर्ष्यासे अत्यन्त क्रुद्ध हो जाती हैं एवं रुष्ट होकर कोपभवनमें जाकर विलाप करती हैं—

दन्दह्यमाना ज्वलनेन वर्धता
ईर्ष्यासमुत्थेन गतप्रभेव।
क्रोधान्विता क्रोधगृहं विविक्तं
विवेश तारेव घनं सतोयम्॥

(हरि० विष्णु० ६५। ५२)

श्रीसत्यभामा रुष्ट हो गयी हैं, यह जानकर श्रीकृष्णजी उन्हें मनानेके लिये वहाँ जाते हैं। प्रिया सत्यभामाकी स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। वह बारम्बार कोपाविष्ट एवं मूर्च्छित हो जाती हैं। तब प्रभु दासीके हाथमेंसे व्यजन लेकर स्वयं व्यजन करने लगते हैं। प्रभुके श्रीहस्तसे आती हुई पारिजात-पुष्पकी सौरभसे सत्यभामा जान जाती हैं और उठकर उपालम्भ देती हैं—'हे स्वामिन्! मैं तो आपको अपना एकमात्र समझती थी, परंतु आज यह बात मेरी समझमें आ गयी कि आपके भीतर मेरे लिये भी साधारण ही स्नेह है'—

मदीयस्त्वमिति ह्यासीन्मम नित्यं मनः प्रभो।
अद्य साधारणं स्नेहं त्वयि तावद् गतास्म्यहम्॥

(हरि० विष्णु० ६६। ४७)

श्रीद्वारकाधीशजी प्रिया सत्यभामाको अनुनय-विनय एवं माधुर्यसिक्त वचनोंसे समझाते हुए प्रेमसे मनाते हैं तथा वचन देते हैं कि यदि तुम्हारी इच्छा हो तो स्वर्गसे पारिजात वृक्ष लाकर जितने समयतक तुम चाहोगी, उतने समयतकके लिये तुम्हारे भवनके प्राङ्गणमें स्थापित कर दूँगा—

स्वर्गास्पदादानयित्वा पारिजातं द्रुमेश्वरम्।
गृहे ते स्थापयिष्यामि यावत्कालं त्वमिच्छसि॥

(हरि० विष्णु० ६७। ३२)

प्रभुके इन वचनोंसे आश्वस्त हुई श्रीसत्यभामाजी स्नान करके नूतन वस्त्रालंकार धारण करती हैं तथा प्रभुके लिये उत्तम भोजन बनाती हैं। इसके बाद श्रीकृष्ण नारदजीको ससम्मान निमन्त्रित करते हैं और उन्हें भोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करते हैं।

भोजनोपरान्त श्रीकृष्ण और सत्यभामा जब नारदजीके

सम्मुख बैठते हैं तो वार्तालापके ही प्रसंगमें नारदजी कहते हैं कि यह पारिजात-पुष्प मुझे देवराज इन्द्रने दिया था, जो मैंने आपको दे दिया है। देवमाता अदितिकी सेवासे संतुष्ट होकर उनके पति महर्षि कश्यपने अन्य दिव्य वृक्षोंसे सार ग्रहण करके यह दैवी वृक्ष निर्मित किया है। इस वृक्षके मन्दार, पारिजात एवं कोविदार—ये तीन नाम हैं।

जब नारदजीने पारिजातकी महिमा बतायी तो प्रभुने निवेदन किया कि हे ऋषिवर्य! देवराज इन्द्रके पास जाकर आप मेरी प्रार्थना सुनाइये कि वह कुछ दिनोंके लिये मेरी रानियोंके पुण्य-दान-धर्मार्थ और मेरी प्रसन्नताके लिये पारिजात वृक्ष हमें प्रदान करें। यहाँका कार्य सम्पन्न हो जानेपर वृक्षको पुनः स्वर्गमें ले जा सकेंगे—

दत्तं श्रुत्वाभिकांक्षन्ति दातुं पत्न्यो मम प्रभो॥
पुण्यार्थं दानधर्मार्थं मम प्रीत्यर्थमेव च।
आनाययद् द्वारवतीं पारिजातं महाद्रुमम्॥
दत्ते दाने पुनः स्वर्गं तरुं त्वं नेतुमर्हसि।

(हरि० विष्णु० ६८। ६—८)

श्रीकृष्णका प्रस्ताव सुनकर नारदजीने कहा—'प्रभो ! आपकी बात मैं इन्द्रके समीप अवश्य पहुँचा दूँगा, किंतु मुझे लगता है कि इन्द्र यह प्रस्ताव मानेगा नहीं, क्योंकि पूर्वकालमें भगवान् शिवजीने मेरे द्वारा यह वृक्ष मँगवाया था, परंतु इन्द्रने शिवजीकी प्रार्थना करके वह वृक्ष स्वर्गमें ही स्थापित करा लिया था। वह इन्द्रपत्नी शचीका प्रिय कीडा-वृक्ष है।'

इसपर श्रीद्वारकाधीशप्रभुने नारदजीसे कहा कि मैं तो एक समयमें इन्द्रका छोटा भाई (उपेन्द्र-वामन) था। अतः मेरा इन्द्रसे माँगनेका अधिकार बनता है। फिर भी यदि इन्द्र नहीं देते हैं तो मैं युद्ध करके लाऊँगा; क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ नहीं जाती।

तत्पश्चात् भगवान् द्वारकानाथके दूत बनकर देवर्षि नारद इन्द्रके समीप गये। इन्द्रने देवर्षिका स्वागत किया और आगमनका प्रयोजन पूछा। नारदजीने बताया कि मैं द्वारकाधीश-प्रभुका संदेश लेकर आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ। भगवान् श्रीकृष्णने आपसे प्रार्थना की है—'स्वर्गमें जो पारिजात वृक्ष है, वह कुछ दिनोंके लिये द्वारका भेज दीजिये। जिससे रानी सत्यभामाका धर्म-कार्य सम्पन्न हो एवं पृथ्वी-निवासी मनुष्य इस दिव्य वृक्षका दर्शन करके कल्याणान्वित हों'—

अयं दर्शितकल्याणो लोको लोकगणेश्वर।
पश्यन्त्वमरकल्याणं मत्प्रभावाच्च मानवाः॥

(हरि० विष्णु० ६९। ३६)

—इस प्रस्तावको सुनकर इन्द्रने कहा कि श्रीकृष्णका यह प्रस्ताव उचित नहीं है। स्वर्गकी वस्तुएँ मनुष्यलोकमें नहीं जा सकतीं। ऐसी मर्यादा है। इससे देवगण भी नाराज हो सकते हैं। जब श्रीकृष्ण सपत्नीक स्वर्गमें आयेंगे तब दिव्य वृक्षको देख सकेंगे। यदि स्वर्गकी सिद्धियाँ पृथ्वीलोकमें चली जायँगी, तो मनुष्य इष्ट-पूर्त-यज्ञ-दान आदि पुण्यकर्म क्यों करेंगे ? आप सत्यभामाके लिये स्वर्गसे वस्त्र, अलंकार, मणि, चन्दन आदि ले जाइये।

इन्द्रकी बात सुनकर नारदजीने कहा कि यदि आप पारिजात नहीं देंगे तो द्वारकाधीश आपके साथ युद्ध करके बलात् पारिजात वृक्ष ले जायँगे। इस बातसे इन्द्र क्रोधाविष्ट होकर कहते हैं—'मुनिश्रेष्ठ ! जबतक मैं संग्रामभूमिमें उपस्थित होकर चक्रपाणि श्रीकृष्णसे पराजित नहीं हो जाऊँगा, तबतक उन्हें पारिजात नहीं दूँगा'—

यावन्न संग्रामगतो जितोऽहं चक्रपाणिना।
पारिजातं न दास्यामि तावद् भो मुनिसत्तम॥

(हरि० विष्णु० ७०। ४६)

तत्पश्चात् नारदजी वापस द्वारकाधीशके पास आये और इन्द्रके साथ जो बातचीत हुई थी, उसे विस्तारसे सुना दिया। इन्द्रके निर्णयको सुनकर श्रीकृष्णने भी ऋषिके माध्यमसे ही पारिजात-हरण करनेके अपने निश्चयसे इन्द्रको अवगत करा दिया।

'श्रीकृष्ण पारिजात-हरणार्थ स्वर्गपर आक्रमण करनेके लिये कृतनिश्चय हैं'—यह जानकर इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई। वे देवगुरु बृहस्पतिजीसे मिले और स्थितिसे अवगत कराये। बृहस्पतिजीने इन्द्रके दुर्व्यहारकी निन्दा की और युद्धमें न्यायपूर्ण निष्कर्ष निकलनेका आश्वासन दिया।

बृहस्पतिजीने क्षीरसागर-तटपर तपश्चर्यामें लीन ऋषि कश्यप और माता अदितिको ये सब बातें निवेदित कीं। इस

प्रसंगसे वे दोनों बहुत व्यथित हुए। कश्यपजीने कहा कि इन्द्रने देवशर्मा ऋषिका जो अपराध किया था, उन्हींके शापका यह परिणाम है। मैं दोनोंके बीच युद्ध रोकनेका प्रयत्न करूँगा। बृहस्पतिके लौटनेपर अदिति और कश्यप दोनों भगवान् शिवकी आराधना-प्रार्थनामें लग गये—

तत्र सौम्यं महात्मानमानर्च वृषभध्वजम्।
वरार्थी कश्यपो धीमानदित्या सहितः प्रभुः॥

(हरि० विष्णु० ७२। २७)

उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिव प्रकट हुए और दोनोंको आशीर्वाद देकर बोले—'आपकी चिन्ता मैं जानता हूँ। इन्द्र-उपेन्द्र स्वाभाविक स्थितिमें आ जायँगे, श्रीकृष्ण पारिजात ले जायँगे। आप स्वर्गमें जाइये, आपके पुत्रोंका कल्याण होगा। कश्यप-अदिति शिवजीको प्रणाम करके उनके आदेशानुसार स्वर्गके प्रति प्रस्थान करते हैं।

दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्ण भी सात्यकि और प्रद्युम्नको साथ लेकर गरुडारूढ हो स्वर्गमें जा पहुँचे। वे नन्दनवनमें पधारे तो पारिजात वृक्ष स्वयं उनके पास आ गया। वे उसे गरुडपर स्थापित कर लिये। परिणामतः श्रीकृष्ण और इन्द्रके बीच घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

इस भयानक युद्धसे जल, स्थल एवं आकाशमें सभी विकम्पित हो गये। तब ब्रह्माजीके आदेशसे कश्यप और अदिति दोनोंके मध्यमें आ गये एवं युद्ध-विरामके लिये समझाने लगे। दोनोंने कश्यप-अदितिको प्रणाम किया और युद्ध बंद किया।

तत्पश्चात् सब स्वर्गमें वापस लौटे। देवी शचीने श्रीकश्यप-अदितिका पूजन किया। अदितिने श्रीकृष्णको सूचित किया कि आप पारिजात वृक्ष द्वारकामें ले जाइये एवं रानी सत्यभामाका पुण्यकव्रत समाप्त होनेपर पुनः स्वर्गमें लौटा दीजिये—

उपेन्द्र द्वारकां गच्छ पारिजातं नयस्व च।
वध्वा सम्प्रापयस्वेश पुण्यकं हृदये स्थितम्॥
पुण्यके सत्यया प्राप्ते पुनरेष त्वया तरुः।
नन्दने पुरुषश्रेष्ठ स्थाप्यः स्थाने यथोचिते॥

(हरि० विष्णु० ७५। ३८-३९)

तदनन्तर कश्यप-अदिति एवं इन्द्र-शचीको प्रणाम करके पारिजात वृक्ष लेकर जब श्रीकृष्णजी प्रस्थानके लिये तैयार होते हैं तो शची कृष्णकी सभी पत्नियोंके लिये वस्त्र, रत्न, माला तथा अलंकार आदि उपहाररूपमें प्रदान करती हैं।

प्रद्युम्न, सात्यकि और पारिजातके साथ श्रीकृष्णके द्वारकापुरी पहुँचनेपर वहाँकी सारी प्रजा प्रसन्न हो जाती है एवं पारिजातका दर्शन करके मनोवाञ्छित फल प्राप्त करती है। श्रीद्वारकाधीशने पारिजात वृक्षको रानी सत्यभामाके भवनके प्राङ्गणमें स्थापित किया। सत्यभामाने अतिशय प्रसन्नतापूर्वक भगवान्का एवं दिव्य वृक्षराजका पूजन किया। सत्यभामाजीका पुण्यकव्रत समाप्त होनेपर एक वर्षके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने पारिजात वृक्षको पुनः स्वर्गलोकमें पहुँचा दिया—

संवत्सरे ततो याते केशिहामरसत्तमः।
पारिजातं पुनः स्वर्गमानयत् सर्वभावनः॥

(हरि० विष्णु० ७६। २६)

निखिल जगन्नियन्ता श्रीद्वारकाधीशने अपनी प्रिय महिषी सत्यभामाके सम्मानके लिये जो यह दिव्य लीला की, वह असुरोंको मोहित करनेवाली एवं श्रद्धालु भक्तगणके लिये संकीर्तनीय, संस्मरणीय एवं परम कल्याणकारिणी है।

मां भजन्तु विचक्षणाः

तस्माद् देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसम्भवम्। गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः॥
निस्सङ्गो मां भजेद् विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः। रजस्तमश्चाभिजयेत् सत्त्वसंसेवया मुनिः॥

(श्रीमद्भा० ११। २५। ३३-३४)

यह मनुष्य-शरीर बहुत ही दुर्लभ है। इसी शरीरमें तत्त्वज्ञान और उसमें निष्ठारूप विज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है; इसलिये इसे पाकर बुद्धिमान् पुरुषोंको गुणोंकी आसक्ति हटाकर मेरा भजन करना चाहिये। विचारशील पुरुषोंको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे सत्त्वगुणके सेवनसे रजोगुण और तमोगुणको जीत ले, इन्द्रियोंको वशमें कर ले और मेरे स्वरूपको समझकर मेरे भजनमें लग जाय। आसक्तिको लेशमात्र भी न रहने दे।

वृन्दावनकी निकुंजलीलाका रस-रहस्य—राधा

[मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना]

(डॉ० श्रीराजेन्द्ररंजनजी चतुर्वेदी, डी० लिट्०)

वृन्दावनके नवनिकुंज सुखपुंज महलमें नित्य-निरन्तर चलनेवाली केलिलीलाका रस-रहस्य दर्शनशास्त्र और तर्कशास्त्रके विवेचनका विषय नहीं है। वेद और वेदान्त हाथ जोड़कर जिस रंग-महलके द्वार खड़े हैं, उसमें न दास्यभावका प्रवेश है और न शान्तरसका।

जिस रसके वशीभूत होकर प्रभु ऊखलसे बँध जाते हैं, मैया साँटी दिखाती है तो भयभीत हो जाते हैं और **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** का समग्र ऐश्वर्य जिस गोकुल-रसके आगे बेसुध है, नन्दबाबा और यशोदा मैयाका हृदय जिस रसका अजस्त्र-स्त्रोत है,वह अलौकिक वात्सल्यरस भी वृन्दावनकी सीमापर ही रह जाता है।

वह सख्यभाव, जिसे न प्रभुकी मर्यादाका ध्यान है, न उनके गौरवका, जो प्रभुके ऐश्वर्य और भय—दोनोंसे अनभिज्ञ है, जो हरिसे धक्का-मुक्की करता है, आँखमिचौनी खेलता है और अपने मुखका ग्रास निकालकर प्रभुके मुखमें रख देता है, जो प्रभुसे दाँव लेता है और दाँव न देनेपर खुलासा कह देता है—

'जाति-पाँति हमसैं बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैंयाँ।'

—वह सख्यरस, जिसकी माधुरीमें डूबकर प्रभुको मैया यशोदाकी टेर भी सुनायी नहीं देती, वह महामहिमामय सख्यरस वृन्दावनकी परिक्रमा ही किया करता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि शृंगार रसराज है और उसका निवास व्रजयुवतियोंके मन और नयनोंमें है। नन्दनन्दनको छोड़कर कोई दूसरा उनके कटाक्षोंके मर्मको नहीं जान सकता। कोई कहे कि श्यामसुन्दर आ रहे हैं, तो व्रजाङ्गनाएँ ऐसी पुलकित-प्रमुदित हो जाती हैं कि उनके गहने हाथोंमें ठस जाते हैं और जब यह सुध आती है कि कृष्ण मथुरासे नहीं लौटे, तो उनके आभूषण शिथिल हो जाते हैं—खिसकने लगते हैं।

गोपियोंका यह माधुर्यरस कितना भाग्यशाली है! किंतु यह रस भी वृन्दावनके घाटपर पानी भरता है और वृन्दावनकी राजधानी श्रीचक्रका बिंदु नवनिकुंज है।

वृन्दावनके नवनिकुंजमें न दिन है न रात, न नींद है न भूख। निकुंजविहारमें न एक ग्रास आरोगनेकी सुध है न एक घूँट पानी पीनेकी। भोजन-पानीकी स्थूलता महारस-विलासके आनन्दमें बाधा है—

रोम रोम तन यह सुख बिलसत भोजन भूख न प्यास।
रसिक बिहारी मगन रहत नित सहत न खटक उसास॥

उस रसविलासकी लालसामें ठाकुरको अपना प्रभाव और प्रताप भी किरकिरा लगता है—

ताहि सुहाय न ठकुरई बड़ प्रताप बिस्तार।

निकुंजलीला-रस विशुद्ध प्रेम-रस है। यह सहज स्वभाव-सिद्ध प्रेम है। उसका स्वभाव ही प्रेम है, इसलिये वहाँ प्रेमका कोई हेतु नहीं है। रूप, गुण और ऐश्वर्य आदि वहाँ बहुत छोटी बातें हैं।

इस निकुंज-लीलामें नित्य-निरन्तर अविनाभाव-सम्बन्ध सिद्ध है। श्यामा-श्याम या राधा-माधवके विलग होनेकी कल्पना तक नहीं, फिर भी ***'मिले ही रहत मानो कबहुँ मिले ना।'***

बाँहोंमें बाँहें मिलाकर युग-युगान्तरसे, कल्प-कल्पान्तरसे एक-दूसरेको निहार रहे हैं, फिर भी लगता है कि एक-दूसरेने एक-दूसरेको कभी देखा ही नहीं—

ऐसौ भ्रम होत मैं कबहू देख्यौ न री।

भावोंकी वहाँ कैसी सुकुमारता है कि—***'सांसा समुझि सुर बोलियै डोल नयन की कोर।'***

वहाँ सुकुमारताकी अत्यन्त दिव्यता है। रह:केलिकी

वह तन्मयता जिसमें श्यामसुन्दर प्रियाजीके रस-विवश हैं। प्रेम-रसपानके लिये वे लाड़लीको नाना भाँतिसे रिझाते हैं, मोरोंके साथ नाचते हैं। शृंगारकुंजमें उनके मनमें लालसा होती है कि उन्हें राधाकी वेणी गूँथनेका सौभाग्य प्राप्त हो। अतः वे अपने कंघेरूपी कोमल करोंसे राधाका केश-सँवारते हैं।

वृन्दावनके रसिक भक्तोंका तन-मन-प्राण यह नित्य-निकुंजलीला ही है। वह सौन्दर्य, जिसकी एक किरण भी मनमें आ विराजे तो सर्वत्र सौन्दर्य-ही-सौन्दर्य खिल उठता है। वह पूर्ण सौन्दर्य, जो देश और कालकी सीमामें नहीं बँधा, वह सौन्दर्य, जिसे चन्द्रमा देख ले तो लज्जित हो जाय, कामदेव उसकी झाँकी पा ले तो सुध-बुध खो बैठे।

वह शोभा जो प्रतिपल—प्रतिक्षण नवीन ही बनी रहती है और प्रतिपल नवीनता ही उसकी एक मात्र अवस्था है। श्यामा-श्याम अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यकी निधि हैं। भक्तरसिक-शेखर स्वामी श्रीहरिदासजीकी वाणी है कि—

'राग ही में रंग रह्यौ रंग के समुद्र में ए दोउ आगे।

रसका समुद्र और वहाँ भी रसकी प्यास, अनन्त प्यास। सौन्दर्य-माधुर्यके समुद्रकी लहरें ही उन श्यामा-श्यामकी लीला हैं। प्रकृति-पुरुष तो उसकी छायामात्र हैं।

रसके आत्मप्रकाश, आत्म आस्वादन अथवा रसके आत्म-परिचयका दूसरा नाम है आनन्द। श्रुति कहती है—

आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

'आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। आनन्दो ब्रह्म।'

विश्वका उपादानकारण भी आनन्द है और निमित्त-कारण भी आनन्द है। उस आनन्दसे विश्वमें नित्य नये खेल, नया निर्माण और ध्वंस होता है। आनन्द ही विश्वका प्राण-तत्त्व है। विश्व-प्रपंच वस्तुतः आनन्दका ही प्रपंच है। योगी गोरखनाथ इसे 'चिद्विलास' कहते हैं। यह रस शाश्वत है और यह रस ही ईश्वर है—**'रसो वै सः'**। रस-समुद्रकी लहरोंका नाम ही लीला है। उन लहरोंसे ही विश्व आविर्भूत और तिरोभूत होता है। परंतु रसिक भक्तोंके लिये विश्व-प्रपंचके सम्बन्धमें सोचना साध्य नहीं है, उनका साध्य तो एक मात्र श्यामा-श्यामकी नित्य-केलि है, जहाँ ऐश्वर्य रसकी किरकिरी है। जो पूर्ण सत्ता है, पूर्ण आनन्द है वही प्रेम है, रस है, वही निकुंजलीला है। दूलह-दुलहिन, बिहारी-बिहारिन, प्रिया-लाल आदि नाम रसिक भक्तोंके प्राण-आधार हैं और निकुंजलीलाके दर्शनकी प्यास ही उनका जीवन-दर्शन है—

ऐसें ही देखत रहों जनम सुफल कर मानों।
छिन न टरों पल होंहु न इत उत रहों एक ही तानों॥

भगवल्लीलाधाम द्वारकाका माहात्म्य एवं इसमें भक्तोंद्वारा लीलानुभूति

(डॉ० श्रीकमलजी पुंजाणी, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

पुराणोंमें वर्णित भारतकी सात पुण्यवती एवं मोक्ष-दायिनी नगरियों—अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काञ्ची, उज्जैन तथा द्वारकामें द्वारकाका विशेष महत्त्व है। यह सौराष्ट्र (गुजरात)-के पश्चिमी समुद्रतटपर स्थित पवित्र तीर्थ-क्षेत्र है। भगवान् श्रीकृष्णके जीवनसे सम्बन्ध होनेके कारण इस तीर्थ-क्षेत्रका महत्त्व बढ़ गया है। इसके बिना चार धामकी यात्रा अपूर्ण रहती है।

महाभारतके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णका जन्म मथुरामें कंस तथा अन्य असुरोंके संहारार्थ हुआ था। इस कार्यको पूरा करनेके बाद श्रीकृष्ण द्वारका चले गये थे। आगे चलकर यादवोंने श्रीकृष्णके नेतृत्वमें द्वारकाको 'स्वर्णनगरी' बना दिया था। इस प्रकार द्वारका भगवान् श्रीकृष्णकी कर्म-भूमि है। उनके अन्तर्धान होनेके पश्चात् प्राचीन द्वारकापुरी समुद्रमें डूब गयी, केवल द्वारकाधीशके विशाल मन्दिरको समुद्रने नहीं डुबाया। आज देश-विदेशसे अनेक लोग द्वारकाकी यात्रापर आते हैं और भगवान् द्वारकाधीशके दर्शन करते हैं। इस भगवल्लीला-क्षेत्रमें अनेक संतों एवं भक्तोंको भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलानुभूतियाँ हुई हैं। यहाँ हम दो

विशिष्ट भक्तोंकी लीलानुभूतिका निरूपण करते हैं, जिनमें एक भक्त (विझांत) द्वारकाके निकटवर्ती गाँवमें निवास करते थे और दूसरे भक्त (पीपाजी) द्वारकाके दूरवर्ती प्रदेशमें रहते थे।

(१)

भक्त विझांतद्वारा लीलानुभूति

द्वारकासे आठ-दस कोसकी दूरीपर स्थित विसावाड़ा नामक गाँवमें आजसे लगभग दो सौ वर्ष-पूर्व विझांत नामके एक राजपूत रहते थे। वे भगवान् द्वारकाधीशके अनन्य भक्त थे। पूर्वजोंसे मिली पर्याप्त जमीन-जायदादके कारण उन्हें आजीविकाकी कोई चिन्ता नहीं थी। द्वारकाकी यात्रापर आनेवाले संतों और भक्तोंको वे अपनी हवेलीमें बुला लेते थे और उनकी सेवा-शुश्रूषा करके अपनेको कृतार्थ समझते थे। इस सेवा-परायणताके कारण भगवान् द्वारकाधीश एवं उनके भक्तोंके परमसेवी विझांतको विसावाड़ा और आस-पासके लोग 'विझांत भगत' कहकर बुलाने लगे।

विझांत भगतने एक व्रत ले रखा था—वे भगवान् द्वारकाधीशके मन्दिरकी ध्वजाके दर्शनके बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते थे। प्रात:काल अपने नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके बाद वे अपनी घोड़ीपर सवार होकर द्वारकाकी ओर निकल पड़ते थे और भगवान् द्वारकाधीशकी ध्वजाके दर्शनकर घर लौट आते थे। मार्गमें इष्टदेवकी महिमाका गुणगान करते हुए दीन-दुखियोंकी सेवा-सहायता भी करते थे।

एक दिन जब विझांत भगत ध्वजाके दर्शन करके घरकी ओर लौट रहे थे, तब उन्होंने एक पगड़ीधारी वणिक्‌को झाड़ीके पीछे खाना खाते देखा।

गर्मीके दिन थे। प्याससे भगतजीका गला सूख रहा था, इसलिये उन्होंने घोड़ीको झाड़ीकी ओर घुमा लिया और वणिक्‌के निकट जाकर पूछा—'सेठजी, क्या द्वारकाकी यात्रापर निकले हैं?'

अपने पीछेसे आयी आवाजको सुनकर सेठजीने गर्दन घुमायी और सामने राजसी वस्त्रमें सुसज्जित घोड़ेपर सवार व्यक्तिको देखकर विनम्र स्वरमें उत्तर दिया—'सरकार! पोरबंदर जा रहा हूँ, रास्तेमें भूख लगी, इसलिये झाड़ीके पीछे बैठकर जलपान कर रहा हूँ। आइये, आप भी प्रसाद ग्रहण कीजिये—शुद्ध घीकी सुखड़ी और मसालेदार चिउड़ा है।

'भूख नहीं है सेठजी! बस, थोड़ा पानी पिला दें'—भगतजीने कहा।

'बिना कुछ खाये सबेरे-सबेरे पानी पियेंगे तो पाचन-क्रिया खराब हो जायगी, अत: सुखड़ीके एक-दो टुकड़े और दो-चार चम्मच चिउड़ा खा लीजिये, फिर पानी पी लीजियेगा'—सेठजीने आग्रह किया।

वणिक्‌की बात मानकर भगतजीने थोड़ा प्रसाद ग्रहण किया और फिर पानी पीकर धन्यवादके स्वरमें कहा—'मेरे साथ विसावाड़ा चलिये। भोजन और विश्रामके बाद पोरबंदर चले जाइयेगा।'

'नहीं सरकार! मुझे शामतक पोरबंदर पहुँचना है। बड़ी लड़कीके यहाँ कल सीमन्त है। चिट्ठी देरसे पहुँची, इसलिये गहने-कपड़े लेकर तुरंत घरसे निकल पड़ा'—सेठजीने स्थिति स्पष्ट की।

'मेरे विचारमें इतना जोखिम उठाकर अकेले जाना अच्छा नहीं है। आप तो जानते हैं कि यह काबाओंका मुल्क है, जिन्होंने वीर अर्जुनको भी लूट लिया था।' भगतजीने चेतावनी दी—'मेरी बात मानकर विसावाड़ा चलिये। मैं शामतक आपको पोरबंदर पहुँचा दूँगा।'

भगतजीकी बात मानकर सेठजी घोड़ीपर बैठ गये। अभी झाड़ीके बाहर ही निकले थे कि पीछेसे घोड़ोंकी टाप सुनायी दी। भगतजीने कहा—'सेठजी, डाकुओंके घोड़े इधर आ रहे हैं। आप गहनों-कपड़ोंकी गठरी मुझे देकर सामने की पगडंडीसे विसावाड़ा पहुँच जाइये और मेरी हवेलीपर ठहरिये, मैं झाड़ियोंको पार करते हुए आ रहा हूँ।'

भगतजीकी आज्ञाके अनुसार सेठजी घोड़ीसे उतर गये और पगडंडीपर दौड़ने लगे। भगतजीने झाड़ियोंके पीछेका मार्ग चुना, किंतु वे डाकुओंकी बंदूकका निशाना बनकर घोड़ीसे नीचे गिर पड़े। उन्होंने द्वारकाधीशका स्मरण किया। भगवान् द्वारकाधीश विझांत भगतके वेशमें हाथमें गठरी लिये डाकुओंके सामने खड़े हो गये।

'छीन लो इसके हाथसे गठरी।' डाकुओंके सरदारने अपने साथियोंको आदेश दिया।

ज्यों ही डाकू गठरी छीननेके लिये आगे बढ़े, विझांतके वेशमें खड़े द्वारकाधीश एकसे अनेक हो गये। प्रभुकी यह रूप-लीला देखकर डाकुओंकी आँखें चकाचौंधसे भर गयीं। वे अंधे-से होकर इधर-उधर दौड़ने लगे और अन्तमें भयभीत होकर भाग गये।

विझांत भगत प्रभुकी यह अनुग्रह-लीला देखकर विस्मित हो गये और बार-बार मस्तक झुकाकर उनके प्रति अपना नमन समर्पित करने लगे।

(२)

भक्त पीपाजीद्वारा लीलानुभूति

एक बार संत पीपाजी अपनी सहचरी सीतादेवीके साथ द्वारका पधारे। भगवान् द्वारकाधीशकी मनोरम मूर्तिके दर्शन करनेके बाद वे समुद्रतटपर गये और एक नाविकसे बोले—

'हम सोनेकी द्वारका देखना चाहते हैं। तुम जानते हो वह कहाँ है?'

'हाँ, नावमें बैठ जाइये!' नाविकने कहा।

दोनों हर्षित होकर नावमें बैठ गये। नाव जब समुद्रके मध्य पहुँची, तब संतने नाविकसे पूछा—'कठे द्वारका? (द्वारका कहाँ है?)

नाविकने पानीमें हाथ डालकर जवाब दिया—'अठे द्वारका।' (द्वारका यहाँ है।)

—ये शब्द सुनते ही भक्त दम्पती भगवान् द्वारकाधीशका स्मरण करते हुए पानीमें कूद पड़े।

अपने भक्तोंकी श्रद्धा अविचल बनाये रखनेके लिये भगवान् द्वारकाधीशने अपनी लीलासे पानीमें सोनेकी द्वारका निर्मित की। फिर रुक्मिणीजीको साथ लेकर वे भक्त दम्पतीका स्वागत करनेके लिये चल पड़े और उन्हें सम्मानपूर्वक राजमहलमें ले आये तथा अपने स्वजनों-परिजनोंका परिचय दिया। प्रभुके आतिथ्यका आनन्द लूटते हुए वे अपने घर-गृहस्थीको भी भूल गये।

एक दिन प्रभुने उन दोनोंसे पूछा—'क्या आपको अपने घरकी याद नहीं आती?'

'प्रभु! हमारा सच्चा घर तो यही है। मोह-माया और मिट्टी-पत्थरसे बने कच्चे घरको हम क्यों याद करें?' संत पीपाजीने उत्तर दिया।

'आपकी बात सही है, परंतु आप तो द्वारकाकी यात्रापर निकले हैं। यदि आप घर न लौटेंगे तो लोग समझेंगे कि आप पानीमें डूब गये हैं, इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप यथाशीघ्र घर लौट जायँ। मेरे भक्तोंके सम्बन्धमें कोई ऐसी-वैसी बातें करे, यह मुझसे सहन नहीं होता।'

'अच्छी बात है प्रभु! हम कल ही घर लौट जायँगे, परंतु लोग कैसे मानेंगे कि हमने सच्ची द्वारका देखी है?' पीपाजीने प्रश्न किया।

'इसके लिये मैं अपने शंख-चक्रकी छाप आपकी दाहिनी भुजापर अंकित कर देता हूँ।' इतना कहकर प्रभुने पीपाजीकी दाहिनी भुजापर अपने शंख-चक्रकी छाप अंकित कर दी और रुक्मिणीजीने सीतादेवीको अपनी साड़ी भेंट की।

दूसरे दिन द्वारकाधीश और रुक्मिणीजी भक्त दम्पतीको समुद्रतटतक छोड़ने गये। वे समझ न पाये कि हम किस रास्तेसे गुजरकर समुद्रतटपर पहुँचे हैं। उनके कपड़े कोरे थे, किंतु हृदय तो भगवल्लीलाकी अनुभूतिसे पूर्णतः सराबोर हो चुका था।

तस्मै नमोऽस्त्वथ सदाऽसकृदम्बिकाया नाथाय वायुतनयाभिधया स्मृताय।
यः श्रीविदेहतनयादशयानसून्वोर्लब्धानुकम्पजनमुख्य उदारसेवः॥

(जा० च० १।६)

जो श्रीविदेहकुमारी और श्रीदशरथनन्दनजीके कृपापात्रोंमें मुख्य हैं, जिनकी सेवा सकल मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली है तथा जो कैङ्कर्य-लोभसे पवन-पुत्र श्रीहनुमान्-नामसे स्मरण किये जाते हैं, उन अम्बिकापति भगवान् श्रीसदाशिवजीके लिये हमारा बारम्बार सर्वदा प्रणाम है।

भगवान्का लीलाधाम—भारत

(श्रीयज्ञनारायणजी त्रिपाठी)

पवित्रतम यह भारत देश भगवान् राम, कृष्ण और ऋषियोंकी जन्मस्थली तथा तप:स्थली रहा है। तीर्थोंकी मणिमालासे समन्वित इस देशमें काशी, वृन्दावन, गङ्गा एवं यमुना आदि सभी मुक्तिके धाम हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

—ये सभी भगवान्‌के धाम हैं। इन धामोंमें रहकर शुभकर्म करनेपर अवश्य ही मुक्तिकी प्राप्ति होती है। इसी दृष्टिसे तीर्थ-विशेष काशीके सम्बन्धमें कहा गया है कि '**काशीमरणान्मुक्तिः।**' पुरुषोत्तमभगवान् श्रीरामने लंका-विजयोपरान्त जब कुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठके निर्देशानुसार सभी तीर्थोंकी यात्राका क्रम बनाया, तब उन्होंने तीर्थोंकी महिमा बताते हुए कहा कि—'सभी तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य है। जिसे ब्रह्मा, विष्णु और नीललोहित भगवान् महादेवने मिलकर स्थापित किया था।' इसी महिमाके कारण परिजनसहित प्रभु श्रीराम वहाँ पहुँचकर सुवर्णा नदीके दोनों ओर श्रीरामेश्वर तथा श्रीकामेश्वर शिवलिङ्गोंकी स्थापना की। इस पवित्र तीर्थस्थलके नाम चारों युगोंमें परिवर्तित हुए हैं, जैसे—

धर्मारण्यं कृतयुगे त्रेतायां सत्यमन्दिरम्।
द्वापरे वेदभवनं कलौ मोहेरकं स्मृतम्॥

अर्थात् सत्ययुगमें धर्मारण्य, त्रेतामें सत्यमन्दिर, द्वापरमें वेदभवन और कलियुगमें मोहेरक नाम प्रसिद्ध हुआ।

ईश्वरकी लीलामयी दृष्टिसे देखनेपर यह सार्वभौम देश बड़ा ही गौरवशाली रहा है। यहाँ त्रेतामें श्रीरामने और द्वापरमें श्रीकृष्णने अवतरित होकर भिन्न-भिन्न लीलाएँ करते हुए दुष्टोंका संहार किया। योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मोहग्रस्त अर्जुनसे इसी आशयको स्पष्ट करते हुए कहा कि—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

(गीता ४। ७)

पुत्र-शोक-संतप्त धृतराष्ट्रका समस्त क्रोध भीमपर और गांधारीका पाँचों पाण्डवोंपर था। महाभारतका युद्ध समाप्त होनेपर जब विजयी पाण्डवोंने धृतराष्ट्रको प्रणाम किया, तब धृतराष्ट्रने खिन्न-मनसे सभीको गले लगाया, लेकिन भीमको गले लगाते समय उनकी नीयत बदल गयी और वे भीमको अपनी भुजाओंमें दबाकर उसके शरीरको तोड़ देना चाहते थे। परंतु मधुसूदन धृतराष्ट्रका आन्तरिक विचार ताड़ गये और भीमको झटका देकर दूर कर दिया तथा उसके स्थानपर भीमकी एक लौह-प्रतिमा धृतराष्ट्रकी बाँहोंमें दे दी, जिसे उन्होंने भीम समझकर दोनों हाथोंसे तोड़ डाला। जब गांधारी पाँचों पाण्डवोंको शाप देनेके लिये उद्यत हुईं तो निखिल ब्रह्माण्डनायक माधवने लीलामयी कृपा करके सम्पूर्ण क्रोध अपने ऊपर केन्द्रित करा लिया और शापको इस प्रकार सहर्ष स्वीकार किया कि 'यादव-समुदाय आपसमें लड़कर ही नष्ट होगा।' गांधारीके इस शापको सुनकर सभी काँपने लगे। यद्यपि प्रभुपर शापका किंचित्-मात्र भी प्रभाव पड़ना असम्भव है, तथापि भक्तोंकी रक्षाके लिये उन्होंने लीला-संवरणके समय शापको निमित्त बनाया था। तारणहार प्रभु कृष्णने मुसकानके साथ उस शापको अङ्गीकार करते हुए कहा—'शुभे! मैं जानता हूँ ऐसा होनेवाला है, वृष्णिकुलका संहारक मेरे अतिरिक्त और कौन हो सकता है?'

ऐसे लीलाधारीकी पावन तीर्थमयी भूमिपर कौन जन्म लेना नहीं चाहता है। फ्रांसके एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान् जब इस देशमें आये तो यहाँके हिन्दूधर्मसे इतने प्रभावित हुए कि आजीवन यहीं रहकर इस धर्मके समक्ष नतमस्तक होकर भगवान्‌की भक्तिमें लग गये। एक और अंग्रेज इंजीनियर भारतमें बाँध बनाने-हेतु आये थे, परंतु वे भी प्रभु-लीलासे प्रभावित होकर संन्यासी बन गये। उन्होंने तो यहाँतक कहा कि—'आह! मैं भारत-भूमिपर क्यों नहीं पैदा हुआ, क्यों मैंने इतना समय व्यर्थ गँवाया?'

साधारण मानवकी तो बात ही क्या? इस अखण्ड ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुकी लीला-भूमिपर देवलोकवासी देवता भी जन्म ग्रहण करनेकी कामना करते हैं—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

(विष्णुपुराण २।३।२४)

अतः इस पवित्रतम तीर्थ-भूमिमें जन्म लेकर ईश्वरकी भक्तिके अतिरिक्त दूसरे कार्योंमें एक भी क्षण नष्ट करना उचित नहीं है, क्योंकि मनुष्य-शरीर तो बड़े भाग्यसे मिलता है। प्रभु रामके अनन्य भक्त श्रीतुलसीदासजीने सही कहा है—

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥

(रा० च० मा० ७। ४३। ७)

भगवान् श्रीकृष्णकी पावन लीलास्थलीका महत्त्व

[श्रीवृंदावन एक पलक लौं रहिये]

(डॉ० श्रीविद्यानिवासजी मिश्र)

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलास्थली श्रीवृन्दावन-धाम मुझे बहुत लुभाता है। बार-बार जानेको मन करता है, कुछ गिनी-चुनी जगहें बची हैं जहाँ कुंज हैं, बालू हैं और घनश्यामके प्रतियोगी मोर हैं तथा बालूपर झरी हुई पत्तियों आदिको साफ करना ही कुंजविहारीकी सेवा है, कभी-कभी व्रजभाषाके पदोंके गायनकी गूँज है। श्रीवृन्दावन-विहारीकी महिमा अपूर्व है, पास बुलाते हैं और अन्तर्हित हो जाते हैं, खिझाते हैं और फिर अपनेसे दूर कर देते हैं, दूर करके एक और हूक भर देते हैं, ऐसे 'निपट निर्मोही'-से क्या वास्ता रखें। ऐसे ही वे बार-बार करते हैं, बार-बार तोड़ते हैं और सब कुछ छीनते रहते हैं। नाते-रिश्ते, मोह-छोह, मद-मात्सर्य, काम, क्रोध, लोभ, राग-द्वेष—सब छीकोंसे उतारकर ढरका देते हैं, उसमेंसे केवल ऊपरकी मलाई उतार लेते हैं। एकदम निःस्व कर देते हैं। इसके बाद कोई चारा नहीं रहता सिवाय उनके पास जानेके। परंतु जाना क्या इतना आसान है? कितनी तरहके संशयों और नकली आकर्षणोंके आवरण डाल देते हैं जिससे श्रीवृन्दावनकी राह दीखती ही नहीं। जो लोग श्रीवृन्दावनमें विराजते हैं, बस जाते हैं, नित्य भजन गाते हैं, सुनते हैं, श्रीबाँकेविहारीजीकी झाँकी प्राप्त करते हैं, उनको भी कभी-कभी राह भूल जाती है। वे पीठोंमें, गद्दियोंमें, आश्रमोंमें हरि-इच्छासे उलझ जाते हैं। श्रीवृन्दावनविहारीने उन्हें इन्हीं खिलौनोंमें अटका दिया है। उनके श्रीवृन्दावन-प्रवेशका श्लोक मैं प्रतिदिन कई बार पढ़ता हूँ कि—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

एक ओर अभिनयकुशल नटकी तरह नाना प्रकारकी भूमिकाएँ ग्रहण करते हुए कितने विलग दीखते हैं, दूसरी ओर वरकी तरह—दूल्हेकी तरह कितने पास, कितने अपने दीखते हैं। क्या अद्भुत मोहिनी शोभा है, मानो मोर-मुकुट सिरपर विश्वके सातों रंगोंमें उनके स्निग्ध-श्यामल केशपाश ढक गये हों, कानोंमें कनेरके फूल खुँसे हुए, सुनहले-पीले उत्तरीय और अधोवस्त्रकी दमकमें नीलकमल-सी देहकी आभा खिलती हुई, गलेमें वनमाला पड़ी हुई, बाँसकी बाँसुरीके छिद्रोंको अधरामृतका लाभ मिलता हुआ, ग्वाल-बालोंके साथ श्रीवृन्दावनमें उनका प्रवेश होता है,जैसे रंगमंचपर नेपथ्यसे बड़े नाटकके नायकका प्रवेश हो। पर यह नायक अद्भुत है, श्रीवृन्दावनमें विहरणके लिये नंगे पैर आता है। उसके और श्रीवृन्दावनकी भूमिके बीचमें कोई अन्तराल नहीं है, बिना उस पैरके पड़े भूमि तृणांकुरोंसे पुलकित कैसे होगी, बिना तृणांकुरोंके गउओंकी तृप्ति कैसे होगी, बिना गउओंकी तृप्तिके गोपाल कैसे होंगे और बिना गोपाल हुए गोपीजनवल्लभ कैसे होंगे? बाँसुरी बजाकर जादू फेर देंगे—श्रीवृन्दावनपर और श्रीवृन्दावनवासियोंपर तथा फिर स्वयं गीत बनकर छा जायँगे कण्ठोंमें।

श्रीवृन्दावनमें वे क्यों बार-बार लुका-छिपी करते हैं, उनसे श्रीराधाका रूप सँभलता नहीं इसलिये या उनसे सहज जीवन जीनेवालेका सहज दुरावहीन प्यार, जिसमें कोई अधिकार नहीं, बस अधिकारहीनताका दर्द है; हमारे-उनके बीच परस्पर क्या हो सकता है, वे ठहरे परब्रह्म हम ठहरीं मूढमति ग्वालिनें। अपने भीतर भरा नहीं जाता। इतना रस-सम्भार सँभालना परब्रह्मके बूतेका नहीं। श्रीवृन्दावन धरतीपर है सही, पर धरतीसे कुछ अलग है। वह धरती होनेका भाव है, उसी प्रकार जैसे श्रीराधा शरीरमात्र नहीं। वह भी है। वह परम प्रीतमकी प्रियाजू होनेका भाव है। ऐसे वृन्दावनमें यात्रा उस भावको ग्रहण करनेवाले मनसे होती है।

अपनी हालकी श्रीवृन्दावन-यात्राकी बात करूँ। बड़ी कड़ी धूप थी, अभी आँखोंके सामने हरे-भरे बाग और ताल तो नहीं आ रहे थे, पर धूपकी बिलैया जरूर लोटने लगी थी। ठीक पाँच बजे 'गभीरा' में बिल्वमंगल-गोष्ठी शुरू

हुई। उद्घाटनके बाद दो पद हवेली-संगीतकी शैलीमें गाये गये। पहला पद छित स्वामीका था—

'ए हो ब्रजराज अंचरा पसारि मंग्गौ ब्रज माहिं बसिवो।'

दूसरा था सूरदासका—

श्रीवृंदावन एक पलक लौं रहिये।

दूसरा पद बहुतं मार्मिक लगा। मैं तो अधिक देर रुक न सका, श्रीबाँकेविहारीके दर्शनके लिये चला गया। ग्रीष्ममें फूलोंसे उनका शृंगार होता है, फिर अक्षयतृतीया थी, बेला और गुलाबका फूल-बँगला बना था। पूरा मन्दिर महँ-महँ महँक रहा था। ठाकुर इन फूलोंके बीच बाँके खड़े थे। मेरी आँखोंके सामने स्वामी हरिदासका प्रसंग झूम गया। जीव गोस्वामीने उनसे कहा—सबके पास ठाकुर हैं आपके पास नहीं। कहा जाता है स्वामी हरिदास ठाकुर-ठकुरानीकी स्तुति करने लगे और दोनों उनकी दोनों हथेलियोंपर आ विराजे, थिरकने लगे, साथ ही स्वामीजी भी थिरकने लगे।

इतनेमें दोनों विग्रह मिलकर एक हो गये। वही बाँकेविहारी हुए। शिवके अर्धनारीश्वर-रूपमें तो हर-गौरी अलग-अलग बायें-दायें रहते हैं, पर बाँकेविहारीकी छवि ऐसी है कि कभी उसमेंसे राधा झाँकती दिखायी पड़ती हैं और कभी माधव। इस मूर्तिमें सही अर्थमें *'राधा भेल मधाई'*, -की ही झाँकी है अन्यथा अकेले माधवमें ऐसा सौभाग्य-गुण कहाँ होता।

शाम कुछ गहरी हुई, वृन्दावनसे चला और पदकी पंक्तियोंकी फिर सुधि आयी। श्रीवृन्दावनमें एक पल रहनेको मिल जाय तो कितना बड़ा भाग्य है। एक पल कम नहीं होता, पर पल-जैसा पल हो, पलक-जैसी पलक हो, झपे नहीं, एकटक वृन्दावनकी तरफ उत्सुक हो जाय, उदग्र हो जाय, इसी बेलामें तो श्यामसुन्दर लौटते हैं। गायें आगे, बछड़े गायोंसे भी आगे और उनके खुरसे मथी जाती धूलिसे धूसरित श्रमसीकरसे झलकित श्यामसुन्दर पीछे आ रहे हैं। दिनभरकी उपासी आँखोंको 'रूपपारनौ' (पारण) करायेंगे, व्रत सफल होगा—*'बावरी वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि निहारति गोरो।'* राधा किसी कोनेमें अधछिपी उस रूपपर अटकी हुई हैं, एक पल श्यामसुन्दर दिख जायँ; फिर क्या श्यामसुन्दर दीखते भी हैं और नहीं भी दीखते हैं। कभी भी पूरे नहीं दीखते। आँखें जहाँ फँसती हैं, फँसी रह जाती हैं। एकान्तमें तो और नहीं देख पातीं आँखें, क्योंकि तब रोम-रोम आँखें बन जाते हैं, आँखें कान बन जाती हैं तथा कान बन जाते हैं मुरलीकी तान। उन्हें देखते-देखते युग एक पल हो जाते हैं, उन्हें जोहते-जोहते पल युग बन जाते हैं। एक पल श्रीवृन्दावनमें रहना बड़ा सुख है और उससे बड़ा दु:ख भी। परंतु इस दु:खमें एक आस्वाद है कि दु:खी होनेका मन करता है। काश, हम भी वैसे दु:खी हो सकते कि दु:खके अतिशयमें श्रीकृष्णको पानेकी इच्छा तज देते, श्रीकृष्णके गोलोकधाम जानेकी इच्छा छोड़ देते, बस यही मनाते रहते, यह चाह यह दारुण चाह बनी रहे।चाह रहती है तो सभी नर्म गान बन जाते हैं, पूरा जीवन श्रीकृष्णके हाथों लुटनेके लिये दही बन जाता है।

कई बार ऐसा भाव उठा है, फिर कुछ बाधाएँ घिर आयी हैं। बुद्धि कहती है कि श्रीवृन्दावन अब कहाँ, गोविन्द अब कहाँ, श्रीवृन्दावनमें वंशीकी तान अब कहाँ, कदम्ब-तमाल-करीलके सघन कुंज अब कहाँ? बड़े शानदार भवन हैं, वे ही आश्रम हैं, हर स्थानपर अधिकारकी लड़ाई है—वही वंशीवादन है, देवदूत होनेकी भयंकर प्रतिस्पर्धा है—वही परम पुरुषार्थ की चाह है। यहाँ एक पलभी रहना कितना असह्य लगता है। कभी-कभी कोई उत्तर नहीं मिलता। स्व० सत्यनारायण कविरत्नका विलाप याद आता है कि 'अब ब्रज ब्रज नहीं रहा, वह अब यात्रा नहीं रही, विचरण नहीं रहा, वह अब गद्दीका चिपकाव हो गया है, गद्दीके वैभवका स्थायीभाव हो गया है।'

दूसरी ओर श्रीवृन्दावनके साथ जुड़ी जनभावना कहती है—यह सब झूठ, लाला अभी भी यहीं हैं, लाली ही श्रीवृन्दावनकी धरती बन गयी है, लाला इस धरतीको छोड़कर जायँगे कहाँ? अक्रूरके साथ जो गये वे विष्णुके वैभवशाली चतुर्भुज-रूप थे। वह किशोर चपल बालक तो श्रीवृन्दावनमें ही रह गया। उसे श्रीवृन्दावनके कण-कणमें देखनेकी कोशिश करो।

मुझे श्रीवृन्दावनसे लौटते समय बराबर श्रीकृष्णके ये चाहक, श्रीराधाके ये चरणचंचरीक याद आते हैं और उस समयका एक-एक पल श्रीवृन्दावनकी रज बनकर रससे उमड़ जाता है। पर हाय रे प्रपंच और हाय रे लालाकी छलनाके ऐसे पल, जो ओसकी तरह ढुलक जाते हैं काली डामरकी सड़कपर; फिर तो लगता है कि श्रीवृन्दावनमें एक पलक लौं भी रहना हुआ नहीं।

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

प्रभो! तुम्हारी लीला-कथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओं—भक्त कवियोंने उसका गान किया है, वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही श्रवणमात्रसे परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गान करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं।

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क **'भगवल्लीला-अङ्क'** पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। पिछले कई वर्षोंसे सुविज्ञ जनोंका यह आग्रह था कि भगवत्-लीलासे सम्बन्धित साहित्य 'कल्याण'के विशेषाङ्क-रूपमें प्रकाशित किया जाय। मदनमोहन व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी असीम अनुकम्पासे इस वर्ष यह सुअवसर प्राप्त हुआ।

भगवान्‌के परम दिव्य नाम, स्वरूप, गुण और लीला-चरित इतने मधुर हैं कि उनके श्रवण-चिन्तन और मननसे व्यक्तिका मन स्वाभाविक रूपसे प्रभुमें आकृष्ट हो जाता है। इसलिये हमारे आर्षग्रन्थोंके वाङ्मय—साहित्यमें भगवान्‌के लीला-चरित्रोंका ही मुख्यरूपसे वर्णन हुआ है। यहाँ एक प्रश्न उठता है कि भगवान् और भगवान्‌की लीलामें परस्पर भेद है क्या? पर वास्तवमें ऐसा नहीं है। जैसे समुद्रके जल एवं उसके तरंगमें कोई भेद नहीं होता दोनों एक हैं और अभिन्न हैं; वैसे ही प्रभु और उनकी लीला भी परस्पर अभिन्न हैं। लीलाविहारी श्रीश्यामसुन्दर सर्वथा रसमय हैं, उनकी कोटि-कोटि कन्दर्प-कमनीय मनोहर-मूर्ति भावुक भक्तोंके लिये जैसी मनमोहिनी है, वैसी ही उनकी लीलाएँ भी मनमोहिनी हैं। अर्थात् भगवान् सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य हैं तो भगवान्‌की लीलाएँ भी सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप और नित्य हैं। इसीलिये बड़े-बड़े योगीन्द्र-मुनीन्द्र अमलात्मा सिद्ध जन भी प्रभुके मधुर-मनोहर लीला-चरित और सगुण-साकार-स्वरूप-माधुरीमें मोहित हो जाते हैं तथा उनके लीला-चरित-गुणोंका चिन्तन करने लगते हैं। भगवान् शंकराचार्यने लिखा—

'मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा तं भजन्ते'

अर्थात् जिनकी इस भवाटवीसे मुक्ति हो गयी—ऐसे मुक्तजन भी लीलापूर्वक देह धारणकर भगवान्‌के लीला-चरितका गुण-गान किया करते हैं। इसीलिये आप्तकाम परम निष्काम, आत्माराम श्रीशुकदेवजी महाराजने नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त होते हुए भी महासंहिताका अध्ययन किया और श्रीमद्भागवतके रूपमें भगवान्‌के सगुण-साकार-स्वरूपके लीलाओंका अभिव्यञ्जन भी किया। यह बात सनकादि ऋषियोंके लिये भी कही जाती है।

जब शुद्ध ब्रह्म अपनी अचिन्त्य लीलाशक्तिसे कोटि-काम-कमनीय मनोहर सगुण-साकार-मूर्तिमें प्रादुर्भूत होते हैं, उस समय तत्त्वज्ञको भी उनका वह दिव्य दर्शन निर्विशेष ब्रह्म-दर्शनकी अपेक्षा अधिक आनन्दकी अनुभूति कराता है। जिस प्रकार सूर्यको दूरबीन आदि यन्त्रोंके द्वारा देखनेपर उसमें जो विचित्रता प्रतीत होती है, वह केवल नेत्रोंसे देखनेपर प्रतीत नहीं होती, उसी प्रकार लीला-शक्तिसे उपहित सगुण ब्रह्मदर्शनमें जो आनन्दानुभव होता है, वह शुद्ध-बुद्ध परमेश्वरके साक्षात्कारमें भी नहीं होता। इसी कारण सगुण-साकार सच्चिदानन्द भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन होनेपर तत्त्वज्ञ-शिरोमणि विदेहराज जनकने कहा था—

सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

महाराज जनकके उस बरबस ब्रह्मसुख-त्याग और रामदर्शनानुरागमें क्या कारण था? केवल यही कि अबतक वे शुद्ध परब्रह्म-रूप सूर्यको अपने नेत्रोंसे ही देखते थे, किंतु इस समय वे उसकी लीलाशक्तिरूप दूरबीन-यन्त्रसे उपहित स्वरूपका दर्शन कर रहे थे। केवल नेत्रसे दीखनेवाले आदित्यनारायणकी अपेक्षा दूरवीक्षणसे युक्त आदित्य-दर्शनमें विशेषता है।

वस्तुतः तत्त्वज्ञ केवल निवृत्तिक अन्तःकरणसे वैसी मधुरताका अनुभव नहीं कर सकते जैसी कि लीलाशक्तिके

योगसे आविर्भूत हुए भगवान्‌के सगुण-साकार-स्वरूपका साक्षात्कार करनेपर होता है।

इसीसे अमलात्मा तत्त्वज्ञ पुरुषोंको भक्तियोगके द्वारा अपने सौन्दर्य-माधुर्यका रसास्वादन करानेके लिये ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण होते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भगवान्‌के अवतारका एक मुख्य प्रयोजन अमलात्मा परमहंसोंके लिये भक्तियोगका विधान करना भी है। इस प्रकार प्रभु—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

—के अनुसार साधुजनोंकी रक्षाके लिये, दुष्टोंके विनाशके लिये तथा धर्म-संस्थापनके लिये तो अवतार ग्रहण करते ही हैं, इसके साथ ही इनके अवतरित होनेका एक प्रयोजन यह भी है कि वे जिज्ञासु-साधकोंको भी अपना मधुरतम भक्तियोग प्रदानकर अनुगृहीत करें।

कुछ विज्ञजनोंका यह भी मत है कि भगवान् यद्यपि आप्तकाम, पूर्णकाम, परम निष्काम, आत्माराम हैं, अतएव उनके भीतर किसी प्रकारकी कामनाका होना तो सम्भव ही नहीं, फिर भी वे अपने आनन्द-विलासके लिये लीला करते हैं, जिसके फलस्वरूप भक्तोंकी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भगवत्-लीलासे अभिव्यक्त उल्लसित आनन्द प्रेमी भक्तोंको परम प्रफुल्लित करता है। परमात्मप्रभु अपने आनन्दस्वरूपका विस्तार करनेके लिये अनेक स्वरूपोंमें प्रकट होते हैं—'**एकोऽहं बहु स्याम्।**' श्रीकृष्णावतारके बाल-लीलाके संदर्भमें बालकृष्ण प्रभु मणिमय स्तम्भमें अपना सुन्दर प्रतिबिम्ब देखकर अत्यन्त आह्लादित होते हैं। उस प्रतिबिम्बको माखन देनेके लिये उद्यत होते हैं, माखन हाथसे गिर पड़ता है, तब रोने भी लगते हैं। यशोदा मैया इस लीलाको देखकर अपार आनन्दित होती हैं। इस प्रकारकी प्रभु-लीलाएँ अनन्त हैं—

'हरि अनंत हरि कथा अनंता'।

प्रस्तुत अङ्कमें आनन्दकन्द ब्रह्माण्डनायक परमात्मप्रभुके विभिन्न स्वरूपोंका, उनके लौकिक एवं अलौकिक गुणोंका, श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीलाओंके साथ-साथ पञ्चदेवोंके विभिन्न अवतारोंकी परम मनोहर लीलाओं—लीला-रहस्यों तथा उन अवतारोंके ऐकान्तिक भक्तों, सेवकों, उपासकों एवं मित्रभावान्वित तथा शत्रुभावान्वित लीला-सहचरोंके विभिन्न चरित्रोंका यथास्थान चित्रण करते हुए प्रभु-लीलाका दर्शन, साथ ही लीला-रहस्योंका उद्घाटन और लीला-कथाके प्रत्येक पक्षपर पठनीय, विचार-प्रेरक एवं अनुष्ठेय सामग्रीका समायोजन करनेका प्रयास किया गया है। जिससे सर्वसाधारणको परमात्मप्रभुकी लीलाओंका सम्यक् दर्शन-चिन्तन एवं मनन हो सके तथा संसारके लोगोंमें एकाग्रता, अनन्यता और सद्वृत्तियोंका उदय भी हो।

'**भगवल्लीला-अङ्क**' के लिये लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, उसे हम कभी भूल नहीं सकते। इस वर्ष हमने लेखक महानुभावोंसे सामान्य लेख न भेजकर विशेष लेखोंको भेजनेका अनुरोध किया था। हमें इस बातकी प्रसन्नता है कि इस बार कुछ विशिष्ट सामग्री भी प्राप्त हुई। यथासाध्य 'विशेषाङ्क' में उनके प्रकाशनका भी प्रयास किया गया। परंतु स्थानाभावके कारण सम्पूर्ण लेखोंको यथास्थितिमें प्रकाशित करना कथमपि सम्भव नहीं था। इस कारण कुछ लेखोंको संक्षिप्त भी करना पड़ा तथा कुछ लेख प्रकाशित नहीं किये जा सके, जिसके लिये हमें अत्यन्त खेद है। यद्यपि बचे हुए लेखोंमेंसे कुछ लेखोंको आगे साधारण अङ्कोंमें भी यथासाध्य प्रकाशित करनेका प्रयास करेंगे, फिर भी जिनके लेख प्रकाशित नहीं हो सके, उन लेखक महानुभावोंसे हम करबद्ध क्षमा-प्रार्थना करते हैं, कृपया हमारी विवशताको ध्यानमें रखकर अन्यथा न समझें तथा 'कल्याण' पर अपनी कृपामयी दृष्टि बनाये रखें। उन लेखक महानुभावोंके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं जिन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर भगवान्‌की लीलाओंसे सम्बन्धित सामग्री तैयार करके यहाँ प्रेषित की है।

इस वर्ष '**भगवल्लीला-अङ्क**' के सामग्रीकी अधिकताके कारण इस अङ्कके साथ दो मासके '**परिशिष्टाङ्क**' निकाले जा रहे हैं। जिसमें 'फरवरी' मासका एक परिशिष्टाङ्क तो विशेषाङ्कके साथ ही समायोजित है तथा 'मार्च' मासका दूसरा परिशिष्टाङ्क भी साथ ही प्रेषित किया जा रहा है।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, साधक-भक्तों, आदरणीय विद्वान् लेखक महानुभावोंके चरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होंने '**विशेषाङ्क**' की पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। भगवान्‌की लीला-चरित्रों एवं भक्ति-भावनाके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं, क्योंकि उन्हींके

भक्तिभावपूर्ण एवं उच्च-विचारपूर्ण लेखोंसे 'कल्याण' को सदा शक्ति-स्रोत प्राप्त होता रहता है।

हम अपने विभागके तथा प्रेसके उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेह-भरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपने त्रुटियों तथा व्यवहार-दोषके लिये सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'**भगवल्लीला-अङ्क**' के सम्पादनमें जिन भक्तों, साधकों, उपासकों, संतोंसे और विद्वान् लेखकोंसे हमें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते।

सर्वप्रथम मैं सर्वभारती 'काशिराज-न्यास' के अध्यक्ष महाराज काशिराज डॉ० श्रीविभूतिनारायणसिंहजीके प्रति अपना आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने भारतवर्षमें परम्परासे सम्पन्न होनेवाली रामलीलाओं तथा भारतसे बाहर विदेशोंमें होनेवाली रामलीलाओंसे सम्बन्धित लेख 'विशेषाङ्क'-के लिये भिजवानेका कष्ट किया। तदनन्तर मैं वाराणसीके समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्रीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जो निःस्वार्थ-भावसे 'कल्याण' को निरन्तर अपनी सेवाएँ समर्पित करते रहते हैं। 'गोधन'के सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयलके भी हम आभारी हैं, जिन्होंने इस 'विशेषाङ्क' के लिये कई विशिष्ट महानुभावोंसे सामग्री एकत्र करके भेजनेका कष्ट किया तथा अपने पूज्य पिता श्रीरामशरणदासजीके संग्रहालयसे कई दुर्लभ सामग्रियोंको उपलब्ध कराया।

इस अङ्कके सम्पादनमें अपने सम्पादकीय विभागके वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन, संशोधन एवं चित्र-निर्माण आदिमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहयोग मिला है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्का कार्य है, अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं। इस बार '**भगवल्लीला-अङ्क**' के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत आनन्दकन्द परमात्मप्रभुकी मधुर-मनोहर लीलाओंका चिन्तन-मनन एवं स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है, जिसके फलस्वरूप भगवत्कृपासे विशेष आनन्दकी अनुभूति प्राप्त हुई। हमें आशा है, इस **विशेषाङ्क**के पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी इस पवित्र लीला-कथा-रसपानका सुअवसर प्राप्त होगा तथा वे भक्ति-भाव-समन्वित आनन्दका अनुभव करेंगे।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए श्रीमद्भागवतकी कुछ पंक्तियाँ निवेदन करते हैं, जिन्हें श्रीशुकदेवजी महाराजने राजा परीक्षित्को लीला-कथाओंके निष्कर्षरूपमें सुनाया था। इसे पाठकोंको ध्यानपूर्वक पढ़कर आत्मसात् करनेका प्रयास अवश्य करना चाहिये—

हे कुरुश्रेष्ठ! विश्व-विधाता भगवान् नारायण ही समस्त प्राणियों और शक्तियोंके आश्रय हैं। जो कुछ मैंने संक्षेपमें कहा है, वह सब उन्हींकी लीला-कथा है। भगवान्की लीलाओंका पूर्ण वर्णन तो स्वयं ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते। [अतः] जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार जाना चाहते हैं अथवा जो लोग अनेक प्रकारके दुःख-दावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्की लीला-कथारूप रसके सेवनके अतिरिक्त और कोई साधन; कोई नौका नहीं है। ये केवल लीला-रसायनका सेवन करके ही अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं—

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातु-
र्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः
कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ॥
संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२। ४। ३९-४०)

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र

(दिसम्बर १९९७)

कोड		मूल्य		डाकखर्च
श्रीमद्भगवद्गीता				
	गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)			
1	बृहदाकार	८०.००	■	१९.००
2	,, ,, ग्रन्थाकार	४०.००	■	९.००
3	,, ,, साधारण संस्करण	३०.००	■	८.००
457	,, ,, अँग्रेजी अनुवाद	३५.००	■	८.००
800	,, ,, तमिल	५०.००	■	१३.००
	गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार-स्वामी श्रीरामसुखदासजी)			
5	बृहदाकार	१००.००	■	२२.००
6	,, ,, ग्रन्थाकार	६०.००	■	१५.००
7	,, ,, मराठी अनुवाद	७०.००	■	१०.००
467	,, ,, गुजराती अनुवाद	७५.००	■	१५.००
458	,, ,, अँग्रेजी अनुवाद	४५.००	■	८.००
763	,, ,, बँगला अनुवाद	७०.००	■	१६.००
788	,, ,, **परिशिष्ट**-(७वाँ अध्याय)	३.००	■	१.००
8	**गीता-दर्पण**—(स्वामी रामसुखदासजी)	२५.००	■	५.००
504	,, ,, (मराठी अनुवाद) सजिल्द	२५.००	■	५.००
556	,, ,, (बँगला अनुवाद) सजिल्द	३५.००	■	५.००
468	,, ,, (गुजराती अनुवाद) सजिल्द	२५.००	■	५.००
784	**ज्ञानेश्वरी गुढ़ार्थ दीपिका**	१००.००	■	१५.००
748	**ज्ञानेश्वरी मूल गुटका**	२०.००	■	४.००
10	**गीता-शांकर-भाष्य**—	४०.००	■	६.००
581	**गीता-रामानुज-भाष्य**—	३५.००	■	५.००
11	**गीता-चिन्तन**—(श्रीहनुमानप्रसादजीपोद्दार)	२०.००	■	३.००
	गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका			
17	,, सचित्र, सजिल्द	१२.००	■	४.००
12	,, (गुजराती)	२०.००	■	४.००
13	,, (बँगला)	१५.००	■	४.००
14	,, (मराठी)	२०.००	■	४.००
726	,, (कन्नड़)	१८.००	■	५.००
772	,, (तेलगू)	१५.००	■	३.००
	गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित,			
16	,, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें	१५.००	■	३.००
15	,, (मराठी अनुवाद)	२०.००	■	४.००
18	,, भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप	९.००	■	२.००
771	,, ,, ,, (तेलगू)	९.००	■	३.००
502	,, मोटे अक्षर, सजिल्द	१३.००	■	३.००
718	,, तात्पर्यके साथ (कन्नड़)	८.००	■	२.००
743	,, ,, ,, (तमिल)	१३.००	■	३.००
815	,, श्लोकार्थ सहित(उड़िया)	१३.००	■	२.००
19	**गीता**—केवल भाषा	६.००	■	१.००
750	,, पाकेट साइज	३.००	■	१.००
663	,, केवल भाषा (तेलगू)	५.००	■	१.००
795	,, ,, ,, (तमिल)	५.००	■	१.००
700	**गीता छोटी साइज मूल**	१.००	■	१.००
20	,, भाषा-टीका पाकेट साइज	४.००	■	१.००
633	,, ,, (सजिल्द)	७.००	■	२.००
455	,, ,, (अँग्रेजी)	४.००	■	१.००
534	,, ,, (सजिल्द)	७.००	■	१.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
496	**गीता**—भाषा-टीका पाकेट साइज (बँगला)	४.००	■	१.००
714	,, ,, (असमिया)	५.००	■	२.००
21	**श्रीपञ्चरत्नगीता**—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष	१०.००	■	२.००
22	**गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली	५.००	■	२.००
538	,, ,, ,, ,, सजिल्द	६.००	■	४.००
23	**गीता**—मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	२.००	■	१.००
661	,, ,, पाकेट साइज (कन्नड़)	४.००	■	१.००
662	,, ,, ,, ,, (तेलगू)	३.००	■	१.००
793	,, ,, ,, ,, (तमिल)	४.००	■	२.००
739	,, ,, ,, ,, (मलयालम)	३.००	■	१.००
541	,, ,, ,, ,, (उड़िया)	२.००	■	१.००
488	**नित्यस्तुतिः**—गीता मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	४.००	■	१.००
24	**गीता**—मूल(माचिस आकार)	२.००	■	१.००
566	**गीता**—ताबीजी एक पत्रेमें सम्पूर्ण गीता	०.१५	■	१.००
	(कम-से-कम ५०० प्रति एक साथ भेजी जा सकती है।)			
288	**गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन**—	२.००	▲	१.००
289	**गीता-निबन्धावली**—	२.५०	▲	१.००
297	**गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप**—	०.७५	▲	१.००
	गीता-माधुर्य—स्वामी रामसुखदासजीद्वारा			
388	,, ,, (हिन्दी)	८.००	▲	१.००
389	,, ,, (तमिल)	१०.००	■	२.००
390	,, ,, (कन्नड़)	४.५०	▲	२.००
391	,, ,, (मराठी)	८.००	▲	१.००
392	,, ,, (गुजराती)	५.००	▲	१.००
393	,, ,, (उर्दू)	८.००	▲	२.००
394	,, ,, (नेपाली)	५.००	▲	२.००
395	,, ,, (बँगला)	६.००	▲	१.००
624	,, ,, (असमिया)	६.००	▲	१.००
754	,, ,, (उड़िया)	६.००	▲	१.००
487	,, ,, (अँग्रेजी)	८.००	▲	१.००
679	,, ,, (संस्कृत)	६.००	▲	२.००
470	**गीता-रोमन गीता मूल, श्लोक एवं अँग्रेजी अनुवाद**	१०.००	■	२.००
503	**गीता दैनन्दिनी (1998)**— पुस्तकाकार-प्लास्टिक कवर	२५.००	■	४.००
615	,, ,, पाकेट साइज ,,	१२.००	■	३.००
506	,, ,, पाकेट साइज (साधारण)	१०.००	■	३.००
464	**गीता-ज्ञान-प्रवेशिका-**	१०.००	■	२.००
508	**गीता सुधा तरंगिनी**-गीताका पद्यानुवाद	४.००	■	१.००
रामायण				
	श्रीरामचरितमानस-बृहदाकार, मोटा टाइप, सजिल्द			
80	,, ,, आकर्षक आवरण, राजसंस्करण	१८०.००	■	१९.००
81	,, ,, सटीक, मोटा टाइप, आकर्षक आवरण	९५.००	■	१०.००
697	,, ,, साधारण	७५.००	■	१०.००
82	,, ,, मझला साइज, सजिल्द	४५.००	■	५.००
456	,, ,, अँग्रेजी अनुवाद-सहित	७०.००	■	९.००
786	,, ,, अँग्रेजी (मझला साइज)	५०.००	■	६.००
83	,, ,, मूलपाठ, मोटे अक्षरोंमें, सजिल्द	५०.००	■	६.००
84	,, ,, मूल, मझला साइज	२५.००	■	४.००

- ■ **कम से कम रु० ५०० की पुस्तकें एक साथ लेने पर ▲ चिह्न वाली पुस्तकोंपर ३०% एवं ■ चिह्नवाली पुस्तकों पर १५ % डिस्काउन्ट दिया जाता है। १५०० रु० की मूल्यसे अधिककी पुस्तकें एक साथ चलान करनेपर सामान्य पैकिंग खर्च नहीं लिया जाता तथा रेलभाड़ा बाद दिया जाता है।**
- ■ **जिन पुस्तकोंका मूल्य अंकित नहीं है वे अभी उपलब्ध नहीं है। बादमें मिल सकती हैं।**
- ■ **पुस्तकोंके मूल्योंमें परिवर्तन होनेपर पुस्तकपर छपा मूल्य ही देय होगा।**
- ■ **पुस्तकें डाकसे मँगवानेपर ५% पैकिंग खर्च, डाकखर्च तथा १० रु० प्रति पैकेट रजिस्ट्री खर्च अतिरिक्त देय है।**
- ■ **पूरी जानकारी हेतु सूचीपत्र मुफ्त मँगायें। विदेशोंमें निर्यातके लिए मूल्यका अलग सूचीपत्र उपलब्ध है।**
- ■ **जो पुस्तकें अन्य भाषाओंमें छपी हैं उनका विवरण भाषा क्रममें भी दिया गया है।**

कोड		मूल्य	डाकखर्च
85	श्रीरामचरितमानस मूल, गुटका	१७.००	२.००
790	,, ,, श्रीरामचरितमानस केवल भाषा	५५.००	८.००
799	,, ,, गुजराती ग्रन्थाकार	८५.००	९.००
785	,, ,, गुजराती (मझला)	४५.००	५.००
	श्रीरामचरितमानस-अलग-अलग कांड		
94	,, ,, बालकाण्ड-सटीक	१२.००	२.००
95	,, ,, अयोध्याकाण्ड ,,	११.००	२.००
98	,, ,, सुन्दरकाण्ड ,,	३.००	१.००
101	,, ,, लंकाकाण्ड ,,	६.००	२.००
102	,, ,, उत्तरकाण्ड ,,	६.००	२.००
141	अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड सटीक	६.००	२.००
99	,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, गुटका	१.५०	१.००
100	,, ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, मोटा टाइप	३.००	१.००
	मानसपीयूष-		
86	टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड)		
75	**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**—सटीक,		
76	दो खण्डोंमें सेट	१५०.००	१६.००
77	,, ,, केवल भाषा	१००.००	१०.००
583	,, ,, (मूलमात्रम्)	६५.००	११.००
78	,, ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम्	१०.००	३.००
452			
453	,, ,, (अँग्रेजी अनुवादसहित सेट तीनों खण्डोंमें)	२५०.००	२५.००
454			
74	**अध्यात्मरामायण**—सटीक, सजिल्द	४०.००	५.००
223	**मूल रामायण**	१.००	१.००
	अन्य तुलसीकृत साहित्य		
105	**विनयपत्रिका**—सरल भावार्थसहित	१७.००	२.००
106	**गीतावली**— ,, ,, ,,	१७.००	२.००
107	**दोहावली**— ,, ,, ,,	८.००	२.००
108	**कवितावली**— ,, ,, ,,	९.००	२.००
109	**रामाज्ञाप्रश्न**— ,, ,, ,,	४.००	१.००
110	**श्रीकृष्णगीतावली**— ,, ,, ,,	३.००	१.००
111	**जानकीमंगल**— ,, ,, ,,	२.००	१.००
112	**हनुमानबाहुक**— ,, ,, ,,	१.५०	१.००
113	**पार्वतीमंगल**— ,, ,, ,,	२.००	१.००
114	**वैराग्यसंदीपनी**— ,, ,, ,,	१.००	१.००
115	**बरवै रामायण**— ,, ,, ,,	१.००	१.००
	सूर साहित्य		
555	**श्रीकृष्ण माधुरी**	१२.००	३.००
61	**सूर विनय पत्रिका**	१२.००	३.००
62	**श्रीकृष्ण बाल माधुरी**	१३.००	३.००
735	**सूर राम चरितावली**	११.००	३.००
547	**विरह पदावली**	१०.००	३.००
	पुराण, उपनिषद् आदि		
	श्रीमद्भागवत-सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका		
28	भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	९०.००	९.००
25	**शुकसुधासागर** बृहदाकार, बड़े टाइपोंमें ,,	२०० ००	२५.००
26	**श्रीमद्भागवत-महापुराण**—सटीक—		
27	दो खण्डोंमें सेट	१६०.००	२०.००
564,565	,, ,, ,, अँग्रेजी सेट	१५०.००	२०.००
29	,, ,, ,, मूल मोटा टाइप		७.००
124	,, ,, ,, मूल मझला	३५.००	६.००
	श्रीप्रेम-सुधासागर—श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धका		
30	भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	३०.००	५.००
31	**भागवत एकादश स्कन्ध**—सचित्र, सजिल्द	१६.००	३.००
	महाभारत—हिन्दी टीका-सहित, सजिल्द, सचित्र		
728	[छः खण्डोमें] सेट	७२०.००	६५.००
38	**महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण**—हिन्दी टीका	१००.००	११.००
637	**जैमिनीय अश्वमेध पर्व**	५०.००	७.००

कोड		मूल्य	डाकखर्च
	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र,		
39,511	सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें)	१५०.००	१७.००
44	,, **पद्मपुराण**-सचित्र, सजिल्द	८५.००	८.००
613	,, **शिवपुराण**-बड़ा टाइप ,,	७०.००	८.००
789	,, **शिवपुराण**-मोटा टाइप	८०.००	९.००
539	,, **मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क**	७५.००	९.००
46	,, **श्रीमद्देवीभागवत**-केवल भाषा	७०.००	७.००
48	**श्रीविष्णुपुराण**-सानुवाद, सचित्र, सजिल्द	५०.००	६.००
640	**नारद-विष्णु-पुराणाङ्क**	८०.००	६.००
279	**संक्षिप्त स्कन्दपुराण**-सचित्र, सजिल्द	१००.००	११.००
631	**सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण**	७५.००	८.००
517	**गर्गसंहिता**-सचित्र, सजिल्द	५५.००	७.००
47	**पातञ्जलयोग-प्रदीप**-पातञ्जलयोग-सूत्रोंका वर्णन	६०.००	७.००
135	**पातञ्जलयोगदर्शन**-	७.००	१.००
582	**छान्दोग्योपनिषद्**-सानुवाद शंकर भाष्य	५०.००	७.००
577	**बृहदारण्यकोपनिषद्**- ,, ,,	७०.००	१०.००
66	**ईशादि नौ उपनिषद्**-अन्वय-हिन्दी व्याख्या	३०.००	५.००
67	**ईशावास्योपनिषद्**-सानुवाद, शांकरभाष्य	२.५०	१.००
68	**केनोपनिषद्**- ,, ,,	७.००	१.००
578	**कठोपनिषद्**- ,, ,,	८.००	१.००
69	**माण्डूक्योपनिषद्**- ,, ,,	१५.००	३.००
513	**मुण्डकोपनिषद्**- ,, ,,	६.००	१.००
70	**प्रश्नोपनिषद्**- ,, ,,	६.००	१.००
71	**तैत्तिरीयोपनिषद्**- ,, ,,	१५.००	१.००
72	**ऐतरेयोपनिषद्**- ,, ,,	५.००	१.००
73	**श्वेताश्वतरोपनिषद्**- ,, ,,	१३.००	२.००
65	**वेदान्त-दर्शन**-हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	२५.००	४.००
698	**मार्क्सवाद और रामराज्य** स्वामी करपात्रीजी	५०.००	८.००
639	**श्रीनारायणीयम्**-सानुवाद	२५.००	४.००
201	**मनुस्मृति दूसरा अध्याय सानुवाद**-		
	भक्त चरित्र		
40	**भक्तचरिताङ्क**-सचित्र, सजिल्द	८०.००	९.००
51	**श्रीतुकाराम-चरित**-जीवनी और उपदेश	२२.००	२.००
53	**भागवतरत्न प्रह्लाद**-	११.००	२.००
123	**चैतन्य-चरितावली**-सम्पूर्ण एक साथ	७०.००	१०.००
751	**देवर्षि नारद**	८.००	३.००
167	**भक्त भारती**-		
168	**भक्त नरसिंह मेहता**-	७.००	१.००
169	**भक्त बालक**-गोविन्द-मोहन आदिकी गाथा	३.००	१.००
685	,, ,, (तेलगू)	४.००	१.००
170	**भक्त नारी**-मीरा, शबरी आदिकी गाथा	३.००	१.००
171	**भक्त पञ्चरत्न**-रघुनाथ-दामोदर आदिकी	३.५०	१.००
682	,, ,, (तेलगू)	५.००	१.००
172	**आदर्श भक्त**-शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा	५.००	१.००
687	,, ,, (तेलगू)	५.००	५.००
173	**भक्त सप्तरत्न**-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा	३.००	१.००
174	**भक्त चन्द्रिका**-सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा	४.००	१.००
175	**भक्त-कुसुम**-जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा	४.००	१.००
176	**प्रेमी भक्त**-बिल्वमंगल, जयदेव आदि पाँच	४.००	१.००
177	**प्राचीन भक्त**-मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि	५.००	१.००
178	**भक्त सरोज**-गङ्गाधरदास, श्रीधर आदि	३.५०	१.००
179	**भक्त सुमन**-नामदेव, राँका-बाँका आदि भक्तगाथा	५.००	१.००
180	**भक्त सौरभ**-व्यासदास, प्रयागदास आदि	५.००	१.००
181	**भक्त सुधाकर**-रामचन्द्र, लाखा आदि भक्तगाथा	५.००	१.००
182	**भक्त महिलारत्न**-रानी रत्नावती, हरदेवी आदि	५.००	१.००
183	**भक्त दिवाकर**-सुव्रत, वैश्वानर आदि आठ भक्तगाथा	३.५०	१.००
184	**भक्त रत्नाकर**-माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	३.५०	१.००
185	**भक्तराज हनुमान्**-हनुमान्जीका जीवनचरित्र	३.००	१.००
608	,, ,, (तमिल)	५.००	२.००
767	,, ,, तेलगू	३.००	१.००
186	**सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र**-	२.५०	१.००

*** जय श्रीरामके चित्र कम-से-कम २५०/१०० प्रति ही भेजे जा सकते हैं। फुटकर भेजनेमें चित्रोंके खराब होनेकी सम्भावना है।**

कोड	मूल्य		डाकखर्च
187 प्रेमी भक्त उद्धव-	२.५०	■	१.००
642 ,, ,, (तमिल)	४.५०	■	१.००
686 ,, ,, (तेलगू)	३.००	■	१.००
188 महात्मा विदुर-	२.५०	■	१.००
189 भक्तराज ध्रुव-	२.५०	■	१.००
292 नवधा भक्ति-भरतजीमें नवधा भक्ति-सहित	३.००	▲	१.००
385 नारदभक्तिसूत्र-सानुवाद	१.००	▲	१.००
330 ,, ,, (बँगला)	२.००	▲	१.००
499 ,, ,, (तमिल)	१.००	▲	१.००
121 एकनाथ-चरित्र-	१०.००	■	२.००
परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन			
683 तत्त्वचिन्तामणि (सभी खण्ड एक साथ)	६०.००	■	१०.००
814 साधन कल्पतरु	५०.००	■	१०.००
527 प्रेमयोगका तत्त्व-(हिन्दी)	९.००	■	२.००
242 महत्त्वपूर्ण शिक्षा-	९.००	■	३.००
521 प्रेमयोगका तत्त्व-(अँग्रेजी अनुवाद)	६.००	▲	२.००
528 ज्ञानयोगका तत्त्व-(हिन्दी)	८.००	▲	२.००
520 ,, ,, (अँग्रेजी अनुवाद)	८.००	▲	२.००
266 कर्मयोगका तत्त्व-(भाग-१)	६.००	▲	१.००
267 ,, ,, (भाग-२)	६.००	▲	१.००
303 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय- (भ०यो०त०भाग १)	६.००	▲	१.००
298 भगवान्के स्वभावका रहस्य-(भ०यो०त०भाग २)	५.००	▲	१.००
243 परम साधन-भाग-१	६.००	▲	२.००
244 ,, ,, भाग-२	५.००		२.००
245 आत्मोद्धारके साधन-भाग-१	७.००	▲	२.००
335 अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति-(आ० सा० भाग-२)	६.००	▲	२.००
579 अमूल्य समयका सदुपयोग-	४.००	▲	१.००
666 अमूल्य समयका सदुपयोग- (तेलगू)	५.००	▲	१.००
246 मनुष्यका परम कर्तव्य-भाग-१	६.००	▲	२.००
247 ,, ,, भाग-२	६.००	▲	२.००
611 इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति-	५.००	▲	१.००
588 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति-	६.००	▲	१.००
248 कल्याणप्राप्तिके उपाय-तत्त्वचिन्तामणि भाग-१	८.००	▲	२.००
275 ,, ,, ,, ,, (बँगला)	८.००	▲	२.००
249 शीघ्र कल्याणके सोपान- त० चि० २/१	७.००	▲	२.००
250 ईश्वर और संसार- ,, ,, २/२	७.००	▲	२.००
253 धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि- ,, ,, ३/१	५.००	▲	२.००
519 अमूल्य शिक्षा- ,, ,, ३/२	५.००	▲	१.००
251 अमूल्य वचन- ,, ,, ४/१	६.००	▲	२.००
252 भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा- ,, ,, ४/२	६.००	▲	२.००
254 व्यवहारमें परमार्थकी कला- ,, ,, ५/१	६.००	▲	२.००
255 श्रद्धा-विश्वास और प्रेम- ,, ,, ५/२	७.००	▲	२.००
258 तत्त्वचिन्तामणि- ,, ,, ६/१	५.००	▲	२.००
257 परमानन्दकी खेती- ,, ,, ६/२	५.००	▲	२.००
260 समता अमृत और विषमता विष- ,, ,, ७/१	६.००	▲	२.००
259 भक्ति-भक्त-भगवान्- ,, ,, ७/२	६.००	▲	२.००
256 आत्मोद्धारके सरल उपाय-	६.००	▲	२.००
261 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान-	२.००	▲	१.००
262 रामायणके कुछ आदर्श पात्र-	५.००	▲	१.००
768 ,, ,, (तेलगू)	५.००	▲	१.००
263 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र-	४.००	▲	१.००
720 ,, ,, (कन्नड़)	५.००	▲	१.००
766 ,, ,, (तेलगू)	४.००	▲	१.००
264 मनुष्य-जीवनकी सफलता-भाग-१	५.००	▲	२.००
265 ,, ,, ,, भाग-२	५.००	▲	२.००
268 परमशान्तिका मार्ग-भाग-१	६.००	▲	२.००
269 ,, ,, ,, भाग-२	६.००	▲	२.००
543 परमार्थ सूत्र संग्रह	५.००	▲	१.००
769 साधन नवनीत	५.००	▲	१.००
599 हमारा आश्चर्य-	५.००	▲	१.००
272 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा-	५.००	▲	१.००
273 नल-दमयन्ती-	२.००	▲	१.००
645 ,, ,, (तमिल)	५.००	▲	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
274 महत्त्वपूर्ण चेतावनी-	३.००	▲	१.००
276 परमार्थ-पत्रावली-बँगला, प्रथम भाग	३.५०	▲	१.००
277 उद्धार कैसे हो?-५१ पत्रोंका संग्रह	४.००	▲	१.००
278 सच्ची सलाह-८० पत्रोंका संग्रह	५.००	▲	१.००
280 साधनोपयोगी पत्र-७२ पत्रोंका संग्रह	४.००	▲	१.००
281 शिक्षाप्रद पत्र-७० पत्रोंका संग्रह	६.००	▲	२.००
681 रहस्यमय प्रवचन	५.००	▲	२.००
282 पारमार्थिक पत्र-९१ पत्रोंका संग्रह	६.००	▲	२.००
284 अध्यात्म-विषयक पत्र-	४.००	▲	१.००
283 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ-	३.५०	▲	१.००
480 ,, ,, (अँग्रेजी)	४.००	▲	१.००
680 उपदेशप्रद कहानियाँ	५.००	▲	२.००
320 वास्तविक त्याग-	४.००	▲	१.००
285 आदर्श भ्रातृप्रेम-	३.००	▲	१.००
286 बालशिक्षा-	२.००	▲	१.००
287 बालकोंके कर्तव्य-	३.००	▲	१.००
290 आदर्श नारी सुशीला-	२.००	▲	१.००
312 ,, ,, ,, (बँगला)	२.००	▲	१.००
665 ,, ,, ,, (तेलगू)	३.००	▲	१.००
644 ,, ,, ,, (तमिल)	२.००	▲	१.००
291 आदर्श देवियाँ-	१.२५	▲	१.००
293 सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-	१.००	▲	१.००
294 संत-महिमा-	१.००	▲	१.००
295 सत्संगकी कुछ सार बातें-(हिन्दी)	१.००	▲	१.००
296 ,, ,, ,, (बँगला)	०.५०	▲	१.००
466 ,, ,, ,, (तमिल)	१.००	▲	१.००
678 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	▲	१.००
300 नारीधर्म-	१.५०	▲	१.००
301 भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म-	१.००	▲	१.००
310 सावित्री और सत्यवान-(हिन्दी)	१.५०	▲	१.००
609 ,, ,, ,, (तमिल)	१.५०	▲	१.००
664 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.५०	▲	१.००
717 सावित्री-सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला (कन्नड़)	३.००	▲	१.००
299 श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश-ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप	२.००	▲	१.००
304 गीता पढ़नेके लाभ-	०.५०	▲	१.००
703 ,, ,, ,, (असमिया)	.५०	▲	१.००
536 गीता पढ़नेके लाभ और सत्यकी शरणसे मुक्ति- (तमिल)	२.५०	▲	१.००
305 गीताका तात्त्विक विवेचन एवं प्रभाव-	१.२५	▲	१.००
309 भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय- (कल्याण प्राप्तिकी कई युक्तियाँ)	१.५०	▲	१.००
311 वैराग्य, परलोक और पुनर्जन्म-	१.००	▲	१.००
317 अवतारका सिद्धान्त-	०.५०	▲	१.००
306 भगवान् क्या हैं?-	१.००	▲	१.००
307 भगवान्की दया-	१.००	▲	१.००
308 सामयिक चेतावनी-	.५०	▲	१.००
313 सत्यकी शरणसे मुक्ति-	०.५०	▲	१.००
672 ,, ,, (तेलगू)	१.००	▲	१.००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति और गीता पढ़नेसे लाभ (कन्नड़)	२.००	▲	१.००
314 व्यापार-सुधारकी आवश्यकता	०.५०	▲	१.००
623 धर्मके नामपर पाप -	०.२५	▲	१.००
315 चेतावनी-	०.५०	▲	१.००
316 ईश्वर-साक्षात्कार-नाम-जप सर्वोपरि साधन है-	०.५०	▲	१.००
318 ईश्वर दयालु और न्यायकारी है-	०.५०	▲	१.००
270 भगवान्का हेतुरहित सौहार्द-	०.५०	▲	१.००
271 भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो?-	०.५०	▲	१.००
319 हमारा कर्तव्य-	०.५०	▲	१.००
321 त्यागसे भगवत्प्राप्ति-(गजलगीतासहित)	०.५०	▲	१.००
326 प्रेमका सच्चा स्वरूप-	०.५०	▲	१.००
329 शोक-नाशके उपाय-	०.५०	▲	१.००
322 महात्मा किसे कहते हैं ?-			
324 श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव			

कोड	मूल्य		डाकखर्च
328 चतु:श्लोकी भागवत-	०.५०	▲	१.००
परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल प्रकाशन			
050 पदरत्नाकर-	३५.००	■	५.००
049 श्रीराधा-माधव-चिन्तन-	४०.००	■	६.००
058 अमृत-कण-	१४.००	■	३.००
332 ईश्वरकी सत्ता और महत्ता-	१२.००	■	३.००
333 सुख-शान्तिका मार्ग-	११.००	■	२.००
343 मधुर-	११.००	■	२.००
056 मानव-जीवनका लक्ष्य-	९.००	■	२.००
331 सुखी बननेके उपाय-	९.००	■	२.००
334 व्यवहार और परमार्थ-	१०.००	■	२.००
514 दु:खमें भगवत्कृपा-	९.००	■	२.००
386 सत्संग-सुधा-	९.००	■	२.००
342 संतवाणी-ढाई हजार अनमोल बोल	१०.००	■	२.००
347 तुलसीदल-	१०.००	■	२.००
339 सत्संगके बिखरे मोती-	९.००	■	२.००
349 भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति-	१२.००	■	३.००
350 साधकोंका सहारा-	११.००	■	३.००
351 भगवच्चर्चा भाग-५	१५.००	■	३.००
352 पूर्ण समर्पण-	१५.००	■	२.००
354 आनन्दका स्वरूप-	८.५०	■	१.००
355 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१०.००	■	१.००
356 शान्ति कैसे मिले ?-(लो०प० सुधार भाग-४)	१०.००	■	२.००
357 दु:ख क्यों होते हैं ?-	१०.००	■	२.००
387 प्रेम-सत्संग-सुधा-माला-	९.००	■	१.००
348 नैवेद्य-	९.००	■	२.००
337 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श-	७.००	▲	१.००
336 नारीशिक्षा-	७.००	▲	१.००
340 श्रीरामचिन्तन-	८.००	▲	२.००
338 श्रीभगवन्नाम-चिन्तन-	८.००	▲	२.००
345 भवरोगकी रामबाण दवा-	७.००	▲	१.००
346 सुखी बनो-	६.००	▲	१.००
341 प्रेमदर्शन-	८.००	▲	२.००
353 लोक-परलोकका सुधार-(कामके पत्र भाग-१	८.००	▲	२.००
358 कल्याण-कुंज- (क० कुं० भाग-१)	६.००	▲	१.००
359 भगवान्‌की पूजाके पुष्प (,, ,, भाग-२)	६.००	▲	१.००
360 भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (,, ,, भाग-३)	७.००	▲	२.००
361 मानव-कल्याणके साधन-(,, ,, भाग-४)	१०.००	■	२.००
362 दिव्य सुखकी सरिता- (,, ,, भाग-५)	५.००	▲	१.००
363 सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ-(,, भाग-६)	५.००	▲	१.००
364 परमार्थकी मन्दाकिनी- (,, ,, भाग-७)	४.००	▲	१.००
365 गोसेवाके चमत्कार-(तमिल)	३.५०	▲	१.००
366 मानव-धर्म-	५.००	▲	१.००
367 दैनिक कल्याण-सूत्र-	४.००	▲	२.००
368 प्रार्थना-इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह	२.५०	▲	१.००
777 प्रार्थना पीयूष	२.००	▲	१.००
369 गोपीप्रेम-	२.००	▲	१.००
370 श्रीभगवन्नाम-	१.००	▲	१.००
373 कल्याणकारी आचरण-	१.००	▲	१.००
374 साधन-पथ-सचित्र	३.००	▲	१.००
375 वर्तमान शिक्षा-	२.००	▲	१.००
376 स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी-	२.५०	▲	१.००
377 मनको वश करनेके कुछ उपाय-	१.००	▲	१.००
378 आनन्दकी लहरें	१.५०	▲	१.००
379 गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य-	२.००	▲	१.००
380 ब्रह्मचर्य-	२.००	▲	१.००
381 दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य-	१.००	▲	१.००
382 सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	१.५०	▲	१.००
344 उपनिषदोंके चौदह रत्न-	४.००	▲	१.००
371 राधा माधव रस सुधा (षोडशगीत) सटीक	१.५०	▲	१.००
383 भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा-	१.००	▲	१.००
384 विवाहमें दहेज	१.००	▲	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन			
465 साधन सुधा सिन्धु	७०.००	■	९.००
400 कल्याण-पथ-	७.००	▲	२.००
605 जित देखूँ तित तू—	७.००	▲	२.००
406 भगवत्प्राप्ति सहज है	५.००	▲	२.००
535 सुन्दर समाजका निर्माण	८.००	▲	२.००
401 मानसमें नाम-वन्दना-	७.००	▲	१.००
403 जीवनका कर्तव्य-	८.००	▲	१.००
436 कल्याणकारी प्रवचन-(हिन्दी)	४.००	▲	१.००
404 ,, ,, ,, (गुजराती)	४.००	▲	१.००
816 ,, ,, ,, (बंगला)	३.००	▲	१.००
405 नित्ययोगकी प्राप्ति-	६.००	▲	१.००
407 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता-	४.००	▲	१.००
408 भगवान्‌से अपनापन-	३.००	▲	१.००
409 वास्तविक सुख-	५.००	▲	१.००
411 साधन और साध्य-	४.५०	▲	१.००
412 तात्त्विक प्रवचन-(हिन्दी)	४.५०	▲	१.००
413 ,, ,, (गुजराती)	४.००	▲	१.००
414 तत्त्वज्ञान कैसे हो ?-	५.००	▲	१.००
410 जीवनोपयोगी प्रवचन	४.००	▲	१.००
822 अमृत बिन्दु	४.००	▲	१.००
415 किसानोंके लिये शिक्षा-	१.००	▲	१.००
416 जीवनका सत्य-	३.००	▲	१.००
417 भगवन्नाम-	३.००	▲	१.००
418 साधकोंके प्रति-	४.००	▲	१.००
419 सत्संगकी विलक्षणता-	२.००	▲	१.००
545 जीवनोपयोगी कल्याण मार्ग	२.००	▲	१.००
420 मातृशक्तिका घोर अपमान-	२.००	▲	१.००
421 जिन खोजा तिन पाइयाँ-	४.५०	▲	१.००
422 कर्मरहस्य- (हिन्दी)	२.५०	▲	१.००
423 ,, (तमिल)	३.००	▲	१.००
424 वासुदेवः सर्वम्-	३.००	▲	१.००
425 अच्छे बनो-	३.००	▲	१.००
426 सत्संगका प्रसाद-	४.००	▲	१.००
431 स्वाधीन कैसे बनें-	१.००	▲	१.००
702 यह विकास है या विनाश जरा सोचिये	१.००	▲	१.००
652 हम कहाँ जा रहे हैं ? विचार करें	०.५०	▲	१.००
589 भगवान् और उनकी भक्ति-	४.००	▲	१.००
603 गृहस्थोंके लिये-	१.००	▲	१.००
617 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम-	३.००	▲	१.००
625 ,, ,, (बँगला)	३.००	▲	१.००
758 ,, ,, (तेलगू)	३.००	▲	१.००
796 ,, ,, ,, (उड़िया)	२.००	▲	१.००
427 गृहस्थमें कैसे रहें ?- (हिन्दी)	४.००	▲	१.००
428 ,, ,, ,, (बँगला)	२.५०	▲	१.००
429 ,, ,, ,, (मराठी)	५.००	▲	१.००
128 ,, ,, ,, (कन्नड़)	२.७५	▲	१.००
430 ,, ,, ,, (उड़िया)	४.००	▲	१.००
472 ,, ,, ,, (अँग्रेजी)	३.५०	▲	१.००
553 ,, ,, ,, (तमिल)	८.००	▲	१.००
733 ,, ,, ,, (तेलगू)	६.००	▲	२.००
432 एकै साधे सब सधै-	३.००	▲	१.००
655 ,, ,, ,, (तमिल)	५.००	▲	२.००
761 ,, ,, ,, (तेलगू)	५.००	▲	२.००
607 सबका कल्याण कैसे हो ? -(तमिल)	२.००	▲	१.००
433 सहज साधना-	३.००	▲	१.००
434 शरणागति- (हिन्दी)	३.००	▲	१.००
568 ,, ,, (तमिल)	४.००	▲	१.००
757 ,, ,, (उड़िया)	३.००	▲	१.००
759 ,, ,, (तेलगू)	३.००	▲	१.००
435 आवश्यक शिक्षा-	२.००	▲	१.००
730 संकल्प पत्र	२.००	▲	१.००
515 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन-	१.०७	▲	१.००
606 ,, ,, (तमिल)	२.००	▲	१.००
770 अमरताकी ओर	४.००	▲	२.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
773 भक्तके उद्गार	०.५०	▲	१.००
775 सत्संगके अमृत कण	०.५०	▲	१.००
580 गायकी महत्ता और उसकी आवश्यकता	०.५०	▲	१.००
438 दुर्गतिसे बचो-(हिन्दी)	१.००	▲	१.००
449 ,, ,, (बँगला) (गुरुतत्त्व-सहित)	२.००	▲	१.००
439 महापापसे बचो (हिन्दी)	१.००	▲	१.००
451 ,, ,, (बँगला)	१.००	▲	१.००
549 ,, ,, (उर्दू)	१.२५	▲	१.००
731 ,, ,, (तेलगू)	१.५०	▲	१.००
440 सच्चा गुरु कौन ?-	१.००	▲	१.००
781 अलौकिक प्रेम	०.५०	▲	१.००
442 संतानका कर्तव्य-(हिन्दी)	०.५०	▲	१.००
443 ,, ,, (बँगला)	१.००	▲	१.००
797 ,, ,, (उड़िया)	१.००	▲	१.००
591 ,, ,, (तमिल)	३.००	▲	१.००
444 नित्य-स्तुतिः-	१.००	▲	१.००
729 सार संग्रह	०.५०	▲	१.००
445 हम ईश्वरको क्यों मानें ? (हिन्दी)	१.००	▲	१.००
450 ,, ,, ,, ,, (बँगला)	१.५०	▲	१.००
554 ,, ,, ,, ,, (नेपाली)	०.२५	▲	१.००
446 आहार-शुद्धि- (हिन्दी)	०.५०	▲	१.००
632 सब जग ईश्वररूप है	४.००	▲	१.००
551 आहार-शुद्धि- (तमिल)	१.५०	▲	१.००
447 मूर्तिपूजा- (हिन्दी)	०.५०	▲	१.००
469 ,, ,, (बँगला)	१.००	▲	१.००
569 ,, ,, (तमिल)	१.५०	▲	१.००
734 मूर्तिपूजा-आहार-शुद्धि- (तेलगू)	२.००	▲	१.००
448 नाम-जपकी महिमा- (हिन्दी)	१.००	▲	१.००
671 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	▲	१.००
550 ,, ,, ,, (तमिल)	१.५०	▲	१.००
723 नाम-जपकी महिमा-आहार-शुद्धि- (कन्नड़)	३.००	▲	१.००
441 सच्चा आश्रय	१.००		१.००
नित्यपाठ साधन-भजन-हेतु			
592 नित्यकर्म पूजा प्रकाश	२४.००	■	३.००
610 व्रत परिचय-	१८.००	■	३.००
045 एकादशी-व्रतका माहात्म्य	३.५०	■	१.००
052 स्तोत्ररत्नावली-सानुवाद	१५.००	■	२.००
117 दुर्गासप्तशती-मूल, मोटा टाइप	१०.००	■	२.००
118 ,, ,, ,, सानुवाद	११.००	■	२.००
489 ,, ,, ,, सजिल्द	१५.००	■	३.००
206 विष्णुसहस्रनाम-सटीक	२.००	■	१.००
226 ,, ,, मूलपाठ	१.००	■	१.००
740 ,, ,, ,, (मलयालम)	१.००	■	१.००
670 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	■	१.००
737 ,, ,, ,, (कन्नड़)	१.५०	■	१.००
207 रामस्तवराज और रामरक्षास्तोत्र-			
211 आदित्य-हृदयस्तोत्रम्-हिन्दी-अँग्रेजी-अनुवाद-सहित	१.००	■	१.००
224 श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र-भक्त बिल्वमंगलरचित	२.००	■	१.००
674 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.५०	■	१.००
231 रामरक्षास्तोत्रम्-	१.००	■	१.००
675 ,, (तेलगू)	१.५०	■	१.००
715 महामन्त्र राज स्तोत्रम्	२.५०	■	१.००
704 श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
705 श्रीहनुमतसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
706 श्रीगायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
707 श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
708 श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
709 श्रीसूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
710 श्रीगङ्गासहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
711 श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
712 श्रीगणेशसहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
713 श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्	२.००	■	१.००
495 दत्तात्रेय-वज्रकवच-सानुवाद	२.००	■	१.००
229 नारायणकवच-सानुवाद	१.००	■	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
230 अमोघशिवकवच-सानुवाद	१.००	■	१.००
563 शिवमहिम्नस्तोत्र-	१.००	■	१.००
524 ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री-	२.००	■	१.००
054 भजन-संग्रह-पाँचों भाग एक साथ	१८.००	■	४.००
063 पद-पद्माकर-	५.००	■	२.००
140 श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली-३२८ भजनसंग्रह	१०.००	■	२.००
142 चेतावनी-पद-संग्रह-(दोनों भाग)	१०.००	■	२.००
144 भजनामृत-६७ भजनोंका संग्रह	५.००	■	१.००
153 आरती-संग्रह-१०२ आरतियोंका संग्रह	३.००	■	१.००
807 सचित्र आरतियां	५.००	■	१.००
208 सीतारामभजन-	१.५०	■	१.००
221 हरेरामभजन-दो माला (गुटका)	१.५०	■	१.००
222 ,, ,, ,, १४ माला	७.००	■	२.००
576 विनय पत्रिकाके पैंतीस पद	२.००	■	१.००
225 गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद	१.००	■	१.००
699 गङ्गालहरी	१.००	■	१.००
688 प्रश्नोत्तरी	१.००	■	१.००
227 हनुमानचालीसा- (पाकेट साइज)	१.००	■	१.००
695 ,, ,, ,, (छोटी साइज)	१.००	■	१.००
600 ,, ,, ,, (तमिल)	१.५०	■	१.००
626 ,, ,, ,, (बँगला)	१.००	■	१.००
676 ,, ,, ,, (तेलगू)	१.००	■	१.००
738 ,, ,, ,, (कन्नड़)	१.००	■	१.००
828 ,, ,, ,, (गुजराती)	१.००	■	१.००
228 शिवचालीसा-	१.००	■	१.००
203 अपरोक्षानुभूति-	१.००	■	१.००
774 गीताप्रेस-परिचय	४.००	■	१.००
139 नित्यकर्म-प्रयोग-	६.००	■	२.००
210 सन्ध्योपासनविधि-मन्त्रानुवादसहित	१.५०	■	१.००
220 तर्पण एवं बलिवैश्वदेवविधि- मन्त्रानुवादसहित	१.५०	■	१.००
236 साधकदैनन्दिनी-	२.००	■	१.००
209 रामायण-मध्यमा-परीक्षा-पाठ्यपुस्तक-	०.७५	■	१.००
614 सन्ध्या	१.००	■	१.००
बालकोपयोगी पाठ्यपुस्तकें			
573 बालक अङ्क (कल्याण वर्ष २७)	८०.००	■	९.००
461 हिन्दी बालपोथी (भाग-१)	२.००	■	१.००
212 ,, ,, (भाग-२)	२.००	■	१.००
684 ,, ,, (भाग-३)	२.००	■	१.००
764 ,, ,, (भाग-४)	४.००	■	१.००
765 ,, ,, (भाग-५)	४.००	■	१.००
125 ,, ,, रंगीन (भाग-१)	२.५०	■	१.००
216 बालककी दिनचर्या	२.००	■	१.००
214 बालकके गुण	२.५०	■	१.००
217 बालकोंकी सीख-	२.००	■	१.००
219 बालकके आचरण-	२.००	■	१.००
218 बाल-अमृत-वचन-	२.००	■	१.००
696 बाल प्रश्नोत्तरी	२.००	■	१.००
215 आओ बच्चों तुम्हें बतायें-	२.००	■	१.००
213 बालकोंकी बोलचाल-	२.००	■	१.००
145 बालकोंकी बातें-	५.००	■	१.००
146 बड़ोंके जीवनसे शिक्षा-	५.००	■	१.००
150 पिताकी सीख-	६.००	■	२.००
197 संस्कृतिमाला- (भाग-१)	२.००	■	१.००
516 आदर्श चरितावली-	३.००	■	१.००
396 आदर्श ऋषिमुनि-	३.००	■	१.००
397 आदर्श देशभक्त-	२.५०	■	१.००
398 आदर्श सम्राट-	३.००	■	१.००
399 आदर्श संत-	२.५०	■	१.००
402 आदर्श सुधारक	२.५०	■	१.००
136 विदुरनीति-	६.००	■	२.००
138 भीष्मपितामह-	८.००	■	१.००
116 लघु सिद्धान्त कौमुदी	२०.००	■	३.००
148 वीर बालक-	४.००	■	१.००
149 गुरु और माता-पिताके भक्त बालक-	४.००	■	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
152 सच्चे-ईमानदार बालक-	३.५०	■	१.००
155 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ-	३.००	■	१.००
156 वीर बालिकाएँ-	३.००	■	१.००
727 स्वास्थ्य सम्मान और सुख	२.००	■	१.००
स्त्रियोपयोगी एवं सर्वोपयोगी प्रकाशन			
154 ज्ञानमणिमाला-	२.५०	■	१.००
202 मनोबोध	४.००	■	१.००
746 श्रमण नारद	२.००	■	१.००
747 सप्तमहाव्रत	२.००	■	१.००
542 ईश्वर	२.००	■	१.००
196 मननमाला-	१.२५	■	१.००
57 मानसिक दक्षता-	१५.००	■	३.००
59 जीवनमें नया प्रकाश-(ले० रामचरण महेन्द्र)	१०.००	■	२.००
60 आशाकी नयी किरणें- ,, ,, ,,	११.००	■	२.००
119 अमृतके घूँट-	९.००	■	२.००
132 स्वर्णपथ- ,, ,, ,,	८.००	■	२.००
55 महकते जीवनफूल- ,, ,, ,,	१५.००	■	३.००
64 प्रेमयोग-	१३.००	■	१.००
103 मानस-रहस्य-	२४.००	■	२.००
104 मानस-शंका-समाधान-	८.००	■	२.००
501 उद्धव-सन्देश-	१०.००	■	२.००
460 रामाश्वमेध-	१०.००	■	२.००
191 भगवान् कृष्ण-	३.००	■	१.००
601 ,, ,, -(तमिल)	५.००	■	१.००
641 ,, ,, (तेलगू)	४.००	■	१.००
193 भगवान् राम-	३.००	■	१.००
195 भगवान्पर विश्वास-	३.००	■	१.००
120 आनन्दमय जीवन	८.००	■	२.००
130 तत्त्व विचार	९.००	■	२.००
133 विवेक-चूड़ामणि-	८.००	■	२.००
701 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲	१.००
742 ,, ,, ,, (तमिल)	२.५०	▲	१.००
752 ,, ,, ,, (तेलगू)	२.००	▲	१.००
762 ,, ,, ,, (बंगला)	२.००	▲	१.००
826 ,, ,, ,, (उड़िया)	२.००	▲	१.००
802 ,, ,, ,, (मराठी)	२.००	▲	१.००
783 ,, ,, ,, (अंग्रेजी)	२.००	▲	१.००
131 सुखी जीवन-	७.००	■	१.००
122 एक लोटा पानी-	८.००	■	२.००
134 सती द्रौपदी-	६.००	■	२.००
137 उपयोगी कहानियाँ-	५.००	■	१.००
157 सती सुकला-	२.५०	■	१.००
158 महासती सावित्री-	१.५०	■	१.००
147 चोखी कहानियाँ-	३.००	■	१.००
159 आदर्श उपकार- (पढ़ो, समझो और करो)	६.००	■	२.००
160 कलेजेके अक्षर- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
161 हृदयकी आदर्श विशालता- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
162 उपकारका बदला- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
163 आदर्श मानव-हृदय- ,, ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
164 भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा- ,, ,,	६.००	■	२.००
165 मानवताका पुजारी- ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
166 परोपकार और सच्चाईका फल- ,, ,, ,,	६.००	■	२.००
510 असीम नीचता और असीम साधुता- ,, ,,	६.००	■	२.००
129 एक महात्माका प्रसाद-	१२.००	■	२.००
151 सत्संगमाला-	३.००	■	१.००
धारावाहिक चित्रकथा			
190 बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला-	६.००	■	२.००
192 बालचित्रमय रामायण-	४.००	■	१.००
238 कन्हैया-(धारावाहिक)	६.००	■	२.००
239 गोपाल- ,,	६.००	■	२.००
240 मोहन- ,,	६.००	■	२.००
241 श्रीकृष्ण- ,,	६.००	■	२.००
079 रामलला- ,,	६.००	■	२.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
529 श्रीराम (धारावाहिक)		६.००	■	२.००
756 गणेश ,,		४.००	■	२.००
204 ॐ नमः शिवाय (द्वादश ज्योतिर्लिंगोंकी कथा)		१०.००	■	२.००
787 जय हनुमान		१०.००	■	२.००
205 नवदुर्गा		५.००	■	२.००
779 दशावतार		६.००	■	२.००
537 बाल चित्रमय बुद्धलीला		३.००	■	२.००
194 बाल चित्रमय चैतन्यलीला		३.००	■	२.००
693 श्रीकृष्ण रेखा चित्रावली		६.००	■	२.००
656 गीता माहात्म्य की कहानियाँ		५.००	■	१.००
651 गो सेवाके चमत्कार		६.००	■	२.००
'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क				
635 शिवाङ्क-	(कल्याणवर्ष ८)	८०.००	■	११.००
41 शक्ति-अङ्क-	(,, ,, ९)	८०.००	■	८.००
616 योगाङ्क -	(,, ,, १०)	६०.००	■	९.००
627 संत-अङ्क	(,, ,, १२)	९०.००	■	१०.००
604 साधनाङ्क-	(,, ,, १५)	७५.००	■	९.००
028 श्रीभागवत-सुधासागर-	(,, ,, १६)	९०.००	■	९.००
44 संक्षिप्त पद्मपुराण-	(,, ,, १९)	८५.००	■	८.००
539 मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क-	(,, ,, २१)	७५.००	■	७.००
43 नारी-अङ्क-	(,, ,, २२)	७०.००	■	८.००
659 उपनिषद अङ्क-	(,, ,, २३)	९०.००	■	९.००
518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क-	(,, ,, २४)	७५.००	■	९.००
279 संक्षिप्त स्कन्दपुराण-	(,, ,, २५)	१००.००	■	१०.००
40 भक्त-चरिताङ्क-	(,, ,, २६)	८०.००	■	९.००
573 बालक-अङ्क-	(,, ,, २७)	८०.००	■	९.००
640 सं० नारद विष्णु पुराणाङ्क	(,, ,, २८)	८०.००	■	११.००
667 संतवाणी अंक	(,, ,, २९)	८५.००	■	९.००
587 सत्कथा-अङ्क-	(,, ,, ३०)	६५.००	■	८.००
636 तीर्थाङ्क-	(,, ,, ३१)	८५.००	■	१२.००
660 भक्ति अङ्क	(,, ,, ३२)	८०.००	■	११.००
46 संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत	(,, ,, ३४)	७०.००	■	८.००
574 संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क-	(,, ,, ३५)	७५.००	■	९.००
631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क	(,, ,, ३७)	७५.००	■	८.००
789 ,, शिवपुराण-(बड़ा टाइप)	(,, ,, ३९)	८०.००	■	६.००
572 परलोक पुनर्जन्माङ्क	(,, ,, ४३)	७०.००	■	२.००
517 गर्ग-संहिता- [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	(,, ,,४४ एवं ४५)	५५.००	■	७.००
657 श्रीगणेश-अङ्क	(,, ,, ४८)	६०.००	■	१०.००
42 हनुमान-अङ्क-	(,, ,, ४९)	५०.००	■	६.००
791 सूर्याङ्क	(,, ,, ५३)	४५.००	■	६.००
कल्याण एवं कल्याण-कल्पतरुके पुराने मासिक अंक				
525 कल्याणके विभिन्न-मासिक-अंक		३.००	■	१.००
602 Kalyana-Kalpataru (Monthly Issues)		२.५०	■	१.००
अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन				
संस्कृत				
679 गीतामाधुर्य		६.००	▲	२.००
बंगला				
540 साधक-संजीवनी-पूरा सेट		७०.००	■	१६.००
556 गीता-दर्पण-		३५.००	■	५.००
013 गीता-पदच्छेद-		१५.००	■	४.००
626 हनुमानचालीसा-		१.००	■	१.००
496 गीता भाषाटीका पाकेट साइज-		४.००	■	१.००
275 कल्याण-प्राप्तिके उपाय-(तत्त्व-चिन्ता० भाग-१)		८.००	▲	२.००
395 गीतामाधुर्य-		६.००	▲	२.००
428 गृहस्थमें कैसे रहें ? -		२.५०	▲	१.००
816 कल्याणकारी प्रवचन		३.००	▲	१.००
276 परमार्थ-पत्रावली- भाग-१		३.५०	▲	१.००
449 दुर्गतिसे बचो गुरुतत्त्व-		२.००	■	१.००
463 चित्र जय श्रीकृष्ण		१३.००	▲	
450 हम ईश्वरको क्यों मानें- नाम जपकी महिमा		१.५०	▲	१.००
312 आदर्श नारी सुशीला-		२.००	▲	१.००
330 नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र-		२.००	▲	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
625 देशकी वर्तमानदशा तथा उसका परिणाम-	३.००	▲	१.००
762 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲	१.००
469 मूर्तिपूजा-	१.००	▲	१.००
296 सत्संगकी सार बातें-	०.५०	▲	१.००
443 संतानका कर्तव्य	१.००	▲	१.००
मराठी			
748 ज्ञानेश्वरी मूल गुटका	२०.००	■	३.००
784 ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ दीपिका	१००.००	■	११.००
7 साधक-संजीवनी टीका-	७०.००	■	१०.००
504 गीता-दर्पण-	२५.००	■	५.००
14 गीता-पदच्छेद-	२०.००	■	४.००
15 गीता माहात्म्यसहित-	२०.००	■	४.००
391 गीतामाधुर्य-	८.००	▲	२.००
429 गृहस्थमें कैसे रहें ?-	५.००	▲	२.००
गुजराती			
467 साधक-संजीवनी-	७५.००	■	१०.००
468 गीता-दर्पण-	२५.००	■	५.००
12 गीता-पदच्छेद-	२०.००	■	४.००
392 गीतामाधुर्य-	५.००	▲	२.००
799 श्रीरामचरितमानस-गुजराती ग्रन्थाकार	८५.००	■	९.००
785 ,, ,, मझला	४५.००	■	५.००
404 कल्याणकारी प्रवचन-	४.००	▲	२.००
544 चित्र जय श्रीकृष्ण	१३.००	■	
413 तात्त्विक प्रवचन-	४.००	▲	२.००
828 हनुमान चालीसा	१.००	■	१.००
तमिल			
८०० गीता तत्त्वविवेचनी	५०.००	■	९.००
743 गीता मूल	१३.००	■	२.००
795 गीता भाषा	५.००	■	१.००
793 गीता मूल विष्णु सहस्त्रनाम	४.००	■	१.००
389 गीतामाधुर्य-	१०.००	■	२.००
127 उपयोगी कहानियाँ	५.००	■	२.००
646 चोखी कहानियाँ	५.००	■	१.००
600 हनुमानचालीसा	१.५०	■	१.००
794 विष्णु सहस्त्रनाम स्तोत्रम	१.००	■	१.००
601 भगवान् श्रीकृष्ण	५.००	■	१.००
608 भक्तराज हनुमान्	५.००	■	१.००
642 प्रेमी भक्त उद्धव	४.५०	■	१.००
647 कन्हैया (धारावाहिक चित्रकथा)	७.००	■	२.००
648 श्रीकृष्ण (,, ,,)	७.००	■	२.००
649 गोपाल (,, ,,)	७.००	■	२.००
650 मोहन (,, ,,)	७.००	■	२.००
742 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.५०	▲	१.००
553 गृहस्थमें कैसे रहें ?-	८.००	▲	२.००
536 गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति-	२.५०	▲	१.००
591 महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य-	३.००	▲	१.००
466 सत्संगकी सार बातें-	१.००	▲	१.००
365 गोसेवाके-चमत्कार-	३.५०	▲	१.००
423 कर्मरहस्य-	३.००	▲	१.००
568 शरणागति-	४.००	▲	१.००
569 मूर्तिपूजा-	१.५०	▲	१.००
551 आहारशुद्धि	१.५०	▲	१.००
645 नल दमयन्ती	५.००	▲	१.००
644 आदर्श नारी सुशीला	२.००	▲	१.००
643 भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३.००	▲	१.००
550 नाम-जपकी महिमा-	१.५०	▲	१.००
499 नारद-भक्ति-सूत्र	१.००	▲	१.००
606 सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२.००	▲	१.००
609 सावित्री और सत्यवान	१.५०	▲	१.००
607 सबका कल्याण कैसे हो ?	२.००	▲	१.००
655 एकै साधै सब सधै	५.००	▲	२.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
कन्नड़			
726 गीता पदच्छेद	१८.००	■	३.००
718 गीता तात्पर्यके साथ	८.००	■	२.००
661 गीता मूल (विष्णु सहस्त्रनाम सहित)	४.००	■	२.००
736 नित्यस्तुति आदित्य-हृदयस्तोत्रम्	१.००	■	१.००
738 हनुमत स्तोत्रावली	१.००	■	१.००
737 विष्णुसहस्त्रनाम	१.५०	■	१.००
721 भक्त बालक	४.००	■	१.००
716 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	४.००	▲	१.००
390 गीतामाधुर्य	४.५०	▲	१.००
128 गृहस्थमें कैसे रहे ?-	२.७५	▲	१.००
720 महाभारत के आदर्श पात्र	५.००	▲	१.००
717 सावित्री-सत्यवान और आदर्श नारी सुशीला	३.००	▲	१.००
723 नाम-जपकी महिमा और आहार शुद्धि	३.००	▲	१.००
725 भगवान्की दया एवं भगवानका हेतु रहित सौहार्द	२.००	▲	१.००
598 वास्तविक सुख	४.००	▲	१.००
722 सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	२.००	▲	१.००
असमिया			
714 गीता भाषा टीका-पाकेट साइज	५.००	■	२.००
624 गीतामाधुर्य-	६.००	▲	२.००
703 गीता पढ़नेके लाभ	.५०	▲	१.००
उड़िया			
813 गीता पाकेट साइज	४.००	■	१.००
815 गीता श्लोकार्थ सहित	१३.००	■	२.००
541 गीता मूल विष्णु सहस्त्रनाम सहित	२.००	■	१.००
817 कर्म रहस्य	२.००	▲	१.००
798 गुरु तत्त्व	१.००	▲	१.००
९97 सन्तान का कर्त्तव्य सच्चा आश्रय	१.००	▲	१.००
754 गीतामाधुर्य	६.००	▲	१.००
757 शरणागति	३.००	▲	१.००
430 गृहस्थमें कैसे रहें ?-	४.००	▲	१.००
796 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	२.००	▲	१.००
नेपाली			
394 गीतामाधुर्य-	५.००	▲	२.००
554 हम ईश्वरको क्यों माने	०.२५	▲	१.००
उर्दू			
393 गीतामाधुर्य-	८.००	▲	२.००
549 महापापसे बचो-	१.२५	▲	१.००
590 मनकी खटपट कैसे मिटे-	०.८०	▲	१.००
तेलगू			
692 चोखी कहानियाँ	४.००	■	१.००
682 भक्तपञ्चरत्न	५.००	■	१.००
686 प्रेमीभक्त उद्धव	३.००	■	१.००
687 आदर्शभक्त	५.००	■	१.००
685 भक्तबालक	४.००	■	१.००
688 भक्तराज ध्रुव	२.००	■	१.००
753 सुन्दरकाण्ड सटीक	३.००	■	१.००
691 श्रीभीष्मपितामह	८.००	■	१.००
732 नित्यस्तुति आदित्यहृदयस्त्रोत्रम्	१.००	■	१.००
676 हनुमान चालीसा	१.००	■	१.००
641 भगवान् श्रीकृष्ण	४.००	■	१.००
662 गीता मूल (विष्णु सहस्त्रनाम सहित)	३.००	■	१.००
663 गीता भाषा	५.००	■	१.००
670 श्रीविष्णु सहस्त्रनाम मूलम्	१.००	■	१.००
674 गोविन्द दामोदर स्तोत्र	१.५०	■	१.००
675 सं० रामायणम रामरक्षास्तोत्रम्	१.५०	■	१.००
677 गजेन्द्र मोक्षम्	१.००	■	१.००
771 गीता तात्पर्य सहित	९.००	■	१.००
801 श्रीललिता सहस्त्रनाम	२.००	■	१.००
772 गीता पदच्छेद अन्वयसहित	१५.००	■	१.००
767 भक्तराज हनुमान्	३.००	■	१.००

कोड	मूल्य	डाकखर्च
766 महाभारतके आदर्श पात्र	४.००	▲ १.००
760 महत्वपूर्ण शिक्षा	३.००	▲ १.००
768 रामायणके आदर्श पात्र	५.००	▲ १.००
733 गृहस्थमें कैसे रहे ?	६.००	▲ १.००
761 एकै साधे सब सधै	५.००	▲ १.००
759 शरणागत एवं मुकुन्दमाला	३.००	▲ १.००
752 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२.००	▲ १.००
734 आहार शुद्ध मूर्ति पूजा	२.००	▲ १.००
664 सावित्रि-सत्यवान	१.५०	▲ १.००
665 आदर्श नारी सुशीला	३.००	▲ १.००
666 अमूल्य समयका सदुपयोग	५.००	▲ १.००
672 सत्यकी शरणसे मुक्ति	१.००	▲ १.००
671 नामजपकी महिमा	१.००	▲ १.००
678 सत्संगकी कुछ सार बातें	१.००	▲ १.००
731 महापापसे बचों	१.५०	▲ १.००
758 देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३.००	▲ १.००
689 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	३.००	▲ १.००
690 बालशिक्षा	३.००	▲ १.००

कोड	मूल्य	डाकखर्च
मलयालम		
739 गीता विष्णु मूल	३.००	■ १.००
740 विष्णु सहस्त्रनाम मूल	१.००	■ १.००
चित्रसूची		
237 जयश्रीराम-भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण	१३.००	■
546 जयश्रीकृष्ण-भगवान् कृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण (बंगला एवं गुजरातीमें भी)	१३.००	■
491 हनुमान्‌जी (भक्तराज हनुमान्)	५.००	■
492 भगवान् विष्णु-	५.००	■
560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप)	५.००	■
548 मुरलीमनोहर (भगवान् मुरलीमनोहर)	५.००	■
437 कल्याणचित्रावली (कल्याणमें मुद्रित १५ चित्रोंका संग्रह)	८.००	■
776 सीताराम	५.००	■
812 नवदुर्गा (दुर्गाजी के नौ रूप)	५.००	■
630 गो सेवा	५.००	■
531 बाँके बिहारी	५.००	■

Our English Publications

Code	Title	Price	Postage
457	**Shrimad Bhagavadgita—Tattva-Vivechani** *(By Jayadayal Goyandka)* Detailed Commentary	35.00	■ 8.00
458	**Shrimad Bhagavadgita—Sadhak-Sanjivani** *(By Swami Ramsukhdas)* (English Commentary)	45.00	■ 8.00
455	**Bhagavadgita** (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size	4.00	■ 1.00
534	„ „ „ Bound	7.00	■ 1.00
470	**Bhagavadgita—Roman Gita** (With Sanskrit Text and English Translation)	10.00	■ 2.00
487	**Gita Madhurya—English** *(By Swami Ramsukhdas)*	8.00	▲ 1.00
452	**Shrimad Valmiki Ramayana** (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 3 volumes	250.00	■ 25.00
456	**Shri Ramacharitamanas** (With Hindi Text and English Translation)	70.00	■ 8.50
786	„ „ (Midum Size)	50.00	■ 6.00
564	**Shrimad Bhagvat** (With Sanskrit Text and English Translation) Set	150.00	■ 20.00
	by Jayadayal Goyandka		
477	**Gems of Truth** [Vol. I]	5.00	▲ 1.00
478	„ [Vol. II]	5.00	▲ 1.00
479	**Sure Steps to God-Realization**	8.00	▲ 2.00
481	**Why to Devine Bliss**	4.00	▲ 1.00
482	**What is Dharma? What is God?**	1.00	▲ 1.00
480	**Instructive Eleven Stories**	4.00	▲ 1.00
520	**Secret of Jnana Yoga**	8.00	▲ 1.00
521	„ „ **Prem Yoga**	6.00	▲ 1.00
522	„ „ **Karma Yoga**	7.00	▲ 2.00
523	**The Secret of Bhakti Yoga** „	7.50	▲ 2.00

Code	Title	Price	Postage
658	**Secrets of Gita**	4.00	▲ 1.00
	by Hanuman Prasad Poddar		
484	**Look Beyond the Veil**	6.00	▲ 1.00
622	**How to Attain Eternal Happiness ?**	6.00	▲ 1.00
483	**Turn to God**	7.00	▲ 1.00
485	**Path to Divinity**	7.00	▲ 1.00
	by Swami Ramsukhdas		
498	**In Search of Supreme Abode**	4.00	▲ 1.00
619	**Ease in God-Realization**	4.00	▲ 1.00
471	**Benedictory Discourses**	3.50	▲ 1.00
473	**Art of Living**	3.00	▲ 1.00
472	**How to Lead A Household Life**	3.50	▲ 1.00
620	**The Divine Name and Its Practice**	2.50	▲ 1.00
486	**Wavelets of Bliss & the Divine Message**	1.50	▲ 1.00
570	**Let us Know the Truth**		
638	**Sahaj Sadhna**	2.50	▲ 1.00
634	**God is Everything**	3.00	▲ 1.00
621	**Invaluable Advice**	2.50	▲ 1.00
474	**Be Good**		
669	**The Divine Name**	2.50	▲ 7.00
497	**Truthfulness of Life**		
476	**How to be Self-Reliant**	1.00	▲ 1.00
552	**Way to Attain the Supréme Bliss**	1.00	▲ 1.00
	Other Publications		
494	**The Immanence of God** *(By Madanmohan Malaviya)*	2.00	■ 1.00
562	**Ancient Idealism for Modernday Living**	1.00	▲ 1.00
783	**Abortion Right or wrong you Decide**	2.00	▲ 1.00
808	**Nava Durga**	5.00	■ 1.00

विदेशमें पुस्तक-प्रचार

अब आप रुपयोंमें भुगतान देकर अपने विदेशोंमें रहनेवाले मित्रोंको **'गीताप्रेस-प्रकाशन'** डाकद्वारा उपहारस्वरूप भिजवा सकते हैं।

सम्पर्क करें—**व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

'कल्याण' एवं **'कल्याण-कल्पतरु'** के उपलब्ध विशेषाङ्क एवं मासिक **'कल्याण'** एवं **'कल्याण-कल्पतरु'** भी रुपयोंमें भुगतान देकर विदेशोंमें उपहारस्वरूप भिजवा सकते हैं।

सम्पर्क करें—**व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय-गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

‘कल्याण’ के पुराने, लोकप्रिय पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

शिवाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ८, सन् १९३४ ई०]—यह शिवतत्त्व तथा शिव-महिमापर विशद विवेचनसहित शिवार्चन, पूजन, व्रत एवं उपासनापर तात्त्विक और ज्ञानप्रद मार्ग-दर्शन कराता है। यह एक मूल्यवान् अध्ययन-सामग्री है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंका सचित्र परिचय तथा भारतके सुप्रसिद्ध शैव-तीर्थोंका प्रामाणिक वर्णन इसके अन्यान्य महत्त्वपूर्ण (पठनीय) विषय हैं।

शक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ९, सन् १९३५ ई०]—इसमें परब्रह्म परमात्माके आद्याशक्ति-स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, महादेवीकी लीला-कथाएँ एवं सुप्रसिद्ध शाक्त-भक्तों और साधकोंके प्रेरणादायी जीवन-चरित्र तथा उनकी उपासना-पद्धतिपर उत्कृष्ट उपयोगी सामग्री संगृहीत है। इसके अतिरिक्त भारतके सुप्रसिद्ध शक्ति-पीठों तथा प्राचीन देवी-मन्दिरोंका सचित्र दिग्दर्शन भी इसकी उल्लेखनीय विषय-वस्तुके महत्त्वपूर्ण अङ्ग हैं।

योगाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १०, सन् १९३६ ई०]—इसमें योगकी व्याख्या तथा योगका स्वरूप-परिचय एवं प्रकार और योग-प्रणालियों तथा अङ्ग-उपाङ्गोंपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। साथ ही अनेक योग-सिद्ध महात्माओं और योग-साधकोंके जीवन-चरित्र तथा साधना-पद्धतियोंपर रोचक, ज्ञानप्रद वर्णन हैं। यह विशेषाङ्क योगके कल्याणकारी और योग-सिद्धियोंके चमत्कारी प्रभावोंकी ओर आकृष्ट कर ‘योग’ के सर्वमान्य महत्त्वसे परिचय कराता है।

संत-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १२, सन् १९३८ ई०]—इसमें उच्चकोटिके अनेक संतों—प्राचीन, अर्वाचीन, मध्ययुगीन एवं कुछ विदेशी भगवद्विश्वासी महापुरुषों तथा त्यागी-वैरागी महात्माओंके ऐसे आदर्श जीवन-चरित्र हैं, जो पारमार्थिक गतिविधियोंके लिये प्रेरित करनेके साथ-साथ उनके सार्वभौमिक सिद्धान्तों, त्याग-वैराग्यपूर्ण तपस्वी जीवन-शैलीको उजागर करके उच्चकोटिके पारमार्थिक आदर्श, जीवन-मूल्योंको रेखाङ्कित करते हैं।

साधनाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १५, सन् १९४१ ई०]—यह अङ्क उच्चकोटिके विचारकों, वीतराग महात्माओं, एकनिष्ठ साधकों एवं विद्वान् मनीषियोंके साधनोपयोगी अनुभूत विचार और उनके साधनापरक बहुमूल्य मार्ग-दर्शनसे ओतप्रोत—महत्त्वपूर्ण है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप—ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। यह सभीके लिये उत्तमोत्तम दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त महाभारत (सचित्र, सजिल्द दो खण्डोंमें) [वर्ष १७, सन् १९४३ ई०]—धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके महान् उपदेशों एवं प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओंके उल्लेखसहित इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, योग, नीति, सदाचार, अध्यात्म, राजनीति, कूटनीति आदि मानव-जीवनके उपयोगी विषयोंका विशद वर्णन और विवेचन है। इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंके समावेशके कारण इसे शास्त्रोंमें ‘पञ्चम वेद’ और विद्वत्समाजमें भारतीय ज्ञानका ‘विश्वकोश’ कहा गया है।

संक्षिप्त पद्मपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष १९, सन् १९४५ ई०]—इसमें (पद्मपुराण-वर्णित) भगवान् विष्णुके माहात्म्यके साथ भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार-चरित्रों एवं उनके परात्पररूपोंका विशद वर्णन है। भगवान् शिवकी महिमाके साथ इसमें श्रीअयोध्या, श्रीवृन्दावनधामका माहात्म्य भी वर्णित है। इसके अतिरिक्त शालग्रामके स्वरूप और उनकी महिमा, तुलसीवृक्षकी महिमा, भगवन्नाम-कीर्तन एवं भगवती गङ्गाकी महिमासहित, यमुना-स्नान, तीर्थ, व्रत, देवपूजन, श्राद्ध, दानादिके विषयमें भी विस्तृत चर्चा है।

संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २१, सन् १९४७ ई०]—आत्म-कल्याणकारी महान् साधनों, उपदेशों और आदर्श चरित्रोंसहित इसमें मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवी-माहात्म्य (श्रीदुर्गासप्तशती), तीर्थ-माहात्म्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार आदि अनेक गम्भीर, रोचक विषयोंका वर्णन (इन दो संयुक्त पुराणोंमें) है।

नारी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २२, सन् १९४८ ई०)—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। इसके साथ ही विश्वकी अनेक सुप्रसिद्ध महान् महिला-रत्नोंके जीवन-परिचय और जीवनादर्शोंपर मूल्यवान् प्रेरक सामग्री इसके

उल्लेखनीय विषय हैं। माता-बहनों और देवियोंसहित समस्त नारीजाति और नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी मार्ग-दर्शक है।

उपनिषद्-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २३, सन् १९४९ ई०]—इसमें नौ प्रमुख उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय एवं श्वेताश्वतर) का मूल, पदच्छेद, अन्वय तथा व्याख्यासहित वर्णन है एवं अन्य ४५ उपनिषदोंका हिन्दी-भाषान्तर, महत्त्वपूर्ण स्थलोंपर टिप्पणीसहित प्राय: सभीका अनुवाद दिया गया है।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष २४, सन् १९५० ई०]—भारतीय संस्कृति—विशेषत: हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला यह तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। इस प्रकार भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसंधानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय, उपयोगी और मूल्यवान् दिशा-निर्देशक है।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २५, सन् १९५१ ई०]—इसमें भगवान् शिवकी महिमा, सती-चरित्र, शिव-पार्वती-विवाह, कुमार कार्तिकेयके जन्मकी कथा तथा तारकासुर-वध आदिका वर्णन है। इसके अतिरिक्त अनेक आख्यान एवं बहुत-से रोचक, ज्ञानप्रद प्रसंग और आदर्श चरित्र भी वर्णित हैं। शिव-पूजनकी महिमाके साथ-साथ तीर्थ, व्रत, जप, दानादिका महत्त्व-वर्णन आदि भी इसके विशेषरूपसे पठनीय विषय हैं।

भक्त-चरिताङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २६, सन् १९५२ ई०]—इसमें भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाले भगवद्भक्तों, ईश्वरोपासकों और महात्माओंके जीवन-चरित्र एवं विभिन्न-विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र, सरस, मधुर कथाएँ हैं जो मानव-मनको प्रेम-भक्ति-सुधारससे अनायास सराबोर कर देती हैं। रोचक, ज्ञानप्रद और निरन्तर अनुशीलनयोग्य ये भक्तगाथाएँ भगवद्विश्वास और प्रेमानन्द बढ़ानेवाली तथा शान्ति प्रदान करनेवाली होनेसे नित्य पठनीय हैं।

बालक-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २७, सन् १९५३ ई०]—यह अङ्क बालकोंसे सम्बन्धित सभी उपयोगी विषयोंका बृहद् संग्रह है। यह सर्वजनोपयोगी—विशेषत: बालकोंके लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है। प्राचीन कालसे अबतकके भारतके महान् बालकों एवं विश्वभरके सुविख्यात आदर्श बालकोंके भी प्रेरक, शिक्षाप्रद, रोचक, ज्ञानवर्धक तथा अनुकरणीय जीवन-वृत्त एवं आदर्श चरित्र बार-बार पठनीय और प्रेरणाप्रद हैं।

संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २८, सन् १९५४ ई०]—'नारदपुराण' तथा 'विष्णुपुराण' के इस संयुक्त, संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तरमें पुराणोचित महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गोंके वर्णनसहित, वेदोंके छहों अङ्गों—(शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द-शास्त्र) का विशद वर्णन तथा भगवान्‌की सकाम उपासनाका विस्तृत विवेचन है। 'विष्णुपुराण' के उल्लेखनीय विषयोंमें भगवान् विष्णुकी महिमा, जगत्‌की उत्पत्ति, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका उद्धार, ध्रुव-प्रह्लाद-चरित एवं भगवान् श्रीकृष्णके विविध मनोरम लीला-चरित्रोंसहित इसमें गृहस्थोंके सदाचार, श्राद्ध-विधि, जातकर्म, उपनयन आदि विशिष्ट संस्कारोंका भी ज्ञानवर्धक वर्णन है। दो महत्त्वपूर्ण पुराण एकहीमें सुलभ होनेसे इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है।

संतवाणी-अङ्क (सचित्र, सजिल्द)—[वर्ष २९, सन् १९५५ ई०] संत-महात्माओं और अध्यात्मचेता महापुरुषोंके लोककल्याणकारी उपदेश-उद्बोधनों (वचन और सूक्तियों) का यह बृहत् संग्रह प्रेरणाप्रद होनेसे नित्य पठनीय और सर्वथा संग्रहणीय है।

सत्कथा-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३०, सन् १९५६ ई०]—जीवनमें भगवत्प्रेम, सेवा, त्याग, वैराग्य, सत्य, अहिंसा, विनय, प्रेम, उदारता, दानशीलता, दया, धर्म, नीति, सदाचार और शान्तिका प्रकाश भर देनेवाली सरल, सुरुचिपूर्ण सत्प्रेरणादायी छोटी-छोटी सत्कथाओंका यह बृहत् संग्रह सर्वदा अपने पास रखनेयोग्य है। और, इसकी कल्याणकारी बातें हृदयङ्गम करनेयोग्य और सर्वदा अनुकरणीय हैं।

तीर्थाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३१, सन् १९५७ ई०]—इस अङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। अत: भारतके समस्त तीर्थोंका अनुसंधानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो सभी तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण और संग्रहणीय है। (सन् १९५७ के बाद तीर्थोंके मार्गों और यातायातके साधनोंमें हुए परिवर्तन (संशोधित रूप) इसमें सम्मिलित नहीं हैं।)

भक्ति-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३२, सन् १९५८ ई०]—इसमें ईश्वरोपासना, भगवद्भक्तिका स्वरूप तथा भक्तिके प्रकारों और विभिन्न पक्षोंपर शास्त्रीय दृष्टिसे व्यापक विचार किया गया है। साथ ही अनेक भगवद्भक्तोंके शिक्षाप्रद-अनुकरणीय जीवन-चरित्र भी बड़े ही मर्मस्पर्शी, प्रेरणाप्रद और सर्वदा पठनीय हैं।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३४, सन् १९६० ई०]—इसमें पराशक्ति भगवतीके स्वरूप-तत्त्व, महिमा आदिके तात्त्विक विवेचनसहित श्रीमद्देवीकी लीला-कथाओंका सरस एवं कल्याणकारी वर्णन है। श्रीमद्देवीभागवतके विविध, विचित्र कथा-प्रसंगोंके रोचक और ज्ञानप्रद उल्लेखके साथ देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि एवं उपासनापर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। अत: साधनाकी दृष्टिसे यह अत्यन्त उपादेय और अनुशीलनयोग्य है।

संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३५, सन् १९६१ ई०]—योगवासिष्ठके इस संक्षिप्त रूपान्तरमें जगत्की असत्ता और परमात्मसत्ताका प्रतिपादन है। पुरुषार्थ एवं तत्त्व-ज्ञानके निरूपणके साथ-साथ इसमें शास्त्रोक्त सदाचार, त्याग-वैराग्ययुक्त सत्कर्म और आदर्श व्यवहार आदिपर सूक्ष्म विवेचन है। कल्याणकामी साधकोंके लिये इसका अनुशीलन उपादेय है।

संक्षिप्त शिवपुराण (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३६, सन् १९६२ ई०]—सुप्रसिद्ध शिवपुराणका यह संक्षिप्त अनुवाद—परात्पर परमेश्वर शिवके कल्याणमय स्वरूप-विवेचन, तत्त्व-रहस्य, महिमा, लीला-विहार, अवतार आदिके रोचक, किंतु ज्ञानमय वर्णनसे युक्त है। इसकी कथाएँ अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, ज्ञानप्रद और कल्याणकारी हैं। इसमें भगवान् शिवकी पूजन-विधिसहित महत्त्वपूर्ण स्तोत्रोंका भी उपयोगी संकलन है।

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराणाङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ३७, सन् १९६३ ई०]—इसमें भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति-ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ गोलोक-लीला तथा अवतार-लीलाका विशद वर्णन है। इसके अतिरिक्त कुछ विशिष्ट ईश्वरकोटिके सर्वशक्तिमान् देवताओंकी एकरूपता, महिमा तथा उनकी साधना-उपासनाका भी सुन्दर प्रतिपादन है। उपयोगी अनुष्ठेय सामग्रीके रूपमें इसमें अनेक स्तोत्र, मन्त्र, कवच आदि भी दिये गये हैं।

परलोक और पुनर्जन्माङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४३, सन् १९६९ ई०]—मनुष्यमात्रको मानव-चरित्रके पतनकारी आसुरी-सम्पदाके दोषोंसे सदा दूर रहने तथा परम विशुद्ध उज्ज्वल चरित्र होकर सर्वदा सत्कर्म करते रहनेकी शुभ प्रेरणाके साथ इसमें परलोक तथा पुनर्जन्मके रहस्यों और सिद्धान्तोंपर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। आत्मकल्याणकामी पुरुषों तथा साधकमात्रके लिये इसका अध्ययन-अनुशीलन अति उपयोगी है।

गर्ग-संहिता (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४४-४५, सन् १९७०-७१ ई०]—श्रीराधाकृष्णकी दिव्य मधुर लीलाओंका इसमें बड़ा ही हृदयहारी वर्णन है। इसकी सरस-मधुर कथाएँ ज्ञानप्रद, भक्तिप्रद और भगवान् श्रीकृष्णमें अनुराग बढ़ानेवाली हैं।

श्रीगणेश-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४८, सन् १९७४ ई०]—भगवान् गणेश अनादि, सर्वपूज्य, आनन्दमय, ब्रह्ममय और सच्चिदानन्दरूप (परमात्मा) हैं। **'आदौ पूज्यो विनायकः'**—इस उक्तिके अनुसार भी गणपतिकी अग्रपूजा सुप्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित ही है। महामहिम गणेशकी इन्हीं सर्वमान्य विशेषताओं और सर्वसिद्धि-प्रदायक उपासना-पद्धतिका विस्तृत वर्णन 'कल्याण' के इस (पुनर्मुद्रित) विशेषाङ्कमें उपलब्ध है। इसमें श्रीगणेशकी लीला-कथाओंका भी बड़ा ही रोचक वर्णन और पूजा-अर्चना आदिपर उपयोगी दिग्दर्शन है।

श्रीहनुमान-अङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ४९, सन् १९७५ ई०]—इसमें श्रीहनुमान्जीका आद्योपान्त जीवन-चरित्र और श्रीरामभक्तिके प्रतापसे सदा अमर बने रहकर उनके द्वारा किये गये क्रिया-कलापोंका तात्त्विक और प्रामाणिक एवं सुरुचिपूर्ण चित्रण है। श्रीहनुमान्जीको प्रसन्न करनेवाले विविध स्तोत्र, ध्यान एवं पूजन-विधियाँ आदि साधनोपयोगी बहुमूल्य सामग्रीका भी उपयोगी संकलन है। अत: साधकोंके लिये यह उपादेय है।

सूर्याङ्क (सचित्र, सजिल्द) [वर्ष ५३, सन् १९७९ ई०]—यह सूर्य-महिमा, सूर्य-तत्त्व, सूर्यका प्रभाव, त्रिकाल-संध्यामें सूर्य, सूर्योपासनासे लाभ, सूर्योपासनासे रोग-निवारण आदि अनेक उपयोगी लेखोंसे अलंकृत है। अनेक प्रेरणास्पद उपाख्यानोंके साथ दो मासिक अङ्क भी संलग्न हैं।

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका प्रयत्न करना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम

१-भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान-वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।

२-'कल्याण' का वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतवर्षमें ८० रु० (सजिल्द विशेषाङ्कका ९० रु०) और विदेश (Foreign)-के लिये (नेपाल-भूटानको छोड़कर) US $ 11 डालर (Sea mail) रु० ४०० भारतीय मुद्रा तथा US $ 22 डालर (Air mail) रु० ८०० भारतीय मुद्रा नियत है।

३-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं।** यद्यपि वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं; तथापि जनवरीसे उस समयतकके प्रकाशित (पिछले) उपलब्ध अङ्क उन्हें दिये जाते हैं। 'कल्याण' के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते, छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं।

४-**ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क मनीआर्डर अथवा बैंकड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये।** वी० पी० पी० से 'कल्याण' मँगानेमें ग्राहकोंको वी० पी० पी० डाकशुल्क अधिक देना पड़ता है एवं 'कल्याण' भेजनेमें विलम्ब भी हो जाता है।

५-'कल्याण' के मासिक अङ्क सामान्यतया ग्राहकोंको सम्बन्धित मासके प्रथम पक्षके अन्ततक मिल जाने चाहिये। अङ्क दो-तीन बार जाँच करके भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयसे न मिले तो डाकघरसे पूछताछ करनेके उपरान्त हमें सूचित करें।

६-पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम ३० दिनोंके पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। पत्रोंमें **'ग्राहक-संख्या' पुराना और नया—पूरा पता स्पष्ट एवं सुवाच्य अक्षरोंमें लिखना चाहिये।** यदि कुछ महीनोंके लिये ही पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना समयसे न मिलनेपर दूसरी प्रति भेजनेमें कठिनाई हो सकती है। यदि आपके पतेमें कोई महत्त्वपूर्ण भूल हो या आपका 'कल्याण' के प्रेषण -सम्बन्धी कोई अनियमितता/सुझाव हो तो अपनी स्पष्ट 'ग्राहक-संख्या' लिखकर हमें सूचित करें।

७-रंग-बिरंगे चित्रोंवाला बड़ा अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। पुनः प्रतिमास साधारण अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें वर्षपर्यन्त भेजे जाते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण'का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

आवश्यक सूचनाएँ

१-ग्राहकोंको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ पिन कोड नम्बर एवं अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

२-एक ही विषयके लिये यदि दोबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका संदर्भ—दिनाङ्क तथा पत्र-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

३-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

४-कोई भी विक्रेता-बन्धु विशेषाङ्ककी कम-से-कम २५ प्रतियाँ इस कार्यालयसे एक साथ मँगाकर इसके प्रचार-प्रसारमें सहयोगी बन सकते हैं। ऐसा करनेपर ६.०० रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे उन्हें (कमीशन) प्रोत्साहन-राशि दिया जायगा। जनवरी मासका विशेषाङ्क एवं फरवरी मासका साधारण अङ्क रेल-पार्सलसे भेजा जायगा एवं आगेके मासिक अङ्क (मार्चसे दिसम्बरतक) डाकद्वारा भेजनेकी व्यवस्था है।

५-जनवरी १९९८ के इस विशेषाङ्क **'भगवल्लीला-अङ्क'** के अन्तमें ही फरवरी मासका अङ्क भी संलग्न है। अतः ग्राहक महोदय फरवरी मासका अङ्क मँगानेके लिये कृपया पत्र-व्यवहार न करें।

'कल्याण' की दशवर्षीय ग्राहक-योजना

दशवर्षीय सदस्यता-शुल्क ५०० रुपये (सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ६०० रुपये) हैं। विदेश (Foreign)-के लिये US $ 90 डालर (Sea mail) तथा US $ 180 डालर (Air mail)-का है। इस योजनाके अन्तर्गत व्यक्तिके अलावा फर्म, प्रतिष्ठान आदि संस्थागत ग्राहक भी बन सकते हैं। यदि 'कल्याण' का प्रकाशन चलता रहा तो दस वर्षोंतक ग्राहकोंको अङ्क नियमितरूपसे जाते रहेंगे।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

पंजीकृत-संख्या—जी० आर०—१३

LICENCE NO.-3 LICENSED TO POST WITHOUT PRE PAYMENT.

प्र० ति० १-१-९८

परब्रह्म परमात्माका स्वरूप

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह। मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति॥

जो सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वरूप, सबके परम कारण, परब्रह्म पुरुषोत्तम यहाँ—इस पृथ्वीलोकमें हैं, वही वहाँ परलोकमें अर्थात् देव-गन्धर्वादि विभिन्न अनन्त लोकोंमें भी हैं; तथा जो वहाँ हैं, वही यहाँ भी हैं। एक ही परमात्मा अखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं। जो उन एक ही परब्रह्मको लीलासे नाना नामों और रूपोंमें प्रकाशित देखकर मोहवश उनमें नानात्वकी कल्पना करता है, उसे पुनः-पुनः मृत्युके अधीन होना पड़ता है, उसके जन्म-मरणका चक्र सहज ही नहीं छूटता। अतः दृढ़रूपसे यही समझना चाहिये कि वे एक ही परब्रह्म परमेश्वर अपनी अचिन्त्य शक्तिके सहित नाना रूपोंमें प्रकट हैं और यह सारा जगत् बाहर-भीतर उन एक परमात्मासे ही व्याप्त होनेके कारण उन्हींका स्वरूप है।

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन। मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति॥

परमात्माका परमतत्त्व शुद्ध मनसे ही इस प्रकार जाना जा सकता है कि इस जगत्में एकमात्र पूर्णब्रह्म परमात्मा ही परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका स्वरूप है। यहाँ परमात्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है। जो यहाँ विभिन्नताकी झलक देखता है, वह मनुष्य मृत्युसे मृत्युको प्राप्त होता है अर्थात् बार-बार जन्मता-मरता रहता है।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति। ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते॥ एतद्वै तत्॥

यद्यपि अन्तर्यामी परमेश्वर समानभावसे सर्वदा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, तथापि हृदयमें उनका विशेष स्थान माना गया है। परमेश्वर किसी स्थूल-सूक्ष्म आकार-विशेषवाले नहीं हैं, परंतु स्थितिके अनुसार वे सभी आकारोंसे सम्पन्न हैं। क्षुद्र चींटीके हृदयदेशमें वे चींटीके हृदय-परिमाणके अनुसार परिमाणवाले हैं और विशालकाय हाथीके हृदयमें उसके हृदय-परिमाणवाले बनकर विराजित हैं। मनुष्यका हृदय अङ्गुष्ठ-परिमाणका है, और मानव-शरीर ही परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी माना गया है। अतः मनुष्यका हृदय ही परब्रह्म परमेश्वरकी उपलब्धिका स्थान समझा जाता है। इसलिये यहाँ मनुष्यके हृदय-परिमाणके अनुसार परमेश्वरको अङ्गुष्ठमात्रपरिमाणका कहा गया है। इस प्रकार परमेश्वरको अपने हृदयमें स्थित देखनेवाला स्वाभाविक ही यह जानता है कि इसी भाँति वे सबके हृदयमें स्थित हैं, अतएव वह फिर किसीकी निन्दा नहीं करता अथवा किसीसे घृणा नहीं करता।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः॥ एतद्वै तत्॥

मनुष्यकी हृदय-गुफामें स्थित वे अङ्गुष्ठमात्र पुरुष भूत, भविष्य और वर्तमानका नियन्त्रण करनेवाले स्वतन्त्र शासक हैं। वे ज्योतिर्मय हैं। सूर्य, अग्निकी भाँति उष्ण प्रकाशवाले नहीं; परंतु दिव्य, निर्मल और शान्त प्रकाशस्वरूप हैं। लौकिक ज्योतियोंमें धूम्ररूप दोष होता है; ये धूम्ररहित—दोषरहित, सर्वथा विशुद्ध हैं। अन्य ज्योतियाँ घटती-बढ़ती हैं और समयपर बुझ जाती हैं; परंतु ये जैसे आज हैं, वैसे ही कल भी हैं। इनकी एकरसता नित्य अक्षुण्ण है। ये कभी न तो घटते-बढ़ते हैं और न कभी मिटते ही हैं।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति॥

जैसे वर्षाका जल एक ही है; पर वह जब ऊँचे पर्वतकी ऊबड़-खाबड़ चोटीपर बरसता है तो वहाँ ठहरता नहीं, तुरंत ही नीचेकी ओर बहकर विभिन्न वर्ण, आकार और गन्धको धारण करके पर्वतमें चारों ओर बिखर जाता है। इसी प्रकार एक ही परमात्मासे प्रवृत्त विभिन्न स्वभाववाले देव-असुर-मनुष्यादिको जो परमात्मासे पृथक् मानता है और पृथक् मानकर ही उनका सेवन करता है, उसे भी बिखरे हुए जलकी भाँति ही विभिन्न देव-असुरादिके लोकोंमें एवं नाना प्रकारकी योनियोंमें भटकना पड़ता है, वह ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकता।

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति। एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥

परंतु वही वर्षाका निर्मल जल यदि निर्मल जलमें ही बरसता है तो वह उसी क्षण निर्मल जल ही हो जाता है। उसमें न तो कोई विकार उत्पन्न होता है और न वह कहीं बिखरता ही है। इसी प्रकार, हे गौतमवंशीय नचिकेता! जो इस बातको भलीभाँति जान गया है कि जो कुछ है, वह सब परब्रह्म पुरुषोत्तम ही है, उस मननशील—संसारके बाहरी स्वरूपसे उपरत पुरुषका आत्मा परब्रह्ममें मिलकर उसके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त हो जाता है। [कठोपनिषद्]